इंगलैण्ड एवं सोवियत संघ का आर्थिक विकास
(ECONOMIC DEVELOPMENT OF U.K. & U.S.S.R)

डा चतुर्भुज मामोरिया
रीडर, वाणिज्य सकाय
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर
एव
आर. एस. कुलश्रेष्ठ
राजस्थान कालेज ऑव कामर्स, जयपुर

RESERVED BOOK

पचम पूर्णत संशोधित एव परिमार्जित सस्करण

१९७०

साहित्य भवन : आगरा–३

अध्याय मे रूस द्वारा अन्य राष्ट्रो तथा विशेष रूप से भारत को प्रदान किय गये, **'आर्थिक प्रोत्साहन'** और 'सहयोग' का विश्लेषण किया गया है।

विषय-सामग्री को सम्पन्न बनाने के लिए अनेक पुस्तको, प्रकाशनो, प्रतिवेदनो एव पत्र-पत्रिकाओ से यथोचित सहायता ली गयी है, जिसके लिए लेखकगण उनके आभारी हैं। पुस्तक के विषय मे दिये जाने वाले सुझावों का सहर्ष स्वागत किया जायगा। हमे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत सस्करण स्नातक एव स्नातकोत्तर विद्यार्थियो की आवश्यकताओ की भली-भाँति पूर्ति कर सकेगा।

लेखकगण

विषय-सूची

प्रथम भाग—इंगलैण्ड का आर्थिक विकास

द्वितीय भाग—सोवियत संघ का आर्थिक विकास

१
ग्रेट ब्रिटेन
(Great Britain)

यूरोप के उत्तर-पश्चिमी कोने मे स्थित ब्रिटिश द्वीप समूह दो बड़े और अनेक छोटे-छोटे द्वीपो से मिलकर बने हैं जिनका क्षेत्रफल कुल मिलाकर १,२१,६०० वर्गमील है और जिन्हे इगलिश चैनल यूरोप की मुख्य भूमि से पृथक करती है। ये दो बड़े द्वीप इगलैंड और आयरलैण्ड हैं। ग्रेट ब्रिटेन इनमे सबसे बड़ा है और इसमे इगलैन्ड, वेल्स, तथा स्काटलैण्ड के प्रदेश सम्मिलित किये जाते हैं। आयरलैन्ड के दो भाग हैं—उत्तरी आयरलैण्ड एव दक्षिणी आयरलैण्ड। उत्तरी आयरलैण्ड ब्रिटेन के अधिकार मे है और दक्षिणी आयरलैण्ड स्वतन्त्र आयरिश गणतन्त्र के रूप मे एक स्वय शासित राष्ट्र है। ग्रेट ब्रिटेन, उत्तरी आयरलैंड और कुछ अन्य छोटे द्वीप मिलकर एक सयुक्त राष्ट्र का निर्माण करते हैं जिसे यूनाइटेड किंगडम (U K.) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन छोटे द्वीपो मे इगलैंड के दक्षिणी तट से कुछ दूर स्थित वाइट द्वीप, दक्षिण-पश्चिम मे सिली द्वीप तथा वेल्स के उत्तर की ओर ऐंगिलसी द्वीप है। स्काटलैण्ड के निकट असख्य छोटे-बड़े द्वीप हैं जिनमे ओर्कने तथा शेटलैण्ड प्रमुख हैं। साधारणत ब्रिटेन की चर्चा करते समय इगलैण्ड, ग्रेट ब्रिटेन एव यू० के० को प्राय समान अर्थों मे प्रयुक्त किया जाता है, किन्तु, जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है, इन तीनो मे बहुत अन्तर है। इगलैंड, ग्रेट ब्रिटेन का एक मुख्य प्रदेश है तथा सदैव से इस देश की सामाजिक एव राजनीतिक गतिविधियो का केन्द्र रहा है। जलवायु और जनसख्या की दृष्टि से भी इगलैण्ड देश का महत्त्वपूर्ण भाग है तथा इस राष्ट्र की राजधानी भी इगलैण्ड मे ही स्थित है। कदाचित इसीलिये अनेक विद्वानो ने इगलैण्ड, ग्रेट ब्रिटेन एव यू० के० को अन्तर्परिवर्तनीय (Interchangeable) शब्दों के रूप मे प्रयोग किया है।

इगलैण्ड का क्षेत्रफल ५०,०५१ वर्गमील है और यह ४६ प्रशासनिक इकाइयो मे बँटा हुआ है। वेल्स का क्षेत्रफल ७,६६६ वर्गमील है, तथा इसमे १३ इकाइयाँ हैं। स्काटलैण्ड का क्षेत्रफल २९,७९५ वर्गमील है और यह ३३ इकाइयो मे विभाजित है।

उपर्युक्त तीनो भाग ग्रेट ब्रिटेन द्वीप के अग है जिसका क्षेत्रफल ८७,८१२ वर्गमील है। इसके अतिरिक्त उत्तरी आयरलैन्ड भी यूनाइटेड किंगडम मे सम्मिलित किया जाता है। इसका क्षेत्रफल ५,२०६ वर्गमील है और इसमे ६ प्रशासनिक इकाइयाँ हैं। इस प्रकार समस्त यू० के० का क्षेत्रफल केवल ९३,०१८ वर्गमील है। उत्तर से दक्षिण इसकी लम्बाई ६०० मील तथा पूर्व से पश्चिम चौडाई अधिक से अधिक ३०० मील है।

ग्रेट ब्रिटेन की महानता का आधार

सयुक्त राष्ट्र विश्व का सबसे उन्नतिशील देश रहा है। सोलहवी शताब्दी से ही यहाँ व्यापार का विकास हुआ तथा व्यापार के साथ साथ यह अन्य अविकसित एव नवीन देशो पर राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करता गया। सन् १७६० के बाद हुई औद्योगिक क्रान्ति ने इसे उत्पादन, यातायात एव वितरण की नयी प्रक्रियाएँ प्रदान की जिनके आधार पर इसने विश्व के रगमच पर अपना एकच्छत्र आधिपत्य स्थापित कर लिया। अपने निवासियो के अदम्य उत्साह तथा देश-प्रेम और बढी हुई आर्थिक तथा नाविक शक्ति के सहारे इगलैण्ड अन्य देशो से लोहा लेता हुआ कुछ ही समय मे विश्व का अधिष्ठाता बन बैठा। उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक ब्रिटिश कूटनीति एव राजनीति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी जिसने ब्रिटिश सस्कृति एवं साहित्य को एक नया रूप प्रदान किया। इसकी भाषा, सस्कृति एव साहित्य का प्रसार विश्व के कोने-कोने मे हो गया जो आज भी एक बडी सीमा तक कायम है। इतना छोटा-सा राष्ट्र विश्व मे सबसे शक्तिशाली राष्ट्र कैसे बन गया, यह वस्तुत अत्यन्त रोचक प्रश्न है जिसका उत्तर हमें इगलैण्ड की प्राकृतिक एव सामाजिक परिस्थितियो से प्राप्त होता है। ग्रेट ब्रिटेन की इस महान व्यापारिक एव औद्योगिक उन्नति मे इसकी प्राकृतिक तथा भौतिक सुविधाओ ने जो योग दिया है वह निम्न प्रकार है

(१) ग्रेट ब्रिटेन के दो भौगोलिक गुण हैं जो एक-दूसरे के पूरक हैं। यह गुण पृथकता (Insularity) और सार्वभौमिकता (Universality) है। इस का कोई भी भाग समुद्र से ७५ मील से अधिक दूर नहीं पडता। सामुद्रिक मार्गों का विकास हो जाने से यह पश्चिमी यूरोप के औद्योगिक देशो के तो निकट पडता ही है, साथ ही यह सयुक्त राज्य अमरीका और सुदूरपूर्व के भी निकट पडने लगा है, क्योकि पश्चिमी यूरोप के मुख्य व्यापारिक मार्ग इसी के निकट से निकलते हैं। इगलिश चैनल इसे यूरोप के महाद्वीप से अलग करती है, अतएव यह यूरोप का एक अग होते हुए भी उससे पृथक रहा है। जबकि यूरोप के अन्य राष्ट्रो की सीमाएँ एक-दूसरे मे मिली होने के कारण उनमे परस्पर कलह का कारण रही हैं, महाद्वीप मे इगलैण्ड की पृथकता इसके लिए वरदान सिद्ध हुई है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इगलैण्ड का यूरोप के अन्य देशो से सघर्ष नही हुआ। इतिहास अनेक युद्धो का साक्षी है जो इगलैन्ड ने फ्रास अथवा जर्मनी से लडे। किन्तु इन युद्धो का अधिक प्रभाव मुख्य यूरोप की भूमि पर ही पडा। अपनी पृथक भौगोलिक स्थिति के कारण इगलैंड युद्धो

मे सक्रिय होने हुए भी उनके विनाशकारी प्रभावो से बहुत कुछ बचा रहा। यह इसकी भौगोलिक स्थिति का सर्वोत्तम पहलू है जिसके कारण इगलैण्ड आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने मे सफल रहा। यूरोप के अन्य राष्ट्रो के लोग नागरिक युद्धो एव विप्लवो मे उलझे रहे जबकि इगलैण्ड की आन्तरिक शान्ति एव व्यवस्था ने उसे तकनीकी विकास करने और आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होने का सुन्दर अवसर प्रदान किया। यातायात एव व्यापार के प्रसार के साथ-साथ इगलैण्ड विश्व के सभी देशो मे सम्बन्ध स्थापित करता गया। इस प्रकार एक साधारण से छोटे राष्ट्र से बदल कर इसका स्वरूप विश्वव्यापी हो गया जोकि इसकी सार्वभौमिकता का प्रतीक है।

(२) समुद्र से घिरा होने के कारण यहाँ के लोगो को बाह्य ससार की झलक प्राप्त करने की उत्सुकता आदिकाल से ही रही है। उसी की पूर्ति के लिए इन लोगो ने समुद्र के आतक से निर्भीक होकर विश्व भर मे अपने उपनिवेश (Colonies) स्थापित किये और 'ब्रिटिश साम्राज्य मे कभी सूर्य अस्त नहीं होता' कहावत की प्रसिद्धि पायी। ब्रिटेन के चारो ओर का समुद्र सभी स्थानो पर ३०० फुट से अधिक गहरा नही है, केवल उत्तर-पश्चिम की ओर ही तट के पहाडी होने के कारण समुद्र भी ६०० फुट से लगाकर ३,००० फुट तक गहरा हो गया है। इस छिछले समुद्र के कारण ही यहाँ के निवासियो का सम्पर्क समुद्र से हो पाया है और इसीलिए यहाँ के निवासी विश्व-विख्यात मछुए हैं। यहाँ का सामुद्रिक बेडा भी बडा सुदृढ है जो ग्रेट ब्रिटेन की सफलता एव शक्ति का कारण रहा है।

(३) छिछले तटीय समुद्र मे स्थित होने के कारण यहाँ के बन्दरगाहो को ऊँचे ज्वार से भी लाभ होता है। जहाज बन्दरगाहो मे सफलता से पहुँच जाते हैं और उनमे कीचड आदि भी नही जमती। यहाँ उत्तम कोटि के बन्दरगाहो का बाहुल्य है। यहाँ २४ उत्तम बन्दरगाह हैं, अर्थात् प्रति ५,००० वर्ग मील पीछे एक बन्दरगाह है। ब्रिटेन मे बन्दरगाहो की सख्या ३०० से ऊपर है। इनमे ग्यारह बन्दरगाह व्यापारिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जिनके नाम हैं लन्दन, लिवरपूल, मानचेस्टर, साउथहैम्पटन, न्यूकेसिल हल, मिडिलसबरो, स्वान्सी, ब्रिस्टल, ग्लासगो, और बेलफास्ट। ये सभी बन्दरगाह समुद्री तूफानो से पूर्णत सुरक्षित हैं और साल भर खुले रहते हैं। विश्व के अन्य किसी भी देश को इतने अधिक प्राकृतिक बन्दरगाहो की सुविधा प्राप्त नही है। ब्रिटेन के आर्थिक विकास मे इन बन्दरगाहो का प्रमुख एव महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

(४) इगलैण्ड के भौतिक विकास मे यहाँ की जलवायु की उत्तमता एव अनुकूलता अत्यन्त सहायक हुई है। यह ठण्डे शीतोष्ण कटिबन्ध मे स्थित होते हुए भी गर्मी-सर्दी की विषमताओ से मुक्त रहता है, क्योकि गल्फस्ट्रीम की गर्म धारा शीत ऋतु मे यहाँ के वातावरण को अधिक शीतल होने से बचाती है। यही कारण

है कि ५०° उत्तर एवं ६०° उत्तर अक्षांशों के मध्य स्थित होते हुए भी यहाँ का तापमान हिमबिन्दु तक नहीं गिरता और यह देश बर्फीले तूफानों से बचा रहता है। यहाँ का औसत वार्षिक तापमान ४७°F (८° सेन्टीग्रेड) के आस-पास रहता है जो सर्दियों में ३९°F (४° सेन्टीग्रेड) तक गिर जाता है और गर्मियों में ५३°F (१२° सेन्टीग्रेड) तक बढ़ जाता है। उत्तरी भागों में तापमान इससे कुछ कम और दक्षिणी भागों में कुछ अधिक हो जाता है। मानसिक एवं शारीरिक कार्यों के लिए यह जलवायु आदर्श मानी जाती है, क्योंकि यह लोगों को स्फूर्ति प्रदान करती है और उनकी कार्य-क्षमता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती है। जलवायु के स्वास्थ्यवर्द्धक होने के कारण कारखानों में वर्ष भर कार्य होता रहता है तथा हिम से मुक्त होने के कारण आवागमन में बाधा नहीं होती और खेती को भी हानि नहीं पहुँचती है।

(५) पछवा हवाएँ समुद्र की ओर से निरन्तर इस देश की ओर चलती रहती हैं जो साल भर यहाँ वर्षा करती है। ब्रिटेन में वर्षा का वार्षिक औसत ४०" के लगभग है। पिनाइन पर्वत के पश्चिमी ढालों पर १००" तक पानी बरसता है जिससे साल भर तक बहने वाली कई नदियाँ पूर्व की ओर प्रवाहित होती हैं। इनमें स्थित झरने जलविद्युत शक्ति के स्थान हैं। पिनाइन पर्वत से पूर्व की ओर वर्षा कम होती जाती है और इंगलैण्ड में टेम्स नदी के मैदान में ३५" वर्षा साल में होती है। यहाँ वर्षा की प्रमुख विशेषता यह है कि यह बौछार के रूप में गिरती है जिससे उपजाऊ मिट्टी का कटाव कम होता है तथा उत्तम घास एवं फसलों की वृद्धि में यह सहायक होती है। वर्षा की निरन्तरता के कारण यहाँ सिंचाई के कृत्रिम साधनों की आवश्यकता महसूस नहीं होती। यही कारण है कि यहाँ कृषि एक अनिश्चित व्यवसाय नहीं है जैसाकि हम भारत में पाते हैं। जहाँ तक सघन कृषि का प्रश्न है, इंगलैण्ड की कृषि का स्तर विश्व के अन्य देशों से कहीं उत्तम है।

(६) इंगलैण्ड के आर्थिक विकास में यहाँ के खनिज पदार्थों ने बड़ा योग दिया है। खनिज पदार्थों में यहाँ कोयला, लोहा, चीनी-मिट्टी, टिन, सीसा, जस्ता, चूने का पत्थर, संगमरमर, स्लेट, बोक्साइट, निकल, क्रोम, टंगस्टन आदि पाये जाते हैं। औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक मूलभूत खनिज लोहे, कोयले एवं चूने की यहाँ प्रचुरता है और ये देश भर में कई भागों में फैले हुए हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये खनिज क्षेत्र एक-दूसरे के निकट ही स्थित हैं जिससे उनके परिवहन में सुविधा रहती है। यहाँ खानें खोदने के कार्य में लगभग आठ लाख व्यक्ति लगे हुए है। कोयला यहाँ ७०० वर्षों से निकाला जा रहा है और आज भी विश्व के कोयला उत्पादक देशों में ब्रिटेन का तीसरा स्थान है। यहाँ कोयले के क्षेत्र पिनाइन पर्वत के ढालों, वेल्स के उत्तरी एवं दक्षिणी भागों तथा स्काटलैण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में फैले हुए हैं। लोहे के क्षेत्र यार्कशायर, लंकाशायर, कम्बरलैण्ड, नार्दम्पटनशायर, स्टेफर्डशायर तथा वेल्स के कुछ भागों में फैले हुए है, यद्यपि यहाँ का लोहा बहुत उत्तम किस्म का नहीं है और इसीलिए इंगलैण्ड को प्रति वर्ष स्पेन, स्वीडन और फ्रांस से कच्चा लोहा

आयात करना पड़ता है। चूने का पत्थर इंगलैण्ड में सर्वत्र प्रचुरता में मिलता है। इन तीनों प्रमुख खनिजों के संयोग से इंगलैण्ड ने अपने इस्पात उद्योग का विकास किया और यदि यह कहा जाय कि कोयले एवं लोहे के सामीप्य ने यहाँ औद्योगिक क्रान्ति को प्रेरित किया तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। श्री जी० डब्ल्यू० साउथगेट ने अपनी पुस्तक 'इंगलिश इकोनामिक हिस्ट्री' में लिखा है कि "यदि मशीनों और स्टीम इन्जिन के निर्माण के लिए लोहा उपलब्ध नहीं होता तथा उसे गलाने और इन्जिनों को चलाने के लिए यदि कोयले की कमी होती तो तत्कालीन औद्योगिक विकास असम्भव था।"[1]

(७) प्राकृतिक धरातल वनस्पति एवं मिट्टी—समस्त इंगलैण्ड पहाड़ी ढालों, पठारों, नदियों की उपत्यकाओं एवं झीलों से भरा पड़ा है जो यहाँ अनेक व्यवसायों को जन्म देने में सहायक है। पर्वतीय ढालों पर जहाँ अधिक वर्षा होती है, कोणधारी वनों के वृक्ष मिलते हैं। इनके ढालों पर पशु-पालन व्यवसाय अधिक होता है। इंगलैण्ड का डेयरी उद्योग प्रसिद्ध है। उत्तम जलवायु, स्वच्छ जल की सुलभता, एवं स्वस्थ चारे की प्रचुरता के कारण यहाँ पशु-पालन एवं भेड़-पालन व्यवसाय अधिक अपनाया जाता है। दक्षिण-पूर्व के निचले मैदानी भागों की मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ है जिसमें कई प्रकार की फसलें उत्पन्न की जाती हैं, जैसे गेहूँ, जौ, जई, आलू, गाजर आदि। बागवानी भी यहाँ विकसित है और कई प्रकार के फल उत्पन्न किये जाते हैं, जैसे सेब, चेरी, स्ट्राबेरी, रास्पबेरी आदि।

(८) मत्स्य व्यवसाय—इंगलैण्ड की खाड़ियाँ बन्दरगाहों तथा नाविक शक्ति के विकास में ही सहायक सिद्ध नहीं हुई हैं बल्कि मछली व्यवसाय को भी इनसे सहायता मिली है। इंगलैंड के चारों ओर उथले समुद्र हैं जिनमें प्लेंक्टन बहुतायत से उत्पन्न होता है जिसे खाकर मछलियाँ बढ़ती रहती हैं। इंगलैंड प्रति वर्ष आठ-नौ लाख टन मछलियाँ पकड़ता है फिर भी उसे अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अन्य देशों से मछलियाँ मँगानी पड़ती हैं।

स्पष्ट है कि प्राकृतिक वातावरण के उपर्युक्त अनुकूल तत्त्वों के कारण ही ग्रेट ब्रिटेन आर्थिक क्षेत्र में इतनी अधिक महानता प्राप्त कर सका। यहाँ प्रश्न उठाया जा सकता है कि इंगलैंड के आर्थिक विकास का समस्त श्रेय वहाँ के प्राकृतिक वातावरण को प्राप्त है? इसके उत्तर में यही कहा जायगा कि निश्चित रूप से इसका समस्त श्रेय प्राकृतिक वातावरण को नहीं दिया जा सकता। प्राकृतिक वातावरण उस समय तक निरर्थक है जब तक कि उससे लाभ उठाने की क्षमता मानव समाज में न हो। अतः उत्तम प्राकृतिक वातावरण के साथ-साथ अनुकूल सामाजिक वातावरण के विकास की भी आवश्यकता होती है। किसी देश का प्राकृतिक वातावरण कितना ही उत्तम एवं सम्पन्न क्यों न हो, वह देश तब तक विकास नहीं कर सकेगा जब तक कि उस देश के सामाजिक वातावरण का स्तर भी उन्नत न हो जाय। इंगलैंड के आर्थिक

---

[1] G. W Southgate, *English Economic History*, p 122.

विकास में उत्तम भौगोलिक वातावरण के साथ-साथ उच्च सामाजिक वातावरण ने भी महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया जिसका वर्णन हम अगले अध्याय में करेंगे।

भौगोलिक वातावरण एवं सामाजिक वातावरण दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और एक के बिना दूसरा प्रभावहीन रहता है। अतः जहाँ तक इंगलैण्ड के आर्थिक विकास का प्रश्न है, यह वहाँ की भौगोलिक एवं सामाजिक समस्त परिस्थितियों का समन्वित एवं सन्तुलित प्रतिफल था। विकास के बीज देश की धरती में विद्यमान थे जिन्हें वहाँ के निवासियों ने सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक सींचा जिसका आशातीत फल उन्हें प्राप्त हुआ। अवश्य ही उन्हें इसके लिए लम्बे समय तक कठोर परिश्रम एवं कार्य करना पड़ा और वहाँ की सामान्य जनता को अपार कष्टों एवं अभाव का सामना करना पड़ा, क्योंकि आधुनिक औद्योगिक प्रणेता (Pioneer) के रूप में वे सभी समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ उसके मार्ग में आयीं जोकि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक देश में अवश्यम्भावी होती हैं। इन समस्याओं का हल विश्व में प्रथम बार ब्रिटेन को खोजना पड़ा, क्योंकि अन्य देशों के अनुभव से लाभ उठाने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता था। विश्व-व्यापार के क्षेत्र में पिछली कई सदियों का अनुभव, औपनिवेशिक साम्राज्य के बल पर एकत्रित विशाल पूँजी, अनुशासित, चतुर एवं कुशल जनशक्ति और विशाल समुद्री बेड़े के आधार पर उसने अपनी अर्थ-व्यवस्था को जो नया मोड़ दिया उसने उत्पादन, वितरण एवं परिवहन के प्राचीन स्वरूप को बिलकुल नया रूप दे डाला। तकनीकी नवीनता एवं आधुनिकता में आवेष्टित ब्रिटिश पद्धतियों एवं रीतियों ने आर्थिक जगत में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी जिसे 'औद्योगिक क्रान्ति' की संज्ञा दी जाती है। यह एक ऐसी क्रान्ति थी जो ब्रिटिश सीमाओं तक ही सीमित न रह सकी वरन् उनके परे विश्व के अन्य देशों की ओर भी मुखरित हुई। ज्ञान-विज्ञान तथा नये आविष्कारों को किसी संकुचित दायरे में परिसीमित नहीं किया जा सकता। समय पाकर ये सार्वभौमिकता की ओर अग्रसर होने लगते हैं। नये आविष्कारों, उत्पादन की नयी प्रक्रियाओं एवं विधियों तथा वितरण और परिवहन के नये तरीकों ने अन्य देशों को इस दिशा में चिन्तन की प्रेरणा प्रदान की और धीरे-धीरे उन्होंने भी ब्रिटेन के अनुभव से लाभ उठाकर क्रान्ति को आगे बढ़ाने में अपना योग देना आरम्भ कर दिया। अतएव विश्व की आर्थिक व्यवस्था को औद्योगिक क्रान्ति के द्वारा ब्रिटेन ने जो उपहार दिया उसके लिए विश्व के सभी देश सदा-सदा के लिए ब्रिटेन के ऋणी रहेंगे।

ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन की आर्थिक शक्ति अपनी चरम सीमा पर थी और वह विश्व का सबसे प्रमुख उत्पादक, वितरक, बैंकर एवं विनियोजक था। प्रमुख आयातक, निर्यातक एवं मालवाहक के रूप में ब्रिटेन का सम्बन्ध विश्व के सभी देशों से था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के द्वारा प्राप्त विशाल आय से वह अपनी बढ़ती

हुई जनसंख्या के बढ़ते हुए जीवन-स्तर की पूर्ति कर सकने में समर्थ था। १८६० के पश्चात् जर्मनी, संयुक्त राज्य अमरीका एवं जापान की बढ़ती हुई प्रतियोगिता ने आर्थिक जगत में ब्रिटेन की एकच्छत्र प्रभुता को चुनौती देना आरम्भ कर दिया, किन्तु फिर भी उपनिवेशों के बल पर वह अपना प्रभुत्व जमाये रहा। प्रथम विश्वयुद्ध ने और उसके बाद विश्वव्यापी मन्दी ने ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था पर गहरा आघात किया। फलस्वरूप, विश्व का आर्थिक नेतृत्व ब्रिटेन के हाथों से निकल कर संयुक्त राज्य अमरीका के हाथों में चला गया। द्वितीय विश्वयुद्ध ने रही-सही कमी पूरी कर दी। इसने ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था को बिलकुल अस्त-व्यस्त कर दिया और दूसरी (ओर) अमरीका की राजनीतिक एवं आर्थिक शक्ति में बहुत अधिक वृद्धि की। इसी बीच सन् १९१८ की क्रान्ति से जाग्रत रूस विश्व के पटल पर एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उदित हो चुका था। सन् १९४७ के बाद से धीरे-धीरे विश्व के सभी भागों से ब्रिटेन का औपनिवेशिक प्रभुत्व समाप्त होता गया। इस प्रकार लगभग दो शताब्दी की प्रभुता के बाद एवं सर्वशक्तिशाली राष्ट्र के बजाय ब्रिटेन ने विश्व राजनीति एवं अर्थ नीति में अमरीका और रूस के बाद तीसरा स्थान ग्रहण किया। किन्तु आज भी आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से ब्रिटेन विश्व का एक अत्यन्त विकसित तथा परिपक्व राष्ट्र माना जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के द्वारा ध्वस्त अपनी अर्थ-व्यवस्था के खण्डहर पर उसने फिर से एक नया महल खड़ा कर लिया है और इसके लिए उसके देशवासियों को जो त्याग एवं परिश्रम करना पड़ा है वह स्तुत्य है। वर्तमान ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं

(१) राष्ट्रीय आय—ब्रिटेन में उत्पन्न समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं तथा विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय के मूल्यांकन के आधार पर सन् १९६९ में ब्रिटेन का कुल राष्ट्रीय उत्पादन ३६,०२५ मिलियन पौण्ड था। स्थिर मूल्यों के आधार पर मुद्रा के घटते हुए मूल्यों को ध्यान में रखकर यदि अनुमान लगाया जाय तो यह कहा जा सकता है कि पिछले दस वर्षों में ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय में ३० प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस प्रकार ब्रिटेन के आर्थिक विकास की दर ३ प्रतिशत प्रति वर्ष मानी जा सकती है जोकि एक परिपक्व अर्थ-व्यवस्था के लिए पर्याप्त है। ब्रिटेन के कुल राष्ट्रीय उत्पादन को निर्माण-उद्योगों द्वारा ३५ प्रतिशत; खान, बिजली, गैस और जल-पूर्ति सम्बन्धी उपक्रमों द्वारा १५ प्रतिशत, कृषि, वन, एवं मत्स्य व्यवसाय द्वारा ४ प्रतिशत, परिवहन एवं संचार-व्यवस्था द्वारा २० प्रतिशत तथा सार्वजनिक सेवाओं द्वारा २६ प्रतिशत योगदान प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय में उद्योगों की प्रमुखता है तथा प्राथमिक उपक्रमों का स्थान गौण है। पिछले दस वर्षों में वहाँ की राष्ट्रीय आय में कृषि तथा इससे सम्बद्ध उपक्रमों के योगदान के अनुपात में कुछ कमी हुई है, यद्यपि समग्र रूप से कृषि, वन एवं मत्स्य व्यवसाय द्वारा उत्पन्न आय की राशि में वृद्धि हुई है।

(२) व्यक्तिगत आय, बचत एवं विनियोग--ब्रिटेन में प्रति व्यक्ति आय लगभग ६२० पौण्ड प्रति वर्ष है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ब्रिटेन में प्रति व्यक्ति आय भारत की अपेक्षा लगभग २२ गुनी अधिक है। पिछले दस वर्षों में ब्रिटेन में मूल्य-स्तर की तुलना में व्यक्तिगत आय के स्तर में अधिक वृद्धि हुई जबकि भारत में इसी अवधि में आय की अपेक्षा मूल्य-स्तर में आनुपातिक वृद्धि बहुत अधिक हुई है। ब्रिटेन में इस काल में मूल्य-स्तर में केवल २८ प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि श्रमिकों के वेतन-स्तर में ५३ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटेन ने युद्धोत्तरकाल के बाद मुद्रा-स्फीति का नियन्त्रण करके नागरिकों की आय के वास्तविक मूल्य को गिरने से रोकने की दिशा में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। इससे हम भारतवासियों को इस दिशा में सुधार करने की प्रेरणा मिल सकती है।

जहाँ तक बचत का प्रश्न है ब्रिटेन में व्यक्तिगत आय की तुलना में व्यक्तिगत बचत का प्रतिशत आठ प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक निगमों (Public Corporations), निगमित कम्पनियों (Limited Companies), बैंकों, बीमा कम्पनियों, प्रावीडेन्ट फन्ड आदि के द्वारा भी राष्ट्रीय बचत में योगदान प्राप्त होता है। कुल राष्ट्रीय बचत का लगभग ४० प्रतिशत निगमित कम्पनी क्षेत्र से प्राप्त होता है। सार्वजनिक निगमों से कुल राष्ट्रीय बचत का लगभग १० प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। शेष पचास प्रतिशत भाग व्यक्तिगत बचत, सरकारी एवं स्थानीय अर्ध सरकारी संस्थाओं से प्राप्त होता है, राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में कुल विनियोग की दर में पिछले वर्षों में निरन्तर वृद्धि हुई है। सन् १९५१ में यह दर केवल १५ प्रतिशत थी और सन् १९६९ में बढ़कर लगभग २० प्रतिशत हो गयी है।

(३) जीवन-स्तर--ब्रिटेन के लोगों का जीवन-स्तर एशियायी देशों की तुलना में बहुत अधिक ऊँचा है। इसके दो प्रधान कारण हैं--वहाँ के परिवारों का छोटा आकार, और उनकी आय का उच्चस्तर। ब्रिटेन में लगभग डेढ़ करोड़ परिवार हैं जिनमें से ७० प्रतिशत परिवारों में सदस्यों की संख्या तीन-चार से अधिक नहीं है। आधे से अधिक परिवार अपने स्वयं के घरों में रहते हैं जबकि शेष ने नगर निगम, स्थानीय संस्थाओं अथवा निजी मालिकों से किराये पर मकान लिये हुए हैं। प्रायः सभी मकानों में ठण्डे और गर्म जल की व्यवस्था तथा स्नानघर एवं शौचालयों का प्रबन्ध है। केवल एक प्रतिशत परिवारों में घरेलू नौकर की व्यवस्था है। शेष परिवारों के सदस्य अपना कार्य स्वयं करते हैं, किन्तु श्रम की बचत करने के उद्देश्य से घरेलू कामों के लिए मशीनों के प्रयोग की प्रवृत्ति में वृद्धि हो रही है।

ब्रिटेन के लोगों को प्रति व्यक्ति ३,१५० कैलोरीज आहार प्रतिदिन प्राप्त होता है। एक औसत ब्रिटिश नागरिक के भोजन में लगभग ५½ औंस रोटी, ६ औंस माँस, ३ औंस चीनी एवं डिब्बेबन्द खाद्य, २ औंस मक्खन व पनीर तथा १६ औंस फल एवं सब्जी आदि सम्मिलित होते हैं। पौष्टिकता की दृष्टि से औसत ब्रिटिश नागरिक का दैनिक आहार अत्यन्त उच्च कोटि का है इसमें निरन्तर सुधार हो

रहा है। इधर कुछ वर्षों से वहाँ ऐसे खाद्य भण्डारों का अधिक विकास हुआ है जो फ्रिज में जमाये हुए तैयार (Ready-made) खाद्य पदार्थों का विक्रय करते हैं। इससे भोजन तैयार करने में लगने वाले श्रम एवं समय में बड़ी बचत हुई है। ब्रिटिश परिवारों में चाय का भी चलन बहुत है और चाय की प्रति व्यक्ति वार्षिक खपत लगभग दस पौण्ड है।

ब्रिटेन में ८० प्रतिशत परिवारों के पास टेलीविजन सेट हैं तथा प्रति तीन परिवारों में से एक के पास स्वयं की मोटर कारें हैं। इससे एक औसत ब्रिटिश नागरिक के जीवन-स्तर का अनुमान भलीभाँति लगाया जा सकता है।

४) जनसंख्या—सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार ब्रिटेन की जनसंख्या ५,२७,०९,००० थी। जनसंख्या-वृद्धि की दर आधे प्रतिशत प्रति वर्ष से कुछ अधिक है जबकि भारत में यह दर इस समय लगभग ढाई प्रतिशत वार्षिक है। हाल के पूर्वानुमानों के अनुसार सन् १९६६ में ब्रिटेन की कुल जनसंख्या पाँच करोड़ साठ लाख से कुछ अधिक थी। जहाँ तक जनसंख्या के घनत्व का प्रश्न है, ब्रिटेन विश्व के सबसे घने आबाद देशों में गिना जाता है। यहाँ की जनसंख्या का घनत्व ५८५ व्यक्ति प्रति वर्गमील है किन्तु इंगलैंड में यह घनत्व ८२९ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। ब्रिटेन में जन्म-दर एवं मृत्यु-दर दोनों ही भारत की अपेक्षा काफी नीची है। सन् १९६६ में वहाँ जन्म-दर १७.५ प्रति हजार एवं मृत्यु-दर १२ प्रति हजार थी।

कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत ब्रिटेन में बहुत अधिक है। पन्द्रह से चौंसठ वर्ष के व्यक्तियों का अनुपात कुल जनसंख्या का ६५ प्रतिशत है। व्यावसायिक विभाजन के आधार पर जनसंख्या का बहुत अधिक भाग उद्योगों में लगा हुआ है और कृषि में लगे हुए व्यक्तियों का अनुपात बहुत कम है। कुल जनसंख्या के केवल ३½ प्रतिशत व्यक्ति कृषि के द्वारा जीविकोपार्जन करते हैं। शेष अन्य व्यक्ति उद्योग, व्यापार, खान, परिवहन, संचार एवं अन्य नागरिक तथा सैनिक सेवाओं में संलग्न हैं। कुल जनसंख्या का केवल २० प्रतिशत भाग ही गाँवों में निवास करता है शेष ८० प्रतिशत भाग शहरी जनसंख्या का अंग है।

(५) उद्योग—ब्रिटेन एक महान औद्योगिक देश है। पूर्वारम्भ, तकनीकी ज्ञान, खनिज पदार्थों की सुविधा तथा कच्चे माल के आयात ने ब्रिटेन में औद्योगिक विकास को बहुत अधिक प्रोत्साहन प्रदान किया। आधारभूत उद्योगों का वहाँ जाल-सा बिछा हुआ है। ब्रिटिश उत्पादन का लगभग तीन-चौथाई माल कारखानों में तैयार होने वाला सामान होता है इसीलिए ब्रिटेन को 'विश्व का वर्कशाप' कहा जाता है। वस्त्र उद्योग (जिसमें सूती, ऊनी, रेशमी एवं कृत्रिम रेशा सम्मिलित हैं) इस्पात उद्योग, जहाज निर्माण, रासायनिक उद्योग, बिजली उपकरण उद्योग, काँच एवं मिट्टी के बर्तन बनाने के उद्योग, कागज उद्योग, हवाई जहाज, रेलवे इन्जिन एवं मोटर निर्माण उद्योग, इन्जीनियरिंग उद्योग, मशीन उद्योग, पेण्ट एवं वार्निश उद्योग, कृत्रिम रबर

उद्योग, रासायनिक खाद उद्योग, औषध निर्माण उद्योग, आदि यहाँ के प्रमुख उद्योग माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त उपभोक्ताओं के काम आने वाली अनेक प्रकार की वस्तुएँ ब्रिटेन में निर्मित की जाती है। ये उद्योग लन्दन, लंकाशायर, यार्कशायर, उत्तरी एवं दक्षिणी वेल्स, स्काटलैण्ड और उत्तरी आयरलैण्ड में फैले हुए हैं।

कुछ सार्वजनिक एवं सैनिक महत्त्व के उपक्रमों को छोड़कर अन्य समस्त उद्योग निजी व्यक्तियों अथवा कम्पनियों के हाथों में हैं। उद्योगों के सरकार के साथ सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं। सरकार उद्योगों को कई प्रकार से सहायता देता है जिसमें आवश्यक सेवाओं की व्यवस्था, सूचना एवं परामर्श तथा गवेषणा आदि सम्मिलित है। श्रम सम्बन्धी, आयात-निर्यात सम्बन्धी तथा भूमि के उपयोग सम्बन्धी कुछ नियन्त्रणों एवं प्रतिबन्धों को छोड़कर अन्य कोई प्रतिबन्ध सरकार द्वारा उद्योगों पर नहीं लगाये हुए हैं। एकाधिकारी को रोकने के लिए अवश्य सरकार आवश्यक कदम उठा सकती है। उत्पादकता को बढ़ाने और उत्पादित माल की किस्म को सुधारने में भी सरकार वहाँ के उद्योगों की सहायता करती है।

(६) परिवहन—ब्रिटेन में सड़क, रेल, वायु एवं जल परिवहन के साधनों का जाल सा बिछा हुआ है। राष्ट्रीय आय का लगभग आठ प्रतिशत यातायात एवं सचार सेवाओं से प्राप्त होता है और ब्रिटेन के ७ ३ प्रतिशत व्यक्ति इन सेवाओं में लगे हुए है जिनकी संख्या लगभग १७ लाख है। इनमें से २८ प्रतिशत सड़क यातायात, २३ १ प्रतिशत रेल यातायात, ८ ९ प्रतिशत जल यातायात एवं २ ६ प्रतिशत वायु यातायात में लगे हुए हैं तथा शेष आन्तरिक जल यातायात और सचार व्यवस्थाओं में कार्य करते हैं। देश के ३०० बन्दरगाहों से आयात एवं निर्यात होने वाले माल का वजन लगभग २० करोड़ टन वार्षिक होता है।

ब्रिटेन की जहाजी क्षमता विश्व की कुल जहाजी क्षमता की १४ प्रतिशत है। ब्रिटेन में बहुत विशाल जहाजों का निर्माण होता है। ब्रिटेन ने एक लाख टन क्षमता वाला अपना प्रथम तेलवाहक जहाज (Tanker) मार्च १९६५ में जल में उतारा। रेल यातायात का विकास सर्वप्रथम ब्रिटेन में ही हुआ जबकि सन् १८२५ में स्टोकटन से डार्लिंगटन तक तथा सन् १८३० में लिवरपूल से मानचेस्टर तक रेलवे लाइनें आरम्भ की गयीं। सन् १९६६ में ब्रिटेन में रेलपथ की लम्बाई लगभग सत्रह हजार मील थी।

वायु परिवहन के क्षेत्र में ब्रिटिश ओवरसीज एयरवेज कारपोरेशन (BOAC) तथा ब्रिटिश यूरोपियन एयरवेज (BEA) कार्यशील है और कुल निर्यात तथा आयात के दस प्रतिशत भाग (मूल्यानुसार) इन्हीं वायु निगमों के द्वारा लाया अथवा ले जाया जाता है।

(७) कृषि—ब्रिटेन में कृषि व्यवसाय इतना बड़ा नहीं है जितना कि उद्योग, किन्तु फिर भी वहाँ कृषि का महत्त्व उतना ही समझा जाता है जितना कि अन्य किसी देश में। कृषि, डेयरी एवं मत्स्य उद्योगों से कुल मिलाकर ब्रिटेन की लगभग

आधी खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और शेष पचास प्रतिशत के लिए ब्रिटेन आयात पर निर्भर रहता है। ६ करोड़ एकड़ भूमि में से लगभग ४६ करोड़ एकड़ भूमि कृषि अथवा कृषि से सम्बद्ध व्यवसाय के लिए काम में ली जाती है। ब्रिटेन में औसत फार्म का आकार ७० एकड़ है। ब्रिटिश कृषि में कुल जनसंख्या का लगभग ३.५ प्रतिशत भाग लगा हुआ है और राष्ट्रीय आय का लगभग ४ प्रतिशत कृषि से उपार्जित होता है। दूध, अण्डे तथा आलू के उत्पादन में इगलैण्ड आत्मनिर्भर है। अपनी आवश्यकता का लगभग आधा गहूँ एवं एक-चौथाई चीनी भी ब्रिटेन स्वयं उत्पन्न कर लेता है, किन्तु तेल, मक्खन, पनीर, सब्जी एवं फलो की आवश्यकताओं की पूर्ति मुख्यतः आयात से की जाती है। ब्रिटेन में जो फसलें उत्पन्न की जाती है उनमें गहूं, जौ, जई, राई, आलू, चुकन्दर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सब्जी, फल एवं पशुओं के लिए चारा भी उत्पन्न किया जाता है।

पिछले दस वर्षों में ब्रिटेन ने अपने कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि कर ली है। सन् १९५६ को आधार वर्ष मानते हुए सन् १९६५ में कृषि उत्पादन का सूचनांक १३७ था। ब्रिटिश कृषि से ४५० मिलियन पौण्ड की आय प्राप्त होती है। इधर कुछ वर्षों में फार्मों पर मशीनों का प्रयोग बढ़ रहा है क्योंकि पिछले दस वर्षों में कृषि श्रमिकों के वेतन-स्तर में ६० प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी है। ब्रिटेन में प्रति ३६ एकड़ कृषि-योग्य भूमि के लिए एक ट्रैक्टर उपलब्ध है। ब्रिटेन में कुल ट्रैक्टरों की संख्या ५ लाख है। विश्व के अन्य किसी भी देश में ट्रैक्टरो का इतना घनत्व नहीं है।

ब्रिटेन की सरकार लगभग ३०० मिलियन पौण्ड प्रति वर्ष कृषि की सहायता एवं विकास के लिए व्यय करती है। ९० प्रतिशत कृषि फार्मों को विद्युत सुविधाएँ प्राप्त हैं।

(८) **रोजगार**— दोनो विश्वयुद्धो के बीच के काल में ब्रिटिश कार्यशील जनसंख्या का १४ प्रतिशत भाग बेकारी से ग्रसित था। द्वितीय विश्वयुद्ध ने बेकारी की मात्रा में कमी की क्योंकि सैनिक गतिविधियों में बहुत अधिक संख्या में लोगों की आवश्यकता प्रतीत हुई। पिछले बीस वर्षों में ब्रिटेन में कुल कार्यशील जनसंख्या के केवल २ प्रतिशत लोग बेकार रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों की संख्या मोटे तौर पर ५ लाख है। स्काटलैण्ड, उत्तरी आयरलैण्ड एवं उत्तरी पूर्वी इंगलैण्ड के कुछ उद्योगों की गिरी हुई दशा के कारण इन भागों में बेकार व्यक्तियों की संख्या कुछ अधिक है। ऐसे व्यक्तियों के भरण-पोषण, प्रशिक्षण तथा फिर से काम दिलाने के लिए सरकार की ओर से समुचित प्रबन्ध किया हुआ है। पिछले पाँच वर्षों में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या में कमी हुई है। सन् १९६६ में ऐसे व्यक्तियों की संख्या चार लाख से भी कम थी।

(९) **श्रम एवं सामाजिक सुरक्षा**—औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात ब्रिटेन में श्रम सम्बन्धी अनेक समस्याओं का जन्म हुआ। औद्योगिक पूँजीवाद के प्रारम्भिक काल में

श्रमिकों की दशा अत्यन्त गिरी हुई थी और संगठन के अभाव में वे शक्तिशाली उद्योगपतियों की दया पर निर्भर रहे। सरकार की निरपेक्षता की नीति (Policy of *Laissez Faire*) के कारण अनेक वर्षों तक उन्हें प्रगति करने का अवसर ही नहीं मिला। संयोग प्रतिबन्धक अधिनियमों (Combination Laws) के अंतर्गत श्रमिकों की संस्थाओं को अवैधानिक घोषित किया जाता रहा। सन् १८२४ से १८६० तक श्रमिकों ने संगठित होकर अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए अनेक बार प्रयत्न किये किन्तु उद्योगपतियों एवं सरकार ने निर्दयता से ऐसे प्रयत्नों को कुचल दिया। संघर्ष के एक लम्बे काल के पश्चात ब्रिटेन के प्रशासन ने यह अनुभव किया कि आर्थिक विकास के साथ साथ श्रमिकों की समस्याओं पर ध्यान दिया जाना भी अत्यन्त आवश्यक है। फलस्वरूप, श्रमिकों के संगठनों को मान्यता प्राप्त होने लगी। सन् १८७१ के श्रमिक संघ अधिनियम ने श्रम आन्दोलन को एक नया रूप प्रदान किया और इसके बाद श्रमिकों ने उत्तरोत्तर अधिक संगठित होकर अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे उनकी काम की दशाओं, काम करने के घन्टों एवं वेतन स्तर में सुधार होने लगा। महिला श्रमिकों एवं बच्चों के लिए विशेष रिआयतें दी जाने लगीं। कारखाना अधिनियम लागू करके तथा समय-समय पर उनमें सुधार करके सरकार ने उद्योगपतियों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाने आरम्भ किये। इस प्रकार इंगलैण्ड के श्रमिकों ने संघर्ष करके केवल अपने हितों को ही सुरक्षित नहीं किया, बल्कि विश्व के अन्य देशों के श्रमिकों के समक्ष भी एक उदाहरण प्रस्तुत किया जिससे कि उन्हें भी अपनी दशा सुधारने की प्रेरणा प्राप्त हुई।

आज ब्रिटेन के श्रमिक विश्व के सबसे अधिक संगठित एवं सम्पन्न श्रमिक माने जाते हैं। लगभग एक करोड़ व्यक्ति विभिन्न श्रम संघों के सदस्य हैं। ये ट्रेड यूनियन कांग्रेस (TUC) से सम्बद्ध है, और यह श्रमिकों की एक विशाल संस्था बन गयी है। यही नहीं वहाँ श्रमिकों का अपना पृथक राजनीतिक दल है जिसे लेबर पार्टी के नाम से सम्बोधित किया जाता है और जो राजनीतिक स्तर पर श्रमिकों के हितों के लिए संघर्ष करता रहता है। इंगलैण्ड की लेबर पार्टी ने कई बार सरकार का निर्माण किया है। मार्च १९६६ के चुनावों में भी लेबर पार्टी बहुमत से विजयी हुई तथा इस समय देश के शासन की बागडोर उसके हाथों में है।

ब्रिटेन में यद्यपि पुरुष एवं महिला श्रमिकों की वेतन दरें समान नहीं हैं, फिर भी वे अन्य देशों की तुलना में बहुत ऊँची हैं। इस समय ब्रिटेन में पुरुष श्रमिकों की औसत आय लगभग आठ-दस शिलिंग प्रति घण्टा है, जबकि महिला श्रमिक को लगभग सात आठ शिलिंग प्रति घण्टा वेतन मिलता है। सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में ब्रिटिश श्रमिक की स्थिति अत्यन्त उत्तम है। सन् १९४८ में बीवरिज योजना के आधार पर ब्रिटेन में सामाजिक सुरक्षा एवं सहायता का एक अत्यन्त व्यापक कार्यक्रम लागू किया गया जिसने ब्रिटेन के श्रमिकों को जीवन के प्राय सभी ऐसे सम्भावित

नगरों की चिन्ता से मुक्त कर दिया है जिनकी सुरक्षा समाज द्वारा की जा सकती है। इसीलिए प्राय: कहा जाता है कि ब्रिटेन का श्रमिक जन्म से मृत्यु तक सामाजिक एवं आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त है।

(१०) आयात-निर्यात व्यापार—आकार एवं जनसंख्या की दृष्टि से ब्रिटेन विश्व का एक छोटा-सा देश है किन्तु फिर भी अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में इसका स्थान तीसरा है तथा इसका विदेशी व्यापार कुल अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का दस प्रतिशत है। सन् १९१४ तक विश्व के कुल निर्यात का एक तिहाई ब्रिटेन के हाथों में था किन्तु अन्य देशों में औद्योगिक विकास हो जाने से इसे कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा और विश्व के निर्यात व्यापार में ब्रिटेन का भाग सन् १९३९ में गिरकर २० प्रतिशत रह गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, विशेषकर पौण्ड के अवमूल्यन के पश्चात् ब्रिटेन के निर्यात बढ़े और विश्व निर्यात में इसका भाग २६ प्रतिशत हो गया। किन्तु उसके बाद इसमें निरन्तर कमी हुई है और सन् १९६९ के मध्य में ब्रिटन का विदेशी व्यापार विश्व व्यापार का केवल १२ प्रतिशत था।

१९६९ में ब्रिटेन ने कुल मिलाकर ६,४०० मिलियन पौण्ड का माल आयात किया जिसमें खाद्य, पेय पदार्थ, तम्बाकू, औद्योगिक कच्चा माल, खनिज पदार्थ एवं तेल तथा निर्मित एवं अर्द्ध-निर्मित माल आदि सम्मिलित थे। आयात प्रधानतः स्टर्लिंग क्षेत्र, पश्चिमी एवं पूर्वी यूरोप के देशों तथा उत्तरी अमरीका के देशों से किया गया। ब्रिटिश आयात का आधा भाग खाद्य पदार्थों तथा औद्योगिक कच्चे माल के रूप में होता है। इसी वर्ष ब्रिटेन द्वारा निर्यात किये गये माल का मूल्य ५,५०० मिलियन पौण्ड था और इनमें मशीनें एवं इन्जीनियरिंग के सामान, सब प्रकार के वस्त्र, रासायनिक पदार्थ, धातुएँ, कोयला तथा अन्य निर्मित माल आदि सम्मिलित थे। ब्रिटिश निर्यातों में ५० प्रतिशत इन्जीनियरिंग के सामान होते हैं कुल निर्यात का लगभग ३६ प्रतिशत स्टर्लिंग क्षेत्र के देशों, २० प्रतिशत पूर्वी यूरोप के देशों, १३ प्रतिशत उत्तरी अमरीका के देशों, १८ प्रतिशत पश्चिमी यूरोप के देशों तथा शेष अन्य देशों को किया गया। दृश्य निर्यात के अतिरिक्त ब्रिटेन अदृश्य निर्यातों के द्वारा भी विदेशी मुद्रा प्राप्त करता है जिसमें यातायात, बैंकिंग एवं बीमा सेवाओं से होने वाली आय, विदेशी विनियोग से प्राप्त होने वाला लाभ, ब्याज एवं लाभांश तथा विदेशी पर्यटकों (Tourists) से होने वाली आय सम्मिलित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रिटेन विश्व का एक बहुत बड़ा व्यापारी देश है। भारत के विदेशी व्यापार से यदि हम इसके व्यापार की तुलना करें तो हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारत को अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में ब्रिटेन के स्तर तक पहुँचने में अभी बहुत वर्ष लगेंगे। ब्रिटेन के आयात का मूल्य भारत के आयात के मूल्य का लगभग ६ गुना और निर्यात का मूल्य लगभग ७ गुना अधिक है।

(११) बैंकिंग मुद्रा एवं मूल्य-स्तर—ब्रिटेन की बैंकिंग व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ एवं सुसंगठित है। बैंक ऑव इंगलैण्ड यहाँ का केन्द्रीय बैंक है जोकि एक सरकारी

बैंक तथा बैंको के बैंक के रूप मे कार्य करता है। मौद्रिक नीतियो को सुचारु रूप से क्रियान्वित करने मे यह बैंक सरकार की सहायता करता है। बैंक रेट तथा अनिवार्य एव विशेष कोष प्रणाली के द्वारा यह बैंक देश की साख का नियन्त्रण करता है। बैंक ऑव इगलैण्ड को इगलैण्ड तथा वेल्स मे नोट जारी करने का अधिकार प्राप्त है जिसके लिए स्वर्ण एव प्रतिभूतियों के रूप मे बैंक शत प्रतिशत जमानत रखने का प्रबन्ध करता है।

व्यापारिक बैंकिंग कुछ इने-गिने विशालकाय बैंकों के हाथो मे है जो देश भर मे फैली लगभग १४,००० शाखाओ को नियन्त्रित करते हैं। ये बैंक जनता से विशाल धनराशि 'जमा' (Deposits) के रूप मे आकर्षित करने मे सफल हुए हैं। बैंको मे जनता की जमा राशि सन् १९६७ के अन्त मे लगभग ११,००० मिलियन पौण्ड थी जिसका लगभग एक-तिहाई माँग पर देय निक्षेपो के रूप मे था। भारत मे व्यापारिक बैंको के पास जनता की जमा राशि इसकी तुलना मे एक-चौथाई से भी कुछ कम है।

पिछले दस वर्षों की अवधि मे ब्रिटेन के मूल्य स्तर मे केवल २८ प्रतिशत की वृद्धि हुई है, अर्थात् २ ८ प्रतिशत प्रति वर्ष। सरकार मूल्यो को अधिक बढने से रोकने के लिए कई उपाय काम मे लेती है, जैसे बैंक रेट मे वृद्धि, बैंको द्वारा दी जाने वाली साख पर नियन्त्रण, किस्तो पर बेचे जाने वाले माल का उचित नियन्त्रण तथा कर नीति मे उचित परिवर्तन, आदि।

(१२) सार्वजनिक वित्त—ब्रिटिश सरकार प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करो द्वारा आय प्राप्त करती है। प्रत्यक्ष करो मे आय-कर सबसे महत्त्वपूर्ण है। आय-कर के द्वारा ब्रिटिश सरकार अपनी आय के ४० प्रतिशत भाग की पूर्ति कर लेती है। इसके अतिरिक्त अधि-कर (Surtax), मृत्यु-कर, स्टाम्प ड्यूटी, लाभ-कर आदि के द्वारा भी पर्याप्त आय सरकार को प्राप्त होती है। अप्रत्यक्ष करो में उत्पादन-कर (Excise duty) प्रमुख है जिसके द्वारा अपनी कुल आय के २५ प्रतिशत भाग की पूर्ति सरकार करती है। उत्पादन-कर तम्बाकू, तेल, मदिरा आदि पर लगाया जाता है। क्रय-कर (Purchase tax), सरक्षण कर, आयात-निर्यात कर आदि से भी आय की पूर्ति की जाती है। सन् १९६८-६९ के बजट मे ब्रिटिश सरकार की कुल आय १२,८७५ मिलियन पौण्ड तथा कुल व्यय ११,४८९ मिलियन पौण्ड होने का अनुमान है।

जहाँ तक सार्वजनिक व्यय का प्रश्न है, आय का सबसे अधिक भाग प्रतिरक्षा (Defence) पर किया जाता है। इस पर किया जाने वाला व्यय कुल व्यय का ३१ ३ प्रतिशत है। इसके बाद सामाजिक सेवाओ का स्थान आता है जिनमे शिक्षा, स्वास्थ्य एव चिकित्सा, जनकल्याण, सुरक्षा एव सहायता आदि सम्मिलित हैं। इन पर किया जाने वाला व्यय कुल व्यय का लगभग ३० ४ प्रतिशत है। तीसरा स्थान विकास अथवा आर्थिक सेवाओं का है जिसमे गृह-निर्माण, सडक विकास, औद्योगिक अनुसन्धान, कृषि, वन एव मत्स्य पालन के विकास के लिए किये जाने वाले व्यय

सम्मिलित हैं। इन सब पर कुल मिला कर व्यय का १५·४ प्रतिशत भाग खर्च किया जाता है। व्यय का शेष भाग प्रशासनिक एवं अन्य मदो पर व्यय होता है।

(१३) आर्थिक नियोजन—ब्रिटेन मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र दोनो का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। अब ब्रिटेन मे यह अनुभव किया जाने लगा है कि देश की आर्थिक प्रगति का सही मूल्यांकन करने और आर्थिक विकास की दर को आगे बढाने के उद्देश्य से आर्थिक नियोजन (Economic Planning) का सहारा लेना देश के लिए हितकर होगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सन् १९६२ मे राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद[1] की स्थापना की गयी। अक्टूबर १९६४ मे आर्थिक मामलो के विभाग (Department of Economic Affairs) की स्थापना की गयी, जो कि आर्थिक नियोजन के लिए उत्तरदायी है। यह विभाग तकनीकी मन्त्रालय (Ministry of Technology) एवं राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद के सहयोग से देश के लिए आर्थिक योजना का निर्माण करता है और सरकारी विभागो के सहयोग से उस योजना को क्रियान्वित करता है। इनके अतिरिक्त आर्थिक विकास समितियाँ (Economic Development Committee) एवं क्षेत्रीय आर्थिक नियोजन परिषदें (Regional Economic Planning Councils) भी नियोजन के कार्य मे सहयोग देती हैं।

(क) राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद (National Economic Development Council)—सन् १९६२ मे इसकी स्थापना राष्ट्र की आर्थिक प्रगति की जाँच करने और भविष्य के लिए आर्थिक योजना के निर्माण मे सहयोग प्राप्त करने के लिए की गयी। प्रधान मन्त्री की अध्यक्षता मे यह परिषद समय-समय पर महत्त्वपूर्ण आर्थिक प्रश्नो एवं नीतियो पर विचार विमर्श करती है जिसमे सरकार के अन्य प्रमुख मन्त्रीगण तथा उद्योग व्यापार एवं श्रमिको के प्रतिनिधि भी भाग लेते हैं।

(ख) आर्थिक मामलों का विभाग (Department of Economic Affairs)—इसका कार्य आर्थिक विकास के लिए योजना का निर्माण करना तथा उस योजना के क्रियान्वयन के लिए विभिन्न व्यवस्थाओं का समन्वय करना है। औद्योगिक एवं क्षेत्रीय विकास तथा भौतिक साधनो के आवटन से सम्बन्धित नीतियो के समन्वय मे भी यह विभाग योग देता है। अप्रैल सन् १९६८ मे आय एवं मूल्य नीति निर्धारण का कार्य इससे पृथक करके रोजगार एवं उत्पादकता मन्त्री को सुपुर्द कर दिया गया।

(ग) आर्थिक विकास समितियाँ (Economic Development Committees)—प्रत्येक प्रमुख उद्योग के लिए पृथक विकास समितियाँ बनाई गयी हैं। प्रत्येक समिति मे उद्योग एवं श्रमिको के प्रतिनिधियो के साथ-साथ कुछ स्वतन्त्र

---

[1] National Economic Development Council (NEDC)

प्रतिनिधि भी होते हैं। ये समितियाँ औद्योगिक कुशलता मे सुधार करने तथा प्रत्येक उद्योग द्वारा राष्ट्रीय विकास और नियोजन मे पर्याप्त सहयोग प्रदान करने मे सहायक सिद्ध हुई हैं।

(घ) क्षेत्रीय आर्थिक परिषदें (Regional Economic Councils)--ये एक प्रकार की सलाहकार सस्थाएँ हैं जिनमे पच्चीस-तीस सदस्य होते है। इनका कार्य क्षेत्रीय विकास की योजनाओ के निर्माण एव क्षेत्रीय नीतियो के विषय मे परामर्श देना है। इगलैण्ड को आठ क्षेत्रो मे विभाजित किया गया है और प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक पृथक परिषद है। स्काटलैण्ड, वेल्स एव उत्तरी आयरलैण्ड के लिए अलग परिषदें कार्यशील हैं।

(ङ) क्षेत्रीय आर्थिक विकास मण्डल (Regional Economic Development Boards)—प्रत्येक क्षेत्र के सरकारी विभागो के राजकीय अधिकारी इन मण्डलो के सदस्य होते हैं। इनका प्रमुख कार्य विभिन्न सरकारी विभागो के आर्थिक नियोजन के कार्य को समन्वित करना, तथा क्षेत्रीय योजनाओ के निर्माण मे क्षेत्रीय परिषदों को सहयोग देना है।

आर्थिक नियोजन के लिए उपर्युक्त सस्थाओ की उपयोगिता पिछले वर्षों में बढी है। सन् १९६५ मे ब्रिटेन के लिए एक राष्ट्रीय योजना (National Plan) बनायी गयी जिसका उद्देश्य सन् १९७० तक राष्ट्रीय उत्पादन, निर्यात एव वस्तुओ तथा सेवाओ के कुछ उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करना है जिससे कि राष्ट्रीय आय मे इस अवधि म कुल मिलाकर लगभग २५ प्रतिशत की वृद्धि हो सके।

इस प्रकार ब्रिटेन सरकारी एव निजी दोनो ही क्षेत्रो के सहयोग से आर्थिक नियोजन के द्वारा राष्ट्रीय उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि के लिए प्रयत्नशील है। विकास का लाभ जनसाधारण को प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि एक उचित आय तथा मूल्य नीति (Incomes and Prices Policy) अपनायी जाय। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर मूल्य एव आय मण्डल[1] (National Board for Prices and Incomes) कार्यशील है।

(१४) भुगतान सन्तुलन—द्वितीय विश्वयुद्ध के समय एव उसके बाद के वर्षों मे ब्रिटेन का भुगतान सन्तुलन बिगड गया। इसम सुधार लाने के लिए ही सन् १९४९ मे उसने अपने पौण्ड का अवमूल्यन किया जिसका मुख्य उद्देश्य आयातो को कम करके निर्यातो को प्रोत्साहित करना था। कुछ हद तक ब्रिटेन को अपने इस प्रयत्न में सफलता भी मिली। फिर भी अमरीका एव अन्य मित्र राष्ट्रो का वह इतना देनदार था कि उस बोझ से आज तक वह उऋण नही हो सका है। करोडो पौण्ड प्रति वर्ष उसे मूल राशि एव ब्याज के रूप मे अन्य देशो को चुकाने पडते है। अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक दायित्वों के निर्वाह के लिए भी यह आवश्यक है कि

[1] अगस्त सन् १९६८ तक यह मण्डल अस्सी प्रतिवेदन प्रकाशित कर चुका था।

ब्रिटेन का भुगतान सन्तुलन उसके अनुकूल हो क्योंकि उसे २७५ मिलियन पौण्ड प्रति वर्ष अन्य देशों में संचालित सैनिक गतिविधियों पर व्यय करना होता है तथा इससे भी कुछ अधिक राशि वह अर्द्ध-विकसित एवं अविकसित राष्ट्रों को दी जाने वाली सहायता आदि पर व्यय करता है। इसके अतिरिक्त अन्य देशों में ब्रिटिश नागरिकों द्वारा किये जाने वाले *पूंजी विनियोगों के लिए भी उसे लगभग इतनी ही राशि की* आवश्यकता होती है।

जहाँ तक दृश्य आयात-निर्यात का प्रश्न है, ब्रिटेन का व्यापार का सन्तुलन उसके विपक्ष में है किन्तु इस कमी को वह अदृश्य आयातों (invisible imports) की तुलना में अदृश्य निर्यातों (invisible exports) के आधिक्य से पूरा करता रहा है। इस प्रकार सन् १९५० से १९५९ तक उसका भुगतान शेष उसके पक्ष में ही रहा है। किन्तु उसके बाद आयातों के बढ़ जाने से भुगतान सन्तुलन उसके विपक्ष में *हो गया। सन् १९६४ के बाद से स्थिति अधिक बिगड़ गयी और* इसमें सुधार लाने के उद्देश्य से उसने आयात पर ड्यूटी में १५ प्रतिशत की वृद्धि की। सन् १९६४ में ब्रिटेन के भुगतान सन्तुलन में ७४४ मिलियन पौण्ड का घाटा था। इसे पूरा करने के लिए उसने अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा-कोष (I M F.) से ३५७ मिलियन पौण्ड की धनराशि ग्यारह अन्य देशों की मुद्राओं में उधार ली। सन् १९६५ में भी स्थिति में सुधार नहीं हो सका और उसे अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष से ५०० मिलियन पौण्ड की धनराशि मई सन् १९६५ में उधार लेनी पड़ी।

सन् १९६७ में गोदियों की हड़ताल (Dock strikes) तथा मध्य पूर्व में अशान्ति के कारण ब्रिटेन के भुगतान सन्तुलन की स्थिति और बिगड़ गयी और उसे अपने पौण्ड का अवमूल्यन करना पड़ा। सन् १९४९ के बाद ब्रिटेन द्वारा किया गया यह दूसरा अवमूल्यन था। ब्रिटिश पौण्ड का विनिमय मूल्य इस अवमूल्यन के बाद २८० डालर से घटकर केवल २४० डालर रह गया। साथ ही व्यापार और भुगतान सन्तुलन को पक्ष में लाने के लिए आयातों को कम करने और निर्यातों को बढ़ाने के उद्देश्य से वित्तीय एवं कर नीतियों में भी अनुकूल परिवर्तन किये गये। सन् १९६८ में *अन्तरराष्ट्रीय स्वर्ण संकट के कारण ब्रिटेन द्वारा अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा* कोष (I M F) तथा यूरोप के बारह केन्द्रीय बैंकों से विदेशी मुद्रा में पर्याप्त ऋण लेने की व्यवस्था की गयी।

यह संकट अभी टला नहीं है और स्टर्लिंग के विनिमय-मूल्य को कायम रखने में ब्रिटेन को बड़ी कठिनाई हुई है। फिर भी अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा-कोष अन्य देशों के केन्द्रीय बैंकों तथा यू० एस० ए० के आयात-निर्यात बैंक के सहयोग से अपनी स्थिति को बनाये हुए है। विदेशी मुद्रा में ४,००० मिलियन पौण्ड तक का ऋण ब्रिटेन को इन संस्थाओं से उपलब्ध किये जाने की व्यवस्था है।

(१५) अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध—ब्रिटेन विश्व के अन्य विकासशील देशों को कई प्रकार से सहायता दे रहा है। यह सहायता लम्बी अवधि के ऋणों

एव अनुदानो (grants) के रूप मे दी जाती है। इनके लिए ब्रिटेन की सरकार विपक्षीय एव बहुपक्षीय समझौते करती है। सन् १९४८ से १९६५ तक ब्रिटेन के द्वारा सहायता के ६० समझौते किये गये जिनके अनुसार सहायता का कुल मूल्य लगभग ४२६ मिलियन पौन्ड होता है। इनमे से २९ समझौतो का सम्बन्ध भारत से था जिसे इस अवधि म लगभग ३३५·५ मिलियन पौण्ड की सहायता ब्रिटेन द्वारा प्रदान की गयी जिसमे ऋण एव अनुदान दोनो ही शामिल हैं। अन्य समझौते पाकिस्तान, नाइजीरिया एव यूगोस्लाविया से किये गये। दीर्घकालीन ऋण २५ वर्ष तक की अवधि के लिये जाते हैं जिस पर ब्याज की दर बहुत कम होती है और किस्तो का भुगतान ऋण देन के कुछ वर्षों बाद आरम्भ होता है तथा भुगतान की शर्तें यथा सम्भव सरल होती हैं। इसके अतिरिक्त अफ्रीका के राष्ट्रमण्डलीय देशो को भी ब्रिटिश सहायता प्राप्त होती है। राष्ट्रमण्डल विकास निगम[1] राष्ट्रमण्डलीय देशों की विकास योजनाओं के लिए पूँजी की व्यवस्था करता है।

दक्षिण पूर्वी एशिया के आर्थिक विकास म सहयोग देन के उद्देश्य से ब्रिटेन कोलम्बो योजना के अन्तर्गत तकनीकी सहायता प्रदान करता है। कोलम्बो योजना के आरम्भ (सन् १९५१) से लेकर सन १९६६ तक इस योजना के अधीन ब्रिटेन द्वारा लगभग ३०० मिलियन पौण्ड की सहायता प्रदान की जा चुकी है और लगभग ६,००० व्यक्ति तकनीकी प्रशिक्षण के लिए ब्रिटेन आ चुके हैं। अफ्रीका के राष्ट्र-मण्डलीय देशो के लिए एक विशेष तकनीकी सहायता योजना चल रही है। सन् १९६६ म लगभग ७० ००० विदेशी विद्यार्थी ब्रिटेन म शिक्षा प्राप्त कर रहे थे जिसमे से दो-तिहाई विकासशील देशो के थे।

अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं म भी ब्रिटेन ने यू० एस० ए० के बाद सब से अधिक चन्दा दिया है। विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय विकास निगम एव अन्तर-राष्ट्रीय विकास सघ (International Development Association) मे दिये गये चन्दे के अनुसार ब्रिटेन का स्थान विश्व म दूसरा है। ब्रिटेन इन अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं के संस्थापक सदस्यों मे से है।

ब्रिटिश निजी पूँजी का भी अन्य देशो म निरन्तर विनियोग हो रहा है जिससे उन देशों म औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिला है। विकासशील देशो के आर्थिक विकास मे ब्रिटेन द्वारा दी जाने वाली सहायता का महत्त्व इसलिए भी अधिक है कि इसके साथ सैद्धान्तिक आधार पर किसी प्रकार के राजनीतिक प्रतिबन्ध जुड़े हुए नहीं हैं। सन् १९५१ से १९६६ तक ब्रिटेन लगभग २,५०० मिलियन डालर की सहायता अल्प विकसित एव विकासशील देशो को प्रदान कर चुका है।

उपर्युक्त सक्षिप्त विवरण ब्रिटेन की वर्तमान अर्थ-व्यवस्था का एक विहगम चित्र प्रस्तुत करता है। इसके अध्ययन से पाठकों को यह भलीभाँति विदित हो

[1] Commonwealth Development Corporation (C D C)

जायगा कि ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था आज भी कितनी उन्नत, सुदृढ एवं परिपक्व है। पिछली चार सदियों में ब्रिटेन ने अपने राजनीतिक एवं आर्थिक उत्थान के क्षेत्र में अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। दोनों विश्व-युद्धों तथा उनके बीच के काल की भयंकर मन्दी ने ब्रिटेन की राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ता को झकझोर दिया है और बीसवीं शताब्दी में वह अपने विश्व नेतृत्व को खो बैठा है। विश्व रंगमंच पर अमरीका एवं रूस जैसे विशाल देशों के उदय ने उसकी निर्बाध प्रभुता को चुनौती दी है। पिछले बीस वर्षों में उसके राजनीतिक आधिपत्य एवं आर्थिक शोषण से पीड़ित अनेक उपनिवेशों ने स्वतन्त्रता की अभिलाषा से प्रेरित होकर ब्रिटेन के शिकंजे से मुक्त होने के लिए संघर्ष किया किन्तु ब्रिटेन ने शान्तिपूर्ण ढंग से अपने प्रभुत्व का परित्याग करके इन देशों को राजनीतिक सत्ता हस्तान्तरित की। इस प्रकार उसने विश्व के समक्ष एक ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उच्चकोटि की कूटनीति, दूरदर्शिता एवं सहनशीलता का परिचय दिया है। एक-एक करके उसके अधीनस्थ देश स्वतन्त्र हो चुके हैं और इस प्रकार उसके विश्वव्यापी साम्राज्य का पतन उसकी विश्व प्रभुता के स्वप्न को भंग कर चुका है। कच्चे माल के अपार श्रोता एवं निर्मित माल की खपत के लिए प्रसिद्ध औपनिवेशिक बाजार धीरे-धीरे उसके हाथ से निकलते जा रहे हैं। आर्थिक क्षेत्र में अनेक समस्याएँ उसके लिए सिरदर्द बनी हुई हैं। राष्ट्रीय प्रतिरक्षा एवं सैनिक सम्थानों पर बढ़ते हुए निर्यात एवं बढ़ते हुए आयात के कारण उत्पन्न भुगतान असन्तुलन, यूरोपीय साझा बाजार द्वारा उत्पन्न स्थिति, जनसंख्या के अधिक घनत्व एवं निवासियों के ऊँचे जीवन-स्तर के कारण उत्पन्न आय एवं मूल्य-स्तर की समस्याओं में ब्रिटेन की सरकार उलझी हुई है।

इतनी विषम परिस्थितियों के होते हुए भी आज ब्रिटेन अपने विगत गौरव के सहारे वर्तमान जगत में अपनी स्थिति बनाये हुए है। औद्योगिक क्रान्ति, इंगलिश साहित्य एवं संस्कृति विश्व को उसकी महान् देन है जिसके बल पर भविष्य में भी दीर्घकाल तक वह महानता का दावा करता रहेगा।

प्रश्न

1. Examine in detail the geographical factors which have greatly contributed to the commercial and industrial superiority of Great Britain

   उन भौगोलिक कारणों की विवेचना कीजिए जो ग्रेट ब्रिटेन की व्यापारिक एवं औद्योगिक उच्चता में सहायक सिद्ध हुए हैं। (पंजाब, १९६६)

2. Discuss the effects of Gulf Stream on England's economy—agricultural and industrial

   इंग्लैण्ड की कृषि एवं औद्योगिक अर्थ व्यवस्था पर गल्फस्ट्रीम के प्रभावों की विवेचना कीजिए। (राजस्थान, १९६३)

3. Describe in brief the broad features of British Economy to-day.

ब्रिटेन की वर्तमान अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए। (भागलपुर, १९६६)

4. "There is now general agreement in Great Britain that something drastic must be done to stop the rot of economic stagnation." Comment on the nature of this problem and make necessary suggestions

"ब्रिटेन में अब यह सर्व सम्मत मत बन चुका है कि आर्थिक अवरोध को समाप्त करने के लिए कुछ विशेष प्रयत्न किये जाने चाहिए।" इस समस्या की प्रकृति की विवेचना कीजिए और आवश्यक सुझाव दीजिए।

(इलाहाबाद, १९६२)

२
ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि
(Historical and Social Retrospect)

जिस इगलैंड के आर्थिक विकास का आज हम अध्ययन करते हैं वह कई जातियों के सम्मिश्रण और परिपोषण से बना राष्ट्र है। ईसा-युग के प्रारम्भ में इगलैंड जगली जातियो से आबाद था। इस प्रकार की जातियो मे सेल्ट्स (Celts) और ब्रिथन्स (Brythons) या ब्रिटन्स (Britons) नामक जातियां मुख्य थीं। इस पिछली जाति से ही सम्भवतया 'ब्रिटेन' नाम का आविर्भाव हुआ है।

इस प्रकार की आदिम जातियों पर ईसा से एक शताब्दी पूर्व रोमन लोगों ने विजय प्राप्त की। रोमन लोगो ने ब्रिटेन पर पांच सौ वर्षों तक राज्य किया। रोमन शासन काल में ब्रिटेन रोमन सस्कृति एव सभ्यता से प्रभावित हुआ, किन्तु विलासी होने के कारण रोमन लोग अपने साम्राज्य को बनाये नहीं रख सके। ईसा के पश्चात पाँचवीं शताब्दी में रोमन साम्राज्य सकटग्रस्त हो गया तथा धीरे-धीरे उसका पतन हो गया। इगलैंड मे रोमन साम्राज्य के अन्त ने अन्य विदेशी आक्रमणकारियों के लिए द्वार खोल दिये। अत जर्मनी मे रहने वाली जगली जातियो ने इगलैंड पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। ये जातियां जो रोमन साम्राज्य के बाद इगलैंड गयी, वहाँ बस गयी तथा बाद मे 'ऐंग्लो-सैक्सन' (Anglo Sexon) 'इगलिश' या 'आग्ल' नाम से विख्यात हुई। इन्होने ब्रिटेन जाति को वेल्स के पश्चिम मे खदेड दिया और डरहम (Darham) के युद्ध (५७७ ए०डी०) मे अन्तिम रूप से ब्रिटेन जाति को पराजित कर दिया गया। इगलिश जाति इस प्रकार देश की स्वामी हो गयी। अत बाद मे यह देश इगलिश जाति के शासन करने के कारण इगलैंड कहलाया। यह जाति इस नवीन देश मे छोटे-छोटे कई समुदायो और राज्यो में वहाँ बँट गयी। इगलिश जाति एक लडाका जाति (Warrior race) थी। ब्रिटन लोगो को पराजित करने के पश्चात जब कोई लडने के लिए न रहा तो वह आपस मे लडने लगीं। छोटे-छोटे राज्य ८०२ A D तक बडे राज्यो द्वारा जीत लिए गये और

वे एक-दूसरे से एकीकृत किये जाकर आगबर्ट (Egbert) के नेतृत्व मे आग्ल साम्राज्य का निर्माण करने मे सफल हुए ।

इस इगलिश जाति पर ९वी तथा १०वी शताब्दी मे डेनमार्क और नार्वे के लोगो ने हमला करना आरम्भ कर दिया और इस प्रकार ये अधिक समय तक शातिपूर्वक न रह सके। नवी शताब्दी तक तो इन आक्रमणकारियो मे से कुछ इगलैड के पूर्वी भागो म बसने लगे क्योकि वे देश की प्राकृतिक सम्पन्नता से प्रभावित थे । इसी प्रकार डेनिश लोगो की आक्रमण की धारा को अधिक समय तक रोका नही जा सका । यह ठीक है कि इगलिश लोग अपने सम्राट एल्फ्रेड के नेतृत्व मे बहादुरी से लडे और डेनिश लोगो को अस्थायी रूप से देश से निकालने और खदेडने मे सफल हुए, किन्तु एल्फ्रेड महान की मृत्यु के पश्चात डेनिश लोगो का इगलैड पर अधिकार हो गया ।

कुछ ही समय पश्चात डेनिश और नार्वेजियन लोगो की जो शाखा फ्रास जाकर बस गयी थी उस **नॉरमैन (Norman) या नारमण्डी (Narmandi)** निवासी-जाति ने अपने नेता विलियम (जोकि विलियम विजेता तथा विलियम प्रथम के नाम से विख्यात था) के नेतृत्व मे इगलैंड पर आक्रमण किया और सन १०६६ म इगलैंड पर विजय प्राप्त कर शासनारूढ हो गयी । नॉरमन या नारमन्डी जाति की विजय इगलैंड पर अतिम विजय थी, उसके पश्चात द्वितीय विश्व-युद्ध (१९३९-४५) तक इगलैंड साधारणतया आक्रमणो की विभीषिका से मुक्त रहा ।

इस ऐतिहासिक पर्यवेक्षण स यह स्पष्ट है कि **रोमन, जर्मन, डेनिश** और **नार्वेजियन** तथा **नॉरमन** जातियो के निरन्तर आक्रमणो और आवास न आज के इगलैड को जन्म दिया है । डेनिश जाति ने न सिर्फ इगलैड को ही जीता बल्कि उसने बाह्य जीवन और व्यापार का प्रथम बार श्रीगणेश किया जो बाद मे आर्थिक विकास की आधारशिला बन गया । डेनिश लोग प्रमुख व्यापारी थे और उन्ही के कारण शहरो का निर्माण व्यापार की उपयुक्तता के दृष्टिकोण स किया गया ।

नॉरमन विजय (Norman Conquest)

नॉर्मन विजय से ही इगलैड के आर्थिक विकास का अध्ययन प्रारम्भ होता है और यही से हमको विश्वस्त और निश्चित विवरण उपलब्ध होते है । यह तो ठीक है कि आर्थिक जीवन के विकास का प्रारम्भ नॉर्मन विजय स पूर्व भी हो गया था परन्तु जो सूचनाएँ मिलती हैं उनमे अस्पष्टता और अनिश्चितता के तत्त्व विद्यमान हैं । विजय के समय तथा उसके पश्चात का सरकारी अधिकृत विवरण 'डूम्सड बुक' (Domesday Book) नामक जनगणना पुस्तक मे प्राप्त होता है । इस जनगणना का आयोजन सन् १०८५ A D म विलियम प्रथम ने किया था । इस जनगणना का प्रधान उद्देश्य कर-भार की क्षमता मालूम करना था क्योकि विलियम निवासियो पर लगने वाले डेनगेल्ड (Danegeld) नामक कर से होने वाली आय का अनुमान लगाना चाहता था । डेनगेल्ड वास्तव मे डेनिश आक्रमणो से बचने के लिए आर्थिक साधन

जुताने हेतु लगाया गया कर था। बाद में यह कर बाह्य आक्रमण से बचाव के रूप में लगाया जाने लगा।

डूम्सडे बुक (Domesday Book)

डूम्सडे बुक जो लेटिन भाषा में लिखी गयी है, इसमें प्रशासनिक इकाइयों का विवरण देती है। उदाहरणार्थ इंगलैण्ड काउन्टीज में विभाजित था और प्रत्येक काउन्टी (County) भी उपविभागों में बँटी हुई थी तथा प्रत्येक उपविभाग मेनर (Manor) अथवा गाँवों में पुनः उपविभाजित था। इसके साथ-साथ कृषि की दशा, शहरों की दशा, भूमि का वर्गीकरण, विदेशी व्यापार औद्योगिक दशा का विवरण भी इसमें ज्ञात होता है।

पाइप रोल्स (Pipe Rolls)

बारहवीं शताब्दी से हमको दूसरा विश्वसनीय विवरण उपलब्ध होता है जिसमें शाही कोष के हिसाब-किताब हैं, उन्हें पाइप रोल्स नाम से पुकारा जाता था। इसमें भी कस्टम, चुंगी इत्यादि का विवरण उपलब्ध होता है।

पुरानी अर्थ-व्यवस्था

नार्मन विजय के समय इंगलैण्ड में सामन्तवाद अवश्य ही अस्तित्व में था। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में मूलतः इंगलैण्ड का समाज दो भागों में विभाजित था प्रथम वह वर्ग जो सम्पूर्ण भूमि और सम्पत्ति के अधिकारों से सम्पन्न था और दूसरा वह वर्ग जो स्वयं ही दूसरों की सम्पत्ति था। अधिक स्पष्ट रूप से यदि कहा जाय तो यह कह सकते हैं कि स्वतन्त्र और परतन्त्र रूप में दो वर्ग अस्तित्व में थे। कुछ परिस्थितियों के परिवर्तन से ही स्वतन्त्र और परतन्त्र वर्ग में परिवर्तन हो जाता था। यह परिवर्तन जिस पद्धति से किया जा सकता था उसे कमेण्डेशन (Commendation) पद्धति के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत स्वतन्त्र व्यक्ति, आपत्ति के समय अपने से अधिक सम्पत्तिवान व्यक्ति की शरण लेता था। इस सरक्षण के फलस्वरूप उसे लगान या व्यक्तिगत सेवाएँ देनी पड़ती थी। इस प्रकार एक स्वतन्त्र व्यक्ति उपर्युक्त प्रक्रिया से अर्द्ध-गुलाम हो जाता था। सामन्तवाद अपने प्रारम्भिक रूप में राजा या स्वामी के प्रति सैनिक सेवाओं के रूप में प्रकट हुआ। ये सेवाएँ अलग-अलग प्रकार की हो सकती थी।

नॉर्मन विजय के पश्चात् विलियम प्रथम (William First) ने सामन्तवाद पर पर्याप्त जोर दिया। उसने पुराने सामन्तवाद को संशोधित रूप में प्रस्तुत किया। विलियम प्रथम चूँकि नारमण्डी का ड्यूक था अतः ज्योंही उसने इंगलैण्ड पर विजय प्राप्त की, वह नारमण्डी और इंगलैण्ड का शासक हो गया और उसका स्पष्ट प्रभाव यह पड़ा कि लोगों का आवागमन इंगलिश चैनल के द्वारा अधिक बढ़ा। विलियम के आगमन से निर्माण, संगठन तथा विजातीय तत्त्वों के अद्भुत सम्मिश्रण को प्रोत्साहन मिला।

आधुनिक इंगलैण्ड के निर्माण में देशी विदेशी प्रभावों का विश्लेषण

आधुनिक इंगलैण्ड यूरोपीय जातियों के आक्रमण, प्रत्याक्रमण तथा सामाजिक

सधानों का एक सतत इतिहास है। इस द्वीप की आदिम जाति विदेशियों से सम्बन्धित हुई और रक्त का यह सम्मिश्रण आधुनिक इगलैण्ड को जन्म दे सका। इस रूप में कुछ प्रभाव उल्लेखनीय हैं

(१) धार्मिक युद्ध (Crusades)—धार्मिक युद्ध इगलैण्ड और यूरोप के ईसाई राष्ट्रों की लम्बी कहानी है। इस युद्ध में प्रवृत्त रहने से विदेशियों से इगलैण्ड का सम्पर्क स्थापित हुआ। ये धार्मिक युद्ध सन् १०९६ से १२७० तक के काल में विभिन्न अवसरों पर लडे गये। ईसाई धर्म प्रचारकों ने यूरोप के लोगों को यरुशलम की प्राप्ति के लिए (जो ईसा का जन्मस्थान माना जाता है) उकसाया। इस रूप में धार्मिक युद्धों का जहाँ धार्मिक और राजनीतिक महत्त्व है वहाँ व्यापारिक विकास में भी इनका महत्वपूर्ण योग है। इटली के नगरों (जिनवा और वेनिस) से इनका सम्पर्क स्थापित हुआ और इन इटलीवासियों द्वारा इगलैण्ड के दक्षिणी तट पर व्यापार बढाया गया। इन धार्मिक युद्धों के अन्तगत ही कुस्तुन्तुनिया से, जो रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत रहा पहला सम्पर्क इगलैण्ड वालों का स्थापित हुआ।

(२) विदेशी प्रवासी (Foreign Immigrants)—नॉरमन विजय के कारण विदेशियों के झुण्ड यहाँ आने लगे। फ्रासीसी राजकुमारी मेटिल्डा के इगलैण्ड की राजरानी के रूप में आने पर भी फ्रासीसी व्यक्तियों का आवागमन अधिक बढ़ा। फ्लेमिंग्ज (Flemings) नामक कारीगरों की कुशल जाति भी इसी समय के लगभग यूरोपीय देशों से धार्मिक प्रताडना पर इगलैण्ड में आ बसी। इस प्रकार नॉरमन विजय और उसके बाद का समय निर्माण और कला का समय कहा जा सकता है। इसी समय गिरजाघर, किले और अन्य भवन-निर्माण कार्य भी सम्पादित होने लगे।

(३) मठ (Monastries)—ईसाई धर्म के प्रचार के लिए नॉरमन शासन काल में प्रचारकों को पर्याप्त भूमियाँ दी गयी, धीरे-धीरे मठों के निर्माण को प्रोत्साहन मिला और इनके पास पर्याप्त धन भी सग्रहीत हो गया। इन मठों ने अप्रत्यक्ष रूप से व्यापार और उद्योगों को प्रोत्साहन दिया।

(४) यहूदियों का प्रवास (Immigration of Jews)—सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाली जाति के रूप में यहूदियों का नाम उल्लेखनीय है जो ठीक इसी समय व्यापार और पूँजी उधार देने के कार्य से प्रेरित हो इगलैंड में आ बसी। यद्यपि ईसाई धर्म में ब्याज लेना और व्यापार करना निषेधात्मक कार्य थे परन्तु बढ़ती हुई आर्थिक आवश्यकताओं ने व्यापार और पूँजी के नियोजन के कार्य को प्रोत्साहित किया।

इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कारीगरों पादरियों और यहूदियों ने इगलैंड के जन-जीवन को व्यापार, उद्योग, कृषि एव अन्य कार्य कलापों की प्रेरणा दी।

एक राष्ट्र के रूप में इगलैंड का विश्व नेतृत्व

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी की आकस्मिक भौगोलिक यात्रा ने इगलैंड

की आर्थिक व्यवस्था को बहुत अधिक प्रभावित किया। एक सगठित राष्ट्र के रूप मे ही इन खोजो का लाभ प्राप्त किया जा सकता था। व्यापारियो और साहसियो को राजकीय सरक्षण मे प्रोत्साहन दिया गया। एकाधिकार लेने वाली सस्थाओं के रूप में व्यापारिक सस्थाएँ बनायी गयीं जो विदेशी व्यापारियो के अन्याय का सामना कर सकें। इस प्रकार का ज्वलन्त उदाहरण जर्मन व्यापारियो के विरुद्ध हेनसेटिक लीग (Hanesatic League) की स्थापना के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। बाद मे राष्ट्रीयता का प्रवेश भौगोलिक खोजों और उपनिवेशो की प्राप्ति से प्रबल वेग मे आगे बढ सका। सदा से "व्यापार ध्वजा का अनुगामी[1] रहा है।" इस कथन ने यूरोप के अनेक राष्ट्रो मे कठोर प्रतियोगिता को जन्म दिया और उनमे यह भावना प्रबल हो उठी कि जो राष्ट्र धनवान और शक्तिसम्पन्न है वही नये बाजारो एव मडियो को हथिया सकता है। इतिहास बताता है कि डच, फ्रान्सीसी, पुर्तगाली और आग्ल जाति ने इन विगत तीन-चार शताब्दियो मे एशिया और अफ्रीका मे इन उपनिवेशो और बाजारो की स्थापना के लिए क्या नहीं किया। इगलैंड अपने राष्ट्रीय चारित्र्य से स्वतन्त्र व्यापार नीति का पालन करते हुए एक विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य का निर्माण कर सका जिसके लिए जन-साधारण मे कहावत प्रचलित रही थी कि 'आग्ल साम्राज्य इतना विशाल है और विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ है कि उसमे सूर्य कभी अस्त नहीं होता।' यह साम्राज्य द्वितीय विश्व-युद्ध (सन् १६३६-४५) तक अपने अस्तित्व मे रहा और इगलैंड विश्व नेता के रूप मे प्रतिष्ठित रहा यद्यपि अब धीरे-धीरे विश्व के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक जीवन मे परिवर्तन होने और जन-जागरण के प्रवाह मे इगलैंड को अपने उपनिवेशो से हटना पडा है और उसे अन्य देशो को राजनीति स्वतन्त्रता प्रदान करनी पडी है परन्तु इसमे कोई सशय नहीं कि मूलत इगलैंड का आर्थिक विकास 'व्यापारे वसते लक्ष्मी' के सिद्धान्त को ब्रह्म वाक्य मानकर हुआ है।

उन्नीसवी शताब्दी का महत्त्व
(Importance of the 19th Century)

उन्नीसवी शताब्दी फ्रान्सीसी स्वतन्त्र विचारधारा और व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की भावनाओं तथा नवीन मशीनी आविष्कारो का प्रतिफल थी। अठारहवीं शताब्दी के अन्त मे दो महान घटनाएँ हुई जिनमे प्रथम थी फ्रास की राज्य क्रान्ति और दूसरी थी इगलैंड की औद्योगिक क्रान्ति। जहाँ एक ओर फ्रास की राज्य क्रान्ति ने राजनीतिक एव वैधानिक स्थिति मे सुधार करके एक नवीन जनतन्त्रीय व्यवस्था को जन्म दिया, वहाँ दूसरी ओर इगलैंड की औद्योगिक क्रान्ति ने आर्थिक जीवन की प्रक्रिया मे आमूल परिवर्तन करके सामन्तवादी दायरे से परे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के नये-नये मार्ग खोल दिये। अत यह कहना अधिक युक्तिसगत होगा कि इन दोनो

---

[1] Trade follows the Flag

महान परिवर्तनों ने विश्व मानव जाति की और विशेषत यूरोप की काया पलटी दी।

अठारहवी शताब्दी से पूर्व ही विश्व में ऐसी घटनाएँ घटित हो चुकी थी जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से अथवा परोक्ष रूप से यूरोप से था और जो यूरोप की राजनीति एव अर्थनीति को बहुत अधिक प्रभावित कर चुकी थी। ये घटनाएँ सक्षेप मे इस प्रकार थी

(१) भारत की सामुद्रिक मार्ग से खोज।
(२) नयी दुनिया (अमरीका) की खोज।
(३) नवीन व्यवसाय और व्यापार का समारम्भ।
(४) यूरोपीय राष्ट्रो के मध्य औपनिवेशिक सघर्ष एव प्रतिस्पर्द्धा।
(५) नवीन व्यापारिक जाति का उदय।
(६) पूँजी का सचय और प्रसार।

प्रत्येक शताब्दी अपने नेतृत्व के लिए किसी राष्ट्र की अपेक्षा रखती है। इस रूप मे सोलहवी शताब्दी मे स्पेन और पुर्तगाल विश्व और यूरोप के प्रथम श्रेणी के राष्ट्र थे। सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी मे हालैण्ड और फ्रास क्रमश प्रथम श्रेणी के राष्ट्र रहे। उन्नीसवी शताब्दी मे इगलैण्ड का औद्योगिक, व्यापारिक और साम्राज्यवादी क्षेत्र मे सर्वप्रथम स्थान हो गया। जबकि फ्रास, जर्मनी, सोवियत रूस, सयुक्त राज्य अमरीका, औद्योगिक प्रगति की दौड मे इगलैण्ड से एक शताब्दी पीछे रह गये। और अब बीसवी शताब्दी मे यह नेतृत्व ब्रिटेन के हाथ से निकल कर सयुक्त राज्य अमरीका तथा रूस के हाथो मे चला गया है।

(१) उन्नीसवी शताब्दी की घटनाओ का इगलैण्ड के आर्थिक एव सामाजिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। कृषि क्रान्ति ने इगलैण्ड के कृषको को गाँवो से खदेडकर शहरो मे ला पटका और वे सब औद्योगिक क्रान्ति के बाद आरम्भ किये गये नये उद्योगो मे जीविकोपार्जन करने लगे। इससे सामन्तवादी प्रतिबन्धो की समाप्ति हुई और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का एक नया युग आरम्भ हुआ। औद्योगिक विकास के प्रारम्भिक काल मे इगलैण्ड के श्रमिक को सिद्धान्तत स्वतन्त्रता अवश्य मिली हुई थी किन्तु उस स्वतन्त्रता का व्यावहारिक मूल्य कुछ नही था। औद्योगिक पूँजीवाद समाज मे दो ऐसे निश्चित वर्गो को जन्म दे चुका था जिनके हितो मे आकाश-पाताल का अन्तर था। प्रथम वर्ग पूँजीपतियो का था जिनकी शक्ति बहुत अधिक थी और इस कारण वे श्रमिको का शोषण करने की स्थिति मे थे। दूसरा वर्ग साधारण श्रमजीवियो का था जो निरीह एव असगठित थे और जिन्हे पूँजीपतियो की कृपा पर निर्भर रहना होता था। शोषण एव दमन से पीडित होकर इगलैण्ड के श्रमिको ने सगठन एव सघर्ष का मार्ग अपनाया और एक लम्बी अवधि के बाद वे जनता और सरकार दोनो की सहानुभूति अपनी ओर आकर्षित करने मे सफल हुए।

वर्ग सघर्ष ने सामाजिक एव आर्थिक न्याय पर विचार करने के लिए लोगो

को बाध्य कर दिया और इस प्रकार औद्योगिक पूंजीवाद ने ही समाजवादी सिद्धान्तों के बीज प्रस्फुटित हुए। इंगलैण्ड ने समाजवादी विचारों को फलने-फूलने का समुचित अवसर देकर उदारता का परिचय दिया। संयोगवश इसी शताब्दी में आधुनिक समाजवाद के जनक कार्ल मार्क्स ने भी इंगलैण्ड में रहकर ही अपने विचारों को लिपिबद्ध किया।

(२) नवीन औद्योगिक व्यवस्था से उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई। मनुष्यों का स्थान मशीनों ने ले लिया। फलत भारी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन आरम्भ हो गया जिनकी खपत के लिए उद्योगपतियों तथा सरकार को नवीन बाजार एवं मण्डियों की खोज की चिन्ता होने लगी। वैज्ञानिक आविष्कारों ने परिवहन के नये और शीघ्र साधन सुलभ कर दिये। भाप से चलने वाले जगी जहाजों में भर-भर कर ब्रिटिश माल अन्य देशों की मण्डियों में भेजा जाने लगा।

(३) व्यापार का क्षेत्र अब राष्ट्रीय न रहकर अन्तरराष्ट्रीय हो गया। विश्व के राष्ट्र इससे पूर्व अलग-अलग राष्ट्रीय दायरों में बन्द थे किन्तु अब वे एक दूसरे के सम्पर्क में अधिकाधिक आने लगे। इंगलैण्ड के राजनीतिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध विश्व के प्राय सभी भागों में स्थापित हो गये।

(४) राष्ट्रीय अर्थ नीतियों का नवीन ढंग से निर्धारण किया जाने लगा। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने संरक्षण की नीति के बजाय स्वतन्त्र व्यापार (Free Trade) अथवा निरपेक्षता की नीति (Policy of *Laissez Faire*) पर जोर देना आरम्भ कर दिया। ब्रिटेन को उस समय इसकी आवश्यकता भी थी क्योंकि स्वतन्त्र व्यापार की नीति के द्वारा ही वह अन्य देशों से कच्चा माल प्राप्त करके उनके बाजारों में निर्मित माल बेच सकता था। इसके अतिरिक्त उन्नीसवीं शताब्दी में आर्थिक दृष्टि से ब्रिटेन की स्थिति एकाधिकारी के समान थी क्योंकि उस समय तक विश्व में उसका कोई प्रतिद्वन्दी नहीं था।

(५) स्वेज नहर के बन जाने से ब्रिटेन की स्थिति और भी उत्तम हो गयी। सुदूरपूर्व के उपनिवेश उसके और निकट आ गये और इस प्रकार यात्राओं में लगने वाले समय एवं व्यय में कमी हो गयी।

(६) इस अवधि में ब्रिटेन ने अपनी राजनीतिक सत्ता का उपयोग व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाने में किया। यही नहीं व्यापारिक सम्बन्धों के सहारे वह अपनी राजनीतिक सत्ता को भी सुदृढ करने में सफल हुआ। राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभुता की इस होड में ब्रिटेन ने यूरोप के अन्य सभी राष्ट्रों को पछाड दिया। फ्रान्स, डेनमार्क, हालैण्ड, जर्मनी, इटली एवं रूस आदि उसकी रण-कुशलता, कूटनीति तथा व्यवहार-कुशलता के आगे न टिक सके।

(७) ब्रिटेन में जैसे-जैसे उद्योग और व्यापार बढ़ा, उसकी आय में भी उसी प्रकार वृद्धि होने लगी। इस बढ़ी हुई आय में जन-साधारण को भी हिस्सा बँटाने का मौका मिला यद्यपि इसके लिए उन्हें लम्बी अवधि तक संघर्ष करना पड़ा।

ब्रिटेन से लोगो की गरीबी धीरे-धीरे दूर हुई और उनके जीवन स्तर मे क्रमश सुधार होता गया।

(८) औद्योगिक क्रान्ति एव आर्थिक विकास के साथ-साथ ब्रिटेन के सामाजिक जीवन मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। कृषि एव कुटीर उद्योगो पर आधारित प्राचीन अर्थ-व्यवस्था उखड गयी और उसके स्थान पर एक सर्वथा नयी औद्योगिक व्यवस्था का जन्म हुआ। इस नवीन औद्योगिक व्यवस्था ने इगलैन्ड के समाज मे नये रीति-रिवाजो, नयी भावनाओ, नये विश्वासो एव नयी सस्थाओ को जन्म दिया। इससे इगलैन्ड के सामाजिक और सास्कृतिक जीवन मे निखार आ गया और इगलैन्ड के नागरिक विश्व के अत्यन्त सुखी एव सम्पन्न नागरिक बन गये।

अत उन्नीसवी शताब्दी ब्रिटेन के लिए एक महत्त्वपूर्ण शताब्दी रही है जिसका गौरवमय समय इगलैण्ड की सर्वोच्च औद्योगिक एव राजनीतिक सत्ता का प्रतीक माना जा सकता है।

ब्रिटेन का सामाजिक वातावरण

यह पहले ही कहा जा चुका है कि आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक अथवा भौगोलिक परिस्थितियो की अनुकूलता एव प्रचुरता ही पर्याप्त नही होती। इनके साथ साथ एक उन्नत तथा प्रगतिशील सामाजिक वातावरण का होना भी अनिवार्य है। भौगोलिक एव सामाजिक वातावरण दोनो एक दूसरे के पूरक है, और जब तक इन दोनो का उचित समन्वय नही होता, आर्थिक विकास की प्रक्रिया आरम्भ नही हो सकती। भौतिक वातावरण प्रकृति की देन है जबकि सामाजिक वातावरण स्वय मानव की सृष्टि होती है। प्राकृतिक परिस्थितियों का वितरण विश्व मे समान रूप से नही हुआ है। उनमे पर्याप्त भिन्नता है, किन्तु वे जैसी भी हैं, राष्ट्र को उसे स्वीकार करना होता है क्योकि वह उनमे व्यापक परिवर्तन नही कर सकता। किन्तु सामाजिक परिस्थितियो को वह स्वय प्रयत्न करके बदल सकता है और इस प्रकार भौतिक सम्पदा का अपने विकास के लिए अधिकाधिक उपयोग कर सकता है। श्री कुजनेट्स (Kuznets) के अनुसार, "औद्योगिक दृष्टि से विकसित किसी राष्ट्र की मुख्य पूंजी उसकी भौतिक सम्पदा न होकर वैज्ञानिक खोज, अनुसन्धान एव परीक्षणों के आधार पर सगृहीत ज्ञान-राशि, तथा उसकी जनता द्वारा ऐसी ज्ञान-राशि को प्रभावपूर्ण रीति से उपयोग मे लाने की क्षमता तथा प्रशिक्षण है।"[1] ब्रिटेन

---

1 The major capital stock of an industrially advanced nation is not its physical equipment, it is the body of knowledge amassed from tested findings and discoveries of empirical science and the capacity and training of her population to use this knowledge effectively—Prof. Kuzents in his book, '*Towards a Theory of Economic Growth*'

की जनता ने सत्रहवी एव अठारहवी शताब्दी मे न सिर्फ वैज्ञानिक अनुसन्धान, खोज एव परीक्षण के आधार पर इस ज्ञान-पुज का सग्रह किया बल्कि उसका क्रियात्मक उपयोग करने की योग्यता का भी विकास किया जिससे अठारहवी शताब्दी मे वह विश्व को अनेक आश्चर्यजनक आविष्कार दे सका।

वैज्ञानिक अनुसन्धान एव परीक्षणो के आधार पर ज्ञान का सचय एक सतत प्रक्रिया है जो नवीनता (innovation) को जन्म देती है और जिससे आर्थिक विकास की प्रक्रिया को निरन्तर आगे बढने का अवसर मिलता है। ब्रिटेन ने इस मूलभूत तथ्य की उपयोगिता को बहुत पहले ही अनुभव कर लिया और उसे अपने सामाजिक जीवन मे आत्मसात करने का भरसक प्रयत्न किया। आर्थिक विकास मे ब्रिटेन की असाधारण सफलता का यह एक महत्त्वपूर्ण रहस्य है जिसका अनुकरण करके विश्व के अन्य राष्ट्रो ने भी बाद मे अपनी सामाजिक परिस्थितियो मे सुधार किया और इस प्रकार वे भी आर्थिक विकास की ओर अग्रसर हुए। एक प्रगतिशील समाज मे जिसके सदस्यो मे आगे बढने की योग्यता एव विकास करने की उत्कट अभिलाषा है, आर्थिक विकास के बीज जल्दी पनप सकते हैं। इसके विपरीत एक ऐसे समाज मे—जिसके सदस्यो का दृष्टिकोण रूढिवादी एव भाग्यवादी है, जो अज्ञान, अन्ध-विश्वास एव निराशा के अन्धकार से घिरे हुए हैं, तथा जो अपनी सामाजिक रीतियो एव कुरीतियो मे इस प्रकार उलझे हुए हैं कि उन्हे विश्व मे अपनी स्थिति का कोई आभास ही नही है—आर्थिक विकास करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है।

सास्कृतिक एव राजनीतिक दृष्टि से अठारहवीं शताब्दी मे फ्रास की स्थिति ब्रिटेन की अपेक्षा अधिक सुदृढ थी और वहाँ की राज्य क्रान्ति ने जनसाधारण को स्वतन्त्रता और समानता का पाठ भी पढाया था, किन्तु फिर भी वह इगलैण्ड से पहले आर्थिक विकास न कर सका, क्योकि राजनीतिक उथल-पुथल और आर्थिक अव्यवस्था के कारण फ्रास का सामाजिक वातावरण विकास के लिए उपयुक्त दशाओ से वचित था। जर्मनी की भी यही दशा रही और मध्य यूरोपीय देशो मे हुए प्राय प्रत्येक सघर्ष ने जर्मनी को प्रभावित किया जिससे उस देश का समाज उस समय इस ओर अधिक ध्यान न दे सका। यह प्रेरणा जर्मनी मे इगलैण्ड के उत्थान से प्रभावित होकर ही उत्पन्न हुई किन्तु तब तक इगलैण्ड यूरोप के अन्य देशो को पीछे छोडकर उन्नति के शिखर पर पहुँच चुका था। ब्रिटेन के आर्थिक विकास मे जिन सामाजिक परिस्थितियो ने योग दिया वे इस प्रकार थीं .

(१) **निवासियो का देश-प्रेम एव उत्साह**—यह सर्वविदित है कि रोमन लोगो के आने तक ब्रिटेन अत्यन्त पिछडे हुए निवासियो का देश था। रोमन लोगो के पश्चात एग्लो सेक्सन, जर्मन, नॉरमन एव डेनिश जाति के लोग ब्रिटेन मे आये और वही बसते रहे। ग्यारहवी शताब्दी तक आक्रमण एव प्रत्याक्रमण का यह क्रम ब्रिटेन मे चलता रहा और सन् १०६६ मे नॉरमन जाति की विजय के बाद ही यह सिलसिला समाप्त हुआ और उसके बाद ही यह राष्ट्र एक सूत्र मे बँध सका। धीरे-

धीरे से जातीय भावनाएँ अतीत के गर्भ मे विलीन हो गयी और विभिन्न जातियो के सम्मिश्रण से वहाँ ऐसी जाति का जन्म हुआ जो एक सूत्र मे बँधी हुई थी और जिसमे अनेक जातियो के गुणो का समावेश था। इन उच्चजातीय गुणो ने ब्रिटिश लोगो को विश्व-विजय, अन्तरराष्ट्रीय व्यापार एव औद्योगिक विकास की भावनाओं से प्रेरित किया और वे देश-प्रेम एव देश के उत्थान से ओतप्रोत होकर बडे-बडे जोखिम एव साहस के कार्य सफलतापूर्वक कर सके।

(२) सुदृढ प्रशासन—बारहवी शताब्दी तक इगलैण्ड का शासन सुदृढ हो चुका था। धीरे-धीरे वह और अधिक सुदृढ होता गया। राजतन्त्र की छत्रच्छाया मे वह पार्लियामेण्टरी प्रणाली का विकास हुआ। राजतन्त्र एव जनतन्त्र का इतना सुन्दर समन्वय विश्व के अन्य किसी देश मे देखने को नही मिलेगा। सुदृढ शासन एव न्याय व्यवस्था ने वहाँ की जनता को दीर्घकाल तक आन्तरिक शान्ति भोगने का अवसर प्रदान किया और वह विकास के लिए अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई। आज भी ब्रिटेन का सविधान (Constitution) विश्व के सर्वोत्तम सविधानो की श्रेणी मे गिना जाता है। यद्यपि यह परम्परा पर आधारित है फिर भी वहाँ के नागरिक इसका सम्मान करते हैं और न्याय एव व्यवस्था के कायल हैं। ऐसे समाज मे आर्थिक प्रगति होना अत्यन्त स्वाभाविक बात है।

(३) सामाजिक एव धार्मिक उदारता—ब्रिटिश समाज व्यक्ति सम्मान एव व्यक्ति स्वतन्त्रता पर आधारित है जिसमे रूढिवाद के स्थान पर हमे व्यावहारिकता एव उदारता के दर्शन होते हैं। धार्मिक भावनाओ मे वहाँ कट्टरता का लेशमात्र भी अश नही हैं और यही कारण है कि प्रोटेस्टेन्ट मत का ब्रिटेन मे पर्याप्त विकास हुआ। परिणामस्वरूप, धर्म आर्थिक विकास मे बाधक न बनकर एक साधक बन गया। ब्रिटेन के मध्ययुगीन समाज मे रूढिवाद एव अन्धविश्वास कुछ सीमा तक विद्यमान थे, किन्तु मैनोरियल कृषि प्रणाली की समाप्ति के बाद वे धीरे-धीरे नष्ट हो गये। अठारहवी शताब्दी तक जबकि औद्योगिक क्रान्ति के चिह्न इगलैण्ड मे प्रकट हुए, ब्रिटिश समाज धार्मिक एव सामाजिक दृष्टि से इतना उन्नत हो चुका था कि उसने क्रान्ति के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनो का विरोध न करके उनका स्वागत किया। युग के साथ परिवर्तनशील परिस्थितियो के अनुरूप अपने को ढालने की क्षमता उस समय तक वहाँ के समाज मे आ चुकी थी।

(४) शिक्षा एव साहित्य—यो तो पश्चिमी यूरोप के प्राय सभी देशो मे शिक्षा पद्धति मे सुधार के प्रयत्न हो रहे थे किन्तु ब्रिटेन ने शिक्षा के क्षेत्र मे नये प्रयोग सर्वप्रथम आरम्भ किये। बढते हुए अन्तरराष्ट्रीय व्यापार एव औपनिवेशिक साम्राज्य के कारण इग्लिश भाषा एव साहित्य का असर अन्य देशो मे हो रहा था। इन शताब्दियो मे ब्रिटेन ने कथा साहित्य एव काव्य मे उच्च कोटि के लेखक विश्व को प्रदान किये। सुसस्कृत एव सुशिक्षित व्यक्तियो का एक विशाल दल ब्रिटेन को उपलब्ध था जिसके सदस्यो ने विकासशील अर्थ-व्यवस्था द्वारा उत्पन्न नये-नये साधनो को ग्रहण करके विकास को आगे बढाया।

(५) तकनीकी ज्ञान एवं आविष्कार—शिक्षा में वैज्ञानिक अनुसन्धान, परीक्षण एवं अन्वेषण को पर्याप्त स्थान दिया गया। भौतिकी, रसायनशास्त्र एवं गणित के अध्ययन के लिए ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में विशेष सुविधाएँ प्रदान की गयीं। प्राकृतिक विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को खोजने और प्राकृतिक शक्तियों को नियन्त्रित करके उन्हें मानव उपयोग में लाने के कार्य में अच्छी प्रगति हुई। भाप की शक्ति के आविष्कार और उसे प्रयोग में लाने के लिए विभिन्न मशीनों के आविष्कार ने ब्रिटेन को एक ऐसी महान शक्ति प्रदान की जो उस समय तक विश्व में सर्वथा अज्ञात थी। ये आविष्कार छोटे कारीगरों एवं बड़े वैज्ञानिकों दोनों ने ही किये तथा पूँजीपतियों ने इन नवीन विधियों को मूर्तरूप देने के लिए तथा कारखाने स्थापित करने के लिए पूँजी प्रदान की। इन आविष्कारों ने उत्पादन, व्यापार एवं परिवहन के साधनों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये। ब्रिटिश तकनीकी ज्ञान की माँग विश्व भर में होने लगी।

(६) भौतिक उत्थान की अभिलाषा—विकास के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना अत्यन्त आवश्यक होता है। यदि किसी समाज के सदस्य अपनी वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट हैं एवं आर्थिक प्रगति के प्रति न सजग हैं और न उत्सुक हों तो ऐसे समाज का भौतिक उत्थान नहीं हो सकता। सोलहवीं शताब्दी के बाद ब्रिटेन ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा पर्याप्त पूँजी का संग्रह कर लिया था। इस प्रकार एकत्रित पूँजी का समुचित उपयोग करने के लिए ब्रिटेन चिन्तित था। इस समस्या का समाधान उत्पादन के नये तरीकों पर आधारित औद्योगिक विकास ही कर सकता था। उपनिवेशों के विस्तृत बाजारों की माँग को पूरा करने के लिए बड़े पैमाने पर उत्पादन करना ब्रिटेन के लिए आवश्यक हो गया था। यही कारण था कि ब्रिटिश पूँजीपति औद्योगिक विकास के लिए लालायित थे और उसके लिए पर्याप्त पूँजी के विनियोग के लिए तत्पर थे जबकि अन्य देशों में औद्योगिक विनियोग के लिए पर्याप्त पूँजी उपलब्ध नहीं थी।

(७) राजनीतिक सत्ता एवं औपनिवेशिक साम्राज्य—औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ होने तक ब्रिटेन राजनीतिक दृष्टि से विश्व का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बन चुका था और उसके उपनिवेश सभी महाद्वीपों में स्थापित हो चुके थे। अपने स्वयं के साधनों के अतिरिक्त ब्रिटेन को इन उपनिवेशों के साधन तथा बाजार प्राप्त थे। इस परिस्थिति ने ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति की समस्या तथा विशाल उत्पादन की खपत के लिए बाजार की समस्या को हल कर दिया। यह सुविधा कुछ सीमा तक फ्रान्स, स्पेन एवं हालैण्ड को भी प्राप्त थी, किन्तु इन देशों में अन्य आवश्यक अनुकूल दशाओं का अभाव था। अतः ब्रिटेन अपने आर्थिक विकास के लिए राजनीतिक सत्ता का लाभदायक उपयोग करने में सफल हो सका। औपनिवेशिक साम्राज्य ने ब्रिटेन के आत्मविश्वास में वृद्धि की, और इसके बल पर

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त मे भी, जब अन्य देशो ने उसके मार्ग मे कठिन प्रतियोगिता उपस्थित करना प्रारम्भ कर दिया, वह अन्य देशो से लोहा लेता रहा।

(८) सरकारी नीति एव प्रोत्साहन—'व्यापारवाद' (Mercantilism) के काल मे ब्रिटिश सरकार की नीति देश को अधिक से अधिक समृद्ध बनाने की थी जैसाकि उस समय पश्चिमी यूरोप के देशो मे चलन था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ब्रिटेन ने आयात पर प्रतिबन्ध लगाये एव निर्यात को प्रोत्साहन दिया और इस प्रकार ब्रिटेन स्वर्ण का पर्याप्त भण्डार सचित कर सका जिसने आगे चलकर बैंकिंग, बीमा एव जहाजरानी को प्रोत्साहन दिया। उन्नीसवी शताब्दी मे जब ब्रिटेन अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न हो गया, निरपेक्षता अथवा स्वतन्त्र व्यापार की नीति अपनायी गयी जिसके अनुसार आर्थिक मामलो मे सरकारी हस्तक्षेप नगण्य हो गया। 'प्रत्येक को अपने हितो के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता' ने व्यक्तियो को नये कामो से धन कमाने की प्रेरणा दी। तत्कालीन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो ने भी स्वतन्त्र व्यापार नीति का समर्थन किया। आयात निर्यात पर तो सब प्रकार के करो को समाप्त कर दिया गया जिससे ब्रिटेन के विदेशी व्यापार मे बहुत अधिक वृद्धि हुई। उन्नीसवी शताब्दी मे 'स्वतन्त्र व्यापार नीति' ब्रिटेन के लिए इतनी उपयोगी सिद्ध हुई कि यह काल ब्रिटेन के आर्थिक विकास का स्वर्णयुग कहा जाने लगा।

उपर्युक्त तथ्यो पर विचार करने के बाद हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्रिटेन के सामाजिक सगठन मे अनेक असाधारण गुण थे। ब्रिटेन के उच्च सामाजिक स्तर ने ब्रिटेन के निवासियो मे भौतिक साधनो को विकास के लिए उपयोग करने की योग्यता व क्षमता प्रदान की। यदि भारत मे इसकी तुलना की जाय तो हमे ज्ञात होगा कि भारत के भौतिक अथवा प्राकृतिक साधन कुल मिलाकर ब्रिटेन से कही अधिक विशाल हैं, किन्तु फिर भी भारत उनका पूरा उपयोग अपने आर्थिक विकास के लिए नही कर सका है। स्वत ही प्रश्न उत्पन्न होता है कि आखिर ऐसा क्यो है ? इसका उत्तर खोजने के लिए हम अपने सामाजिक वातावरण की ओर देखना होगा कि हमारा समाज आज भी सामाजिक एव धार्मिक बन्धनो एव प्रतिबन्धनो मे जकड़ा हुआ रूढिवाद एव भाग्यवाद का शिकार है। हमारी सामाजिक प्रथाएँ एव सस्थाएँ आर्थिक विकास की परिस्थितियो के अनुरूप नही हैं और न उनमे परिवर्तनशील परिस्थितियो के अनुसार स्वय को ढालने की क्षमता ही है। स्वतन्त्रता के बाद से भारत के सामाजिक वातावरण मे भी तेजी से परिवर्तन हो रहा है किन्तु ब्रिटिश स्तर तक पहुँचने मे अभी बहुत समय लगेगा।

प्रश्न

1. Estimate the influence of social conditions on the economic development of India and England

इगलैण्ड एव भारत के आर्थिक विकास पर सामाजिक दशाओ के प्रभाव की विवेचना कीजिए। (राजस्थान, १९५६).

2. Throw light on the social background of Great Britain and discuss how social environment has contributed to the economic progress there.
   ग्रेट ब्रिटेन की सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए एवं यह सिद्ध कीजिए कि सामाजिक वातावरण ने वहाँ की आर्थिक प्रगति में किस प्रकार सहायता की है।
3. "For the economic development of a country favourable social environment is as necessary as a rich physical environment." Discuss the truth of this statement in the context of British economic progress.
   "किसी देश के आर्थिक विकास के लिए अनुकूल सामाजिक वातावरण उतना ही आवश्यक है जितना कि सम्पन्न आर्थिक वातावरण।" ब्रिटिश आर्थिक प्रगति के सन्दर्भ में इस कथन की पुष्टि कीजिए।

३
मध्यकालीन कृषि (मैनोरियल कृषि-पद्धति)
(Manorial System of Agriculture)

मैनोरियल प्रथा का उद्गम तथा विकास

मध्ययुग मे इगलैण्ड एक कृषि प्रधान देश था। उस समय जीवन-निर्वाह का मुख्य साधन कृषि था। इस काल मे मैनर अथवा जागीर (Manor) ग्रामीण सगठन की मान्य इकाई थी। नार्मन विजय से पूर्व भी इगलैण्ड मे 'मैनोरियल कृषि-पद्धति' का प्रचलन था। मैनोरियल प्रथा के आविर्भाव के बारे म अर्थशास्त्री एक मत नही हैं। यह प्रथा इगलैण्ड मे ही प्रचलित रही हो ऐसी बात नहीं है वरन् समस्त यूरोप महाद्वीप मे प्रचलित रही है और उसके स्वरूप मे भी भिन्नता रही है। कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार मैनोरियल प्रथा विल (Vill) का विकसित रूप है जिसे रोमन साम्राज्य के दिनो मे दासो से जोती जाने वाली भूमि के लिए प्रयोग किया जाता था। अन्य अर्थशास्त्रियो के अनुसार इसका प्रारम्भ जर्मनी के मार्क (Mark) से है जो स्वतन्त्र मनुष्यो द्वारा बोयी गयी ऐसी भूमि का क्षेत्र होता था जिसका अधिकार उन्हे समाज द्वारा प्रदान किया जाता था। आधुनिक काल के अर्थशास्त्री अधिकाश मे इस विचारधारा के हैं कि मैनोरियल प्रथा के विकास मे रोम और जर्मनी दोनो का ही प्रभाव पडा है। यह स्पष्ट है कि नार्मन विजय से पूर्व भी यह प्रथा किसी न किसी रूप म इगलैण्ड के आर्थिक जीवन को प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण सस्था रही थी जिसके विकास और आविर्भाव की कहानी अतीत के गर्भ मे अस्पष्ट और धुँधली दृष्टिगोचर होती है।

१ मैनर की परिभाषा

मैनर एक बडी भू सम्पत्ति या जागीर होती थी जिसमे प्राय एक गाँव और उसके चारो ओर की भूमि सम्मिलित होती थी। प्राय मैनर के चारो ओर टन नामक झाडी की बाढ होती थी जिससे इसके क्षेत्रफल का पता चलता था। मैनर का एक भू-स्वामी होता था जिसकी भूमि की जुताई मुख्य रूप से उसके दासो या गुलामो

द्वारा हुआ करती थी। देश के अधिकाश भागो में मैनोरियल प्रथा के सगठन मे समानता पायी जाती थी परन्तु नितान्त एकरूपता नहीं थी।

२ ग्राम सगठन

उस समय प्रत्येक ग्राम मे ग्रामपति, पुरोहित और जन-साधारण के मकान, गिरजाघर और चक्की आदि हुआ करते थे। गाँव मे सबसे मुख्य भवन ग्रामपति भवन होता था जो साधारण लोगो की कुटीरो की अपेक्षा अधिक ठोस बना होता था। ग्रामपति का भवन इमारती लकडी और पत्थर का होता था। इसमे एक से अधिक मजिलें और कमरे होते थे जिनमे सबसे बडे कमरे या हॉल मे ग्रामपति का न्यायालय लगता था। साथ ही कोठे और अन्य कक्ष होते थे। यदि ग्रामपति मैनर पर होता तो इसी मे रहता था और यदि उसके पास एक से अधिक गाँव होते तो उसका मुख्तार इसमे रहता था। जन-साधारण के मकान झोपडी के रूप मे पाये जाते थे। उनके छप्पर घास फूस के बने रहते थे। उनके घर मे केवल एक या दो कमरे हुआ करते थे। यदि मैनर और धार्मिक क्षेत्र एक ही होते, (जैसा प्राय होता था) तो इसमे एक गिरजाघर होता था जिसके पास पादरी के लिए एक मकान होता था। नाले के किनारे एक पनचक्की होती थी और यदि कोई सुविधाजनक नाला नही होता तो पहाडी पर वायुचक्की बना दी जाती थी।

३ ग्रामीण स्वावलम्बन

मैनोरियल प्रथा स्वावलम्बन के आदर्श पर आधारित थी। अधिकाश रूप मे ग्राम अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ उत्पन्न कर लेता था। यद्यपि पूर्ण स्वावलम्बन की उपलब्धि कभी नही होती थी परन्तु वाह्य व्यापार अवाछनीय एव अनावश्यक माना जाता था।

मैनोरियल भूमि पर उत्पादित गेहूँ या अनाज ग्रामपति को चक्की पर ही पीसा जाता था। जौ को भिगोकर गाँव मे ही शराब बनायी जाती थी। गाय और बकरी का माँस, दूध और अण्डे भी गाँव मे ही उत्पन्न किये जाते थे। रेशमी कपडे, रुई के धागे, लोहा, इस्पात और छोटे शस्त्र बाहर से मँगाने पडते थे। इन बाहर से मँगायी जाने वाली वस्तुओ के बदले मे गाँव को अतिरिक्त उत्पादन देना पडता था। साथ ही यदि पास के नगर अपनी आवश्यकता का अनाज पैदा नही कर सकते थे तो अनाज की पूर्ति भी गाँव को करनी पडती थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ग्राम आत्मनिर्भरता को प्राप्त थे और स्वावलम्बन आर्थिक जीवन की आधारशिला थी। बार्टर (Barter) अथवा वस्तुओ का वस्तुओं से विनिमय होता था। मुद्रा का चलन नही के बराबर था और वह दुर्लभ थी।

४ भूमि का विभाजन

'गाँव या मैनर' की भूमि को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता था

(1) स्वामी अथवा मैनोरियल लार्ड की भूमि जिसे डेमीन (Demesne) कहा जाता था,

(ii) स्वतन्त्र व्यक्तियो की भूमि जिसे फ्री होल्डर्स भूमि (Free holders-land) कहते थे।

(iii) परतन्त्र व्यक्तियो अथवा दासों (Serfs) की भूमि जिसे 'सर्फ लैण्ड' (Serf Land) के नाम से सम्बोधित किया जाता था।

मैनर की अधिकांश भूमि स्वामी की भूमि (Demesne) होती थी, जो कि अलग-अलग गांवो मे एक-तिहाई स लेकर आधी तक हो सकती थी। प्राय उपजाऊ भूमि 'डेमीन' मे सम्मिलित होती थी जिसमे स्वामी की निजी खेती होती थी और उसके पशुओ के लिए चारा उत्पन्न किया जाता था। दासो का भूमि पर कोई अधिकार नही होता था। उनको भूमि देने का रिवाज था और वैधानिक दृष्टि से उनकी भूमि का स्वामित्व ग्रामपति के हाथो मे होता था। वह उनको बेदखल कर सकता था, यद्यपि वैसा करना आर्थिक दृष्टि से स्वय उसके हित मे नही था, क्योकि दास लोग ही डेमीन भूमि पर कार्य करते थे। मैनर की भूमि के विभिन्न उपयोग होते थे। खेती योग्य भूमि बडी महत्त्वपूर्ण थी। इसके दो या तीन बडे खेत होते थे।

प्रत्येक खेत को चौडी पाटियो (Strips) मे बांट दिया जाता था जिनको फर्लांग शाट या फ्लैट आदि नामो से पुकारा जाता था।

उपज की दृष्टि से गांवो में तीन प्रकार की भूमि पायी जाती थी—खेती योग्य भूमि, चरागाह और परती। इसके अतिरिक्त घास से भरी हुई भूमि भी हुआ करती थी। कृषि योग्य भूमि पर खुले मैदान की प्रथा (Openfield System) के अनुसार कृषि की जाती थी। चरागाह का प्रयोग जनसाधारण कर सकते थे। चरागाह पर चराने का अधिकार, कृषि-भूमि की मात्रा, पशुओ की सख्या, व्यवहार और प्रथा के आधार पर निश्चित किया जाता था। परती भूमि का प्रयोग भी पशुओ को चराने के लिए हुआ करता था, इस भूमि से मकान बनाने के लिए लकडी और ईंधन भी प्राप्त किया जाता था। मेडो पर जानवरो का रखना मना था। इससे चारा काट लिया जाता और शीतकाल मे ग्रामवासियो के पशुओ की सख्या के अनुसार इस चारे के कुछ अश का वितरण किया जाता था। मेडो से चारा कट जाने के बाद जन-साधारण के पशु भी उसमे चर सकते थे।

स्वामित्व की दृष्टि से गाँवो की लगभग समस्त भूमि मैनोरियल लार्ड के अधिकार मे होती थी किन्तु सुविधा के लिए उसके उपर्युक्त तीन विभाजन किये गये थे। डेमी-भूमि और दासों की भूमि पर स्वामी का पूर्ण अधिकार था। दास-भूमि पर दासो का अधिकार उसकी कृपा पर निर्भर था और वह इच्छानुसार उन्हें भूमि से बेदखल कर सकता था। यह भूमि दास को इसलिए दी जाती थी कि वह स्वामी की डेमीन भूमि पर बेगार मे काम करे। स्वतन्त्र व्यक्तियों की भूमि पादरियो एव कुछ कर्मचारियों की भूमि होती थी जिस पर ग्रामपति का अधिकार नहीं होता था और न वह उन्हें बेदखल कर सकता था।

५. मैनर के निवासियों का वर्गीकरण

मैनर में रहने वाली जनता को स्वतन्त्र और परतन्त्र दो भागों में विभाजित किया जाता था। परतन्त्र वर्ग (Unfree) के मनुष्यों की संख्या अधिक होती थी। डूम्सडे बुक में दी हुई सूचना से पता चलता है कि इसके संकलन के समय ग्रामीण जनता का ७० प्रतिशत भाग दास था जिसमें ३८ प्रतिशत आसामी (Villein) और ३२% हाली या कुटीरवासी (Bordars or Cottars) थे। स्वतन्त्र व्यक्तियों में ग्रामपति, उसका मुख्तार, गाँव का पादरी और अनेक स्वतन्त्र मनुष्य होते थे। परतन्त्र व्यक्तियों का आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण वर्ग था क्योंकि गाँव की भूमि पर श्रम की पूर्ति अधिकांश में वे ही करते थे, तथा अपने खेतों के अतिरिक्त वे ग्रामपति की भूमि पर भी कार्य करते थे जिसके लिए उन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था।

मैनर के निवासियों का वर्गीकरण

- स्वतन्त्र (Free)
  - (Manorial Lord) ग्रामपति
  - कर्मचारी अमीन (Bailiff), मुख्तार (Steward), कारिन्दा (Reeve), आदि।
  - पादरी (Priest)
- परतन्त्र (Serfs)
  - विलियन या आसामी (Villein)
  - हाली या कुटीरवासी (Bordars or Cottars)
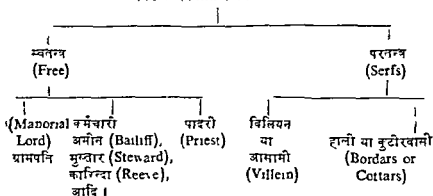
(i) *आसामी के कार्य व स्थिति*—आसामी के पास खुले खेतों में प्रायः ३० एकड़ भूमि होती थी। अर्द्धआसामी के पास १५ एकड़ होती थी। हालियों या कुटीरवासियों के पास एक से पाँच एकड़ भूमि होती थी। आसामी को अपने स्वामी की परम्परागत सेवाएँ करनी पड़ती थीं। स्वामी की भूमि पर सप्ताह में दो या तीन दिन काम करना पड़ता था। प्रति सप्ताह काम के दिनों की संख्या अलग-अलग होती थी। साधारणतया यह संख्या तीन तक सीमित थी यद्यपि यूरोप महाद्वीप में इस प्रकार के उदाहरण भी मिलते हैं जहाँ दासों को स्वामी की भूमि पर ६ दिन भी काम करना पड़ता था। आसामी से हल चलाने, बीज बोने, गाड़ी चलाने, लकड़ी काटने, भेड़ों को धोने या ऊन कतरने, बाड़ की मरम्मत करने या इसी प्रकार खेती से सम्बन्धित कार्य लिया जा सकता था।

उपहार-दिवस पर आसामी की पत्नी के सिवाय उसके परिवार के सब सदस्यों को स्वामी की भूमि पर उपस्थित होना पड़ता था। उपहार श्रमिकों को भोजन स्वामी की ओर से दिया जाता था। इसके अतिरिक्त आसामी को अपने काम से

छुड़ाकर गाड़ी हाँकने के लिए भी बुलाया जा सकता था परन्तु इसकी मात्रा और उपहार-दिवसों की संख्या परम्परा से निश्चित होती थी। आसामी को जिन्स या मुद्रा में स्वामी को कुछ देना पड़ता था, जैसे बड़े दिन (X-Mass) पर माँस या कन्दमूल और ईस्टर (Easter) पर अण्डे इत्यादि।

आसामी (Villein) स्वामी की आज्ञा के बिना गाँव छोड़कर नहीं जा सकता था। यदि वह किसी कारण गाँव को छोड़कर अन्यत्र रहना तो सेवाएँ अर्पित करते रहने पर भी उसको स्वामी की स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती थी और इसके लिए चेवेज (Chevage) या प्रवास दण्ड देना पड़ता था। उसको अपना अनाज गाँव की चक्की पर पिसाना पड़ता था। स्वामी की अनुमति के बिना आसामी बैल और घोड़ा नहीं बेच सकता था। न वह और उसका पुत्र पढ़ ही सकते थे। आसामी की पुत्री के विवाह पर विवाह-दण्ड (Merchet) चुकाना पड़ता था। आसामी की मृत्यु पर जुर्माना चुकाये बिना पुत्र उत्तराधिकारी नहीं हो सकता था और न हेरियट (Heriot) चुकाये बिना अन्य सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हो सकता था। आसामी अपने स्वामी पर सम्राट के न्यायालय में अभियोग नहीं चला सकता था।

(ii) हाली या कुटीरवासी (Cottars or Bordars) की स्थिति व कार्य— हाली या कुटीरवासी आर्थिक स्थिति में आसामी से नीचे होते थे। उनके पास न बैल होते थे और न हल ही। उनके पास आसामियों की अपेक्षा कम भूमि होती थी। उनको सप्ताह में केवल एक दिन स्वामी के लिए काम करना पड़ता था (प्रायः सोमवार को) अतः उन्हें सोमवारी आदमी (Monday man) कहा जाता था। कृषि भूमि की कमी के कारण उनको दूसरों की जमीन पर काम करके मजदूरी कमानी पड़ती थी, जिससे उनकी आय में वृद्धि हो सके। इनके अतिरिक्त शिल्पी, बढ़ई, पहिया बनाने वाला, लुहार और दूसरे श्रमिक इसी वर्ग में आते थे। ये लोग जनता की सेवा करते थे और उसके बदले उनको अन्न दिया जाता था। जितने प्रकार के प्रतिबन्ध आसामियों पर थे उतने ही प्रकार के प्रतिबन्ध इन पर भी लगे हुए थे। इन लोगों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। परम्परा के अनुसार इन्हें कार्य करना पड़ता था, किन्तु कोई भी नागरिक अधिकार उन्हें प्राप्त नहीं थे। वे गाँव से भाग नहीं सकते थे। यदि ऐसा कोई करता था तो ग्रामपति उसे पकड़वा के दण्ड दे सकता था। कहीं-कहीं पर दासों की बाहों को गर्म लोहे से दाग दिया जाता था जो कि उनके दास होने का प्रतीक था।

(iii) स्वतन्त्र निवासियों की स्थिति—स्वतन्त्र वर्ग के लोग प्रजाजनों से ऊँचे थे क्योंकि प्रजाजनों को स्वामी की अनुमति के बिना भूमि बेचने का अधिकार नहीं था और वे स्वामी के न्यायालयों में उसके अधीन थे जबकि स्वतन्त्र मानवों को इन बातों में पूर्ण स्वतन्त्रता थी। स्वतन्त्र मनुष्यों को अपनी भूमि के लिए स्वामी को लगान देना पड़ता था। यह लगान मुद्रा, वस्तु या श्रम में हो सकता था उन पर आसामियों की भाँति दण्ड भी दिया जा सकता था और उत्तराधिकार के समय हेरियट (उत्तरा-

घिकार-कर) भी लिया जा सकता था। इसलिए दासों और स्वतन्त्र मनुष्यों में अन्तर बनाना कठिन है परन्तु यह कहा जा सकता है कि स्वतन्त्र मनुष्य अपना खेत और मैनर छोड़ सकते थे, राजा के न्यायालय में स्वामी पर अभियोग लगा या चला सकते थे और साधारणतः उन्हें विवाह-दण्ड (Merchet) नहीं देना पड़ता था। इस रूप में यह कहना उचित होगा कि सम्पन्न आसामियों और स्वतन्त्र मनुष्यों की आर्थिक स्थिति में कम अन्तर था।

६ मैनर का प्रशासन

ग्रामपति के कामदार द्वारा वर्ष में दो या तीन बार या कभी-कभी और अधिक बार न्यायालय लगाये जाते थे और भू-स्वामी के अधीन सब लोगों को इनमें उपस्थित रहना पड़ता था। इनमें छोटे अपराधों के लिए सजा दी जाती थी। भूमि का हस्तान्तरण और उत्तराधिकार न्यायालय की पंजी में लिखे जाते थे। कर्तव्य की उपेक्षा करने और रिवाज को तोड़ने वालों पर जुर्माने किये जाते थे। इन न्यायालयों के निर्णय मैनर के रिवाजों पर आधारित थे।

७ मैनोरियल प्रणाली में कृषि-पद्धति

आरम्भ में ग्रामों में **दो खेतों की पद्धति** (Two field system) के अनुसार कृषि होती थी। इस पद्धति के अनुसार एक खेत प्रति वर्ष परती छोड़ दिया जाता था। कालान्तर में **तीन खेतों की पद्धति** (Three field system) ने इसका स्थान ले लिया। इस पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष दो खेतों पर कृषि की जाती थी और एक परती रखा जाता था, त्रिवर्षीय चक्र में प्रत्येक खेत को एक वर्ष का विश्राम मिल जाता था। पहले, दूसरे और तीसरे वर्ष फसलों के बोने का क्रम इस प्रकार रहता था

वर्ष	प्रथम खेत	द्वितीय खेत	तृतीय खेत
प्रथम	गेहूँ	जौ	परती छोड़ा गया
द्वितीय	जौ	परती छोड़ा गया	गेहूँ
तृतीय	परती छोड़ा गया	गेहूँ	जौ

फसल कट जाने के बाद उनमें आम जनता के पशु चरा करते थे। ग्राम में उत्पादन, बोआई और कटाई का समय व्यवहार और परम्परा के आधार पर निश्चित होता था। व्यवहार को नहीं मानने वाले को दण्ड दिया जाता था। डेमीन भूमि पर आसामी द्वारा कृषि की जाती थी। ग्रामपति के न रहने पर आसामी उनके अनाज को बेच भी सकता था।

कृषि-कार्य का सबसे अधिक कठिन और महत्त्वपूर्ण अंग हल चलाना था। बड़ा हल आठ बैलों और छोटा हल चार बैलों द्वारा खींचा जाता था। नयी भूमि की जुताई के लिए प्रायः बड़े हल का प्रयोग होता था। पुरानी भूमि पर छोटे हल का प्रयोग होता था। उस समय खाद का बहुत कम प्रयोग होता था। पुराने हल द्वारा

खेत की जुताई होती थी और हँसिया द्वारा खेत की कटाई होती थी। अनुसन्धान केन्द्रों का अभाव था। खेत खुले होते थे और उन पर कोई घेराबन्दी नहीं की जाती थी। कृषि भूमि छोटे छोटे टुकडो मे बँटी रहती थी। सिंचाई का उत्तम प्रबन्ध नहीं था। उस समय औसत उत्पादन ६ से ८ बुशल प्रति एकड हुआ करता था जो कि आज के प्रति एकड उत्पादन की तुलना से एक-चौथाई से भी कम था।

८ पशु

आज की पशु-शालाओ के पशुओ की तुलना मे मैनर के पशु छोटे और निकृष्ट थे। कुपोषण, छुआछूत के रोगो को दूर करने के प्रयत्न और नस्ल-सुधार के अभाव मे सुधार रुका हुआ था। बैलों का मूल्यांकन उनकी भार ढोने की शक्ति से किया जाता था। भेडो मे खुट्टी रोग पाया जाता था और स्वस्थ भेड एक से डेढ पौण्ड तक ऊन देती थी। सूअर और मुर्गे-मुर्गियो की बहुतायत थी।

९ प्रशासन

मैनर का प्रबन्ध मुख्तार (Bailiff) के हाथो मे था। मुख्तार को दासो के उत्तरदायित्व को निभवाने के कार्य मे गाँव का कारिन्दा (ReeVe) और घेड का कारिन्दा (Hay Ward) सहायता करते थे। ये आसामी श्रेणी के व्यक्ति होते थे जिनको इनके कार्यों से छुट्टी मिल जाती थी जिससे वे निरीक्षण कार्य में मुख्तार के साथ काम कर सकें। गाँव का कारिन्दा सप्ताह-कार्य में लगे हुए दासो पर नियन्त्रण रखता था और बीड का कारिन्दा उपहार कार्य पर ध्यान देता था और वनो एव चरागाहो का प्रबन्ध करता था। मुख्तार को हिसाब रखना पडता था और समय पर जब स्वामी का कामदार मैनर का दौरा करता था तो कामदार के निरीक्षण के लिए अपनी बहियाँ उसके सम्मुख रखनी पडती थी।

मैनोरियल प्रथा की विशेषताएँ

(Salient Features of Manorial System)

मैनोरियल प्रथा के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मध्यकालीन इगलैण्ड की आर्थिक व्यवस्था मे यह प्रथा महत्त्वपूर्ण रही है। इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ थी

(१) यह प्रथा कृषि-व्यवस्था की सार्वभौमिक व्यवस्था के रूप मे सर्वमान्य थी और सारे देश मे व्याप्त थी।

(२) मैनोरियल प्रथा के सगठन और कार्य प्रणाली मे बहुत समानता थी। रिवाज और परम्पराएँ भिन्न-भिन्न भागो में भिन्न-भिन्न होते हुए भी मैनर के सगठन की मुख्य-मुख्य बातों में सर्वत्र समानता थी।

(३) मैनोरियल लॉर्ड या स्वामी को अपने निवासियों पर निश्चित अधिकार प्राप्त थे।

(४) कृषि खुले खेतो की पद्धति के अनुसार की जाती थी।

(५) कृषि जीविका प्राप्ति के लिए की जाती थी, न कि विनिमय या विक्रय के लिए। यद्यपि उत्तर मध्यकाल में उत्पत्ति का कुछ भाग बेचा जाता था।

(६) मैनोरियल कृषि-व्यवस्था स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता के आदर्श पर आधारित थी। उसे न्यूनाधिक रूप मे प्राप्त करने का प्रयत्न सर्वत्र किया जाता था।

(७) परम्परा या रीति-रिवाज इस व्यवस्था की रीढ थी।

(८) इस पद्धति के अन्तर्गत भू-स्वामी की भूमि (Demesne) पर दासो के श्रम से खेती की जाती थी। जब तक यह व्यवस्था चलती रही तब तक मैनोरियल प्रथा अस्तित्व मे रही और जब कृषि की यह प्रणाली समाप्त होने लगी तो मैनोरियल प्रथा का भी अन्त हो गया।

इन विशेषताओ के रहते हुए भी मैनोरियल प्रथा मे कुछ मूलभूत दोष थे। रिवाज द्वारा नियन्त्रित सामुदायिक कृषि से बुद्धिमान और साहसी आदमियो द्वारा प्रयोग करने मे रुकावट पडती थी। सबको परम्परा और रिवाजो के अनुसार काम करना पडता था। इसमे सुधार असम्भव था। भूमि घास-फूस से साफ नही की जा सकती थी। सीमा सम्बन्धी झगडे हुआ करते थे। श्रम-विभाजन कठिन था। कृषि-दासो के ऊपर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगे हुए थे। इस समय स्पर्द्धा और प्रसंविदा का अभाव था इतना सब कुछ होने पर भी यह पद्धति उस समय की आवश्यकताओ के अनुकूल थी।

मैनोरियल प्रथा का पतन
(Decay of Manorial System)

मध्यकालीन इगलैण्ड की महत्त्वपूर्ण कृषि सस्था के रूप मे मैनोरियल प्रथा का प्रभाव औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व धीरे-धीरे कम होने लगा। यह प्रणाली अप्रगतिशील एव स्थिर (Static) थी जिसके अन्तर्गत समाज की आर्थिक 'प्रगति नही हो सकती थी। व्यवस्था का मुख्य केन्द्रबिन्दु मैनोरियल लार्ड अथवा ग्रामपति था तथा ग्राम की समस्त आर्थिक गतिविधियाँ उसकी सुविधा एव सम्पन्नता के उद्देश्य से सचालित की जाती थी। सामन्तवादी व्यवस्था की यह ग्रामीण इकाई थी। जब तक सामन्तवादी व्यवस्था का जोर रहा, मैनोरियल प्रणाली भी फलती-फूलती रही, किन्तु जैसे-जैसे सामन्तवादी प्रवृत्तियाँ कम होती गयी मैनोरियल प्रथा भी उसी के अनुरूप विघटित होती गयी।

मैनोरियल प्रथा के पतन के निम्न कारण थे

(१) जनसंख्या में वृद्धि—मैनोरियल प्रथा जो स्वाभाविक रूप मे अविकसित समाज और समय के लिए उपयोगी थी, ब्रिटिश समाज के आर्थिक विकास के साथ ही समाप्त होने लगी। जनसख्या की वृद्धि इसके पतन के कारणो मे एक प्रधान कारण रहा है। यह अनुमान लगाया गया है कि इगलैण्ड की जनसख्या ११वीं शताब्दी मे १०-१५ लाख से बढ़कर १४वी शताब्दी मे ४० लाख तक पहुँच गयी। इस बढ़ती हुई जनसख्या की खाद्य पूर्ति के लिए कृषि का क्षेत्र विस्तृत किया गया और इसमे परती भूमि को भी सम्मिलित किया गया। इस नवीन कृषि-क्षेत्र को

चकों (Blocks) के रूप में रखा गया और चारों ओर बाड़ें लगायी गयी। ये सुधार मैनोरियल प्रथा के मूलभूत तत्त्वों पर प्रहार थे जिसमे उस प्रथा के पतन मे सहायता मिली।

(२) **मुद्रा का आविर्भाव**—द्वितीय महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कृषि करने की मूल भावना मे परिवर्तन था। उस समय कृषि द्वारा अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अन्न प्राप्त करना ही लक्ष्य था। किन्तु मुद्रा के आविर्भाव और शहरों की अभिवृद्धि ने अतिरिक्त कृषि उत्पादन के लिए बाजार उत्पन्न किये। मैनर और शहरों मे व्यापार बढ़ता गया। इस व्यापार वृद्धि से अतिरिक्त उत्पादन को प्रोत्साहन मिला क्योंकि उससे मुद्रा की प्राप्ति होती थी। यह अनुमान लगाया गया है कि १२वीं से १३वीं शताब्दी मे प्रति एकड़ गेहूं उत्पादन में डेढ़ गुनी वृद्धि हुई। कृषि-पदार्थों मे व्यापार ने नवीन सम्भावनाओं का उदय किया और मैनोरियल प्रथा की समाप्ति को अनिवार्य बना दिया।

(३) **अन्तर्वर्तन (Commutation)**—मुद्रा आर्थिक जीवन का स्फुरणबिन्दु है। व्यक्ति इसके लिए अधिकाधिक कार्य करने का प्रयत्न करता है। मैनर मे मुद्रा का आविर्भाव शहरों की अभिवृद्धि और व्यापार के विकास से हुआ फलस्वरूप मैनोरियल प्रथा का मूलभूत आधार हिल उठा। सवाओं को मुद्रा के रूप मे चुकाया जाने लगा। दासों और आसामियों द्वारा स्वामी की भूमि पर सेवाएँ प्रदान करना ही मैनोरियल प्रथा का मुख्य आधार था, उसके स्थान पर मुद्रा लगान के रूप मे चुकाये जाने से मैनर की समाप्ति होने लगी। मैनर भू-स्वामियों को मुद्रा की आवश्यकता राजनीतिक कारणों से थी। इन स्वामियों को किलाबन्दी और धार्मिक युद्धों में सहायता करना अनिवार्य-सा लगता था, आमोद और विलास के लिए भी मुद्रा की आवश्यकता थी। प्रारम्भ में मुद्रा-सेवा के लाभ अनुभव नहीं किये गये परन्तु १३वीं एवं १४वीं शताब्दी और विशेषत 'काली-मृत्यु' के बाद ये अधिक अनुभव किये गये।

(४) **श्रमिक वर्ग का उदय**—मुद्रा-सेवा तभी सम्भव थी जबकि एक स्वतन्त्र श्रमिक वर्ग का उदय होता। मैनर क्षेत्र के अन्तर्गत कुटीरवासी और हालियों की महत्त्वपूर्ण स्थिति का वर्णन यह स्पष्ट करता है कि भू-स्वामियों ने सर्वप्रथम मुद्रा-सेवा के रूप में कुटीरवासियों को स्वतन्त्रता प्रदान की। इस प्रकार श्रमिक वर्ग के उदय ने आसामियों को भी प्रेरणा दी। मुद्रा की प्राप्ति से मालिक या स्वामी श्रम नियोजित कर सकते थे।

(५) **डेमीन का विघटन**—मैनोरियल प्रथा की समाप्ति में डेमीन का विघटन भी एक प्रधान कारण था क्योंकि डेमीन भूमि की जुताई, बुआई के लिए ही तो यह सारा आधार बनाया गया, परन्तु जब मालिकों ने यह देखा कि वे अपनी आवश्यकता का अनाज खरीद सकते हैं, साथ ही मजदूरी की दर भी बढ़ रही है तो डेमीन भूमि को कृषि स्वयं पर ही निर्भर मान ली गयी। स्वामी उन काश्तकारों को

भूमि पट्टो पर उठाने लगे जो कि लगान दे सकें। जिन मैनर क्षेत्रो म पशुओ का अभाव था, वहाँ पशु भी पट्टो पर उठाये जाने लगे। काश्तकार भूमि और पशुओ के लिए लगान देने लगे। इस प्रकार डेमीन का विघटन १३वी शताब्दी मे आरम्भ हुआ और १४वीं तथा १५वी शताब्दी मे वृद्धि पाता गया।

(६) 'काली मृत्यु' (Black Death) —सन १३४८-४६ की 'काली-मृत्यु' के अस्थायी रूप से रुक जाने तक दासत्व से मुक्ति की प्रवृत्ति बराबर चलती रही। मध्ययुग मे इगलैण्ड मे बहुधा प्लेग पडा करते थे। चौदहवी शताब्दी म अनेक बार गम्भीर प्लेग पडे, विशेषत १३४८-४६ मे, १३६१ ६२ म और १३६८-६६ म एव १३७०, १३८१-८२ और १३६६ मे अन्य महामारियाँ फैली। सन् १३४६ के प्लेग को काली मृत्यु कहते थे। इसका आरम्भ १३३३ के लगभग चीन म हुआ बताते हैं। लगभग १३४५ मे यह एशिया-माइनर मे प्रकट हुआ और १३४७ म इटली मे, १३४८ फ्राम मे और १३४६ के शरत्काल मे इगलैण्ड मे फैल गया। इससे असाधारणत अधिक मौतें हुई। मध्यकालीन कथा-लेखको की अतिशयोक्ति का पूरा ध्यान रखते हुए और केवल निश्चित ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि देश की लगभग एक-तिहाई जनसख्या काल कवलित हो गयी।

काली-मृत्यु का तात्कालिक परिणाम श्रम के अभाव म दृष्टिगोचर हुआ। इसमे फसलें खेतो पर सड गयी और भूमि खाली पडी रही। भू-स्वामी मजदूरो को प्राप्त करने मे हैरान हो गये। कई आसामियो की मृत्यु से डेमीन भूमि का क्षेत्र तो बढ गया किन्तु कृषि-सेवाएँ देने वालो का अभाव हो गया। इस अल्पकाल मे मजदूरी मे ५० प्रतिशत वृद्धि हुई। आसामी अपनी सेवाएँ देने को इच्छुक नही थे क्योकि उनके परिवारो मे सदस्यो की सख्या प्लेग के फलस्वरूप कम हो गयी थी। आसामी आर्थिक मुक्ति चाहते थे, श्रमिक ऊँची मजदूरी की माँग कर रहे थे और भू-स्वामी पुराने ढग को व्यवस्थित रखना चाहते थे। परिस्थितियाँ भू-स्वामी के विपरीत थी, श्रम के अभाव मे वह नये आसामियो का स्वागत करने को तैयार था। अत आसामी अन्यत्र जाकर अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने मे प्रयत्नशील थे। वह पट्टे पर भूमि लेकर स्वतन्त्र हो सकते थे।

(७) श्रमिक अधिनियम—इगलैण्ड के सम्राट ने सन् १३४६ और १३५६ मे श्रमिक अधिनियम स्वीकृत किये जिसम शारीरिक दृष्टि से योग्य व्यक्तियो को पुराने स्तर पर भुगतान लेकर सेवाएँ देना अनिवार्य कर दिया गया। अधिनियमो को सारे देश मे लागू किया गया। अधिनियम का पालन मैनोरियल स्वामियो पर निर्भर करता था। आर्थिक शक्तियो के प्रभाव मे अधिनियम असफल हो गये।

(८) किसान-विद्रोह (Peasants Revolt)—काली-मृत्यु के बाद ही १३८१ मे किसानो का विद्रोह भडक उठा। यद्यपि इस किसान विद्रोह का दृष्टिकोण सम्राट के कुछ सलाहकारो (विशेषतौर से जान ऑफ गान्ट—John of Gaunt) को हटाना

था, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप मे इसने किसानो के असन्तोष को प्रकट किया। इस विद्रोह के मुख्य कारण निम्नलिखित थे

(१) भू-स्वामियो द्वारा मुद्रा प्रदान करने की अनिच्छा के प्रति आसामियों मे क्षोभ। आसामी अपनी सेवाओं के मूल्य के विषय मे अधिकाधिक जागरूक और अपने बोझो के प्रति अधिकाधिक असन्तुष्ट होते जा रहे थे।

(२) श्रमिको के अधिनियमो द्वारा मजदूरी मे वृद्धि रोकने के प्रयत्नो के प्रति श्रमिको मे असन्तोष था। ये अधिनियम अपने उद्देश्य मे सफल न हो सके। पूर्ति को देखते हुए श्रमिको की माँग अधिक थी। अत मजदूरो की वृद्धि को रोका न जा सका।

(३) नगरो मे श्रेणियो की नीति के प्रति अशिक्षित श्रमिको मे असन्तोष।

(४) प्रति पुरुष पीछे कर का लगाया जाना अलोकप्रिय था।

(५) युद्ध मे सफलता के अभाव और जॉन ऑफ गान्ट की अलोकप्रियता से उत्पन्न राजनीतिक असन्तोष।

६ मैनोरियल कोर्ट की समाप्ति

इस प्रणाली के अन्त होने का एक कारण यह भी था कि इस प्रणाली के प्रचलन के दिनो मे जमीदार को अपनी जमीदारीके निवासियो के मुकदमो का फैसला करने की शक्ति होती थी और वह या उसका कारिन्दा बीच-बीच मे कचहरी लगाते थे। गुलाम किसान और आसामी इनके अधिकार क्षेत्र मे थे। जमीदार को अदालत लगाने से आर्थिक लाभ होता था। ज्यो-ज्यो गुलाम किसान स्वतन्त्रता की ओर बढे त्यों-त्यो ये लाभ कम होते गये। भूमि सम्बन्धी रूढ़ियो को तोडने के मामले कम होने गये फलत वसूल किये जाने वाले जुर्मानो की राशि कम होती गयी जिससे अदालत लगाने के अधिकार का महत्त्व घट गया।

इस प्रकार १५वीं शताब्दी के अन्त तक मध्यकालीन मैनोरियल प्रथा की समाप्ति हो गयी थी। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि मैनोरियल प्रथा की समाप्ति क्रमश हुई। पहले आसामियों (Villeins) के अधिकारो मे वृद्धि हुई और वे धीरे-धीरे स्वतन्त्र हो गये। फिर हालो या कुटीरवासियों (Bordars and cottars) की स्थिति मे सुधार हुआ तथा इन पर लगने वाले करों एव प्रतिबन्धो मे कमी हुई और वे क्रमश अर्द्ध-दासत्व से मुक्ति प्राप्त करते गये। डेमीन भूमि पर काम करने के बदले उन्हे नकद वेतन मिलने लगा। गाँव से दूसरे गाँव मे जाकर बसने और शहरो मे जाकर कार्य करने पर लगे प्रतिबन्ध भी समाप्त हो गये। यद्यपि खुले खेतो मे कृषि की जाती थी, परन्तु आसामी और गुलाम-किसान नहीं रहे, उनका स्थान मजदूरी लेकर काम करने वाले मजदूरो ने ले लिया। बाडों से घिरे हुए खेतो का निर्माण होने लगा और कुछ जगह कृषि को छोड चरागाह बना दिये गये। मुद्रा और अधिकोषण के विकास ने जीवन की आर्थिक आवश्यकताओ के क्षेत्र को नवीन

मोड़ दिया। व्यापार और प्रतिस्पर्द्धा ने आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन का स्थान ले लिया था। इस प्रकार मैनोरियल प्रथा की समाप्ति ने कृषि-क्रान्ति के लिए भूमिका तैयार कर दी जिसने अन्ततोगत्वा बड़ी संख्या में भूमि पर बसे हुए कृषक परिवारों को गाँवों से उखाड़ फेंका और वे गाँवों से निराश होकर जीविकोपार्जन के उद्देश्य से उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर शहरों की ओर उन्मुख हुए।

प्रश्न

1 What led to the break-down of the Manorial System ? Did it improve the condition of British farmers ? How did it help the Agrarian Revolution ?
मैनोरियल कृषि प्रणाली का पतन किन कारणों से हुआ ? क्या इससे ब्रिटिश कृषकों की दशा में सुधार हुआ ? इस पतन से कृषि क्रान्ति लाने में क्या सहायता मिली ? (इलाहाबाद, १९६२)

2. *Discuss the broad features of Manorial System of British* agriculture
ब्रिटिश कृषि की मैनोरियल प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

3 Briefly describe the pre-revolution conditions of agriculture in England and indicate in what ways they were revolutionised
इंग्लैण्ड में कृषि क्रान्ति के पूर्व कृषि की क्या दशा थी—इसका संक्षेप में वर्णन कीजिए तथा यह लिखिए कि उसमें क्रान्ति लाने के लिए क्या परिवर्तन किये गये। (पंजाब, १९५९)

४

कृषि-क्रान्ति

(Agricultural Revolution)

मध्य युग से वर्तमान काल तक ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे इतने अधिक महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन हुए हैं कि उनको कृषि मे क्रान्ति की उपमा दी जाती है। मध्य युग की समाप्ति पर सामुदायिक भावना का स्थान व्यक्तिवाद ने लिया। श्रेणियाँ और स्वामि-भूमियाँ समाप्त हुईं, प्रोटेस्टेन्ट विचाधारा ने चर्च के अधिकार को चुनौती दी। मनुष्य स्वय विचारने और कार्य करने लगे। वे एक सगठन की इकाई के रूप मे दूसरो के साथ-साथ अपने और अपने से भी अधिक दूसरे के लिए कार्य करने मे सन्तुष्ट नहीं रहे। व्यक्तिवाद की भावना ने जोर पकड़ा। सहकारिता का स्थान प्रतिस्पर्द्धा ने ले लिया। रिवाज का स्थान वाणिज्यवाद ने लिया। मध्य युग मे कृषि जीवन-निर्वाह के लिए की जाती थी, किन्तु १६वी शताब्दी से यह लाभ कमाने के लिए की जाने लगी तथा १८वीं शताब्दी तक इसका पूर्ण रूप से वाणिज्यीकरण हो गया।

ब्रिटिश कृषि के इतिहास में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के दो युगो का समावेश मिलता है। प्रथम वार १६वी शताब्दी मे ये परिवर्तन हुए। इनमे घेराबन्दी आन्दोलन प्रमुख था जिसकी प्रगति बहुत ही मन्द गति से हुई। कुछ विद्वानो ने १६वी शताब्दी मे ब्रिटिश कृषि मे हुए परिवर्तनो को **'ब्रिटेन की प्रथम कृषि क्रान्ति'** की सज्ञा दी है। दूसरा घेराबन्दी आन्दोलन अठारहवी शताब्दी मे सन् १७५० के बाद आरम्भ हुआ। इसी समय कृषि प्रणालियो मे भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये जिनका सम्बन्ध भूमि, कृषि सगठन, कृषि-प्रणाली, पशु नस्ल सुधार तथा कृषि सम्बन्धी अन्य सुधारो से था। ये परिवर्तन वस्तुत अत्यन्त क्रान्तिकारी थे और इन्होंने तत्कालीन ग्रामीण समाज के स्वरूप मे परिवर्तन करके कृषि उद्योग की काया ही पलट दी। इसीलिए इन परिवर्तनो को कृषि-क्रान्ति के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। वस्तुत अठारहवी शताब्दी मे कृषि के क्षेत्र मे हुई क्रान्ति ही "ब्रिटेन की कृषि-क्रान्ति" थी।

कृषि-क्रान्ति की विशेषताएँ (Characteristics of Agricultural Revolution)

(१) घेराबन्दी आन्दोलन बड़ी तेजी से प्रगति कर सका। कृषि के खुले खेतों की व्यवस्था (जो व्यक्तिवादी तथा सामूहिक अर्थ-व्यवस्था की सम्मिश्रण थी) समाप्त हो गयी। सन् १८३६ में एक घेराबन्दी अधिनियम स्वीकृत हुआ जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक भू भागों को घेरने की बहुत सुविधा हो गयी। सन् १८४५ में घेराबन्दी-आयुक्तों की एक समिति का निर्माण किया गया। आयुक्त प्रत्येक ग्राम में जाकर भूमि को काटने तथा पुनः वितरण के कार्य का निरीक्षण करते थे। धीरे-धीरे चरागाह को भी घेरा जाने लगा। घेराबन्दी आन्दोलन (Enclosure Movement) के समर्थकों में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आदम स्मिथ का नाम लिया जा सकता है। घेराबन्दी आन्दोलन के फलस्वरूप १७६०-१८४६ ई० तक की अवधि में ८० लाख एकड़ भूमि घेर ली गयी।

(२) गाँवों की अधिकतर भूमि छोटे छोटे भूमिपति और किसानों के हाथों से निकलकर जमींदारों के हाथ में आने लगी और बड़े-बड़े फार्म खुलने लगे। एक प्रकार से छोटे भूमिपतियों का वर्ग ही समाप्त हो गया। बड़े किसान और बड़े हो गये और छोटे किसान बिलकुल भूमिहीन बन गये। उन लोगों ने अपनी भूमि बड़े भूमिपतियों के हाथ बेच डाली। बड़े किसान और जमींदारों के लिए उत्तम बीज, उत्तम यन्त्र और उत्तम पशुओं का प्रबन्ध करना सरल था। परन्तु ये सुविधाएँ छोटे किसानों को उपलब्ध नहीं थी।

(३) छोटे किसान भूमिहीन बनकर या तो बड़े-बड़े जमींदारों के कृषि-श्रमिक बन गये या शहरों में जाकर कल-कारखानों में श्रमिक की तरह काम करने लगे। इस प्रकार एक नये श्रमिक वर्ग का जन्म हुआ।

(४) बड़े पैमाने पर सुधार की सम्भावना बड़े पैमाने की कृषि से अधिक स्पष्ट प्रतीत हुई।

(५) घेराबन्दी आन्दोलन के फलस्वरूप छोटे किसानों को कठिनाई का सामना करना पड़ा। भूमि के घिर जाने से उन लोगों को पशुओं को चराने तथा ईंधन का कष्ट होने लगा। कोयला अधिक महँगा होने के कारण छोटे किसान की पहुँच के बाहर था। ईंधन की लकड़ी और चारा उन्हें खरीदना पड़ने लगा। इससे उनकी आर्थिक दशा और भी खराब होन लगी।

(६) पहले छोटे-छोटे आकार पर तीन खेत की प्रथा के आधार पर कृषि होती थी जिससे प्रत्येक वर्ष कृषि-योग्य भूमि का एक-तिहाई भाग परती ही रह जाता था। अब भूमि का कुछ ही जमींदारों के हाथों में केन्द्रीकरण हो जाने और खेतों के घिर जाने के कारण बड़े-बड़े फार्म स्थापित हो गये जिनमें नये ढंग से कृषि होने लगी। कृषि अब पूँजीवादी आधार पर की जाने लगी।

(७) फसलों के आवर्तन या हेरफेर की नयी प्रणाली अपनायी जाने लगी जिसके अनुसार प्रत्येक चार वर्ष में क्रमश गेहूँ, जौ, तीन पत्ती घास तथा राई उत्पन्न की जाने लगी। भूमि की उर्वरा-शक्ति को बढाने तथा चारा प्राप्त करने के लिए शलजम की खेती भी बडे पैमाने पर होने लगी।

(८) कृषि-कला में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। बीज बोने, खेत जोतने और खेत काटने के लिए नये नये यन्त्रों का आविष्कार हुआ।

(९) पशु-नस्ल में भी सुधार के प्रयत्न किये गये जिससे अब पशु स्वस्थ और बलिष्ट होने लगे तथा उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि हुई।

(१०) पशु-प्रदर्शनियों, कृषक गोष्ठियो, कृषि-समितियों, कृषि-विद्यालयों और रसायनशालाओं की स्थापना होने लगी। सन् १८३८ में शाही कृषि समिति की स्थापना हुई और १८४८ में कृषि-रसायनशाला स्थापित की गयी।

(११) कृषि को सरकारी सहायता और समर्थन प्राप्त होने लगा। संसद में भूमिपतियों का अधिक प्रभाव होने के कारण एक ओर तो भूमि का राजनीतिक महत्त्व बढ गया और दूसरी ओर सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हो गया।

(१२) दलदली भूमि को भी ठीक करके कृषि-योग्य बनाने के प्रयत्न किये जाने लगे।

(१३) कृषि-उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई। फसलों का प्रति एकड उत्पादन बढ गया और अनेक नयी फसलें बोई जाने लगीं।

इससे पूर्व कि हम कृषि-क्रान्ति के अन्तर्गत होने वाली क्रान्तिकारी प्रणालियों का वर्णन करें, हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम उन कारणों पर विचार करें जिन्होंने कृषि-क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार की।

कृषि-क्रान्ति के कारण

(१) भूमि का महत्त्व बढ जाना—यह परिवर्तन राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक तीनों दृष्टिकोणों से हुआ। संसद के सदस्य चुने जाने के लिए तथा काउन्टीज (Counties) में *मत का अधिकार प्राप्त करने के लिए भूमि-पति होना* आवश्यक था। अत राजनीतिक प्रभाव मुख्यत भूमिपतियों के हाथों में आ गया था। १८वीं शताब्दी में भूमि का महत्त्व यहाँ तक बढ गया कि व्यापारी लोग भी समाज तथा राजनीति में अपना प्रभाव जमाने के लिए भूमि खरीदने लगे। इस प्रकार सभी का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ जिसके फलस्वरूप उसमें अनेक सुधार होने लगे।

(२) जनसंख्या की वृद्धि—देश की जनसंख्या में वृद्धि होने से खाद्य-पदार्थों की माँग भी तेजी से बढ़ी। फलस्वरूप, परती भूमि को कृषि-योग्य बनाया गया और कृषि-योग्य भूमि को अधिक उर्वरा बनाने के प्रयत्न किये गये। सन् १७६० के पश्चात् उद्योगों का विकास तेजी से होने लगा। औद्योगिक श्रमिकों की संख्या शहरों

उत्तरोत्तर बढती गयी जिनके लिए उचित मूल्यो पर खाद्य पदार्थों की आवश्यकता प्रतीत हुई। कृषि के परम्परागत तरीको से इस माँग की पूर्ति करना सम्भव नही था। अत सरकार, भू-स्वामियो एव कृषको ने कृषि की कठिनाइयो एव समस्याओ पर विचार करना आरम्भ कर दिया। ऐसी परिस्थितियो में क्रान्तिकारी परिवर्तन होना अवश्यम्भावी था।

(३) **कृषि में विज्ञान का प्रवेश**—उत्पादन बढाने के उद्देश्य से नवीन उपायो की खोज की गयी और वैज्ञानिको का ध्यान इन समस्याओं की ओर गया और उन लोगो ने नये यन्त्रो तथा कृषि की नवीन प्रणालियो का पता लगाया। फसलो के हेरफेर की नयी प्रणाली (Rotation of Crops) तथा बोने की ड्रिल प्रणाली (Drill System) की उपयोगिता से परिचित होकर अन्य कृषको ने भी इसे अपने खेतो पर अपनाया। इस क्षेत्र मे मुख्यत लार्ड टाउनशेण्ड एव जेथरोटल के कार्य प्रशसनीय रहे।

(४) **कृषि सम्बन्धी नये विचारों का प्रसार**—उस समय यातायात के साधन इतने कम थे कि कृषि सम्बन्धी नये-नये विचारो तथा तरीको का ज्ञान दूर-दूर स्थित गाँवो तक पहुँचना बहुत ही कठिन था। किन्तु इसके बिना क्रान्ति हो भी कैसे सकती थी। अत इस क्षेत्र म भी कई लोगो ने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया जिनका वर्णन आगे किया गया है। 42786

(५) **कृषि मे पूँजी का प्रवेश**—उद्योग की भाँति कृषि मे भी पूँजी के बिना क्रान्ति सम्भव न थी। कृषि के तरीको मे सुधार लाने के लिए पूँजी की आवश्यकता थी और यह पूँजी बडे-बडे भूमिपतियो तथा व्यापारियो ने लगायी।

(६) **गाँवों मे श्रमिको की कमी**—औद्योगिक क्रान्ति के बाद अनेक श्रमिक गाँवो को छोडकर शहरों के उद्योगो की ओर आकर्षित होने लगे। इससे गाँवो मे श्रमिको की कमी होन लगी और उनकी मजदूरी भी अधिक होने लगी। अत भू-स्वामियो के लिए कृषि के नये तरीके अपनाना अनिवार्य हो गया। अनेक भूस्वामियो ने भेड-पालन आरम्भ कर दिया ताकि श्रमिको की कम सख्या से काम चलाया जा सके।

(७) **औद्योगिक क्रान्ति**—यद्यपि कृषि म परिवर्तन औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ होने के पहले ही शुरु हो गये थे किन्तु सन् १७६० के बाद लम्बे काल तक कृषि एव उद्योग दोनो मे ही परिवर्तन होते रह। औद्योगिक क्रान्ति द्वारा परिवर्तित दशाओ ने कृषि-क्रान्ति को और आगे बढाया। उद्योगो के लिए कच्चे माल की तथा श्रमिको के लिए खाद्यान्नो की बढती हुई आवश्यकता की पूर्ति विदेशो के साथ-साथ देशी साधनो से प्राप्त करने की योजनाओ पर विचार किया जाने लगा और इस भावना ने कृषि में सुधार की ओर लोगो को प्रेरित किया।

(८) **घेराबन्दी आन्दोलन (Enclosure Movement)**—यह आन्दोलन यद्यपि कृषि क्रान्ति का एक प्रमुख अग था, किन्तु साथ ही कृषि मे महत्वपूर्ण

परिवर्तनो का यह एक कारण भी बन गया। ब्रिटिश पार्लियामेंट मे भूस्वामियो का जोर था अतः घेराबन्दी के लिए उन्हे वैधानिक सहयोग मिल गया और पार्लियामेन्ट ने अधिनियम पास करके चकबन्दी के लिए आयुक्तो (Commissioners) की नियुक्ति कर दी। *अनेक कृषको को बेदखल कर दिया गया।* इस प्रकार खेतो के बड़े-बड़े चक भूमिपतियो (Lords) के हो गये। चरागाहो को भी उन्होने हथिया कर घेर लिया। छोटे कृषकों के लिए यह कठिन था कि वे अपने खेतो पर मेड बनाकर उनकी घेराबन्दी पर पूँजी लगाते। अत छोटे-छोटे किसान गाँवों से उखड कर शहरों की ओर आने लगे। इस उथल-पुथल ने कृषि के स्वरूप एव तरीको मे परिवर्तन लाने मे प्रोत्साहन दिया।

कृषि-प्रक्रिया मे सुधार
(Improvements in Agricultural Techniques)

कृषि-क्रान्ति के कारण वैज्ञानिक यन्त्रो का प्रयोग हुआ जिससे बहुत से कृषि-श्रमिक बेकार हो गये। कृषि क्रान्ति के फलस्वरूप खाद्य पदार्थों का उत्पादन बढ गया। *कृषि-क्रान्ति के कारण बहुत से कच्चे पदार्थों का उत्पादन भी देश मे होने लगा।* १७वी और १८वी शताब्दी मे उत्तम बीजो के उपयोग और मिट्टी के प्रयोग से उत्पादन मे वृद्धि हुई, तथा कृषि मे यन्त्रीकरण और वैज्ञानिक व्यवस्था का आविर्भाव भी हुआ। कृषि-प्रक्रिया मे किये गये महत्त्वपूर्ण परिवर्तन निम्न थे

(१) पूंजीवादी पद्धति द्वारा कृषि—घेराबन्दी आन्दोलन का विरोध धीरे-धीरे कम होता जा रहा था, उसका कारण विशेष तौर से यह था कि बड़े-बड़े खेतों का उपयोग कृषि-पद्धति के सुधार के लिए किया जाता था। पूँजीपतियो ने अपनी *पूँजी का अधिकाश भाग भूमि मे लगाया था। इस प्रकार कृषि का व्यापारीकरण* होने लगा। साथ ही जहाँ मूल्यो के उतार-चढाव मे छोटे किसान परिस्थिति का सामना नही कर सकते थे, वहाँ पूँजीपतियो को अत्यन्त लाभ हुआ। इससे खेत बड़े-बड़े हुए और बड़े पैमाने की कृषि-पद्धति अस्तित्व मे आयी।

(२) डच या डेनिश कृषि-पद्धति—प्रारम्भिक रूप मे कृषि-पद्धति के विकास की कहानी हालैण्ड की ऋणी है। डच लोग पशु-पालन और डेरी-फार्मिंग मे बहुत निपुण थे। सत्रहवी शताब्दी मे इगलैण्ड मे पशु-पालन के स्तर मे सुधार करके कृषि को उन्नत करने के प्रयत्न किये गये। मोटे पशुओ के आयात का वैधानिक रूप मे निरोध किया गया और अठारहवीं शताब्दी के मध्य मे पशु-नस्ल मे सुधार किया गया। हालैण्ड मे पशु-पालन और नस्ल-सुधार के लिए कन्दमूल और तिपती घास *पैदा की जाती थी। इगलैण्ड मे भी इसको उत्पन्न करने के प्रयत्न किये गये परन्तु* यह प्रयोग सफल नही रहा।

(३) टल-फार्मिंग (Tullian Farming)—जेथरो टल (Jethro Tull) *(१६७४-१७४१) नामक विद्वान को कृषि म क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का श्रेय है।* उसने जिस कृषि-पद्धति का प्रारम्भ किया उसे टल-पद्धति कहते हैं। उसने ड्रिल

(Drill) नामक एक मशीन का आविष्कार किया और एक अश्वचालित फावड़े (Horse-driven Hoeing) का भी आविष्कार किया। इस प्रकार उसकी पद्धति अश्वचालित फावड़ा और ड्रिल पद्धति कहलाई। ड्रिल यन्त्र के सहारे पंक्ति-बद्ध रूप में बीज बोया जाता था और पौधो की आपसी दूरी भी यथासम्भव समान रहती थी। एक एकड़ भूमि में दो पौण्ड बीज में ही काम चल जाता था जबकि पहले दस पौण्ड लगता था। अश्वचालित फावड़े के फलस्वरूप प्रत्येक पौधे को पर्याप्त मात्रा में मिट्टी मिल जाती थी।

जेथरोटल (Jethro Tull) का जन्म बर्कशायर में १६७४ में हुआ। उनके पिता के पास कुछ भूमि थी। जेथरोटल की शिक्षा-दीक्षा एटन और ऑक्सफोर्ड में हुई। तत्पश्चात् उन्होंने यूरोप महाद्वीप की यात्रा की। उन्होंने १६९९ में किसान के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया और क्रोमार्श (Crowmarsh) जो टेम्स नदी के पास है, खेत लिया। उन्होंने आलू, चुकन्दर, चारा इत्यादि बोने का प्रयत्न किया। इन्हीं प्रयोगों के अन्तर्गत उन्होंने उपर्युक्त आविष्कार किये। सन् १७०९ में वे पुराने खेत में माउन्ट प्रोसपरस (Mount Prosperous) के नवीन खेत पर स्थानान्तरित हुए। सन् १७११ में उन्हें फ्रांस जाना पड़ा, वहाँ से अनुभव प्राप्त कर लौटने पर उन्होंने गेहूँ और आलू उगाने का प्रयत्न किया।

सन् १७३१ में जेथरोटल ने 'नवीन अश्वचालित कृषि-पद्धति' (New Horse Hoeing Husbandry) नामक पुस्तक लिखी जिसमें कृषि सम्बन्धी नवीन परीक्षणों का विवरण था। आरम्भ में पुस्तक अधिक प्रचलित नहीं हुई किन्तु जब कृषि में लोगों की रुचि बढ़ने लगी तब जेथरोटल के प्रयोगों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। लोग उसके खेत पर निरीक्षण हेतु आने लगे और जब सन् १७४१ में उसकी मृत्यु हुई तो उसके प्रयोगों को उन व्यक्तियों ने अपनाया जो पूँजीपति थे। इन प्रयोगों ने कृषि के व्ययों में कमी की और फसलों के उत्पादन को बढ़ाया।

(४) कृषक जार्ज (Farmer George)—अठारहवीं शताब्दी में इंगलैंड में कई जमींदार स्वेच्छा से कृषि करते और उसके परीक्षणों में रुचि रखते थे। ऐसे रुचिशील व्यक्तियों में सम्राट जार्ज तृतीय (जिनको प्रजा-जन स्नेहपूर्वक कृषक जार्ज कहते थे) का नाम भी लिया जा सकता है। उसने विन्डसर (Windsor) में एक आदर्श खेत स्थापित किया। यह फार्म एक आदर्श फार्म बन गया और इसने अन्य भूमिपतियों को भी नवीन परीक्षणों के लिए प्रेरित किया। सम्राट जार्ज जैसे व्यक्तियों द्वारा कृषि सुधार में रुचि लेने से कृषि क्षेत्रों को अत्यधिक सम्बल मिला।

(५) नोरफाक कृषि-पद्धति (*Norfolk System*)—*इन्हीं जमींदारों में* लोर्ड टाउनशेन्ड (Lord Townshend) का नाम अधिक प्रसिद्ध है जो रोबर्ट वालपाल का सम्बन्धी था और हालैण्ड में कुछ समय राजदूत रहा। जब उसने सेवा से अवकाश ग्रहण किया तो वह नोरफाक चला गया, वह जेथरोटल का बड़ा

प्रशसक था और उसने उसकी ड्रिल और अश्वचालित फावडा पद्धति अपनाई, साथ ही फसलो के आवर्तन का प्रसिद्ध तरीका भी खोज निकाला जो चतुर्थ-स्तरीय आवर्तन-प्रणाली (Four Fold Rotation of Crops) कहलाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत एक के पीछे दूसरे वर्ष मे क्रमश गेहूँ, रामपर्ण, जौ और शलजम की खेती की जाती थी। इससे भूमि मे पुन उर्वरा शक्ति उत्पन्न हो जाती थी। कन्दमूल (शलजम आदि) शरद ऋतु मे पशुओं के खाने के काम मे आते थे। लार्ड टाउनशेन्ड द्वारा प्रचलित फसलो के हेरफेर की यह नयी प्रणाली अत्यन्त सफल साबित हुई। यह प्रणाली पुरानी प्रणाली से भिन्न थी। नयी प्रणाली एव पुरानी प्रणाली मे अन्तर इस प्रकार था

वर्ष	फसलो के हेर-फेर की	
	पुरानी प्रणाली	नोरफाक प्रणाली
पहला	गेहूँ	गेहूँ, जौ अथवा जई
दूसरा	जौ अथवा जई (oats)	शलजम या त्रिपत्ती घास
तीसरा	परती (Fallow)	गेहूँ, जौ या जई
चौथा	गेहूँ	आलू या चारा
पाँचवाँ	जौ या जई (oats)	गेहूँ जौ या जई
छठवाँ	परती (Fallow)	शलजम या त्रिपत्ती घास

इस प्रणाली मे भूमि को परती (Fallow) छोडने की आवश्यकता न रही तथा शलजम अथवा घास के उत्पादन ने पशुओं के लिए शीत ऋतु मे चार की समस्या हल कर दी।

(६) पशु-नस्ल मे सुधार—इस क्षेत्र मे पशु नस्ल मे सुधार के साथ चार की पूर्ति पर भी ध्यान दिया गया। रोबर्ट बेकवेल (Robert Bakwell) (१७२५-१७९५) ने जो लिसस्टर शायर का रहने वाला था, ग्राम-ब्रीडिंग द्वारा पशु-नस्ल सुधार मे योग दिया। उसने अपने परीक्षणो का विवरण लिखकर सन् १८२२ मे 'शॉर्ट हॉर्न' (Short Horn) नामक पुस्तक के रूप मे उन्हे प्रकाशित किया।

बेकवेल के कार्य को थोमस विलियम कोक (१७५२-१८४२) अर्ल ऑफ लिसस्टर, ने अधिक आगे बढाया और प्रसिद्धि प्राप्त की। कोक ने तत्सम्बन्धी मेलों का आयोजन किया।

(७) कृषि-मण्डल तथा आर्थर यग—कृषि की नवीन पद्धति को प्रसिद्ध करने के लिए पिट ने सन १७९३ मे कृषि-मण्डल (Board of Agriculture) की स्थापना की जिसका सचिव श्री आर्थर यग (Arthur Young) को नियुक्त किया गया। जब तक यह कृषि-मण्डल कार्य करता रहा, उसने प्रकाशन और पुरस्कार द्वारा कार्य और प्रणाली के प्रचार मे अभिवृद्धि की। यद्यपि यह मण्डल गैर-सरकारी था और सन् १८२२ मे इसका अन्त हो गया, परन्तु इस क्षेत्र मे इसका कार्य सराहनीय रहा।

आर्थर यंग ने कृषि क्षेत्र में हो रहे नवीन प्रयोगों एवं परीक्षणों का गहराई से अध्ययन किया। कृषि मण्डल के सचिव के पद पर रहकर उन्होंने इन नवीन सुधारों के अपनाये जाने पर अत्यन्त बल दिया।

कृषि-प्रणाली में आवश्यक सुधार, परिवर्तन, संशोधन और विकास करने में कृषि विशेषज्ञों ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है, इन्हें कृषि-क्रान्ति का अग्रदूत (Pioneers of Agricultural Revolution) कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस प्रकार की परम्परा सन् १७२६ में रिचर्ड वेंडले की पुस्तक "कृषि और बागवानी" (Husbandry and Gardening) से प्रारम्भ हुई और आर्थर यंग और विलियम कोक के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रयोगों के साथ समाप्त हुई।

(८) भूमि सुधार (Land Reclamation)—सन् १७६० से १८२० तक भूमि को कृषि-योग्य बनाने के प्रयत्नों में भी प्रगति हुई। दलदली भूमि को कृषि-योग्य बनाया गया। इस कार्य का अन्वेषक जोसेफ एल्किंग्टन किसान था (जो कि वारविकशायर का रहने वाला था)। पानी की नालियों का व्यावहारिक ढंग जेम्स स्मिथ द्वारा निकाला गया (जो कि पर्थशायर, स्काटलैंड में सूती-वस्त्र उद्योग का व्यवस्थापक था)।

(९) रासायनिक खाद और वैज्ञानिक यन्त्र—कृषि-क्रान्ति के फलस्वरूप मशीनों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। हल, औजार सभी लोहे के बनने लगे। रासायनिक खाद का उपयोग भी दिन-व-दिन बढ़ने लगा। लीबिग (Leibig) की प्रसिद्ध पुस्तक "Chemistry in its Application to Agriculture and Physiology" के प्रकाशन के समय सन् १८४० में यह प्रचार बढ़ा। जोन बेनेटलॉज तथा उसके सहयोगियों ने (जो लीबिग के शिष्य थे) लीबिग की खोजों को इंगलैण्ड में प्रसारित किया। श्री लॉज ने लन्दन में एक रासायनिक-खाद का कारखाना स्थापित किया जिसका प्रचार व प्रयोग दिन-व दिन बढ़ता गया।

(१०) सरकारी नीति—सरकार भी कृषि की ओर पहले से अब कहीं अधिक ध्यान देने लगी। संसद में भूमिपतियों का ही प्रभाव अधिक था और सरकार पर राजा की अपेक्षा अब संसद का ही अधिकार हो गया। अतः सरकारी यन्त्र द्वारा कृषि-क्रान्ति में बड़ी सहायता मिली। घेराबन्दी आन्दोलन के पक्ष में सरकार ने कानून बनाये। सरकार ने शाही कृषि-समिति (Royal Agricultural Society) का संगठन किया। इस संस्था ने कृषि में नयी जान डाल दी। इसके अतिरिक्त कृषि-रसायन परिषद (Agricultural Chemistry Association) का निर्माण १८४२ ई० में हुआ। कृषि में विकास करने के उद्देश्य से किसान-क्लब (Farmer's Club) भी खोले गये।

उपर्युक्त विभिन्न परिवर्तनों ने कृषि के आधार, संगठन एवं तरीकों में इतना महत्त्वपूर्ण सुधार कर दिया कि विद्वानों ने परिवर्तनों तथा सुधारों की इस शृंखला को कृषि-क्रान्ति (Agricultural Revolution) के नाम से सम्बोधित करना आरम्भ

कर दिया। इगलैण्ड की कृषि-क्रान्ति परिवर्तित परिस्थितियो की चरम सीमा थी। एक साथ कृषि के ढग, ढांचे व आकार मे परिवर्तन हुए और उनका प्रभाव सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक सभी क्षेत्रो पर गहरा पड़ा।

कृषि-क्रान्ति के प्रभाव

(१) भूमि का आधिपत्य थोटे से हाथो मे केन्द्रित हो गया।

(२) छोटी-छोटी इकाई की जगह बडे-बडे कृषि-फार्म स्थापित हो गये।

(३) गाँवो मे एक नये वर्ग कृषक-श्रमिक (Agricultural Labour) का जन्म हुआ। इस वर्ग मे वे लोग आये जो भूमिहीन हो गये।

(४) पूंजीवादी कृषि (Capitalistic Agriculture) का विकास हुआ।

(५) कृषि के तरीके मे सुधार हुआ और उससे उपज बढी।

(६) कृषि-उद्योग से अधिक लाभ होने लगा और भूमि का मूल्य तथा लगान वढ गया।

(७) कृषि-प्रथा के यन्त्रीकरण की ओर प्रगति हुई।

(८) छोटे-छोटे किसान बरबाद हो गये। घेराबन्दी के लिए और नये प्रयोगों को अपनाने के लिए आवश्यक पूंजी उनके पास नहीं थी।

(९) कृषि मे वाणिज्यीकरण एव विशिष्टीकरण की प्रवृत्तियां बढ गयी। खाद्यान्नो एव चारे आदि के अतिरिक्त फलो एव सब्जियो का उत्पादन किया जाने लगा। डेरी-फार्मिंग, भेड-पालन एव कुक्कुट पालन की ओर भी लोगो का अधिक ध्यान गया।

(१०) कृषि-क्रान्ति ने उद्योगो के लिए आवश्यक श्रम पूर्ति को सम्भव बना दिया। घेराबन्दी, बेदखली एव पूंजीवादी बडे पैमाने की कृषि से पीडित छोटे कृषक एव भूमिहीन व्यक्ति जीविका की खोज मे शहरो की ओर आये जहाँ औद्योगिक क्रान्ति के बाद नये-नये उद्योगो का विकास हो रहा था। इससे ग्रामीण जनसंख्या मे कमी होती गयी और धीरे-धीरे शहरो की जनसंख्या बढी।

भारी संख्या मे व्यक्तियो का गाँवो से निष्कासन एव शहरो मे जमाव एक बहुत बडी समस्या बन गया और इसके कारण अन्य समस्याएँ उत्पन्न हुई। भूस्वामियों (Lords) की छत्रछाया में व्यक्तियो के समूह द्वारा अपनाई जानेवाली कृषि प्रणाली बिलकुल समाप्त हो गयी और उसका स्थान ऐसी व्यक्तिगत पूंजीवादी कृषि ने ले लिया जिसमे कृषि वेतनभोगी श्रमिको द्वारा की जाती थी। तत्कालीन सामाजिक आदर्शो से प्रभावित होकर धनवानो मे भूमिपति बनने की लालसा बढ गयी क्योंकि इसमे वे पार्लियामेन्ट म अपने राजनीतिक प्रभाव को बढा सकते थे। चकबन्दी, घेराबन्दी और अधिक पूंजी एव यन्त्रो के प्रयोग ने कृषि फसलो के उत्पादन म अवश्य ही वृद्धि की जिसका फल यह हुआ कि सन् १८५० से १८७३ तक ब्रिटिश कृषि म स्वर्ण युग का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु साथ ही साधारण कृषक एव भूमिहीन व्यक्ति सामन्तवादी भूमिपतियो के चगुल से निकलकर औद्योगिक पूंजीपतियो के चगुल मे फँस गये।

इससे उनकी दशा पहले से और अधिक दयनीय हो गयी जिसे सुधारने के लिए उन्हें लम्बा संघर्ष करना पड़ा।

घेराबन्दी या समावरण आन्दोलन (Enclosure Movement)

इंगलैंड के इतिहास में मैनोरियल प्रथा की समाप्ति के पश्चात् कृषि-व्यवस्था में एक परिवर्तन हुआ जिसे समावरण आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। इस आन्दोलन का ऐतिहासिक रूप में अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि वैसे तो यह आन्दोलन मैनोरियल कृषि-पद्धति के अन्तर्गत भी विद्यमान था, परन्तु प्रकट रूप में उस ओर कोई प्रगति नहीं हुई थी, क्योंकि मैनोरियल भू-स्वामी पद्धति के अन्तर्गत कृषि कार्य का सम्पादन लाभदायक समझा जाता रहा। सन् १२३५ का मेरटन अधिनियम (Statute of Merton) वह ऐतिहासिक प्रमाण है जिसके अन्तर्गत मैनोरियल भू-स्वामी को चरागाह के लिए भूमि छोड़कर समावृत खेतों का अधिकार दिया गया था। इससे स्पष्ट है कि समावरण आन्दोलन की प्रवृत्ति बहुत पहले से ही विद्यमान थी। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में इस प्रवृत्ति ने अधिक जोर पकड़ा क्योंकि यह समय मैनोरियल प्रथा की समाप्ति और काली मौत के आविर्भाव का था।

इस समय तीन प्रकार की काश्तकारी-प्रथा अस्तित्व में थी

(१) स्वतन्त्र काश्तकार (Free holder),
(२) परम्परागत काश्तकार (Copy or customary holder),
(३) पट्टेदार (Lease holder)।

इसके अन्तर्गत प्रथम श्रेणी के काश्तकार को इंगलैंड के कॉमन-लॉ (Common Law) के अन्तर्गत संरक्षण प्राप्त था जिसके फलस्वरूप काश्तकार को जमींदार भूमि से नहीं हटा सकता था। द्वितीय श्रेणी के काश्तकार को उस दशा में इंगलैंड के कॉमन-लॉ के अन्तर्गत संरक्षण प्राप्त था जबकि वह जमींदार के खातों (Records) से यह प्रमाणित कर सके कि जो भूमि वह जोत रहा है, वह उसके नाम लिखी हुई है। तीसरी श्रेणी के काश्तकार को पट्टे की अवधि समाप्त होने पर भूमि से हटाया जा सकता था।

इस पृष्ठभूमि में यह कहा जा सकता है कि समावरण आन्दोलन के समय की परिस्थितियाँ आन्दोलन के अनुकूल ही थीं। समावरण आन्दोलन के ऐतिहासिक अध्ययन के रूप में इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है

(१) प्रथम समावरण या घेराबन्दी आन्दोलन,
(२) द्वितीय समावरण या घेराबन्दी आन्दोलन।

प्रथम समावरण या घेराबन्दी आन्दोलन (First Enclosure Movement)

प्रथम समावरण आन्दोलन को कभी-कभी भेड़-पालन आन्दोलन के नाम से

पुकारा जाता है, क्योंकि इस आन्दोलन के काल में भूमि का समावरण भेड-पालन व्यवसाय के लिए अधिक उपयुक्त समझा गया। काली मौत या बुखार के कारण ग्रामीण क्षेत्रों की दो-तिहाई जनसंख्या समाप्त हो गयी थी और जो अवशिष्ट रही वह कृषि-कार्य के लिए उत्सुक नहीं थी तथा मजदूरी की दर भी ऊँची थी जब कि ऊन की कीमतें बढ़ रही थीं क्योंकि देश और विदेश में उसकी माँग में आशातीत वृद्धि हुई थी। अन्नोत्पादन भेड-पालन से अधिक परिश्रम का कार्य था। सरकार ने अन्न के निर्यात को १४६१ में रोक दिया था जिससे यह व्यवसाय अधिक लाभदायक नहीं रहा। इन सभी कारणों से अन्नोत्पादन के स्थान पर भेड़ पालन का व्यवसाय अधिक अनुकूल समझा जाने लगा। जबकि कृषि-योग्य भूमि को इस कठिनाई का सामना करना पड रहा था, "भेडों के चरण सोना उगल रहे थे।"[1]

उपर्युक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त १५वीं तथा १६वीं शताब्दी में कुछ अन्य कारण भी रहे जिन्होंने भेड-पालन को अधिक उपयोगी बनाया। कृषि योग्य भूमि चरागाहों में परिणत की गयी और जो भूमि निरन्तर कृषि-कार्य में अनुपयोगी हो गयी थी उसे चरागाह में परिणत कर दिया गया। किन्तु श्रमिकों का अभाव सबसे महत्त्वपूर्ण कारण था जिसने भू-स्वामियों को इस बात के लिए विवश किया कि कम श्रमिकों वाले कार्य का नियोजन किया जाय। शहरों में रहने वाले धनिक वर्ग ने भी पूँजी नियोजन का माध्यम खोजना चाहा तथा धन को भेड-पालन में लगाना चाहा। उन्होंने भू स्वामियों से बहुत बडे क्षेत्र लगान पर ले लिए और उन्हें भेड़ क्षेत्रों (Sheep farms) में परिणत कर दिया। साथ ही ऐसे धनिक वर्ग द्वारा भूमि के बड़े भागों को बेचा गया, विशेषत मठों को (जिसका विघटन आरम्भ हो गया था)। लन्दन के नागरिकों ने सरे (Surrey) में मैनर या गाँव खरीदे तथा हेनरी अष्टम (Henery VIII) से ऋणों के भुगतान के रूप में इस प्रकार की सहायता प्राप्त की। अत यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि भेड-पालन इसीलिए ही महत्त्वपूर्ण नहीं था कि उसने कृषि-योग्य भूमि को चरागाहों में परिणत किया वरन् इसलिए भी महत्त्वपूर्ण था कि उसने पूँजी को इस ओर आकर्षित किया जिससे आगे चलकर व्यापारिक ढंग की पूँजीवादी कृषि का जन्म हुआ।

इस आन्दोलन की तीव्र प्रगति के निम्नलिखित कारण थे

(१) भूमि का मूल्य आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कारणों से उत्तरोत्तर बढ़ता गया। संसद में चुने जाने के लिए भूमि का स्वामी होना आवश्यक था। अत भूमिपतियों का ही पार्लियामेन्ट पर अधिकार होता था इसके अतिरिक्त प्राय भूमिपति ही स्थानीय बडा अधिकारी होता था। भूमि का उपयोग स्वयं अनाज उत्पन्न करने या लगान पर छोटे किसानों को देने में किया जा सकता था। दोनों दशाओं में लाभ

---

[1] Prathero, *Pioneers and Progress of English Farming*, p 21

ही लाभ था, अतः सभी भूमि खरीदना चाहते थे। एक ही स्थान पर अधिक भूमि रखने का प्रयास सभी करने लगे।

(२) व्यापार की उन्नति के साथ-साथ व्यापारियों का धन बढ़ा और वे अपनी पूँजी को भूमि में लगाने लगे। इसके पीछे उनका उद्देश्य नाम कमाने के साथ-साथ राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना भी था।

(३) देश की जनसंख्या बढ़ रही थी और इसलिए खाद्य पदार्थों की बढ़ी हुई माँग के लिए आवश्यक था कि खेतों की पैदावार बढ़ाई जावे। उत्पादन बढ़ाने के लिए बन्द खेतों से खेती करना आवश्यक था।

(४) संसद मुख्यतः भूमिपतियों के ही अधिकार में थी। अतः घेराबन्दी अधिनियम स्वीकृत कराने में कोई कठिनाई नहीं होती थी।

आन्दोलन का प्रभाव

(१) छोटे-छोटे खेतों के स्थान पर बड़े-बड़े खेत बन गये और बिखरे हुए खेतों के टुकड़ों को मिलाकर उनकी चकबन्दी कर दी गयी।

(२) प्रत्येक किसान अपने खेतों का उपयोग अपनी सुविधा और पसन्द के अनुसार कर सकता था। उसे अनाज बोने तथा कृषि सुधार सम्बन्धी अन्य कार्य करने में अपने पड़ोसियों के मुँह ताकने और उनकी स्वीकृति लेने की आवश्यकता नहीं रही।

(३) खेती करने योग्य जमीन परती नहीं छोड़ी जाने लगी जैसा पहले द्वि-क्षेत्रीय प्रणाली (Two Field System) अथवा त्रि-क्षेत्रीय प्रणाली (Three Field System) के अन्तर्गत होता था।

(४) खेत के प्लाट बड़े होने के कारण जोतने, खाद डालने व देख-भाल में आसानी होने लगी। फसल का पशुओं से बचाव भी होने लगा।

(५) कृषि का ढंग भी बदल गया। अब शलजम और क्लोवर घास की खेती होने लगी।

(६) खेतों की नालियों में भी सुधार हुआ और दलदल भूमि में भी खेती की जाने लगी।

(७) कृषि में पूँजीवाद का पदार्पण हुआ और उद्योग की तरह कृषि में भी पूँजी लगाई जाने लगी।

(८) कृषि-कार्य में विज्ञान का प्रवेश हुआ और कृषि के नये-नये वैज्ञानिक तरीके व्यवहार में आने लगे।

(९) इस आन्दोलन के कारण बहुत से लोग बेकार होकर शहर चले गये और वहाँ स्थापित होने वाले नये-नये कारखानों में मजदूर का काम करने लगे, इस तरह औद्योगिक क्रान्ति को सहायता मिली।

किन्तु घेराबन्दी के कुछ अप्रिय फल भी हुए, जैसे

(१) गरीब किसानों के लिए यह आन्दोलन आपत्तियों का जन्मदाता सिद्ध

हुआ। उनकी भूमि छीन ली गयी। जिनके पास थोडी-सी भूमि रही भी वे उससे अपने परिवार का पोषण नही कर सकते थे, चूंकि अब वे पहले की तरह परती जमीन और जगल का उपयोग नही कर सकते थे, अत उनको भी विवशत अपनी भूमि बेच देनी पडती थी।

(२) गाँव मे जनसख्या का एक महत्त्वपूर्ण भाग बेकार होकर शहरो की ओर चला गया और गाँव खाली हो गये। देश मे बेकारी की समस्या विकट हो गयी और समाज मे श्रमिको का एक नया वर्ग उत्पन्न हो गया।

(३) गाँवो के गृह-उद्योग भी नष्ट होने लगे और योग्य कारीगर शहरो मे जाकर कारखानो के मजदूर होने पर विवश हुए।

द्वितीय समावरण या घेराबन्दी आन्दोलन
(Second Enclosure Movement)

द्वितीय समावरण आन्दोलन व्यक्तिगत कृषि को व्यापारिक कृषि के रूप मे बदलने मे सहायक सिद्ध हुआ। इस सम्बन्ध म अठारहवी शताब्दी के मध्य से १६वी शताब्दी के मध्य तक तीन महत्त्वपूर्ण तथ्य दृष्टिगोचर होते है

(१) पूंजी का कृषि क्षेत्र मे प्रवेश।

(२) औद्योगिक क्रान्ति के कारण मानव आवश्यकताओं और दृष्टिकोणो मे परिवर्तन।

(३) वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के लिए बडे खेतो की आवश्यकता पर जोर दिया जाना।

समावरण आन्दोलन का कार्यक्रम प्रारम्भिक रूप मे व्यक्तिगत समझौतो के आधार पर सम्पादित किया था। बाद मे कोर्ट ऑफ चान्सरी (Court of Chancery or the Exchequer) मे इनका पजीकरण (Registration) होने लगा। व्यक्तिगत समझौतो मे लडाई-झगडो के फलस्वरूप पार्लियामेन्ट को व्यक्तिगत अधिनियम स्वीकार करना आवश्यक हो गया। ससद या पार्लियामेन्ट ने नये समावृत खेतो की जाँच-पडताल के लिए आयुक्त नियुक्त किय। सन् १८०६ मे सामान्य समावरण अधिनियम (General Enclosure Act) स्वीकार किया गया।

इस प्रकार सन् १७०० के बाद डेढ सौ वर्षों म घराबन्दी के लिए अनक अधिनियम पास किये गय और इनके अन्तगत लगभग ६५ लाख एकड भूमि का समावरण किया गया। प्रारम्भिक वर्षों मे समावरण आन्दोलन की दिशा मे अनक कठिनाइयो का सामना करना पडा। सबस बडी कठिनाई यह थी कि यह कार्य अत्यन्त खर्चीला था। अधिनियम स्वीकार करना भूमि के सर्वेक्षण, नक्शो के निर्माण, आयुक्तो की फीस एव अन्य विविध कार्यो मे पर्याप्त धन व्यय हो जाता था। यह सब होते हुए भी आन्दोलन उपयोगी सिद्ध हुआ।

कृषि-क्रान्ति ने कृषि-व्यवस्था को नवीन आधार पर अवस्थित कर दिया। जहाँ एक ओर कृषि क्रान्ति ने वैज्ञानिक आविष्कार और पद्धतियो का सृजन किया,

वहाँ दूसरी ओर कृषि के व्यापारवादी दृष्टिकोण को भी अधिक प्रोत्साहन दिया गया। कृषि अब सिर्फ जीविका का साधन न होकर एक व्यापार हो गया जिसे लाभ के दृष्टिकोण से अपनाया जाने लगा अतः यह कहना युक्तिसंगत ही होगा कि कृषि-क्रान्ति उन परिवर्तनों की अविरल शृंखला है जो आधुनिक शताब्दी तक इस उद्योग को प्रभावित करते रहे हैं।

कृषि उद्योग की प्रगति

कृषि-क्रान्ति के फलस्वरूप पुरानी मध्ययुगीन मैनोरियल प्रथा के स्थान पर नवीन ढंग की वैज्ञानिक कृषि-पद्धति का धीरे-धीरे विकास हो रहा था। अब कृषि का आधार आत्म निर्भरता के स्थान पर व्यापारीकरण अधिक हो गया था। इसमें उसका क्षेत्र राष्ट्रीय सीमा लाँघकर अन्तरराष्ट्रीय सीमा तक पहुँच रहा था। ये सभी परिवर्तन और विकास सन् १८५० या उसके आसपास से प्रारम्भ होते हैं। इन एक सौ दस वर्षों में कृषि को कई परिवर्तनों से निकलना पड़ा। इन परिवर्तनों तथा ऐतिहासिक क्रमों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है

(१) कृषि का स्वर्ण-युग (Golden Age of British Agriculture)—१८५० से १८७३ तक।

(२) मन्दी का काल (Depression Period)—सन् १८७४ से १९१४ तक।

१ कृषि का स्वर्ण युग
(Golden Age of Agriculture—1850-1873)

इंगलैंड के आर्थिक इतिहास में सन् १८५०-१८७३ का काल कृषि के स्वर्ण युग के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि इसी काल में कृषि के विविध क्षेत्रों में बहुत ही उन्नति हुई। सन् १८४६ में अन्न कानून (Corn Law) हटा दिया गया था जिसके फलस्वरूप विदेशों से अन्न के आयात की सुविधा हो गयी परन्तु उचित लाभ प्राप्त नहीं हो सका क्योंकि विदेशों में जनसंख्या की वृद्धि ने खाद्य की माँग को उन देशों में भी बढ़ा दिया था। अन्न कानून हटाने का एक कारण यह भी था कि इंगलैंड की कृषि में हो रही प्रगति ने स्थायित्व प्राप्त कर लिया था, उसे अन्न कानून हटाकर विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के लिए प्रेरित किया गया। फिर भी खाद्य पदार्थ सस्ते नहीं हुए। विश्व के बड़े उत्पादक देश जो अपने उत्पादन का अधिकांश भाग इंगलैंड के बाजारों में भेजते थे, १८७० में युद्ध में व्यस्त हो गये अतः निर्यातों के द्वार अवरुद्ध हो गये। इसी समय अमरीका आन्तरिक कलह में, रूस क्रीमियन युद्ध की विभीषिका में, जर्मनी अपने पड़ोसी युद्धों में व्यस्त थे। वस्तुओं के मूल्यों में धीरे-धीरे वृद्धि होती जा रही थी क्योंकि कैलीफोर्निया और आस्ट्रेलिया की खदानों से स्वर्ण का निकास आरम्भ हो गया था। मजदूरी बढ़ रही थी तथा माँस और रोटी का उपभोग बढ़ता जा रहा था। रेलमार्गों का विस्तार हो रहा था जिससे कृषि उत्पादन

बाजारो तक पहुँचाने मे आसानी हो रही थी और कृषि यन्त्रो और औजारो की उपलब्धि सस्ती होती जा रही थी।

इसी अवधि मे कृषि के क्षेत्र मे कुछ बहुत ही आधारभूत परिवर्तन हुए। अन्न के उत्पादन को बढाने के लिए तरह-तरह के उपाय काम मे लाये जाने लगे। कृषि मे विज्ञान का प्रवेश हुआ और खेत काटने, जुताई करने, बीज बोने तथा फसलें तैयार करने मे यन्त्रो का प्रयोग होने लगा। कृषि रसायन मे काफी विकास हुआ और एक रसायन कारखाना डेप्टफोर्ड मे खोला गया जिसमे रासायनिक खाद तैयार की जाती थी, फलस्वरूप खेतो की उपज बढ गयी। कृषि अधिक लाभदायक व्यवसाय सिद्ध हुआ। कृषि-श्रमिकों मे बेकारी कम हो गयी और उनका पारिश्रमिक भी बढ गया। कृषि के विकास के लिए सरकार ने कम ब्याज पर किसानों को कर्ज देने की व्यवस्था की। यातायात के साधनो की उन्नति से किसान दूर-दूर तक ले जाकर अपना माल बेचने लगे क्योंकि उसमे उनको अधिक लाभ होता था।

कृषि मे स्वर्ण युग के निम्न कारण थे

(i) कृषि पदार्थों मे उस समय तक विदेशी प्रतियोगिता कम थी।

(ii) लगान एव किराये अधिक नही थे।

(iii) राष्ट्रीय एव स्थानीय करो का स्तर ऊँचा नहीं था।

(iv) यह युग मूल्यो मे वृद्धि का था, अत कृषकों की आय सतोषजनक थी।

(v) कृषि प्रक्रिया मे सुधार हो चुके थे जिसका सम्बन्ध कृषि-यन्त्रो, पशु-सुधार, रासायनिक खाद, नयी फसलो की खेती आदि से था।

(vi) इस समय तक ब्रिटेन में रेल यातायात का पर्याप्त विकास हो चुका था जिससे मण्डियो तक खाद्यान्न के वितरण मे और खाद, यन्त्र एव बीज आदि के वितरण मे सुविधा थी।

(vii) ग्रामीण निष्क्रमण के कारण श्रमिकों की माँग अधिक थी और भूमि-पति कृषि-श्रमिकों को उत्तम वेतन दे रहे थे।

सरकार द्वारा स्थापित शाही कृषि-समिति से भी किसानो को बहुत सहायता मिली। इसके अतिरिक्त उन दिनो वार्षिक कृषि-प्रदर्शनी लगा करती थी और हर प्रकार की कृषि सम्बन्धी सूचना किसानो तक पहुँचाई जाती थी। शाही कृषि कालेज (Royal Agricultural College) की स्थापना भी इसी काल मे की गयी। कृषि बड़े पैमाने पर होने लगी थी। इतना सब कुछ होने पर भी यह तो नही कहा जा सकता कि इस काल में सभी प्रकार उन्नति ही उन्नति थी। कृषि-मजदूरी मे वृद्धि की गति कम थी तथा शहरो मे विभिन्न प्रकार के धन्धे उपलब्ध थे। अत लोग देहातों को छोड शहरों की ओर खिच रहे थे। सामुद्रिक यातायात की सुविधाओं ने मजदूरो को कैलीफोर्निया और आस्ट्रेलिया के स्वर्ण क्षेत्रो की ओर जाने के लिए आकर्षित किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कृषि के लिए यह समय सर्वाधिक उन्नति और अधिक अभिवृद्धि का था।

२ मन्दी का युग और सुधार के प्रयत्न
(Period of Depression and Recovery)
(सन् १८७५ से १९१४)

सन् १८७३ के पश्चात् कृषि स्वर्ण युग की समाप्ति के साथ ही आर्थिक मंदी का काल आरम्भ हो गया। इस काल में इगलैंड में फल-उत्पादन और बागवानी के कार्य को प्रश्रय मिला। इस आर्थिक मंदी के काल में भारी संख्या में श्रमिक शहरों और समुद्र पार देशों में चले गये। पच्चीस वर्षों की सम्पन्नता के पश्चात् कृषि की दशा में सकट के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे, जैसे

(i) सन् १८७५ के बाद दस वर्षों में कई बार शीत अथवा अधिक वर्षा के कारण फसल खराब हुई और कृषि उत्पादन में कमी आ गयी तथा कृषिको को बहुत हानि उठानी पड़ी। उसके बाद कई बार सूखा पड़ा।

(ii) चारे की कमी के कारण पशुओं में बीमारियाँ फैल गयी और भारी संख्या में पशुओ की मृत्यु होने लगी।

(iii) सन् १८८४ में कैनेडियन पैसफिक रेलमार्ग के निर्माण ने प्रेरीज का द्वार यूरोप के लिए खोल दिया और इगलैंड में विदेशी गेहूँ आने लगा। आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना और रूस से भी गेहूँ आयात किया गया। सन् १८६६ में अन्न के आयात पर से कर पूर्णत हटाया जा चुका था।

(iv) गेहूँ के भाव तेजी से गिरने लगे। १८७७ में गेहूँ का भाव ५० शिलिंग प्रति क्वार्टर था जो गिरकर सन १८८४ में ३४ शिलिंग तथा १८९४ में केवल १७½ शिलिंग प्रति क्वार्टर हो गया।

(v) चाँदी के भाव गिरने से रजतमान वाले देशों से सस्ता माल आने लगा जिसने सकट को और बढ़ा दिया।

(vi) सकटग्रस्त ग्रामीण गाँव छोड़कर शहरों की ओर आने लगे और श्रमिको के अभाव में फसलो को बोना कठिन हो गया।

इसके फलस्वरूप देश में यह आन्दोलन चला कि छोटे-छोटे खेत (Small Holdings) बनाये जायें ताकि अधिक मजदूरों को भूमि पर रखा जा सके। छोटे खेतो का निर्माण सरकार द्वारा ही हो सकता था क्योंकि बड़े आसामी या भूमिपति इस आन्दोलन का समर्थन नहीं कर रहे थे।

इस आन्दोलन को सफल बनाने में श्री जोसेफ चेम्बरलेन का नाम लिया जा सकता है। चेम्बरलेन-समिति के प्रतिवेदन के प्रकाशित होने पर—जिसमें छोटे खेतो की इकाइयों के निर्माण की सिफारिशें सम्मिलित थी—ससद ने १८९२ में छोटी इकाइयों का अधिनियम (Small Holdings Act) स्वीकार कर लिया। इस अधिनियम के अन्तर्गत काउण्टी-कौंसिल को यह अधिकार दिया गया कि वह पब्लिक-वर्क्स-कमीशन से रुपया उधार ले और भूमि खरीदे तथा उसे एक से पचास एकड़ के भागो

में बेचे। खरीद की शर्तें सरल थी और छोटे खेतो की खरीद के लिए प्राप्त ऋण पचास वर्षों में चुकाया जाय, ऐसी व्यवस्था की गयी थी। परन्तु काउण्टी-कौंसिलो की उदासीनता और अन्य सस्था के अभाव में यह अधिनियम सफल न हो सका।

इन सकटो और आपदाओ का सम्मिलित प्रभाव कृषि पर यह हुआ कि इंग्लैण्ड के लिए कृषि को आत्मनिर्भर बनाने के स्वप्न को सदैव के लिए तिलाजलि देना अनिवार्य हो गया। विदेशी प्रतियोगिता के कारण खाद्यान्न उत्पादन लाभदायक न रहा। अत केवल खाद्यान्नो पर ही जोर देना कम कर दिया गया और उसके साथ-साथ कृषि सम्बन्धी अन्य ऐसी सहायक गतिविधियो को आरम्भ किया गया जिनमे विदेशी प्रतियोगिता कम थी। अन्नोत्पादन केवल सर्वोत्तम भूमि तक ही सीमित करा दिया गया तथा अन्य भूमि पर भेड-पालन, बागबानी, पशु-पालन, कुक्कुट-पालन आदि धन्धे आरम्भ किये जाने लगे। १८७३ ई० में ३७ लाख एकड भूमि में गेहूँ की खेती होती थी वह घटकर १९०० ई० में १६ लाख एकड ही रह गयी। अत बडे-बडे भूमिपति कृषि योग्य भूमि को भी चरागाहों में परिवर्तित करने लगे। कृषि से पूँजी हटाई जाने लगी जिससे कृषि के लिए वैज्ञानिक यन्त्रो का प्रयोग बहुत कम हो गया।

सकट का मुख्य कारण विदेशी प्रतिस्पर्द्धा थी। स्वतन्त्र व्यापार-नीति के कारण इगलैण्ड में आयात पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नही था। फल यह हुआ कि उत्तरी अमरीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और अर्जेन्टाइना से बहुत अधिक गहूँ का आयात हुआ। अन्तर्प्रान्तीय रेलो की उन्नति के कारण अमरीका की प्रेरीज भूमि मे गहूँ की खेती अधिक होने लगी थी। देश मे रेल और जहाजी यातायात ने बाहर से खाद्य पदार्थ मँगाने की कठिनाई को दूर कर दिया था। बाहर से आये हुए अधिक सस्ते गेहूँ के साथ देश के किसानों को प्रतिस्पर्द्धा करना बहुत कठिन था। फल यह हुआ कि किसानो को हानि उठानी पडी। अब कृषि-कार्य लाभप्रद नही रहा। इसके विपरीत, अन्य राष्ट्र कृषि पर विशेष ध्यान देने लगे। १८७४ ई० में रूस में २८७ लाख एकड भूमि में गहूँ उपजाया गया था पर १९०३ में वह बढकर ४५१ लाख एकड हो गया। सयुक्त राज्य अमरीका में उसी अवधि मे १८६ लाख एकड भूमि से बढकर ४९५ लाख एकड भूमि में गेहूँ की खेती होने लगी। उसी अवधि में कनाडा में १६ लाख एकड भूमि से बढकर ४४ लाख एकड भूमि में गेहूँ की खेती की जाने लगा। प्रशीतन-विधि की उन्नति के कारण आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड से भेड का मांस, अर्जेण्टाइना से गोमास और सयुक्त राज्य अमरीका से डिब्बा बन्द गोमांस एव मछलियाँ आयात की जाने लगी। इसके अतिरिक्त पनीर, आलू और विभिन्न प्रकार के फलो का भी आयात होने लगा। इसका इगलैण्ड के डेरी उद्योग पर बहुत बुरा प्रभाव पडा। उस समय जबकि इगलैण्ड स्वतन्त्र व्यापार की नीति अपना रहा था, जर्मनी, सयुक्त राज्य अमरीका, फ्रांस आदि देशों में सरक्षणवादी नीति अपनायी जा रही थी।

कृषि सकट के कारण कृषि से पूँजी हटायी जाने लगी। खेती के लिए वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रयोग बहुत कम हो गया। खेत चरागाह में परिवर्तित होने लगे और लोग गाँवों को छोड़कर शहरों में बसने लगे। लगान में छूट दी जाने लगी। कृषि-श्रमिकों और छोटे किसानों को विशेष कठिनाई होने लगी। गेहूँ के आटे के निर्यात के कारण चक्कियाँ भी प्राय बन्द हो गयीं। कनाडा, आस्ट्रेलिया में कृषि-श्रमिकों की अधिक माँग होने से बहुत से कृषि-श्रमिक वहाँ जा बसे। सर टी० पालग्रेव के अनुसार सन् १८७५ से १९०५ तक ब्रिटिश कृषि को इस सकट के कारण १,६०० मिलियन पौण्ड की हानि उठानी पड़ी।

इस काल में इगलैण्ड की सरकार ने आर्थिक मन्दी और सकट के कारणों का पता लगाने के लिए दो शाही समितियाँ बनायी।

१. रिचमण्ड आयोग
(Richmund Commission)

इसकी स्थापना सन् १८८२ में **श्री रिचमण्ड** की अध्यक्षता में हुई। आयोग ने अपने प्रतिवेदन में यह स्पष्ट किया कि आर्थिक मन्दी और सकट के निम्नलिखित प्रधान कारण थे :

(१) **निकृष्ट फसल**—सन् १८७६-७७ में अच्छी फसल नहीं हो सकी। इसी प्रकार १८९२ से १८९९ तक देश में सूखा पड़ा और इससे पूर्व १८७२ से १८८४ तक अधिक शीत पड़ने एवं ग्रीष्म में अधिक वर्षा होने से फसलें अच्छी नहीं हुईं अत खाद्यान्नों की उत्पत्ति पर्याप्त मात्रा में न हो सकी।

(२) **लगान में वृद्धि**—इस समय जबकि आर्थिक मन्दी से कृषक जनता यों ही परेशान थी, सरकार द्वारा करों में वृद्धि कर दी गयी। अत किसान व्यवसाय छोड़ने को विवश हुए।

(३) **पशु रोग**—इसी समय कृषि में काम आने वाले पशुओं में भयकर बीमारियों का प्रारम्भ हुआ। पशुओं के मुँह व पैरों में रोग उत्पन्न हुए। भेड़ों और शूकरों में भी विशेष प्रकार का बुखार फैला। इस प्रकार बहुत भारी संख्या में पशु मर गये और किसानों को पशु-धन की हानि उठानी पड़ी।

(४) **कृषि शिक्षा का अभाव**—यद्यपि कृषि में वैज्ञानिक यन्त्रों और विधियों का प्रयोग किया जाने लगा था, परन्तु साधारण किसानों के लिए तत्सम्बन्धी शिक्षा का सर्वथा अभाव था। वे नितान्त अनभिज्ञ थे कि इन वैज्ञानिक यन्त्रों और विधियों का कहाँ और किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए। अत जो लाभ कृषि के वैज्ञानिक सुधारों से अनुमानित किया गया उस रूप में उत्पादन स्तर में वृद्धि न हो सकी।

(५) **विदेशी प्रतिस्पर्द्धा**—आग्ल कृषि के विकास में तो एक तथ्य हमेशा से विद्यमान रहा है कि उसे विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ा है। सयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, भारत, रूस, अर्जेन्टाइना से गेहूँ आयात किया जाता था, इगलैण्ड का गेहूँ इस रूप में महँगा पड़ता था अत विदेशी गेहूँ की प्रति-

स्पर्द्धा मे टिक नही पाता था । साथ ही साथ मॉस, मक्खन, पनीर, आलू आदि का आयात भी होता था, अत कृषि को आर्थिक सकट का सामना करना पडा ।

(६) रेल भाडों मे वृद्धि—इस समय रेलो के भाडो मे भी गहरी प्रतिस्पर्द्धा के कारण वृद्धि हुई जिसका उलटा प्रभाव कृषि पर पडा ।

२ एवरस्ले आयोग (Eversley Commission)

रिचमण्ड आयोग के समान ही सन् १८९३ ९७ म एवरस्ले आयोग की स्थापना लार्ड एवरस्ले की अध्यक्षता मे की गयी । इस आयोग की जाँच-पडताल के अनुसार सकट का प्रमुख कारण चाँदी के मूल्य म की गयी कमी थी । चाँदी के मूल्य मे कमी हो जाने से रजतमान (Silver Standard) वाले देशो से आयात किय जाने वाले खाद्यान्नो का मूल्य कम हो गया और वे इगलैण्ड के बाजारो म सस्ते भाव पर बिकने लगे । इस प्रतियोगिता के कारण ब्रिटिश कृषको की आय गिरने लगी । साथ ही साथ १८९० के बाद कृषि-श्रमिको के अभाव के कारण भी सकट उपस्थित हुआ ।

मन्दी के प्रभावो को दूर करने के प्रयत्न

१९वी शताब्दी के अन्त तक बडे-बडे फार्मों को तोडकर छोटे छोटे खेत बनाने का आन्दोलन पर्याप्त प्रगति कर चुका था और इसको सरकार का भी खुला समर्थन मिला । जमीदार इस आन्दोलन के विरुद्ध थे । किन्तु १८७९ ८२ ई० के कृषि आयोग ने लघु क्षेत्रो के निर्माण के पक्ष मे अपना सुझाव दिया ।

सन् १८९२ का लघु क्षेत्र विधान अधिक सफल नही हुआ क्योकि उसमे दो त्रुटियाँ थी । पहली त्रुटि तो यह थी कि काउण्टी कौंसिल के लिए खेत खरीदकर छोटे छोटे किसानो को बाँटना अनिवार्य नही था । दूसरी त्रुटि यह थी कि जमीदारो को भी खेत बेचना अनिवार्य नही था । सन १९०८ मे लघु क्षेत्र एव आवटन अधिनियम के प्रारम्भिक अधिकार कृषि मण्डलो को सौप दिये गये । अत अब जिला परिषदें उपयुक्त प्रार्थियो के लिए छोटे खेत उपलब्ध करने को बाध्य हुईं क्योकि उनके अस्वीकार करने म कृषि मण्डल हस्तक्षेप कर सकता था और काम चालू रखने के लिए आयुक्तो की नियुक्ति कर सकता था । समितियो को अनिवार्य भूमि प्राप्त करने का अधिकार दे दिया गया । भूमि का मूल्य मध्यस्थता द्वारा तय किया जाता था और खेत प्रार्थियो को या तो भारक पर द दिय जाते थे अथवा उन्हे सरल शर्तों पर बेच दिया जाता था । इस अधिनियम के पारित होने एव १९१४ १८ के महायुद्ध के प्रारम्भ के समय कुछ लघु क्षेत्रो का निर्माण भी हुआ । १९१२ ई० तक १,५५,००० एकड भूमि इसके अनुसार खरीदी और बाँटी गयी । सन् १९०८ म इस बात की भी व्यवस्था की गयी कि काउण्टी-कौंसिल योग्य आवेदको को अनिवार्य रूप से जमीन बेचे । सन् १९०६ म एक विधान पारित हुआ जिसके अनुसार किसान किसी भी तरह की फसल पैदा कर सकता था । १८९९-१९१४ की अवधि म कृषि के क्षेत्र मे मुख्य चार प्रकार के परिवर्तन हुए

(१) जानवरों का पालना अधिक लोकप्रिय हो गया।

(२) फल-फूलों की खेती में अधिक वृद्धि हुई।

(३) गेहूँ, जौ और आलू की खेती में कमी की गयी।

(४) वैज्ञानिक ढंग पर मुर्गी पालना, अण्डा तथा मक्खन, पनीर और दूध का उत्पादन शुरू हुआ।

उपर्युक्त विधानों के अनुसार छोटे किसानों को भी वही सुविधाएँ मिलने लगीं जो केवल बड़े जमींदारों को प्राप्त थीं। इस काल में सहकारिता आन्दोलन को बड़ा प्रोत्साहन मिला। इस आन्दोलन की प्रगति धीरे-धीरे उत्पादन, वितरण तथा ऋण के क्षेत्र में भी हुई। कृषि शिक्षा के लिए कृषि विद्यालयों की स्थापना की गयी। ग्राम समितियों के अधीन भ्रमणशील शिक्षक नियुक्त किये गये जो घूम-घूम कर किसानों को कृषि की शिक्षा देते थे। कृषि-श्रमिकों का राष्ट्रीय संघ स्थापित हुआ। सन् १९१२ में लायड जार्ज ने एक जाँच समिति की स्थापना की और कृषि की उन्नति के लिए योजना बनायी जिसमें कृषि-मजदूरों के लिए कम से कम मजदूरी निश्चित करने तथा अन्य सुधारों की व्यवस्था की गयी। समिति ने यह भी बताया कि कृषि पर जमींदारों का अधिकार होने से वे लोग कृषि की उन्नति में कोई विशेष रुचि नहीं रखते थे। पर लायड जार्ज की इस योजना में प्रथम युद्ध के कारण सफलता नहीं मिली।

इस अवधि में कृषि के अतिरिक्त व्यापार और उद्योगों में भी निर्बाध नीति का परित्याग किया गया। कृषि की उन्नति के लिए कृषि मण्डल की स्थापना की गयी जिसके निम्नलिखित मुख्य कार्य थे--(१) पशुओं के रोगों की रोकथाम; (२) कृषि सम्बन्धी प्रचार कार्य, (३) प्रतिस्पर्द्धा से किसानों को बचाना, (४) खादों में होने वाली मिलावट को रोकना। उपनिवेशों के साथ आर्थिक सम्पर्क स्थापित करने के लिए औपनिवेशिक सम्मेलन बुलाये गये। कृषि रोगों की रोकथाम के लिए प्रयत्न किये गये। अनेक अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किये गये। कृषि सम्बन्धी उन्नति के लिए सारे देश को कुछ निश्चित कृषि क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया और प्रत्येक क्षेत्र में एक सरकारी कृषि अधिकारी रहा करता था जो किसानों को अन्न, जगत और पशुओं के सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव दिया करता था।

प्रश्न

1. "The Agrarian Revolution in Great Britain during the second half of the 18th century was a *necessary condition for development* of the industrial revolution." Examine critically the above statement.

"अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटेन में हुई कृषि क्रान्ति औद्योगिक क्रान्ति को लाने के लिए एक आवश्यक शर्त थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

(बिहार, १९६२)

2. The Agrarian Revolution was economically justifiable, its social effects were disastrous.
आर्थिक दृष्टि से कृषि क्रान्ति का औचित्य था, किन्तु इसके सामाजिक परिणाम भयंकर थे। (पंजाब, १९६०, राजस्थान, १९६२)
3. Describe the conditions of British Agriculture in the last quarter of the 19th century. What step were taken by the Government to help the agriculturists
उन्नीसवीं सदी के अन्तिम पच्चीस वर्षों में ब्रिटिश-कृषि की दशाओं का वर्णन कीजिए। कृषकों की सहायतार्थ सरकार द्वारा क्या कदम उठाए गए।
(बिहार, १९५८, १९६१)
4. Discuss the principal causes that led to the mechanisation of agriculture in England in 19th century
उन कारणों की विवेचना कीजिए जिन्होंने उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश कृषि में मशीनीकरण को प्रारम्भ किया। (बनारस, १९६०)
5. Estimate the services of the following to British Agriculture (1) Lord Townshend, (2) Robert Bakewell, (3) Arthur Young, (4) Jethro Tull.
ब्रिटिश कृषि के लिए निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा दी गयी सेवाओं का मूल्यांकन कीजिए (१) लार्ड टाउनशेण्ड, (२) राबर्ट बेकवेल, (३) आर्थर यंग, (४) जेथरोटल। (राजस्थान, १९५६)
6. Give briefly the Agricultural revival in England in the 18th century, bringing out the main feature of the Agarian Revolution thus brought about
अठारहवीं शताब्दी में इंगलैण्ड में हुए कृषि के पुनरुत्थान का संक्षेप में वर्णन कीजिए और इस प्रकार हुई कृषि क्रान्ति की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए। (राजस्थान, १९६१ जोधपुर, १९६४)
7. Give an account of the Agarian Revolution in England.
इंगलैण्ड में हुई कृषि क्रान्ति का वर्णन कीजिए। (राजस्थान, १९६६)

५

आंग्ल कृषि : वर्तमान स्थिति

(English Agriculture : Present Era)

यद्यपि इंगलैण्ड घनी आबादी वाला औद्योगिक देश है और उसे अपनी खाद्य आवश्यकता की आधी सामग्री अन्य देशों से आयात करनी पड़ती है किन्तु फिर भी कृषि-उद्योग यहाँ का महत्त्वपूर्ण उद्योग है। इस उद्योग में लगभग सात लाख चौंतीस हजार व्यक्ति[1] लगे हैं जो नागरिक जनसंख्या का ३ प्रतिशत भाग है। राष्ट्रीय आय के ३ प्रतिशत भाग की आय कृषि से प्राप्त होती है। ६ करोड़ एकड़ भूमि में से ४६ करोड़ एकड़ भूमि का उपयोग खेती के लिए किया जाता है। खेतों का औसत क्षेत्रफल ११० एकड़ है। ऐसे खेतों की संख्या ३ लाख के लगभग है, किन्तु छोटे खेतों की संख्या भी अधिक है। लगभग आधे खेत मालिकों के अधिकार में हैं और शेष कृषकों द्वारा लगान पर बोये जाते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक ब्रिटेन अधिकतर कृषि-उत्पादन के क्षेत्र में आत्म-निर्भर था किन्तु बाद में जब ऊन, अनाज और गोश्त सभी सुदूर देशों में सस्ते उत्पन्न किये जाने लगे तो भारी मात्रा में उनका आयात किया जाने लगा। अतः कृषि-उद्योग को परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार दूध, अण्डा, सूअर और बागवानी उद्योग की ओर आकर्षित करना पड़ा। कृषि की पद्धति में परिवर्तन होने से अन्नोत्पादन की प्रवृत्ति, पशु-उत्पादित वस्तुओं और फल-फूल तथा साग-पात के उत्पादन पर अधिक केन्द्रित होती गयी। कृषि-योग्य भूमि का क्षेत्रफल सन् १८७२ से १९१४ तक निरन्तर घटता रहा। प्रथम महायुद्ध काल में माँस, डेयरी और मुर्गियों के लिए ब्रिटेन को अधिकाधिक अन्य देशों पर निर्भर होना पड़ा। ब्रिटिश कृषि को संकट से मुक्त करने के लिए अनेक उपचार किये गये। कुछ प्रमुख उपाय निम्नांकित थे

(१) स्माल होल्डिंग्स एण्ड एलाटमेंट्स एक्ट के अन्तर्गत छोटे कृषकों एवं भूमिहीनों को जमीनें दी गयीं। सन १९०० में काउन्टी-कौंसिल के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया कि वे भूमिहीनों के लिए भूमि की व्यवस्था करें।

---

[1] Britain, 1959 An Official Handbook.

(ii) सन १९१४ तक लगभग आठ लाख एकड़ भूमि इस प्रकार भूमिहीनों को दी जा चुकी थी।

(iii) सन १८८९ में ही कृषि मण्डल की स्थापना कर दी गयी थी। कृषि शिक्षा सहकारिता एवं साख के क्षेत्रों में भी सुधार के प्रयास किये गये।

(iv) पशुओं की बीमारियों को रोकने के लिए अधिनियम बनाये गये और उनकी चिकित्सा आदि का प्रबन्ध किया गया।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात का काल

खाद्यान्न के अभाव तथा निरन्तर बढ़ते हुए मूल्यों के कारण आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया था। इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करने में उन देशों की आर्थिक नीतियाँ सहायक सिद्ध हुईं जहाँ अर्थव्यवस्था की उपयुक्तता के अनुसार कृषि वस्तुओं को संरक्षण प्राप्त था। कहा जाता है कि न्यूजीलैण्ड का पनीर और मक्खन इगलैंड में सस्ता पड़ता था जबकि न्यूजीलैण्ड में उपभोक्ताओं के लिए महगा था। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि यदि न्यूजीलैण्ड का मक्खन इंगलैंड में खरीदा जाकर पुन न्यूजीलैण्ड जहाज द्वारा निर्यात किया जाता तब भी लाभ कमाया जा सकता था। यही हाल फ्रांसीसी आटे का था जो फ्रांस में प्रचलित मूल्यों के एक-तिहाई में ही इगलैंड में प्राप्त हो जाता था।

कृषि का संरक्षण

सरकार ने कृषि की गिरती हुई दशा को ध्यान में रखते हुए प्रथम महायुद्ध से पूर्व और युद्ध काल में अन्न उत्पादन उपभोग, यातायात एवं संचय सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान की थी। सन १९१६ में फसलें अत्यन्त खराब हो गयीं और इसलिए सरकार ने सन १९१७ में अन्न उत्पादन विभाग (Corn Production Department) की स्थापना की। कृषि उत्पादन में होने वाले घाटे की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा न्यूनतम मूल्य की गारण्टी दी गयी जिससे नीचे मूल्य गिरने पर सरकार द्वारा हानि पूर्ति की जाती थी। इसी प्रकार न्यूनतम लगान तथा न्यूनतम वेतन भी निश्चित कर दिये गये। किन्तु सन् १९३० में आर्थिक संकट ने किसानों की कमर तोड़ दी। अब सरकार ने संरक्षणात्मक नीति के अन्तर्गत दो प्रकार के अधिनियम स्वीकार किये—एक वे जो विशिष्ट प्रकार के थे, और दूसरे वे जो साधारण कृषि-उत्पादन से सम्बन्धित थे। दोनों विश्वयुद्धों के बीच के काल में जो अधिनियम कृषि की सहायता के लिए बनाये गये वे निम्न थे

(i) भूमि बन्दोबस्त (सुविधाएं) अधिनियम [Land Settlement (Facilities) Act 1919]—इसका उद्देश्य युद्ध से अवकाश प्राप्त सैनिकों को भूमि पर पुनर्स्थापित करना था।

(ii) स्माल होल्डिंग्स एण्ड एलाटमेण्ट आफ लैण्ड एक्ट, १९२६—इसके अन्तर्गत एक एकड़ से पचास एकड़ तक के खेतों की व्यवस्था करके छोटे कृषक परिवारों को दिये जाते थे।

(iii) कृषि मजदूरी (नियमन) अधिनियम, १६२४—इसके अन्तर्गत कृषि-श्रमिकों के वतन को निश्चित करने के लिए वतन मण्डला की स्थापना की गयी।

(iv) कृषि (उपयोग) अधिनियम, १६३१—इसके अन्तर्गत गहरा के निकट पाच एकड या इससे कम के खेतों की व्यवस्था काउन्टी कौंसिल्स के द्वारा की जाती थी और बेरोजगार व्यक्तियों को जनाट किये जाते थे।

(v) कृषि विपणन अधिनियम १६३१ कृषि उत्पादनों की किस्म एव कीमत निर्धारित करने के लिए विपणन-मण्डलों (Marketing Boards) की स्थापना इस अधिनियम के अन्तर्गत की गयी।

(vi) गेहूँ अधिनियम (Wheat Act), १६३२ इसके अन्तर्गत देशी गेहूँ के लिए गारन्टी मूल्यों को ४५ शिलिंग प्रति क्वाटर के हिसाब से निश्चित कर दिया गया। वास्तविक बाजार-मूल्य गारन्टी मूल्य से कम होने पर हानि की पूर्ति सरकार द्वारा की जाने लगी। इसका परिणाम बहुत उत्तम हुआ। गेहूँ का क्षेत्र जो सन् १६३१ में केवल १२ लाख एकड था, सन् १६३४ में बढ़कर २० लाख एकड हो गया।

विशिष्ट अधिनियम में सन् १६३२ का गेहूँ अधिनियम (Wheat Act) मुख्य था जिसके अनुसार आर्थिक सहायता और निश्चित गेहूँ उत्पादन की मात्रा का मूल्य निर्धारित किया जाता था। गेहूँ का प्रति क्वार्टर मूल्य निश्चित कर दिया गया और उसकी पूर्ति सरकार द्वारा की जाने लगी। इसी अधिनियम के अन्तर्गत एक गेहूँ आयोग की स्थापना भी की गयी जो प्रति वर्ष के अन्त में विक्रय के औसत मूल्य का निर्धारण करता था। यदि इस प्रकार की निर्धारित कीमत प्रमाणिक मूल्य से कम होती तो फिर उत्पादक की हानि-पूर्ति की जाती थी। जिस कोष से यह भुगतान किया जाता था वह आटे के उपभोग पर कर लगाकर संग्रह किया जाता था। २७० लाख क्वाटर से ऊपर उत्पादन पर हानि-पूर्ति कम या बिलकुल ही नहीं की जाती थी जिससे उत्पादन की मात्रा नियन्त्रित रहे। इस गेहूँ नीति का इस आधार पर विरोध किया गया कि इस नीति का आधार व्यर्थ था क्योंकि नयी दुनिया के गेहूँ उत्पादन की तुलना में इंगलैंड का कृषक गेहूँ उत्पादन में टिक नहीं पाता था, परन्तु किसानों ने इस नीति की इसलिए सराहना की कि उन्हें संरक्षण दिया गया था।

साधारण अधिनियमों में सन् १६३१ का कृषि विपणन अधिनियम (Agricultural Market Act) मुख्य है जिसमें कृषि संगठनों की आवश्यकता पर बल दिया गया। इस समय से पूर्व तक इस प्रकार की कोई संस्था नहीं थी जो वस्तुओं के श्रेणीकरण, नाप-तौल, यातायात मूल्य सूचना का आधार बनाती। इस अधिनियम के पीछे यही भावना थी कि किसानों को इस प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जायें जिससे वे अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकें। सन् १६३१ का अधिनियम १६३३ में संशोधित किया गया। इसमें सरकार को इस प्रकार के अधिकार दिये गये

कि वह वस्तुओं के आयात को सहकारी क्रय-विक्रय समितियों के हितों में नियमित और नियन्त्रित करें। इन दोनों बाजार अधिनियमों से घरेलू उत्पादन और कृषि वस्तुओं का आयात नियमित हो सका।

उपर्युक्त दोनों बाजार अधिनियमों से जो संरक्षण किसान को दिया गया वह आयात कर अधिनियम, १९३२ द्वारा पुष्ट किया गया। इस अधिनियम के द्वारा (अ) आयातों पर प्रतिबन्ध लगाया गया (आ) विदेशों द्वारा ब्रिटिश माल के प्रति भेद-भाव बरतने का समाधान प्रस्तुत किया गया, और (इ) सरकारी आय में वृद्धि की गयी। इस अधिनियम से किसानों को कई लाभ व सुविधाएँ प्राप्त हुईं परन्तु साथ ही साथ विदेशों से आयात किये गये कृषि-यन्त्रों तथा रासायनिक खाद पर अधिक कर देने पड़े।

सरकारी संरक्षण नीति के मुख्य आधार निम्नलिखित थे

(१) विशिष्ट मात्रा के उत्पादन के लिए गेहूँ के मूल्य की गारण्टी करना।

(२) जौ और जई की न्यूनतम कीमत निर्धारित करना।

(३) कृषकों का कृषि-सुधार के लिए आर्थिक सहायता देना।

(४) घरेलू उत्पादन का उत्पादक नियन्त्रण द्वारा बाजार में नियमित तथा सरकारी नियन्त्रण द्वारा आयातित वस्तुओं का नियन्त्रण करना, उदाहरणार्थ, चुकन्दर के लिए।

(५) घरेलू उत्पादन का नियन्त्रण करना और आयात पर कर लगाना।

(६) आयात कर—बागवानी की वस्तुओं पर आयात कर लगाना।

आधुनिक इंगलैंड की कृषि में चुकन्दर का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। सन् १९२५ से पूर्व चुकन्दर की फसल नगण्य थी किन्तु सन् १९३४ में ४ लाख एकड़ भूमि में इसकी खेती होती थी जो कि देश की चीनी की चौथाई आवश्यकता की पूर्ति करता था। चुकन्दर की खेती को प्रोत्साहन मिलने का कारण सन् १९२५ का ब्रिटिश शक्कर (आर्थिक सहायता) अधिनियम था जिसके अन्तर्गत १० वर्ष के लिए आर्थिक सहायता की घोषणा की गयी थी। सन १९३६ में शक्कर उद्योग (पुनर्गठन) अधिनियम में इस प्रकार की सहायता अनिश्चितकाल के लिए देने की घोषणा की गयी। इस प्रकार की आर्थिक सहायता प्रति वर्ष ५,६०,००० टन शक्कर के उत्पादन तक ही सीमित रखी गयी। इसी अधिनियम के अन्तर्गत शक्कर उद्योग के वैज्ञानीकरण का प्रश्न उठाया गया। अब सभी शक्कर फैक्टरियाँ ब्रिटिश सुगर कॉरपोरेशन लिमिटेड में शामिल कर ली गयी जिसका निरीक्षण अब स्थायी शक्कर आयोग द्वारा किया जाता है।

द्वितीय महायुद्ध और आंग्ल कृषि

प्रथम महायुद्ध की तरह द्वितीय महायुद्ध काल में आंग्ल कृषि सीधी सरकारी नियन्त्रण में आ गयी। खाद्य की जटिल समस्या ने सरकार को इस प्रकार के

आवश्यक कदम उठाने के लिए विवश कर दिया। खाद्यान्नो के अभाव के निम्नलिखित कारण थे

(१) युद्ध छिड जाने से विदेशो से अन्न का आयात सम्भव नही था।

(२) कृषि-श्रमिको की कमी के कारण उत्पादन कम हो गया। श्रमिको को अनिवार्यत सेना मे भरती किया जाने लगा तथा महिला श्रमिको को चिकित्सा और सेवा कार्यों म नियोजित किया जाने लगा। उसका परिणाम यह हुआ कि कृषि चौपट हो गयी।

(३) हिटलर के जल युद्ध के कारण आयात पर भारी रोक लग गयी। इससे जलमार्गों मे खाद्य सामिग्री आयात न होने से भीषण सकट उपस्थित हो गया।

(४) देश की रक्षा और राजनीतिक स्वतन्त्रता की आकर्षण शक्ति ने परिस्थितियाँ और जटिल बना दी। सरकार को निम्नलिखित कारणो से भी अन्नोत्पादन की ओर ध्यान देना पडा

(अ) सेना को पर्याप्त भोजन देना आवश्यक था और सैनिको की सख्या वृद्धि पर थी।

(आ) विदेशो द्वारा निर्यात बन्द कर दिया गया था।

(इ) जहाजो के किरायो म वृद्धि हो गयी थी क्योकि जहाजो का अधिकाधिक उपयोग युद्ध कार्यों के लिए होने लगा।

(५) अत सरकार ने इगलैंड की भूमि पर ही खाद्य उत्पादन को प्रोत्साहन देना आरम्भ किया।

(६) कृषि को स्वेच्छा के बजाय राष्ट्रीय दृष्टिकोण से नियन्त्रित और नियमित किया गया। सरकारी रीति-नीति के अनुसार ही फसलो का उत्पादन होता था। युद्धकालीन कृषि समितियो की स्थापना न इस कार्य मे अधिक सहायता पहुँचाई। इसी समय कृषि गवेषणा परिषद और कृषि सुधार परिषद की भी स्थापना की गयी।

युद्धोपरान्त काल से अब तक की आग्ल कृषि की स्थिति का अध्ययन

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् कृषि उत्पादन के महत्त्व को अगीकार किया गया और यह अनुभव किया गया कि सरकारी नीति इस बारे मे अधिक स्पष्ट और सुदृढ होनी चाहिए। सन १९४७ मे कृषि अधिनियम (Agriculture Act) पारित किया गया जिसका मुख्य ध्येय कृषि उत्पादन मे वृद्धि करना और मूल्यों मे स्थायित्व लाने का प्रयत्न करना है। इगलैंड की वर्तमान सरकारी कृषि नीति इसी अधिनियम पर आधारित है। इस अधिनियम की प्रथम धारा मे सरकारी कृषि नीति का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार वर्णित है, "राष्ट्र मे ऐसे स्थिर एव कुशल कृषि उद्योग की स्थापना करना जो खाद्यान्नो एव अन्य कृषि उत्पादनो के उस भाग का उत्पादन कर सके जिसका उत्पादन राष्ट्रीय हित मे देश की सेवाओ के भीतर करना वाछनीय हो तथा यह उत्पादन उचित लागत पर इस प्रकार किया जा सके

जिससे कृषि में संलग्न व्यक्तियों को उचित पारिश्रमिक एवं जीवन स्तर प्राप्त हो सके और उनके द्वारा विनियोजित पूँजी पर उन्हें उचित लाभ प्राप्त हो सके।" जिस समय यह नियम स्वीकार किया गया उस समय खाद्यान्नों का अभाव था अत सरकार ने अन्न का भण्डार करना प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त राशनिंग व नियन्त्रण भी चालू किये। इस अधिनियम की नीति का यह फल हुआ कि सन् १९५२ में युद्ध पूर्व स्तर से उत्पादन ५०% ऊँचा हो गया। धीरे-धीरे परिस्थिति में सुधार होने पर अन्न का राजकीय व्यापार छोड़ दिया गया।

खाद्यान्नों के अभाव की समाप्ति के साथ ही सरकारी नीति में भी अत्यधिक परिवर्तन हुआ। १९५९ में कृषि उद्योग की समीक्षा के पश्चात् सरकार ने निम्न-लिखित आधारों पर अधिक जोर दिया

(१) भूमि का जोता जाने वाला भाग जितना अभी है उतना ही रखा जाय परन्तु गेहूँ और राई के उत्पादन को अन्य फसलों की तुलना में कम कर दिया जाय।

(२) पशु-धन के लिए घास, चारे के घरेलू उत्पादन पर अधिक निर्भर रहा जाय।

(३) बाजार की माँग के अनुसार गाय के माँस का उत्पादन बढ़ाया जाय।

(४) मेमने और सुअर के उत्पादन मूल्यों में कमी की जाय।

(५) दूध और अण्डों का उत्पादन बढ़ाया जाय।

सरकार का दीर्घकालीन कृषि-सुधार का दृष्टिकोण यह है कि कृषि को प्रतियोगात्मक उद्योग के रूप में संगठित किया जाय। आधुनिक कृषि की विशेषताएँ इस प्रकार हैं

(१) खेतों की संख्या—इस समय ब्रिटेन में लगभग ४,३०,००० खेत हैं। इनमें से लगभग ३,०८,००० कृषि फार्म इंगलैंड तथा वेल्स में, लगभग ५६,००० स्काटलैंड में तथा शेष ६६,००० उत्तरी आयरलैंड में हैं। यद्यपि कृषि फार्म का औसत आकार ११० एकड़ है किन्तु १५० एकड़ या इससे बड़े कृषि फार्मों की संख्या भी पर्याप्त है। कृषि फार्मों में एकीकरण की प्रवृत्ति इधर कुछ वर्षों में बढ़ी है।

(२) स्वामित्व—कई किसान भूमि के मालिक हैं किन्तु अधिकतर काश्तकार हैं जिनको लगान की सुरक्षा दी गयी है जो भूमि पर कृषि करने, पशु धन और चल साधन रखने के अधिकारी हैं जबकि भूमिपतियों (Landlords) का भूमि, मकान, स्थायी साधन रखने होते हैं तथा भूमि के विकास का दायित्व उनका है। सन् १९५० में संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य व कृषि आयोग (U N F A O s World Census) द्वारा विश्व गणना का कार्य किया गया उसमें संगृहीत विवरण के अनुसार इंगलैंड और वेल्स के ३५% जमीन के किसान मालिक हैं, ४९ प्रतिशत किराये पर उठाई गयी जमीन है जो काश्तकारों के पास है तथा १५ प्रतिशत भूमि आधी खुद की और आधी किराये की है। अधिकांश कृषक विभिन्न संस्थाओं में एक या अधिक के सदस्य

हैं। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय कृषक संघ तथा कृषि सहकारी समितियाँ जो कृषकों को खरीदने और बेचने की सुविधाएँ प्रदान करती हैं।

(३) **कृषि परामर्श सेवाएँ** (Agricultural Advisory Services)—कृषि मन्त्रालय के आधीन एक राष्ट्रीय कृषि परामर्श सेवा (National Agricultural Advisory Service) का संगठन किया गया है। प्रत्येक प्रदेश में एवं काउन्टी में इसके अन्तर्गत परामर्श अधिकारी (Advisory Officers) नियुक्त किये गये हैं जो **कृषि परामर्श सेवा (NAAS)** प्रयोगात्मक फार्मों को रासायनिक खाद का वितरण भी करती है।

(४) **कृषि भूमि सेवा** (The Agricultural Land Service)—यह सेवा संगठन इंगलैंड और वेल्स में कार्यशील है। इसका मुख्य कार्य भूमि के मालिकों को भूमि अथवा जायदाद के उचित प्रबन्ध के मामलों में सलाह देना और कृषि मन्त्री एवं अन्य सम्बद्ध विभागों को कृषि-भूमि के उपयोग तथा कृषि नियोजन आदि के विषय में विशेषज्ञों के रूप में सलाह देना है। स्काटलैण्ड में यह कार्य कृषि विभाग के अधिकारियों द्वारा किया जाता है।

(५) **भूमि का उपयोग**—ब्रिटेन में कुल भूमि की ८१ प्रतिशत भूमि कृषि के उपयोग में लाई जाती है जिसमें कृषि उपज, घास या चारा आदि उत्पन्न किये जाते हैं। इंगलैंड एवं वेल्स में ३० मिलियन एकड़ कृषि-भूमि का केवल छठा भाग ही घास एवं चारे के उत्पादन के लिए प्रयुक्त होता है तथा शेष भूमि में खाद्य एवं अन्य फसलें उत्पन्न की जाती हैं। स्काटलैण्ड एवं उत्तरी आयरलैण्ड में खाद्यान्नों का प्रतिशत कम है और भूमि के अधिक भाग पर भेड़ पालन होता है अथवा चारा आदि उगाया जाता है। इंगलैंड में जनसंख्या को देखते हुए भूमि की कमी है, फिर भी इस देश ने दुर्लभ भूमि का उच्चतम उपयोग किया है जैसा कि हम जापान को छोड़कर अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। यदि भारत से तुलना की जाय तो हमें ज्ञात होगा कि भारत कुल भूमि के केवल ४० प्रतिशत भाग पर ही खेती करता है।

(६) **उत्पादन**—द्वितीय महायुद्ध से पूर्व ब्रिटेन अपनी आवश्यकता का ३१ प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादित करता था। सन् १९६६ तक ब्रिटेन लगभग ५० प्रतिशत तक उत्पादन करने लगा। सन् १९६६ में ब्रिटेन का कुल गेहूँ उत्पादन लगभग ४० लाख टन था जो उसने २५ लाख एकड़ भूमि में उत्पादित किया अर्थात् औसतन प्रति एकड़ में १.६ टन से भी अधिक। भारत लगभग २५० लाख एकड़ में १६० लाख *टन गेहूँ उत्पन्न करता है, अर्थात् एक एकड़ में केवल ३/५ टन से कुछ अधिक।* इसी से हम ब्रिटिश कृषि के उच्च स्तर का अनुमान लगा सकते हैं और विचार कर सकते हैं कि इस दिशा में भी इंगलैंड हमसे कितना आगे है। पिछले तीस वर्षों में ब्रिटेन ने गेहूँ के उत्पादन में १०० प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि की है। यह वृद्धि क्षेत्रफल को बढ़ाकर उतनी नहीं की गयी है जितनी कि प्रति एकड़ उपज बढ़ाकर प्राप्त की गयी है। नाइट्रोजन एवं अन्य रासायनिक खाद ब्रिटिश किसान के लिए

एक अनिवार्यता है। इनके कारण पिछले तीस वर्षों में इंगलैंड ने चुकन्दर, आलू, दूध, मांस और अण्डों के उत्पादन में डेढ़ से दो गुने तक वृद्धि कर ली है।

(७) यन्त्रीकरण—ब्रिटेन में १९२५ में लगभग २१,०००, १९३९ में ५७,००० व १९६६ में ५,००,००० ट्रैक्टर थे। इस प्रकार ब्रिटिश कृषि फार्मों में ट्रैक्टरों का घनत्व अन्य देशों के कृषि फार्मों की अपेक्षा बहुत अधिक है, प्रति ३६ एकड़ पर एक ट्रैक्टर है। इसी प्रकार फसल साफ करने के यन्त्रों (Combine Harvesters) की संख्या सन १९६६ में ७०,००० थी जबकि सन् १९३९ में उनकी संख्या केवल १५० थी। विद्युत यन्त्रों का प्रयोग भी दिनों दिन बढ़ता जा रहा है, विशेषतः दूध दुहने की मशीनों ने इन वर्षों में ख्याति प्राप्त की है। लगभग ९० प्रतिशत कृषि फार्मों में विद्युतीकरण की सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

सरकार और कृषि

इस शताब्दी में (विशेषतः स्वतन्त्र व्यापार नीति के परित्याग के पश्चात्) सरकार की रुचि कृषि-विकास की ओर अधिकाधिक बढ़ती चली जा रही है। सरकार ने कृषि अधिनियम, १९४७ के अन्तर्गत इस बात का प्रयत्न किया है कि देश में कम कीमत पर कृषि-उत्पादन हो और कृषि को उचित लाभ प्राप्त हो।

सरकार ने कृषि को सुधारने के लिए अनेक परिषदों की स्थापना की है। इंगलैंड तथा वेल्स में काउन्टी-एग्रीकल्चर-एक्जीक्यूटिव कमेटियों की भी स्थापना की गयी है। स्कॉटलैण्ड तथा उत्तरी आयरलैण्ड में भी इसी प्रकार की समितियाँ स्थापित की गयी हैं। इन समितियों में सरकारी और गैर-सरकारी प्रतिनिधि शामिल किये जाते हैं जो विकास कार्यक्रम तैयार करते हैं।

सन् १९४७ के अधिनियम के अन्तर्गत कृषि-आयोग की भी स्थापना की गयी है। लगान की सुरक्षा भी सरकार नीति का अंग रहा है। इंगलैंड तथा वेल्स में १९२३ का कृषि-इकाई (Agricultural holdings) अधिनियम प्रचलित है जिसके अनुसार किसान को यदि बेदखल करना है तो एक वर्ष की सूचना दी जानी चाहिये तथा मुआवजे की भी व्यवस्था की गयी है। १९४८ के संशोधित अधिनियम में अपील करने का अधिकार भी कृषक को दिया गया है।

कृषि वस्तुओं के उत्पादन में सुधार तथा पशु-धन के विकास के लिए भी सरकारी प्रयत्न किये जाते हैं। कृषि बाजार की ओर भी कुछ वर्षों से सरकार का ध्यान गया है। इसके लिए सन् १९५८ में कृषि बाजार अधिनियम स्वीकार किया गया जिसमें बाजार संगठन और सहकारी समितियों की स्थापना आदि की व्यवस्था है। 'केन्द्रीय कृषि सहकारी संघ लिमिटेड' प्रतिनिधि संस्था है जो एक ओर राष्ट्रीय किसान संघ (National Farmer's Union) तथा दूसरी ओर कृषि सहकारी समितियों में सामंजस्य स्थापित करती है। दुग्ध-वितरण, फल-उत्पादन, पशु-धन, नस्ल-सुधार कार्य के लिए भी विविध अधिनियम स्वीकृत किये गये हैं।

कृषि उत्पादनों से कृषकों को होने वाली शुद्ध आय जो कि दस वर्ष पहले केवल ३५० मिलियन पौण्ड थी, सन् १९६५ म ४५० मिलियन पौण्ड हो गयी है। ब्रिटिश सरकार कृषि उद्योग की सहायता के लिए प्रति वर्ष ३०० मिलियन पौण्ड व्यय करती है। यह सहायता मूल्य गारन्टी (Price Support) एव उत्पादन अनुदान (Porduction Grant) के रूप मे दी जाती है। मूल्य गारन्टी योजना के अधीन सरकार उत्पादकों को एक निश्चित न्यूनतम मूल्य की गारन्टी देती है और बाजार मे वास्तविक मूल्य गारन्टी मूल्य से कम होने पर किसानो को क्षतिपूर्ति के रूप में धनराशि दी जाती है। इसका उद्देश्य कृषकों को उपज के विक्रय से होने वाली हानि से सुरक्षित करना है।

उत्पादन अनुदानो (Proudction Grants) का उद्देश्य कृषि उत्पादकता मे वृद्धि को प्रोत्साहन देना है और इसके अन्तर्गत भूमि-सुधार, पशु एव यन्त्रो तथा औजारो की खरीद क लिए किसानो को सहायता दी जाती है। सन् १९६४-६५ मे सरकार द्वारा लगभग १०८ मिलियन पौण्ड अनुदान मे दिये गये।

युद्ध के बाद से सन् १९५४ तक ब्रिटिश सरकार द्वारा कृषि के विकास की नीति अपनाई गयी, ताकि कृषि उत्पादन को युद्ध-पूव के स्तर पर लाया जा सके। इसके अनुसार विभिन्न कृषि पदार्थों के उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित किये जाते थे और फिर इस बात पर जोर दिया जाता था कि लक्ष्यो की प्राप्ति की जा सके। सन् १९६५ के पहले के दस ग्यारह वर्षों मे सरकार द्वारा कृषि के सम्बन्ध मे जो नीति अपनाई गयी उसका प्रधान उद्देश्य उचित लागत पर अधिक उत्पादन प्राप्त करना था ताकि ऐसे खाद्य पदार्थों के उत्पादन पर जोर दिया जा सके जिनकी ब्रिटिश मण्डियो मे अधिक माँग है।

कृषि का वर्तमान स्वरूप

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने पर कृषि उत्पादन कार्यों म काफी कमी हो गयी थी। बहुत सी भूमि जिस पर पहले कृषि की जाती थी, अब चरागाहों के लिए छोड दी गयी, किन्तु युद्ध काल म लगभग ७० लाख एकड भूमि, जहां चरागाह थे, फिर स कृषि के अन्तर्गत ले ली गयी। आलू का क्षेत्रफल लगभग दुगुना बढ गया तथा गेहूँ और जौ का क्षेत्रफल दुगुन से कुछ कम। चौपायो की सख्या मे भी कुछ वृद्धि हो गयी किन्तु भेडें, मुर्गियो और सूअरो की सख्या मे कुछ कमी हो गयी। द्वितीय युद्ध के उपरान्त पशु सम्पत्ति मे बडी वृद्धि हुई क्योकि पौंड पावना की स्थिति मे सुधार होने से विदेशों से पशुओ के लिए खाद्य आयात करने मे सुविधा हो गयी।

दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन खाद्यान्नो के उत्पादन मे हुआ। आलू और जई को छोड कर सभी खाद्यान्नो, भेड तथा मेमने क मांस, गैर-मांस और दूध के उत्पादन मे बडी वृद्धि हुई है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व की तुलना मे सूअर के मांस और अडो के उत्पादन मे ७० तथा १०० प्रतिशत की वृद्धि हुई और दूध मे ६५% की।

कृषि के विकास के लिए इस समय सरकार द्वारा निम्न सुविधाएँ दी जा रही हैं

(१) सरकार द्वारा अनाज के न्यूनतम भाव निश्चित किये जाते हैं। इनसे कम मूल्य हो जाने पर किसान को होने वाली हानि के लिए सरकार उसकी क्षतिपूर्ति करती है। पशु, भेड़, सूअर, माँस, अंडे, ऊन, दूध, अनाज, आलू और चुकन्दर के लिए इस प्रकार के मूल्य निर्धारित किये जाते हैं।

(२) कृषि उत्पादन को बढ़ाने के खाद और कैलशियम खरीदने, घास उगाने, बछड़े और बछड़ियाँ पालने, कृषि के शत्रु पशुओं को नष्ट करने के लिए सरकार वित्तीय सहायता देती है।

(३) दीर्घकालीन कृषि सुधारों के लिए फार्म, भवन, सड़कें, बाड़ा, बिजली आदि की व्यवस्था करने, छोटी इकाइयों को बड़ी इकाइयों में बदलने, फलों का उत्पादन क्षेत्र बढ़ाने, सिंचाई योजनाओं को कार्यान्वित करने और खेती में यन्त्रों का उपयोग करने के लिए १९५० के अधिनियम के अन्तर्गत सहायता दी जाती है।

(४) प्रत्येक क्षेत्र में कृषक को खेती और बागवानी की शिक्षा देने के लिए National Agricultural Advisory Service तथा Agricultural Land Service नामक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं।

यद्यपि क्षेत्रफल एवं कुल उत्पादन की दृष्टि से ब्रिटिश कृषि का महत्व विश्व में इतना अधिक नहीं है जितना कि अन्य कई बड़े देशों का है, फिर भी कृषि-प्रक्रिया एवं उत्पादन की ऊँची किस्म की दृष्टि से ब्रिटेन का कृषि उद्योग विश्व में अपनी विशेषता के लिए प्रसिद्ध है। ब्रिटेन में उत्पादित कृषि पदार्थों की किस्म (Quality) इतनी उच्चकोटि की होती है कि ब्रिटिश नागरिक कई बार आयात किये हुए सस्ते खाद्य पदार्थों की बजाय देश में उत्पादित महँगे खाद्य पदार्थों के लिए ऊँचे दाम सहर्ष देने के लिए तत्पर हो जाता है। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन में टिमाटरों (Tomatoes) का उत्पादन ग्लास हाउसेज (Glass houses) में वैज्ञानिक तरीके से किया जाता है। यह उत्पादन इतना ताजा और उत्तम होता है कि फ्रांस, हालैन्ड या डेनमार्क से आयात किये हुए माल से महँगा बिक जाता है। इसी प्रकार मटर, गोभी, गाजर आदि का उत्पादन भी किया जाता है। फलों में सेब, बेरी, स्ट्राबेरी, रासबरी आदि की फसलें ब्रिटेन में ही उत्पन्न की जाती हैं।

दूध, मक्खन, पनीर, माँस एवं अन्डों के उत्पादन में भी ब्रिटेन ने पिछले दस वर्षों में आश्चर्यजनक उन्नति की है। ब्रिटेन अपनी आन्तरिक आवश्यकता का १०० प्रतिशत दूध, ८ प्रतिशत मक्खन, ४३ प्रतिशत पनीर, ८५ प्रतिशत सूअर का माँस, ७२ प्रतिशत अन्य माँस, एवं ९८ प्रतिशत अन्डों, ५० प्रतिशत गेहूँ, ३० प्रतिशत चीनी तथा ९५ प्रतिशत आलू का उत्पादन स्वयं कर लेता है। इन उत्पादनों के बढ़ जाने से औसत ब्रिटिश नागरिक के आहार की प्रकृति में भी

परिवर्तन हो गया है। अब आटा एव आलू के अधिक उपयोग को अच्छा नहीं समझा जाता और उसके स्थान पर अधिक प्रोटीनयुक्त पदार्थों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। ब्रिटेन की गायें विश्वप्रसिद्ध है। पिछले दशक मे एक औसत ब्रिटिश गाय के दुग्ध-उत्पादन मे १५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वहाँ की औसत गाय एक वर्ष म लगभग ८०० गैलन दूध देती है।

कृषि पदार्थों का विक्रय निजी व्यक्तियों एव उत्पादकों के सहकारी सगठनो द्वारा किया जाता है। महत्त्वपूर्ण पदार्थों के लिए सन् १९५८ के कृषि विपणन अधिनियम (Agricultural Marketing Act) के अन्तर्गत विपणन मण्डलो (Marketing Boards) का निर्माण किया गया है। य मण्डल पार्लियामेण्ट की स्वीकृति से बनाये जाते हैं और इनके अधिकाश सदस्य उत्पादकों द्वारा चुने जाते हैं तथा कुछ सदस्य कृषि मन्त्री या अन्य सम्बन्धित मन्त्री द्वारा नामजद किये जाते हैं। ये मण्डल दो प्रकार के होते है। प्रथम व जिन्हें समस्त उत्पादकों के उत्पादन को बेचने का अधिकार होता है, और दूसरे व जो उत्पादन के विक्रय की दशाओ की देखरेख करते हैं और विक्रय का कार्य उत्पादको क लिए छोड देते हैं। दूध, ऊन एव अण्डो के लिए सगठित बोर्ड प्रथम श्रेणी मे आते हैं जबकि आलू बोर्ड द्वितीय श्रेणी मे है।

कृषि अधिनियम, १९६७ (Agriculture Act 1967) के अन्तर्गत राज्य द्वारा कृषि क्षेत्र मे वित्तीय एव अन्य प्रकार की सहायता का दायरा और व्यापक हो गया है। कृषि मन्त्रालय के अधीन अनेक योजनाएँ कृषि की सहायतार्थ सचालित हैं। सरकारी नीति यह रही है कि ब्रिटिश कृषि को अधिकाधिक उपयोगी बनाया जाय ताकि उससे भोजन सम्बन्धी आवश्यकताओ के एक बडे भाग की पूर्ति की जा सके। इन नीतियो मे न्यूनतम मूल्यो की गारन्टी प्रदान करना, छोटे आकार के फार्मों के आर्थिक आकार मे एकीकरण के लिए सहायता देना, कृषि-फार्म के सुधार के लिए आवश्यक व्यय म अनुदान देना, तथा सस्ते ब्याज पर दीर्घकालीन एव मध्यकालीन ऋणो की व्यवस्था करना प्रमुख हैं। कृषि पदार्थों के विपणन एव सहकारिता के क्षेत्र मे भी राज्य का योग सराहनीय रहा है। पौध सरक्षण, कृषि अनुसधान एव कृषि शिक्षण की सुविधाएँ भी ब्रिटेन मे राजकीय स्तर पर उपलब्ध हैं। सन् १९६८-६९ मे ब्रिटिश कृषि उत्पादन का मूल्य २०० करोड पौण्ड से कुछ अधिक था, जिसका दो तिहाई मांस, दूध एव मक्खन, पनीर आदि तथा अण्डो के रूप मे था शेष एक तिहाई उत्पादन (मूल्यानुसार) खाद्यान्न फसलो, फल-सब्जियो आदि के रूप मे था। सन् १९६९ मे ब्रिटिश सरकार द्वारा लगभग ३० करोड पौण्ड की धनराशि कृषि सहायता एव अनुदान आदि पर व्यय की गयी।

ब्रिटेन की वर्तमान कृषि का अध्ययन हम भारतवासियो के लिए अत्यन्त प्रेरणादायक है। स्वतन्त्रता के बाद से भारतीय कृषि लगभग उसी अवस्था से गुजर रही है जिससे ब्रिटिश कृषि प्रथम एव द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व के वर्षों मे गुजर चुकी है। तीस-चालीस वर्ष पूर्व हम लोग कभी यह स्वप्न मे भी नही सोच सकते थे कि

भारत को बाध्य होकर खाद्यान्नों के लिए विश्व के अन्य देशों पर निर्भर रहना पड़ेगा। इस दृष्टि से भारत भी अब ब्रिटेन की भाँति खाद्यान्नों का स्थायी आयातक बन चुका है—अन्तर केवल इतना ही है कि ब्रिटेन अपनी खाद्य आवश्यकता का आधा भाग आयात द्वारा पूरा करता है कि जबकि भारत अपनी आवश्यकता का केवल दसवाँ भाग आयात से पूरा करता है। ब्रिटेन में जनसंख्या-वृद्धि की दर १ प्रतिशत से कम है जबकि भारत में यह २'५ प्रतिशत वार्षिक है। यदि कृषि उत्पादकता की दर में विशेष उन्नति न हो सकी तो भारत का खाद्य परावलम्बन १० प्रतिशत से बढ़ सकता है। अत समय रहते भारत को ब्रिटिश कृषि व्यवस्था से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। ब्रिटिश कृषि के अध्ययन का भारत के लिए यही सबसे बड़ा महत्त्व है।

प्रश्न

1 Bringing out the main features of Agricultural Policy followed in Britain in between the two wars, discuss the National Agricultural Policy of 1932-38

दोनों विश्वयुद्धों के मध्य इगलैण्ड में अपनायी गयी कृषि नीति की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए और १९३२-३८ की राष्ट्रीय कृषि नीति का वर्णन कीजिए। (राजस्थान, १९६१)

2 Account for the revolutionary changes initiated in British Agriculture Policy between 1929 and 1949

सन् १९२९ से १९४९ के मध्य ब्रिटिश कृषि नीति में अपनाये गये महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का वर्णन कीजिए। (राजस्थान, १९६२)

3 Discuss the effects of the second world war on British Agriculturals

ब्रिटिश कृषि पर द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

(राजस्थान, १९६३)

4 Give a critical estimate of the efforts made by Great Britain to reorganise agriculture in the present century

वर्तमान शताब्दी में इगलैण्ड द्वारा कृषि के पुनर्संगठन के लिए किये गये प्रयत्नों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए। (बिहार, १९५६)

६
मध्यकालीन औद्योगिक व्यवस्था
(Medieval Industrial System)

यदि इंगलैंड की औद्योगिक व्यवस्था का सुचारु रूप से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि आधुनिक फैक्टरी व्यवस्था तक पहुँचने मे औद्योगिक व्यवस्था को कई सोपानो से निकलना पड़ा है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से औद्योगिक व्यवस्था को चार सोपानो मे विभाजित किया जा सकता है :

(१) गृह-उद्योग प्रणाली (House-hold System),
(२) गिल्ड-प्रणाली (Guild System),
(३) घरेलू प्रणाली (Domestic System),
(४) कारखाना प्रणाली (Factory System)।

इनका सम्यक् अध्ययन इस बात को स्पष्ट करता है कि इन विभिन्न प्रणालियो के अन्तर का अभ्यास पूँजी के नियोजन और बाजार के संकुचन तथा विस्तार पर निर्भर करता है। इन विभिन्न प्रणालियो का क्रमश अध्ययन इस प्रकार है :

१ गृह-उद्योग प्रणाली (House-hold System)

यह औद्योगिक विकास की सबसे प्रारम्भिक अवस्था थी। यह आर्थिक स्वावलम्बन की दशा का संकेतक है। इस अवस्था मे कृषि, पशुपालन, आखेट इत्यादि के साथ-साथ अनिवार्य पदार्थों का निर्माण घरो पर ही कर लिया जाता था, उदाहरणार्थ, वस्त्र, चमड़ा इत्यादि का निर्माण। इस अवस्था से औद्योगिक क्रिया कृषि का ही एक अंग थी। पूँजी नाममात्र की थी तथा बाजार अत्यन्त संकुचित और प्रारम्भिक अवस्था मे ही थे।

२ गिल्ड प्रणाली (Guild System)

यह औद्योगिक विकास की दूसरी स्थिति थी। इस स्थिति तक पहुँचते-पहुँचते इंगलैंड निवासियो की आवश्यकताओ मे वृद्धि और विविधता आ गयी। इस प्रणाली के उदय के साथ ही उद्योग या व्यवसाय को कृषि से भिन्न आर्थिक क्रिया समझा गया। एक प्रणाली के रूप मे इस प्रथा का विकास १२वी शताब्दी मे हुआ

और क्रमश यह व्यापारिक और औद्योगिक रूप मे विकसित होती गयी। गिल्ड-व्यवस्था के अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से, दो मुख्य भाग किये जा सकते हैं

(अ) व्यापारिक गिल्ड (Merchant Guild)

(ब) कारीगर गिल्ड (Craft Guild)।

व्यापारिक सघ
(Merchant Guilds)

बारहवी शताब्दी म शहरो को मैनोरियल भू-स्वामियो तथा इगलैंड के सम्राट द्वारा कुछ विशिष्ट अधिकार प्रदान किये गये। समय समय पर इन भू-स्वामियो द्वारा व्यापारियो को कुछ आर्थिक और व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान की जाती थी। इगलैंड के इतिहास मे यह वह समय था जबकि सम्पूर्ण यूरोप के ईसाई राष्ट्र धार्मिक युद्धो (Crusades) मे लगे हुए थ। इगलैंड के सम्राट की सहायता के लिए धार्मिक युद्धो म जाने वाले मैनोरियल भू-स्वामी धन प्राप्ति के लिए कस्बो मे रहने वाले व्यापारियो को कुछ विशेष अधिकार दे दिया करते थे और बदले मे धन प्राप्त कर लिया करते थ। व्यापारिक सघ इन्ही विशेष अधिकारो की उपज हैं। प्रारम्भिक स्थिति म ये सघ अल्प-सख्यक थे परन्तु धीरे-धीरे ये अधिक शक्तिशाली हो गय और शहरो एव कस्बो की नगरपालिकाओ तथा स्थानीय सस्थाओ पर छा गये। इस प्रकार कस्बो की प्रशासन-व्यवस्था, व्यापार-नियन्त्रण नियमन और सचालन इन सघो के हाथ मे आ गये। इन सघो की विशेषताएँ निम्न थी

(१) व्यापारिक सघ विदेशियो के प्रति कडी निगरानी रखते थे। उन्हें स्थानीय और राष्ट्रीय व्यापार मे कुछ प्रतिबन्धात्मक रूप मे कार्य करने की अनुमति दी जाती थी।

(२) बाजार मे क्रय विक्रय की वस्तुओ की कीमत का निर्धारण सघ द्वारा होता था।

(३) वस्तुओ म मिलावट, अधिक मूल्य लेना, कम तोलना, गलत बाँटो का उपयोग आदि पर य कडी निगरानी रखते थे और इ ह रोकने के लिए उचित नियम लागू करत थ जिनके उल्लघन पर दोषी सदस्यो को दण्ड का भागी होना पडता था।

(४) विदेशी व्यापार का सचालन बिना केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के भी इन सघो द्वारा सचालित होता था।

व्यापारी सघो क दो और भी प्रमुख कार्य थ

(१) प्रशासनिक काय, और

(२) धार्मिक और सामाजिक काय।

(१) **प्रशासनिक कार्य**—व्यापारी सघ धीरे-धीरे स्थानीय स्वायत्त सस्थाओ पर इतन हावी हो गय कि नगर की शासन व्यवस्था इन्ही के द्वारा चलायी जाने लगी। व्यापारिक सघ अपनी चुनाव प्रणाली द्वारा नागरिक शासन-व्यवस्था का सचालन करते थे।

(२) **धार्मिक और सामाजिक कार्य**—व्यापारी सघ आज के चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स के समान सस्थाएँ तो थी ही परन्तु वे इन आधुनिक सस्थाओ से कुछ और भी अधिक थी। ये अपने सदस्यो के सामाजिक हितो का ध्यान रखती थीं। इनका कार्य अपने सदस्यो को आर्थिक सहायता देना, सदस्यो की साधारण शिक्षा तथा चिकित्सा का प्रबन्ध करना, सघ के अन्तर्गत अनाथो, विधवाओ और अपाहिजो को रोजगार देना और उन्हे आर्थिक वृत्ति सुलभ करना तथा सदस्यो के विवाह, मृत्यु इत्यादि कार्यों मे सहायता करना था। इस प्रकार ये सघ आधुनिक योजनाओ का आशिक रूप से पालन करते थे। १३वी शताब्दी इनके विकास का स्वर्ण युग है जबकि इन सघो का अत्यधिक विकास और प्रसार हुआ।

कारीगर सघ
(Craft Guilds)

व्यापारी सघो के समान ही कारीगर सघो का मध्यकालीन इगलैंड की आर्थिक अवस्था मे महत्वपूर्ण स्थान रहा है। व्यापार और कृषि से भिन्न रूप मे इनका उद्गम १२वी और १३वी शताब्दी म हुआ। इनके उद्गम के बारे मे अर्थशास्त्री एकमत नही हैं। जो विभिन्न सिद्धान्त इनके उद्गम के बारे मे प्रचलित हैं वे इस प्रकार हैं.

(१) कुछ अर्थशास्त्रियो की यह मान्यता है कि यूरोप के देशो स धार्मिक या राजनीतिक प्रताडनाओ से भाग हुए और इगलैंड मे आकर वस हुए कारीगरो ने इस प्रकार के सघो को जन्म दिया।

(२) कुछ अर्थशास्त्रियो की यह मान्यता है कि असन्तुष्ट श्रमिको ने अपने आपको अलग से सगठित कर लिया था। कालान्तर मे ये ही कारीगर सघो का रूप धारण कर सके।

(३) कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार व्यापारी सघो के साम्य और सादृश्य पर कारीगरो ने अपने भी सघ अलग बना लिए।

(४) कुछ अर्थशास्त्रियो की यह धारणा कि व्यापारी सघो ने ही (जो कि व्यापार और उद्योग दोनो का ही सचालन करते थे), सुविधा और कुशलता की दृष्टि से अपने को दो भागो मे विभाजित कर लिया था।

उपर्युक्त विचारधाराओ से यही निष्कर्ष निकलता है कि सम्भवतया सभी प्रकार की विचारधाराओ ने सम्मिलित और समन्वित रूप से कारीगर सघो के उद्गम मे सहायता दी होगी। सर्वप्रथम इस प्रकार के सघो का गठन जुलाहों मे हुआ। तत्पश्चात् ये अन्य उद्योगो मे भी गठित हुए। इन सघो के उद्देश्य निम्न थे

(१) उद्योगो का नियन्त्रण और नियमन।
(२) मजदूरी का नियमन।
(३) वस्तुओ की कीमतो का निर्धारण।
(४) धार्मिक कार्यों का सम्पादन।

(५) मित्र संघों के रूप में सदस्यों की सहायता।
(६) आमोद-प्रमोद के साधन जुटाना।
(७) विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से रक्षा।
(८) आपसी झगड़ों को हल करने के लिए मध्यस्थ का कार्य करना।

व्यवस्था और संगठन

इन कारीगर संघों का संगठन तीन प्रकार की श्रेणियों से मिलकर हुआ :

(१) चतुर कारीगर (Master Craftsmen),
(२) साधारण कारीगर (Journey men),
(३) नौसिखिये (Apprentices)।

(१) चतुर कारीगर (Master Craftsmen)—यह मध्यकालीन औद्योगिक व्यवस्था का नायक होता था। चतुर कारीगर की अपनी शिल्पशाला होती थी जो उसी के प्रयत्नों से आरम्भ की जाती थी। इसमें उसके आधीन कई कारीगर व श्रमिक होते थे। ऐसे कारीगर या प्रशिक्षित श्रमिक मजदूरी पर रखे जाते थे। चतुर कारीगर के पास अपने औजारों और काम में आने वाली सामग्री के अतिरिक्त बहुत कम पूँजी होती थी। वह साधारणतया ग्राहकों द्वारा दी गयी सामग्री पर आदेशानुसार कार्य करता था। वह ग्राहकों से परिचित होता था और उनका संरक्षण बनाये रखने के लिए अपनी व्यक्तिगत ख्याति या प्रतिष्ठा पर आश्रित रहता था। उद्योग के संगठन एवं अनुशासन का उत्तरदायित्व इसी नायक पर होता था। वह अपनी शिल्पशाला में नियोजित श्रमिकों के खाने-पीने का भी प्रबन्ध करता था।

(२) साधारण श्रमिक (Journey men)—ये वे प्रशिक्षित श्रमिक होते थे जिन्हें शुल्क देकर गिल्ड का सदस्य बनना पड़ता था और जिन्हें कार्य के लिए नायक से वेतन मिलता था। ये प्रशिक्षित श्रमिक कई वर्षों के अनुभव के पश्चात् मास्टर क्राफ्ट्समेन बन जाते थे। प्रशिक्षित श्रमिक किसी शिल्पशाला में काम करते रहने को अपने जीविकोपार्जन की अन्तिम अवस्था नहीं मानता था। वह निरन्तर इस प्रकार के प्रयत्न में संलग्न रहता और राह देखता था कि कभी वह मास्टर क्राफ्ट्समेन बन सके। अतः मजदूरी के प्रश्न पर अधिक ध्यान न होकर उसका ध्यान अलग से शिल्पशाला स्थापित करने पर रहता था। वह जब तक मास्टर क्राफ्ट्समेन के यहाँ नियोजित रहता, उसी के मकान में रहता था और उसके भोजन इत्यादि का प्रबन्ध भी उसी के यहाँ होता था। यह शिल्पशाला का, मास्टर क्राफ्ट्समेन के बाद, महत्वपूर्ण अंग था, इसी के सहयोग पर मास्टर क्राफ्ट्समेन की प्रतिष्ठा निर्भर थी।

(३) नौसिखिये (Apprentices)—कारीगर संघों के ऐतिहासिक विवरणों में यह स्पष्ट आभास मिलता है कि इस प्रकार के श्रमिकों की प्रथा सन् १२६० के पूर्व भी थी। यह वर्ग धीरे धीरे कारीगर संघों का महत्वपूर्ण अंग बन गया। यद्यपि प्रारम्भिक काल में अपनी दक्षता का सन्तोषजनक प्रमाण देने पर कोई भी व्यक्ति

कारीगर सघो का सदस्य बन सकता था तथापि कालान्तर मे किसी शिल्प मे प्रवेश करने के लिए पहले नौसिखिया बनना अनिवार्य हो गया। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उद्देश्य न सिर्फ किसी युवक को उत्तम कारीगर बनाना ही था, वरन् उसे उत्तम नागरिक और उत्तम ईसाई बनाना भी था। यही कारण था कि चतुर कारीगर या मास्टर क्राफ्ट्समेन को नौसिखिय पर पूर्ण नियन्त्रण का अधिकार था। प्रशिक्षण की अवधि विभिन्न शिल्पो और नगरो मे भिन्न-भिन्न थी, परन्तु बाद मे चलकर लन्दन के कारीगर ने ७ वर्ष की उपयुक्त अवधि निश्चित कर दी और अन्य नगरो के कारीगर सघो ने भी इसी नीति का अनुकरण किया। सन १५६३ के शिल्पी अधिनियम के अधीन यह नियम सर्वत्र व्यवहार मे लाया गया।

नौसिखियो का प्रवेश नगर के अधिकारियो के अभिलेखो मे होता था। नगरपालिकाएँ इस प्रकार के पजीयन करने के लिए शुल्क लेती थी, अत कभी-कभी पजीयन मे बचने की प्रवृत्ति के भी प्रमाण मिलते है। कभी-कभी मास्टर क्राफ्ट्समेन बदलने की आवश्यकता भी नौसिखिया द्वारा अनुभव की जाती थी। इस प्रकार की स्थिति मृत्यु या दीर्घकालीन बीमारी के कारण उत्पन्न होती थी अथवा नौसिखिये के प्रशिक्षण मे मास्टर क्राफ्ट्समेन द्वारा प्रसविदा का पूरा-पूरा पालन न करने पर भी कारीगर सघो द्वारा इस प्रकार की अनुमति दी जाती थी। उद्योगो की प्रारम्भिक अवस्था मे नौसिखियो की सख्या सीमित नही थी, परन्तु बाद मे मास्टर क्राफ्ट्समेन के अन्तर्गत इनकी सख्या निश्चित की जाने लगी। यह व्यवस्था नियोजित और नियोजक दोनो के ही दृष्टिकोण मे लाभदायी थी। नौसिखियो के दृष्टिकोण से प्रशिक्षण की सुविधा का उत्तम उपयोग तथा बेकारी की समस्या का उचित समाधान होता था तथा मास्टर क्राफ्ट्समेन के दृष्टिकोण से अधिक प्रवेशार्थियो की सख्या मे उसके समक्ष अधिक व्यक्तियो द्वारा प्रतियोगिता का डर रहता था।

कारीगर सघों से लाभ और हानियाँ

इन सघो की उपस्थिति से निम्न लाभ थे ·

(१) रोजगार की निश्चिन्तता।
(२) उचित मजदूरी का निर्धारण और आश्वासन।
(३) सामाजिक सरक्षण।
(४) विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से बचाव।
(५) सामाजिक और धार्मिक लाभ।

किन्तु इनसे निम्न हानियाँ भी थी .

(१) इससे एकाधिकार को बल मिला।
(२) रूढ़िवादिता बढ गयी।
(३) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन हुआ।
(४) श्रमिको को अनुशासन के नाम पर कष्ट भी सहना पड़ता था।

पतन के कारण
(Causes of Downfall)

कारीगर संघों के पतन के प्रधान कारण निम्न थे

(१) साधारण मजदूरों का अधिक सशक्त और अधिकारों के प्रति जागरूक होना, जिससे मास्टर क्राफ्ट्समैन तथा साधारण मजदूरों में फूट पड़ गयी और उनके प्रतिद्वन्द्वी संघों का निर्माण होने लगा।

(२) कारीगर संघों की सामाजिक कल्याणकारी प्रवृत्तियों का अन्त होना।

(३) साधारण सदस्यों पर कारीगर संघों का नियन्त्रण सम्बन्धी अत्याचार होना।

(४) सन् १४३७ और १५०४ के ब्रिटिश सरकार के अधिनियमों ने भी कारीगर संघों के पतन में योग दिया। सरकार ने इन संघों की धार्मिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों पर प्रतिबन्ध लगा दिये और लोगों के हितों को सुरक्षित किया।

(५) छोटे-छोटे कारीगर संघों का बड़े संघों में एकीकरण पतन में सहायक हुआ। सन् १४२३ में सम्पूर्ण इंगलैण्ड में इन संघों की संख्या १११ थी जबकि १५३१ में वह केवल ६० ही रह गयी।

(६) कारीगर संघों का व्यापार से भी बहिष्कार इनके पतन में सहायक हुआ।

(७) नगरों की वृद्धि और वैज्ञानिक विकास हुआ।

(८) घरेलू औद्योगिक व्यवस्था से आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था की स्थापना भी इन संघों के पतन में सहायक हुई।

कारीगर संघों तथा श्रम संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन

कभी-कभी इन कारीगर संघों की तुलना आधुनिक श्रम-संस्थाओं (Trade Unions) से की जाती है किन्तु इस तुलना में निम्नांकित तथ्य विचारणीय है

(१) कारीगर संघों का निर्माण सिर्फ चतुर कारीगरों द्वारा ही किया जाता था जबकि आधुनिक श्रम-संस्थाएँ कुशल और अकुशल कारीगरों के सहयोग से ही बनती हैं।

(२) इस प्रकार के संघों में नियोजक और नियोजित सम्मिलित होते थे, किन्तु आधुनिक मजदूर संगठन केवल विशुद्ध रूप से मजदूरों का ही संगठन है।

(३) इस प्रकार के संघों पर नगरों की स्थानीय संस्थाओं का नियन्त्रण होता था किन्तु इस प्रकार का कोई नियन्त्रण वर्तमान श्रम-संस्थाओं पर नहीं है।

(४) कारीगर संघ केवल शहरी संस्थाएँ ही थीं, किन्तु आज के मजदूर संगठनों में ग्रामीण और शहरी तत्त्व दोनों ही शामिल हैं।

(५) कारीगर संघों का कोई केन्द्रीय संगठन नहीं होता था, किन्तु आधुनिक श्रम-संघों का संगठन फेडरेशन या बड़े राष्ट्रव्यापी संगठन से नियन्त्रित होता है।

(६) कारीगर संघ सामाजिक और धार्मिक कार्यों का संचालन करते थे किन्तु आज की ये मजदूर संस्थाएँ कुछ सीमा तक सामाजिक कार्य तो करती हैं, धार्मिक कार्य नहीं।

३ घरेलू प्रणाली (Domestic System)

गिल्ड-प्रणाली के पश्चात जो प्रणाली अस्तित्व में आयी उसे घरेलू-प्रणाली का नाम दिया गया है। जब १४वीं शताब्दी के पश्चात् गिल्ड-प्रणाली का पतन होने लगा तब नवीन पूँजीपति वर्ग का उदय हो रहा था। पूँजी का आविर्भाव ऊन उद्योग के क्षेत्र में नवीन घटना थी जो ऊनी उद्योग के उत्पादन की देन थी। ऊन उद्योग के विकास ने ही पुरानी मैनोरियल कृषि व भूमि-व्यवस्था को समाप्त किया जो भेड़पालन या समावरण आन्दोलन के नाम से विख्यात है, और इस प्रकार ऊन ही पुराने औद्योगिक ढाचे, गिल्ड-प्रथा, को समाप्त करने का महत्वपूर्ण कारण थी। घरेलू प्रणाली का महत्व इस रूप में भी है कि इसने औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि का कार्य किया।

उद्गम एवं विकास

इस प्रणाली का विकास बहुत ही धीरे-धीरे हुआ। इसके विकास में निम्न तत्त्व प्रमुख थे

(१) गिल्ड-प्रथा के अन्तर्गत जिन प्रशिक्षित श्रमिकों को गिल्ड की सदस्यता नहीं मिल पाती थी अथवा जिनको अपनी मजदूरी की दरों से सन्तोष न था वे कारीगर ग्रामीण क्षेत्रों में चले गये और उन्होंने वहाँ अपना कार्य आरम्भ कर दिया।

(२) श्रम-विभाजन की प्रक्रिया का भी अब अधिक विकास हो गया था। स्वाभाविक रूप में एक ही वस्तु का उत्पादन अलग-अलग विभागों और व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा। साहसी या व्यापारी-पूँजीपति इन विभिन्न व्यक्तियों के मध्य एक कड़ी या शृंखला का कार्य करता था। वस्तु-उद्योग ने इस प्रकार के व्यक्ति का अस्तित्व अनिवार्य कर दिया क्योंकि एक ऐसे मध्यस्थ व्यक्ति की आवश्यकता थी जो इस प्रकार के कार्य का निरीक्षण और समायोजन करे। यह पूँजीपति-मध्यस्थ व्यक्ति न केवल उद्योग का निरीक्षण ही करता था, वरन् वह कच्चा माल भी खरीदता था और निर्मित माल को भी बेचता था। पक्के माल से प्राप्त आय से वह मजदूरों की मजदूरी चुकाता और बचत को अपने पास रखता था।

पूँजीपति-मध्यस्थ के कार्य—इस व्यापारी पूँजीपति के निम्नलिखित कार्य होते थे

(१) कच्चे माल की खरीद करना,

(२) कच्चे माल का भिन्न-भिन्न प्रकार के करीगरों में वितरण करना,

(३) अर्द्ध-निर्मित माल को एक कारीगर से दूसरे कारीगर तक पहुँचाना,

(४) पक्के माल का संग्रह करना,

(५) पक्के माल का बाजार में विक्रय करना, तथा

(६) प्राप्त आमदनी से मजदूरों की मजदूरी का वितरण तथा अवशिष्ट रकम को लाभांश रूप में रख लेना।

इस प्रकार की घरेलू प्रणाली का प्रचलन ऊनी वस्त्र व्यवसाय के क्षेत्र में सवप्रथम आता था। वह इस व्यवस्था का केन्द्र-बिन्दु था। ऊनी वस्त्र व्यवसाय मे इसे कपड़े वाला (Clothier) कहा गया। इस प्रकार के कपड वाले कई कारीगरो को अपने यहाँ नियोजित करते थे। इस प्रकार का ऐतिहासिक प्रमाण १३६५ के सरकारी विवरणो से मिलता है। इस प्रकार के व्यवसायी १४वी शताब्दी मे दृष्टि-गोचर होने लगे और १८वी शताब्दी तक इनका प्रचार और प्रकार बढ गया। इस सम्बन्ध मे कनिंघम नामक आर्थिक इतिहासकार ने लिखा है कि सन् १३३६ मे ब्रिस्टल के थोमस ब्लकट ने करघे स्थापित किये और कारीगरो को किराये पर नियोजित करके उद्योग स्थापित किया। घरेलू प्रणाली के अन्तगत पूँजी शिल्प से अधिक महत्त्वपूर्ण थी। अत शिल्पी पूँजीपति पर निभर था और शिल्पी की इस प्रकार की स्थिति का पूँजीपति आसानी से लाभ उठा सकता था और उसका शोषण कर सकता था। ऐसे कई उदाहरण मिलते है जिसमे पूजीपति शिल्पियो को अपना उचित पारिश्रमिक नही देता था।

यही कारण था कि सरकार ने घरेलू-प्रणाली के विकास को रोकने के लिए कई अधिनियम पारित किये थे। यह आर्थिक शक्तियो के विरुद्ध सघर्ष था और इस रूप मे जितने भी सरकारी प्रयत्न किये गये उनकी समाप्ति असफलता मे ही हुई। सन् १४६४ के अधिनियम के अन्तर्गत नियोजको से नियोजितो को वैधानिक मजदूरी देने की बात कही गयी, इसी प्रकार १५५५ के बुनकर अधिनियम के अन्तगत यह व्यवस्था की गयी कि कोई ऊनी बुनकर (जो शहर से बाहर रहता है) दो से अधिक करघे नहीं रख सकता था और न कोई कपडे वाला (Clothier) शहर से बाहर एक करघे से अधिक रख सकता था। सोलहवी शताब्दी तक कपडे वालो मे यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुई कि शहर मे एक ही छत के नीचे कई श्रमिक या कारीगर नियोजित किये जाने लगे। इस प्रकार की प्रवृत्ति को सरकार ने रोकना चाहा क्योकि ऐसी प्रवृत्ति मे कई अनावश्यक तत्त्व शहर मे पनपते थे जिससे शहर की शान्ति और व्यवस्था को खतरा पहुँचता था।

घरेलू-प्रणाली के लाभ
(Advantages of Domestic System)

(१) व्यक्तिगत निरीक्षण की प्रवृत्ति—पूँजीपति-मध्यस्थ उद्योग के प्रत्येक पहलू का व्यक्तिगत निरीक्षण करता था। अपने अनुभव एव योग्यता के बल पर वह इस निरीक्षण को अधिक प्रभावपूर्ण बना देता था। गिल्ड-प्रणाली के अन्तगत यह प्रवृत्ति नही पायी जाती थी।

(२) कारीगरों को सुविधा—इस प्रणाली के अन्तर्गत कारीगर कच्चे माल के क्रय तथा निर्मित माल के विक्रय सम्बन्धी झंझटो से मुक्त थे क्योकि यह कार्य मध्यस्थ-पूंजीपति द्वारा किया जाता था। ऐसी दशा मे कारीगर अपना समस्त ध्यान उत्पादन पर केन्द्रित कर सकता था।

(३) **उचित परामर्श**—*क्रेताओ और विक्रेताओ से सम्पर्क के कारण मध्यस्थ* पूँजीपति वस्तुओं की मांग की प्रकृति को भली प्रकार समझ कर कारीगरो को उसी प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन की सलाह दे सकता था।

(४) *सहायक व्यवसाय—इस प्रणाली के अन्तर्गत कृषक अपने अवकाश के* समय मे औद्योगिक उत्पादन का कार्य कर सकते थे। इस प्रकार उनकी अतिरिक्त आय का साधन उन्हें प्राप्त होता था और वे अपना मुख्य धन्धा भी करते रहते थे।

(५) *श्रम समस्याओं का अभाव—घरेलू प्रणाली मे चूँकि श्रमिक* घर पर ही अपने परिवार के सदस्यो की सहायता से उत्पादन कार्य करता था, अत श्रम समस्याएँ उस रूप मे नही थी जैसी कि आज हम कारखाना प्रणाली के अन्तगत देखते हैं। *श्रम बिखरा हुआ था और मकान, सफाई अथवा भीडभाड की समस्याएँ* उत्पन्न नही हुई थी।

(६) **कारखाना-प्रणाली का आधार**—घरेलू-प्रणाली के आविर्भाव ने औद्योगिक *विकास की सम्भावनाओ के द्वार खोल दिये, क्योंकि गिल्ड-व्यवस्था मे विकास* के तत्त्व नष्ट हो चुके थे। घरेलू-प्रणाली विकासशील प्रणाली थी और इसने कारखाना-प्रणाली के लिए आधार तैयार किया। घरेलू-प्रणाली मे सम्बद्ध अनेक *मध्यस्थ-पूँजीपति उचित समय आने पर कारखानेदार बन गये।*

घरेलू प्रणाली के दोष
(Demerits of Domestic System)

(१) **श्रमिक का शोषण**—घरेलू प्रणाली के अन्तर्गत श्रमिक का शोषण होता था। कम मजदूरी और गाढे पसीने की कमाई के रूप मे यह वर्ग अस्तित्व मे आया था। उसे कच्चे माल और औजारो के लिए नियोजक पर निर्भर रहना पडता था और इसी कारण से उसे मजदूरी कम मिलती थी और उसका शोषण होता था।

(२) **प्रत्यक्ष सम्बन्ध की समाप्ति**—घरेलू-प्रणाली के अन्तर्गत कालान्तर मे नियोजित (श्रमिक) और नियोजक (पूँजीपति) का प्रत्यक्ष सम्पर्क समाप्त हो गया और दोनो के मध्य एजेन्टो द्वारा सम्बन्ध होने लगा। अत यह खाई बढती ही गयी और सामाजिक असन्तोष की अग्नि प्रज्वलित होने लगी।

(३) **समय एव शक्ति का दुरुपयोग**—नियोजक और नियोजित के अलग-अलग स्थानो पर रहने से माल के ले जाने, लाने मे पर्याप्त समय और शक्ति का दुरुपयोग होता था।

(४) **कृषि कार्य को हानि**—श्रमिको मे प्रतिस्पर्द्धा भी बढी अत कृषि कार्य को हानि हुई क्योंकि अधिकाशत श्रमिक वर्ग फालतू समय इस प्रकार का कार्य सम्पादित करते थे।

(५) **श्रमिक की निरीहता**—मजदूरी का भुगतान वस्तुओ मे होता था; अत घटिया किस्म की वस्तुएँ देकर श्रमिक को हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति पायी जाती थी।

(६) बालकों का अवरुद्ध विकास—कार्य की वृद्धि और लोभ वृत्ति के परिणामस्वरूप बालकों को भी काम पर लगाया जाता था जिसका फल बाल श्रमिकों का शोषण और शैक्षणिक विकास रोक देना था।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि घरेलू-प्रणाली में लाभ के स्थान पर हानियाँ अधिक उत्पन्न होने लगीं, अतः इस प्रथा के स्थान पर फैक्टरी-पद्धति का आविर्भाव हुआ जो औद्योगिक क्रान्ति की देन है। फिर भी इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि यह प्रणाली गिल्ड-प्रणाली और फैक्टरी प्रणाली के मध्य की कड़ी थी। इसमें पूँजी का महत्त्व बढ़ रहा था तथा श्रम-विभाजन का विकास हो रहा था और बाजार की व्यापकता के साथ ही बड़े पैमाने के उत्पादन का महत्त्व भी समझा जा रहा था।

४ कारखाना-प्रणाली (Factory System)

यह प्रणाली वस्तुतः औद्योगिक क्रान्ति की देन है। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में, विशेषकर सन् १७६० के पश्चात्, इंगलैंड में एक के बाद एक इतने आविष्कार हुए कि उसके कारण उत्पादन का स्वरूप ही परिवर्तित हो गया। उत्पादन मानव-शक्ति के स्थान पर भाप की शक्ति से चालित विशालकाय मशीनों से होने लगा। ये मशीनें घरों पर नहीं लगायी जा सकती थीं क्योंकि इनके लिए अधिक स्थान की आवश्यकता होती थी। अतः ये विशाल कक्षों में स्थापित की गयीं जहाँ अनेक श्रमिक एक साथ काम पर रखे जाते थे। इसी से कारखाना-प्रणाली का जन्म हुआ जो आज हमारे समक्ष प्रचलित है। कारखाना प्रणाली ने अपने गुण एवं दोषों के साथ औद्योगिक पूँजीवाद को जन्म दिया है। पिछले दो सौ वर्षों में इस प्रणाली का विकास औद्योगिक क्रान्ति के बाद से हुआ है जिसका वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

प्रश्न

1. Give an account of Medieval Industrial System of England
इंगलैण्ड की मध्ययुगीय औद्योगिक व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
2. Discuss the merits and demerits of craft guilds and explain the causes of their decline
"कारीगर संघों" के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए तथा इनके पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।

७
औद्योगिक क्रान्ति
(Industrial Revolution)

औद्योगिक क्रान्ति का जन्म १८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे इगलैण्ड मे हुआ। यह सन् १७६० मे प्रारम्भ हुई और सन् १८३० तक अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी। कुछ विद्वानो के अनुसार यह क्रान्ति सन् १७६० के पश्चात् सौ वर्षों तक इगलैण्ड मे होती रही। इसने विश्व के आर्थिक जीवन मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये। इन परिवर्तनों को क्रमिक विकास कहा जाना चाहिए था परन्तु ये परिवर्तन दीर्घकालीन होने पर भी इतने महत्त्व के और आकर्षक थे कि इन्हे औद्योगिक क्रांति की सज्ञा दी गयी। कहा जाता है कि औद्योगिक क्रान्ति शब्द का प्रयोग सबसे पहले अरनोल्ड टोयनबी ने १८८४ मे किया। ऐसा प्रतीत होता है कि एक फ्रासीसी लेखक ब्लान्की ने भी १८३७ मे इसका प्रयोग किया और तत्पश्चात् जेवन्स, एन्जिल्स और कार्ल मार्क्स ने भी इस शब्द का प्रयोग किया तथा अन्य लेखक भी इसे क्रान्ति के नाम से ही सम्बोधित करने लगे। प्राय यह शका प्रस्तुत की जाती है कि औद्योगिक क्षेत्र मे हुए इन परिवर्तनो की शृखला को क्रान्ति के नाम से सम्बोधित क्यो किया गया? इसका उत्तर प्रोफेसर ए० बिर्नी ने इन शब्दो मे दिया है— "इसके अन्तर्गत हुए परिवर्तन इतने व्यापक एव गहरे थे, गुण एवं दोषो के अनोखे सम्मिश्रण को अपने मे छिपाये इतने दुखदायी थे तथा एक ओर सामाजिक त्राण और दूसरी ओर भौतिक उत्थान के सयोग मे इतने नाटकीय थे कि उन्हें क्रान्तिकारी परिवर्तन कहना ही अधिक उचित होगा।"[1]

---

१ "The changes which it describes were so far-reaching and profound, so tragic in their strange mixture of good and evil, so dramatic in their combination of material progress and social suffering that they may well be described as revolutionary"— Prof H Birnie in his famous book *An Economic History of Europe* (1760-1939), p 1.

(१) औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ

श्री जी० डब्ल्यू० साउथगेट के अनुसार, "अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध एव उन्नीसवी शताब्दी के पूर्व म ब्रिटिश उद्योगो को ऐसे महत्त्वपूर्ण एव व्यापक परिवर्तनो स गुजरना पडा जिनके कारण इन परिवर्तनो को सयुक्त रूप मे औद्योगिक क्रान्ति कहा जाने लगा।"[1]

क्रान्ति का अभिप्राय आधारभूत परिवर्तनो से है। राजनीतिक क्रान्ति शासन मे पूर्ण परिवर्तन को कहते हैं। कूटनीतिक क्रान्ति अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धो के पुनर्गठन को कहते है कृषि-क्रान्ति कृषि की पद्धति और सगठन म परिवर्तन को कहते हैं। सामाजिक क्रान्ति कतिपय सामाजिक वर्गों म सापेक्षिक महत्त्व मे परिवर्तन को कहते हैं। इसी प्रकार औद्योगिक क्रान्ति औद्योगिक पद्धति मे परिवर्तन था। इसम दस्तकारी के स्थान पर शक्ति-सचालित यन्त्रो से काम होने लगा। इन नवीन परिस्थितियो मे उद्योग धन्धो का उद्देश्य बडी मात्रा म उत्पत्ति करना था, एक सीमित और स्थिर मण्डी की माँग की पूर्ति करने के पुरातन आदर्श का स्थान राष्ट्र की सीमाओ स अधिक विस्तृत और वास्तव मे एक ससारव्यापी मण्डी मे पूर्ति करने और प्रचुर मात्रा म उत्पत्ति करने के दृढ निश्चय न ले लिया।

श्री मौरिस डोब[2] ने अपनी पुस्तक 'Studies in Development of Capitalism' मे इन क्रान्तिकारी परिवर्तनो के सम्बन्ध मे लिखा है कि 'इस काल म सामाजिक सम्बन्धो एव उद्योग क ढाँचे मे परिवर्तन की गति तथा उत्पादन एव व्यापार की मात्रा इतनी अधिक ऊँची थी कि उनका वर्णन करने के लिए क्रान्तिकारी शब्द के अतिरिक्त अन्य शब्द उपयुक्त नही होगा।"

(२) क्रान्ति का काल

औद्योगिक क्रान्ति के लिए कोई निश्चित तिथि का निर्धारण करना कठिन है। कुछ उद्योगो म परिवर्तन अत्यन्त तीव्र गति से हो गये जबकि अन्य उद्योगो मे ये परिवर्तन होने म कई शताब्दियाँ लग गयीं। परिवर्तनो का क्रम १८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होकर उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक चलता रहा। यह परिवर्तनो का काल इतना विस्तृत था कि उन्हें एक ही शृखला मे देखना परिवर्तनो के प्रति न्यायोचित व्यवहार कहा जा सकता है। १७६५ से १७८५ के बीस वर्षों म वस्त्र उद्योग सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुए तथापि औद्योगिक क्रान्ति को इस अवधि तक सीमित रखने का कोई प्रश्न नही उठता। १७६५ स पूर्व कई वर्षों में वस्त्र निर्माण करने के यन्त्रो मे प्रयोग और १७८५ के पश्चात् कई वर्षों तक उनमे सुधार किये गये और वस्त्र-उद्योग के पूर्ण रूपान्तर मे सत्तर वर्षों से कम

---

[1] G W Southgate, *English Economic History*, p 115
[2] Maurice Dobb, *Studies in the Development of Capitalism*, p 258.

समय नहीं लगा। दूसरी दिशा में इससे अधिक काल तक परिवर्तन हुए। वाष्प इञ्जन का प्रादुर्भाव शक्ति के स्रोत के रूप में अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हो गया था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक इसने पूर्णतः जल-चक्र का स्थान नहीं लिया। घरेलू कार्य से कारखानों में कार्य का परिवर्तन भी अल्पकाल में पूर्ण नहीं हुआ। किन्तु यदि आंग्ल उद्योगों की १८५० की स्थिति का १७६० की स्थिति से अन्तर देखा जाय तो जो परिवर्तन हुए उनका महत्त्व समझा जा सकता है और उनको क्रान्तिकारी बतलाने की उपयुक्तता स्वीकार की जा सकती है।

(३) औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में ही क्यों हुई ?

इंगलैंड की साम्राज्य-तृष्णा ने उसे ऐसे विश्व का स्वामी बना दिया था जहाँ पर कभी सूर्यास्त ही न होता था, अर्थात् इंगलैण्ड का राजनीतिक अधिकार विश्व के सभी भू-खण्डों पर था। इस कारण इंगलैंड के पास असीमित नाविक शक्ति एवं जलयान थे, जिनसे वह विदेशों से तथा अपने उपनिवेशों से व्यापार करता था। "प्रारम्भ में हमारे उपनिवेशों ने हमको विस्तृत बाजार दिये, हमारे व्यापार पर यूरोपीय देश अथवा उनके उपनिवेश प्रतिबन्ध लगा सकते थे, परन्तु हम अपने उपनिवेशों के साथ जैसा चाहे वैसा व्यवहार कर सकते थे, और यदि हम अन्य देशों के साथ व्यापार न करते हुए केवल उपनिवेशों के साथ ही व्यापार करते तब भी इंगलैण्ड विश्व का सबसे बड़ा व्यापारिक देश होता।"[2] इससे इंगलैंड का विदेशी व्यापार कितना बढ़ा-चढ़ा था, इसकी कल्पना की जा सकती है। इस असामान्य स्थिति के कारण इंगलैन्ड ने १७वीं शताब्दी तक औद्योगिक स्वामित्व प्रस्थापित कर लिया था, जिससे अन्य कोई भी देश टक्कर लेने में असमर्थ था। किसी भी देश में औद्योगिक क्रान्ति होने के लिए चार बातें आवश्यक होती हैं—(१) पूँजी एवं कुशलता (Capital and Skill), (२) विस्तृत बाजार-क्षेत्र, (३) औद्योगिक प्रभुत्व, तथा (४) राजनीतिक शान्ति। इंगलैंड में सौभाग्य से ये सब बातें उपलब्ध थीं और इसी कारण इंगलैण्ड ही एकमात्र ऐसा देश था जहाँ पर औद्योगिक क्रान्ति का बीजारोपण हुआ, इंगलैंड की प्राकृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दशाएं औद्योगिक क्रान्ति उत्पन्न करने के लिए अत्यन्त अनुकूल थीं। उसकी उत्तम जलवायु, उसकी भौतिक साधनों की सम्पन्नता, सामाजिक उदारता एवं प्रशासनिक कुशलता आदि ने मिलकर लोगों को नये विचारों एवं उत्पादन की नवीन प्रक्रियाओं के विषय

---

1 "Originally our colonies were prized because they gave us larger markets, restrictions might be placed on our trade with European nations or with their colonies, but with our own colonies we could deal as we pleased If we had confined ourselves to trading in the main with in the bounds of their Empire—England would even then have been the greatest commercial country in the world "*Land Marks in Industrial History* by G T. Wauts, p 222.

मे चिन्तन का अवसर प्रदान किया। इगलैण्ड के लिए अन्य देशो तथा विशेषकर उपनिवेशो के बाजारो को भारी मात्रा मे विभिन्न प्रकार के माल की पूर्ति करके प्रचुर लाभ कमाने का यह सर्वोत्तम अवसर था। इसके लिए इगलैण्ड को उपनिवेशो का कच्चा माल सस्ती कीमत पर उपलब्ध था जिससे उसका मजबूत जहाजी बेडा सरलता से इगलैण्ड के तट पर उतार सकने की पूर्ण क्षमता रखता था। इसके अतिरिक्त कृषि क्षेत्रो से उखडी हुई पर्याप्त श्रम-शक्ति इगलैण्ड के नगरो मे बेकार घूम रही थी जिसके लिए लाभदायक रोजगार की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक था। आवश्यकता केवल इस बात की थी कि इगलैण्ड उत्पादन के ऐसे नये तरीके खोज निकाले जिनके द्वारा शीघ्रता मे और कम लागत मे उत्तम माल उत्पादित किया जा सके। औद्योगिक क्रान्ति लाने की भावना इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रबल होती गयी और अन्तत अठारहवी सदी के अन्त मे नवीन विचारो, नवीन तरीको, विधियों एव प्रक्रियाओ की खोज के स्वप्न साकार हो उठे।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है' यह कथन इगलैण्ड मे हुई औद्योगिक क्रान्ति के सन्दर्भ मे पूर्ण रूप से सत्य सिद्ध हुआ। वहाँ भाप की शक्ति के आविष्कार के बाद स्वचालित इजिनो एव कल पुर्जो के आविष्कारो का जो सिलसिला शुरू हुआ, उसने ही क्रान्ति को जन्म दिया। इगलैण्ड के औद्योगिक क्षेत्रो मे जब ये क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे, तब यूरोप के अन्य देश अपनी प्रान्तीय समस्याओं मे उलझे हुए थे। उनमे से अनेक देश यद्यपि सास्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि मे इगलैण्ड से किसी भी भाँति पीछे नही थे और यदि अन्य दशाएँ अनुकूल होती तो वे भी क्रान्ति के जनक हो सकते थे। किन्तु नियति ने औद्योगिक क्रान्ति का जन्मदाता होने का श्रेय इगलैण्ड को ही प्रदान किया। यूरोप के कुछ अन्य देशो मे यह क्रान्ति सर्वप्रथम क्यों नही हो सकी इसका वर्णन सक्षेप मे नीचे किया गया है।

(1) फ्रास

उस समय फ्रास इगलैण्ड से भी अधिक समृद्ध तथा विकसित देश था। किन्तु फिर भी वह औद्योगिक क्रान्ति मे पहल न कर सका, इसके अनेक कारण थे। वहाँ का वस्त्र उद्योग विकसित होने पर भी वहाँ की बैंकिंग व्यवस्था विकसित नही हो पायी थी। फ्रास मे व्यापार सघो का सर्वथा अभाव था। औद्योगिक प्रक्रिया को परोक्ष रूप से प्रोत्साहित करने के लिए ऐसे सघो का होना उस समय आवश्यक था। इसके अतिरिक्त फ्रास के सम्राटो को अपनी वशानुगत समस्याओ से ही अवकाश नही था और वे देश के आर्थिक विकास के विषय मे अधिक नही सोच सकते थे। फ्रान्सीसी राज्य क्रान्ति ने अग्नि मे घृत का कार्य किया और इस क्रान्ति की अस्तव्यस्तता ने औद्योगिक विकास को पीछे धकेल दिया और उसकी गति अवरुद्ध सी

हो गयी। श्रीमती नोल्स[1] के अनुसार, "यदि फ्रास की राज्य क्रान्ति ने फ्रास के औद्योगिक एव आर्थिक जीवन को अस्त व्यस्त कर दिया होता तो इगलैण्ड के बजाय फ्रास ही औद्योगिक क्रांति का प्रणेता होता।"

फ्रास की जनसख्या भी उस समय इगलैण्ड की तुलना म अधिक थी। अत उस हाथ पैर और मस्तिष्क का काम देने वाली स्वचालित मशीनो और यन्त्रो के विस्तार की इतनी आवश्यकता की अनुभूति नहीं हुई। उस समय फ्रास एव इगलैण्ड की जनसख्या म लगभग तीन और एक का अनुपात था।

(ii) जर्मनी

फ्रान्स की तरह जर्मनी भी औद्योगिक क्रान्ति म पहल नही कर सका। औद्योगिक क्रान्ति के लिए आवश्यक पर्याप्त पूँजी का जर्मनी मे उस समय अभाव था। इसके अतिरिक्त लगभग उसी समय जर्मनी ने बडे पैमाने पर सैनिकीकरण किया था। सैनिक गतिविधियों पर इतना अधिक व्यय हो रहा था कि औद्योगिक विकास के लिए धन की पूर्ति करना प्राय असम्भव था। उस समय जमन राष्ट्र अनेक छोटे-छोटे राज्यो म बँटा हुआ था। इगलैण्ड म औद्योगिक क्रान्ति सम्पन्न होने के बहुत बाद जमनी म बिस्मार्क न छोटे छोटे राज्यो का एकीकरण करके उस एक राष्ट्र के रूप म सगठित किया। इसलिए जर्मनी मे औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भ पिछड गया।

साथ ही जमनी क पास औपनिवेशिक साम्राज्य का भी अभाव था जिससे औद्योगिक कच्चे माल तथा बाजार के विस्तार की दृष्टि से उसकी स्थिति इगलैण्ड की तुलना म कमजोर थी। विस्तृत समुद्र तट और उत्तम बन्दरगाहो की प्रचुरता भी जर्मनी के समक्ष एक बाधा रही।

(iii) यूरोप के अन्य राष्ट्र

उस समय यूरोप मे इगलैण्ड के अतिरिक्त फ्रान्स और जर्मनी ही प्रमुख राष्ट्र माने जाते थ। अन्य राष्ट्र इतने शक्तिशाली एव साधन सम्पन्न नही हो पाये थे। रूस उस समय अत्यन्त पिछडा हुआ और निर्धन राष्ट्र था। उसकी अर्थव्यवस्था परम्परागत बन्धनों और रूढियो म बँधी हुई थी। हालैण्ड यद्यपि नौकावहन में अग्रणी था, किन्तु उसके पास भी पर्याप्त पूँजी का अभाव था और बैंकिंग एव व्यापार का वहाँ इतना विकास नही हो सका था। स्पेन जो कि हालैण्ड की भाँति ही सोलहवी शताब्दी मे प्रथम श्रेणी का राष्ट्र था, अठारहवी शताब्दी तक अनेक समस्याओ मे उलझ चुका था जैसे अमरीका की चाँदी की खानो की ओर अधिक आकर्षण, धर्म एव सैनिकवाद का प्रसार, उपनिवेशो के लिए प्रतिस्पर्द्धा आदि। इस प्रकार सक्षेप म यह कहा जा सकता है कि यूरोप महाद्वीप के कई राष्ट्र विगत सोलहवीं और

[1] L C A Knowles, The Industrial & Commercial Revolution in Great Britain during the 19th century

अठारहवी शताब्दी म यद्यपि उत्तम आर्थिक स्थिति वाले राष्ट्र रहे, किन्तु वे औद्योगिक क्रान्ति के जनक होने का श्रेय न प्राप्त कर सके। अनेक प्राकृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक तत्वो का ऐसा उत्तम सयोग इगलैण्ड को उपलब्ध हुआ कि इगलैण्ड विश्व मे आधुनिक औद्योगिक क्रान्ति का प्रणेता एव जन्मदाता बन गया।

औद्योगिक क्रान्ति के कारण

इगलैण्ड मे हुई औद्योगिक क्रान्ति के लिए किसी एक कारण को जिम्मेदार नही माना जा सकता। वस्तुत अनेक कारणो के सम्मिलित प्रभाव ने क्रान्ति की प्रक्रिया को जन्म दिया। अनेक कारणो के क्रियाशील होते हुए भी यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि क्रान्ति के मूल म तत्कालीन सामाजिक एव आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रश्न सबसे बडा कारण था जिसने ब्रिटिश आविष्कर्ताओं के समक्ष क्रान्तिकारी परिवर्तनो को लाने की अनिवार्यता को ला खडा किया। निम्न पक्तियो मे क्रान्ति के विभिन्न कारणो का विश्लेषण किया गया है

(१) विश्व मे व्यापारिक प्रभुत्व—इगलैण्ड ने अपने विशाल साम्राज्य के कारण अपना विदेशी व्यापार उपनिवेशो मे फैला रखा था, जहाँ पर मन चाहा करने की उसे पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इस व्यापारिक प्रभुत्व के कारण विश्व के अन्य राष्ट्र इगलैण्ड से टक्कर लेने मे असमर्थ थे। इस कारण औद्योगिक विकास के लिए नयी-नयी बातो की आवश्यकता इगलैण्ड को प्रतीत हुई, जिसने यान्त्रिक आविष्कारो को जन्म दिया।

(२) विस्तृत बाजार—इगलैण्ड का साम्राज्य विश्व मे चारों ओर फैला होने के कारण उसके उपनिवेश उसके लिए अच्छे बाजार थे, जहाँ पर इगलैण्ड का माल सरलता से बेचा जा सकता था और बिक रहा था। इस कारण इगलैण्ड को माल की बिक्री के लिए बाजारो की चिन्ता न थी। इन उपनिवेशो मे भारत का बाजार सबसे बडा एव महत्त्वपूर्ण था।

(३) पूंजी का असीमित सचय—इगलैण्ड का ऊन-व्यवसाय तथा विदेशी व्यापार एव वाणिज्य अत्यन्त उन्नत होने से व्यापारियो के पास असीमित मात्रा मे धन का सचय हो रहा था, जिसको विनियोग करने के साधन उन्हें नही मिल रहे थे। ग्रेट ब्रिटेन की परिस्थितियाँ पूँजी सग्रह करने के पक्ष मे थी जो औद्योगिक विस्तार के लिए आवश्यक मानी जाती हैं। विशाल व्यापारी कम्पनियो की सफलता के फलस्वरूप उनके सदस्यो को सम्पत्ति प्राप्त हुई थी और इस प्रकार विदेशी व्यापार के लाभ से प्राप्त मुद्रा उद्योगो म लगाने के लिए उपलब्ध थी। इगलैण्ड का व्यापार पूर्व और पश्चिम द्वीपसमूहो से होता था। इन देशो का व्यापार इगलैण्ड के बैंक द्वारा नियन्त्रित होता था, उससे औद्योगिक क्रान्ति के लिए पूँजी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध थी। कभी-कभी तो यह भी कहा जाता है कि यही एक महत्त्वपूर्ण कारण ऐसा था जिसने अठारहवीं शताब्दी म इगलैण्ड के औद्योगिक विकास को बहुत तेजी

से आगे बढ़ाया अर्थात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारियों द्वारा बंगाल की लूट। एक अमरीकन लेखक ब्रुक एडम्स लिखते हैं कि "प्लासी के तुरन्त बाद ही, बंगाल की लूट का माल लन्दन में नजर आने लगा और इसके प्रभाव आशातीत थे—प्लासी का युद्ध १७५७ में लड़ा गया १७६० में 'फ्लाइंग शटल' गिरी, १७६४ में हारग्रीव्ज ने स्पिनिंग जेनी का आविष्कार किया, १७७६ में क्राम्पटन ने म्यूल और १७८५ में कार्टराइट ने शक्ति करघे का निर्माण किया।" यद्यपि सत्यता के दृष्टिकोण से यह तो सम्भव नहीं है कि एक ही कारण औद्योगिक क्रान्ति के लिए उचित ठहराया जाय, परन्तु इतना अवश्य मानना होगा, जैसा कि रजनी पामदत्त ने अपनी पुस्तक 'आज का भारत' में लिखा है—"यदि प्लासी की लूट का माल और भारत की सम्पदा इंगलैण्ड की ओर उन्मुख न होती तो मैनचेस्टर, पेसले और लंकाशायर की सूती मिलें नष्ट हो जाती तथा जेम्सवाट, आर्कराइट, कार्टराइट, क्रोम्पटन जैसे आविष्कारक और उनके आविष्कार समुद्र में फेंक दिये जाते।"

(४) **राजनीतिक शान्ति**—१८वीं शताब्दी में, जबकि यूरोपीय देश गृह-युद्धों में अथवा परस्पर युद्धों में फँसे हुए थे, इंगलैण्ड में पूर्ण राजनीतिक शान्ति थी। इसी कारण युद्ध ग्रस्त देशों के अनेक शिल्पी एवं व्यवसायी इंगलैण्ड में आकर बसे। इसी प्रकार इटली से भी अनेक कार्यक्षम शिल्पी एवं व्यवसायी इंगलैण्ड में आये क्योंकि इटली में उस समय धर्म-युद्ध हो रहा था। इस कारण औद्योगिक उन्नति के कार्य-कुशल एवं बुद्धिमान प्रणेता इंगलैण्ड को अनायास ही मिल गये।

(५) **श्रम-संचयक साधनों की आवश्यकता**—उपनिवेशों के कारण इंगलैण्ड के व्यापारिक क्षेत्र का बहुत अधिक विस्तार हो चुका था, जिन देशों की माँग घरेलू पद्धति से पूर्ण नहीं की जा सकती थी। इंगलैण्ड से माल पूर्ति उत्पादन से सीमित थी, जो वहाँ के सीमित शिल्पियों द्वारा किया जाता था, अतः इंगलैण्ड के असीमित व्यापार-क्षेत्र की तुलना में उसकी जन-शक्ति बहुत सीमित थी। जन-शक्ति सीमित होने से वहाँ के कुशल शिल्पियों का ध्यान श्रम-संचयक साधनों के आविष्कारों की ओर आकर्षित हुआ। फलतः श्रम-संचयक साधनों के रूप में यन्त्रों के आविष्कार को उत्तेजन मिला।

(६) **कोयले एवं लोहे की निकटता एवं विपुलता**—इंगलैण्ड में कोयले एवं लोहे की खानें एक-दूसरे के निकट हैं, जिनमें विपुल मात्रा में लोहा एवं कोयला मिलता है। चूँकि यन्त्रों के निर्माण एवं चलन के लिए इन दोनों की आवश्यकता होती है, इसलिए इनकी खानें एक-दूसरे के निकट एवं विपुलता से होना भी औद्योगिक क्रान्ति का एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

(७) **घरेलू युग की उत्पादन पद्धति**—इंगलैण्ड में उस समय घरेलू-पद्धति के अन्तर्गत दूसरे ढंग से उत्पादन होता था, अर्थात् पूँजीपति-मध्यस्थों द्वारा कच्चा माल, औजार आदि शिल्पियों को दिये जाते थे। इस पद्धति के कारण वहाँ पर पूँजीवाद

का श्रीगणेश हो चुका था एवं उसका महत्त्व बढ़ गया था। इससे औद्योगिक क्रान्ति को प्रोत्साहन मिला।

(८) इगलैण्ड की व्यापारिक एवं आर्थिक नीति—इगलैण्ड की व्यापारिक एवं आर्थिक नीति उद्योगो को सरक्षण देकर देशी व्यापार एवं वाणिज्य की उन्नति के पक्ष मे था। इस नीति के फलस्वरूप ही इगलैण्ड ने सरक्षण करो द्वारा अपने माल की माँग बढ़ाकर वर्षों तक अपना व्यापार-सन्तुलन अपने पक्ष मे रखा, जिससे वहाँ पर पूँजी का असीमित सचय होता गया और विदेशी व्यापार-क्षेत्र का विकास एवं विस्तार हुआ। इस नीति के कारण औद्योगिक क्रान्ति को प्रोत्साहन मिला।

(९) इगलैंड की भौगोलिक स्थिति—इगलैंड की भौगोलिक स्थिति भी उसके लिए लाभकर थी, क्योंकि पुरानी दुनिया एवं नयी दुनिया दोनों के बीच मे वह स्थित है। इस स्थिति के कारण उसे विश्व के सभी देशो के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रखने म सुगमता होती है। यह भी औद्योगिक क्रान्ति का एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

(१०) विकासशील दृष्टिकोण—बाजार क्षेत्रो के विकास के साथ इगलैंड के पूँजीपतियों की और विचारशील जनता की यह विचारधारा हो गयी थी कि इतने विस्तृत व्यापार क्षेत्रो स लाभ उठाने के लिए पूँजी की सहायता तथा बड़े-बड़े यन्त्रो के आविष्कार मे उत्पादन तन्त्र मे सुधार किया जाना चाहिए। इस विचारधारा ने इगलैंड की औद्योगिक क्रान्ति का मार्ग खोल दिया।

(११) अधिकोषों का विकास—इगलैंड म १७वीं शताब्दी म ही अधिकोषो का विकास हो चुका था। अधिकोषण विकास के कारण वहाँ पर औद्योगिक विकास के लिए उन्नत एवं विकसित मुद्रा-मण्डी भी उपलब्ध थी।

(१२) उदार सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण—इगलैंड म सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि स वातावरण विकास के लिए अनुकूल था। मध्ययुगीय कट्टरता एवं जड़ता धीरे-धीरे समाप्त हो चुकी थी और शिक्षा के स्तर मे वृद्धि हो रही थी। इन सबने मिलकर नव आविष्कारों एव नयी रीतियों को प्रोत्साहित किया।

साराश म, १८वीं शताब्दी के आरम्भ म विश्व म इगलैंड ही एक ऐसा देश था जहाँ औद्योगिक क्रान्ति की पोषक एवं अनुकूल उपर्युक्त परिस्थिति थी। इस कारण इगलैंड म ही सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति हुई। "इन महत्त्वपूर्ण आविष्कारों के आरम्भ होने के पूर्व इगलैंड मे वाणिज्य के अनुकूल सरकार थी, मुक्त आन्तरिक व्यापार था, समृद्ध एवं विकसित होने वाला वस्त्र उद्योग था, जिसका निर्मित माल महाद्वीप (यूरोप) को निर्यात होता था एवं जिसके व्यापारिक सम्बन्ध अधिक थे, जहाँ समुद्र-स्तम्भ प्रमण्डल थे, तथा उन्नत अधिकोषण पद्धति थी।"[1]

[1] "Before the great inventions began, England had a government favourable to commerce internal free trade, prosperous and

औद्योगिक क्रान्ति की विशेषताएँ

क्रान्ति का आरम्भ

जिसको आज हम औद्योगिक क्रान्ति कहते हैं वह इगलैंड के उद्योगों के चमत्कारपूर्ण विकास की कहानी है। यह कहानी वास्तव में औद्योगिक विश्व के यान्त्रिक आविष्कारों की रोचक कहानी है, जिसने इगलैंड का औद्योगिक आर्थिक एवं सामाजिक कलेवर पूर्ण रूप से बदल दिया। औद्योगिक क्षेत्र में यान्त्रिक आविष्कारों का सूत्रपात स्टेपल-उद्योग (रेशे का उद्योग) 'बुनाई' से हुआ, ऊनी वस्त्र उद्योग से ही, क्योंकि उस समय भी यह उद्योग घरेलू अवस्था में था तथा बुनकर को सूत देने पर वह उसका कपड़ा सूत देने वाले मध्यस्थ को बुन देता था। उस समय छः सूत कातने वालों के एक दिन के सूत से एक बुनकर एक दिन का काम कर सकता था, परन्तु चूँकि सूत कातने के उद्योग में साधारणतः स्त्रियाँ, बच्चे आदि भी काम करते थे, इस कारण उस समय सूत की विशेष अड़चन नहीं थी और यन्त्रीकरण की ओर जो कुछ थोड़े-से आविष्कार हुए भी थे उनसे केवल कपड़े के प्रकारों में सुधार हुआ था, किन्तु उपयोग में जो हाथ-यन्त्र—स्पिनिंग ह्वील और लूम—थे, वे पूर्ववत् ही थे।

यान्त्रिक क्षेत्र में सन् १७३३ से निम्न आविष्कारों का प्रारम्भ हुआ

(१) आविष्कारों के लम्बे मार्ग का सबसे पहला आविष्कार जॉन के (John Kay) नामक बुनकर ने सन् १७३८ में किया। यह आविष्कार फ्लाईंग शटल (Kay's Flying Shuttle) यन्त्र का था। इस आविष्कार ने बुनकरों की उत्पादन-क्षमता बढ़ा दी, क्योंकि इससे पूर्व जितने भी हाथ-बुनकर यन्त्र थे उनसे ताने (warp) के बीच बाना (weft) लेने का काम जुलाहे को अपने दोनों हाथों से करना पड़ता था। इस अन्वेषण से बाना तानों के बीच से यान्त्रिक पद्धति से फेंका जाने लगा। इससे एक तो चौड़ा कपड़ा बुनना सम्भव हुआ तथा दूसरे, जुलाहे को एक ओर से दूसरी ओर बाना फेंकने की आवश्यकता न रहने से उसका उत्पादन दुगुना हो गया।

(२) जॉन के (John Kay) के आविष्कार ने बुनने की क्षमता बढ़ा दी, जिससे बुनकरों को अब अपने एक दिन के कार्य के लिए पर्याप्त मात्रा में सूत मिलना कठिन हो गया। कारण उनकी सूत की आवश्यकता भी अब दुगुनी हो गयी, जिसकी पूर्ति करना मध्यस्थ (Middlemen Clothier) को असम्भव हो गया, जिससे अब सूत कातने के यन्त्रों के आविष्कार के लिए प्रयोग होने लगे।[1] फलतः सन् १७४८

---

growing textile industry, exporting its products to the continent, with large commercial connections, joint stock companies and a well-developed banking system

—Hammand *The Rise of Modern Industry*, p. 62.

[1] John A. Hobson, *Evolution of Modern Capitalism.*

मे पाल और वाट (Paul and Watt) ने रोलर स्पिनिंग यन्त्र (Roller Spinning Machine) का आविष्कार किया। इस आविष्कार से सूत के प्रकार मे सुधार हुआ परन्तु उत्पादन-क्षमता न बढ़ी।

(३) ब्लेकबर्न के निवासी जेम्स हरग्रीव्स (James Hargreaves) ने सन् १७५३ म अपने स्पिनिंग ह्वील (Spinning Wheel) में सुधार कर स्पिनिंग जेनी (Spinning Jenney) का आविष्कार किया। इस यन्त्र से एक साथ सूत के ५४ धागे निकाले जा सकते थे। इसी का सुधार होकर सन् १७६४ मे स्पिनिंग जेनी नाम से हरग्रीव्स न पेटण्ट कराया, परन्तु फिर भी सूत का प्रदाय कम ही रहा, क्योंकि यह जेनी भी हाथ से ही चलायी जाती थी। इससे एक साथ ५४ धागे कतते थे।

(४) हरग्रीव्स के बाद सन् १७६६ मे रिचार्ड आर्कराइट (Richard Arckright) ने अपने प्रयोग द्वारा रोलर स्पिनिंग मशीन तथा स्पिनिंग मशीन और स्पिनिंग जेनी के संयोग से एक ऐसी रोलर स्पिनिंग मशीन तैयार की जो पानी से चलती थी तथा रोलर की गति को आवश्यकतानुसार कम या अधिक किया जा सकता था जिसमे अच्छे एवं मजबूत धागे काते जा सकते थे। आर्कराइट के इस आविष्कार को 'वाटर-फ्रेम' (Water Frame) कहा गया।

(५) सन् १७७६ मे हरग्रीव्स की स्पिनिंग जेनी तथा आर्कराइट के वाटर-फ्रेम के संयोग से क्रॉम्पटन (Crompton) ने एक नवीन यन्त्र 'म्यूल' (Crompton's Mule) का आविष्कार किया। इस यन्त्र द्वारा इतने अच्छे धागे काते जाने लगे जैसे कि इगलैण्ड मे कभी नही काते गये थे।

इस प्रकार यांत्रिक प्रयोग एवं आविष्कारो का तांता लगा रहा। फलस्वरूप, एडमन्ड कार्टराइट ने पावरलूम का आविष्कार किया, जिसका उत्पादन क्षेत्र मे प्रयोग सन् १७६१ म मैनचेस्टर के एक कारखाने वाले न ४०० यन्त्र खरीदकर आरम्भ किया। यह यन्त्र प्रारम्भिक स्थिति मे बैल द्वारा चलाया जाता था, परन्तु सन् १७६६ मे जेम्स वाट न स्टीम इजन का आविष्कार किया। इस आविष्कार के कारण स्टीम इजन द्वारा चलने वाला पहला लूम सन् १७८६ मे काम मे लिया गया। इस प्रकार सूती वस्त्र उद्योग से औद्योगिक क्षेत्र में यन्त्रो का आविष्कार आरम्भ होकर अन्य उद्योगो मे उसकी प्रतिक्रिया होने लगी। फलस्वरूप, क्रमश निम्नलिखित यन्त्रो के आविष्कार होते गये

यन्त्र	आविष्कर्ता
(क) वूल कोम्बिंग मशीन	एडमड कार्टराइट
(ख) कैलिको पर छपाई का काम करने के लिए 'सिलिन्डर प्रिंटिंग मशीन'	बेल
(ग) लेस मेकिंग मशीन	हीथ कोट

इन आविष्कारों से इंगलैण्ड के वस्त्र-व्यवसाय की उत्पादन-पद्धति में यन्त्रों का उपयोग होने लगा और क्रमशः ऊन-उद्योग, लिनन इत्यादि के कारखानों में इन यन्त्रों का उपयोग होकर वे भी पूरी तरह से यन्त्रचालित हो गये। "इस प्रकार कातने एवं बुनने के वर्तमान यन्त्र ८०० आविष्कार तथा ६० पेटेण्ट्स के संयोग से बने हुए हैं।" इन विभिन्न आविष्कारों की कल्पना निम्न तालिका से होगी :

वर्ष	यन्त्रों का अन्वेषण[1]
१७३०	वाट की रोलर स्पिनिंग मशीन (सन् १७३८ में पेटेन्ट)
१७३८	जॉन के का फ्लाइंग शटल
१७४८	पॉल की कार्डिंग मशीन (ली, आर्कराइट तथा वुड के संशोधनों के बाद सन् १७७२-७४) इसका उपयोग होना प्रारम्भ हुआ।
१७६४	हारग्रीव्स की स्पिनिंग जेनी (सन् १७७० में पेटेण्ट)
१७६४	कैलिको प्रिंटिंग (लंकाशायर में उपयोग भी)
१७६८	आर्कराइट ने वाट की स्पिनिंग मशीन का आविष्कार पूरा किया (पेटेण्ट सन् १७६९)
१७७९	क्रॉम्पटन का म्यूल यन्त्र पूरा हुआ।
१७८५	कार्टराइट का पॉवरलूम।
१७९२	ह्विटने का गाजिन।
१८१३	हॉरॉक्स (Horrock's) की ड्रेसिंग मशीन।
१८३२	रॉबर्ट्स ने स्व-संचालित म्यूल का अन्वेषण पूरा किया।
१८४१	बलो (Bulloh's) का संशोधित पॉवरलूम।

यन्त्रों के आविष्कार एवं उनके बढ़ते हुए उपयोग से अधिक लोहे की आवश्यकता प्रतीत होने लगी, जिससे इस क्षेत्र में भी आविष्कारों की खोज होने लगी। फलस्वरूप अब्राहम डर्बी तथा रोबक ने सबसे पहले यह प्रमाणित किया कि कोयले तथा बाद में खनिज-कोयले से लोहा जल्दी तथा सरलता से गलाया जा सकता है। इसके बाद जब लोहा गलाने में अच्छी भट्टियों का तथा उनको चलाने के लिए स्टीम इंजन का उपयोग होने लगा तब इस उद्योग की उत्पादन शीघ्रता अधिक हो गयी, परन्तु हेनरी कोर्ट ने जब खनिज लोहे से अच्छा लोहा 'पडलिंग' (puddling) द्वारा निकालने का अन्वेषण किया तब लौह उद्योग का स्वरूप पूरी तरह बदल गया। तत्पश्चात लौह-उद्योग में सुधार होते गये, जिससे सन् १८१२ में लौह उद्योग की उत्पादन शीघ्रता सन् १७८७ की अपेक्षा २० गुनी हो गयी। यान्त्रिक क्षेत्र में भी अन्वेषण चालू ही रहे, परन्तु मॉड्स्ले (Maudslay) ने अच्छे यन्त्रों एवं

[1] Hobson : *Evolution of Modern Capitalism.*

औजारों का आविष्कार किया तथा यन्त्रों को इस योग्य बना दिया कि खराब हिस्से को किसी भी समय बदला जा सकता था। माडस्ले और उसके बाद क्लेमट, मरे, ह्विटवर्थ तथा नेसमिथ (Clement, Murray, Whitworth and Nasmith) ने यन्त्रों एव उनके हिस्सो का प्रमापीकरण कर दिया, जिससे यन्त्रो का उपयोग और भी अधिक होने लगा। इस प्रकार जिस औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात सन् १७३० मे हुआ वह सन् १८४२ मे पूरी हुई। औद्योगिक क्षेत्र के इन परिवर्तनो ने यहाँ के कृषि, यातायात एव वाणिज्य को भी उन्नति करने के लिए बाध्य किया। फलस्वरूप इन क्षेत्रो मे भी क्रान्ति होने लगी।

छह महान परिवर्तन
(The Six Great Changes)

क्रान्ति के कारण उत्पादन की तकनीक मे और व्यापारिक सगठन के स्वरूप मे अनेक परिवर्तन हुए। यही कारण है कि क्रान्ति की विशेषताओ तथा उसके कारण उत्पन्न परिवर्तनो और प्रभावो मे स्पष्ट अन्तर करना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। जहाँ तक क्रान्ति के प्रभावो का प्रश्न है, उनका विवेचन अगले अध्याय मे किया गया है। यहाँ उत्पादन की तकनीक मे हुए परिवर्तनो का ही वर्णन किया जा रहा है। श्रीमती नोल्स[1] ने इन परिवर्तनो को छह वर्गों मे विभाजित किया है और इन्हे छह महान परिवर्तनो की सज्ञा दी है। उनके अनुसार ये छह महान परिवर्तन पृथक रूप से न होकर इस प्रकार घटित हुए कि वे सब परस्पर एक दूसरे पर निर्भर थे। ये छह परिवर्तन इस प्रकार हुए

(१) इन्जीनियरिंग का विकास—यन्त्रो एव मशीनों के प्रयोग ने इन्जीनियरों की आवश्यकता को अनिवार्य बना दिया। वस्त्र उद्योग मे अनेक यन्त्रो का उपयोग उस समय तक होने लगा था। जेम्स वाट का इन्जन भी पर्याप्त चलन मे आता जा रहा था। मशीनो, इन्जनो एव यन्त्रो के निर्माण एव उनकी मरम्मत के लिए इन्जीनियरिंग उद्योग का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त खदानो से कोयला निकालने तथा औजारो एव रेलवे इंजिनो की मरम्मत आदि के लिए भी इन्जीनियरो की आवश्यकता ने इस उद्योग को विकसित बना दिया।

(२) लोहा एव इस्पात उद्योग का विकास—उत्पादन की नवीन तकनीकों को अपनाने के सिलसिले मे मशीनो और यन्त्रो का चलन आवश्यक था, किन्तु मशीनों और यन्त्रो के निर्माण के लिए लौह-इस्पात उद्योग मे परिवर्तन आवश्यक प्रतीत हुआ। खनिज लौह से ढलवाँ लोहा एव अन्य प्रकार का उत्तम लोहा बनाने के प्रयास किये गये। ढलवाँ लोहे (cast iron) के बाद राट-आइरन (wrought iron) बनाने की विधि निकाली गयी जिसमे कार्बन का अश कम होता था।

---

[1] L. C. A Knowles—"The So called Industrial Revolution comprised six great changes or developments all of which were interdependent."

धमन-भट्टी (Blast furnace) का उपयोग १७६० से होने लगा और फिर कोक, चूना एवं मेंगजीन की सहायता से खनिज लोह से मजबूत इस्पात बनने लगा। इससे मशीन औजार के निर्माण के लिए लोहे और इस्पात की पूर्ति होने लगी। आगे चल कर हेनरी बिसेमर ने मजबूत इस्पात बनाने की बिसेमर प्रक्रिया (Bessemer Process) निकाली। अन्तत खुली धमन भट्टी (open-hearts) तथा विद्युत चालित भट्टियों (electric furnaces) का आविष्कार होने से इस्पात उत्पादन में और परिवर्तन हुए।

(३) **वस्त्र उद्योग मे परिवर्तन**—सूत की कताई एवं बुनाई की तकनीक मे अनेक परिवर्तन हुए। परिवर्तनो का यह क्रम सन् १७३८ से प्रारम्भ हुआ जब जॉन के (John Kay) द्वारा "फ्लाइंग शटल" का आविष्कार किया गया। इसके बाद जेम्स हरग्रीव्ज (James Hargreaves) द्वारा "स्पिनिंग जैनी" रिचार्ड आर्कराइट (Richard Arkwright) द्वारा "वाटर फ्रेम", क्रोम्पटन (Crompton) द्वारा "म्यूल" तथा अन्तत एडमण्ड कार्टराइट (Edmund Cartwright) द्वारा "पावर लूम" का आविष्कार किया गया। इससे वस्त्र उद्योग मे कलपुर्जों एवं इन्जिनो की माँग बढ गयी। इसीलिए कुछ विद्वानो का कथन है कि क्रान्ति का प्रारम्भ वस्त्र उद्योग मे हुआ।

(४) **रासायनिक उद्योग का विकास**—वस्त्रों के उत्पादन और उनकी धुलाई, रंगाई और छपाई के सिलसिले मे रासायनिक उद्योग के विकास की आवश्यकता अनुभव की गयी। 'ब्लीचिंग', 'फिनिशिंग' और 'प्रिंटिंग', आदि मे अनेक प्रयोग किये गये। प्रेसिंग और फोल्डिंग, 'लेबिलिंग' आदि का सुधार किया गया। इनमे क्लोरीन, गन्धक के तेजाब, स्टार्च एवं अनेक प्रकार के रंग रोगनो का प्रयोग किया जाने लगा। इन पदार्थों की उपलब्धि रासायनिक उद्योग के विकास पर ही निर्भर थी।

(५) **कोयला उद्योग का विकास**—विभिन्न उद्योगो म हुए क्रान्तिकारी परिवर्तनो ने कोयले के महत्त्व को बढा दिया। लोहे को गलाने और इस्पात बनाने के लिए उत्तम कोयले की आवश्यकता थी। कोयले की खानों से गहरी खुदाई करने के लिए अब्राह्म डर्बी द्वारा स्टीम पम्पिंग यन्त्र का आविष्कार किया गया। इस्पात भट्टियो में अधिक ताप उत्पन्न करने के लिए कोयले मे कोक (Coke) बनाने की विधि ज्ञात की गयी जिसके कारण उत्तम किस्म का मजबूत इस्पात बनाना सम्भव हो गया जो मजबूत मशीनो के निर्माण म सहायक हुआ। इसके अतिरिक्त सभी कल कारखानो को चलाने के लिए वाष्प शक्ति की आवश्यकता बढी और वाष्प शक्ति के उत्पादन मे कोयले की आवश्यकता मे वृद्धि हुई। अत कोयला उद्योग म विकास अवश्यम्भावी हो गया।

(६) **परिवहन के साधनो मे सुधार**—वाष्प शक्ति एवं मशीनो के प्रयोग ने उत्पादन की मात्रा को बढा दिया। उत्पादित माल को व्यापक बाजारो तक पहुँचाने के लिए परिवहन के साधनो मे सुधार करना आवश्यक था। साथ ही कारखानो तक

कच्चे माल को शीघ्रता से और कम खर्च पर पहुँचाने की व्यवस्था की आवश्यकता थी। अत वाष्पचालित जलयानो का आविष्कार हुआ जिसमे जेम्स वाट के एन्जिन लगाये गये। जहाज इस्पात के बनाये जाने लगे और इस प्रकार उनकी माल ढोने की क्षमता बढ गयी एव गति (Speed) मे भी वृद्धि हुई। रेलो मे भी सुधार किया गया और जार्ज स्टीवेन्सन ने वाष्पचालित रेल लोकोमोटिव का आविष्कार किया जिसने स्थल यातायात मे सुधार हुआ। नहरो का भी निर्माण हुआ और उनमे वाष्पचालित स्टीमर चलने लगे। इस प्रकार भीतरी नगरो से बन्दरगाहो तक तथा बन्दरगाहो से विश्व के अन्य भागो तक शीघ्रता से माल को ढोना सम्भव हो गया।

औद्योगिक क्रान्ति की इगलैण्ड पर प्रतिक्रियाएं

औद्योगिक क्षेत्रो मे यान्त्रिक आविष्कार एव उनके बढते हुए उपयोग के कारण सन् १८४२ तक इगलैण्ड का पूरी तरह से परिवर्तन हो गया। इस क्रान्ति ने पूंजीवाद को प्रोत्साहन दिया, क्योकि बडे-बडे यन्त्र खरीदने के लिए पूंजी की अधिक आवश्यकता होती थी। इससे औद्योगिक क्षेत्र मे पूंजी का महत्त्व बढने लगा।

कृषि-क्षेत्र मे भी काफी परिवर्तन हुए तथा क्रान्ति के बाद छोटे-छोटे, बिखरे हुए तथा खुले खेतो की जगह बडे-बडे तथा सीमायुक्त खेत दिखायी देने लगे और इगलैंड का कृषि-उत्पादन बढने लगा, परन्तु फिर भी इगलैंड विशेष रूप से खाद्यान्न तथा औद्योगिक कच्चे माल का आयात बहुत करता था, क्योकि इन दोनो की आवश्यकताएँ बढ गयी थी। इसलिए खाद्यान्नो का आयात बढ रहा था और दूसरी ओर यन्त्रो के आविष्कार के कारण, औद्योगिक कच्चे माल की आवश्यकता भी बढती जा रही थी, इसलिए इसका आयात भी बढ रहा था।

घरेलू उत्पादन पद्धति का अन्त हो गया तथा छोटे-छोटे घरेलू उद्योगो की जगह यन्त्रचालित बडे-बडे कारखाने दिखायी देने लगे। इससे इगलैंड का उत्पादन भी बढ गया। यन्त्रो के कारण श्रम-विभाजन अधिक सुविधाजनक हो गया, जिससे श्रमिको की कार्यक्षमता मे भी वृद्धि हुई। आवागमन एव यातायात मे भी क्रमश क्रान्ति होने से कच्चे माल के प्रदाय के लिए उपनिवेशो का उपयोग होने लगा। इन्ही उपनिवेशो मे निर्मित माल की बिक्री भी होती थी, जिससे इगलैंड को अपने माल के लिए अधिक बाजार सहज ही मिल गये। इससे वस्तुओ की मांग बढी और इगलैंड के पास अधिक पूंजी एकत्र होने लगी तथा क्रमश पूंजी का महत्त्व एव पूंजीवाद का जोर बढता गया और श्रमिको का महत्त्व नष्ट होता गया।

निर्माण पद्धति के अनुसार उत्पादन होने से उत्पादन-व्यय कम हो गया तथा अधिक उत्पादन होने लगा। इस स्थिति मे घरेलू-पद्धति पर उत्पादन करने वाले शिल्पी प्रतियोगिता मे न टिक सके और उन्हे अपना व्यवसाय छोडकर उपजीविका कमाने के लिए कारखानो की शरण लेनी पडी। इससे श्रमिक वर्ग का उदय हुआ जो पूर्ण रूप से पूंजीपति नियोक्ता (Capitalist Employer) पर निर्भर हो गये।

इससे जनता काम की खोज मे कारखानो के शहरों मे आने लगी और शहरों का उत्तरोत्तर विकास होता गया।

कारखानो मे बडे पैमाने पर उत्पादन होने के कारण प्रतियोगिता, जो अभी तक अज्ञात थी, बढने लगी और उसका महत्त्व प्रस्थापित हो गया तथा साथ ही बढते हुए विदेशी व्यापार के कारण इगलैंड की राष्ट्रीय सम्पत्ति भी बढनी गयी।

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप सन् १७३० से सन् १८५० तक इगलैंड के सामाजिक, आर्थिक एव औद्योगिक कलेवर मे उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिसन इगलैंड का स्वरूप पूर्णरूप से बदल गया। साराश मे, इगलैंड मे औद्योगिक क्रान्ति की निम्नलिखित प्रतिक्रियाएँ हुईं

(1) इंगलैंड की कृषि-प्रधान अर्थ-व्यवस्था पूर्णरूप से उद्योग-प्रधान अर्थ व्यवस्था मे परिणत हो गयी।

(ii) घरेलू-युग का अन्त होकर निर्माणी-युग का प्रारम्भ हुआ, जिससे पूँजी एवं पूँजीवाद का महत्त्व बढने लगा और बडे-बडे यन्त्रचालित कारखाने दिखायी देने लगे। इससे शहरो का विकास होने लगा।

(iii) प्रतियोगिता जो औद्योगिक एव व्यापारिक क्षेत्र मे क्रान्ति से पूर्व अज्ञात थी, उसका महत्त्व व्यापारिक क्षेत्र मे प्रस्थापित हो गया।

(iv) शिल्पियो का महत्त्व कम हो जाने से उनको अपने व्यवसाय छोडकर कारखानो की शरण लेनी पडी, जिससे नवीन श्रमिक वर्ग का उदय हुआ। समाज का विभाजन पूँजीपति एव श्रमिक इन दो वर्गों मे होने से इनके परस्पर सद्भावनापूर्ण सम्बन्धो का अन्त हो गया।

(v) यन्त्रो के उपयोग से श्रम-विभाजन सुविधाजनक होकर उसका उपयोग बढता गया। इससे कम लागत पर अधिक उत्पादन होने लगा।

(vi) इगलैंड विशेष रूप से निर्मित माल का निर्यात तथा खाद्यान्न एव कच्चे माल का आयात करने लगा। इसमे उपनिवेशो का अधिक उपयोग होता था।

(vii) कृषि क्षेत्रो से श्रमिक उद्योगो की ओर आकर्षित होने लगे। इससे जनसख्या का घनत्व भी प्रभावित हुआ, जो दक्षिण भाग से कम होकर उत्तरी भाग मे बढने लगा, जहाँ बडे-बडे कारखाने थे। इनसे औद्योगिक शहरो का निर्माण एव महत्त्व बढने लगा।

(viii) बढते हुए विदेशी व्यापार के कारण इगलैंड का विदेशी व्यापार बढा, जिससे राष्ट्रीय सम्पत्ति की वृद्धि हुई।

(ix) बढते हुए व्यापार एव वाणिज्य के कारण व्यापारिक एवं औद्योगिक व्यवस्था मे भी आवश्यक परिवर्तन हुए।

नवीन तन्त्र का औद्योगिक क्षेत्र में विकास

इगलैंड के बाद औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र मे जो परिवर्तन हुए उनका विकास फ्रास, अमरीका, जर्मनी आदि यूरोपीय देशो मे होने

लगा। इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक, व्यापारिक एव परिवहन क्षेत्रो मे मूलगामी परिवर्तन हुए। मशीनो के उपयोग के कारण उत्पादन बडे पैमाने पर होने लगा, इसलिए नये बाजारो की विज्ञापन आदि साधनो द्वारा खोज होने लगी और बाजारो का विकास होता गया। पूँजी का महत्त्व बढा और सम्पूर्ण विश्व के समाज मे पूँजीपति एव श्रमिक इन वर्गों मे समाज का विभाजन हो गया। नये-नये औद्योगिक शहरो का विकास होने लगा। परिवहन के साधनो मे भी क्रान्ति हुई। प्रबन्ध की नवीन पद्धतियो का आविष्कार होने लगा और अन्तत प्राचीन घरेलू पद्धति के स्थान पर बडे पैमाने के बडे-बडे कारखाने दिखायी देने लगे। यह विकास इगलैंड के बाद अन्य देशो मे तेजी से होता गया, परन्तु अविकसित देशो मे इसकी गति अत्यन्त धीमी रही। औद्योगिक क्रान्ति के चरण इगलैंड से यूरोप के अन्य देशो मे पहले पडे। फ्रास एव जर्मनी मे यह क्रान्ति पचास वर्ष बाद आरम्भ हुई। सयुक्त राज्य अमरीका एव जापान मे औद्योगिक क्रान्ति उन्नीसवी शताब्दी के बिलकुल अन्त मे शुरू हुई। रूस की औद्योगिक क्रान्ति बीसवी शताब्दी की देन है। एशिया एव अफ्रीका के कुछ देशो मे औद्योगिक क्रान्ति अभी आरम्भ हुए अधिक समय नही हुआ। उदाहरण के लिए, भारत स्वतन्त्रता के बाद से औद्योगिक क्रान्ति के दौर से गुजर रहा है। साराश यह है कि औद्योगिक क्रान्ति इगलैंड तक ही सीमित न रहकर उचित समय आने पर अन्य देशो मे फैली किन्तु उस समय तक इगलैंड काफी आगे बढ चुका था।

प्रश्न

1 "The 19th century is the out come of French ideas and British technique' Discuss the statement with special reference to economic development of U K

"उन्नीसवी शताब्दी फ्रासीसी विचारो एव ब्रिटिश तकनीक का परिणाम थी।" इगलैण्ड के आर्थिक विकास के विशेष सन्दर्भ मे इस कथन की विवेचना कीजिए।

(बिहार, १९६०)

2. Describe the importance of *Arkwright*, *Cartwright*, *Crompton* and *Kay* in British Industrial history

ब्रिटिश उद्योग के इतिहास मे आर्कराइट, कार्टराइट, क्राम्पटन तथा के महत्त्वपूर्ण योगदान का उल्लेख कीजिए। (राजस्थान, १९६०)

3. Define "Industrial Revolution" Why did the Industrial Revolution occur first in England

औद्योगिक क्रान्ति की परिभाषा कीजिए। यह क्रान्ति इग्लैण्ड मे ही सर्व प्रथम क्यों हुई। (पटना, १९६०, जोधपुर, १९६४, पजाब, १९६५)

4 State the main features of Industrial Revolution, and state why it took place first in England in the 18th century.

औद्योगिक क्रान्ति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए और लिखिए कि यह क्रान्ति अठारहवीं सदी में इग्लैण्ड में ही क्यों घटित हुई।

(राजस्थान, १९६२, गोहाटी, १९६५)

5 State the salient features of Industrial Revolution in England? Why did England become the pioneer of Industrial Revolution?

इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। इग्लैण्ड औद्योगिक क्रान्ति का प्रणेता कैसे बन गया। (जोधपुर, १९६५)

6 Describe the main features of Industrial Revolution and discuss its economic and social effects.

औद्योगिक क्रान्ति की प्रमुख विशेषताओं को लिखिए और उसके सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों की विवेचना कीजिए। (राजस्थान, १९६६, १९६९)

८

औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव

(Effects of Industrial Revolution)

"Not merely was the coming of machinery retarded by the *deficiency of Machines their unsatisfactory nature, but the* dislike of the hands to work in factories, the possibility of riots and machine breaking by those who thought they would be injured, and the increase of population which provided a large number of hands always more ready to take up home work than factory work, all worked in the same directions "[1]

—*Knowles*

औद्योगिक क्रान्ति मानव जाति के इतिहास मे एक ऐसी घटना थी जिसने उसके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आधार की काया ही पलट दी। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि इगलैण्ड औद्योगिक क्रान्ति का जन्मदाता होने के कारण उन सामाजिक और आर्थिक प्रभावो का अनुभव कर सका जिसका बाद मे विश्वव्यापी प्रभाव हुआ। औद्योगिक क्रान्ति उन परिवर्तनो का नाम है जिन्होंने मूलभूत रूप से उत्पादन की प्रक्रिया को बदल दिया। औद्योगिक क्रान्ति वस्तुत कोई आकस्मिक घटना नहीं थी बल्कि एक महान आन्दोलन का अग थी। यह आन्दोलन एक लम्बी अवधि तक चलता रहा और इसका आधार नवीन आविष्कारो, नवीन प्रणालियो एव नवीन विचारधारा पर निर्भर था। श्रीमती नोल्स (Knowles) के अनुसार, "यह सक्रान्ति किसी भी अन्य देश मे इतनी धीमी गति से नहीं हुई जितनी कि इगलैण्ड मे क्योंकि अन्य देश ने ब्रिटेन द्वारा प्राप्त अनुभव को लेकर क्रान्ति आरम्भ की।" यह स्वाभाविक भी था। क्योंकि इगलैण्ड को विश्व मे पहली बार क्रान्ति के इस पथ पर अग्रसर होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह उथल-पुथल इगलैण्ड मे सत्तर-अस्सी वर्ष तक होती रही और तब जाकर कहीं ब्रिटेन को इन परिवर्तनो

---

[1] L C A Knowles *Industrial and Commercial Revolutions*, p 77–

के स्पष्ट एव स्थायी प्रभाव की अनुभूति हुई। परिवर्तनो की यह शृखला जैसे-जैसे आग बढती गयी, उसी के अनुरूप इगलैण्ड के आर्थिक एव सामाजिक जीवन मे भी परिवर्तन होता गया। ब्रिटिश जीवन का प्रत्येक पहलू इससे प्रभावित हुआ और वहा के आर्थिक एव सामाजिक जगत का कोई भी अग इससे अछूता न रहा। कुछ वर्गो के लिए यह क्रान्ति वरदान सिद्ध हुई और उनकी स्थिति समाज म अधिकाधिक सुदृढ होती गयी। कुछ अन्य वर्गों के लिए, जिनम इगलैण्ड के अधिकाश श्रमिक थे यह क्रान्ति अभिशाप बनकर आयी और प्रारम्भ मे अनेक वष क वे दमन, उत्पीडन, अभाव एव शोषण के शिकार रहे।

इगलैण्ड मे हुई इस क्रान्ति की प्रतिक्रिया इस राष्ट्र की सीमाओ मे ही बँधी न रह सकी, बल्कि उस सीमा से परे विश्व के अन्य भागो मे भी इसकी स्पष्ट अनुभूति होन लगी।

आर्थिक प्रभाव

(१) नवीन उद्योगों का विकास—औद्योगिक क्रान्ति ने उत्पादन की विधि मे परिवर्तन किया जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव नवीन उद्योगो और व्यवसायो के विकास पर पडा, जैसे इजीनियरिंग एव रासायनिक उद्योग। बडे-बडे उद्योगो के विकास के साथ ही साथ सहायक और छोटे उद्योगो का विकास भी इसका अवश्यम्भावी परिणाम था।

(२) व्यापार मे क्रान्ति—औद्योगिक व्यवस्था मे परिवर्तन और नवीन उद्योगो के विकास के साथ व्यापार सयन्त्र मे भी परिवर्तन हुआ। इगलैण्ड विशाल स्तर पर उत्पादन करने के कारण विश्व का विनिमय केन्द्र और बाजार बन गया। अपने उद्योगो के कच्चे माल की पूर्ति के लिए उसे समुद्र-पार देशो पर निर्भर होना पडा तथा धीरे-धीरे न सिर्फ कच्चे माल वरन् खाद्य सामग्री की पूर्ति के लिए भी वह विदेशो पर निर्भर होन लगा और उसके बदले मे कारखानो मे निर्मित माल तथा तकनीकी परिवर्तन और वित्तीय सेवाओ का निर्यात करने लगा। व्यापार जगत के ये परिवर्तन अप्रत्याशित और अकल्पनीय थे परन्तु विदेशी व्यापार का जो रूप इस प्रकार अस्तित्व मे आया उसने आयात-निर्यात की वृद्धि की और विदेश विनिमय के विकास म सहयोग दिया।

(३) नवीन क्षेत्रों का महत्व—औद्योगिक क्रान्ति ने जहाँ नवीन उद्योगो के विकास और व्यापारिक क्रान्ति मे योग दिया, वहाँ उसके परिणामस्वरूप कुछ ऐसे नवीन क्षेत्रो और जिलो का महत्त्व भी बढा जिनका औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व आर्थिक दृष्टि से महत्त्व नगण्य था। औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व इगलैण्ड के दक्षिणी जिले घने और महत्त्वपूर्ण समझे जाते थे परन्तु औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप जिन नवीन उद्योगो का विकास हुआ उससे उत्तरी जिलो का महत्त्व बढने लगा। क्रान्ति से पूर्व मिडिलसेक्स, सोमरसेट, डेवॅन, वेस्ट राइडिंग इत्यादि महत्त्वपूर्ण जिले थे किन्तु बाद मे लकाशायर, यार्कशायर घना आबादी वाले और महत्त्वपूर्ण जिले बन गये। स्कॉटलैण्ड का ल्यूनार्कशायर इस प्रकार के नवीन ढग से महत्त्व पाने वाले जिलो का

प्रत्यक्ष उदाहरण है। लोहे और कोयले की खानों की खोज और तत्सम्बन्धी उद्योगों के स्थापित होने से दक्षिण वेल्स का महत्त्व भी बढ़ गया। यही नहीं स्काटलैण्ड में ग्लासगो, एबरडीन एवं एडिनबरा का महत्त्व भी बढ़ गया।

(४) मध्यम वर्ग का उदय—विशाल औद्योगिक संस्थानों की स्थापना के साथ-साथ छोटे और मध्यम श्रेणी के उद्योग भी अस्तित्व में आये जिससे मध्यम वर्ग को लाभ पहुँचा, उसकी आर्थिक दशा में सुधार हुआ। यह इस प्रकार का वर्ग था जिसकी जीविका इसी प्रकार के सहायक उद्योगों पर निर्भर थी। यह वर्ग न विशाल उद्योग स्थापित कर सकता था और न श्रमिक वर्ग की श्रेणी में प्रवेश पा सकता था, अतः मध्य स्थिति वाले इस वर्ग का उदय और विकास सहायक उद्योगों की देन है जो अन्ततः औद्योगिक क्रान्ति की देन है। दुकानदार, बैंकर, ठेकेदार, दलाल, व्यापारी इत्यादि इसी श्रेणी में सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(५) नवीन नगरों का विकास- लोहा और कोयला की उपलब्धि के स्थानों और नवीन औद्योगिक और यातायात के मिलन केन्द्रों पर अनेक नवीन नगर बस गये। इन नवीन नगरों के विकास के साथ-साथ गन्दी बस्तियों का भी आविर्भाव हुआ क्योंकि इस प्रकार के नगरों का विकास औद्योगिक आवश्यकताओं से हुआ और उनमें योजनाबद्ध ढंग से कार्य न होने से अव्यवस्थित और गन्दी बस्तियाँ एक समस्या बन गयी। यह समस्या धीरे-धीरे इतनी भयंकर हुई कि पीने के पानी की समस्या, सफाई और रोशनी की समस्या और अस्वास्थ्य-कर वातावरण से बढ़ती हुई मृत्यु-दर की समस्या ने नगरों के जीवन को नरकमय बना दिया।

(६) फैक्टरी प्रणाली का उदय—औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व उत्पादन घरेलू-प्रणाली के आधार पर होता था जिसे कृषि कार्य के साथ-साथ सम्पन्न किया जाता था, लेकिन औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप यह प्रणाली चालू रहना सम्भव नहीं रहा। श्रमिकों के पास यन्त्र और कच्चा माल जुटाने के साधन नहीं थे। नये यन्त्र शक्ति के साधनों की समीपता और सुलभता को ध्यान में रखकर स्थापित किये जाने लगे। कारखानों में बड़ी संख्या में श्रमिकों को अस्वास्थ्यकर दशाओं में नीरस कार्य करना पड़ता था। घरेलू-प्रणाली में नियोजित श्रमिकों और किसानों की आन्तरिक आर्थिक दशा भी अच्छी नहीं थी। उन्हें भी नवीन यान्त्रिक उत्पादन से प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ी जिसका परिणाम आर्थिक हानि होना था। इस प्रकार से औद्योगिक क्रान्ति ने घरेलू उत्पादन की प्रणाली को नष्ट किया और कारखाना-पद्धति को प्रस्थापित किया जो आज आधुनिक मशीन युग की प्रतीक बनी हुई है।

(७) पूँजीपतियों और श्रमिकों के सम्बन्ध में परिवर्तन—औद्योगिक क्रान्ति ने नियोजक और नियोजित पूँजीपति और श्रमिक के सम्बन्धों में एक नया परिवर्तन उपस्थित किया। घरेलू-प्रणाली में नियोजक नियोजित या तो एक ही परिवार के सदस्य होते थे और यदि न हुए तो भी उनकी कम संख्या के कारण उनमें पारिवारिक सम्बन्ध थे। परन्तु अब श्रमिक मशीन का एक पुर्जा मात्र रह गया, उसका

स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया। वह न जमीन-जायदाद का मालिक था और न मकान और दुकान का। वह तो मार्क्स के शब्दों में 'सर्वहारा वर्ग' (Proletariat) बन गया था। उसकी स्थिति में ऐसे परिवर्तन के लिए एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण भी उत्तरदायी था और वह यह कि संख्या में अधिक होने के कारण श्रमिक को सदैव कम मजदूरी पर कार्य स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ता था तथा काम भी उसे अधिक करना पड़ता था। दूसरे शब्दों में मजदूर की स्थिति निरीह बन गयी थी और उसका अस्तित्व कारखानेदार की कृपा पर निर्भर था। उसके सम्बन्ध शोषण और दुर्व्यवहार से उसमें असन्तोष रहने लगा। इसका निवारण करने तथा श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए श्रमिक-संघ आन्दोलन के रूप में वर्ग चेतना उत्पन्न हुई।

(८) पूंजीपतियों का औद्योगिक एकाधिकार—औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप बड़े-बड़े कारखाने अस्तित्व में आये और उनके विकास और स्थापना के लिए विशाल पूंजीगत साधन जुटाने पड़े। अतः इस प्रकार के कारखानों पर पूंजीपतियों का एकाधिकार सा हो गया और श्रम की स्थिति बहुत ही दयनीय और सोचनीय हो गयी। उसका भी अन्य वस्तुओं से समान क्रय विक्रय होने लगा। विशाल उत्पादन एवं बड़े पैमाने के लाभ प्राप्त करने के लिए कारखानों का आकार विशाल से विशालतर एवं विशालतम होता गया। इससे समाज के कुछ थोड़े-से व्यक्तियों में आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता का केन्द्रीकरण बढ़ा।

(९) उत्पादन की मात्रा और किस्मों में वृद्धि—बड़े-बड़े कल-कारखानों की स्थापना और वाष्पशक्ति के आविष्कार तथा मशीनों की शक्ति से संचालित होने से उत्पादन की मात्रा और प्रकार में आशातीत वृद्धि हुई। मनुष्य के स्थान पर मशीन बिना आराम किये अधिक गति और शक्ति से कार्य कर सकती थी, अतः औद्योगिक प्रसार ने उत्पादन की मात्रा और प्रकार में आशातीत वृद्धि की। नयी-नयी ऐसी अनेक वस्तुओं का उत्पादन होने लगा जो जनसाधारण की पहुँच के अन्दर था। इस प्रकार उपयोग की प्रकृति में भी परिवर्तन हुआ और धीरे-धीरे इन वस्तुओं के लिए स्थायी माँग उत्पन्न हो गयी।

(१०) बैंकिंग और बीमा व्यवसाय का संगठन—औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि और व्यापारिक क्षेत्र के विस्तार ने व्यापारिक लेन देन और जोखिम का क्षेत्र बढ़ा दिया, अतः इन समस्याओं के समाधान के लिए बैंकिंग संस्थाओं और बीमा कम्पनियों का संगठन अनिवार्य हो गया।

(११) सरकारी नीति में परिवर्तन—औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व, सरकारी हस्तक्षेप आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कारणों से अनिवार्य था, परन्तु औद्योगिक विकास के साथ साथ सरकार ने यह अनुभव किया कि हस्तक्षेप कम से कम होना चाहिए। इस समय के अर्थशास्त्रियों ने (जिनमें अर्थशास्त्र के जनक आदम स्मिथ का नाम लिया जा सकता है), भी निरपेक्षता (*Laissez Faire*) या

स्वतन्त्र व्यापार नीति का समर्थन किया । यह नवीन सरकारी नीति स्वतन्त्र व्यापार नीति कहलायी ।

(१२) **आर्थिक सकटो की आवृत्ति**—औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादको और उपभोक्ताओ मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध न रह सके । अप्रत्यक्ष सम्बन्धो के कारण उत्पादन और उपभोग मे सन्तुलन न रह सका । इसके फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन चक्र मे आर्थिक सकट मूल्यो की गिरावट के रूप म सामने आया । ये आर्थिक सकट औद्योगिक क्रान्ति और पूँजीवादी ढग की व्यवस्था का एक अनिवार्य अग-सा हो गया और कार्ल मार्क्स ने इस प्रकार के प्रश्न का अध्ययन करते हुए यह सामान्य नियम निकाला कि प्रत्येक दस वष म इस प्रकार का आर्थिक सकट एक अनिवार्य तथ्य है । सन् १८२५, १८३७, १८४७, १८५७, १८६६, १८७३, १८८८, १८९०, १९००, १९०७, १९२१ १९२९-३१ म आर्थिक सकटो की आवृत्ति कार्ल मार्क्स के इस कथन की पुष्टि करती है ।

(१३) **उद्योगों का स्थानीकरण**—मध्यकालीन युग मे श्रम और दक्षता उत्पादन के दो आवश्यक तत्त्व थ । अत उद्योग छोटे-छोटे कस्बो मे अवस्थित थे जहाँ उत्पादन की ये सुविधाएँ मिल जाती थी । किन्तु मनुष्य का स्थान जब मशीनो न ले लिया तो कुछ स्थान उद्योगो के लिए अधिक उपयुक्त हो गये । अन्य स्थानो पर धीरे धीरे इस प्रकार की प्रवृत्ति बल पाने लगी । सत्रहवीं शताब्दी मे जल, मशीनो के सचालन की प्रधान शक्ति था । अत बहते हुए झरनो वाले स्थान औद्योगिक केन्द्र बने । चूँकि झरनो से मिलने वाला पानी और पानी की शक्ति सीमित थी अत उद्योग दूर दूर पर अवस्थित हुए । कई कारखाने इस रूप मे एक ही गाँव या कस्ब म केन्द्रित नहीं हो सकते थे । किन्तु जब जल का स्थान वाष्प शक्ति ने ले लिया तो उद्योगो के स्थानीकरण मे बडा परिवर्तन होने लगा । कोयले की खदानें औद्योगिक दृष्टि से नदियो के किनारो से अधिक उपयुक्त स्थान माने जाने लगे । इन खानो के निकट एक ही स्थान पर अनेक उद्योगो का स्थापित होना सम्भव हो सका । यातायात और परिवहन के साधनो के विकास ने भी उद्योगों के स्थानीकरण को प्रभावित किया ।

(१४) **सयुक्त स्कन्ध निगमों का विकास** (Rise of Joint Stock Companies)—औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व किसी भी उद्योग या व्यवस्था मे बहुत ही कम पूँजी की आवश्यकता होती थी जो व्यक्तियों द्वारा अपने सीमित साधनो द्वारा जुटाई जाती थी । किन्तु औद्योगिक क्रान्ति उत्पादन के ढग मे जो परिवर्तन लाई उससे पूँजी के इतने विशाल साधन जुटाना एक व्यक्ति की सामर्थ्य क बाहर की बात थी । एक कारखाना या फैक्टरी स्थापित करने के लिए कई व्यक्तियो के सम्मिलित आर्थिक साधनो की आवश्यकता होती थी । वैसे तो १७वीं तथा १८वीं शताब्दिया मे व्यक्तियो म पूँजी अनुदान या सहायता के रूप म व्यावसायिक कार्यों के सचालन के लिए ली-दी जाती रही, परन्तु औद्योगिक उत्पादन के रूप मे इस प्रकार

का उपयोग नहीं हो सकता था। इस प्रकार मनमाने ढंग से कम्पनियों द्वारा पूँजी उधार लेने के रूप में इंगलैंड की सरकार को १७१६ में बबल अधिनियम (Bubble Act) स्वीकार करना पड़ा जिसके अन्तर्गत पूँजी के इस प्रकार संग्रह पर रोक लगा दी गयी तथा संयुक्त परिवर्तनशील कम्पनियों के लिए संसद या सम्राट की स्वीकृति लेना आवश्यक हो गया। १६वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति से पूँजी की माँग में वृद्धि की और इसके फलस्वरूप १८२५ में बबल अधिनियम को समाप्त करना पड़ा और कम्पनियों के लिए पूँजी की सुविधा दी गयी। प्रारम्भ में ऐसी कम्पनियाँ असीमित दायित्व (unlimited liability) वाली थीं किन्तु सन् १८६२ में 'सीमित दायित्व' (limited liability) का सिद्धान्त लागू किया गया। फलस्वरूप कम्पनियों के लिए अधिकाधिक पूँजी जुटाना सम्भव हो गया और इनकी संख्या तथा इनके आकार में वृद्धि होती गयी।

(१५) उद्योगपतियों का संगठन—औद्योगिक क्रान्ति ने उद्योगपति वर्ग को जन्म ही नहीं दिया वरन् उनमें अपने हितों और प्रतियोगिता को समाप्त करने के लिए संगठन की भावना भी उत्पन्न की। इस्पातों के संगठन सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में भी कार्यशील थे परन्तु ट्रस्ट (Trust) के रूप में ये संगठन आधुनिक शताब्दी में ही जन्मे और विकसित हुए। इस प्रकार का प्रथम प्रयास १७८५ में **"चेम्बर ऑव मेन्यूफेक्चरर्स ऑव ग्रेट ब्रिटेन"** के रूप में किया गया। इस प्रकार के संगठनों का मुख्य उद्देश्य सरकार की आर्थिक नीति को प्रभावित करना था।

(१६) वर्ग संघर्ष—औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विशाल श्रमिक वर्ग स्थायी रूप से अस्तित्व में आया। समाज इस रूप में दो भागों में विभाजित हो गया और आर्थिक असमानता की खाई गहरी होती गयी। श्रमिकों को विवशतापूर्वक कठिन परिस्थितियों में काम करना पड़ता था, उन्हें पारिश्रमिक कम मिलता था और काम बहुत समय तक करना पड़ता था। उनके आवास-निवास की दशाएँ असन्तोषजनक थीं, उनके आमोद-प्रमोद और आराम का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था। विवशता-पूर्वक श्रमिक को सब कुछ सहना पड़ता था, दूसरी ओर नियोजकों की प्रवृत्ति इसके ठीक विपरीत थी। वह यह सोचते थे कि मशीन, इमारत, पूँजी इत्यादि सब पर उनका स्वामित्व है, इन पर किसी बाहरी व्यक्ति का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। यदि श्रमिक काम करता है तो यह उसकी अपनी आवश्यकता है जिससे प्रेरित होकर वह ऐसा करता है। श्रमिक की यह निर्बलता, दयनीयता और विवशता श्रमिक और पूँजीपति वर्ग के बीच की खाई को और भी गहरा करती गयी। इसी प्रकार एक ओर तो श्रमिकों का असन्तोष बढ़ता जा रहा था और दूसरी ओर इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती जा रही थीं जो श्रमिकों को संगठन के लिए प्रेरणा दे रही थीं। इस प्रकार की समान परिस्थितियों में काम करने के कारण उनमें वर्ग-भावना जाग्रत हो रही थी। अठारहवीं शताब्दी में यत्र-तत्र श्रमिक संगठन के उदाहरण

मिलते हैं किन्तु देश के नियम उनके इस प्रकार के सगठनो के विरुद्ध थे। अतः स्वाभाविक था कि श्रम-सस्थाएँ या तो गुप्त सस्थाओ के रूप मे काम करती रही या बिलकुल लुप्त हो गयी। फ्रासीसी राज्य क्रान्ति के कारण इगलैंड की सरकार श्रमिक सगठनो के प्रति अधिक सतर्क हो गयी, परन्तु औद्योगिक क्रान्ति ने श्रम-सघ आन्दोलन को जन्म दिया।

श्रमिकों पर प्रभाव

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि औद्योगिक क्रान्ति ने श्रम को सगठित होने की प्रेरणा दी, इस रूप मे हम क्रान्ति के लाभकारी और हानिकारक प्रभावो का वर्णन भी अपेक्षित समझते है।

(क) लाभकारी प्रभाव—(१) कारखानो मे कार्य करने वाले श्रमिको की कार्यक्षमता मे वृद्धि होने से कार्य प्रणाली मे सुधार हुआ। वैज्ञानिक उपकरणो और साधनो को अपनाने से दक्षतापूर्वक कार्य के क्षेत्र मे उन्नति हुई।

(२) श्रमिक अपने अधिकारो के लिए सगठित हुआ क्योकि उसे एक ही स्थान पर काम करने और आपस मे सम्पर्क स्थापित करने का अवसर मिला।

(३) श्रमिक को जीवन-निर्वाह के नवीन साधन उपलब्ध हुए। इन अतिरिक्त साधनो मे मशीन उत्पादन का कार्य, उनकी मरम्मत, विद्युत व गैस आदि शक्तियो के उत्पादन काय सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(४) श्रमिक को घरलू-प्रणाली के अन्तर्गत जिस अस्वास्थ्यकर वातावरण मे उत्पादन काय करना पडता था उसके स्थान पर अब आधुनिक ढग की वातानुकूलित फैक्टरियो मे काम करने का अवसर प्राप्त हुआ।

(५) श्रमिक वर्ग को सामन्तवादी शोषण से मुक्ति मिली, जहाँ वे नागरिक एव सामाजिक अधिकारो से वचित थे। अब व औद्योगिक क्रान्ति द्वारा उत्पन्न जीविका के अनेक साधनो को अपनाकर एव स्वतन्त्र व्यक्ति की भाँति जीवनयापन कर सकते थे।

(६) श्रमिक सघो का सगठन उत्तरोत्तर समृद्ध और शक्तिशाली होता गया जिसने श्रमिको के हितो की ओर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के लिए समाज को बाध्य कर दिया। इन विचारधाराओ ने एक नवीन व्यवस्था को जन्म दिया जिसे **समाजवाद** (Socialism) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार समाजवाद औद्योगिक पूँजीवाद की ही देन है।

(ख) हानिकारक प्रभाव—जहाँ एक ओर श्रमिक वर्ग की स्थिति मे औद्योगिक क्रान्ति के लाभकारी प्रभाव दृष्टिगोचर हुए, वहाँ निम्न हानिकारक तथ्य भी प्रकट हुए।

(१) कारखानो मे काम करने से श्रमिक की उत्पादन-काय सम्बन्धी स्वतन्त्रता नष्ट हो गयी, अब उसे स्वामियों का मुखापेक्षी होना पडता था।

(२) कार्य-स्वतन्त्रता नष्ट होने पर कलात्मक प्रदर्शन एवं रचनात्मक दृष्टि-कोण का भी नाश हो गया तथा श्रमिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असन्तुष्ट रहने लगे।

(३) नियोजकों की अपक्षा पूर्ण मनोवृत्ति और स्वार्थ भावना से उन्नति के अवसर समाप्त हो गये।

(४) समाज का पूँजीपति और श्रमिक-वर्ग के रूप में विभाजन वर्ग संघर्ष का जन्मदाता हुआ।

(५) बस्तियों के अस्वास्थ्यकर होने से बीमारी और मृत्यु संख्या में वृद्धि हुई।

(६) श्रमिकों द्वारा पूर्णरूपेण कृषि को छोड़ने और कारखानों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति ने कृषि को चौपट कर दिया और खाद्य-सामग्री की कमी ने उनकी कार्यक्षमता पर प्रभाव डाला।

सामाजिक प्रभाव

(१) **समाज का दो रूपों में विभाजन**—कार्ल मार्क्स के शब्दों में, औद्योगिक क्रान्ति ने स्पष्ट रूप से समाज को दो भागों में विभाजित कर दिया, एक धनिक या पूँजीपति वर्ग जो साधन सम्पन्न था और दूसरा अकिंचन और सर्वहारा वर्ग। दूसरे वर्ग के पास न सम्पत्ति ही थी, न मुद्रा और न रहने को स्थान ही था।

(२) **श्रम के नियोजन की समस्या**—मानवीय हाथों के स्थान पर जब उत्पादन-कार्य मशीन से किया जाने लगा तो श्रमिकों का महत्त्व कम हो गया और वह भी मशीन पर आश्रित हो गये। इस रूप में उसके नियोजन की समस्या महत्त्वपूर्ण हो गयी।

(३) **जनसंख्या में वृद्धि**—ज्यों-ज्यों कल-कारखानों का फैलाव और विकास हुआ त्यों त्यों उनके उचित संचालन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। जीविका के साधनों में वृद्धि हो जाने और विदेशों से आयात किये खाद्यान्नों के उपलब्ध हो जाने से जनसंख्या वृद्धि की दर बढ़ने लगी। अतः उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक ब्रिटेन की जनसंख्या पिछले सौ वर्षों में चार गुनी हो गयी। औद्योगिक विकास का क्रियात्मक रूप इस वृद्धि के बिना सम्भव नहीं था।

(४) **ग्रामीण जनसंख्या में कमी**—कृषि की मैनोरियल प्रणाली के पतन के साथ ही ग्रामों से श्रमिक वर्ग औद्योगिक नगरों की ओर उन्मुख हुआ और गाँव उजड़-से गये। शहरों में कारखाना की स्थापना से नागरिक जनसंख्या (urban population) का अनुपात ग्रामीण जनसंख्या (rural population) की तुलना में अधिक हो गया।

(५) **मकानों और स्वास्थ्य की समस्या**—नगरों की जनसंख्या में अभिवृद्धि से मकानों और स्वास्थ्य की समस्या ने भीषण रूप धारण किया। गन्दी बस्तियों के प्रसार ने वातावरण को दूषित बना दिया और बीमारियों का प्रकोप एक साधारण-सी बात हो गयी।

(६) **सामाजिक उत्पीडन (Social Suffering)**—क्रान्ति के बाद अनेक

वर्षों तक प्रारम्भिक काल मे जनसाधारण की दशा अत्यन्त दयनीय रही। पूंजीपरक समाज ने उन्हे सिर उठाने का अवसर ही नही दिया। सरकार की निरपेक्षता की नीति (Policy of *Laissez Faire*) ने उनकी स्थिति को और भी अधिक सोचनीय बना दिया। न्यून वेतन, महँगी खाद्य वस्तुएँ, अधिक काम के घण्टे, निवासस्थानो का अभाव, गन्दगी, भीड-भाड आदि ऐसी समस्याएँ थी जिससे घिरा हुआ ब्रिटेन का श्रमिक वर्ग अनेक वर्षों तक मुक्ति के लिए सघर्ष करता रहा। विकास और सम्पन्नता की ओर मन्द गति से बढते हुए ब्रिटेन के श्रमिक वर्ग ने परिवर्तन का सबसे अधिक मूल्य चुकाया और तब कही जाकर उस आशा की किरण दिखायी दी।

(७) सामाजिक चेतना (Social Upsurge)– श्रीमती नोल्स के अनुसार, "यदि फ्रास की राज्य क्रान्ति ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एव समानता का पाठ पढाया तो इगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का क्रियात्मक उपयोग सम्भव बना दिया।" औद्योगिक क्रान्ति के बाद श्रमिको की बढती हुई शक्ति ने वस्तुत ब्रिटेन म एक ऐसी सामाजिक चेतना को जन्म दिया जिसने व्यक्ति सम्मान एव व्यक्ति के मूलभूत अधिकारो की सफलतापूवक माँग की।

(८) पूंजी एव आर्थिक सत्ता के वितरण मे असमानता—यह औद्योगिक पूँजीवाद की सबसे दुखदायी देन है जो औद्योगिक क्रान्ति के बाद ब्रिटेन म और उसके बाद विश्व के अन्य सभी देशो मे दृष्टिगोचर हुई। यह तो नही कहा जा सकता कि औद्योगिक पूँजीवाद के पूर्वज सामन्तवाद म मे असमानताएँ थी ही नही—ये उस समय भी थी और यही नही साधारण जन-समाज उस समय भी नागरिक एव सामाजिक अधिकारो से भी वचित था। औद्योगिक क्रान्ति ने समाज के साधारण वर्ग को नागरिक अधिकार तो प्रदान कर दिये किन्तु अनियन्त्रित पूँजीवाद ने आर्थिक असमानताओ की इतनी अधिक वृद्धि कर दी कि वे आकाश-पाताल को छूने लगी। लन्दन नगर के पश्चिमी एव पूर्वी भागो के सामाजिक जीवन का अन्तर आज भी इस तथ्य का अनुमोदन करता है।

अत उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि औद्योगिक क्रान्ति ने इगलैण्ड के आर्थिक और सामाजिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है। क्रान्ति के प्रभाव लाभदायक और हानिकारक दोनो ही रूप मे परिलक्षित हुए। इगलैण्ड इस औद्योगिक क्रान्ति के कारण ही विश्व का अगुआ राष्ट्र बन गया और इस रूप मे न सिर्फ इगलैण्ड बल्कि विश्व के अनेक देश औद्योगिक क्रान्ति के प्रभावो का अनुभव कर सके।

राजनीतिक प्रभाव

ब्रिटेन के लिए क्रान्ति के राजनीतिक प्रभाव अत्यन्त दूरगामी हुए। इन प्रभावो के कारण ब्रिटेन अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों का केन्द्र-बिन्दु बन गया। श्रीमती नोल्स के शब्दो मे, इन परिवर्तनो के कारण 'ब्रिटेन विश्व का जहाज निर्माता, विश्व के माल का वाहक, विश्व का बैंकर, विश्व का वर्कशाप तथा अन्तरराष्ट्रीय

व्यापार का निवास गृह बन गया।" इस क्रांति के कारण पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों की राजनीतिक स्थिति और उनके पारस्परिक सम्बन्धों में परिवर्तन हो गया। लोहे और कोयले के बल पर ब्रिटिश साम्राज्य विश्व का विशालतम साम्राज्य बन गया और उपनिवेशवाद की दौड़ में उसने फ्रांस, हालैण्ड एवं जर्मनी जैसे देशों को पीछे छोड़ दिया। आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से ब्रिटेन की प्रभुसत्ता विश्व पर हावी हो गयी। विश्व के अनेक राष्ट्र ब्रिटेन की महानुभूति प्राप्त करने के लिए लालायित रहने लगे और अपनी समस्याओं के समाधान के लिए ब्रिटिश मार्ग-दर्शन की अपेक्षा करने लगे। ब्रिटेन ने इस क्रान्ति के आधार पर विश्व के समक्ष सूक्ष्म का विराट रूप प्रस्तुत कर दिया और यह सिद्ध कर दिया कि सूक्ष्म लघु होकर भी महान हो सकता है। इन परिवर्तनों के कारण ही ग्रेट ब्रिटेन जैसा छोटा द्वीप विश्व का सबसे महान् राष्ट्र बन बैठा। यही नहीं राजनीतिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों ने ब्रिटिश विचारधारा, संस्कृति एवं साहित्य को विश्व के प्रत्येक कोने में फैलने का अवसर दिया। औद्योगिक क्रांति के साथ-साथ विश्व संस्कृति एवं 'सभ्यता' ब्रिटेन की देन मानी जाने लगी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव ब्रिटेन तक ही सीमित न रहा। विश्व के अन्य स्वतन्त्र देश और उपनिवेश भी इससे प्रभावित हुए। आवास-प्रवास, ब्रिटिश साहित्य एवं तकनीकी ज्ञान का प्रसार ब्रिटिश पूँजी के अन्य देशों में विनियोग आदि कुछ ऐसे तत्त्व थे जिनके आधार पर अन्य देशों में क्रान्ति की प्रक्रिया आरम्भ की गयी। बीसवीं शताब्दी तक औद्योगिक क्रान्ति जर्मनी, फ्रांस, अमरीका, जापान और रूस में फैल गयी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप के अन्य कई देशों में क्रान्ति फैली और अब एशिया और अफ्रीका के पिछड़े हुए देश औद्योगिक क्रान्ति की उसी प्रक्रिया से गुजर रहे हैं जिससे उपर्युक्त देश गुजर चुके हैं। क्रान्ति की इस दौड़ में अमरीका एवं रूस ब्रिटेन से आगे निकल चुके हैं क्योंकि ब्रिटेन की अपेक्षा उनके भौतिक साधन अधिक विपुल हैं। फिर भी इससे ब्रिटेन का महत्त्व कम नहीं होता। विश्व को औद्योगिक क्रान्ति की देन का श्रेय ब्रिटेन को सदैव के लिए प्राप्त हो चुका है जिसके लिए विश्व उसका चिरऋणी रहेगा।

प्रश्न

1. The term 'Industrial Revolution is used, not because the process of change was quick, but because when accomplished the change was fundamental" Discuss and describe the economic and social effects of Industrial Revolution in Great Britain

   "औद्योगिक क्रान्ति शब्द का प्रयोग इसलिए नहीं किया जाता कि परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यन्त शीघ्रगामी थी, किन्तु इसलिए किया जाता है कि ये परिवर्तन सम्पन्न होने के बाद अत्यन्त आधारभूत थे।" इसका विवेचन कीजिए और

ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति के आर्थिक एव सामाजिक प्रभावो का उल्लेख कीजिए। (बिहार, १९५९)

2 "The Industrial Revolution in England had far reaching effects on every aspect of her economic life" Discuss
इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव ब्रिटेन के आर्थिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर अत्यन्त दूरगामी थे। विवेचना कीजिए। (बिहार, १९६१)

3 Examine critically (a) the causes, and (b) the economic and social effetcs of the Industrial Revolution of Great Britain
ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति के (अ) कारणो, एव (ब) उसके आर्थिक तथा सामाजिक प्रभावो की विवेचना कीजिए। (पटना, १९६१)

4 England became the pioneer of Industrial Revolution? Discuss the socio economic effects of Industrial Revolution
इग्लैण्ड औद्योगिक क्रान्ति का प्रणेता बन गया। औद्योगिक क्रान्ति के सामाजिक एव आर्थिक प्रभावो की विवेचना कीजिए। (पजाब १९५८)

5 What were the caues and consequences of Industrial Revolution in England?
इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के कारण एव परिणाम क्या थे।
(पजाब, १९६६)

6 Describe the main features of Industrial Revolution and discuss its economic and social effects
औद्योगिक क्रान्ति की प्रमुख विशेषताओ का वर्णन कीजिए और उसके आर्थिक एव सामाजिक प्रभावो की विवचना कीजिए। (राजस्थान, १९६६)

7. Explain briefly the social and economic effects of Indstrial Revolution in England
इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के आर्थिक तथा सामाजिक प्रभावो की सक्षेप मे विवेचना कीजिए। (राजस्थान, १९६९)

९
सूती वस्त्र उद्योग
(Cotton Textile Industry)

औद्योगिक-क्रान्ति का आरम्भ सर्वप्रथम सूती वस्त्र व्यवसाय के क्षेत्र में ही हुआ। ऊन की कताई और बुनाई यद्यपि ब्रिटेन में बहुत पहले से प्रचलित थी, किन्तु सूती वस्त्र उद्योग का विकास १५८५ ई० से ही मैनचेस्टर के आसपास आरम्भ हुआ। उस समय यह उद्योग छोटे पैमाने पर चल रहा था और वस्त्र हाथ करघों पर बनाये जाते थे। सूती वस्त्र उद्योग केवल स्थानीय माँग की पूर्ति करता था और वस्त्र का निर्यात बहुत ही कम होता था। यातायात की असुविधा के कारण घरेलू व्यापार भी कम था। १७०० ई० में इस उद्योग में केवल २० लाख पौण्ड रुई की खपत थी। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में सूती माल का निर्माण महत्त्वपूर्ण नहीं था। रुई, लीवान्ट (जहाँ पर फ्रांसीसी और डच व्यापारी उपलब्ध पूर्ति के क्रय के लिए अंग्रेज व्यापारियों से प्रतियोगिता करते थे) और पश्चिमी द्वीपसमूह से (जहाँ १७६३ तक अंग्रेजों की स्थिति सुदृढ़ नहीं थी), आती थी। इस प्रकार रुई की पूर्ति अनिश्चित थी। इस उद्योग की मन्द प्रगति का एक कारण ऊनी और रेशमी उद्योगों में लगे हुए लोगों की ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शत्रुता थी, जो आरम्भ से ही भारत से सूती माल का आयात करती थी।

भारत का सूती माल इंगलैंड में अधिक लोकप्रिय था और सन् १७०० में ऊनी तथा रेशमी उद्योगों के हित में, पोशाक या सजावट के लिए पूर्वी देशों से छपे सूती माल का आयात बन्द कर दिया गया। फिर भी सफेद सूती वस्त्र का आयात किया जा सकता था। सफेद वस्त्रों की छपाई का उद्योग स्थापित हो गया था। भारतीय सूती माल का उपयोग भी जारी रहा। इसलिए १७२१ ई० में एक अधिनियम पारित हुआ जिसके अधीन दिसम्बर १७२२ ई० के पश्चात्, इंगलैंड में पोशाक के लिए या सजावट के लिए, छपे हुए सूती माल का उपयोग बन्द कर दिया गया चाहे छपाई वहाँ की हो या कहीं और की। अंग्रेज महिलाएँ जो अब भी इस माल का उपयोग करना चाहती थीं, केवल सफेद सूती वस्त्र (कैलिको) या मलमल

का उपयोग कर सकती थी। १७०० ई० के ये प्रतिबन्ध पुनर्निर्यात के उद्देश्य से इंग्लैंड में लाये गये छपे सूती माल पर लागू नहीं थे। आन्ल-व्यापारी इन वस्तुओं को पूर्वी देशों से आयात कर पश्चिमी अफ्रीका, पश्चिमी-द्वीपसमूह और अमरीका के दक्षिणी उपनिवेशों में बेच देते थे।

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक इंगलैंड में एक विशेष प्रकार का कपड़ा बनाया जाता रहा जिसमें रुई एवं सन का मिश्रण होता था। अंग्रेज निर्माता ताने के लिए यथेष्ट मजबूत सूत बनाने में सफल नहीं हुए थे और वे सन का ताना और सूत का बाना बनाते थे। १७२१ के अधिनियम के पारित होने के पश्चात् इस सामग्री के उपयोग की वैधानिकता में कुछ संदेह था और सन् १७३६ के मैनचस्टर अधिनियम द्वारा निश्चित रूप से यह वैधानिक घोषित कर दिया गया। **वस्त्र उद्योग की इस शाखा के विकसित होने के अनेक कारण थे**

(१) आयातित सफेद सूती वस्त्रों और मलमल की प्रतियोगिता प्रभावहीन थी क्योंकि उन पर भारी कर लगे हुए थे।

(२) निर्यात पर सहायता देकर उद्योग को संरक्षण दिया गया था।

(३) सन् १७०७ ई० में मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् भारत में दीर्घकाल तक आन्तरिक अशान्ति रही थी। इन दिनों इस देश में प्रभुत्व स्थापित करने के लिए फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में युद्ध छिड़ गया। ऐसी परिस्थितियाँ व्यवस्थित व्यापार के लिए अनुकूल नहीं थीं और भारतीय सूती माल की पूर्ति रुक जाने से ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योगों को प्रोत्साहन मिला।

(४) सन् १७७४ में इंगलैंड में छापे गये सूती वस्त्रों के उद्योग पर १७२१ में लगाई गयी निषेधाज्ञा उठा ली गयी जिससे सूती उद्योग के विकास के मार्ग में आने वाली औद्योगिक और वैधानिक रुकावटें एक साथ दूर हो गयीं।

(५) संयुक्त राज्य अमरीका में कपास की खेती आरम्भ कर दी गयी थी और शताब्दी के समाप्त होने से पूर्व इस स्रोत से रुई की असीमित पूर्ति उपलब्ध हो गयी।

सूती वस्त्र उद्योग की तीव्र प्रगति इस काल में अनेक नये आविष्कारों के कारण हुई। ये आविष्कार इस प्रकार थे

जॉन के और फ्लाईंग शटल
(John Kay & Flying Shuttle)

प्रथम और महत्त्वपूर्ण आविष्कार सन् १७३३ ई० में बरी (Bury) स्थान के **श्री जॉन के** (John Kay) द्वारा फ्लाईंग शटल के रूप में किया। इस आविष्कार से पूर्व बुनकर को ताना-बाना पूरा करने में दोनों हाथों का प्रयोग करना पड़ता था। इस आविष्कार के द्वारा बुनकर अपने हाथों को खाली रख सकता था। इस मशीन का प्रयोग पहले ऊन उद्योग में किया गया और सन १७६० तक इसका प्रयोग सूती वस्त्र उद्योग में भी होने लगा। बुनाई विभाग में इस परिवर्तन और आविष्कार से अधिक सूत की माँग होने लगी। कताई में बिना आविष्कार और परिवर्तन के यह सम्भव

नहीं था। अत आविष्कारो का ध्यान कताई विभाग की ओर आकर्षित हुआ, जिसमें तीन महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुए जिनके परिणामस्वरूप आगे सूत न केवल घरेलू आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त होने लगा वरन् वचन को बाहर भी भेजा जा सकता था।

(१) **कताई मशीनरी**—कताई मशीन के वास्तविक उद्गम के सम्बन्ध म कोई एक मत नही पाया जाता। यह एक विवादास्पद विषय है लेकिन रौलरो के प्रथम प्रयोगकर्त्ताओ के रूप म जॉन वॉट (John Wyatt) और लुईस पॉल (Louis Paul) का नाम जुडा हुआ है। वॉट लीचफील्ड (L chfield) का रहने वाला था, जिसने अपने आविष्कार की सफलता के लिए पॉल से साझेदारी की। उसने वाट को वित्तीय सहायता दी। रौलरो के दो युग्म (pairs) प्रयोग किये जाते थे लेकिन उनकी गति मे अन्तर था। कपास की कताई से पहले उसे जिस तरीके मे लपेटा जाता था, वह पद्धति कार्डिंग कहलाती थी। यह कार्य पहले घर-घर किया जाता था। पॉल ने सन् १७४८ मे "सिलेण्ड्रिकल कार्डिंग मशीन' (Cylindrical carding machine) का आविष्कार किया। **वॉट और पॉल** के ये आविष्कार व्यावसायिक दृष्टि से अधिक सफल न हुए क्योकि इन आविष्कारकों के पास आवश्यक पूजी और व्यावसायिक योग्यता का अभाव था। इतना होने पर भी इनकी मशीनें बर्मिघम और कुछ वर्षों पश्चात् नोर्थम्पटन स्थानों पर फैक्टरियो मे स्थापित की गयी जहाँ कि २५० तकुए जल-शक्ति से सचालित होते थे। नोथम्पटन की यह मिल यूरोप मे सर्वप्रथम शक्ति सचालित सूती कताई की मिल थी।

(२) **हारग्रीव्ज और स्पिनिंग जेनी** (Hargreaves of Blackburn & Spinning Jenny)—कताई मे प्रथम व्यावहारिक सफलता थी **हारग्रीव्ज** (Hargreaves) को ही मिली, जिसने कि हाथ की जेनी (Jenny) मशीन का सन् १७६७ मे आविष्कार किया। इस यन्त्र से एक के स्थान पर एक साथ ग्यारह धागे काते जा सकते थे।

(३) **रिचर्ड आर्कराइट और वाटरफ्रेम** (Richard Arkwright & Water-frame)—सन् १७६० के लगभग कताई की समस्या इतनी प्रबल वेग से सामने आयी कि **सोसाइटी आव आर्टस** (Society of Arts) ने कताई मशीन के आविष्कार के लिए पुरस्कार घोषित किया। सोसाइटी को कई मशीनो के नमूने प्रस्तुत किये गये लेकिन वे सब नगण्य थे। इस समय हेज (Hays) नामक व्यक्ति का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित हुआ और उसने एक मशीन का आविष्कार किया भी जिसमे रौलरो की मदद से कताई सम्भव हो सकती थी परन्तु वह अपने इस प्रयोग को धन की कमी के कारण पूरा नही कर सका। हेज की महत्ता कताई के इतिहास मे इसी रूप मे है कि सभवतया उसी के आधार पर वाटरफ्रेम का श्रीगणेश हुआ। सन् १७६९ मे **रिचर्ड आर्कराइट** ने जिस कातने की मशीन का आविष्कार किया वह सर्वथा नवीन सिद्धान्त पर आधारित थी। यह मशीन जल-

शक्ति से चलाई जाती थी अतः यह वाटरफ्रेम कहलायी। यह घरों में काम में नहीं ली जा सकती थी, क्योंकि आकार बड़ा होने से इसे घरों में रखने में कठिनाई पड़ती थी तथा श्रमिकों के लिए यह महँगी भी बहुत थी। वाटरफ्रेम से तैयार सूत "जैनी" के सूत से भिन्न था। यह मजबूत और मोटा ताना बनाने के लिए उपयुक्त था। सन् १७७१ में रिचार्ड आर्कराइट ने क्रोमफोर्ड के पास पहली 'स्पिनिंग-मिल' स्थापित की। सन् १७७८ में उसने कई और आविष्कार किये जिनमें से मुख्य कार्डिंग मशीन क्रेंक, काम्ब रॉविंग फ्रेम और फीडर हैं। आर्कराइट से पहले ताने का सूत हाथ का कता हुआ प्राप्त होता था। आर्कराइट का आविष्कार आधुनिक अर्थों में मशीन थी जिसकी बनावट पेचीदा और कार्य अत्यन्त नाजुक था।

(४) सन् १७७१ में क्रोम फोर्ड (Crom Ford) में जो कताई-मिल स्थापित की गयी उसकी सफलता ने अन्य लोगों का ध्यान आकर्षित किया। इसके सफल व्यावहारिक व्यावसायिक प्रयोग के बाद ही इंगलैंड में सूती वस्त्र का उद्योग अधिक पनप सका। सन् १७७८ में उसने अपने अन्य आविष्कारों का भी पेटेन्ट प्राप्त कर लिया। अधिकांश आविष्कारकों की तरह आर्कराइट को भी प्रतिद्वन्द्वी व्यापारियों और व्यावसाइयों का तीव्र विरोध सहना पड़ा। उस पर यह आरोप लगाया गया कि उसने कम साधन सम्पन्न और अभागे व्यक्तियों के विचारों से लाभ उठाया है। सन् १७८५ में पार्लियामेण्ट ने भी उसे पेटेन्ट के अधिकारों से वंचित कर दिया फिर भी डेविलडेल की साझेदारी में उसने स्काटलैंड में न्यूलैनार्क मिल्स और वेक्वेल में भी एक मिल स्थापित की। उसने सर्वप्रथम अपनी नोटिंघम फैक्टरी में वाष्प एँजिन का भी प्रयोग किया।

(५) सेम्यूअल क्रोम्पटन तथा म्यूल (१७५३-१८२७)—क्रोम्पटन ने उत्तम सूत का विशाल पैमाने पर उत्पादन अपनी म्यूल नामक मशीन के आविष्कार से सम्भव बना दिया। क्रोम्पटन, बोल्टन का रहने वाला था। उसने १७७९ में म्यूल का आविष्कार किया जिससे जैनी और वाटरफ्रेम के सिद्धान्तों को मिलाकर महीन और मजबूत सूत तैयार किया जाने लगा। इस प्रकार इंगलैंड में मलमल बनाना सम्भव हो सका। इससे पूर्व यह भारत से आयात की जाती थी। जैनी के समान ही पहले तो म्यूल लकड़ी से बनायी गयी और बाद में सन् १७८३ में सुधरे हुए डिजायन के अन्तर्गत धातु के रोलर और चक्र इत्यादि बनाये गये। सन् १७९० में विलियम केली (Willian Kelly) ने 'स्वचालित म्यूल' का आविष्कार किया जिसमें कई सौ तकुए लग हुए थे और इस प्रकार १२०० ई० तक म्यूल ने 'स्पिनिंग जैनी' को सूती व्यवसाय से हटा सा दिया।

(६) विटने और उसका सा-जिन (Whitney's Saw Gin)—अठारहवीं शताब्दी के अन्त में कच्चे माल (कपास) के उत्पादन-कार्य में इस मशीन के आविष्कार से सहायता मिली। इस शताब्दी में अमरीका में आने वाली लम्बी रेशे वाली कपास की पूर्ति सीमित थी क्योंकि वह कुछ ही स्थानों पर उगाई जाती थी। विटने

की ओटाई मशीन से कपास को बिनौलों से अलग किया जाने लगा उसके फलस्वरूप छोटे रेशे वाली कपास उत्पन्न करना आर्थिक और मितव्ययिता की दृष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ चूँकि छोटे रेशे वाली कपास लाभदायक ढंग से सभी दक्षिणी राज्यों में उगाई जा सकती थी अतः अमरीका असीमित मात्रा में कपास का निर्यात करने लग गया।

(ब) बुनाई विभाग (Weaving Department)—कताई विभाग में उपर्युक्त परिवर्तनों और आविष्कारों ने सूत का उत्पादन सस्ता व अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिया अतः कताई और बुनाई में सन्तुलन बिगड़ गया अतः बुनाई विभाग में भी आविष्कारों की आवश्यकता अनुभव की गयी।

(१) एडमंड कार्टराइट और शक्ति-चालित करघा (Edmund Cartwright Powerloom, 1743-1823)—एडमंड कार्टराइट (जो एक पादरी था और जिसे विशिष्ट तकनीकी ज्ञान भी न था) ने बुनाई की इस समस्या पर विचार किया। सन् १७८५ में उसने एक शक्ति-चालित करघे की डिजायन तैयार की जो एक केन्द्र पर कार्यशील हो सकता था किन्तु वह अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। तकनीकी ज्ञान और अन्य करघों के परीक्षण का अनुभव एडमंड को इस बात में सफलता प्रदान कर सका कि वह एक उत्तम शक्ति-चालित करघा निकाल सका। सन् १७८७ में डानकैस्टर में एक छोटी फैक्टरी स्थापित की गयी जिसमें स्टीम एञ्जिन बर्मिंघम से लाया गया किन्तु यह प्रयत्न भी असफल हुआ और आविष्कर्ता बरबाद हो गया। कार्टराइट ने वूल-कॉम्बिंग-मशीन का भी आविष्कार किया जो बाद में अधिक उपयोगी सिद्ध हुई। स्कॉटलैण्ड में शक्तिचालित करघा व्यावसायिक दृष्टि से सफल हुआ और सन् १७९३ में रोबर्टसन ने ग्लासगो और डम्बरटन में करघे स्थापित किये।

(२) करघे की कुछ कमियाँ रेडक्लिफ और रॉस ने तथा विलियम जानसन ने दूर कीं। सन् १८०३ से १८११ के मध्य में स्टॉकपोर्ट के होरोक्स ने पूर्ण धातु की मशीन बनायी और तभी से शक्ति-चालित करघा अपने आधुनिक रूप को प्राप्त कर सका। होरोक्स को इस आविष्कार से कोई लाभ नहीं हुआ, परन्तु उसके विचारों को विकसित करके रोबर्ट्स और शार्प ने सुधरा हुआ मॉडल १८२२ में बाजार में प्रस्तुत किया। सन् १८४० तक वास्तव में कैनवर्दी तथा बुलोग ने करघे पर सुधारों का क्रम पूरा किया जिसके द्वारा बुनाई के श्रम में बचत हुई और उत्तम कोटि का वस्त्र बनाना सम्भव हो सका।

(३) छपाई और रँगाई (Printing & Dyeing)—सन् १७८० से १८०० ई० के बीच में सूती वस्त्र व्यवसाय में छपाई और रँगाई के क्षेत्र में भी बहुत सुधार हुए। सन् १७८३ तक छपाई हाथ से होती थी जिसमें कि श्रम, शक्ति और धन का अपव्यय होता था। सन् १७८३ में थोमस बैल ने ताँबे के सिलेण्डर द्वारा छापने का आविष्कार किया और शीघ्र ही पूरे लंकाशायर क्षेत्र में इस प्रकार की

छपाई का प्रयोग होने लगा। इसी प्रकार ग्लासगो के टैनेन्ट ने रँगाई की कला मे १७६६ में सुधार और आविष्कार किया जिससे महीनो का कार्य दिनो मे होने लगा। इसी प्रणाली को बाद मे मैनचेस्टर के हेनरी ने विकसित किया। लगभग इसी समय टेलर ने टर्करेड रँगाई का ढग निकाला जिसकी रँगाई भारतीय रँगाई से ऊँची सिद्ध हुई। इस प्रकार सूती वस्त्र व्यवसाय के प्रत्यक विभाग मे आविष्कारो की धूम मच गयी।

प्रारम्भिक दशा म कुछ आविष्कारो को शारीरिक यातनाएँ सहनी पडी और कुछ को अपना देश भी छोडना पडा क्योकि उस समय इगलैण्ड इन आविष्कारो द्वारा उत्पन्न आर्थिक प्रभाव को झेलने के लिए तैयार नही था। किन्तु भारतवर्ष और अन्य उपनिवेशो से जब बडी मात्रा म पूँजी इगलैण्ड म आने-जाने लगी तब ये आविष्कार काम मे लाये जाने लगे। श्रमिको के अभाव और पूँजी के बाहुल्य ने सूती वस्त्र-व्यवसाय क्षेत्र म उत्पादन की नवीन पद्धति को प्रश्रय दिया। कातने और धुनने की पद्धतियाँ पहले मनुष्य द्वारा सचालित होती थी अब मशीन द्वारा सचालित होने लगी। लकाशायर एव यार्कशायर के प्रदेशो म यह उद्योग फैल गया और मैनचेस्टर इस उद्योग का प्रधान केन्द्र बन गया। ऊनी वस्त्र उद्योग मे भी इन आविष्कृत मशीनो का उपयोग किया जा सकता था परन्तु निम्न कारणो से एसा नही हो सका :

(१) ऊनी वस्त्र उद्योग म श्रमिको की अधिकता थी। व्यवसायी उनके स्थान पर मशीनो का श्रीगणेश करके श्रमिक आन्दोलन और असन्तोष को निमन्त्रित नही करना चाहते थ। उससे उत्पन्न बेकारी की समस्या भी उन्हे बाधित करती थी कि वे इन नवीन आविष्कारो का लाभ न उठावें।

(२) ऊनी वस्त्र व्यवसाय का आर्थिक और व्यापारी सगठन बहुत ही सुव्यवस्थित था और ऊन के माल की माँग देश और विदेश मे बिना नवीन आविष्कारो को अपनाये हुए भी अधिक थी। अत वे उसम परिवर्तन के इच्छुक नही थे जिससे कि समस्त व्यवस्था म परिवर्तन हो।

(३) आशिक रूप मे मशीनो के आविष्कार मे ऊनी वस्त्र बुनने और कातने की मशीनो का भी अभाव था जिससे ऊनी वस्त्र व्यवसायी उस ओर आकर्षित न हो सके। नवीन प्रयोगो के खतरो से भी ऊनी वस्त्र व्यवसायी सशकित थे। उन्होंने प्रयोगो से उत्पन्न लाभो को बिना परखे न अपनाने मे ही बुद्धिमानी समझी।

स्थानीकरण के कारण

उपर्युक्त कारणो से ऊनी वस्त्र उद्योग मे मशीनो का प्रयोग १८५० के लगभग ही हो सका। उसकी तुलना म सूती वस्त्र उद्योग निम्नांकित कारणों से मशीन [illegible] ग मे अग्रणी रहा :

(१) इगलैण्ड की जलवायु इस उद्योग के लिए अनुकूल थी।

(२) यन्त्रों के आविष्कार से बडे पैमाने और कम व्यय में उद्योग को चलाना सम्भव हो गया।

(३) विश्व में अन्य देशों में इस उद्योग का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो सका था अत इगलैण्ड को आसानी से कच्चा माल मिल जाता था।

(४) उपनिवेशों के हाथ में आ जाने से बाजार की समस्या हल हो गयी थी।

(५) उद्योग को चलाने के लिए लोहा और कोयला दोनों प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध थे।

(६) इगलैण्ड की सरकार द्वारा तट-कर और सरक्षण की नीति उद्योग को मिली थी।

(७) इगलैण्ड मे उस समय श्रम का अभाव न था क्योकि कृषि क्षेत्रो से जनसंख्या का निष्क्रमण शहरो की ओर हो रहा था।

(८) उस समय इगलैण्ड में एक नये तरह के वस्त्र का उद्योग विकसित हो रहा था जिसमे आधा लिनन और आधा सूत मिला रहता था जिसे इगलैण्ड की महिलाएँ बहुत पसन्द करती थी।

(९) इगलैण्ड मे अन्न की कमी थी और इस कमी को दूर करने के लिए सूती वस्त्र उद्योग की उन्नति करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही था। ऊनी वस्त्रो का व्यापार विस्तृत होते हुए भी स्थानीय अधिक था अत विदेशो को सूती वस्त्र देकर ही इगलैण्ड उनसे अन्न खरीद सकता था।

(१०) इगलैण्ड के प्राकृतिक बन्दरगाहो की अधिकता ने कच्चे माल के आयात और पक्के माल के निर्यात को सुगम बना दिया था।

(११) पूर्वी देशो मे धार्मिक-विरोध तथा अन्धविश्वास के कारण यन्त्रो का प्रयोग नही हो पाता था। उनके पास उतनी पूँजी भी नही थी। अत इगलैण्ड को निर्विघ्न आगे बढ़ने का अवसर मिला।

(१२) इगलैण्ड मे पूँजी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। यहाँ की बैंकिंग, साख और जहाजरानी का विकास तीव्र गति से हो रहा था।

(१३) इगलैण्ड मे यातायात के क्षेत्र मे प्रगति हो रही थी, इस प्रकार सूती वस्त्रोद्योग के विकास मे बड़ी सहायता मिली।

सूती मिलो के विकास ने कई समस्याएँ उत्पन्न की जिन्हे सरलता से हल कर लिया गया। ऐसी एक समस्या कपास पूर्ति की थी। यह तो स्पष्ट है कि इगलैण्ड एक पौण्ड भी कपास उत्पन्न नही करता था, वह विदेशो से ही उसका आयात करता था। किन्तु भारी मात्रा मे कपास का आयात तभी सम्भव था जबकि इस प्रकार का उपाय ढूँढ निकाला जाय जिससे जहाज मे कम स्थान घेरा जाय। व्हिटने (Whitney) ने सन् १७९३ म जिनिंग-प्रोसेस का आविष्कार किया, उसके पश्चात् अमरीकन कपास का भारी मात्रा मे देश में आयात होने लगा। सन् १८३२ में ३० करोड पौण्ड कपास अमरीका से निर्यात किया गया जिसमे से इगलैण्ड ने २८ करोड पौण्ड का कपास आयात किया।

द्वितीय महत्त्वपूर्ण समस्या भारी और वडे पैमाने के उत्पादन के लिए बाजार की मण्डी की खोज थी। औपनिवेशिक दौड मे इ गलैण्ड ने कई उपनिवेशो पर अधिकार कर लिया जिसमे भारत भी था। सन् १८१३ मे सभी अंग्रेज व्यापारियो को व्यापार की खुली छूट थी और आयात-कर भी कम रखे गये। भारत मे आयात किये जाने वाले वस्त्र और सूत के आँकडे बाजार के विस्तार पर प्रकाश डालते हैं

	सूत	वस्त्र
१८१५	—	८,००,००० गज
१८३०	३०,००,००० पौण्ड	४,५०,००,००० गज

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इ गलैण्ड मे सूती वस्त्र उद्योग का कुछ विकास उसकी कारीगरी, मेहनत और अध्यवसाय से हुआ, कुछ विकास उसके प्राकृतिक और भौगोलिक परिस्थितियो के कारण और कुछ विकास उपनिवेशो के संघर्ष मे विजय से हुआ। इस प्रकार उन्नीसवी शताब्दी की तृतीय दशाब्दी तक उद्योग सुदृढ आधार पर सगठित हो गया। सन् १८३३ मे १,०,०००० शक्ति-करघे कार्यशील थे जिसमे कपास का उपभोग ३० करोड पौण्ड तक पहुँच गया था। उस समय देश मे १,२६२ कपास के कारखाने थे जिनमे २,२०,००० श्रमिक नियोजित थे।

लकाशायर का महत्त्व

इस प्रयोगात्मक-स्तर के बाद उद्योग निरन्तर प्रगति करता गया। यह विशेषत लकाशायर मे केन्द्रित हुआ और यही कारण था कि युद्ध के समय के अनुमान के अनुसार ८५% श्रमिक इस भाग मे ही नियोजित थे। इस स्थान पर उद्योग के केन्द्रीकरण होने के कई कारण थे—(१) यदि कताई शुष्क जलवायु मे की जाय तो रुई का धागा टूट जाता है, लकाशायर म भारी वर्षा होती है और यहाँ का जलवायु नम होता है। (२) पेनाइन और रोचडेल की घाटियो के नालो से आरम्भ मे मशीनो के लिए जल-शक्ति मिल गयी और भाप के इजन के आने के पश्चात् इसको चलाने के लिए इस जिले का कोयला उपलब्ध हो गया। (३) लकाशायर जिले के लिए कच्ची रुई का आयात करने और सूती वस्त्र का निर्यात करने के लिए लीवरपूल का बन्दरगाह आदर्श है। (४) इस क्षेत्र के अनेक कस्बो एव ग्रामो मे पिछली अनेक सदियो से कताई एव बुनाई का व्यवसाय होता चला आ रहा था अत यहाँ परम्परागत श्रम कुशलता उपलब्ध थी। देश के अन्य भागो मे इन अनुकूल परिस्थितियो मे से एक या अन्य पायी जाती हैं। क्लाइड की घाटी के अतिरिक्त तीनो बात एक साथ कही नही पायी जाती और वहाँ वस्त्र निर्माण की अपेक्षा जहाज बनाने के लिए प्राकृतिक लाभ अधिक है, इसलिए क्लाइड क्षेत्र ने लकाशायर से वस्त्र-निर्माण में प्रतियोगिता नही की है और जहाजों के बनाने मे ही ध्यान केन्द्रित रखा। इसीलिए सूती वस्त्र के निर्माण के लिए लकाशायर आदर्श स्थल सिद्ध हुआ। यह उद्योग सुसगठित है और इसकी मण्डियो और व्यापार के मार्ग सुस्थापित

है। यहाँ के श्रमिको ने अभूतपूर्व क्षमता प्राप्त कर ली और इस जिले म कई सहायक उद्योग स्थापित हो गये। १८७५ ७६ और १८८५-८६ की अवधि मे अमरीकन-गृहयुद्ध तथा आर्थिक-मन्दी के कारण इस उद्योग की प्रगति म थोडी बाधा अवश्य आयी किन्तु इसके बाद उसकी प्रगति आशातीत हुई।

प्रथम विश्व-युद्ध और सूती वस्त्र उद्योग

प्रथम विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने के समय तक ५६० लाख तकुए, ८ लाख ५ हजार शक्ति-करघे इस उद्योग म कार्य कर रहे थे। इनम २०,००० लाख पौंड कपास का उपभोग होता था और ६,२०,००० श्रमिक नियोजित थे। इग्लैण्ड के कुल निर्यात व्यापार म सूती वस्त्रो का एक-चौथाई भाग था। सारे विश्व के सूती वस्त्र उद्योगो म इगलैण्ड का प्रथम स्थान था जिसम विश्व के कुल तकुओ का ३६ प्रतिशत और करघो का २६ प्रतिशत और विश्व म कपास के व्यापार का ६५ प्रतिशत इगलैण्ड के हाथ म था। इस उद्योग का मुख्य बाजार ब्रिटिश-भारत था जो ४४ प्रतिशत सूती वस्त्र का आयात इगलैण्ड से करता था। इस शताब्दी मे इगलैण्ड की सफलता आश्चर्यजनक और प्रशसनीय थी।

प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ होने से इगलैण्ड के सूती-वस्त्र-उद्योग को बडा धक्का लगा। युद्ध के समय कपास का आयात और वस्त्रो का निर्यात कठिन हो गया। इन कठिनाइयो के कारण १९१७ से १९१९ तक इस उद्योग को कपास-नियन्त्रक समिति (Cotton Control Committee) के अधीन कार्य करना पडा। यह समिति कपास का राशनिंग करती थी और जहाँ आवश्यक समझा जाता वहाँ मशीनो को बन्द भी कर दिया जाता था। जहाजरानी की कमी के कारण इगलैण्ड को कई बाजारो से हाथ धोना पडा।

विश्वव्यापी मन्दी का प्रभाव

युद्धोपरान्त काल में कुछ समय के लिए पूर्वी देशो की माँग बढ गयी किन्तु सन् १९२० के पश्चात् उद्योग का लगातार ह्रास होता रहा और १९२४ ई० तक सूत और कपडो का उत्पादन १९१३ ई० की अपेक्षा क्रमश ३० और ३३ प्रतिशत कम हो गया। सन् १९३० ई० मे १९२४ ई० की तुलना मे उत्पादन ४०% और घट गया। १९२५ म विश्व म सूती उद्योग का भारी विस्तार और प्रसार हुआ परन्तु लकाशायर उद्योग लगातार गिरता गया। विश्व मन्दी से परिस्थिति और बिगड गयी।

अवनति के कारण

(१) भारत और चीन निवासियो की क्रय शक्ति बहुत कम हो गयी थी तथा इगलैण्ड का वस्त्र महँगा होने के कारण इन देशो म विलायती वस्त्र की बिक्री कम हो गयी।

(२) सुदूर-पूर्वी देशो म कपडे का उनका अपना उत्पादन भी बढ गया था क्योकि इन देशो मे भी औद्योगिक विकास के फलस्वरूप सूती उद्योग स्थापित हो

गया था। अत इन देशो मे विदेशी कपडो के आयात म कमी हो गयी और इगलैण्ड के लिए बाजार की समस्या भयकर हो गयी।

(३) इगलैण्ड से वस्त्रो के कुल निर्यात कोटे मे कमी हो गयी।

(४) इसी समय जापान ने औद्योगिक क्षेत्र म प्रवेश किया और वह इतना सस्ता कपडा बेचने लगा कि ७५ प्रतिशत कर लगाने पर भी उसका मूल्य इगलैण्ड के कपडे से कम होता था। अत जापानी वस्त्रोद्योग ने प्रतिस्पर्द्धा मे इगलैण्ड के उद्योग को समाप्त-सा कर दिया।

(५) इगलैण्ड मे भी लोग सूती कपडे के स्थान पर अन्य प्रकार के कपडो का प्रयोग करने लगे। अत सूती वस्त्र की स्थानीय और राष्ट्रीय माँग म भी कमी आ गयी।

(६) चीन मे दस्तकारी उद्योग की पर्याप्त प्रगति हुई तथा वह अपनी आवश्यकता का अतिरिक्त वस्त्र जापान म आयात करने लगा।

(७) सरक्षणवादी नीति क फलस्वरूप कई देशो मे राष्ट्रीय उद्योगो के विकास के उद्देश्य स आयात को कम से कम कर दिया गया।

१९२९ के विश्वव्यापी आर्थिक-मन्दी के काल म उद्योग को बडा धक्का पहुँचा। इस ह्रास प्रक्रिया को रोकने के लिए सूती-वस्त्र उद्योग मे सयोग आन्दोलन (Combination Movement) आरम्भ हुआ। १९२८ मे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक समिति का निर्माण हुआ, जिसकी देखरेख मे कई निगम स्थापित किये गये, जिनमे लकाशायर कॉटन निगम सबसे प्रमुख था।

सुधार के प्रयत्न एव द्वितीय विश्वयुद्ध

इस प्रकार इस उद्योग न गिरते हुए निर्यात बाजार को रोकने का प्रयत्न किया। सरकार ने उद्योगपतियो की मशा का आदर करते हुए सन् १९३६ मे सूती उद्योग पुनर्गठन विधेयक (Cotton Industry Reorganisation Act) स्वीकृत किया। इसके अनुसार एक तकुआ-मण्डल (Spindles Board) की स्थापना की गयी और उसको आवश्यकता स अधिक तकुओ को कारखानो से निकाल देने का काम सुपुर्द किया गया। सन् १९३६ के बाद से यह उद्योग सरकारी सहायता के बल पर ही चल रहा है। १९३९ ई० म काटन इण्डस्ट्रीज बोर्ड की स्थापना की गयी। द्वितीय महायुद्ध के छिड जाने से इस उद्योग की गिरती हुई अवस्था को सहारा मिल गया। युद्ध म वस्त्रो की माँग बढी और उसकी पूर्ति के लिए इगलैण्ड के सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन भी बढाया गया। युद्ध के समय सरकारी नियन्त्रण और भी सक्रिय और व्यापक हो गया। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् उद्योग मे पुनरुत्थान का युग आया। युद्धकाल म राशनिंग और नियन्त्रण के कारण कपडे की आवश्यकताओ को कम करना पडा। इस समय उपभोक्ताओ की माँग मे वृद्धि हुई किन्तु उत्पादन को बढाने मे इगलैण्ड को एक बडी कठिनाई का सामना करना पडा और

यह कठिनाई थी श्रमिकों का अभाव। युद्ध से पूर्व इंगलैण्ड के इस उद्योग में ११,६०,००० श्रमिक नियोजित थे किन्तु युद्ध के पश्चात् १९४६ ई० में कुल ८,४४,००० श्रमिक बच रहे। श्रमिकों का यह अभाव कई वर्षों तक चलता रहा। १९५०-५१ में उनकी संख्या १०१५,००० हो गयी। सन् १९५१ में १,६०,००० श्रमिक कताई में और ८,२५,००० श्रमिक बुनाई विभाग में नियोजित थे। इनमें से ⅔ भाग महिला-श्रमिकों का था। इन्हीं दिनों इंगलैण्ड को अफ्रीका में बहुत ही अच्छा बाजार मिल गया। उत्तरी अमरीका को छोड़कर जितना भी सूती वस्त्र इंगलैण्ड से निर्यात किया जाता है उसका ८० प्रतिशत राष्ट्रमण्डलीय देशों में ही जाता है और उनमें अफ्रीका का सबसे बड़ा भाग है। श्रमिकों के अभाव की पूर्ति ने विवेकीकरण की योजना लागू की और बहुत पुराने यन्त्रों को बदल कर नवीन यन्त्र लगाये। विवेकीकरण के कारण उत्पादन-कुशलता भी बढ़ गयी और १९३७ ई० की अपेक्षा १९५० में प्रति व्यक्ति पीछे वार्षिक उत्पादन २० प्रतिशत बढ़ गया। १९६१ में १२३५ करोड़ गज सूती कपड़ा तथा ७२८ करोड़ पौण्ड सूत तैयार किया गया।

उद्योग की समस्याएँ

इंगलैण्ड के सूती वस्त्र उद्योग की समस्याएँ इस प्रकार हैं :

(१) देश में जिस समय एकीकरण और समन्वय के लिए प्रयत्न किये जा रहे थे उस समय समानान्तर संयोग (horizontal combination) को देश के उद्योगों के लिए उचित नहीं समझा गया। इस प्रकार लम्बरूप संयोग (vertical combination) प्रणाली को अपनाने की माँग औद्योगिक क्षेत्रों में होने लगी।

(२) औद्योगिक क्षेत्र की दूसरी समस्या प्राविधिक अनिपुणता (Technical Inefficiency) की थी जिसे बढ़ाने के लिए अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण की योजनाएँ लागू की गयीं।

(३) विदेशी बाजारों की प्रतिस्पर्द्धा भी उद्योग की एक प्रमुख समस्या थी जिसके कारण उद्योग को प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के बीच के समय में भारी हानि उठानी पड़ी।

(४) द्वितीय महायुद्ध के बाद से ही उद्योग को अधिक लागत मूल्य की कठिनाई का अनुभव हो रहा है।

(५) निर्यात की स्थिति १९३९ और १९६१ में लगभग समान ही थी। सन् १९३९ में निर्यात ३,३४० लाख गज था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इंगलैण्ड का सूती वस्त्र उद्योग लगातार मन्दी का सामना कर रहा है। १९५१ के बाद से सूती वस्त्रों के निर्यात में भारी कमी हो गयी। इसका मुख्य कारण यही था कि भारत का सूती वस्त्र उद्योग काफी विकसित हो चुका था और इसके अतिरिक्त जापान ने एशिया के बाजार में अपना प्रभुत्व जमा लिया था। सूती वस्त्रों के उत्पादन में बहुत कमी कर दी गयी और

बहुत से कारखाने बन्द होने लगे। यूरोप के बाजारों में भी इंगलैण्ड को फ्रांस से प्रतिद्वन्द्विता का सामना करना पड़ा किन्तु १९५२ के समाप्त होते-होते पुनरुत्थान का बीज पुनः उगने लगा था। श्री एन्थोनी इडन के प्रधानमन्त्रित्व काल में एक टैक्सटाइल शिष्ट-मण्डल भारत आया था और जिसने ३ मई सन् १९५५ में भारत सरकार से एक समझौता किया जिसके अनुसार निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए २५% की कमी मूल्य में कर दी गयी। इसी प्रकार क्रय कर (Purchase tax) के उन्मूलनार्थ भी ब्रिटिश सरकार ने ४ मई, १९५५ को एक अधिनियम स्वीकृत किया।

बीसवीं शताब्दी में निरन्तर बढ़ती हुई विदेशी प्रतिस्पर्द्धा तथा कई देशों द्वारा (विशेषतः भारत द्वारा) सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना ने ब्रिटिश बाजारों का अभाव उत्पन्न कर दिया। १९३७ के स्तर से श्रमिक संख्या ५० प्रतिशत तक कम हो गयी। सन् १९५९ के अन्त तक १,००,००० व्यक्ति कताई विभाग में नियोजित थे तथा ९३,००० व्यक्ति बुनाई विभाग में नियोजित थे। इन श्रमिकों में २/३ भाग स्त्रियों का है। अधिकतर यह उद्योग लंकाशायर तथा उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित है जो कि बुनाई के लिए प्रसिद्ध है तथा दक्षिणी-पूर्वी भाग कताई से सम्बन्धित है। कॉटन-एक्सचेंज जो कि कच्चे माल के व्यापार में नियोजित है, लिवरपूल में स्थित है।

अप्रैल सन् १९५९ में सरकार ने अतिरिक्त कार्यक्षमता को कम करने की योजना की घोषणा की। यह तय किया गया कि सरकारी कोष से अतिरिक्त कार्यक्षमता कार्य के अन्तर्गत २/३ भाग मुआवजा रूप में दिया जायगा, साथ ही उद्योग के आधुनिकीकरण तथा पुनरुद्धार के लिए १/४ भाग मूल्य अदा किया जायेगा। इस प्रकार की पंचवर्षीय योजना का अनुमानित व्यय ३०० लाख पौण्ड था। यह सम्पूर्ण योजना कार्यक्रम एक विशिष्ट संस्था 'कपास-मण्डल' (Cotton Board) द्वारा चलायी गयी। जिसे कि विकास परिषद् के रूप में संवैधानिक अधिकार प्राप्त थे।

सन् १९४५ से १९५१ तक उत्पादन में लगातार वृद्धि हुई जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है। तत्पश्चात् लगातार उतार-चढ़ाव का काल रहा है। तकनीकी सुधारों के बावजूद आयात-करों से मुक्त आयातित भूरे वस्त्र ने स्थिति गम्भीर बना दी है। सन् १९५९ में इस प्रकार के वस्त्र का आयात ३,५२० लाख वर्ग गज था। राष्ट्रमण्डलीय देशों से इस प्रकार के समझौते किये जा रहे हैं कि जिससे इस प्रकार के वस्त्रों के आयात की सीमा निर्धारित कर दी जाय। उत्पादन और उपभोग का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि सन् १९३७ की तुलना में सन् १९५९ का उत्पादन आधा था तथा कपास का उपभोग सन् १९५९ में २,८४,००० टन था जबकि सन् १९३७ में ६,३६,००० टन था।

उद्योग की वर्तमान स्थिति

आज भी इस उद्योग की स्थिति ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है यद्यपि इधर पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों से कृत्रिम रेशे (Synthetic fibre) और रेयन का प्रयोग ब्रिटेन के टैक्सटाइल उद्योग में बढ़ा है और सूत तथा कृत्रिम रेशे के धागों

को मिलाकर मिश्रित वस्त्रो के अनक प्रकारो का निर्माण ब्रिटेन मे होने लगा है। उद्योग की ४७ प्रतिशत इकाइयाँ पूर्णत सूती धाग एव सूती वस्त्रो का उत्पादन करती हैं, ४१ प्रतिशत मिश्रित वस्त्रो का उत्पादन करती हैं और १२ प्रतिशत पूर्णरूप से कृत्रिम रेशे के वस्त्रो क निर्माण मे सलग्न हैं।

(१) उत्पादन

सन् १९६९ के अन्त मे ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग मे लगभग ८५ लाख व्यक्ति काम पर लगे हुए थे जिनमे अधिकाश महिला श्रमिक थी। सूत का उत्पादन ८०० मिलियन पौन्ड का था जिसमे सूती एव मिश्रित सूत दोनो सम्मिलित थे। वस्त्रो के उत्पादन की मात्रा केवल १,३०० मिलियन गज थी—जिसका ६२ प्रतिशत विशुद्ध सूती वस्त्रो का एव शेष ३८ प्रतिशत मिश्रित वस्त्रो का था। पिछले दशक में उत्पादन मे लगभग ३५ प्रतिशत की कमी हुई है।

(२) निर्यात

निर्यात की दृष्टि से ब्रिटेन की स्थिति पिछले वर्षों मे गिरती रही है। दस वर्ष पूर्व ब्रिटेन ५०० मिलियन गज वस्त्रो का निर्यातक था, किन्तु सन् १९६९ मे ब्रिटिश सूती वस्त्रो का निर्यात ३०० मिलियन गज से भी कुछ कम था।

स्पष्ट है कि ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन निरन्तर गिरा है और उसके साथ-साथ निर्यात की मात्रा मे भी निरन्तर कमी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि अब ब्रिटेन इस उद्योग म प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व की स्थिति कदाचित भविष्य मे कभी प्राप्त नही कर सकेगा। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व भी उसकी स्थिति विश्व के तीन बडे उत्पादको एव निर्यातको मे थी। इस निरन्तर गिरती हुई दशा का मुख्य कारण अन्य देशो मे सूती वस्त्र उद्योग का विकास है। इन देशो मे अमरीका, जापान, भारत के नाम विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं। पश्चिमी यूरोप एव मध्य-पूर्व के अनेक देशो ने भी अपने सूती वस्त्र उद्योग का विकास कर लिया है और इस प्रकार अब वहाँ ब्रिटेन के वस्त्रो की माँग कम हो गयी है। फिर भी ब्रिटेन उत्तम तकनीक एव अन्वेषण के आधार पर उच्चकोटि के कपडे का उत्पादन एव निर्यात करके अपनी स्थिति को आगे गिरने से रोकने का प्रयास कर रहा है।

प्रश्न

1. What led to the development of cotton industry in England specially at Lancashire when England was neither a producer non consumer of cotton

   इगलैण्ड के लकाशायर मे सूती वस्त्र उद्योग का विकास किन कारणो से हुआ विशेषत ऐसी दशा मे जबकि इगलैण्ड कपास का न तो उत्पादक था और न ही उपभोक्ता। (राजस्थान, १९५३)

2 Give an account of the invention that revolutionized the cotton industry in England

उन आविष्कारो का उल्लेख कीजिए जिन्होने इगलैण्ड के सूती वस्त्र उद्योग मे क्रान्ति उत्पन्न की। (राजस्थान, १९६१)

3 Discuss the present position and future prospects of the cotton textile industries of England

इगलैण्ड के सूती वस्त्र उद्योग की वर्तमान स्थिति एव भावी सम्भावनाओ पर प्रकाश डालिए। (राजस्थान, १९६३)

4 Outline the growth of the textile industry in Great Britain since 1931 analysing the present day problems and lines of reform

सन् १९३१ से ग्रेट ब्रिटेन मे सूती वस्त्र उद्योग के विकास की रूपरेखा दीजिए तथा उसकी वर्तमान समस्याओ तथा सुधार की सम्भावनाओ पर प्रकाश डालिए। (B H, U १९५२, पजाब, १९६६)

5 State the growth, present position and main problems of the cotton textile industry in England

इगलैण्ड के सूती वस्त्र उद्योग के विकास, वर्तमान दशा एव प्रमुख समस्याओ का उल्लेख कीजिए। (राजस्थान, १९६५)

१०
कोयला उद्योग
(Coal Industry)

यह सर्वविदित है कि कोयला और लोहा औद्योगिक क्रान्ति के दो चक्र रहे हैं। कोयले का महत्त्व इस बात से आँका जा सकता है कि धातु सम्बन्धी उद्योगों तथा अन्य उद्योगों में इसका कितना उपयोग होता है। यातायात के साधनों को क्रियाशील बनाने में भी कोयला जीवनदायनी शक्ति सिद्ध हुआ है। औद्योगिक क्रान्ति के अन्तर्गत जो एक मूलभूत परिवर्तन हुआ है वह हाथ के काम के स्थान पर मशीन द्वारा उत्पादन था। मशीन शक्ति से चलायी जाती थी और प्रारम्भ में यह बहते हुए पानी से चलती थी। कालान्तर में शक्ति के साधन के रूप में वाष्प की उत्तमता ज्ञात हुई और इसके प्रयोग से इन्जिनों और मशीनों के निर्माण के लिए लोहे की माँग हुई। इनको चलाने के लिए कोयले की आवश्यकता हुई। रोम के समय में भी कोयला खानों से खोदा या निकाला जाता था। सम्भवतः सैक्सन और नार्मन काल में बहुत कम खानें खोदी गयीं, परन्तु तेरहवीं शताब्दी में टाईन क्षेत्र में उद्योग की उन्नति हुई। वहाँ का कोयला जहाजों से इंगलैण्ड भेजा जाता था जहाँ पर वह मुख्यतः घरेलू कार्यों के लिए काम आता था। चौदहवीं शताब्दी तक नौर्दम्बरलैण्ड, डरहम, यॉर्कशायर, लकाशायर, स्टैफोर्डशायर और दक्षिणी वेल्स में कोयले का प्रयोग होने लगा। बाद में कोयले का निर्यात यूरोप के अन्य देशों को भी किया जाने लगा। ग्रेट-ब्रिटेन में कोयले और लोहे की प्रचुरता थी। यह प्रचुरता ब्रिटिश औद्योगिक प्रभुता का मुख्य कारण बनी।

१६वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ होने पर कोयले का अधिक महत्त्व अनुभव किया गया था। उन्नीसवीं शताब्दी में रेलें और भाप से चलने वाले जहाज कोयले के बिना कार्य नहीं कर सकते थे। बहुत दिनों तक यह कच्चे लोहे को गलाने के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता था, क्योंकि कोयले की गन्धक लोहे से मिलकर उसको Fragile बना देती थी किन्तु जैसा कि आगे के वर्णन से स्पष्ट हो

जायगा कि जब डर्बी ने कोयले को गलाने की भट्टिया मे काम लेने से पूर्व कोक के रूप मे बदल दिया तो समस्या हल हो गयी ।

प्रारम्भिक आविष्कारक

वाष्प-एँजिन न औद्योगिक क्रान्ति का मार्ग बहुत कुछ निर्धारित किया है। इस प्रकार के एँजिन बनाने के प्रयास किये जा रहे थे। इस प्रकार के प्रयत्नशील व्यक्तियो म मारक्विस आव वरसेस्टर (Marquis of Worcester 1663) सर्वप्रथम थे, जिन्होंने सबसे पहले वाष्प एँजिन का आविष्कार किया लेकिन वह अधिक उपयोगी सिद्ध नही हुआ। पेपिन (Papin) ने 'डाइजेस्टर' (Digester) नामक इजन का आविष्कार किया लेकिन उसकी भी व्यावहारिक महत्ता नगण्य थी। उसने यह प्रयोग १६६० म किया।

सेवरी (Savery 1698)—सेवरी प्रथम व्यक्ति था जिसने व्यावहारिक कार्य कलापो के लिए एँजिन का उपयोग किया। सेवरी ने **पेपिन** के वेक्यूम सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए उसे और आगे बढाया। उसने अपने एँजिन का उपयोग खानो से पानी बाहर निकालने म किया।

न्यूकोमन (Newcomen)—एँजिन के आविष्कार के इतिहास मे न्यूकोमन का नाम भी मुख्य है। इसने सिलेण्डर और बॉयलर को अलग-अलग बनाया।

वाट (James Watt 1738 1815)—जेम्स वाट का जन्म ग्रीननोक नामक स्थान पर १७३६ म हुआ था। उसने तकनीकी ज्ञान क क्षेत्र म अपने स्टीम-एन्जिन से जो अद्भुत चमत्कार प्रस्तुत किया वह औद्योगिक क्रान्ति की उपलब्धियो मे महत्वपूर्ण है। उसके आविष्कार का गिल्डवादियो ने विरोध किया लेकिन ग्लासगो विश्वविद्यालय ने उसे इस क्षेत्र म प्रयोग की सुविधा प्रदान कर सहायता दी। उसे अन्त म ऐसा अवसर भी प्राप्त हुआ कि जिसमे वह न्यूकोमन के एन्जिन की मरम्मत और सुधार का काम कर सका। उसने कुछ सामान्य सिद्धान्त निकाले और उनका न्यूकोमन एन्जिन पर प्रयोग किया। उसने कुछ सुझाव सुधार क लिए दिय और अपना प्रयोगात्मक एँजिन १७६३ से १७६६ के बीच बनाकर तैयार कर दिया। कुछ निश्चित सिद्धान्त सभी प्रकार के स्टीम एन्जिनो पर लागू किय गये जिससे उनकी कार्यक्षमता बढ सके। वह अपने प्रयाग म तो सफल हो गया, लेकिन उसने व्यावसायिक सफलता प्राप्त करने के लिए **मैसर्स मैथ्यू बोल्टन** से साझेदारी स्थापित की।

ट्रीवीथिक (Trevithick)—श्री ट्रीवीथिक ने १८०० मे **नोन-कन्डेंसिंग हाई-प्रेशर एन्जिन** का आविष्कार किया।

जॉन रोबक (John Roebuck) तथा **मैथ्यू बोल्टन** (Mathew Boulton)—जेम्स वाट ने स्टीम एँजिन का प्रयोग तो सफलतापूर्वक कर लिया लेकिन व्यावसायिक और व्यावहारिक सफलता के लिए उसे केरन के **जॉन रोबक** और सोहो बर्मिघम के **मैथ्यू बोल्टन** की सहायता लेनी पडी। यह रोबक की वित्तीय सहायता का फल

था कि वाट अपना प्रथम स्टीम ऐंजिन एडनवर्ग के पास स्थापित कर सका, लेकिन वह इतने दोषपूर्ण ढग से कार्य करता रहा कि उसे योजना का परित्याग करना पडा। सन् १७७३ मे रोवक दिवालिया हो गया और जेम्स वाट ने मैथ्यू बोल्टन के साथ साझेदारी की। यह साझेदारी इस रूप मे महत्वपूर्ण है कि न सिर्फ मैथ्यू बोल्टन के पास पर्याप्त वित्तीय साधन थे वरन् उसके पास तत्कालीन तकनीकी ज्ञान की सुविधा और साधन भी उपलब्ध थे। प्रथम स्टीम ऐंजिन जो सोहो मे बनाया गया उसके द्वारा ब्लूमफील्ड कोयला खान का पानी निकाला गया तथा पानी निकालने के अतिरिक्त एक ऐंजिन और बनाया गया जिससे विल्किन्सन की धमनभट्टियाँ प्रज्वलित करने का काम लिया गया। सन् १७७७ मे मैथ्यू फर्म ने ऐंजिन बनाने का काम आरम्भ किया जो कोरनिश टीन खानो का पानी निकाल सके। इस कार्य मे प्रारम्भ मे कठिनाइयाँ अनुभव हुई लेकिन मैथ्यू बोल्टन और वाट को भाग्य से ऐसा फोरमेन (विलियम मरडोर) प्राप्त था जिसने १७६४ मे लोकोमोटिव स्टीम ऐंजिन बनाया तथा १७८८ मे कोयला गैस से सोहो वर्क्स को रोशन कर दिया। मरडोर के सुझाव पर ही वाट ने रोटरी मोशन एन्जिन का पटेन्ट प्राप्त किया, जिस पर वाट की सारी प्रसिद्धि निर्भर है।

कोयले ने इगलैण्ड को वह शक्ति प्रदान की जिसके सहारे यन्त्रो को गति मिली, यातायात के नये साधन निकले जिनके द्वारा भारी से भारी सामान को भी कम समय और कम व्यय मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाने लगा। उत्पादन कुशलता बढ गयी और बडे पैमाने पर कम लागत से उत्पादन करना सम्भव हो गया तथा इगलैंड की जनता को जीवन की अन्य सुविधाएँ उपलब्ध हुई। इतना ही नही इगलैंड के कोयले ने दुनिया के कई अन्य देशो के पनपते हुए उद्योगो की भी सहायता की और इगलैंड ने कोयले के निर्यात से बडा धन कमाया तथा विश्व बाजार को कई वर्षों तक प्रभावित किया।

कोयला उद्योग का ऐतिहासिक सिंहावलोकन

कोयले का उत्पादन ब्रिटेन लगभग ७०० वर्षों से करता आ रहा है और लगभग ३०० वर्षों से तो वह एक सगठित उद्योग के रूप मे अस्तित्व मे है जो कि अन्य यूरोपीय देशो के कोयला उद्योग से २०० वर्ष पुराना है।

१६वी शताब्दी मे कोयले का घरेलू कार्यों के लिए उपयोग होता था और जहाँ आवश्यक समझा जाता था वहाँ प्राकृतिक शक्ति साधन के रूप मे उपयोग किया जाता था। कोयले का उत्पादन सीमित था और प्रधान कठिनाई यह थी कि परतो से पानी बाहर निकालने का उपाय न होने से गहरी खुदाई सम्भव नही थी। यह ठीक है कि सेवरे (Savery) के अग्नि-ऐंजिन और न्यूकोमन (Newcomen) के ऐंजिन से पानी बाहर निकालने की समस्या हल हो गयी थी, फिर भी उत्पादन मे कोई विशेष वृद्धि नही हुई। सन् १७५० मे कोयला का अनुमानित उत्पादन ५०,००,००० टन था।

कोयला उद्योग के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ

(१) सन् १७०९ में सर्वप्रथम अब्राहम डरबी ने कोयले का प्रयोग कोक के रूप में किया था।

(२) जेम्स वाट ने वाष्प-चालित ऐंजिन का आविष्कार किया और उसकी सहायता से खान से कोयला निकालना सरल हो गया। जेम्स वाट द्वारा एक और नये प्रकार के ऐंजिन का आविष्कार हुआ जिससे खानों से पानी निकालने में सुविधा हो गयी।

(३) सन् १७६० के बाद नहरों का निर्माण होने से सस्ता और शीघ्र यातायात उपलब्ध हुआ।

(४) उद्योगों में वाष्प-चालित ऐंजिन का प्रयोग होने से कोयले की माँग में वृद्धि हुई।

(५) सन् १८६० के पश्चात् विश्व के अन्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति होने से कोयले की माँग विदेशों से भी बढ़ी।

(६) हेम्फ्री डेविस नामक व्यक्ति ने सुरक्षात्मक लैम्प (Davy's Safety Lamp) का आविष्कार किया जिससे कोयले की खानों में आग लगने का भय जाता रहा।

(७) सन् १८३६ में समुद्री तार के आविष्कार के कारण कोयले को खान से बाहर खींच कर लाने में सुविधा हो गयी।

(८) सन् १८३७ में एगजास्ट पंखे (exhaust fan) के आविष्कार के बाद खानों की गहरी खुदाई सरल हो गयी।

(९) शेफ्ट्स के बन जाने से रोशनी की समस्या हल हो गयी।

(१०) पीलर और स्टाल पद्धति द्वारा खुदाई के समय खानों की छतें गिरने का भय दूर किया गया। कुछ समय पश्चात् लॉगवाल पद्धति का भी प्रयोग किया गया।

(११) रेलवे, कोयला काटने के यन्त्र, बिजली तथा लिफ्ट आदि के कारण कोयले के उद्योग में बहुत उन्नति हुई और पर्याप्त गहराई तक खानें खोदी जाने लगी।

उपर्युक्त परिस्थितियों ने कोयले उद्योग के विकास में बड़ा सहयोग दिया। इसके कारण कोयले के उत्पादन और निर्यात में इस प्रकार से वृद्धि हुई

वर्ष	उत्पादन (लाख टन)	निर्यात (लाख टन)
१८००	१००	—
१८६०	८००	१००
१९००	२,२५०	५००
१९१३	२,८७०	९८०

सन् १८५० में कोयला उद्योग में केवल दो लाख व्यक्ति कार्यशील थे जिनकी सख्या सन् १९१३ में बढकर ग्यारह लाख से कुछ अधिक हो गयी।

१९वीं शताब्दी में कोयला उद्योग की विशेष उन्नति हुई। इस शताब्दी में इगलैंड ने प्रचुर मात्रा में कोयले का निर्यात किया। कोयले के मूल्य के अतिरिक्त निर्यात से जहाजी किराये के रूप में भी इंगलैंड को लाभ हुआ। माँग में अधिक वृद्धि होने के कारण कोयले का उत्पादन भी बडी तेजी से बढने लगा। सन् १८०० में कोयले का उत्पादन १०० लाख टन था, यह बढकर १९१३ में २,८७० लाख टन हो गया। माँग की वृद्धि के साथ-साथ गहरी खानों की खुदाई भी होने लगी। इससे कोयला-उत्पादन व्यय में वृद्धि हुई। यह समस्या इस रूप में अधिक विषम तब हुई जबकि सन् १९०२ में कोयला-खान अधिनियम के अन्तर्गत कार्य के घण्टे निश्चित किये गये जिससे प्रति श्रमिक उत्पादन कम हो गया। अत यद्यपि उद्योग उन्नति अवश्य करता गया परन्तु उपर्युक्त परिस्थितियों से प्रभावित होने के कारण उद्योग का भविष्य जितना उज्ज्वल होना चाहिये था वह नहीं था।

प्रथम महायुद्ध और कोयला उद्योग

प्रथम महायुद्ध के समय यह उद्योग सरकारी नियन्त्रण के अन्तर्गत चला गया। प्रथम महायुद्ध में कोयला उद्योग को श्रमिक सकटों का सामना करना पडा। श्रमिकों के अभाव के कारण उत्पादन में कमी आ गयी तथा गहरी खानों की खुदाई बिलकुल बन्द हो गयी। उत्पादन की कमी के कारण निर्यात में भी कमी हो गयी। युद्धोपरान्त काल (१९२३) में कोयले का उत्पादन २,०६० लाख टन आँका गया किन्तु देश का निर्यात इस समय अमरीका और जर्मनी से प्रभावित हुआ। १९२७ में सयुक्त राज्य अमरीका में कोयला-खनिकों की हडताल हुई तथा इसी प्रकार १९२३ में रूर-घाटी पर अधिकार हो जाने से इगलैंड सयुक्त राज्य अमरीका और जर्मनी को कोयले का निर्यात कर सका। सन् १९२६ की इगलैंड की आम हडताल के समय उद्योग के एकीकरण का प्रश्न विचाराधीन था। १९२६ में नियुक्त सैम्यूअल आयोग की राय थी कि यह उद्योग सयोगीकरण द्वारा पर्याप्त मितव्ययिता प्राप्त कर सकता है। १९२३-२४ से कोयला उद्योग की स्थिति बिगडती चली गयी थी।

युद्धोत्तर काल में अवनति के कारण

(१) कोयले के स्थान पर विद्युत शक्ति का प्रयोग किया जाने लगा।

(२) इगलैण्ड का कोयला यूरोप तथा अमरीका की अपक्षा अधिक महँगा पडता था, क्योंकि वहाँ के श्रमिक कम कुशल थे और उनकी मजदूरी भी ऊँची थी तथा वहाँ यह उद्योग अच्छी तरह सगठित भी नहीं था।

(३) यूरोप तथा अमरीका में कोयला उद्योग के विकसित हो जाने से इगलैण्ड के कोयले की माँग कम हो गयी।

(४) इटली, भारत और जर्मनी मे जल-शक्ति का विकास होने से कोयले की मांग बहुत कम हो गयी।

(५) शक्ति के अन्य साधनो का आविष्कार हो जाने से इंगलैण्ड मे कोयले की मांग कम होने लगी।

(६) बहुत से देशो ने कोयले पर बहुत अधिक आयात-कर लगा दिया, जिससे इंगलैण्ड के कोयले का विदेशी व्यापार घट गया।

(७) इंगलैण्ड के कोयला खानो के मालिको ने खानो की उन्नति के लिए कोई ठोस कार्य नही किये, जिससे तकनीकी दृष्टिकोण से भी इंगलैंड का यह उद्योग जर्मनी और फ्रास की अपेक्षा कमजोर पडने लगा।

(८) इंगलैण्ड की सरकार ने भी कोयला उद्योग की उन्नति के लिए कोई खास प्रयत्न उस समय तक नही किया।

(९) इंगलैण्ड मे कोयले की खानो मे नये-नये वैज्ञानिक उपायो और प्रणालियो का उपयोग बहुत धीरे-धीरे और बहुत बाद मे हुआ।

इन उपर्युक्त कारणो की पृष्ठभूमि मे सैम्यूअल आयोग के सुझाव और सिफारिशें इस प्रकार हैं

(१) कोयला उद्योग के उत्पादन को नियन्त्रित करने के लिए एक योजना-विभाग की स्थापना की जाय।

(२) प्रत्येक खान की उत्पादन मात्रा निश्चित की जाय।

(३) कोयला खानो की खुदाई मे वैज्ञानिक तरीको का पूरा-पूरा उपयोग किया जाय।

(४) कोयला-खान-उद्योग को संयोगीकरण (Combination) की ओर प्रेरित किया जाय।

(५) उद्योग का संगठन वैज्ञानिक आधार पर किया जाय।

(६) सहायक और पूरक उद्योगो की स्थापना की ओर प्रयत्न किये जायें।

(७) कोयले का श्रेणीकरण और प्रमाणीकरण किया जाय।

आयोग की सिफारिशो को ध्यान मे रखते हुए सरकार द्वारा १९२६ मे खनिज उद्योग अधिनियम स्वीकृत किया गया एव संयोगीकरण और समष्टीकरण की प्रक्रिया की सफलता के लिए स्टाम्प-ड्यूटी की छूट दी गयी परन्तु इस अधिनियम से कोई विशेष लाभ नही हुआ। तत्पश्चात सन् १९३० मे कोयला खान अधिनियम स्वीकृत किया गया। इसी प्रकार कोयला उद्योग के पुनर्गठन के लिए एक विशिष्ट आयोग की स्थापना हुई जिसका कार्य छोटी-छोटी खानो को मिलाकर बडे पैमाने पर उद्योग का सचालन करना था। आयोग की योजना के विरोध से सन् १९३५ मे उसका कार्य स्थगित कर दिया गया। १९३४ मे इंगलैण्ड और पोलैण्ड के बीच निर्यात-बाजार और मूल्य के प्रश्न पर समझौता हुआ। उद्योगो मे एकीकरण की भावना जोर पकड रही थी अत सन् १९३७-३८ मे द्वितीय कोयला खान-अधि-

नियम स्वीकृत किया गया। इसमें पूर्व अर्थात सन् १९२३ में ७०% कोयला केवल १४६ कम्पनियों द्वारा निकाला जा रहा था जबकि कुल कम्पनियों की संख्या १,००० थी अतः इस नियम में अनिवार्य रूप से निम्न व्यवस्था थी

(१) कोयला उद्योग का राष्ट्रीयकरण किया जाय।
(२) अनिवार्य रूप से खानों का एकीकरण हो।
(३) कोटा-प्रथा तथा बिक्री योजना का श्रीगणेश हो।
(४) कोयला उद्योग का वैज्ञानिक संगठन हो।

द्वितीय महायुद्ध एवं उद्योग का राष्ट्रीयकरण

द्वितीय महायुद्ध काल में इस उद्योग में विशेष प्रगति न हो सकी। युद्ध की समाप्ति के पश्चात्, इंगलैण्ड की संसद ने सन् १९४६ में पर्याप्त विरोध होने पर भी श्रमिक सरकार के नेतृत्व में कोयला उद्योग राष्ट्रीयकरण अधिनियम स्वीकार कर दिया। इस अधिनियम के अन्तर्गत कोयला उद्योग की व्यवस्था सार्वजनिक निगम (Public Corporation) के द्वारा सचालित होती है। अधिनियम के अधीन "राष्ट्रीय कोयला मण्डल" (National Coal Board) की स्थापना की गयी। युद्ध-काल में कोयले का निर्यात अस्तव्यस्त हो गया था। सन् १९५२ में पुन निर्यात ने जोर पकड़ा और उस वर्ष ११७ लाख टन कोयला निर्यात किया गया। उस वर्ष कोयले का कुल उत्पादन २,२३८ लाख टन था और उद्योग में नियोजित श्रमिकों की संख्या ७,१६,६०० थी। सन् १९५० में राष्ट्रीय कोयला मण्डल ने अपनी दीर्घकालीन योजना प्रस्तुत की। इस योजना के अनुसार ६,३५० लाख पौण्ड पूँजी की उपलब्धि दस वर्षों (१९५०-६०) में होनी थी जिससे कोयले का उत्पादन १९६५ तक २,८०० लाख टन तक पहुँच जाय। यह एक महत्त्वाकांक्षी योजना थी जिसे १९५६ में पुन संशोधित किया गया।

राष्ट्रीयकरण से इस उद्योग में निम्नलिखित सुधार किये गये हैं

(१) उद्योग की पूँजी बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है।
(२) उद्योग में विवेकीकरण (Rationalisation) अपनाया गया है।
(३) श्रमिक वर्ग के साथ उत्तम सम्बन्ध स्थापित किये गये। इसके लिए राष्ट्रीय कोयला बोर्ड ने निम्नलिखित उपाय किये हैं

(अ) पारिश्रमिक या मजदूरी में वृद्धि,
(आ) सप्ताह में ५ दिन काम करने का नियम, और
(इ) पेंशन की योजना का समारम्भ।

राष्ट्रीय कोयला मण्डल
(National Coal Board)

कोयला उद्योग राष्ट्रीयकरण अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीय कोयला मण्डल की स्थापना की गयी और इसने १ जनवरी सन् १९४७ से देश की समस्त कोयले

की खानें अपने अधिकार मे ले लीं। कोयला कम्पनियो को प्राप्त समस्त अधिकारों तथा उनके कोयले में सम्बन्धित समस्त कार्यकलापो को राष्ट्रीय कोयला मण्डल को हस्तान्तरित कर दिया गया। कोयला कम्पनियो को क्षति पूर्ति (compensation) दी गयी और इगलैण्ड का समस्त कोयला उद्योग मण्डल द्वारा सचालित किया जाने लगा। अब देश का लगभग समस्त कोयले का उत्पादन बोर्ड के अन्तर्गत होता है जो इसकी लगभग ५७६ खानो से प्राप्त किया जाता है। इनके अतिरिक्त लगभग ५०० छोटी खानें निजी व्यक्तियो के हाथ मे हैं जिन्हे कोयला बोर्ड से लाइसेन्स प्राप्त हैं किन्तु इनका उत्पादन ब्रिटेन के कुल कोयला उत्पादन का एक प्रतिशत भी नही है। इस प्रकार ब्रिटेन म कोयला उत्पादन इस बोर्ड का एकाधिकार है, किन्तु कोयले का वितरण निजी क्षेत्र के अन्तर्गत होता है। कोयला बोर्ड कोक (coke) एव अन्य उप पदार्थों (by-products) का उत्पादन भी करता है। बोर्ड के सदस्यो की नियुक्ति ब्रिटेन के ईंधन मन्त्री द्वारा की जाती है और इसमें अध्यक्ष के अतिरिक्त कम से कम आठ एव अधिक से अधिक ग्यारह सदस्य होते हैं।

खानो की देखरेख के लिए मैनेजर नियुक्त किये जाते हैं। प्रशासन की दृष्टि से कोयला बोड आठ क्षेत्रों म विभाजित है और उनके लगभग ४० उपविभाग हैं। प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक क्षेत्रीय मण्डल है जो उस क्षेत्र के प्रशासन का नियन्त्रण करता है।

कोयला बोर्ड द्वारा पूंजी का विनियोग

राष्ट्रीय कोयला बोर्ड ने सन् १९४७ से सन् १९६५ तक उद्योग मे लगभग १,२५० मिलियन पौण्ड की पूंजी का विनियोग किया। बोर्ड को ७५ मिलियन पौण्ड तक का ऋण लेने का अधिकार प्राप्त है और २०० मिलियन पौण्ड के अल्पकालीन ऋण भी यह ले सकता है। सन् १९६५ मे कोयला बोर्ड को ९६० मिलियन पौण्ड सरकार को देने थे।

राष्ट्रीय कोयला बोर्ड (National Coal Board) के निम्नलिखित प्रमुख कार्य हैं

(१) कोयले की उपलब्धि के लिए प्रयत्न करना।

(२) कोयला उद्योग का उत्तम विकास करना।

(३) जनता के हित को ध्यान मे रखते हुए उचित मूल्य निर्धारित करना और विविध प्रकार के उपयोगो म आने वाले कोयले के उचित वितरण एव उपलब्धि की व्यवस्था करना।

(४) श्रमिकों के स्वास्थ्य और उनकी सुरक्षा का ध्यान रखना।

सन् १९४६ के अधिनियम के अन्तर्गत दो कोयला उपभोक्ता परिषद स्थापित की गयी हैं

(1) औद्योगिक कोयला उपभोक्ता परिषद् (Industrial Coal Consumers Council),

(ii) घरेलू कोयला उपभोक्ता परिषद् (Domestic Coal Consumers Council)।

इन परिषदों का यह कर्तव्य है कि सम्बन्धित मन्त्री को कोयले की बिक्री और पूर्ति की स्थिति की जानकारी समय-समय पर देती रहें।

बोर्ड के कार्यक्रम के प्रारम्भिक वर्ष सन् १९४७ में २३३ लाख पौण्ड का घाटा था तब से लगातार घाटे और बचत की अव्यवस्था चल रही है। सन् १९६१ में कुल घाटा ९३० लाख पौण्ड का था।

उत्पादन और जन-शक्ति

ऐसा अनुमान लगाया गया है कि जिस गति से कोयला उपयोग में आ रहा है उससे ४००-५०० वर्ष तक कोयले के भण्डार उपलब्ध होते रहेंगे किन्तु सम्भव है कुछ उत्तम कोयला उससे पूर्व ही समाप्त हो जाए।

इगलैण्ड के प्रभावशाली कोयला क्षेत्र ये हैं :

(१) यार्कशायर, डर्बीशायर, नोटिंघमशायर जो कि कुल उत्पादन का ४५ प्रतिशत भाग उत्पन्न करते हैं।

(२) डरहम, नोर्थम्बरलैण्ड।

(३) साउथ-वेल्स क्षेत्र।

(४) स्कॉटिश क्षेत्र। इनके अतिरिक्त लकाशायर और वेस्ट मिडलैण्ड (स्टैफर्डशायर तथा वारविकशायर) का नाम भी प्रसिद्ध कोयला क्षेत्रों में लिया जा सकता है।

राष्ट्रीयकरण के प्रारम्भिक वर्षों में कोयले के उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई। युद्ध से पूर्व कोयले का उत्पादन केवल १,८७० लाख टन था जो कि युद्ध के बाद सन् १९४७ में कुछ बढ़कर १,९९६ लाख टन हो गया। उसके बाद कोयले के उत्पादन की स्थिति इस प्रकार रही :

राष्ट्रीयकरण के बाद से कोयला उद्योग की प्रगति

कोयला	इकाई	१९४७	१९५७	१९६७
१ कुल उत्पादन	लाख टन	१,९९६	२,१७८	१,७२१
२ निर्यात	लाख टन	५३	८२	७१
३ मशीनों द्वारा लदान	प्रतिशत	५	२२	८८
४ श्रम शक्ति	लाख व्यक्ति	६८	६६	४०

[*Source*—National Coal Boards]

इस प्रकार सन् १९४७ से १९५७ तक हम देखते हैं कि राष्ट्रीयकरण से कोयले के उत्पादन में सन्तोषजनक प्रगति हुई किन्तु उसके बाद उत्पादन गिरा है जिसका कारण बिजली एवं डीजल शक्ति के अधिक उपयोग के कारण कोयले की माँग में कमी होना है। निर्यात में कमी बाहरी प्रतियोगिता के कारण हुई है। ब्रिटेन

-से हालैण्ड, फ्रांस, डेनमार्क, नार्वे, बेल्जियम, आयरिश गणराज्य एवं पश्चिमी जर्मनी को कोयले का निर्यात किया जाता है। इसी प्रकार राष्ट्रीयकरण के प्रथम दस वर्षों में उद्योग में लगे हुए श्रमिकों की संख्या में कुछ वृद्धि हुई किन्तु उसके बाद मशीनीकरण में वृद्धि के कारण इसमें कमी हुई। सन १९६९ में केवल ३.५ लाख व्यक्ति उद्योग में संलग्न थे तथा राष्ट्रीय कोयला मण्डल के अनुमान के आधार पर सन् १९७१ तक श्रमिकों की संख्या केवल २.८ लाख रह जायगी, क्योंकि मशीनीकरण बढ़ेगा।

ब्रिटेन में कोयले के आन्तरिक उपभोग का लगभग ३३ प्रतिशत बिजली उद्योग में काम में लाया जाता है तथा २५ प्रतिशत औद्योगिक एवं घरेलू उपयोग में व्यय होता है। शेष का उपयोग कोक (coke) तथा गैस उद्योगों में किया जाता है। ईंधन के अन्य साधनों का उपयोग ब्रिटेन में यद्यपि बढ़ रहा है, फिर भी शक्ति के रूप में कोयला ब्रिटेन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आज भी ब्रिटेन में काम आने वाली शक्ति का दो तिहाई भाग कोयला पूरा करता है।

विकास और गवेषणा

कोयला प्रमण्डल ने १९५० में एक पन्द्रहवर्षीय योजना स्वीकार की जिसे सन् १९५६ में संशोधित किया गया तथा तीन वर्ष पश्चात् अक्तूबर सन् १९५९ में पुनः संशोधित किया गया। इस अन्तिम संशोधित योजना अनुमान में सन् १९६०-६५ के काल में ५,११० लाख पौण्ड का विकास व्यय अनुमान किया गया इसके अनुसार यह अनुमान था कि सन् १९६६ तक कुल उत्पादन का लगभग ७५ प्रतिशत नयी खानों से अथवा पुनर्संगठित खानों से प्राप्त होगा। ये खानें आकार में अत्यन्त बड़ी हैं और इनमें से कुछ की उत्पादन-क्षमता ६,००० टन से ८,००० टन प्रतिदिन तक की है। खुदाई, लदाई, सफाई एवं ढुलाई आदि में नवीन प्रयोग किये जा रहे हैं तथा उत्तरोत्तर मशीनीकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है। पूर्वी मिडलैण्ड में बीवर कोट्स कोयला खान (Bever Cotes Colliery) जिसमें सन् १९६७ में उत्पादन आरम्भ किया गया, विश्व की सर्वप्रथम खान है जो कि पूर्णत मशीनीकृत एवं स्वचालित है। इसमें कोयले की खुदाई से लेकर उसे ऊपर धरातल तक लाने का समस्त कार्य मशीनों से किया जाता है।

सन १९४८ में राष्ट्रीय कोयला बोर्ड द्वारा एक केन्द्रीय गवेषण संस्था स्थापित की गयी जिसका मुख्य कार्यालय स्टोक और चार्ड में है। इसके अलावा कई कोयला गवेषण संस्थाओं को राष्ट्रीय कोयला बोर्ड द्वारा सहायता दी जाती है। सन् १९५९ में राष्ट्रीय कोयला बोर्ड की घोषणा के अनुसार एक नया विभाग स्थापित किया गया जिसका प्राथमिक उद्देश्य नवीन पद्धति से धुंआरहित ब्रिकेट्स (Briquettes) तैयार करना है। कोयले को गैस, रसायनों, तेल इत्यादि में परिवर्तित करने की दिशा में -भी अध्ययन किया जा रहा है।

कोयला प्रमण्डल कई अन्य स्वायत्त, गवेषणा संस्थाओं को सहायता भी देता है। इसके अतिरिक्त कई समितियों के कार्य—खदान गवेषणा प्रतिष्ठान, शक्ति सन्थान—भी प्रमण्डल की समस्याओं के अन्तर्गत हैं। सन् १९४७ में प्रमण्डल ने कोयला उद्योग के राष्ट्रीयकरण के साथ साथ कोयला सर्वेक्षण, *कोयला सर्वेक्षण की राष्ट्रीय संस्था तथा ७० प्रयोगशालाएँ भी अधिकार में ली जिनका अब तक पर्याप्त विस्तार और अभिनवीकरण किया जा चुका है।*

उद्योग की समस्याएँ

कोयला उद्योग की दो प्रमुख समस्याएँ हैं—प्रथम उत्पादन की एवं द्वितीय *श्रमिक-वर्ग की पूर्ति की। उत्पादन के क्षेत्र में कोयला के क्षेत्रों की गहराई को ध्यान* में रखते हुए अधिक से अधिक वैज्ञानिक साधनों का सस्ते रूप में प्रयोग किया जा रहा है। उद्योग की दसवर्षीय योजना इस बात की परिचायक है। श्रमिक-वर्ग की समस्या के बारे में यह कहा जा सकता है कि कारखाना अधिनियमों का पालन विगत १०-१२ वर्षों में प्रभावशाली ढंग से किया जा रहा है। इसके लिए काम के घण्टे, हवा, रोशनी और पानी का प्रबन्ध, चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ, सामाजिक बीमा का प्रचलन, पेन्शन का चलन, मुआवजा प्रणाली का चलन, सक्रिय कदम उठाये गये हैं।

राष्ट्रीयकरण के पश्चात् ब्रिटेन में कोयला उद्योग का पुनर्संगठन किया गया है और आधुनिकीकरण एवं नवीनीकरण के उद्देश्य से भारी पूँजी का विनियोग किया गया है। जुलाई सन् १९६५ में ब्रिटिश सरकार द्वारा राष्ट्रीय कोयला बोर्ड के *पूँजी ढाँचे के अध्ययन की घोषणा की क्योंकि सरकार के विचार से यह बोर्ड अति पूँजीकृत था।* बोर्ड के ब्याज सम्बन्धी दायित्वों को कम करने के लिए सन् १९६५ *में सरकार द्वारा बोर्ड को दिये गये ऋणों के कुछ भाग को अपलिखित (write off)* करने की व्यवस्था की गयी। फलस्वरूप ४१५ मिलियन पौण्ड का ऋण अपलिखित किये गये और इस प्रकार मार्च सन् १९६८ में कोयला बोर्ड पर ६६५ मिलियन पौण्ड का ऋण रह गया। पूँजी ढाँचे के पुनर्संगठन के बाद अब कुल व्यय ब्याज चुकाने के बाद कोयला मण्डल कुछ लाभ अर्जित करने लगा है।

प्रश्न

1. The economic history of England can well be interpreted as the story of her coal mines
   इंगलैण्ड के आर्थिक विकास के इतिहास की व्याख्या वस्तुतः उसके कोयला उद्योग की कहानी है। (राजस्थान, १९५९)
2. Discuss the growth, present position and problems of coal industry of Great Britain.
   ग्रेट ब्रिटेन के कोयला उद्योग के विकास और उसकी वर्तमान स्थिति एवं समस्याओं की विवेचना कीजिए। (पंजाब, १९६५)

११
लौह-इस्पात उद्योग
(Iron & Steel Industry)

ब्रिटेन कोयले से लोहा गलाने की क्रिया में अग्रणी रहा है तथा सत्रहवीं शताब्दी से ही यह निरन्तर इस बात का प्रयत्न करता रहा है कि इस्पात उत्पादन का विस्तार शीघ्रता से हो सके। आज लोहा इस्पात उत्पादक देशों में इंगलैण्ड का पंचम स्थान है और वह अपने विशिष्ट इस्पात के लिए विख्यात है। क्रुड स्टील का उत्पादन जो सन् १९४६ में केवल १२७ लाख टन था वह सन् १९५७ में २१७ लाख टन तथा सन् १९६६ में २४५ लाख टन हो गया।

ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था में इस्पात का महत्त्व

इस उद्योग का ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ब्रिटेन के बड़े उद्योगों में से एक है और सन् १९६६ में इसके उत्पादनों का मूल्य १,२०० मिलियन पौण्ड से भी अधिक था। यह उद्योग ३,३७,००० व्यक्तियों की जीविका के साधन प्रदान करता है। ब्रिटेन में प्रति वर्ष लगभग १३० मिलियन पौण्ड पूँजी का विनियोग लौह एवं इस्पात उद्योग में किया जाता है जो कि समस्त उद्योगों में किये जाने वाले कुल विनियोग का ११ प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त इन्जीनियरिंग उद्योग के लिए जिनका ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था में आधारभूत महत्त्व है, कच्चे माल की पूर्ति इसी उद्योग के द्वारा की जाती है। तीसरे, निर्यात एवं विदेशी मुद्रा की दृष्टि से भी इस उद्योग का महत्त्व बहुत अधिक है। मूल्य की दृष्टि से ब्रिटेन के कुल निर्यात में लोहा, इस्पात एवं इसके बने हुए माल का अनुपात लगभग ५५ प्रतिशत होता है।

मुख्य उत्पादन क्षेत्रों में दक्षिण वेल्स का प्रमुख स्थान है और यहाँ कुल उत्पादन के २६ प्रतिशत का निर्माण होता है। इसके पश्चात् उत्तरी-पूर्वी इंगलैण्ड (१७ प्रतिशत), लिंकनशायर (११ प्रतिशत), स्काटलैण्ड (९ प्रतिशत) मुख्य क्षेत्र हैं। अन्य क्षेत्रों में यार्कशायर, स्टफोर्डशायर, नोर्थम्पटनशायर एवं उत्तरी-पश्चिमी इंगलैंड का तट उल्लेखनीय हैं। दक्षिणी वेल्स में मुख्यतः चपटे (Flat) माल का निर्माण

होता है जैसे चद्दर एव प्लेटें, जबकि स्काटलैण्ड इस्पात क भारी ढाँचों के लिए प्रसिद्ध है जैसे रल सवारम्म आदि। शेफील्ड म विशेष प्रकार का मिश्रित इस्पात बनाया जाता है और उसम कटलरी आदि के कई कारखाने वहाँ चलते हैं।

कोयला उद्योग की तरह लौह एव इस्पात उद्योग भी औद्योगिक क्रांति का जनक रहा है। इस रूप में इस उद्योग की स्थिति इगलैंड की अर्थ-व्यवस्था म हमेशा महत्त्वपूर्ण रही है। इगलैंड इस रूप म भाग्यशाली रहा कि उसके पास लौह और कोयले के अक्षय भण्डार थ। लौह-इस्पात उद्योग के विकसित होन स ही मशीनो का उपयोग हो सका और यन्त्रो द्वारा चलाये जाने वाल बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हो सके। औद्योगिक क्रान्ति म पूर्व लोहे को लकड़ी क कोयल स गलाया जाता था। १७वीं शताब्दी क बाद स लोगो का ध्यान कोयले क उपयोग की ओर गया। सन् १७०५-१७०६ के समय म अब्राहम डर्बी तथा उसक पुत्र ने कोक की सहायता से लोहा गलाना आरम्भ कर दिया और इस तरह एक नये उद्योग का विकास हुआ। लौह-उद्योग पहले लकडी के जगलों क पास स्थित था, परन्तु अब वह कोयला क स्थानो पर केन्द्रित होन लग गया।

लौह एव इस्पात उद्योग के विकास-क्रम को हम मोट तौर से तीन भागो म विभाजित कर सकत हैं। जो इस प्रकार हैं

(१) प्रारम्भिक विकास काल (१७६०-१९१३),

(२) प्रथम महायुद्ध एव मन्दी का युग (१९१४-१९३९),

(३) द्वितीय महायुद्ध एव युद्धोत्तर काल (१९४०-१९६६)।

प्रारम्भिक विकास काल
(१७६०-१९१३)

लौह-इस्पात की प्रगति की कहानी इगलैंड के औद्योगिक निर्माण की कहानी है। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों म लकडी का अकाल-सा था और लकडी का कोयला प्राप्त नही हो रहा था। अत लौह-उत्पादन मे कमी अनुभव की गयी और इगलैंड को स्वीडन, नार्वे, स्पेन और रूस से लोहा आयात करना पडा।

प्रारम्भिक आविष्कार

(१) डड डडले (Dud Dudley)—लोहे के उत्पादन और प्राप्ति की कठिनाइयों का हल करने की ओर आविष्कारको का ध्यान गया। यह कहा जाता है कि सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे (सन् १६१९) डड डडले (Dud Dudley) नामक व्यक्ति ने लोहा गलाने के लिए कोयले का सबसे पहले प्रयोग किया लेकिन लकड़ी के कोयला जलाने वालों ने इसका विरोध किया और उसके पास वित्तीय साधनो की कमी थी। फिर भी उसे इस कार्य मे सफलता मिली।

(२) बक तथा डैगने (Buck & Dagney)—डडले के प्रयोगो न बक और डैगने नामक व्यक्तियो का ध्यान भी आकर्षित किया तथा उन्होने कोयले क प्रयोग से मिश्रित लोहे से लोहा निकालन का असफल प्रयोग किया।

डडले की मृत्यु के पश्चात् एक जर्मन **बॉरस्टेन** (Bauerstein) ने वेडनेसबरी में १६७७ में भट्टी स्थापित की लेकिन यह प्रयोग भी असफल सिद्ध हुआ।

(३) **कोल ब्रुकडेल का अब्राहम डर्बी** (The Darbys of Coalbrookdale)— अन्तत उपर्युक्त समस्या का हल कोलब्रुकडेल के डर्बी परिवार को सौंपा गया जो कि लोहे का व्यवसाय करते थे। सन् १७०६ मे अब्राहम डर्बी हालैण्ड से लोहे को ढालने की कला लाया। उसने कोयले की सहायता से लोहे को गलाने का कार्य सफलतापूर्वक किया लेकिन वह अपेक्षित दृढता या अभिघमन का लोहा प्राप्त नही कर सका क्योकि कोक से आवश्यक गर्मी नही प्राप्त हो सकती थी। सन् १७३० मे १७४० के मध्य दूसरे डर्बी ने कोक की प्रणाली मे सुधार, लोहे की मजबूती के लिए धमनियाँ और न्यूकोमन एन्जिन का उपयोग और लोहे की घिसावट और निकृष्टता को बचाने के लिए कूने का प्रयोग आदि कार्य सफलतापूर्वक किये। कूटने का यन्त्र **जॉन स्मीटन** (John Smeaton or Carron) ने १७६० मे तैयार किया। डर्बी के आविष्कार से साँचे का लोहा प्रचुर मात्रा मे उत्पन्न किया जाने लगा जिससे रसोई के बर्तन, स्टोव, बायलर इत्यादि बनाने मे सहायता मिलने लगी। सन् १७७० तक साँचे का लोहा नल, रेलवे इत्यादि के निर्माण के लिए भी उपलब्ध होने लगा। अमरीकी-स्वातन्त्र्य के युद्ध के समय साँचे के लोहे से तोपें बनायी गयी और सन् १७७९ मे पहला साँचे के लोहे का पुल कोलब्रुकडेल कम्पनी द्वारा सेवर्न पर बनाया गया।

(४) **हेनरी कोर्ट** (Henry Cort)—साँचे के लोहे से व्याघातित लोहा (wrought iron) या कुट्य लोहा (malleable iron) तैयार करना लौह उद्योग का दूसरा सोपान था। इस कार्य को सफलतापूर्वक सचालित और सम्पादित करने का श्रेय हेनरी कोर्ट को है। हेनरी कोर्ट ने प्रधूनन (puddling) तथा लोडन (rolling) क्रियाओं का विकास सन् १७८४ मे किया। कोर्ट प्रधूनन और बेलनो को काम मे लाने वाला प्रथम व्यक्ति नही था। उससे पूर्व इन दोनो क्रियाओं के असफल प्रयोग **रोबक** (Roebuck), **क्रेनेजेज** (Cranages), **पीटर ओनियन्स** (Peter Onions) ने भी किये थे। उसने इन प्रयोगकर्त्ताओं के विचारो मे केवल सुधार भर किये।

(५) **हेनरी बेसेमर**—सन् १८५५-५६ मे **हेनरी बेसेमर** (Henry Bessemer) ने प्रधूनन क्रिया का प्रयोग किये बिना कुट्य लोहा व इस्पात बनाने की क्रिया निकाली। इस प्रकार से तैयार किये इस्पात मे कार्बन का अनुपात ज्ञात होता था और जिस उद्देश्य के लिए इस धातु की आवश्यकता होती थी उसी प्रकार इसमे परिवर्तन किया जा सकता था। बेसेमर का इस्पात कुट्य लोहे से बहुत ही उत्तम था। कालान्तर मे इसने रेलो की पटरियाँ, गर्डरें, चद्दरें, और दूसरी वस्तुएँ बनाने मे कुट्य लोहे का स्थान ले लिया। इस प्राविधिक विकास का महत्त्वपूर्ण परिणाम इगलैण्ड मे यह हुआ कि लोहे के कारखानो को इस्पात के कारखानो मे बदलने के लिए लाखो की पूँजी बरबाद करनी पड़ी।

(६) गिलक्राइस्ट—इसके पश्चात् फास्फोरस-युक्त लोहा इस्पात बनाने के काम आ सके, इसके प्रयत्न किये गये। स्नेलस (Snelus) ने मूलभूत पदार्थों (Basic Materials) का पुट लगा हुआ 'कन्वर्टर' काम में लाने के प्रयत्न किये परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिली। सिडनी गिलक्राइस्ट थामस (Sidney Gilchrist Thomas) ने अपने चचेरे भाई पर्सी गिलक्राइस्ट (Percy Gilchrist) के सहयोग से यह समस्या हल कर दी। उन्होंने कन्वर्टर में एक अन्य मूलभूत पदार्थ (डोलोमाइट और चिकनी मिट्टी) का पुट लगाया और १८७८ तक वे इस कार्य में सफल हो गये।

(७) सीमेन्स—इस्पात-उत्पादन की दूसरी विधि को सर विलियम सीमेन्स (Sir William Siemens) ने १८७६ में पूर्ण किया। पीरे मारटिन ने इस दिशा में फ्रांस में प्रयोग किये। गिलक्राइस्ट और थामस के आविष्कारों को सीमेन्स-मारटिन विधि और बेसेमर विधि में लगाया गया। खुली भट्टी (Open Hearth) में मूलभूत पदार्थों का पुट दिया गया और इस्पात बनाया गया। खुली भट्टी पद्धति बेसेमर विधि का स्थान लेती जा रही है।

सर विलियम सीमेन्स ने १८७८ में लोहा गलाने के लिए बिजली की भट्टी निकाली थी तब से इस्पात के उत्पादन में इसका उपयोग किया जा रहा है।

उद्योग ने उन्नीसवीं शताब्दी में आशातीत प्रगति की। सन् १८२१ में रेलवे और सन् १८५० के पश्चात् लोह-जहाजों के निर्माण से लोहे की माँग बढ़ गयी। इसका प्रभाव यह हुआ कि उद्योग तीव्र गति से विकास कर सका। सन् १८७० तक इंगलैण्ड विश्व का प्रथम लोह-उत्पादक बन गया जबकि जर्मनी, फ्रांस और संयुक्त राज्य अमरीका का उत्पादन बहुत ही कम था।

१९वीं शताब्दी में लोह-उद्योग में इंगलैण्ड विश्व का शिरोमणि राष्ट्र था। इंगलैण्ड से लोहा और इस्पात फ्रांस, अमरीका और जर्मनी को निर्यात किया जाता था। सन् १९०० के पश्चात् यूरोप के अन्य देशों में भी इस उद्योग का विकास हुआ और फ्रांस ने उत्पादन में प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया। इसके लोहे के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमरीका ने जर्मनी के बाद इंगलैण्ड का स्थान प्राप्त कर लिया।

प्रथम महायुद्ध एवं मन्दी का युग
(१९१४–१९३८)

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही उद्योग की स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् लोह-इस्पात उद्योग को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन कठिनाइयों के कारण निम्नलिखित थे

(१) इंगलैण्ड के इस्पात उद्योग के निकट वे सभी सुविधाएँ प्राप्त नहीं थी जिनका होना उद्योग विकास के लिए आवश्यक होता है।

(२) कोयले का मूल्य अधिक होने से इंगलैण्ड का इस्पात भी अमरीका और जर्मनी की तुलना में महँगा पड़ता था।

(३) इंगलैण्ड को अमरीका और जर्मनी की अपेक्षा प्राकृतिक सुविधाएँ भी कम प्राप्त थी।

(४) इस्पात बनाने के लिए जो आधुनिक यन्त्र चाहिए उनसे इंगलैण्ड का यह उद्योग भलीभाँति सज्जित नही था।

(५) इंगलैण्ड मे लोहा अधिकाश फासफोरस वाला होता था। अत उससे आसानी से इस्पात नही बनाया जा सकता था। उसके विपरीत जर्मनी और सयुक्त राज्य अमरीका मे बिना फासफोरस वाला लोहा प्रचुर माना मे उपलब्ध था।

(६) कारखाने अधिनियम के अन्तर्गत काम करने के घण्टे कम कर दिये गये थे परन्तु मजदूरी मे कटौती नही हुई थी। इंगलैण्ड के श्रमिको की मजदूरी अन्य देशो की तुलना मे अधिक थी अत उत्पादन-व्यय भी बढा हुआ था।

(७) इंगलैण्ड के कारखानो मे इतने बडे पैमाने पर उत्पादन-कार्य नही होता था जितना कि अमरीका और जर्मनी मे। इस कारण बडे पैमाने के लाभो से इंगलैण्ड वंचित रहा।

(८) इंगलैण्ड ने प्रारम्भ म तो वैज्ञानिक आविष्कारो के क्षेत्र मे पहल की परन्तु बाद मे विकास की गति मन्द पड गयी और जर्मनी तथा अमरीका ने उससे भी उत्तम यन्त्रो का आविष्कार किया।

(९) उद्योगपति और सरकार उद्योग के विकास की ओर उदासीन से थे वहाँ दूसरे देशो म राज्य की ओर से सहायता प्राप्त हो रही थी।

प्रथम विश्व-युद्ध के समय यह उद्योग अपनी स्थिति आशिक रूप से सँभाल सका क्योकि युद्ध के फलस्वरूप लोहे की माँग मे वृद्धि हुई। परन्तु यह अस्थायी वृद्धि का काल था। युद्धोपरान्त इंगलैण्ड को पुन बाजार के सकट का अनुभव हुआ। अन्य देशो मे भी यह उद्योग विकसित होता जा रहा था। १९२७ मे फ्रास, जर्मनी, बेल्जियम और लुक्सेमबर्ग ने मिलकर एक अन्तरराष्ट्रीय स्टील कार्टेल (International Steel Cartel) का निर्माण किया। इस कार्टेल का मुख्य उद्देश्य उत्पादको की प्रतियोगिता से रक्षा करना था इंगलैण्ड को कार्टेल से भारी क्षति उठानी पडी और विवश होकर उसे मुक्त-व्यापार नीति को त्यागना पडा और सन् १९३२ ई० म लोहे पर आयात सरक्षण-कर (Protective-duty) लगाना पडा।

इस समय इस उद्योग म कोयला उद्योग की तरह एकीकरण और सयुक्तीकरण की योजनाएँ प्रभावशाली ढग से अपनायी जाने लगी। एकीकरण प्रणाली के अन्तर्गत छोटी छोटी कम्पनियो को मिलाकर लगभग १२ बडे निगम स्थापित किये गये। इन निगमो की स्थापना के साथ उद्योग के आधुनिकीकरण और विवेकीकरण की ओर भी ध्यान दिया गया। सन् १९३४ ई० में दि ब्रिटिश आयरन तथा स्टील फेडरेशन (The British Iron & Steel Federation) नामक एक केन्द्रीय सस्था की स्थापना की गयी जिसका मुख्य उद्देश्य लोह-उद्योग की रक्षा, उसका पुनर्गठन करना तथा लोहे के मूल्य को निश्चित करना था। इतना सब कुछ होने पर भी

लोह-उद्योग प्रगति नही कर सका और १६३५ ई० मे इगलैंड को यूरोपियन स्टोल कार्टेल से समझौता करना पडा जिससे आपसी प्रतिस्पर्द्धा को आंशिक रूप से सुनियोजित और नियन्त्रित किया जा सके। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध मे पहले उद्योग ने स्थायित्व प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

द्वितीय महायुद्ध एव युद्धोत्तर काल (१६४०-१६६६)

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने से लोह उद्योग की स्थिति मे सुधार हुआ, किन्तु मांग मे वृद्धि अन्तरराष्ट्रीय बाजारो की अपेक्षा स्थानीय अधिक थी। अत इसका अन्तरराष्ट्रीय व्यापार घटता गया। १६४५ मे लोहे का उत्पादन ११८ लाख टन था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय मे लोहे एव इस्पात उद्योग का नियन्त्रण सम्भरण एवं पूर्ति मन्त्रालय (Ministry of Supply) के हाथो मे आ गया। सन् १६४६ मे राष्ट्रीयकरण की समस्या का हल होने तक **लौह एव इस्पात बोर्ड** (Iron & Steel Board) की स्थापना की गयी जिसका कार्य उत्पादन का निरीक्षण करना, भावो के सम्बन्ध मे परामर्श देना तथा नियन्त्रणो को लागू करना था।

युद्धोपरान्त काल मे उद्योग को पुन सकट का सामना करना पडा। अत: ब्रिटिश आयरन एण्ड स्टील फेडरेशन ने उद्योग की उन्नति और कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने के लिए एक पचवर्षीय योजना बनायी। योजना के अन्तर्गत सन् १६५० ई० तक ३०० लाख पौण्ड की पूंजी इस उद्योग को उन्नत करने और नये कारखाने स्थापित करने मे लगायी गयी। योजना का लक्ष्य १६० लाख टन लौह-उत्पादन का था।

उद्योग का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation)

द्वितीय महायुद्ध के बाद उद्योग की स्थिति को ध्यान मे रखते हुए सन् १६४६ मे १६४६ तक इसका कार्य सचालन आयरन एण्ड स्टील मण्डल (Iron & Steel Board) की देखरेख में चलता रहा। सन् १६४६ मे आयरन एण्ड स्टील अधिनियम के अन्तर्गत उद्योग के अधिकाश भाग का सन् १६५१ से राष्ट्रीयकरण कर लिया गया जिसमे अधिकाधिक छोटे उद्योगो को सार्वजनिक स्वामित्व के अन्तर्गत लाया गया। सन् १६५२ मे स्वायत्त निगम (Autonomous Corporation) की स्थापना की गयी और इस प्रकार व्यक्तिगत अशधारियो से उद्योग छीन लिया गया। इस प्रकार बडे उद्योगो की सख्या ८० और छोटे सहायक उद्योगो की सख्या १६२ रही, यद्यपि इसमे कम्पनियाँ और उद्योगो के अस्तित्व और व्यवस्था को अलग ही रखा गया।

अराष्ट्रीयकरण (Denationalisation)

सन् १६५३ मे अनुदार दलीय (Conservative Party) सरकार ने पदारूढ

होने के साथ ही लौह-इस्पात उद्योग के अराष्ट्रीयकरण (Denationalisation) के प्रयत्न प्रारम्भ हुए क्योंकि उनका विश्वास निजी क्षेत्र (Private Sector) में अधिक था। एतदर्थ उन्होंने उद्योग का नया बोर्ड स्थापित किया। इस बोर्ड द्वारा अधिकतम मूल्य निर्धारण, पूँजी-नियोजन की स्वीकृति या अस्वीकृति, कच्चे माल की उपलब्धि इत्यादि कार्य हाथ में लिये गये किन्तु ऐसे समय में ही श्रमिक दल ने यह घोषणा की कि ज्यों ही वह सत्तारूढ़ होगा उद्योग का राष्ट्रीयकरण कर लिया जायेगा।

सन् १९५३ में राष्ट्रीयकरण की नीति के विरुद्ध जो अधिनियम पारित हुआ उसके अन्तर्गत आयरन एण्ड स्टील होल्डिंग एण्ड रियलाइजेशन एजेन्सी स्थापित की गयी जिसे यह कार्य सौंपा गया कि इस उद्योग को पुनः व्यक्तिगत व्यवसायियों को सौंपा जाय। सन् १९६० तक इस एजेन्सी के अन्तर्गत केवल ८ कम्पनियाँ रहीं, बाकी को पुनः व्यक्तिगत स्वामियों को सौंप दिया गया। सन् १९६४ में केवल एक कम्पनी को छोड़कर शेष समस्त निजी स्वामित्व में हस्तान्तरित की जा चुकी थी। सन् १९५३ के अधिनियम के अन्तर्गत उद्योग की साधारण देखभाल का कार्य लौह एवं इस्पात बोर्ड (Iron and Steel Board) को सौंप दिया गया। व्यापारिक कार्य की सचालिका प्रतिनिधि संस्था ब्रिटिश आयरन एण्ड स्टील फेडरेशन है।

सन् १९४५ से उद्योग के आधुनिकीकरण और विकास के प्रयत्न चालू हैं। सन् १९५३-६० के बीच में ६,८०० लाख पौण्ड विकास और आधुनिकीकरण की योजना पर व्यय किये गये।

वर्तमान स्थिति

वर्तमान स्थिति यह है कि इंगलैण्ड का विश्व के लौह इस्पात उत्पादक देशों में पाँचवाँ स्थान है। उसका यह व्यवसाय पर्याप्त रूप में संगठित और सुव्यवस्थित है फिर भी निकट भविष्य में लौह-इस्पात उद्योग का भविष्य अधिक उज्ज्वल प्रतीत नहीं होता। क्योंकि जब तक उपर्युक्त समस्याएँ हल नहीं कर ली जातीं तब तक उद्योग को कुछ कठिनाइयाँ रहेंगी। दूसरे, पूर्वीय देशों में निम्न मजदूरी और अधिक निश्चित लौह भण्डारों की उपलब्धि तथा राष्ट्रमण्डलीय देशों में इस उद्योग के विकसित होने से इंगलैण्ट के उद्योग को कड़ी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ेगा। अतः उच्चतम निपुणता और पर्याप्त क्षमता ब्रिटिश लौह-इस्पात उद्योग के अस्तित्व के लिए अनिवार्य शर्तें हैं।

पिछले वर्षों में इस उद्योग के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या इसके फिर से राष्ट्रीयकरण की रही है। लेबर पार्टी ऐसा करने के लिए कटिबद्ध रही है। सन् १९६६ के चुनावों में लेबर पार्टी का भारी बहुमत प्राप्त हुआ और इससे लौह एवं इस्पात उद्योग के राष्ट्रीयकरण की सम्भावनाएँ बढ़ गयी। सरकार ने अप्रैल सन् १९६५ में ही एक श्वेतपत्र (White Paper) प्रकाशित करके इस उद्योग के

पुन राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव जनता के समक्ष रख दिया।[1] सरकार ने इस उद्योग के पुन राष्ट्रीयकरण के लिए तीन कारणों को प्रमुखता दी जो इस प्रकार थे

(१) राष्ट्र के आर्थिक विकास की दर को आगे बढ़ाने एव ब्रिटेन के विभिन्न प्रदेशों में इस विकास का समान वितरण सम्भव बनाने में लौह एव इस्पात उद्योग की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अत ऐसे आधारभूत उद्योग को पूर्णत निजी क्षेत्र पर नहीं छोड़ा जा सकता।

(२) अगले वर्षों में इस उद्योग के विकास के लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी जिसे निजी क्षेत्र द्वारा उपलब्ध नहीं किया जा सकता जब तक कि स्टील के मूल्य बहुत ऊँचे स्थिर न किये जाएँ। किन्तु निर्यात एव जन हित की दृष्टि से ऐसा करना सम्भव नहीं होगा। आज ब्रिटेन में एक स्टील कारखाने के निर्माण के लिए १५० मिलियन पौण्ड की आवश्यकता होती है। सरकारी अथवा सार्वजनिक स्वामित्व के अन्तर्गत ही इसके लिए आवश्यक पूँजी उपलब्ध की जा सकती है।

(३) लौह एव इस्पात उद्योग एक पूँजी प्रधान उद्योग है और इसमें एकाधिकार की प्रवृत्ति का विकास जल्दी होता है। पूर्ति एव माँग में असन्तुलन उत्पन्न करके एकाधिकारी की प्रवृत्तियाँ तेजी मन्दी के चक्रों (cycles) को प्रोत्साहन देती है। अत सत्ता के इस केन्द्रीकरण को रोकने के लिए इस उद्योग का राष्ट्रीयकरण किया जाना अति आवश्यक है ताकि जन हित में उचित मूल्य नीति का पालन किया जा सके।

राष्ट्रीयकरण की इस प्रस्तावित योजना के निम्नलिखित लाभ बताये गये

(i) पूँजी विनियोग की योजनाओं का केन्द्रीय नियोजन सम्भव हो जायगा।

(ii) केन्द्रीय स्तर पर उत्पादन एव विक्रय में सुधार के लिए प्रयत्न किया जा सकेगा।

(iii) राष्ट्रीयकरण के बाद उद्योग की प्रतियोगात्मक कुशलता में वृद्धि होगी और इस प्रकार स्टील के निर्यात में वृद्धि होगी। जबकि अभी **लौह एव इस्पात बोर्ड** का विचार था कि सन् १९७० तक निर्यात में वृद्धि की कोई सम्भावना नहीं है।

(iv) कच्चे माल की व्यवस्था एव खोज एव अनुसन्धान के स्तर में राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप सुधार किया जा सकेगा।

(v) राष्ट्रीयकरण श्रमिकों के हितों एव उनकी सुख सुविधाओं की ओर अधिक ध्यान दिलाने में सहायक होगा।

---

[1] 'Steel Nationalisation'—White Paper presented before Parliament by The Minister of Power in April 1965

पुन -राष्ट्रीयकरण
(Re-Nationalisation)

अन्तत श्रमदल की सरकार ने ब्रिटन के लौह इस्पात उद्योग के पुन राष्ट्रीयकरण के प्रस्ताव को कार्यरूप मे परिणित कर ही दिया। सन् १९६७ मे लौह एव इस्पात अधिनियम (Iron & Steel Act) पास किया गया और निजी क्षेत्र के १३ बडी इस्पात कम्पनियो[1] का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। अगस्त १९६७ मे ब्रिटिश स्टील कार्पोरेशन (जिसमे इन १३ कम्पनियो का विलय किया गया) ने पुनर्संगठन पर अपना प्रथम प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसके अनुसार उत्पादन का कार्य चार भौगोलिक गुटो म बाँट दिया गया। पुन राष्ट्रीयकरण के बाद ब्रिटिश इस्पात उत्पादन का ९० प्रतिशत तथा सलग्न श्रमिको की सख्या का ७० प्रतिशत भाग राष्ट्रीयकृत क्षेत्र म आ गया है। फिर भी छोटी-छोटी लगभग २०० कम्पनियाँ अब निजी क्षेत्र मे है जिनका उत्पादन कुल उत्पादन का केवल १० प्रतिशत है।

स्पष्ट है कि पिछले दो वर्षों मे गिरते हुए उत्पादन एव स्थिर निर्यात की स्थिति मे कुछ सुधार हुआ है। सन् १९६९ म ब्रिटेन ने लगभग २३० लाख टन तैयार इस्पात (Finishd Steel) का उत्पादन किया। ब्रिटिश लौह एव इस्पात उद्योग इस समय अपनी कुल क्षमता के ८८ प्रतिशत का उपयोग कर रहा है। इसी वर्ष ब्रिटेन न लगभग ४० लाख टन इस्पात का निर्यात किया जिसका मूल्य २२९ मिलियन पौण्ड था। यह निर्यात मुख्यत सयुक्त राज्य अमरीका, स्वीडन, कनाडा एव दक्षिणी अफ्रीका को किया गया। पिछले १५ वर्षो मे १,८०० मिलियन पौण्ड से भी अधिक धनराशि इस उद्योग के विकास एव विस्तार के लिए लगायी जा चुकी है। खुली धमन प्रणाली (Open Hearth Process) की अब भी अधीनता है। किन्तु धीरे-धीरे कनवर्टर प्रणाली (Converter Process) एव विद्युत भट्टो (Electric Furnaces) का चलन बढ रहा है। अनुसन्धान एव तकनीक की दृष्टि से ब्रिटेन

[1] The 13 other Groups are
1 Colvilles, Ltd
2 Consett Iron Co , Ltd
3. Dorman Long & Co , Ltd
4 English Steel Corporation, Ltd.
5 G K N Steel Co , Ltd
6 John Summers & Sons, Ltd
7 The Lankashire Steel Corporation, Ltd.
8 Park Gate Iron and Steel Co , Ltd
9 Round Oak Steel Works, Ltd
10 South Durham Steel & Iron Co , Ltd
11 The Steel Co of Wales, Ltd
12 Stewarts & Llyods, Ltd
13 The United Steel Companies, Ltd

का यह उद्योग पर्याप्त धनराशि व्यय कर रहा है। विशेष प्रकार के मिश्रित इस्पात एव कार्बन स्टील बनाने मे सफलता प्राप्त की गयी है। शफील्ड एव स्कॉटलैण्ड मे विशाल बिजली की फरनेसेज स्थापित की गयी जोकि विश्व की सबसे बडी विद्युत भट्टियाँ है। इस प्रकार लोह एव इस्पात उद्योग का जनक ब्रिटन उच्च तकनीकी ज्ञान एव नवीनीकरण क बल पर विश्व म अपने इस उद्योग की स्थिति को बनाये हुए है और आज भी इस दृष्टि से उसका स्थान पाँचवाँ है।

प्रश्न

1 Discuss the growth of British Iron & Steel Industry since 19 0
सन १६०० क पश्चात ब्रिटेन के लोह एव इस्पात उद्योग क विकास की विवेचना कीजिए। (राजस्थान, १६६१)

2 Outline the growth of iron & steel industry in Great Britain since 1931, analysing the present dav problems and lines of reform
सन १६३१ के पश्चात ब्रिटिश लोह एव इस्पात उद्योग की प्रगति की रूपरेखा बतलाइए तथा उसकी वर्तमान अवस्था और सुधार की सम्भावनाओ का विश्लेषण कीजिए। (पजाब १६६६)

3 What were the circumstances which led to the nationalisation of iron and steel industry in Great Britain after the second world war
द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटिश लोह एव इस्पात उद्योग का राष्ट्रीयकरण किन परिस्थितियो के वश किया गया। (राजस्थान, १६६७)

१२
वाणिज्यवाद या व्यापारवाद
(Mercantilism)

'वाणिज्यवाद' या 'व्यापारवाद' शब्द उन सामूहिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रयत्नों का नाम है जो कि इंगलैण्ड की सरकार ने १५वीं से १८वीं शताब्दी तक अपनाये। वृद्ध अर्थशास्त्रियों के मतानुसार इन उपायों का उद्देश्य राष्ट्रीय आर्थिक-आत्म-निर्भरता और अन्ततः राष्ट्रीय सम्पदा और शक्ति का विकास करना था। इस व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण का ध्यान रखते हुए व्यावहारिक नीतियों में परिस्थिति के अनुसार सामाजिक परिवर्तन भी किये गये।

एक दूसरी विचारधारा के अर्थशास्त्रियों के अनुसार समय-समय पर अपनाये गये उपाय किसी निश्चित नीति के परिणाम नहीं थे वरन् विशिष्ट समस्याओं के हल के लिए ही यथोचित उपायों को अपनाया गया था। व्यापारवाद की विचार-धारा राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ पनप रही थी। मध्ययुग में राष्ट्रीयता का विचार अधिक प्रबल हो गया था। सौ वर्षों के युद्ध का एक परिणाम अंग्रेजों में इस भावना को बढ़ाता हुआ होगा और जॉन ऑव आर्क के पराक्रमों के पश्चात् फ्रांसीसियों में भी यह भावना बढ़ी होगी। १५वीं शताब्दी में पूर्ण-जागरण, इंग्लैण्ड में सामन्तों शक्ति का ह्रास और भौगोलिक अन्वेषणों की घटनाएँ घटित हुईं। इसी समय धर्म सुधार आन्दोलन की प्रवृत्ति भी जाग्रत हुई। इस प्रकार सम्पूर्ण यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ और यह राजनीतिक, धार्मिक, तथा आर्थिक सत्ता के रूप में राष्ट्रों का उदय मध्य युग को वर्तमान युग में प्रवेश कराता है।

निम्नलिखित ३ परिवर्तनों ने इस सिद्धान्त को बल प्रदान किया

(i) जन-जागरण (The Renaissance)—इसके कारण विभिन्न देशों का राष्ट्रीय स्वरूप सुनिश्चित हो गया और उनकी अव्यवस्थित सामन्तवादी व्यवस्था एक शक्तिशाली राजा के अधीन एक सूत्र में बँध गयी।

(ii) सुधार (Reformation)—सामाजिक एवं धार्मिक भावनाओं में सुधार हुआ। कट्टर कैथोलिक मत के स्थान पर प्रोटेस्टेण्ट मत का प्रचार हुआ जो अधिक

सहिष्णु एवं उदार था तथा व्यापार एवं व्यापारी वर्ग को घृणा की दृष्टि से नहीं देखता था।

(iii) **नयी दुनिया की खोज** (Discovery of the New World)—इस खोज ने स्वर्ण एवं रजत के द्वार यूरोप के लिए खोल दिये और इस प्रकार मुद्रा का चलन सम्भव बना दिया। राजा अब मुद्रा में कर वसूल करके अपने खजाने में वृद्धि कर सकता था।

राष्ट्र के हित में राजनीतिक और आर्थिक कार्यों का सचालन करने के लिए शक्तिशाली शासक की आवश्यकता थी। सौभाग्य से इस प्रकार का शक्तिशाली शासक-वर्ग इंगलैण्ड और यूरोप में उस समय पनप चुका था। वाणिज्यवादी विचारधारा ने यूरोपियन देशों को सम्पन्नता के विकास में महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया, और इस सिद्धान्त के बल पर ही फ्रांस, इंगलैण्ड, जर्मनी, एवं हालैण्ड जैसे देश अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में सफल हुए।

श्री जी० डी० एच० कोल के अनुसार, "वाणिज्यवाद एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग उन नीतियों, सिद्धान्तों एवं व्यवहारों के लिए किया जाता है, जिन्हें राष्ट्रों द्वारा तत्कालीन परिस्थितियों में अपनाया गया और जिनके आधार पर वे राष्ट्र आर्थिक क्षेत्र में शक्ति, सम्पत्ति एवं सम्पन्नता प्राप्त कर सकें।"[1]

व्यापारवाद के अन्तर्गत राष्ट्र की आर्थिक शक्तियों का विकास राष्ट्रीय दृष्टिकोण से किया जाता है। इसके अन्तर्गत अपनाये गये उपायों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) कृषि सम्बन्धी उपाय, (२) उद्योगों के विकास सम्बन्धी उपाय, (३) जहाजी या नौकावाहन विकास सम्बन्धी उपाय, और (४) सम्पत्ति संग्रह सम्बन्धी उपाय।

विकासवाद का आरम्भ

व्यापारवाद का उद्भव **रिचार्ड द्वितीय** (Richard II) के समय से होता है, जबकि प्रथम बार १३७६ में एडवर्ड तृतीय की नीति की आलोचना की गयी और राष्ट्रीय शक्ति में वृद्धि करने के दृष्टिकोण से अधिनियम स्वीकृत किये गये। किन्तु व्यावहारिक रूप में व्यापारवाद का प्रचलन ट्यूडर राजाओं के काल में ही हुआ है जैसा कि **लार्ड बेकन** ने कहा है—'हेनरी सप्तम ने पुरानी राजनीति को छोड़कर नयी शक्ति की नीति का अनुसरण किया।'' यह समय राष्ट्रीयता की भावना का सर्वोपरि काल था। व्यापारवाद की नीति के तत्व हमको १५वीं शताब्दी की उन पुस्तकों में भी मिलते हैं जो नवीन नीति की परिचायक थी—**घोषकों का विवाद** चार्ल्स, ड्यूक

---

1 'Mercantilism is a term which may be applied to those theories, policies and practices arising from the conditions of the time by which the national state acting in the economic sphere sought to increase its own power, wealth and prosperity"

—*Prof G D H Cole*

ऑव ओरलियन्स, इगलंड की वस्तुऐं सर जोन फोर्टस्क्यू । उस समय जो नीति अपनायी गयी वह नकारात्मक थी। केवल ट्यूडर काल मे रचनात्मक ढग मे व्यापारवाद का विकास हुआ। इस समय के विभिन्न परिवर्तनो ने इस नीति को सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करने मे योग दिया।

१६वी और १७वी शताब्दी मे धन प्राप्ति का मुख्य साधन विदेशी व्यापार था जो कि भारत, अफ्रीका और अमरीका के साथ होता था। अत व्यापार और विशेषत विदेशी व्यापार ही व्यापारवाद मे मुख्य स्थान पा सका। यही कारण था कि विदेशी व्यापार को उन्नत करने के लिए कृषि, उद्योग और जहाजरानी सम्बन्धी अधिनियम स्वीकृत किये जाते थे। देश के आयात और निर्यात इस प्रकार नियन्त्रित किये जाते थे जिससे 'अनुकूल व्यापार-सन्तुलन' प्राप्त हो सके तथा देश मे स्वर्ण भारी मात्रा मे आ सके। स्वर्ण उस समय सम्पत्ति का चिह्न था, वह राजनीतिक शक्ति का भी आधार था। देश स्वर्ण के आधार पर सेनाएँ रख सकता था, शस्त्र क्रिया कर सकता था और अन्य देशो के राजनीतिज्ञो को राष्ट्रीय लाभ के लिए रिश्वत दे सकता था। अत उस समय प्रत्येक देश का यह प्रयत्न था कि उसके पास अधिकाधिक स्वर्ण का सग्रह हो। कुछ देशो (जैसे पुर्तगाल) के पास सोने या चाँदी की खानें थी। किन्तु इगलैंड के पास स्वर्ण की खानें नही थी। अत इगलैंड इन देशो को अधिक वस्तुऐं बेचकर स्वर्ण प्राप्त कर सकता था।

व्यापारवाद के मुख्य तत्व

व्यापारवादी नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाया गया था

(१) निर्यात मे वृद्धि—राष्ट्रीय साधनों का इस ढग से विकास किया जाय कि जिससे देश का निर्यात व्यापार बढ सकें। इसी दृष्टिकोण से उद्योग और जहाजरानी का विकास किया गया। राष्ट्रीय धन तथा शक्ति मे वृद्धि करना उत्तम समझा जाता था। अत आर्थिक साधनो का नियमन और नियन्त्रण अनिवार्य और अपरिहार्य था।

(२) उपनिवेशों का शोषण—व्यापारवादी उपनिवेशो का उपयोग भी मातृ-देशो के हितो के पक्ष मे रखना चाहते थे। वे उपनिवेशो को केवल कच्चे माल का भण्डार बनाना चाहते थे जो मातृ-देश को कच्चा माल देता रहे और मातृ-देश से पक्का माल बराबर लेता रहे। उन्ही उद्योगो को उपनिवेशो मे स्थापित और विकसित होने का अवसर दिया जाता था जो उद्योग मातृ-देश मे या तो नही थे या उन्हें लाभदायक आधार पर मातृ-देश मे नही खोला जा सकता था। वस्तुत. उपनिवेशो के साधनो का आर्थिक शोषण व्यापारवादी नीति का एक मुख्य तत्व था।

(३) आत्म-निर्भरता—व्यापारवादी अन्तत राष्ट्रीय आत्म निर्भरता मे विश्वास करने वाले थे। अत निर्यात व्यापार को अधिक बढावा और आयात व्यापार को हतोत्साहित किया जाता था। सरक्षणात्मक या तटकर लगाकर आयात को

रोकना और राष्ट्रीय उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना आत्म-निर्भरता की अवस्था प्राप्त करने का एक प्रमुख तत्त्व था।

(४) **बुलियन बोर्ड (Bullion Board) की स्थापना**— इस बोर्ड की स्थापना से स्वर्ण के निर्यात को समाप्त किया गया और आयात को प्रोत्साहित किया गया क्योंकि व्यापारवादियों का विश्वास था कि वही देश धनी एवं शक्तिशाली है जिसके पास सोना और चाँदी अधिक है।

(५) **अनुकूल व्यापार-सन्तुलन की स्थापना**—इस प्रकार की विधि से स्वर्ण का प्रवाह इंगलैंड की ओर हो सके। पहले तो प्रत्येक देश से अनुकूल व्यापार सन्तुलन रखने का प्रयत्न किया गया, किन्तु जब यह स्थिति असम्भव सी दृष्टिगोचर हुई तो साधारण व्यापारिक सन्तुलन का प्रयत्न किया गया।

(६) **जनसंख्या नीति**—सैनिकों एवं नाविकों की संख्या में वृद्धि करने के उद्देश्य से जनसंख्या वृद्धि की नीति अनुकूल मानी गयी।

(७) **राज्य की सर्वोपरि सत्ता**—निवासियों के व्यक्तिगत स्वार्थ को गौण एवं राष्ट्र के हित को प्रमुख माना गया। राष्ट्रीय हितों के लिए निजी हितों का त्याग एक उच्च आदर्श माना गया।

(८) **चार्टर्ड कम्पनियाँ**—इस शब्द में व्यापार की वृद्धि के उद्देश्य से यूरोप के कुछ देशों ने विभिन्न क्षेत्रों के लिए चार्टर्ड कम्पनियों की स्थापना की। जैसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी, हडसन बे कम्पनी, साउथ सी कम्पनी, अफ्रीकन कम्पनी, आदि। इन कम्पनियों ने अपने-अपने क्षेत्रों में व्यापार को बढ़ाया।

कृषि के क्षेत्र में व्यापारवादी नीति

व्यापारवादियों ने यह अनुभव किया कि कृषक राष्ट्रीय रीढ़ है अतः कृषि की उन्नति का प्रयत्न किया जाना चाहिए। साथ ही यह भी अनुभव किया कि जो देश खाद्यान्न का आयात करता है, वह युद्ध के समय सुरक्षित नहीं है। विदेशी अन्न का आयात बन्द होने पर देश भूखों मर सकता है।

अन्न कानून
(Corn Laws)

कृषि को उन्नत करने के लिए विभिन्न 'अन्न अधिनियम' (Corn Laws) स्वीकृत किये गये। एडवर्ड और रिचार्ड द्वितीय के समय में भी अन्न अधिनियम स्वीकृत किये गये। पन्द्रहवीं शताब्दी में दो महत्त्वपूर्ण अन्न अधिनियम स्वीकृत हुए—(१) १४३६ का अन्न अधिनियम। इसके अन्तर्गत अन्न का निर्यात उस समय किया जाय जब उसका मूल्य ६ शि० ८ पै० प्रति क्वार्टर से नीचे गिरे। (२) सन् १४६३ के अन्न अधिनियम के अन्तर्गत अन्न का आयात उस समय रोक दिया जाय जब मूल्य ६ शि० ८ पै० प्रति क्वार्टर से नीचे गिर जाय। सरकार इस प्रकार मूल्य का निर्धारण करती थी जिससे कृषक को पर्याप्त लाभ हो सके। सन् १५३४ में इस प्रकार का अधिनियम स्वीकृत हुआ कि सम्राट की बिना आज्ञा के अन्न का आयात न

किया जाय। सत्रहवीं शताब्दी में आयात-निर्यात के मूल्य स्तरों में परिवर्तन किये गये। १६६३ में 'अन्न उपहार अधिनियम' (Corn Bounty Act) स्वीकृत हुआ जिसके अधीन कृषक को संरक्षण प्रदान किया गया। आयातित गेहूँ पर ५ शि० ४ पें० प्रति क्वार्टर कर लगाया जाय जबकि कीमतें ४८ शि० प्रति क्वार्टर से नीचे हों। सन् १६७३ में निर्यातों को आर्थिक सहायता दी गयी। कुछ वर्षों के पश्चात् अधिनियम समाप्त हो गया सन् १६८९ में पुन 'अन्न उपहार अधिनियम' स्वीकृत हुआ जिसके अन्तर्गत ५ शि० प्रति क्वार्टर आर्थिक सहायता उस निर्यातित गेहूँ पर दी जाती जबकि मूल्य देश में ४८ शि० प्रति क्वार्टर से नीचे हों।

यह अधिनियम अनाज की उत्पत्ति को प्रोत्साहित करने और इसके मूल्य में उचित अंशों तक स्थायित्व लाने में सफल हुआ। इस प्रकार की सफलता की तुलना हम फ्रांस द्वारा इसी प्रकार की नीति अपनाने की असफलता से कर सकते हैं जहाँ कि विपरीत परिस्थितियों में इंगलैण्ड के समान नीति अनुसरण करने का प्रयत्न किया गया। फ्रांस में चौदहवें लुई के शासनकाल में एक विज्ञ व्यवसायी और अर्थशास्त्री श्री कोल्बर्ट ने निर्यात निषिद्ध करने की राजाज्ञा जारी करवाई जिसका उद्देश्य फ्रांस में अनाज की प्रचुर उपलब्धि करवाना था लेकिन इस प्रकार के निषेधात्मक प्रतिबन्ध के परिणामस्वरूप प्रचुरता के वर्ष में फ्रांसीसी किसान को अनाज का ग्राहक नहीं मिलता था और भूमि पर खेती बन्द कर दी जाती थी। इंगलैण्ड में अन्न उपहार अधिनियम ने लगभग १०० वर्षों तक कृषि-व्यवस्था की सुचारु रूप से चलाने में सहायता की लेकिन जनसंख्या की वृद्धि ने समस्या का अभावात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया जिसके कारण कीमतें बढ़ती जा रही थी। सरकार ने मूल्य के उचित नियन्त्रण के लिए सन १७७३ में अन्न अधिनियम पारित किया जिसका उद्देश्य ४८ शि० प्रति क्वार्टर से अधिक मूल्य बढ़ने पर नाममात्र का कर देने पर आयात की अनुमति देना था, ताकि मूल्य इस दर के आसपास स्थिर हो जाय। सन् १७७३ के अधिनियम को जितनी सफलता मिलनी चाहिए थी उतनी सफलता नहीं मिली। मूल्यों में वृद्धि होने से सदा भारी मात्रा में आयात नहीं होता था क्योंकि विदेशी उत्पादक एक अनिश्चित मण्डी के लिए उत्पत्ति करने को तैयार नहीं थे। सन १७९१ में एक और अन्न अधिनियम १७७३ के अधिनियम में संशोधन करते हुए पारित किया गया। जब देश में गेहूँ का मूल्य ४४ शि० प्रति क्वार्टर से नीचे होता था तो निर्यात पर सहायता दी जाती थी और जब देश में गेहूँ का मूल्य ५० शि० प्रति क्वार्टर से नीचे होता था तो आयात पर भारी कर लगाया जाता था तथा जब देश में मूल्य ५४ शि० प्रति क्वार्टर से ऊपर चला जाता था तो कर केवल नाममात्र का रह जाता था। इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत यह आशा की गयी कि निर्यात पर सहायता और आयात पर भारी कर लगाने से देश में अन्नोत्पादन को प्रोत्साहन मिलेगा जबकि यह आशा की जाती थी कि मूल्य ऊँचा होने पर कर में कमी से आवश्यकता के समय आयात को प्रोत्साहन मिलेगा और इसलिए रोटी के मूल्य में

अत्यधिक वृद्धि नहीं होगी। यद्यपि देश में उत्पत्ति बढ़ी, समावरण आन्दोलन जारी रहा और नयी भूमि पर मेती की गयी परन्तु युद्ध के दिनों में आयात अनिश्चित हो गया जिससे युद्धकाल में मूल्य में बराबर वृद्धि होती रही।

सन् १८१५ का अन्न कानून

वैसे युद्धकाल में कृषि लाभदायक व्यवसाय था लेकिन उसमें अनिश्चितता का तत्त्व अवश्य विद्यमान था क्योंकि शान्ति युद्धकाल में आयातित अन्न के बहिष्कार पर निर्भर था। अतः सन् १८१५ का अन्न अधिनियम आवश्यक माना गया। इस अन्न अधिनियम का मुख्य उद्देश्य यह था कि इंगलैण्ड खाद्य के सम्बन्ध में विदेशों पर निर्भर न रहे और इसके लिए यह आवश्यक माना गया कि कृषि को प्रोत्साहित करने के लिए इस प्रकार के प्रतिबन्ध तब तक लगे रहना चाहिए जब तक कि एक-चौथाई टन (प्रति क्वार्टर) गेहूँ का मूल्य ८० शिलिंग न हो जाय। कृत्रिम ढंग से अन्न का मूल्य इतना बढ़ा दिया गया कि निर्वाह कठिन हो गया तथा सामान्य जनता का जीवन-स्तर भी गिर गया। यह अधिनियम अपना उद्देश्य भी प्राप्त नहीं कर सका। किसानों को भी अधिक ऋण देना पड़ा। यदि भूमि का मूल्य उनके कार्य-कलापों से वृद्धि पा जाय तब भी उन्हें दण्डित किया जाता था जबकि उनकी पट्टा अवधि समाप्त हो जाती। जमींदारों को पर्याप्त पुरस्कार मिला लेकिन यह वे इसलिए प्राप्त कर सके क्योंकि उत्पादन को उचित प्रोत्साहन नहीं मिल सका। अतः यह विवादास्पद है कि क्या वास्तव में 'अन्न अधिनियम' किसानों के लिए लाभदायक था? किसानों को अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करने का अभिप्राय यह था कि उस भूमि पर भी अन्न उत्पादन किया जाय जो उसके लिए कम उपयुक्त थी और इस प्रकार अधिनियम मूल्यों में उतार-चढ़ाव को बढ़ाया। एक और दुखद तथ्य यह था कि इस अधिनियम ने किसानों में कृषि प्रणाली के सुधार के सम्बन्ध में रुचि उत्पन्न नहीं की।

श्रमिकों ने अधिक मजदूरी की माँग की और परिस्थितियाँ इतनी विपरीत हो गयी थीं कि अन्न अधिनियम समाज पर भार हो गया और सभी वर्गों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। परन्तु प्रतिबन्धात्मक व्यवस्था विशेषतः उपभोक्ताओं तथा व्यापारियों के लिए असुविधाजनक थी। किसानों के अनिश्चित स्वार्थों के लिए साधारण जनता के कल्याण की बलि चढ़ा दी गयी। अतः श्रमिकों और औद्योगिक-पूँजीपतियों ने इन अधिनियमों के विरुद्ध हड़ताल और असन्तोष व्यक्त किया। अन्न अधिनियम के प्रश्न को लेकर स्वतन्त्र व्यापारवादियों और संरक्षणवादियों में लगभग ३० वर्षों तक विवाद चलता रहा। शहरी उपभोक्ताओं और औद्योगिक पूँजीपतियों के असन्तोष के परिणामस्वरूप १८२६, १८२८ और १८४२ ई० में 'अन्न अधिनियम, में फिर संशोधन और सुधार किये गये। इन संशोधनों के फलस्वरूप चुंगी की दर अन्न के मूल्य के अनुकूल ही निर्धारित की गयी। यदि अन्न का मूल्य ७० शि० से अधिक हो जाता तो निःशुल्क आयात की अनुमति दे दी जाती और जब मूल्य इस बिन्दु से नीचे गिरता तब आयात पर चुंगी लगा दी जाती और ज्यों-ज्यों मूल्य

गिरते त्यों त्यों चुंगी दर बढ़ा दी जाती। इसके पश्चात् हस्किसन ने पारस्परिक समझौता द्वारा नौ-वहन अधिनियमों में संशोधन किया जिसके अनुसार औपनिवेशिक व्यापार के प्रति ब्रिटेन ने चुंगी दर कम कर दी तथा विदेशी आयात के समस्त प्रतिबन्ध भी एक सामान्य कर में परिवर्तित कर दिये गये। ये कर आयात-मूल्यों के ३० प्रतिशत अनुपात से अधिक नहीं हो सकते थे। चुंगी की दर में इन सुधारों के उपरान्त भी स्थिति में कोई अन्तर नहीं हुआ।

अन्न अधिनियम विरोधी लीग (Anti-Corn-Law League)—असन्तुष्ट उद्योगपतियों, पूंजीपतियों तथा उपभोक्ताओं ने कृषि संरक्षण का सक्रिय विरोध करने के लिए अन्न अधिनियम विरोधी लीग (Anti-Corn-Law League) की स्थापना की जिसके प्रमुख नेता रिचार्ड कॉब्डन (Richard Cobden) और जॉन ब्राइट (John Bright) थे।

रिचार्ड काब्डन (सन् १८०४-६५) मिडहर्स्ट नामक स्थान में पैदा हुआ था, यह अन्न अधिनियम विरोधी अभियान का मुख्य प्रणेता था। सन १८३५ में इसने स्वतन्त्र व्यापार और सरकारी हस्तक्षेप पर पैम्पलेट प्रकाशित किये और इस प्रकार यह क्रान्तिकारी दार्शनिकों की श्रेणी में सम्मिलित हो गया। सन् १८३८ में, जब वह मैनचेस्टर में एक उत्पादक था, रिचार्ड कॉब्डन ने ७ व्यापारियों के सहयोग से एक संस्था बनाई। सन् १८४१ में इसने पार्लियामेण्ट में अपना प्रथम भाषण दिया और चार वर्ष पश्चात् इसने अपनी भाषण कला से रौबर्ट पील (प्रधानमन्त्री, इंगलैंड) को प्रभावित किया और जिसके कारण अन्न अधिनियम समाप्त कर दिये गये। इसका सारा श्रेय स्वयं श्री पील ने कॉब्डन को दिया है। श्री कॉब्डन का कार्य न केवल अन्न अधिनियम तक ही सीमित था वरन् वह सन् १८५९ में व्यक्तिगत रूप में फ्रांस गया और सम्राट नेपोलियन तृतीय से एक संधि की जिसके आधार पर स्वतन्त्र-व्यापार को दोनों देशों में प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार श्री कॉब्डन उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तरराष्ट्रीय व्यक्ति था जो स्वतन्त्र व्यापार का प्रबल समर्थक था।

जॉन ब्राइट (१८११-८९)—श्री रिचार्ड कॉब्डन के समान ही दूसरा व्यक्ति जॉन ब्राइट था जिसने अन्न अधिनियम विरोधी अभियान को संचालित किया। श्री जॉन ब्राइट (John Bright) कॉब्डन का विश्वासपात्र साथी था। वह रॉकडेल नामक स्थान में पैदा हुआ और एक मिल-मालिक का पुत्र था। उसकी शिक्षा-दीक्षा ने भाषा पर उसे अद्वितीय अधिकार प्रदान किया। वह कॉब्डन से सन् १८३७ में और 'अन्न अधिनियम विरोधी लीग' का सदस्य बन गया। सन् १८४३ में संसद सदस्य बना और एक प्रसिद्ध आन्दोलनकारी की ख्याति प्राप्त की। उसने कॉब्डन के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य किया और इसीलिए ये दोनों प्रसिद्ध हो गये।

'अन्न अधिनियम विरोधी अभियान' वस्तुतः मध्यम-वर्ग का आन्दोलन था, जिस प्रकार चार्टिस्ट आन्दोलन को श्रमिक-वर्ग का आन्दोलन कहा जा सकता है। यह आन्दोलन औद्योगिक-पूंजीपतियों की वित्तीय सहायता से संचालित था और जिसे

अद्वितीय संगठन-योग्यता और प्रचार शक्ति वाले व्यक्ति नेतृत्व सम्हाले हुए थे। सार्वजनिक सभाओं के आयोजन और राजनीतिक प्रचार पर पर्याप्त धनराशि खर्च की गयी। यद्यपि 'अन्न अधिनियम विरोधी अभियान' मध्यम वर्ग का आन्दोलन था लेकिन उसने श्रमिक वर्ग को भी अपने झंडे के नीचे लाने का हर सम्भव प्रयत्न किया। अन्न अधिनियमों की समाप्ति का प्रयत्न औद्योगिक श्रमिकों के हित की दृष्टि से किया गया। सन् १८४० तक ग्रामीण और शहरी श्रमिकों में कोई विशेष स्वार्थों का संघर्ष नहीं था। ग्रामीण कृषि मजदूर को भी 'अन्न अधिनियम' से वही शिकायतें थी जो औद्योगिक मजदूर को थी। चार्टिस्ट आन्दोलन से 'अन्न अधिनियम विरोधी अभियान' को आघात पहुँचा क्योंकि दोनों आन्दोलनों में प्रतिद्वन्द्विता सी थी। यद्यपि चार्टिस्ट आन्दोलन अपने आरम्भिक विकास काल में अन्न अधिनियम विरोधी अभियान के विरुद्ध नहीं था। बाद में जनमत और वयस्क मताधिकार इत्यादि प्रश्नों पर मतभेद होने से दोनों अलग से नेतृत्व बनाये रखने का प्रयत्न करने लगे। इस संघर्ष और कलह से चार्टिस्ट आन्दोलन को अधिक आघात पहुँचा अपेक्षाकृत 'अन्न अधिनियम विरोधी लीग' के। लीग को महती सफलता प्राप्त हुई और चार्टिस्ट आन्दोलन असफल हो गया।

यद्यपि 'अन्न अधिनियम विरोधी लीग' ने नियमों की समाप्ति के लिए भूमिका तैयार की किन्तु अन्न अधिनियम समाप्ति का वास्तविक दायित्व और श्रेय श्री पील को है। जब सन् १८४४ में परिस्थिति अनिश्चित और नाजुक थी तब पील के बजट ने स्थिति को सुधारा और सम्हाला। शीतऋतु ने अग्रिम फसल की खराबी का संकेत दिया और जिसमें सबसे अधिक प्रभावित होने वाले पदार्थ अन्न और आलू थे। 'अन्न अधिनियम' के अन्तर्गत अन्न की कीमत का आंग्ल परिवार के लिए विशेष महत्त्व था। आयरलैण्ड पूर्णतया आलू पर निर्भर था। ऐसी स्थिति में १८४५ में आयरलैण्ड में आलू का अकाल (Potato Plight) पड़ा किन्तु प्रयास शीघ्रगामी नहीं थे क्योंकि गोदामों में खाद्यान्न था, पील ने देखा और अनुभव किया कि सन् १८४६ में अकाल की सम्भावना थी। श्री रिचार्ड कॉब्डन के १६४५ के भाषण ने पील को प्रभावित किया। पील जैसे कर्मठ व्यक्ति ने तत्काल कार्यवाही का निश्चय किया और इस प्रकार सन् १८४५ की वर्षा में 'अन्न अधिनियम' बह गये।

पील को अपने इस कार्य की सफलता से पहले असफलता का सामना करना पड़ा क्योंकि मन्त्रिमण्डल द्वारा उसका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया और लार्ड जॉन रसल (उसके प्रतिद्वन्द्वी) ने अपने एडिनबर्ग पत्र में स्वतन्त्र व्यापार की नीति की ओर झुकाव दिखाया यद्यपि उसकी पूर्व नीति निश्चित शुल्क लगाने की थी। पील 'अन्न अधिनियम समाप्ति' विधेयक को स्वीकार कराना चाहता था किन्तु लार्ड स्टेनले के विरोध स्वरूप वह अधिनियम स्वीकार नहीं किया जा सका। अतः पील को त्यागपत्र देना पड़ा। लॉर्ड जॉन रसल कुछ राजनीतिक कारणों से मन्त्रिमण्डल का निर्माण नहीं कर सके और अन्ततः श्री पील का पुनः मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए

आमन्त्रित किया गया जो एक प्रकार से उनकी पूर्व निर्धारित 'अन्न अधिनियम समाप्ति' नीति की विजय थी। जनवरी सन् १८४६ में पील ने तत्काल और स्थायी रूप में 'अन्न अधिनियम समाप्ति' प्रस्ताव रखे और स्वीकार करवाये। अकाल के परिणामस्वरूप इस प्रकार का निर्णय किया गया और इसी कारण ह्विग पार्टी ने इसका समर्थन किया और पील का भी समर्थन किया। इसी समय डिसराइली का राजनीति में प्रवेश हुआ। जिसने संरक्षणवादी नीति के आधार पर पील का विरोध किया परन्तु पील दोनों ही सदनों में जून १८४६ में अपनी अन्न नीति स्वीकृत करवाने में सफल हो गया।

उद्योगों के सम्बन्ध में व्यापारवादी नीति

कृषि के समान ही उद्योगों के विकास के लिए व्यापारवादी नीति के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के प्रयत्न किये गये। जिनमें कुछ अधिनियम विदेशी व्यापार के नियमन से सम्बन्धित थे और कुछ प्रवास निषेध से। इसी प्रकार व्यय सम्बन्धी अधिनियम (Sumptury Laws) प्रमाणीकरण अधिनियम, श्रम अधिनियम उल्लेखनीय है।

व्यापारवादियों ने निर्मित माल के आयात का विरोध किया और कच्चे माल के आयात का समर्थन किया। सन् १४५५ में रेशम का आयात बन्द कर दिया गया और १४६३ में विभिन्न प्रकार के निर्मित माल का आयात बन्द कर दिया गया। निर्मित माल के निर्यात को प्रोत्साहित किया गया तथा कच्चे माल के निर्यात को हतोत्साहित किया। अठारहवीं शताब्दी में रेशमी माल के निर्यात को आर्थिक सहायता दी गयी। सम्राज्ञी एलिजाबेथ ने भेड़ और मेमनों का निर्यात निषिद्ध कर दिया जिससे देश में उन उद्योगों का विकास हो सके। व्यापारवादी उन विदेशियों की आर्थिक क्रियाओं का ध्यान रखते थे जो कि नवीन कला और शिल्प को प्रारम्भ करते थे। इस प्रकार के कारीगरों को संरक्षण दिया जाता था। ऐसे व्यक्तियों का प्रवास निषिद्ध था जो सुदूर व्यापार में लगे थे और देश का धन बाहर ले जाते थे।

विदेशी माल का उपभोग निषिद्ध किया गया किन्तु स्वदेशी माल के उपभोग का प्रचार किया जाता था। इस प्रकार के प्रयत्नों के ज्वलन्त उदाहरण सम्राज्ञी एलिजाबेथ की वे आज्ञाएँ हैं, जिनमें अंग्रेजी टोपी पहिनना अनिवार्य किया गया, और चार्ल्स द्वितीय का वह अध्यादेश, जिसमें अंग्रेज मुर्दे इंगलिश ऊनी-कफन में दफनाये जायें, है। अठारहवीं शताब्दी में भारी दण्ड और जुर्माने चीनी रेशम, भारतीय मलमल और फ्रांसीसी केम्ब्रिक के उपभोग पर लगाये गये। सन् १७०० में विदेशी रेशम पर प्रतिबन्ध लगाया गया तथा सन् १७२१ में भारतीय कैलिको पर प्रतिबन्ध लगा और सन् १७४५ में फ्रांसीसी केम्ब्रिक पर।

इसी प्रकार व्यापारवादी नीति के अन्तर्गत सरकार ने प्रमाणीकरण के लिए प्रयत्न किये। परन्तु ऊनी वस्त्रों के क्षेत्र में जब प्रमाणीकरण के रूप में उलझन

उत्पन्न हुई तो अधिनियम ढीले कर दिये गये। उद्योगो का नियन्त्रण व्यक्तियो या सामूहिक रूप से काम करने वाली कम्पनियो क आधीन था। यद्यपि व्यक्तियो के अधीन नियन्त्रण देने का आशय कुछ विशिष्ट उत्पादनो मे देश का विकास करना था। परन्तु यह एकाधिकार वाद मे इतना अप्रिय हो गया कि एलिजाबेथ के समय एक सदस्य ने ससद मे प्रश्न किया—'क्या रोटी भी एकाधिकार की सूची मे है ?"

व्यापारवादियो ने श्रम की नियन्त्रण-व्यवस्था भी अपनायी थी। एलिजाबेथ के समय मे श्रम-अधिनियम स्वीकृत हुआ था। सन् १५६३ के अधिनियमो के अन्तर्गत न्यायाधीशो को यह अधिकार दिया गया कि वे श्रम की न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर सकेंगे। कारीगर-सघो के पतन को रोकने के लिए अधिनियम ने उन्हे यह अधिकार भी दिया था कि उपाध्याय शिशिक्षुओ का कार्यकाल सात वर्ष तक बढा सकता है और उन पर उत्तम कार्य के लिए दबाव डाला जा सकता है।

नौ-वहन अधिनियम
(Navigation Acts)

व्यापारवादियो के युग में एक विस्तृत **नौ-वहन अधिनियम** स्वीकृत हुआ जिसमे विदेशी प्रतिस्पर्द्धा पर प्रतिबन्ध लगाया जाकर देश के नौ-वहन विकास को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया। यह अधिनियम उस उपनिवेशवादी नीति (Colonial policy) का परिणाम था जिसमे उपनिवेशो की आर्थिक क्रियाओं को मातृदेश के हित मे नियमित और नियन्त्रित किया जाता था। प्रथम नौ-वहन विधान (Navigation Act) १३८१ मे स्वीकृत हुआ जिसके अधीन देशवासियो द्वारा विदेशी जहाजो का उपभोग निषिद्ध कर दिया गया किन्तु यह अधिनियम अग्रेजी जहाज की अपर्याप्तता के कारण व्यावहारिक रूप प्राप्त न कर सका अत १४६३ मे उसमे सशोधन किया गया। हेनरी सप्तम के शासनकाल मे जो अग्रेज गेसकोनी से शराब लाते थे उन्हे अग्रेजी जहाजो मे ही शराब लाने के लिए विवश किया गया। इसी प्रकार का प्रतिबन्ध रानी एलिजाबेथ के शासनकाल मे लगाया गया था। सर आलीवर क्रोमवेल के राज्यकाल मे महत्वपूर्ण नौकावहन विधान स्वीकृत किया गया। अत. १६५१ मे यह विधान स्वीकृत हुआ कि जो माल यूरोप से आयात किया जाय वह या तो अग्रेजी जहाजो मे या उस देश के जहाजो मे ही आयात किया जाय जो कि सामान भेज रहा है। एशिया, अफ्रीका और अमरीका से सामान अग्रेजी जहाजो में लाया-ले-जाया जाय। इसी प्रकार आँग्ल जहाज ही ह्वेल मछली का तेल तथा कॉड मछली का आयात करे। इस अधिनियम मे सन् १६६० मे यह सशोधन किया गया कि जहाज के मालिक और तीन-चौथाई मल्लाह अग्रेज होने चाहिए। इसी प्रकार वस्तुओ का भी विभाजन नामाकित और अनामाकित रूप मे किया गया जिनका आग्ल जहाजो द्वारा भेजना अनिवार्य कर दिया गया।

इस समय तक यह विधान प्रभावोत्पादक हो गया था और उपनिवेशो के व्यापार के लिए उसे विस्तृत रूप दिया गया। आग्ल उपनिवेश प्रत्येक सामान आग्ल

जहाजो द्वारा ही प्राप्त करे, इस प्रकार की व्यवस्था १६६४ मे की गयी। इस प्रकार के प्रतिबन्धात्मक नौ-वहन विधान की प्राय आलोचना की जाती रही है, परन्तु यह सत्य है कि उसने आंग्ल जहाजरानी उद्योग को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। हेनरी सप्तम, अष्टम और एलिजाबेथ के काल मे इन कार्यों की ओर अधिक ध्यान दिया गया।

स्वर्ण संग्रह

उपर्युक्त व्यापारवादी नीति और अधिनियमो द्वारा यह स्पष्ट है कि इंगलैण्ड अत्यधिक स्वर्ण का संग्रह कर सका। यह संग्रह इसलिए सम्भव हो सका कि व्यापारवादी सिद्धान्त देश के स्वर्ण संग्रह मे विश्वास करते थे और उसके द्वारा देश की सैनिक शक्ति की सुदृढता मे विश्वास करते थे। लिपसन नामक अर्थशास्त्री ने ठीक ही कहा है कि कृषि, उद्योग जहाजरानी सम्बन्धी अधिनियमो मे कोष अधिनियम सबसे महत्त्वपूर्ण था। व्यापारवादी युग मे सर्वप्रथम सरकार ने रिचार्ड द्वितीय के शासनकाल मे स्वर्ण के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया। पन्द्रहवीं शताब्दी मे सिक्को का निर्यात भी अपराध घोषित किया गया और विदेशियो को इस बात की जमानत देनी होती थी कि वे बुलियन इंगलैण्ड से बाहर नहीं भेजेंगे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आलोचना भी इसीलिए की गयी कि वह देश से स्वर्ण बाहर भेजती थी। बुलियन के संग्रह के सम्बन्ध मे दो प्रकार की विचारधाराएँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम विचारधारा बुलियन के प्रवाह पर नियन्त्रण चाहती थी तथा दूसरी विचारधारा व्यापार के नियमन मे विश्वासी थी। विदेशी मुद्रा और बुलियन का निर्यात १६६३ म वैधानिक मान लिया गया। व्यापार सन्तुलन को व्यापारवादी राष्ट्रीय प्रगति का सूचनाक मानते थे।

व्यापारवाद की समीक्षा
(Critical Appraisal of Mercantilism)

राष्ट्रीयता की भावना के विकास के साथ-साथ व्यापारवादी रीति-नीति राष्ट्र के हित म रही थी। उससे राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता और शक्ति सम्पन्नता की भावनाओ को बल मिला। किन्तु व्यापारवाद अपने आप मे एक समुचित और सुव्यवस्थित कार्यक्रम नहीं था। उसके द्वारा अपनायी गयी नीतियाँ विरोधी-सी प्रतीत होती थी। इन नीतियो ने उद्योग और कृषि के हितो का सामंजस्य स्थापित करने मे पर्याप्त सफलता प्राप्त की थी परन्तु राष्ट्र के सर्वांगीण आर्थिक विकास का कार्यक्रम उसके पास नहीं था। समय समय पर राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के एकांगी पक्ष का अध्ययन राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की सम्पूर्णता पर पर्दा डाले रहा। प्राय यह कहा जाता है कि व्यापारवाद के रूप मे इंगलैण्ड प्रथम बार योजनाबद्ध कार्यक्रम प्रस्तुत कर सका परन्तु वास्तविकता इससे दूर है। नौवहन विधान और अनुकूल व्यापार के सिद्धान्त अपने आप म पूर्ण नहीं थे। यही कारण था कि उससे देश के व्यापार को लाभ के साथ-साथ हानि भी उठानी पड़ी। राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्वार्थों और

एकाधिकारों का प्रादुर्भाव और नियन्त्रण व्यापारवादी नीति की असफलता के परिचायक तत्त्व हैं।

व्यापारवाद की समाप्ति

व्यापारवादियों की नीतियाँ दोषपूर्ण थीं। उनके मतानुसार मुद्रा पूँजी का सर्वोत्तम रूप था। लेकिन यह सर्व विदित तथ्य है, जिससे शायद वे अपरिचित थे, कि वस्तुओं के निर्यात से ही बहुमूल्य धातुएँ प्राप्त होती हैं। उनके सिद्धान्तानुसार निर्यात व्यापार का सर्वोत्तम ढंग था अतः आयात की पूर्णरूप से उपेक्षा की गयी। परन्तु सभी निर्यातक देश बन जाये तो फिर आयातक देश कौन बनेगा ? यह भ्रान्त और एकांगी सिद्धान्त व्यापारवाद की आलोचना का कारण बना। इसी प्रकार व्यापारवाद ने अन्तरराष्ट्रीय मनोमालिन्य और विद्वेष की भावना को उकसाया। अनुकूल-व्यापार सन्तुलन वाले देश अपने को मित्र समझते थे और प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन वाले देशों को शत्रु राष्ट्र समझा जाता था। इस प्रकार की नीति का प्रभाव अठारहवीं शताब्दी में क्षीण होना प्रारम्भ हो गया था और १६वीं शताब्दी तक यह नीति बिलकुल क्षीण हो गयी थी। फ्रांस के अर्थशास्त्री और इगलैण्ड के अर्थशास्त्री जिनमें प्रकृतिवादी (Physiocrates) और आदम स्मिथ का नाम लिया जा सकता है, ने इस प्रकार की नीति का विरोध किया क्योंकि वे अर्थशास्त्री पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा और निर्बाध-व्यापार के पक्ष में थे।

व्यापारवादी व्यवस्था के दोषों की तुलना नाजी-व्यवस्था के आधारभूत दोषों से की जा सकती है। यह एक ऐसी व्यवस्था थी जो अन्य राष्ट्रों की हानि पर आधारित थी। अन्य राष्ट्रों की गरीबी इगलैण्ड की सम्पन्नता की अन्तिम कसौटी नहीं हो सकती थी। इस नीति के अपनाने से उपनिवेशों और इगलैण्ड के मध्य कटुता का श्रीगणेश हुआ। अमरीकी-स्वतन्त्रता-युद्ध इस नीति की असफलता का ज्वलन्त उदाहरण कहा जा सकता है। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप जो आर्थिक और व्यापारिक परिवर्तन उपस्थित हुए उनके द्वारा व्यापारवाद की कमर टूट गयी। कुछ विचारकों के अनुसार जितना शीघ्र व्यापारवाद का पतन सम्भव नहीं माना गया उतना शीघ्र पतन राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक परिस्थितियों के दबाव से हुआ। जिस व्यापारवाद ने एकछत्र रूप से मध्यकालीन इगलैण्ड की आर्थिक व्यवस्था को शासित और नियमित किया वह औद्योगिक क्रान्ति के थपेड़े से ध्वस्त हो गया।

नव-व्यापारवाद (Neo-Mercantilism)—बीसवीं शताब्दी में और विशेषकर प्रथम विश्व युद्ध के बाद से विश्व में व्यापारवाद एक बार फिर कुछ नये रूप में दिखायी दे रहा है। इसे नव-व्यापारवाद (Neo-Mercantilism) कहा जाता है और इसका मुख्य उद्देश्य अन्तरराष्ट्रीय हितों के स्थान पर राष्ट्रीय हितों को प्रधानता देना है। इगलैण्ड और संयुक्त राज्य अमरीका ने इन सिद्धान्तों को प्रश्रय दिया है। स्वर्ण संग्रह एवं अनुकूल व्यापार शेष के द्वारा अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने में

विश्वास करने लगे हैं और सन् '१६३२ के बाद से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होंने सरक्षणवादी नीति (Protectionism) का सहारा लिया है। इंगलैण्ड के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री लार्ड जे० एम० कीन्स ने अपनी पुस्तक 'Treatise on Money' में यह स्वीकार किया है कि देश की विकासशील अर्थ-व्यवस्था के लिए पूंजी निर्माण एव पूंजी सग्रह आवश्यक है।

प्रश्न

1 What changes led England to adopt a policy of Mercantilism in the 15th century
पन्द्रहवीं शताब्दी मे इंगलैण्ड द्वारा 'वाणिज्यवादी नीति' अपनाये जाने की पृष्टभूमि मे कौन से परिवर्तन उत्तरदायी थे।

2 Discuss the salient features of Mercantilism and throw light on the advantages of such a policy.
वाणिज्यवाद की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए तथा इस नीति से इंगलैंड को जो लाभ हुआ उसका उल्लेख कीजिए।

१३

व्यापारिक क्रान्ति
(Commercial Revolution)

मध्यकालीन युग में पश्चिमी यूरोप में वाणिज्य या व्यापार का आर्थिक सन्धा के रूप में आज के समान महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं था। स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय उत्पादन द्वारा पूरी कर ली जाती थी। इसके अतिरिक्त व्यापारिक सम्बन्ध प्राच्य देशों से ही थे और उस समय भूमध्य सागर और उसके पास स्थानीय मार्ग यूरोपीय व्यापार के केन्द्र थे। एशियाई देशों और विशेषतौर से भारत से व्यापार स्थलीय मार्ग से होता था जिसका केन्द्रीय स्थान कुस्तुन्तुनिया था। किन्तु सन् १४५३ में तुर्क लोगों ने कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार कर लिया। उसके फलस्वरूप पूर्वी देशों के साथ व्यापार में एक अवरोध उपस्थित हो गया। परिणामस्वरूप यूरोप के राष्ट्रों ने पूर्वी देशों से व्यापार करने के लिए सामुद्रिक मार्ग खोजन का प्रयत्न किया। स्पेन और पुर्तगाल ने इन मार्गों की खोज में आगवानी की। सन् १४९२ में क्रिस्टोफर कोलम्बस ने भारत की खोज करने की अपेक्षा नयी-दुनिया की खोज की। सन् १४९७ में केबट्स (Cabots) उत्तरी अमरीका की मुख्य भूमि पर उतरा और सन् १४९८ में वास्को-डी-गामा उत्तम आशा अन्तरीप का चक्कर लगाता हुआ भारतवर्ष पहुँचा। इन सामुद्रिक मार्गों की खोजों ने यूरोप के आर्थिक जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही व्यापार में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए :

(१) नवीन व्यापारिक क्षेत्रों का आविर्भाव जो सामुद्रिक मार्गों की खोज का सम्भावित परिणाम था।

(२) नयी विशाल व्यापारिक कम्पनियों का अभ्युदय जो कि इन देशों से बड़े पैमाने पर व्यापार चला सके।

(३) स्थानीय व्यापारिक नीति के स्थान पर राष्ट्रीय व्यापार नीति का विकास।

(४) करेन्सी, बैंकिंग और साख का विकास।

(१) **सामुद्रिक मार्गों की खोज**—इन व्यापारिक परिवर्तनों मे इंगलैण्ड का स्थान सर्वोपरि था। इगलैण्ड ने नवीन सामुद्रिक मार्गों की खोज नही की किन्तु स्पेन और पुर्तगाल के इन साहसिक कार्यों को देखकर इगलैण्ड के निवासियो को भी प्रेरणा मिली और सन् १५३० के आसपास इगलैण्ड के नाविक मत्स्य-केन्द्र खोजने गये तो विलियम हॉकिन्स ब्राजील पहुँचा। रानी एलिजाबेथ के शासनकाल मे—जिसे इगलैण्ड के इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है सर ह्यूज विलगबॉय और रिचार्ड चान्सलर उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र से भारत का मार्ग खोजने निकले। भारत का मार्ग खोजने के बजाय चान्सलर आर्केन्जिल (रूस) पहुँचा और उसने मास्को के साथ व्यापारिक सन्धि की। इसके पश्चात् फ्रोविसर तथा डेविस नवीन मार्ग खोजन मे सफल हुए। किन्तु इन नवीन सामुद्रिक खोजो मे इगलैण्ड को स्पेन और पुर्तगाल से सघर्ष लेना पडा और इस रूप म सामुद्रिक जहाजो की लूट का काम आरम्भ हुआ। स्पेनिस और पुर्तगाली अग्रेजो की इन हरकतो से चिढ़कर उन्हे समुद्री कुत्ते के नाम से पुकारन लगे। इस प्रकार के सघर्ष म धार्मिक भावनाओ का अन्तर भी क्रियाशील था। स्पेन और पुर्तगाल जहाँ रोमन-कैथोलिक मतानुयायी थे वहाँ इगलैण्ड प्रोटेस्टेन्ट मतानुयायी था। सन १५८८ म स्पेन के अजय-आर्मेडा की पराजय के बाद इगलैण्ड का प्रभाव अधिकाधिक बढने लगा। अत इगलैण्ड अन्य देशो के साथ व्यापार करने मे स्वतन्त्र हो गया।

कुतुबनुमा इत्यादि सामुद्रिक यात्रा-यन्त्रो का आविष्कार होने से सामुद्रिक यात्राएँ पहले से अधिक सुरक्षित होने लगी। १५वी और बाद की शताब्दियों मे जल-यातायात की कठिनाइयो पर विजय प्राप्त कर ली गयी। पूर्वी देशो से होने वाले व्यापार म मशाले, रेशम, बहुमूल्य हीरे, पन्ने और सुगन्धित पदार्थ सम्मिलित होते थ किन्तु इस नवीन व्यापारिक क्षेत्रो की खोज न, चाय-कहवा, नारियल, नीबू, नारगी, नाशपाती, रग, दरियाँ, लकडी के सामान को जन-साधारण के लिए उपलब्ध कर दिया जिससे उनके आर्थिक जीवन स्तर और आदतो मे परिवर्तन हो गया।

(२) **चार्टर्ड कम्पनियों का अभ्युदय**—नवीन व्यापारिक-क्षेत्रो को हथिया लेन के लिए बडी-बडी कम्पनियाँ स्थापित करने का प्रयत्न किया गया क्योकि उनकी स्थापना मे निम्नलिखित लाभ थ

(१) इतनी दूर की सामुद्रिक यात्रा म हानि और खतरे को सहने की शक्ति व्यक्ति से अधिक कम्पनी मे थी।

(२) व्यक्ति की अपेक्षा कम्पनी विभिन्न देशो के शासकों से व्यापार के लिए सुविधाएँ और सरक्षण प्राप्त कर सकती थी।

(३) व्यक्ति लालच के कारण बेईमान हो सकता है किन्तु कम्पनी मे इस प्रकार की प्रवृत्ति पनपने मे समय लगता है।

(४) सरकार ने कम्पनियो के निर्माण को प्रोत्साहन दिया क्योकि व्यक्ति की अपेक्षा कम्पनी से कर वसूल करना आसान था।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ अस्तित्व में आयीं। नियन्त्रित कम्पनियाँ वे कम्पनियाँ थीं जो कि सम्राट के चार्टर (घोषणा-पत्र) द्वारा बनायी जाती थीं। नियन्त्रित कम्पनियों में नवीन व्यक्तियों के निषेध ने उसे आलोचना का पात्र बनाया। अतः धीरे-धीरे इन कम्पनियों के अधिकारों पर नियन्त्रण होता गया और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक ये समाप्त भी कर दी गयीं।

नियन्त्रित कम्पनियों के अन्तर्गत 'मर्चेण्ट एडवेन्चरर' का नाम बहुत प्रसिद्ध रहा है। पर्याप्त समय के अस्तित्व के पश्चात् सन् १५६४ में शाही फरमान द्वारा इसकी स्थापना की मान्यता दी गयी। यह राइन और एल्ब क्षेत्रों में व्यापार करती थी। इसने गृह-युद्ध के समय भी बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया जिसमें कि चार्ल्स प्रथम की पराजय हुई। इसी प्रकार मसकोवी कम्पनी (Muscovy Co) की स्थापना सन् १५५५ में हुई। इसका व्यापार रूस, फारस, आर्मीनिया और कैस्पियन सागर से होता था। १७वीं शताब्दी में डच प्रतिस्पर्द्धा और जार की नाराजगी से व्यापार को आघात पहुँचा। भूमध्य सागर के पास मुस्लिम देशों से व्यापार बारबरे और लेवान कम्पनियाँ करती थीं। इस समय की सबसे प्रसिद्ध कम्पनी ईस्ट इण्डिया कम्पनी थी जिसकी स्थापना १६०० ई० में शाही फरमान द्वारा हुई थी। पहले यह नियन्त्रित कम्पनी के रूप में स्थापित हुई परन्तु बाद में संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी के रूप में इसका विकास किया गया। इस कम्पनी का एशिया, अफ्रीका और अमरीकी बन्दरगाहों के व्यापार पर एकाधिकार था। इस प्रकार प्रशान्त महासागर से हिन्द महासागर तक का सारा व्यापार इसके नियन्त्रण में ही था। यह कपड़े, लोहे के सामान और काँच में व्यापार करती थी। भारत में व्यापारिक उद्देश्य को तिलांजलि दे इसने साम्राज्य स्थापना के स्वप्न देखने आरम्भ किये और यह साम्राज्य स्थापना में सफल भी हुई। बाद में इसकी राजनीतिक गतिविधियों को सरकार ने संसद द्वारा सन् १७७३ और १७७४ में नियन्त्रित किया। १८५८ में कम्पनी समाप्त कर दी गयी जबकि सरकार ने प्रत्यक्ष रूप से भारत पर अधिकार कर लिया। अतः यह कहा जा सकता है कि विभिन्न व्यापारिक कम्पनियों की स्थापना ने विश्व के बाजारों से इंगलैंड का सम्बन्ध स्थापित कर दिया था।

(३) राष्ट्रीय व्यापार नीति का निर्माण—व्यापारिक क्रान्ति का तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय व्यापार नीति का सृजन था। इससे पूर्व स्थानीय व्यापार की दशा में स्थानीय हितों का महत्त्वपूर्ण स्थान था, परन्तु जब व्यापारिक क्षेत्र का विस्तार हुआ तो यह मानना पड़ा कि राष्ट्रीय हित के दृष्टिकोण से व्यापार नीति का निर्धारण किया जाना चाहिए। इस प्रकार के राष्ट्रीय व्यापारवादी नीति के दृष्टिकोण को व्यापारवाद (Mercantilism) की संज्ञा दी गयी।

(४) मुद्रा, बैंकिंग एवं साख में वृद्धि—व्यापारिक-क्रान्ति का चतुर्थ महत्त्वपूर्ण भाग मुद्रा, बैंकिंग और साख की वृद्धि था जब तक व्यापार क्षेत्र और स्वभावानुसार सीमित था, तब इस प्रकार का अनुभव नहीं हो पाता था किन्तु जब तक

१६वीं और १७वी शताब्दी मे व्यापार के क्षेत्र और स्वभाव मे वृद्धि हुई और वह राष्ट्रीय सीमा लाँघकर दूर देशो से होने लगा, यह आवश्यक था कि व्यापारियो की मुद्रा सम्बन्धी आवश्यकता भी बढती। इस समय तक यूरोपीय देशो मे स्वर्ण और रजत सिक्के ही प्रचलन मे थे। अत सिक्कों की संख्या मे वृद्धि तभी सम्भव थी जबकि उस धातु विशेष के उत्पादन मे वृद्धि हो। यह ठीक था कि धातु के उत्पादन मे वृद्धि के प्रयत्न किये गये किन्तु अमरीका की खोज और उन धातुओं की खदानो की खोज के बाद ही इस आवश्यकता की पूर्ति हो सकी।

स्वर्ण और रजत का निरन्तर प्रवाह तथा अन्य कारणो ने यूरोपीय देशो की अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित किया। पूंजी के सचय और विनियोजन से मुद्रा की चलन मात्रा मे अभिवृद्धि हुई। बैंकिंग का विकास इगलैण्ड में यूरोप के अन्य देशो के बाद मे हुआ। अत इगलैण्ड को अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति अन्य देशो से करनी पडती थी।

जब सन् १६८८ की गौरवमय-क्रांति (Glorious Revolution) के पश्चात् विलियम तृतीय इगलैण्ड का सम्राट बना और उसे धन की आवश्यकता हुई तो सन् १६६४ म बैंक ऑफ इगलैण्ड की प्रथम बार स्थापना हुई और इस प्रकार आधुनिक ढग की बैंकिंग व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ। गत दो शताब्दियो मे इगलैंड ने बैंकिंग का इस सीमा तक विकास किया है कि अब यह व्यवस्था सर्वोच्च स्थिति पर पहुँच गयी है।

(५) लिमिटेड कम्पनियो का विकास—इसी प्रकार सयुक्त-पूंजी कम्पनियो का आविर्भाव भी अन्य महत्त्वपूर्ण चरण है। सत्रहवी शताब्दी के अन्त तक इगलैण्ड और स्काटलैण्ड मे कुल मिलाकर १४० सयुक्त पूंजी कम्पनियाँ थी जिनकी कुल पूंजी ४२,५०,००० पौण्ड थी। इन कम्पनियो के शेयरो की कीमतो मे उतार-चढाव और सट्टे की प्रवृत्ति बहुत तीव्र थी। ईस्ट ईण्डिया कम्पनी के शेयरो की कीमतो मे १६६२ से १६६७ तक २०० पौंड से ३७ पौंड का उतार रहा। सट्टे की यह प्रवृत्ति कितनी बढी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण साउथ सी बबल कम्पनी का समापन होता है।

उपर्युक्त परिवर्तनों का प्रभाव विदेशी व्यापार की वृद्धि पर पडा। सन् १७०० मे कुल निर्यात विदेशी व्यापार ३,१७,००० टन था जो १७५० मे ६,६१,००० टन और १८०१ मे १६,५६,००० तक पहुँच गया। इसी प्रकार आयात और निर्यात का औसत मूल्य १६६८ मे ५५,००,००० और १७०१ मे ६४,००,००० पौंड था।

~~व्यापारिक~~ औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव
(Impact of Commercial Revolution)

(क) आर्थिक प्रभाव

औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् बड़े पैमाने के उत्पादन के लिए जहाँ एक ओर

यातायात के साधनों पर निर्भर रहना आवश्यक था वहाँ दूसरी ओर व्यापार की प्रवृत्तियों और साधनों में परिवर्तन पर भी निर्भर रहना पड़ा। सड़कों और कृत्रिम जल-मार्गों का निर्माण और रेलवे और वाष्पचालित जहाजों का प्रादुर्भाव व्यापारिक क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता का एक नियन्त्रण था। इस परिवर्तन के तीन मुख्य तत्त्व थे —विस्तार विशिष्टीकरण और एकीकरण।

(१) **यातायात के साधनों का विकास**—रेलवे, वाष्प जहाज़ टेलीफोन, तार और बेतार के तार के साधनों ने यातायात और परिवहन की परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन कर दिया था जिससे व्यापारी विश्व के विभिन्न भागों से सम्पर्क में आये।

यातायात के विकास की ५ प्रमुख विशेषताएँ निम्न थी

(i) गति (Speed),

(ii) सुरक्षा (Safety),

(iii) नियमितता (Regularity)

(iv) मितव्ययिता (Economy)

(v) क्षमता (Capacity)।

(२) **प्रमाणीकरण एवं उपज विनिमयों का विकास**—इसी समय वस्तुओं में प्रमाणीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिससे वस्तु का विक्रय वर्णन से ही सम्भव हो सका। कुछ व्यापारिक नियमों और आचार संहिताओं का निर्माण भी किया गया जिसे व्यापारी स्वेच्छा से पालन कर सकें। इन कार्यों ने विक्रय की व्यवस्था में भी परिवर्तन कर दिये। नमूने दिखावे के आधार पर वर्तमान और भविष्य के सौदे होने लगे और उपज विनिमय संस्थानों (Produce Exchanges) का विकास हुआ। इन उपज विनिमय संस्थानों के सम्पर्क से वस्तुओं का मूल्य वास्तविकता और समानता की ओर उन्मुख रहता है। कुछ वस्तुओं के स्थानीय बाजार अन्तरराष्ट्रीय बाजार में परिणित हो गये।

(३) **विशिष्टीकरण (Specialisation)**—तीसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व विशिष्टीकरण का था। प्रथम परिवर्तन जो विशिष्टीकरण के रूप में दृष्टिगोचर हुआ वह था व्यापार और उद्योग का अलग अलग होना। व्यापारिक संस्थान भी कई भागों, उपभागों में विभाजित हुआ—थोक, खुदरा इत्यादि। इस प्रकार विनिमय संस्थानों में भी विशिष्टीकरण की प्रक्रिया अधिकाधिक प्रबल होती गयी। गेहूँ, कपास, रबड़ इत्यादि में अलग अलग उपज विनिमय-संस्थान स्थापित होते गये। व्यापार के इस विशिष्टीकरण के ढंग से मध्यम वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ और इसे व्यापारिक-एजेण्ट की संज्ञा दी गयी।

(४) **एकीकरण एवं संयोग (Combination)**—व्यापारिक क्रान्ति ने व्यापारिक एवं औद्योगिक उपक्रमों के एकीकरण एवं संयोग की प्रवृत्ति का विकास किया। औद्योगीकरण के विकास और प्रसारण, यातायात के साधनों की उन्नति और

उत्पादको मे प्रतिस्पर्द्धा की उपस्थिति ने एक ही प्रकार के कार्यों वाले व्यवसायो को एकीकरण की ओर प्रवृत्त किया। विभागीय स्टोर, चेन स्टोर इस बात के उदाहरण हैं जो अमरीका और यूरोप महाद्वीप मे फैले हैं। इनके विकास से थोक और खुदरा व्यापारियो का अस्तित्व समाप्त सा हो गया और उपभोक्ताओ से ये प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने लगे।

(५) विदेशी व्यापार का विकास—इगलैण्ड का विदेशी व्यापार जो १७वी और १८वी शताब्दी मे वृद्धि पर था वह १९वी शताब्दी मे आते आते औद्योगिक क्रान्ति और यातायात के साधनो की उन्नति से और भी अधिक बढ गया। व्यापारिक नीति मे परिवर्तनो से जिन साम्राज्यो का निर्माण इगलैण्ड ने किया व भी इसमे सहायक सिद्ध हुए। १९वी शताब्दी क उत्तरार्द्ध मे विदेशी व्यापार की जो वृद्धि हुई वह इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है

वर्ष	औसत आयात (दस लाख पौण्ड)	औसत निर्यात (दस लाख पौण्ड)	औसत पुन निर्यात (दस लाख पौण्ड मे)
१८५५-५९	१४६	११६	२३
१८६० ६४	१९३	१३८	४२
१८६५-६९	२३७	१८१	४९
१८७० ७४	२९१	२३५	५५
१८७५-७९	३२०	२०२	५५
१८८०-८४	३४४	२३४	६४
१८८५-८९	३१८	२६६	६१
१८९० ९४	३५७	२३४	६२
१८९५ ९९	३६३	२३८	६०
१९००-००	४६०	२८३	६३

१९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे इ गलैण्ड के विदेशी व्यापार मे जो परिवर्तन हुए वे इस प्रकार हैं

(I) विदेशी व्यापार के स्वभाव मे परिवर्तन—कल कारखानो के स्थापित होने से उत्पादित और पक्के माल का निर्यात ही अधिकाधिक होने लगा। निर्यात की मुख्य वस्तुएँ टैक्सटाइल मशीनरी, कोयला रसायन और मिट्टी के बर्तन इत्यादि थी। इसी प्रकार आयात म प्राच्य देशो की विलासितापूर्ण वस्तुओ की अपेक्षा कच्चा माल और खाद्यान्न मुख्य था। इस प्रकार का व्यापारिक परिवर्तन औद्योगिक क्रान्ति की देन थी।

(II) विदेशी व्यापार के मूल्य और परिमाण मे वृद्धि—सन् १८०१ मे निर्यात और आयात क्रमश ४१० लाख पौण्ड और ३१० लाख पौण्ड के थे वे सन् १९०० मे २,८३० और ४,६०० लाख पौण्ड के हो गये। इस वृद्धि का श्रेय भी

औद्योगिक क्रान्ति को ही दिया जा सकता है। यद्यपि इस प्रकार की प्रवृत्ति सामान्य नहीं रही किन्तु उसमे उतार-चढाव होते रहे क्योकि आर्थिक मन्दी ने इनको प्रभावित किया था। सन् १८७५, ७९, ८५ और ८६ के वर्ष इस प्रकार के वर्ष थे जिनमे आयात-निर्यात अत्यधिक प्रभावित हुए।

(iii) आयातों मे निर्यातों की अपेक्षा तीव्र वृद्धि—आयातो म आशातीत वृद्धि होने का कारण घरेलू बाजार की आवश्यकता पूर्ति करना था क्योकि कच्चा माल देश की आवश्यकता पूर्ति के लिए अनिवार्य था।

२०वी शताब्दी से प्रथम महायुद्ध के काल तक व्यापार मे आशातीत वृद्धि हुई, यद्यपि इस समय अन्य औद्योगिक देश भी प्रतिद्वन्द्वी थे। इगलैण्ड के विदेशी व्यापार का शीर्ष बिन्दु १९१३ का वर्ष कहा जा सकता है जबकि आयात और निर्यात क्रमश ७,८९० और ५ २५० लाख पौण्ड का था। बाद के वर्षो मे यह गिरते गये। इस प्रकार की वृद्धि का श्रेय बीमा, बैंकिंग और जहाजरानी के विकास को दिया जा सकता है। इगलैण्ड की बैंकिंग-व्यवस्था बैंक ऑफ इगलैण्ड की स्थापना के बाद ही पनपी क्योकि सन् १८२५ ई० से पूर्व का बैंकिंग विकास अस्तव्यस्त सा था। १८२६ और १८३३ के अधिनियमो के अन्तर्गत सयुक्त-पूँजी-बैंको की स्थापना हुई और इस प्रकार बैंकिंग-व्यवस्था मे सुधार हुआ। सीमित उत्तरदायित्व और सरक्षित दायित्व के सिद्धान्तो के चलन ने विकास की गति और भी तीव्र कर दी। इस प्रकार के अधिनियम सन् १८५८, १८६२ और १८७८ मे स्वीकृत हुए। इन अधिनियमो ने सुदृढ बैंकिंग और साख सस्थाओ की नीव डाली जो देश की बचत का राष्ट्रीय उद्योगो मे उपयोग करा सकी।

(६) पुनर्निर्यात व्यापार (Entrepot Trade)—परिवहन, बैंकिंग, बीमा और आयात-निर्यात के विकास ने ब्रिटेन को अन्तरराष्ट्रीय माल का केन्द्र बना दिया। लन्दन विदेशी भुगतान, सोने-चाँदी के सौदा तथा उपज एव स्टॉक विनिमय बाजारो का सबसे बडा केन्द्र माना जाने लगा। उपनिवेशो के विभिन्न प्रकार के माल के सौदे लन्दन मे होने लगे तथा अन्य देशो को निर्यात के लिए लन्दन म सब प्रकार की वस्तुओ का भारी स्टॉक रखा जाने लगा। चाय, ऊन, रबड, तम्बाकू, चमडा तथा धातुओ का आयात पुनर्निर्यात के उद्देश्य से किया जाने लगा। वस्तुओ का यह पुन-निर्यात मुख्यत यूरोप के देशो को होने लगा।

(७) अदृश्य आयात-निर्यात (Invisible Imports and Exports)—वस्तुओ के व्यापार के साथ-साथ इगलैण्ड मे सेवाओ के आयात-निर्यात का भी विकास हुआ। सेवाओ के निर्यात से उसे पर्याप्त विदेशी मुद्रा प्राप्त होने लगी। इनमे यातायात, बैंकिंग एव बीमा सम्बन्धी सेवाएँ, विदेशो मे विनियोजित ब्रिटिश पूँजी पर ब्याज, लाभ एव लाभाश एव पर्यटन सेवाओ से प्राप्त होने वाली आय से ब्रिटेन को अनुकूल भुगतान शेष की स्थिति का लाभ होने लगा। इस प्रकार प्राप्त होने वाली

आय के साधनो मे विदेशो मे विनियोजित ब्रिटिश पूँजी पर प्राप्त होने वाले ब्याज, लाभ एव लाभांश का स्थान प्रमुख था।

(८) **पारिकाल्पनिक सौदो मे वृद्धि** (Increase in Speculative Transactions)—स्टॉक एक्सचेन्ज एव प्रोड्यूस एक्सचेन्ज जैसी सस्थाओ के विकास ने सट्टे की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया और वस्तुओ एव अशो के मूल्यो मे होने वाले असामान्य उतार-चढाव को रोकने तथा दीर्घकालीन दृष्टि से मूल्यो मे स्थायित्व लाने मे सफलता मिली।

(९) **कार्यालय पद्धतियों मे परिवर्तन** (Changes in Office Procedure)—क्रय-विक्रय की मात्रा मे वृद्धि के साथ-साथ औद्योगिक एव व्यापारिक कार्यालयो मे पत्र-व्यवहार, लेखा आदि के तरीको मे परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अत डुप्लीकेटिंग, टाइपिंग, इन्डेक्सिग, फाइलिंग एव एकाउण्ट-कीपिंग के लिए नवीन प्रणालियाँ अपनायी जाने लगी जिससे समय की बचत और कार्यक्षमता मे वृद्धि होने लगी।

सामाजिक प्रभाव

व्यापारिक क्रान्ति ने ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था को स्थानीय से राष्ट्रीय एव राष्ट्रीय से अन्तरराष्ट्रीय मोड दिया। यही नहीं, इस क्रान्ति ने ब्रिटेन के सामाजिक जीवन को भी प्रभावित किया। जोखिम उठाने एव धन कमाने के असख्यो व्यावसायिक अवसरो ने ब्रिटिश समाज की रचनात्मक प्रवृत्तियो के द्वार खोल दिये और ब्रिटिश नागरिक अधिकाधिक धनोपार्जन के द्वारा स्वय को तथा इस प्रकार समस्त समाज को सम्पन्न बनाने के पुनीत कार्य म जुट गये। सामाजिक विचारधाराओ के दृष्टिकोणो एव मूल्यो की प्रकृति मे तेजी से परिवर्तन होने लगा। सामाजिक जीवन मे होने वाले परिवर्तन इस प्रकार थे

(१) **नये व्यावसायिक वर्गों का उदय**—व्यापार के विकास ने अनेक प्रकार के मध्यस्थो को जन्म दिया। इनमे दलाल, आढतिय, अभिकर्ता (Agent), ट्रैवलिंग एजेण्ट, थोक एव खुदरा व्यापारी एव नीलामकर्त्ता (Auctioneers) आदि प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त प्रबन्धक, निर्देशक, प्रवतक, सेक्रेटरी, अभिगोपक, बैंकर, फाइनेन्सियर आदि के रूप मे विशेषज्ञो के अनेक वर्ग बन गये। इनसे समाज मे धनोपार्जन के नय अवसर लोगो को प्राप्त होने लगे।

(२) **जनसख्या की गतिशीलता मे वृद्धि**—व्यापारिक अवसरो मे वृद्धि के कारण व्यक्तियों के आवास-प्रवास मे वृद्धि हुई। ग्रामो का स्वावलम्बन समाप्त होने से शहरी जनसख्या मे वृद्धि हुई। विदेशो मे व्यापारिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए ब्रिटेन से प्रति वर्ष अधिक सख्या मे ब्रिटिश नागरिक अन्य देशो मे जाकर बसने लगे।

(३) **पारिवारिक जीवन मे परिवर्तन**—लोगों के जीवनयापन के स्तर मे वृद्धि हुई और वे अनेक प्रकार की नयी-नयी वस्तुओ को व्यवहार मे लाने लगे।

इस प्रकार उपभोग की माँग की प्रकृति मे भी परिवर्तन हुआ। महिलाओ को भी आर्थिक जीवन मे प्रवेश करने का अवसर मिला क्योकि व्यापारिक कार्यालयो मे उनके लिए काम के अनेक अवसर उत्पन्न हुए जिनमे वे जीविकोपार्जन करके आर्थिक रूप से स्वतन्त्र जीवनयापन कर सकती थी।

(४) इगलिश भाषा का प्रसार— अन्तरराष्ट्रीय व्यापारिक सम्बन्धो मे वृद्धि होने से ब्रिटेन को इगलिश भाषा का विदेशो मे प्रसार करने मे सफलता मिली और यह विश्व की व्यापारिक भाषा बन गयी। विदेशो मे इगलिश साहित्य की माँग आने लगी और इनसे ब्रिटेन मे पुस्तक-लेखन एव मुद्रण का विस्तार हुआ।

(५) राजनीतिक लाभ—यह सर्वविदित है कि ब्रिटेन ने अपने साम्राज्य का विस्तार व्यापार के माध्यम से किया। भारत म ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक विशुद्ध व्यापारिक सस्था के रूप मे आयी और धीरे-धीरे उसने समस्त भारत मे ब्रिटेन का साम्राज्य स्थापित कर दिया। अन्य कई देशो मे भी ब्रिटिश चार्टर्ड कम्पनियो ने जो कि केवल व्यापारिक कार्यों से स्थापित की गयी थी ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना मे योग दिया।

(६) अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धो मे वृद्धि—व्यापार के द्वारा विदेशो से निकट सम्बन्ध स्थापित करने मे ब्रिटेन सफल हुआ। विश्व के लगभग सभी देशो मे ब्रिटेन के आर्थिक हितो म वृद्धि होने लगी। व्यापारिक क्रान्ति ने ब्रिटेन को अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का नेतृत्व प्रदान किया।

विदेशी व्यापार की वर्तमान स्थिति
(Present Position of Foreign Trade)

उपर्युक्त वर्णन से यह भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक क्रान्ति ने ब्रिटेन मे व्यापारिक क्रान्ति का जन्म दिया तथा व्यापारिक क्रान्ति ने उसे अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का अगुआ बना दिया। पिछली शताब्दी के अन्त तक ब्रिटेन विश्व का सबसे बडा व्यापारिक राष्ट्र था और विश्व व्यापार के एक-तिहाई व्यापार का श्रेय उसे प्राप्त था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद उसकी स्थिति मे परिवर्तन आना आरम्भ हुआ क्योंकि उस समय तक अन्य देशो मे भी आर्थिक प्रगति हो चुकी थी। सन् १९१४ तक विश्व के औद्योगिक निर्मित माल के निर्यात में ब्रिटेन का भाग ३० प्रतिशत था जो कि सन् १९२९ मे २४ प्रतिशत एव सन् १९३७ मे केवल २२ प्रतिशत रह गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इसम और कमी हुई और सन् १९६९ मे यह केवल १२ प्रतिशत रह गया। किन्तु फिर भी आज ब्रिटेन औद्योगिक निर्मित माल के निर्यात मे विश्व का तीसरा बडा व्यापारिक राष्ट्र है। उसके क्षेत्रफल एव जनसख्या को देखते हुए ब्रिटेन की यह स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जा सकती है—ब्रिटेन का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का केवल एक प्रतिशत और जनसख्या विश्व की कुल जनसख्या का केवल २ प्रतिशत ही है।

(१) विदेशी व्यापार का आकार (Volume of Foreign Trade)— सन् १९३८ में कुल आयात व्यापार ९१९० करोड़ पौण्ड का था, यह सन् १९४८ में २००.०० करोड़ पौण्ड का, तथा १९५१ में ३९६.२० करोड़ पौण्ड और सन् १९६४ में ५५९.२० करोड़ पौण्ड तथा सन् १९६६ में यह लगभग ६५० करोड़ पौण्ड हो गया। इसी प्रकार निर्यात व्यापार का मूल्य सन् १९३८ में ४७.१० करोड़ पौण्ड से बढ़ कर सन् १९५० में २५९.६ करोड़ और सन् १९६० में ३५५.०० करोड़ तथा १९६४ में ४२४.५ करोड़ तथा सन् १९६६ में कुल ब्रिटिश निर्यात लगभग ५५० करोड़ पौण्ड था।

(२) विदेशी व्यापार की दिशा (Direction of Foreign Trade)— पिछली एक शताब्दी से ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था में विदेशी व्यापार का महत्त्व अधिक रहा है। यह अपने यहाँ से विश्व के अन्य देशों को अपने कारखानों में निर्मित माल (कुल व्यापार का ८४%)—मुख्यतः इन्जीनियरिंग सामान, मोटर गाड़ियाँ, जहाज, धातुएँ, वस्त्र, रासायनिक पदार्थ, पैट्रोलियम विद्युत मशीनें, आदि वस्तुएँ—निर्यात करता है।

यह निर्यात सन् १९६६ में विश्व के विभिन्न भागों में निम्न अनुपात में हुआ है

क्षेत्र	कुल निर्यात का प्रतिशत
१ स्टर्लिंग क्षेत्र	३०.४
२ उत्तरी अमरीका	१६.५
३ यूरोपीय साझा बाजार	१९.२
४ EFTA	१५.१
५ लैटिन अमरीका	३.३
६ पूर्वी यूरोप	३.३
७ मध्य पूर्व	३.५
८ अन्य देश (जापान आदि)	८.७
	१००.०

आयात व्यापार में मुख्यतः खाद्यान्न खाद्य-पदार्थ, मक्खन, पनीर, चाय, तम्बाकू, कपास, ऊन, धातुएँ आदि वस्तुएँ होती हैं। कुल आयात व्यापार का २७ प्रतिशत खाद्य-पदार्थों, १६ प्रतिशत कच्चा माल, २५ प्रतिशत अर्द्ध-निर्मित माल, २० प्रतिशत निर्मित माल तथा शेष १२ प्रतिशत धातु एवं ईंधन के रूप में होता है।

सन् १९६६ में ब्रिटेन का कुल आयात विश्व के विभिन्न क्षेत्रों से इस प्रकार हुआ

क्षेत्र	कुल आयात का प्रतिशत
१ स्टर्लिंग क्षेत्र	२७ ४
२ उत्तरी अमरीका	१९ ९
३ यूरोपीय साझा बाजार	१९ ६
४ EFTA	१४ ६
५ लैटिन अमरीका	४ ५
६ पूर्वी यूरोप	३·९
७ मध्य पूर्व	४ ३
८ अन्य क्षेत्र (जापान आदि)	५ ८
	१०० ०

इससे स्पष्ट है कि पिछली अर्द्ध-शताब्दी म इगलैण्ड के विदेशी व्यापार म अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। सन् १९१४ तक ब्रिटेन के आयात-निर्यात व्यापार का दो तिहाई भाग उपनिवेशो एव स्टर्लिंग क्षेत्रो के साथ होता था जबकि अब उसका यह भाग केवल एक तिहाई के लगभग हो गया है। इसके विपरीत उत्तरी अमरीका, यूरोपीय साझा बाजार एव EFTA क्षेत्रो के साथ उसके विदेशी व्यापार म वृद्धि हुई है। यही कारण है कि अब ब्रिटन की विदशी व्यापार नीति केवल राष्ट्रमण्डलीय देशों के हितो के साथ जुडी हुई नहीं रह सकती। इसका आभास ब्रिटेन को उसी समय हो गया था जब उसने सन् १९६१ मे यूरोपीय साझा बाजार मे सम्मिलित होने का निश्चय किया। आज भी ब्रिटेन की व्यापार नीति के मार्ग मे प्रमुख अवरोध यही है और वह जानता है कि साझा बाजार और EFTA के सदस्य राष्ट्रो से कुल मिलाकर उसके व्यापार की मात्रा राष्ट्रमण्डलीय देशों के साथ होने वाले व्यापार की मात्रा से अधिक हो गयी है और भविष्य म और अधिक होने की पूरी सम्भावना है। अत उसका भविष्य इन सगठनो के हितों के साथ जुडा हुआ है।

प्रश्न

1 'A study of commercial and industrial revolutions in England makes *an interesting account of the glorious results of capitalism*" Elucidate

इग्लैण्ड की व्यापारिक एव औद्योगिक क्रान्तियो का अध्ययन हमारे समक्ष पूंजीवाद के भव्य परिणामो के रोचक वर्णन को प्रस्तुत करता है।

(इलाहाबाद, १९६२)

2. What were the effects of commercial revolution of England or her economy

इग्लैण्ड की अर्थ-व्यवस्था पर व्यापारिक क्रान्ति का क्या प्रभाव पडा।

१४
स्वतन्त्र व्यापार नीति
(Free Trade Policy)

व्यापारवाद के पश्चात् इंगलैंड के आर्थिक इतिहास में उसकी एक तीव्र प्रतिक्रिया स्वतन्त्र व्यापार नीति के रूप में परिलक्षित होती है। इस नीति ने एक शताब्दी तक इंगलैंड के आर्थिक, औद्योगिक और व्यापारिक इतिहास को प्रभावित किया और २०वीं शताब्दी की तृतीय दशाब्दी तक किसी न किसी रूप में इंगलैंड स्वतन्त्र व्यापार नीति का पक्षपाती रहा। सन १९३१ में जब इंगलैंड को राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक अस्थिरता और मन्दी के कारण स्वर्णमान को त्यागना पड़ा, तभी स्वतन्त्र व्यापार नीति की पूर्णाहुति हुई। इस प्रकार यह विचारधारा इंगलैंड के इतिहास की राष्ट्रीय और सरकारी दृष्टिकोण से एक महत्त्वपूर्ण विचारधारा रही है जिसे प्रसारित और प्रचारित कर इंगलैंड विश्व का नेतृत्व कर सका।

स्वतन्त्र व्यापार की नीति का आधार
(Basis of *Laissez Faire*)

फ्रांस के भौतिकतावादियों (Physiocrates) ने विश्व को प्रसिद्ध वाक्यांश *Laissez Faire* दिया जिसका अर्थ होता है Let do, let pass' अर्थात् 'जो होता है होने दो। यह मुहावरा इंगलैंड के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आदम स्मिथ (Adam Smith) द्वारा अपने लेखों में प्रयुक्त किया गया और उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन ने इसको अपनी अर्थनीति और व्यापार नीति में व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी इस नीति का अनुमोदन किया और आर्थिक मामलों में राज्य द्वारा हस्तक्षेपहीनता की नीति अपनाये जाने पर जोर दिया।

यदि हम उन्नीसवीं शताब्दी के आर्थिक विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि दो बातों ने महत्त्वपूर्ण ढंग से इस विकास को प्रभावित किया है। प्रथम इस शताब्दी में पूँजी में अत्यधिक वृद्धि हुई। आरम्भ में साझेदारी ने विशाल संयुक्त स्कंध वाली कम्पनियों का रूप ग्रहण किया। इनके द्वारा पूँजी का विनियोजन भारी मात्रा में किया जा सकता था ज्यों ही यान्त्रिक प्रगति और

यातायात में क्रान्ति हुई और उसके फलस्वरूप विश्व-व्यापार क्षेत्र बना और विभिन्न देशों से व्यापार होने लगा, पूंजी का प्रभाव बढ़ता दृष्टिगोचर हुआ। श्रमिक संघ आन्दोलन भी तेजी से बढ़ा और वह इस रूप में सफल हो सकी कि उसने न्यूनतम मजदूरी, काम के कम घन्टे, स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ प्राप्त किये। इसी प्रकार उपभोक्ता-सहकारी आन्दोलन भी **रोकडेल** पद्धति पर आगे बढ़ सका। इसी प्रकार स्थानीय स्वशासन और म्यूनिसिपल-कार्य तथा सामाजिक बीमा सुरक्षा की भावना प्रबल होती गयी।

द्वितीय महत्त्वपूर्ण विचार था स्वतन्त्र व्यापार नीति। इस महत्त्वपूर्ण नीति के अपनाये जाने के मुख्य कारण निम्नलिखित थे

स्वतन्त्र व्यापार नीति अपनाने के कारण

(१) **स्वतन्त्र व्यापार नीति का दार्शनिक आधार**—यह मान्यता विकसित हो रही थी कि स्वतन्त्र-बन्धनहीन प्रतियोगिता के प्रयोग से व्यक्ति को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकता था, अतः यदि उन्हें अपने व्यवहार में नियन्त्रण एवं बन्धन से मुक्त कर दिया जाय तो वे ऐसी कार्य-विधि अपनायेंगे जो उनके सर्वाधिक हित में होगी। चूंकि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए कार्य करने की छूट होगी, *अतः अन्ततः इससे समस्त समाज को भी अधिकतम लाभ प्राप्त होगा* और समाज भौतिक दृष्टि से उन्नत होगा। व्यक्तिवाद से उत्पन्न फ्रांस के भौतिकतावादियों (physiocrates) के दृष्टिकोण ने इस विचारधारा को बल दिया जिसके अनुसार नैसर्गिक नियम (Natural Order) को पूर्ण मान्यता प्रदान की गयी। इसके अनुसार प्रत्येक को प्राकृतिक नियम का पालन करना चाहिए अन्यथा समाज में अनेक विकृतियाँ उत्पन्न होना स्वाभाविक था। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को प्रकृति के इन नियमों के अनुसार कार्य करना चाहिए और उसे स्वयं यह ज्ञात करना चाहिए कि प्रकृति का क्रम क्या है क्योंकि इसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं थी किन्तु अनुशासन प्रशासन के अधिकार की मान्यता, निजी सम्पत्ति एवं स्वतन्त्रता का सम्मान आदि कुछ ऐसे तत्त्व थे जिनके आधार पर नैसर्गिक नियम (Natural order) *का व्यापक अर्थ स्पष्ट किया गया था।*

(२) **पुरातन अर्थशास्त्रियों की विचारधारा का प्रभाव**—स्वतन्त्र व्यापार नीति की विचारधारा को प्रभावित करने में प्राचीन आंग्ल अर्थशास्त्रियों की विचारधारा का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। इस प्रकार के अर्थशास्त्रियों में **आदम स्मिथ, रिकार्डो, जे० एस० मिल** इत्यादि प्रमुख हैं जिन्होंने अपनी पुस्तकों और निबन्धों द्वारा इस विचार को प्रसारित करने का कार्य किया। लार्ड एशले (Lord Ashley) ने भी अपनी *मानवतावादी लीग (Humanitarian League)* के अधीन आर्थिक गतिविधियों पर से राजकीय प्रतिबन्ध हटाने की माँग की।

(३) **औद्योगिक क्रान्ति**—इसके कारण इंगलैंड में १८वीं शताब्दी में इस नीति को अपनाया गया। आवश्यकता से अधिक उत्पादन मुक्त व्यापार की छत्र-

छाया मे ही सम्भव था। अत औद्योगिक क्रान्ति कुछ अशो मे देश को इस ओर प्रभावित कर सकी।

(४) **फ्रान्स की राज्य क्रान्ति** (१७८९ ई०)—नैपोलियन के युद्धो (१७९३-१८१५ तक) की समाप्ति के पश्चात राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ आधार पर सगठित करने के लिए इगलैण्ड ने स्वर्णमान अपनाया था। नैपोलियन ने यह अनुभव किया कि उसका आग्ल प्रतिरोध नौ सैनिक शक्ति पर आधारित है तथा ग्रेट ब्रिटेन अपनी नौ सेना का पोषण व्यापारिक लाभ से करता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यदि आग्ल व्यापार नष्ट कर दिया जाय तो ग्रेट ब्रिटेन को अपनी नौ सेना मे कमी करनी पडेगी। उनका विचार था कि यदि आंग्ल निर्यात छिन्न-भिन्न कर दिया जाय और आयात होता ही रहे तो व्यापार सन्तुलन ग्रेट ब्रिटेन के विपरीत होगा एव उसकी स्थिति ऐसी आर्थिक सकटापन्न हो जायगी कि वह प्रसन्नतापूर्वक शान्ति के हेतु सन्धि करेगा। किन्तु नैपोलियन अपने प्रयत्न मे असफल रहा और इगलैंड की विजय का कारण स्वतन्त्र-व्यापार और स्वर्णमान ही सिद्ध हुए।

(५) **अमरीकी स्वातन्त्र्य सग्राम** -इसने आर्थिक प्रतिबन्धो की निरर्थकता सिद्ध कर दी थी। न अमरीकी व्यापार पर कर लगाये जाते और न अमरीका स्वतन्त्रता का युद्ध करता। इस महान उपनिवेश के हाथ से चले जाने पर आर्थिक व्यापार म स्वतन्त्रता को बढावा मिला। इगलैंड यह चाहता था कि किसी भी उपनिवेश के आर्थिक जीवन को स्पर्श न किया जाय। उसके लिए स्वतन्त्र व्यापार ही उपयुक्त उपाय था।

(६) **पुर्तगाली व्यापार की समाप्ति**—इगलैंड को यह नीति पुर्तगाली व्यापार की समाप्ति के कारण भी अपनानी पडी क्योंकि पुर्तगाल के कटु अनुभव न इगलैंड को सद्बुद्धि प्रदान की।

(७) **स्वर्णमान अपनाना**—नैपोलियन की पराजय के पश्चात् इगलैंड न स्वर्णमान की नीति अपनायी जिसका मुख्य आधार आयात और निर्यात पर से सभी प्रतिबन्धो की समाप्ति था। अत यदि स्वर्णमान को चालू रखना था तो व्यापारिक प्रतिबन्धो और रुकावटो का दूर करना आवश्यक था।

(८) **विदेशी व्यापार**—औद्योगिक क्रान्ति के कारण उत्पादन मे अप्रत्याशित रूप म वृद्धि हुई थी तथा उस उत्पादन को खपाने के लिए देशी और विदेशी व्यापार की वृद्धि आवश्यक थी। इगलैंड को औद्योगिक उत्पादन के लिए जिस कच्चे माल की आवश्यकता थी वह तभी प्राप्त हो सकता था जबकि वह उदार नीति अपनाये अत स्वतन्त्र-व्यापार नीति का अपनाया जाना आवश्यक था।

स्वतन्त्र व्यापार नीति इगलैंड पर लगभग एक शताब्दी तक छाई रही और इसके अनुपालन म इगलैंड न अपने आर्थिक विकास को बहुत आगे बढाया। वस्तुत नैपोलियन युद्ध की समाप्ति (सन् १८१५) के बाद इगलैंड की छिन्न-भिन्न अर्थ-व्यवस्था को सुधारने के उद्देश्य से इस नीति को उपचार के रूप म अपनाया गया।

सन् १८३० तक इस नीति का स्वरूप सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित हो चुका था और सन् १८५० तक यह अपने चरमोत्कर्ष पर थी। उसके बाद पच्चीस वर्षों तक कृषि एवं उद्योगों की दृष्टि से इंगलैंड का स्वर्ण युग इसी नीति का प्रतिफल था। किन्तु उसके बाद से आर्थिक मन्दी एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में वृद्धि होने के फलस्वरूप स्वतन्त्र व्यापार नीति की कटु आलोचना आरम्भ हो चुकी थी जो कि वर्षों तक चलती रही। आलोचना और प्रत्यालोचना के बावजूद यह नीति प्रथम महायुद्ध तक जीवित रही और इसकी पूर्णाहुति सन् १९३२ में ही हो सकी जबकि विश्व भर में भयंकर मन्दी छाई हुई थी। इस प्रकार इस नीति ने इंगलैंड के एक शताब्दी के इतिहास में अनेक उत्थान और पतन के युग देखे जिनका वर्णन इस प्रकार है

(१) प्रारम्भिक काल (१७६३-१८३०)—सन् १७६३ से १८१५ के मध्य का काल ग्रेट ब्रिटेन से फ्रान्स का युद्ध काल था। परन्तु इस समय भी आन्तरिक रूप में कई परिवर्तन हो रहे थे। विलियम पिट दि यंगर (William Pitt The Younger) ही प्रथम व्यक्ति था जिसने सबसे पहले संरक्षण पर आपत्ति की और स्वतन्त्र व्यापार का समर्थन किया। पिट स्वतन्त्र व्यापार-नीति को पूर्ण रूप से आगे नहीं बढ़ा सका क्योंकि उद्योगपतियों ने उसका साथ नहीं दिया। विलियम पिट ने केवल सरकारी आय प्राप्ति के लिए आयात और निर्यात कर लगाया था, आन्तरिक उद्योगों के संरक्षण के लिए नहीं। उसने तस्कर व्यापार को रोकने के लिए उत्पादन कर और निराशाम्य कर को आपस में मिलाने का प्रयत्न किया और इन दोनों करों को जमा करने का दायित्व उत्पादन-कर अधिकारियों का रखा। सन् १७८७ में टैरिफ शिड्यूल में परिवर्तन किया गया। संरक्षण आयात कर हट जाने से सरकारी आमदनी को बहुत आघात पहुँचा। पिट ने उसे पूरा करने के लिए अन्य रूप से प्रयत्न किया परन्तु वह इसमें असफल रहा क्योंकि सन् १७८९ और उसके पश्चात् इंगलैंड फ्रान्स से युद्धरत था अतः युद्ध काल में नवीन करों का भार व्यापार पर डाला गया।

सन् १८१५ के बाद का काल स्वतन्त्र व्यापार के क्षेत्र में आर्थिक असन्तुलन और मन्दी का काल था। युद्धजनित विभीषिकाओं ने आर्थिक जीवन को अस्तव्यस्त कर दिया था। कर ने व्यापार की कमर तोड़ दी क्योंकि युद्ध का ऋण चुकाना आवश्यक था। सन् १८१६ तक युद्ध के कारण ब्रिटेन पर लगभग ८५ करोड़ पौण्ड का ऋण हो गया। दूसरी ओर आर्थिक मन्दी बढ़ रही थी और बेकारी में भी वृद्धि हो रही थी।

(२) सुधार का काल (१८३०-१८५०)—इस अवधि में व्यापार नीति को चलाने के लिए हसकिसन और रोबर्ट पील ने (टैरिफ) अर्थ नीति में बहुत सुधार किया। टैरिफ शिड्यूल में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। कई देशों से स्वतन्त्र व्यापारिक-सन्धियाँ की गयी जिसके कारण स्वतन्त्र व्यापार को अधिकाधिक महत्त्व

मिलने लगा। जिन देशों से व्यापारिक सन्धियाँ की गयी उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—फ्रान्स, रूस, प्रशा, स्वीडन। रोबर्ट पील के प्रधानमन्त्रित्व काल में इस प्रकार के सुधार किये गए जिनमें कई वस्तुओं पर से आयात और निर्यात सम्बन्धी प्रतिबन्ध हटा लिए गए। लार्ड हस्किसन द्वारा स्वतन्त्र व्यापार नीति के पक्ष में निम्न कार्यवाही की गयीं—(१) अन्न कानून से आम जनता और मजदूरों को अधिक कठिनाई होने के कारण उसको कम से कम प्रयोग किया गया। (२) नौ-वहन विधान (Navigation Acts) में सुधार किया गया। सन् १८२५ के संशोधित नौ-वहन-विधान के अन्तर्गत यूरोप के व्यापारक्षेत्र में केवल कुछ ही वस्तुओं पर ही प्रतिबन्ध रहा। (३) साम्राज्य अभिमान (Imperial preference) की नीति को भी हस्किसन ने आगे बढ़ाया। सन् १८२५ के बाद विदेशों के लिए उपनिवेशों के बन्दरगाहों को खोल दिया गया। (४) वस्त्र-उद्योग और धातु-शोधन उद्योग के बहुत से कच्चे मालों पर से आयात कर हटा दिया गया। रोबर्ट पील ने भी स्वतन्त्र-व्यापार नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य किये

(अ) सन् १८४६ में अन्न-कानून (Corn Law) को रद्द कर दिया। अन्न-कानून के विरुद्ध एक अन्न-कानून-निषेधक-लीग (Anti-Corn-Law-League) स्थापित हो चुकी थी। इस लीग की स्थापना जॉन ब्राइट और रिचार्ड काब्डन के प्रयत्नों से की गयी थी। अन्न कानून टूट जाने से खाद्य-पदार्थों के सस्ता होने की आशा की गयी।

(आ) सन् १८४६ के बाद नौ-वहन विधान लगभग समाप्त से कर दिये गए।

(इ) सन् १८४३-४५ में कुछ वस्तुओं पर से और भी आयात-कर हटा लिये गये। उदाहरणार्थ ऊन और कपास की वस्तुएँ। सन् १८४३ में यन्त्रों का निर्यात स्वतन्त्र हो गया।

(ई) आयात कर (Import duties) के साथ-साथ बहुत से उत्पादन कर भी हटा दिये गये, जैसे छपी कैलिको, बत्ती, स्लेट, खपरैल, स्टार्च, पत्थर, मिट्टीबर्तन इत्यादि। सन् १८४५ में शीशे से भी उत्पादन-कर हटा लिया गया।

(३) स्वर्ण युग (१८५०-१८७३)—इस काल के अन्तर्गत भी सुधार किये गये जिस बात को रोबर्ट पील सम्भवतः नहीं कर सका उसे लार्ड जॉन रसल ने अपने सुधारात्मक उपायों द्वारा सम्भव कर दिया

(क) उसने सर्वप्रथम जहाजरानी अधिनियम सम्बन्धी सभी प्रतिबन्धों को समाप्त किया।

(ख) उसके मन्त्रित्वकाल में ग्लैडस्टन नामक अर्थमन्त्री ने वस्तुओं से कर हटाने की माँग प्रस्तुत की। सर्वप्रथम १२३ वस्तुओं से, तत्पश्चात् १३३ वस्तुओं से और अन्तिम रूप में ३६० वस्तुओं से कर हटा लिये गये जिसने सभी वस्तुएँ स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र के अन्तर्गत आयात-निर्यात की जा सकती थीं।

(ग) सन् १८६६ में नैपोलियन तृतीय से फ्रान्स में रिचार्ड काब्डन ने सन्धि की जिसमें स्वतन्त्र-व्यापार को अधिक प्रोत्साहन मिला। रिचार्ड काब्डन, 'एण्टी-कॉर्न लॉ-लीग' का प्रधान नेता था जिसने 'अन्न अधिनियमों' को समाप्त कराने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सरकारी आय की कमी को पूरा करने के लिए रोबर्ट पील ने नये सिरे से आय-कर लगाया था। ग्लेडस्टन ने इस कमी को पूरा करने के लिए परोक्ष कर भी लगा दिया। किन्तु कच्चे माल और खाद्य पदार्थों पर परोक्ष कर नहीं लगाया गया। ग्लेडस्टन के समय में मूल्यानुसार कर के स्थान पर परिमाणानुसार कर लगाया गया। स्वतन्त्र व्यापार नीति की पूर्ण सफलता का श्रेय ग्लेडस्टन को दिया जा सकता है।

उन्नीसवीं शताब्दी का तृतीय चरण जिस प्रकार आंग्ल कृषि के लिए स्वर्ण-काल माना जाता है, आंग्ल उद्योग और व्यापार के लिए भी वह स्वर्णकाल था। कैलीफोर्निया एवं आस्ट्रेलिया में स्वर्ण की खोज से मूल्यों में सामान्य-स्तर में वृद्धि हुई जिससे व्यापार एवं व्यवसाय को प्रोत्साहन मिला। इस काल में जलीय और स्थलीय यान्त्रिक परिवहन के विकास के कारण विनिमय में सुविधाएँ उत्पन्न हो गयीं। उद्योग के कुछ क्षेत्रों में इगलैण्ड न केवल सर्वप्रमुख था अपितु उसने उत्पादन पर एकाधिकार कर लिया था। इगलैण्ड के लिए यह काल प्रायः शान्ति का काल था जबकि उसे किसी युद्ध में नहीं उलझना पड़ा। दूसरी ओर जर्मनी, फ्रांस और इटली अनेक युद्धों से पीड़ित थे।

अपने व्यापार एवं व्यवसाय की अभिवृद्धि करने तथा विश्व के प्रत्येक भाग से व्यापारिक सम्पर्क स्थापित करने के हेतु इगलैण्ड उन परिस्थितियों का लाभ उठाने की स्थिति में था जिन्होंने उसके प्रतिद्वन्द्वियों का ध्यानान्तरण कर दिया था। इस काल में इगलैण्ड की उन्नति पूर्व निश्चित और स्थापित दृष्टिकोण का समर्थन करती प्रतीत होती थी कि निरन्तर समृद्धि का रहस्य स्वतन्त्र व्यापार नीति के सिद्धान्तों पर व्यवहार में निहित था।

सन् १८५० से १८७३ के तेईस वर्षों में इगलैण्ड विश्व का वर्कशाप, परिवहन केन्द्र, जहाज निर्माता, बैंकर, शिल्पी, निवास-गृह और संग्रह केन्द्र बन गया। इस समय इगलैण्ड के विदेशी व्यापार में बहुत अधिक वृद्धि हुई।

इन तेईस वर्षों में इगलैण्ड के आयात और निर्यात व्यापार में लगभग दो गुनी वृद्धि हो गयी। यह वृद्धि इगलैण्ड की बढ़ती हुई समृद्धि की द्योतक थी।

(४) मन्दी का युग (१८७४-१८८५)—उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में समृद्धि के पश्चात आर्थिक मन्दी आयी थी। इस प्रकार का परिवर्तन आकस्मिक हुआ एवं मन्दी व्यापक हो गयी। सन् १८७३ से १८८६ के बीच निकृष्टतम प्रभावों का अनुभव हुआ। सन् १८८६ के पश्चात् कुछ सुधारों के प्रयत्न किये गये लेकिन शताब्दी के अन्त तक कुछ ऐसा नहीं हुआ जिससे प्रतीत हो कि आर्थिक मन्दी

समाप्त हो गयी। इस आम आर्थिक मन्दी का प्रभाव मूल्यों पर सबसे अधिक पड़ा। करेन्सी में भी परिवर्तन आया।

कृषि, जहाजरानी, उद्योग व्यापार और लौह इस्पात निर्माण के क्षेत्रों में जो आर्थिक मन्दी परिलक्षित हुई उसके निम्न कारण हैं

(१) आर्थिक मन्दी के कारणों का अध्ययन करने के लिए जो आयोग १८८६ में नियुक्त किया गया था उसके अनुसार विदेशी प्रतिस्पर्द्धा ही आर्थिक मन्दी का कारण थी।

(२) गृह-युद्ध के बाद अमरीका में रेलों का निर्माण बहुत पैमाने पर होने लगा। यूरोप के प्रायः सभी देशों में शान्ति थी और वे औद्योगिक विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दे रहे थे। जर्मनी में भी उद्योग एवं व्यापार की उन्नति के लिए राज्य की ओर से सहायता दी जा रही थी। अतः ब्रिटिश माल की प्रतिस्पर्द्धा में अमरीका, आस्ट्रेलिया और अर्जेण्टाइना की बनी वस्तुएँ अधिक बिकने लगी।

(३) ब्रिटेन में औद्योगिक उत्पादन बहुत तीव्र गति से नहीं बढ़ पा रहा था। वहाँ औद्योगिक-क्रान्ति सबसे पहले होने के कारण लोग कुछ सुस्त होने लग गये थे और वे नये युग की प्रतिस्पर्द्धा में थके से प्रतीत होते थे। सन् १८६७-६८ में राजकीय आयोग ने अपने प्रतिवेदन में बताया था कि ब्रिटेन के श्रमिक प्राविधिक शिक्षा की कमी के कारण पिछड़े हुए थे। यही कारण था कि १८७३ और १८८३ ई० के मध्य जब जर्मनी में कोयला का उत्पादन ५३ प्रतिशत और अमरीका में ४१ प्रतिशत बढ़ा वहाँ ब्रिटेन में यह वृद्धि केवल २६ प्रतिशत की ही हुई।

(४) कर-वृद्धि के कारण उद्योगों पर व्यय का अधिक भार हो गया था। श्रमिक संघ-आन्दोलन तीव्र होता जा रहा था उसके फलस्वरूप आर्थिक-स्थिति सुधारने के लिए विभिन्न प्रकार के अधिनियम स्वीकृत किये जा रहे थे।

(५) ब्रिटेन अपनी स्वतन्त्र व्यापार नीति के फलस्वरूप विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का सामना नहीं कर पा रहा था। अतः हस्तक्षेप न करने का सिद्धान्त भी अवनति का प्रमुख कारण रहा।

(६) नये-नये जहाजों के बनने तथा सन् १८८० ई० के बाद कई अन्य देशों में भी जहाज बनाने के कारखानों के खुल जाने के कारण ब्रिटेन के जहाज उद्योग को बड़ा आघात पहुँचा।

(७) कृषि के क्षेत्र में भी निकृष्ट मौसम, ऊँचा लगान, पूँजी की कमी और जमींदारों और किसानों में बिगड़े हुए सम्बन्धों के कारण उत्पादन बहुत कम हो गया था। सन् १८७ , १८७५, १८७६ और १८७६ के वर्षों में फसलें बहुत ही खराब हुई थीं। गे० की कुल पूर्ति का ७० प्रतिशत विदेशों से मंगाना पड़ता था।

(८) अमरीका में माँस-उद्योग का विकास बहुत हुआ और वहाँ का माँस ब्रिटेन के माँस से सस्ता बिकने लगा। अतः ब्रिटेन के माँस उद्योग में भी मन्दी आ गया।

(ध) कैलिफोर्निया और आस्ट्रेलिया के खान की खानों से सोने का निकालना पहले से बहुत कम हो गया था जबकि दूसरी ओर जनसंख्या और उत्पादन बढ़ने से सोने की मांग बढ़ती जा रही थी। अत आवश्यकता के अनुसार सोने के सिक्के नहीं बनाये जा सकते थे फलत वस्तुओं के मूल्यों मे गिरावट आ गयी। चूंकि इगलैण्ड औद्योगिक क्रान्ति की चरम सीमा पर था अत इस मन्दी का असर उस पर बहुत अधिक और व्यापक रूप से हुआ।

(५) **प्रतिक्रिया का युग** (१८८६-१९१४)—यह काल आर्थिक मन्दी के फलस्वरूप स्वतन्त्र व्यापार नीति के प्रति प्रतिक्रिया और परित्याग का काल था। स्वतन्त्र व्यापार नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया होने के निम्न कारण थे

(अ) **औद्योगिक अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा**—जर्मनी और सयुक्त राज्य अमरीका मे अधिक औद्योगिक प्रगति होने के कारण इस दिशा मे इगलैण्ड का स्थान गिरने लगा। गिरती हुई स्थिति को ठीक करने के लिए स्वतन्त्र व्यापार के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई।

(ब) आस्ट्रेलिया, इटली, फ्रास द्वारा इगलैण्ड के साथ हुए व्यापारिक सधियों का भग किया जाना।

(स) आर्थिक मन्दी का आविर्भाव जिससे कृषि, उद्योग, व्यापार आदि प्रभावित हुए।

स्वतन्त्र व्यापार नीति की उपलब्धियाँ
(Achievements of *Laissez Faire* Policy)

स्वतन्त्र व्यापार नीति अपनाये जाने के लिए सैद्धान्तिक आधार यद्यपि १८वी शताब्दी मे ही तैयार हुआ, किन्तु स्पष्ट रूप मे इस नीति को अपनाये जाने की माँग १८१५ के बाद की जाने लगी। सैद्धान्तिक आधार का मुख्य स्रोत इगलैण्ड के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री एडम स्मिथ की पुस्तक वैल्थ ऑव नेशन्स (Wealth of Nations) थी जिसमे उन्होंने सन् १७७६ मे राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता के स्थान पर अन्तरराष्ट्रीय श्रम विभाजन की उच्चता को प्रमाणित कर दिया। इस आधार पर अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र मे व्यापार पर लगे प्रतिबन्धों को व्यर्थ समझा जाने लगा और उन्मुक्त आयात निर्यात की दुहाई दी जाने लगी। यह पहले ही कहा जा चुका है कि हस्तक्षेपहीनता अथवा निरपेक्षता की यह नीति फ्रास की राज्य क्रान्ति की व्यक्ति स्वतन्त्रता एव समता की भावना से प्रभावित थी। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या एक स्वतन्त्र व्यापार नीति का मूल आधार केवल सैद्धान्तिक था? वस्तुत सैद्धान्तिक आधार के साथ-साथ यह नीति व्यवहारिकता पर भी आधारित थी। इसीलिए कुछ विद्वानों का विचार है कि इगलैण्ड ने सैद्धान्तिक आधार पर नहीं, बल्कि आर्थिक अनिवार्यता के रूप मे स्वतन्त्र व्यापार नीति को स्वीकार किया क्यों कि इगलैण्ड की तत्कालीन परिस्थितियों मे इससे उत्तम अन्य कोई नीति नहीं हो सकती थी। उस समय इगलैण्ड सर्वशक्तिमान राष्ट्र था और विश्व मे उसका कोई

प्रतिद्वन्द्वी नहीं था, अत निर्बाध-व्यापार की नीति ही, उसके हितों के अनुरूप थी। उसके विशाल उत्पादन के लिए विदेशी बाजारों की अपेक्षा थी और उद्योगों के लिए कच्चे माल तथा बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों के बाहर से आयात की आवश्यकता थी। यही कारण था कि प्रतिबन्धों को हटाने और निर्बाध-व्यापार की दुहाई देने के सिवाय इगलैण्ड के समक्ष अन्य कोई मार्ग न था। कुछ भी हो, स्वतन्त्र व्यापार नीति ने इगलैण्ड की अर्थ-व्यवस्था को विकास की चरमसीमा पर पहुँचा दिया। स्वतन्त्र व्यापार नीति की सफलता का ही परिणाम यह हुआ कि १९वी शताब्दी मे इगलैण्ड विश्व का सबसे सम्पन्न एव शक्तिशाली राष्ट्र बन गया।

अर्थ-व्यवस्था पर लगे विभिन्न प्रतिबन्धो को हटाने का कार्य सन् १८२० मे आरम्भ हुआ जब नौ-वहन अधिनियमों (Navigation Acts) को समाप्त कर दिया गया। सन् १८२४ मे सयोग अधिनियमो (Combination Laws) को समाप्त कर दिया गया। इसके बाद अन्न अधिनियमों (Corn Laws) को समाप्त करने का आन्दोलन चला और उन्हे भी अन्तत सन् १८४८ मे समाप्त कर दिया गया।

इसके बाद आयात और निर्यात पर लगे प्रतिबन्धो को समाप्त करने के लिए कदम उठाये गये। आयात-निर्यात पर लगे करो को कम करके धीरे-धीरे बिल्कुल समाप्त कर दिया गया। सन् १८४२ मे पूर्व लगभग १,२०० वस्तुओं के आयात पर कर था जो कि सन् १८७७ मे घटकर केवल २० वस्तुओ पर रह गया। फलत इगलैण्ड के आयात एव निर्यात व्यापार मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। सन् १८५५ से सन् १९०० तक के ४५ वर्षों मे आयात-निर्यात व्यापार मे लगभग तीन गुनी वृद्धि हो गयी। इस नीति से इगलैण्ड को निम्न लाभ प्राप्त हुए

(१) औद्योगिक सम्पन्नता—ब्रिटिश उद्योगो की बहुत अधिक उन्नति हुई। उनके लिए कच्चे माल की आज मुक्त रूप मे माँग होने लगी तथा निर्यात बढ़ने के कारण उद्योगो द्वारा निर्मित माल की माँग बढ़कर उनकी आय मे वृद्धि हुई। इस प्रकार ब्रिटिश उद्योगो के लिए यह युग सब प्रकार से सम्पन्नता का काल सिद्ध हुआ जिसे प्राय स्वर्ण-युग (Golden Age) की सज्ञा दी जाती है।

(२) खाद्यान्नों की सुलभता—अन्न कानूनों की समाप्ति ने अन्य देशों के लिए ब्रिटेन के द्वार खोल दिये तथा प्रेरीज, आस्ट्रेलिया, कनाडा और अर्जेण्टाइना से पर्याप्त मात्रा मे गेहूँ ब्रिटेन मे पहुँचने लगा। यह वह समय था जबकि शहरों मे औद्योगिक श्रमिकों की सख्या अत्यधिक तेजी से बढ़ रही थी। सस्ते खाद्यान्नो ने श्रमिकों को राहत दी। यही नहीं, अन्न के अतिरिक्त माँस, फल, सब्जी, अण्डे आदि भी ब्रिटेन म भारी मात्रा मे होने लगे।

(३) व्यापार मे वृद्धि—इस युग में ब्रिटेन के आन्तरिक एव विदेशी व्यापार मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। सन् १८५५ के बाद ४५ वर्षों मे व्यापार की मात्रा मे लगभग ३ गुनी वृद्धि हो गयी। ब्रिटिश माल ससार के कोने-कोने मे पहुँचने लगा।

आयात-निर्यात, थोक एवं फुटकर व्यापार सम्बन्धी गतिविधियों में अनेक मध्यस्थों को काम मिला।

(४) **अनुकूल भुगतान सतुलन**—यद्यपि निर्यात की अपेक्षा आयात में अधिक वृद्धि हुई। किन्तु यदि *अदृश्य आयात-निर्यात* (invisible exports & imports) पर भी विचार किया जाय तो इस काल में ब्रिटेन का भुगतान सन्तुलन अत्यन्त अनुकूल रहा। तकनीकी सेवाओं, बैंकिंग, बीमा तथा नाविक सेवाओं के रूप में ब्रिटेन का निर्यात बहुत अधिक था जिसके कारण प्रचुर मात्रा में स्वर्ण-कोष का निर्माण करने में बैंक ऑफ इंगलैण्ड सफल हुआ।

(५) **नौ वहन शक्ति का विकास**—नेवीगेशन कानूनों की समाप्ति इंगलैन्ड के लिए वरदान सिद्ध हुई। प्रतिबन्ध समाप्त होने के साथ ही अनेक अन्य देशों से नौ-वहन सन्धियाँ की गयी और अब ब्रिटेन के जहाज उन सब देशों में जा सकते थे फलत सन् १९०० तक और इसके बाद भी प्रथम विश्व युद्ध तक ब्रिटेन का जहाजी बेड़ा विश्व में सबसे शक्तिशाली बना रहा।

(६) **श्रमिक संगठनों का विकास**—*हस्तक्षेपहीनता* की नीति केवल उद्योगपतियों के लिए ही नहीं थी बल्कि यह श्रमिकों के लिए भी थी अत उन्हें भी यह स्वतन्त्रता देनी पड़ी कि वे अपने हितों की सुरक्षा के लिए उपयुक्त संगठन का विकास करें। *संयोग कानूनों* (Combination Laws) *की समाप्ति का यही* उद्देश्य था जो कालान्तर में पूर्ण हुआ और श्रमिकों के संगठन अधिक प्रभावशाली होते गये।

(७) **बैंकिंग एवं बीमा का विकास**—*सन् १८४४ में बैंक ऑफ इगलैण्ड* को नोट निर्गमन का अधिकार दिया गया और धीरे-धीरे वह देश का केन्द्रीय बैंक एवं बैंकों का बैंक बन गया। सर्वांगीण विकास के साथ-साथ व्यापारिक बैंकिंग एवं विनिमय बैंकिंग के कार्यों में भी वृद्धि हुई। सन् १८५८ में सीमित दायित्व (limited liability) वाली बैंकिंग एवं बीमा कम्पनियों का विकास इगलैण्ड में होने लगा। इनमें से अनेक कम्पनियों ने विदेशों में भी शाखाएँ स्थापित की और विदेशी मुद्रा के रूप में भारी आय अर्जित करने में वे सफल हुईं। इस प्रकार ब्रिटेन की सम्पन्नता में इस क्षेत्र का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा।

(८) **रोजगार**—औद्योगिक उत्पादन एवं व्यापार में हुई प्रगति ने अनेक सहायक व्यवसायों को जन्म दिया। पूँजी के उत्तरोत्तर अधिक विनियोग ने जीविका के अनेक साधनों में वृद्धि कर दी जिसने बेरोजगारी और निर्धनता को कम करके अधिकाधिक व्यक्तियों को देश के भीतर एवं विदेशों में जीविकोपार्जन के अवसर प्रदान किये और उनके जीवन-स्तर में भी वृद्धि की।

(९) **सर्वतोमुखी विकास**—निर्बाध व्यापार नीति के काल में इगलैण्ड का सर्वांगीण विकास हुआ। सब प्रकार के प्रतिबन्ध समाप्त हो जाने से समाज की

रचनात्मक अभिव्यक्तियों एवं शक्तियों को पूर्णरूपेण विकसित होने का अवसर मिला और इस प्रकार इंगलैण्ड आर्थिक उत्थान के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया।

उपर्युक्त विवरण से यह प्रमाणित होता है कि निर्बाध व्यापार की नीति (Policy of *Laissez Faire*) ने ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था को अत्यन्त गहन रूप में प्रभावित किया। यह प्रभाव इतना गहरा था कि ब्रिटिश अर्थशास्त्री एवं विचारक इस सिद्धान्त के इतने भक्त हो गये कि वे हर प्रकार के प्रतिबन्धों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। व्यक्ति एवं व्यक्ति के माध्यम से समाज की स्वतन्त्रता की भावना ने उनके मस्तिष्क को इतना जकड़ लिया कि इस नीति को वे एक शाश्वत सत्य समझ बैठे—एक ऐसा सत्य जो जन्म जन्मान्तर तक उनकी समृद्धि में वृद्धि करता रहेगा। किन्तु बाद के घटना चक्र ने यह सिद्ध कर दिया कि ऐसा सोचना उनकी महान भूल थी। १९वीं शताब्दी के अन्त में ही स्वतन्त्र व्यापार नीति के विरुद्ध भयंकर प्रतिक्रिया हुई जिसके समक्ष यह नीति लड़खड़ाने लगी। यह प्रतिक्रिया कितनी तीव्र थी और उसके कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा किस प्रकार स्वतन्त्र व्यापार नीति का परित्याग किया गया, इसका वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

प्रश्न

1. Describe the steps by which England accepted the policy of *laissez faire*. Why did she give it up later on.

   इंगलैंड द्वारा स्वतन्त्र व्यापार नीति अपनाने के लिए क्या-क्या कदम उठाये गये। बाद में उसने इस नीति का परित्याग क्यों कर दिया।

   (B. H. U., १९५७)

2. Write briefly on the development of the policy of free trade in the U. K. and examine the effect on the trade with colonies.

   इंगलैंड में स्वतन्त्र व्यापार नीति के विकास के बारे में संक्षेप में लिखिए तथा यह बतलाइए कि इस नीति के कारण उपनिवेशों के साथ व्यापार में क्या प्रभाव पड़ा। (B. H. U., १९६०)

3. Trace the origin, development and subsequent abundonment of the policy of free trade in U. K.

   यू० के० द्वारा अपनायी गयी स्वतन्त्र व्यापार नीति के उद्भव, विकास एवं परित्याग के विषय में लिखिए। (राजस्थान, १९६२, १९६४)

4. Why did England adopt the policy of free trade after the industrial revolution? What were the causes of reaction against free trade after 1870?

औद्योगिक क्रान्ति के बाद इंगलैंड ने स्वतन्त्र व्यापार नीति को क्यों अपनाया। सन् १८७० के बाद स्वतन्त्र व्यापार नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया के क्या कारण थे ? (राजस्थान, १९६६)

5 What do you understand by the policy of free trade ? Analyse the chief factors which led to the abundonment of free trade policy by England

स्वतन्त्र व्यापार नीति से आप क्या समझते हैं ? इंगलैंड के स्वतन्त्र व्यापार की नीति को त्यागने के प्रमुख कारणों का विवेचन कीजिए।

(राजस्थान, १९६९)

१५
संरक्षणवादी नीति
(Policy of Protection)

हीगेल के द्वन्दात्मक भौतिकवाद (Dilectical Materialism) के अनुसार कोई भी सिद्धान्त अनिश्चित काल तक जीवित नहीं रह सकता और उसमें प्रतिकूल सिद्धान्त के बीज उसी में छिपे होते हैं। स्वतन्त्र व्यापार नीति के सिद्धान्त की भी यही दशा हुई। सन् १८७३ के पश्चात् जैसे ही स्वर्णयुग का मधुर स्वप्न समाप्त हुआ, इंगलैंड की अर्थ-व्यवस्था डगमगाने लगी। सस्ते विदेशी खाद्यान्नों के आयात एवं खराब फसलों के कारण उत्पन्न कृषि सकट एवं विदेशी प्रतियोगिता के कारण निर्यात में कमी के कारण ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति पहले की अपेक्षा कमजोर होने लगी। इस सकट का समस्त दोष स्वतन्त्र व्यापार नीति को दिया जाने लगा और सन् १८८६ के बाद इस नीति के विरुद्ध बड़ी प्रतिक्रिया की भावना जोर पकड़ने लगी। स्वतन्त्र व्यापार नीति के समर्थकों का विचार था कि अन्य सभी देश भी इस नीति का अनुसरण करेंगे किन्तु यह विचार निर्मूल सिद्ध हुआ और अन्य देशों ने आशा के विपरीत सरक्षणवादी नीति को अपनाया। स्वतन्त्र व्यापार नीति ने इगलैंड को आर्थिक विकास के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाया था, अतः इस नीति के प्रति लोग इतने श्रद्धालु थे कि वे सकटपूर्ण स्थिति का कारण स्वतन्त्र व्यापार नीति को न मानकर अब भी उसकी उपयोगिता में प्रगाढ़ विश्वास रखते थे। दूसरी ओर स्वतन्त्र व्यापार नीति के विरोधियों का मत प्रबल होता जा रहा था और वे इसे समाप्त करके सरक्षणवादी नीति अपनाने की माँग कर रहे थे। तत्कालीन कोलोनियल सेक्रेटरी श्री जोसेफ चेम्बरलेन सरक्षणवादी नीति के समर्थक थे और उन्होंने सन् १८९४ से १९१४ तक स्वतन्त्र व्यापार नीति के स्थान पर सरक्षणवादी नीति अपनाये जाने का प्रयत्न किया जो कि रचनात्मक साम्राज्यवाद पर आधारित थी और जिसके अन्तर्गत ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत उपनिवेशों को आर्थिक एवं व्यापारिक सुविधाएँ दिए जाने की योजनाएँ थीं। उधर मानवतावादी (Humanit-

arians) पहले से ही श्रमिकों तथा निर्धनों के लिए सामाजिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप हीनता की नीति के विरुद्ध थे। उनका तर्क यह था कि आर्थिक स्वतन्त्रता की नीति तभी उपयोगी होती है जब समाज के विभिन्न वर्गों में आर्थिक समानता कम हो। चूँकि श्रमिक एवं निर्धन व्यक्तियों में सौदा करने की शक्ति का अभाव होता है और वे अपने हितों की रक्षा स्वयं नहीं कर सकते, अतः सरकार को हस्तक्षेप करके इस वर्ग को संरक्षण प्रदान करना ही चाहिए। सरकार इस तर्क की उपेक्षा नहीं कर सकी थी और उसने सन १८५० के बाद कई नियम बनाकर इस वर्ग को संरक्षण प्रदान किया था। कारखाना अधिनियमों के अन्तर्गत सरकार ने स्त्रियों एवं बच्चों के काम की दशाओं को सुधारने के उद्देश्य से हस्तक्षेप की नीति अपनाई थी। बाद में पुरुष श्रमिकों, दुकान कर्मचारियों के लिए भी इस प्रकार का संरक्षण सरकार द्वारा प्रदान किया गया और स्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा आदि क्षेत्रों में भी राज्य का संरक्षण एवं हस्तक्षेप बढ़ गया।

श्रीयुत जोसेफ चेम्बरलेन का संरक्षणवाद मुख्यतः तीन तर्कों पर आधारित था

(i) अन्य देश संरक्षण की नीति अपनाये हुए थे। जापान, जर्मनी एवं अमरीका ने जो कि ब्रिटेन से विदेशों में प्रतियोगिता कर रहे थे, अपने आयात पर भारी कर लगा रखे थे।

(ii) सन् १८७५ के बाद से ब्रिटिश कृषि प्रायः नष्ट हो चुकी थी। विदेशों से सस्ता अनाज ब्रिटेन के बाजारों में बिक रहा था तथा ब्रिटिश किसान के लिए अन्न उत्पन्न करना घाटे का सौदा था।

(iii) अन्तरराष्ट्रीय निर्यात में ब्रिटेन के भाग में कमी हो रही थी और इस प्रकार व्यापार सन्तुलन ब्रिटेन के विपक्ष में हो रहा था।

उपर्युक्त तर्क अत्यन्त जोरदार थे किन्तु अनेक व्यक्ति एक शताब्दी से प्रचलित एवं ब्रिटेन की प्रगति एवं सम्पन्नता की प्रतीक स्वतन्त्र व्यापार नीति से ऐसे चिपके हुए थे कि वे सहमत होते हुए भी इसका परित्याग करने के लिए तैयार नहीं थे। स्वतन्त्र व्यापार एवं संरक्षण के प्रश्न पर मतभेद दिनोदिन बढ़ता गया। यह इतना बढ़ा कि इसे चुनाव का प्रश्न बना लिया गया तथा अनुदार दल (Conservative party) में इस प्रश्न को लेकर विभाजन हो गया। सन् १९०६ में उदार दल ने, जो कि स्वतन्त्र व्यापार नीति का समर्थक था, अनुदार दल को श्री चेम्बरलेन के नेतृत्व में संरक्षण के लिए लड़ा, हरा दिया और इस प्रकार एक बार फिर कुछ वर्षों के लिए स्वतन्त्र व्यापार नीति को नया जीवन मिल गया।

प्रथम महायुद्ध आरम्भ होते ही संरक्षणवादी नीति को बल मिला। मेकना-करों (Mckenna Duties), उपनिवेशिक अधिमान (Colonial Preference) तथा उद्योग संरक्षण अधिनियमों (Safeguarding of Industries Act) के अन्तर्गत सन् १९१५ से १९२१ तक की अवधि में आयात पर प्रतिबन्ध लगाये गये,

यद्यपि खुले रूप मे उस समय तक भी इगलैड स्वतन्त्र व्यापारवादी था। सन् १६२३ मे श्रमिक दल की सरकार बनने पर मेक्ना ड्युटीज समाप्त कर दी गयी किन्तु सन् १६२५ मे अनुदार दल की सरकार बनने पर फिर उन्हें लागू कर दिया गया और उद्योग सरक्षण अधिनियम (Safeguarding of Industries Act) को और अधिक व्यापक बना दिया गया। अब सरक्षण प्रदान किये जाने की माँग स्वय उद्योगपति कर रहे थे क्योकि ब्रिटिश उद्योगो के समक्ष सकट उपस्थित था। सन् १६२६ मे जब फिर श्रमिक दल की सरकार बनी तो विश्वव्यापी भयकर मन्दी फैल चकी थी और इसलिए श्रमिक दल इन सरक्षण करो को समाप्त कर सका। विश्वव्यापी मन्दी यद्यपि अमरीका मे आरम्भ हुई किन्तु सन् १६३० तक इसका प्रभाव विश्व के सब देशो मे फैल चुका था। "सन् १६३० के सकट ने ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था के क्रमिक पतन मे एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जो अवश्यम्भावी थी। वह अपना औद्योगिक नेतृत्व एव निर्यात बाजारो को खो चुका था। बदली हुई परिस्थितियो के अनुसार अपने को समायोजित करने की उसकी क्षमता मे कमी हो चुकी थी और वह उत्तरोत्तर कम प्रगतिशील, कम गतिवान एव कम कुशल होता जा रहा था।"[1]

अब इगलैड के समक्ष जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित था। एक ओर स्वतन्त्र व्यापार नीति एव उसके साथ सलग्न पिछले उत्थान एव ऐश्वर्य की अनुभूति थी, तो दूसरी ओर भयकर मन्दी मे अपने अस्तित्व को बनाये रखन का प्रश्न था। स्वतन्त्र व्यापार नीति के प्रति उसका लगाव (attachment) केवल सैद्धान्तिक एव मनोवैज्ञानिक था और अब उसे बनाये रखने के लिए कोई औचित्य नही रह गया था। धीरे-धीरे जनमत सरक्षणवादी नीति के पक्ष मे होता जा रहा था। एक ओर बेकारी मुँह बाये खडी थी, दूसरी ओर निर्यात घटने के कारण पौण्ड का विदेशी विनिमय मूल्य गिर रहा था जिसे बनाय रखना अत्यन्त आवश्यक था। सन् १६३१ मे इगलैंड ने स्वणमान (Gold Standard) का परित्याग कर दिया तथा स्टर्लिग ब्लाक की मुद्राएँ पौण्ड स्टर्लिग के साथ सम्बद्ध करदी गयीं।

इस प्रकार सन् १६१९ से सन् १६३१ तक इगलैण्ड स्वतन्त्र व्यापार एव सरक्षणवाद के तर्क वितर्कों मे व्यस्त रहा। व्यवहार मे काफी सीमा तक आयात पर प्रतिबन्ध एव कर लगाये जा चुके थे और इस प्रकार स्वतन्त्र व्यापार नीति मे हस्तक्षेप होने लगा था और सरक्षणवाद को अपनाया जा चुका था। सिद्धान्तत उस समय तक ब्रिटेन स्वतन्त्र व्यापारवादी राष्ट्रो की श्रेणी मे ही बना रहना चाहता

---

1 "The crisis of 1930 was probably an inevitable stage in the gradual decay of her economy She had lost her industrial leadership and her export markets She had become less adaptable, less progressive, less dynamic and less efficient " Prof. A Birnie *An Economic History of Europe*

था और खुले रूप में इसका परित्याग प्रतिष्ठा का विषय था। ब्रिटेन के कुछ लोग आर्थिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप की नीति को अनैतिक समझते थे। किन्तु परिस्थितियों वश विवश होकर आखिर ब्रिटेन को स्वतन्त्र व्यापार नीति को छोड़ना पड़ा और सन् १६३२ में आयात कर अधिनियम (Import Duties Act) पास करके इंगलैंड संरक्षणवादी राष्ट्रों की सूची में सम्मिलित हो गया।

प्रतिक्रिया का उपचार

(१) **औपनिवेशिक सम्मेलनों का आन्दोलन**—सन् १८८६ के बाद इंगलैण्ड ने *साम्राज्य अधिमान* (*Imperial preference*) नीति को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। सर्वप्रथम सम्मेलन सन् १८८७ में आयोजित किया गया जिस वर्ष महारानी विक्टोरिया के शासन की स्वर्ण जयन्ती (Golden Jubilee) मनाई जा रही थी। तत्पश्चात सन् १८८७, १८९४, १८९७, १९०७, १९११, १९१७ और १९२० में क्रमशः औपनिवेशिक सम्मेलन आयोजित किये गये। १९०७ ई० के औपनिवेशिक सम्मेलन में उपनिवेशों के सेक्रेटरियों और प्रधानमन्त्रियों के अतिरिक्त इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री और लोकसभा के कुछ सदस्यों ने भाग लिया। उसी समय *औपनिवेशिक अधिमान का नाम बदल कर स्थायी रूप से उसका नाम साम्राज्य अधिमान* रखा गया। इस सम्मेलन में यह भी निश्चित किया गया कि प्रत्येक सदस्य देश को एक दूसरे सदस्य देश के यहाँ के निर्मित माल को प्राथमिकता देना चाहिए। इन सम्मेलनों का प्रभाव यह हुआ कि इंगलैण्ड और उपनिवेशों के बीच आर्थिक सम्पर्क स्थापित हो गया।

(२) उपनिवेशों का विकास करने के लिए कई कम्पनियों का निर्माण किया गया। उदाहरण के लिए, १८८१ ई० में ब्रिटिश नोर्थ-बोर्नियो क०, १८८६ ई० में **रॉयल नाइजर क०, १८८८ ई० में ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका कम्पनी तथा १८८९ में ब्रिटिश-साउथ अफ्रीका कम्पनी** की स्थापना की गयी।

(३) जोसेफ चेम्बरलेन ने **रचनात्मक साम्राज्यवादी** (Constructive Imperialism) नीति द्वारा औपनिवेशिक व्यापार की उन्नति करने का प्रयास किया। सन् १८९९ में *औपनिवेशिक ऋण-विधान स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार इंगलैण्ड के* कोष को कुछ उपनिवेशों को ऋण देने का अधिकार प्राप्त हुआ। ऋण को ५० वर्षों में लौटाने की व्यवस्था की गयी। उसी विधान के अन्तर्गत उपनिवेशों को लन्दन के खुले बाजार में भी ऋण प्राप्त करने की आज्ञा दे दी गयी। उपनिवेशों में रेलों, सड़कों तथा बन्दरगाहों के विकास के प्रयास किये गये। विभिन्न प्रकार की बीमारियों को रोकने के लिए (जो उपनिवेशों में फैल रही थीं) लन्दन और लिवरपूल में चिकित्सालय खोले गये। गोल्ड कोस्ट में नारियल और अन्य प्रकार के खाद्य पदार्थों का उत्पादन होने लगा।

(४) जोसेफ चेम्बरलेन के सद्प्रयत्नों से यूनाइटेड किंगडम की औद्योगिक

उन्नति के लिए एक टैरिफ लीग की स्थापना की गयी। पर यह संस्था बाद मे असफल सिद्ध हुई।

(५) उपनिवेशो म व्यापार सम्बन्धी सूचनाएँ फैलाने के लिए बोर्ड ऑव ट्रेड के प्रयत्नो से एक विशेष समिति की नियुक्ति की गयी जिसकी सिफारिशो के आधार पर बोर्ड ऑव ट्रेड की व्यापार सूचना विभाग नामक एक विशेष शाखा खोली गयी। सन् १६०८ म कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और दक्षिणी अफ्रीका म इंगलैण्ड के व्यापार आयुक्त नियुक्त किये गये। प्रथम महायुद्ध काल मे वैस्टइण्डीज भारतवर्ष इत्यादि म भी व्यापार दूत नियुक्त किये गये।

(६) सन् १६१८ मे ब्रिटिश राज्य मे खनिज पदार्थ सम्बन्धी सूचना देने क लिए खनिज पदार्थ ब्यूरो की स्थापना की गयी। कृषि-कीडो को नष्ट करन के लिए एक विशेष संस्था की स्थापना की गयी। वैस्टइण्डीज म सर्वप्रथम उष्ण प्रदेशीय कृषि विभाग स्थापित किया गया था।

(७) व्यापारिक शिक्षा के विकास के लिए व्यापार परिषद के अतिरिक्त व्यावसायिक समाचार विभाग की स्थापना हुई।

(८) कृषि विकास के लिए भी सरकार ने अनेक प्रयत्न किये। सन् १८७५ म कृषि जोत अधिनियम (Agricultural Holding Act) स्वीकृत किया गया। सन् १८८६ मे कृषि मन्त्रालय की स्थापना की गयी। डेरी फार्मिंग का भी विकास किया गया।

(९) प्राविधिक शिक्षा के विकास के लिए प्रयत्न किया गया और सन् १८७० से राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति अपनायी गयी।

(१०) नगरपालिकाओ के कार्यक्रम मे सुधार किया तथा पानी और रोशनी की व्यवस्था करने और यातायात का आंशिक दायित्व इन स्थानीय संस्थाओं को सौंपा गया।

(११) श्रमिकों की आर्थिक स्थिति म सुधार के प्रयत्न किये गये। उनके काम के घण्टे, कारखानो की दशा आदि मे सुधार के लिए अधिनियम स्वीकृत हुए।. श्रमिक संस्थाओं क अधिकारो मे भी वृद्धि हुई।

(१२) स्वतन्त्र व्यापार नीति के स्थान पर हस्तक्षेप की नीति ने सन् १६१५ मे चलचित्रो, घडी, ताला, मोटर, गाडी तथा वाद्य-यन्त्रो पर मकेना (Mckenna) कर लगाया। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद तो लगभग ६,००० वस्तुओं पर यह कर लगा दिया गया। उसके पहले सन् १८८७ मे मरकेन्डाइज मार्क एक्ट (Merchandise Mark Act) स्वीकृत हुआ। उसक अनुसार व्यापार की रक्षा की गयी और ट्रेड मार्क के अनुकरण करने की प्रणाली अवैधानिक घोषित कर दी गयी।

(१३) यातायात के क्षेत्र म भी राज्य की हस्तक्षेप नीति परिलक्षित हुई। आर्थिक मन्दी ने रेल-भाडे के प्रश्न को उठाया और १८८८ से १८६४ ई० के मध्य

रेलों में एकीकरण की प्रवृत्ति ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि सरकार को रेल का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

संरक्षणवादी नीति अपनाने के कारण

सन् १६१६ में प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर इगलैण्ड ने अपनी प्राचीन व्यापार व्यवस्था को प्राप्त करने के प्रयत्न आरम्भ किये। 'स्वर्णमान' को किसी भी प्रकार जीवित रखने के प्रयत्न हुए। सन् १६२३ और १६२५ में इस प्रकार के सुधार किये जाकर 'स्वर्ण बुलियन-मान' और 'स्वर्ण विनिमय-मान' अपनाये गये परन्तु सन् १६२६ की आर्थिक मन्दी ने इगलैण्ड की अर्थ-व्यवस्था की कमर तोड़ दी तथा विवश होकर इगलैण्ड को सन् १६३१ में स्वर्णमान का सभी रूपों में परित्याग करना पड़ा और तभी से इगलैण्ड भी विश्व का प्रसिद्ध संरक्षणवादी देश बन गया। संरक्षण नीति ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने में महत्त्वपूर्ण योग दिया। इस प्रकार की संरक्षणवादी नीति अपनाने के कई कारण थे

(१) *अन्य देशों में औद्योगिक विकास*—जापान, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमरीका तथा कुछ अन्य देशों में औद्योगिक विकास आगे बढ़ रहा था। अतः उन देशों में इगलैण्ड का निर्यात घट रहा था।

(२) *विदेशों में जहाजी विकास*—प्रथम महायुद्ध और उसके पश्चात् अन्य देशों में जहाजी उन्नति होने लगी थी, इसके फलस्वरूप इगलैण्ड के जहाजी व्यापार तथा उद्योग पर बुरा प्रभाव पड़ा। ब्रिटेन में जहाजरानी से होने वाली आय में कमी हो गयी क्योंकि जापान, अमरीका आदि देशों के जहाज भी अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में हाथ बँटाने लगे।

(३) *विद्युत एवं खनिज तेल का शक्ति के रूप में विकास*—कोयला उद्योग भी संकट का सामना कर रहा था क्योंकि उसके स्थान पर विद्युत और अन्य शक्तियों का प्रयोग होने लग गया था। इससे कोयले का निर्यात घटने लगा।

(४) *सूती वस्त्रों में जापान द्वारा प्रतियोगिता*—भारत में इसी समय सूती-वस्त्रोद्योग ने महत्त्वपूर्ण प्रगति की। अतः इगलैण्ड का सूती माल बहुत कम आयात किया जाने लगा। भारत के बाजार में जापानी प्रतिस्पर्द्धा भी इगलैण्ड के लिए एक सर दर्द थी। ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग के लिए यह एक चुनौती थी।

(५) *विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी*—सन् १६२६-१६३३ के विश्व व्यापी आर्थिक मन्दी के कारण कच्चा माल तथा खाद्य पदार्थ उत्पादक देशों की क्रय-शक्ति बहुत घट गयी। परिणामस्वरूप इगलैण्ड का निर्यात व्यापार अत्यधिक प्रभावित हुआ। सभी देशों में क्रय शक्ति कम हो गयी जिससे वस्तुओं की माँग और कीमत दोनों में तेजी से ह्रास हुआ।

(६) *अन्य देशों द्वारा संरक्षण नीति का पालन*—अन्य देशों द्वारा अपने उद्योगों के विकास के उद्देश्य से ब्रिटिश माल के आयात पर भारी कर लगा दिये।

इसी प्रकार कुछ देशो द्वारा कच्चे माल के निर्यात पर भी कर लगा दिये गये जब कि ब्रिटेन मे स्वतन्त्र व्यापार था। अत इगलैण्ड के लिए भी सरक्षणात्मक उपाय करना अनिवार्य हो गया।

(७) विदेशी व्यापार का असन्तुलन—अन्तरराष्ट्रीय व्यापार मे ब्रिटेन का भाग गिरता जा रहा था। सन् १६१४ मे यह भाग १४ प्रतिशत था जो कि सन् १६२७ म गिरकर केवल १० प्रतिशत रह गया। भुगतान शेष की दृष्टि से चालू खाते मे ब्रिटेन को १०० मिलियन पौण्ड प्रतिवर्ष का घाटा होने लगा।

(८) बेरोजगारी (Unemployment)—सन् १६२५ के पश्चात बेकार व्यक्तियो की सख्या मे तेजी से वृद्धि हुई। ऐसे व्यक्तियो की सख्या जो पूर्णत अथवा अशत बेकार थ ३० लाख तक पहुँच गयी।

ब्रिटेन द्वारा स्वतन्त्र व्यापार नीति का परित्याग

आर्थिक निरपेक्षता की नीति (Policy of *Laissez Faire*) का परित्याग सर्वप्रथम सामाजिक क्षेत्र से आरम्भ हुआ। आर्थिक निरपेक्षता की नीति के कारण समाज दो वर्गों म विभक्त हो गया था वे थे—अत्यधिक धनी एव अत्यधिक निर्धन। निर्धन वर्ग अपने को धनिक वर्ग के द्वारा पीडित एव शोषित महसूस करता था क्योकि यह असक्त एव साधनहीन था। इस वर्ग के कल्याण के लिए सरकार द्वारा हस्तक्षेप न करने म कोई औचित्य नही था। मानवतावादी (Humanitarians) इसके लिए पहले से ही प्रयत्नशील थे। इनमे लार्ड एशले (Lord Ashley) द्वारा किये गये प्रयत्न उल्लेखनीय हैं। कारखानो मे काम करने वाले बच्चो, मजदूरो एव स्त्रियो की गिरी हुई दशा को सरकारी हस्तक्षेप के बिना नही उठाया जा सकता था।

(१) सामाजिक क्षेत्र मे हस्तक्षेप -यह हस्तक्षेप अनेक अधिनियम पास करके किया गया जो कि इस प्रकार थे

(i) मालिक दायित्व अधिनियम (Employer's Liability Act) सन् १८८० म पास किया गया था और इसका उद्देश्य कारखाने मे किसी मजदूर के घायल हो जाने की दशा मे क्षतिपूर्ति के लिए मालिक को उत्तरदायी बनाना था।

(ii) प्राथमिक शिक्षा सन् १८६१ के बाद अनिवार्य एव नि शुल्क कर दी गयी।

(iii) कारखाना अधिनियम (Factory Acts) कारखानो मे बच्चो एव स्त्रियो की कार्य-दशा को सुधारने के लिए अधिनियम सन् १८०२ से ही बनने लगे थे जब कि नौसिखिया के स्वास्थ्य के लिए 'Health and Morals of Apprentices Act' पास हुआ, किन्तु प्रारम्भ मे किये गये ये प्रयत्न छुट-पुट एव सीमित थे। सन् १८४४ म जो कारखाना अधिनियम पास किया गया वह महत्त्वपूर्ण था। सन् १६०१ म एक व्यापक कारखाना अधिनियम पास किया गया। इस प्रकार

कारखानों में काम की दशाओं में सुधार के लिए हस्तक्षेप करने का अधिकार सरकार को मिल गया।

(iv) समझौता अधिनियम (Conciliation Act) सन् १८६४ में पास हुआ और श्रम-संघर्ष की दशा में समझौते के लिए सरकारी हस्तक्षेप होने लगा। सन् १६०८ में श्रम संघर्ष अधिनियम पास कर दिया गया और सन् १६१६ में व्हिटले समितियाँ (Whitley Committees) बनायी गयीं।

(v) दुकानों के समय को निश्चित करने के लिए सन् १६०४ में 'Early Shop Closing Act' पास हो चुका था।

(vi) वृद्धावस्था पेन्शन अधिनियम सन् १६०६ में लागू किया गया जिससे ७० वर्ष से अधिक के व्यक्तियों को सरकारी सहायता मिलने लगी।

(vii) राष्ट्रीय बीमा अधिनियम सन् १६११ में पास किया गया और इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य एवं बेकारी के बीमे की योजना सरकार ने चलायी।

सरकार द्वारा उठाये गये उपर्युक्त कदमों ने सामाजिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप को बढ़ा दिया। सरकार समाज के कमजोर वर्गों को संरक्षण प्रदान करने की नीति में विश्वास करने लगी क्योंकि आर्थिक निरपेक्षता की नीति इस वर्ग के लिए हानिकर थी। इन सुधारों ने ब्रिटिश उद्योगपतियों पर अतिरिक्त बोझ डाल दिया। क्योंकि इन अधिनियमों के अधीन श्रमिकों को अतिरिक्त सुविधाएँ प्रदान करने के लिए उन्हें अतिरिक्त व्यय करने के लिए बाध्य होना पड़ता था।

(२) आर्थिक एवं व्यापारिक क्षेत्र में हस्तक्षेप—यह हस्तक्षेप प्रथम महायुद्ध आरम्भ होने के बाद व्यवहार में आया। प्रारम्भ में युद्धकालीन आवश्यकता के नाम पर प्रतिबन्ध एवं कर लगाये गये, किन्तु युद्ध की समाप्ति के बाद भी वे किसी न किसी रूप में कायम रहे जब तक कि सन् १६३२ में ब्रिटेन खुले रूप में संरक्षणवादी न बन गया। इस क्षेत्र में हस्तक्षेप निम्न क्रम से किया गया

(i) सन् १६१५ में विलासिता की कुछ वस्तुओं के आयात पर मेकना ड्यूटीज (Mckenna Duties) के नाम से कर लगाया गया जो कि संरक्षण के लिए नहीं बल्कि विदेशी विनिमय की स्थिति को सुधारने के लिए लगाया गया था। इन वस्तुओं में मोटर कार, साइकिल, सिनेमा के फिल्म, घड़ियाँ, ग्रामोफोन, वाद्ययन्त्र आदि सम्मिलित थे।

(ii) सन् १६१६ में औपनिवेशिक अधिमान (जिसे उस समय इम्पीरियल प्रीफरेन्स कहते थे) के सिद्धान्त को अंशतः व्यवहार में लाना आरम्भ किया और उपनिवेशों के माल के आयात के कुछ भाग पर कम दर से कर लिये जाने लगे।

(iii) सन् १६२० में रंग उद्योग (Dyestuff Industry) को संरक्षण दिया गया क्योंकि जर्मन प्रतियोगिता के कारण ऐसा करना उद्योग के अस्तित्व की रक्षार्थ आवश्यक था।

(iv) सन् १६२१ में उद्योग सुरक्षा अधिनियम (Safeguarding of Indus-

tries Act) पास करके आयात-कर की सूची मे विस्तार कर दिया गया। इसके अन्तर्गत लगभग छह हजार वस्तुओ पर आयात-कर लगा दिया गया और राशिपातन (Dumping) को रोकने के लिए ऊँची दर से ड्यूटी लगा दी गयी।

(v) सन् १९३२ मे **आयात-कर अधिनियम** (Import Duties Act) पास किया गया। इसे १ मार्च, १९३२ मे लागू किया गया। इसके अन्तर्गत लगभग सभी वस्तुओ के आयात पर मूल्यानुमार १० प्रतिशत की दर से कर लगा दिया गया तथा एक तटकर सलाहकार **सस्था** (Tariff Advisory Body) का गठन किया गया जिसका अर्थ इन करो मे परिवर्तन के सम्बन्ध मे सलाह देना था।

(vi) सन् १९३३ मे ओटावा **समझौते** (Ottawa Agreement) के अन्तगत **शाही अधिमान** (Imperial Preference) के सिद्धान्त को ब्रिटेन द्वारा व्यावहारिक रूप मे स्वीकार कर लिया गया। इसके अनुसार ब्रिटेन एव उसके उपनिवेशो मे व्यापार की मात्रा बढ गयी क्योकि परस्पर आयात मे कम दर से कर लगाये जाने लगे। यह नीति आज भी जारी है और अब इसे शाही अधिमान के स्थान पर **राष्ट्रमण्डल अधिमान** (Commonwealth Preference) कहा जाता है।

इस प्रकार ब्रिटेन ने आखिरकार स्वतन्त्र व्यापार नीति से मुक्ति पायी और सरक्षणवादी राष्ट्रो की सूची मे आ गया। स्वतन्त्र व्यापार नीति ने इगलैंड के आर्थिक विकास को एक शताब्दी तक प्रभावित किया, सन् १९३२ मे पूर्णरूपेण परित्याग करना पडा और इसके स्थान पर सरक्षणवादी नीति को अपनाना ही ब्रिटेन ने श्रेयस्कर समझा। राष्ट्रीयता की बढती हुई भावना, औद्योगिक क्रान्ति का अन्य देशो मे श्रीगणेश, स्वर्णमान का परित्याग, दो विश्व-युद्धो के बीच भयकर आर्थिक मन्दी आदि ऐसी परिस्थितयाँ थी जिनके कारण इगलैंड को स्वतन्त्र व्यापार के बजाय उचित हस्तक्षेप की नीति अपनानी पडी। इस नीति के अपनाने से ग्रेट ब्रिटेन के विदेशी व्यापार मे वृद्धि हुई। उपनिवेशो के साथ रियायती दर पर आयात-निर्यात की प्रणाली के कारण ब्रिटेन को अधिक लाभ हुआ क्योकि इसमे उपनिवेशों मे उसके द्वारा निर्यात किया हुआ माल सस्ता पडता था और वह अन्य देशो से प्रतियोगिता कर सकता था। यही कारण था कि विश्वव्यापी मन्दी का प्रभाव ब्रिटेन पर उतना अधिक नहीं पडा जितना कि सयुक्त राज्य अमरीका पर।

नव-सरक्षणवाद का प्रसार
(Spread of Neo-Protectionism)

किसी सिद्धान्त अथवा विचार का परित्याग एकाएक नहीं हो जाता। इसके लिए उचित वातावरण आवश्यक होता है जिसके बनने मे कुछ समय लगता है। **वाणिज्यवाद** (Mercantilism) को छोडकर स्वतन्त्र व्यापार नीति को प्रतिपादित एव प्रतिस्थापित करने मे उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ के कई वर्ष लगे। इसी प्रकार स्वतन्त्र व्यापार नीति को छोडकर सरक्षणवादी नीति को ग्रहण करने मे बीसवी शताब्दी के अनेक वर्षो का समय लगा। यद्यपि स्वतन्त्र व्यापार नीति के विरुद्ध

प्रतिक्रिया सन् १८७३ के बाद ही आरम्भ हो गयी थी किन्तु उपयुक्त समय प्रथम महायुद्ध आरम्भ होने पर सन् १९१३ के बाद आया। महायुद्ध ने इगलैंड को आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए बाध्य किया। उधर सन् १९२९ के बाद भयकर मन्दी से आक्रान्त अमरीका ने न्यू डील (New-Deal) की नीति अपनाकर नव-सरक्षणवाद (Neo-Protectionism) को प्रश्रय दिया। इ गलैंड के समक्ष भी अन्य कोई विकल्प नही रहा और एक लम्बी पशोपेश के बाद सन् १९३२ म खुले रूप मे वह नव-सरक्षणवादी राष्ट्र बन गया। वाणिज्यवादी नीति (Mercantilism) के अन्तर्गत भी अनेक प्रतिबन्धो एव नियमो के द्वारा राष्ट्र के निर्यात को बढाने के प्रयत्न किये जाते थे क्योंकि उस समय राष्ट्रों का यह विश्वास था कि इससे राष्ट्र की शक्ति मे वृद्धि होती है। प्रथम महायुद्ध के बाद जो सरक्षणवाद विश्व मे पनपा, वह भी अनेक बन्धनो तथा प्रतिबन्धनो से युक्त था और इसीलिए इसे नव-सरक्षणवाद (Neo-Protectionism) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। वाणिज्यवाद एव नव-सरक्षणवाद म पर्याप्त अन्तर है जिसे समझ लेना आवश्यक है। वाणिज्यवाद के अन्तर्गत अनुकूल व्यापार शेष (Favourable Balance of Trade) पर अधिक ध्यान था जिसका उद्देश्य निर्यात को अधिक से अधिक बढाकर और आयात म अधिकतम कमी करके स्वर्ण सग्रह करना था। वह आज के युग मे सम्भव नही है क्योकि यदि सभी देश यदि केवल निर्यात ही करना चाहेंगे तो फिर आयात कौन करेगा? अत' **नव सक्षरणवाद** इतना स्वार्थी नही है और इसीलिए इसका मूल उद्देश्य **उचित व्यापार** (Fair Trade) है। सन् १८८७ मे मन्दी के कारणो का विश्लेषण करने के लिए ब्रिटेन मे जो आयोग नियुक्त किया गया था, उसने भी अपनी रिपोर्ट मे **'स्वतन्त्र व्यापार'** के स्थान पर **'उचित व्यापार'** (From 'Free Trade' to 'Fair Trade') अपनाने का परामर्श दिया था। जिसका आशय यह था कि दो देशो मे व्यापार उचित आदान-प्रदान के आधार पर होना चाहिए। स्वतन्त्र व्यापार नीति केवल उन्ही देशो के लिए होनी चाहिए जो इसमें विश्वास करते हो, अन्यथा सरक्षणवादी देशो के साथ वैसी नीति ही अपनायी जानी चाहिए।

वाणिज्यवाद एव नव सरक्षणवाद मे दूसरा महत्त्वपूण अन्तर यह है कि नव-सरक्षणवाद अपने दृष्टिकोण मे अधिक व्यापक है। व्यक्तिगत, स्थानीय, प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय स्वार्थों के स्थान पर अन्तरराष्ट्रीय स्वार्थों की ओर यह अधिक ध्यान देने का प्रयत्न करता है। सामाजिक कल्याण एव उचित सामाजिक दृष्टिकोण को यह अपनी राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय नीतियो मे अधिक स्थान देता है तथा राष्ट्रीय स्तर पर आयात-निर्यात करो को कुछ सीमा तक बनाये रखने के बावजूद द्विपक्षीय (Bilateral) एव बहुपक्षीय (Multilateral) समझौतो के द्वारा तथा व्यापार सम्मेलनो के द्वारा उचित व्यापार की नीति का पालन किया जाता है। अत बीसवी शताब्दी का नव सरक्षणवाद कुछ सकुचित होते हुए भी अपने दृष्टिकोण में अन्तर-राष्ट्रीय है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद से अब फिर यह महसूस किया जाने लगा है कि माल के आयात निर्यात के स्वतन्त्र प्रवाह के मार्ग मे आयात निर्यात करो के रूप मे खडी की गयी राष्ट्रीय दीवारो को गिरा दिया जाना चाहिए क्योकि कोई भी राष्ट्र चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यो न हो अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुएँ स्वय अपने देश के अन्दर उत्पादित नही कर सकता। उसे अन्तरराष्ट्रीय श्रम विभाजन एव अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का सहारा लेना ही पडता है। विदेशी व्यापार के मार्ग मे खडी दीवारें आर्थिक सकटो को उत्पन्न करती हैं। श्री केमरर एव जोन्स के अनुसार, 'आयात निर्यात कर युद्ध का जन्म देते हैं और युद्ध इन करो मे और अधिक वृद्धि करते हैं।[1] अत अब यह विश्वास किया जाने लगा है कि इन्हे यथासम्भव समाप्त अथवा कम किया जाना चाहिए और इसी उद्देश्य से अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष एव जनरल एग्रीमेन्ट आन ट्रेड टैरिफ (G A T T) जैसी सस्थाओ एव समझौतो के अन्तर्गत विदेशी व्यापार को बहुपक्षीय रूप दिया जा रहा है। फिर भी जी० ए० टी० टी०[2] (G A T T) के सदस्य राष्ट्रो मे गुट बन हुए हैं जैसे यूरोपीय साझा बाजार[3] (E C M) यूरोपीय स्वतन्त्र व्यापार सघ[4] (E F T A), पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद्[5] (C O M E C O N) एव राष्ट्रमण्डलीय अधिमान समझौते (Commonwealth Preference Agreements) आदि।

ब्रिटेन की वर्तमान व्यापार नीति

सन १६३२ के आयात कर अधिनियम (Import Duties Act) के द्वारा इंगलैण्ड ने सरक्षण का सिद्धान्त अपनाया। इससे वह इस स्थिति मे आ गया कि अन्य सरक्षणवादी देशो के साथ समान स्तर पर व्यापारिक बातचीत कर सके। सरक्षण ने ब्रिटिश उद्योगो की गिरती हुई दशा को और आगे गिरने से रोक दिया। सन १६३६ तक ब्रिटेन ने कई देशों के साथ पारस्परिक व्यापारिक समझौते किये। द्वितीय विश्व युद्ध के काल मे सरकारी स्तर पर भारी मात्रा मे वस्तुओ का आयात किया गया और विदेशी विनिमय का नियन्त्रण कर दिया गया। अत सरक्षण करो का प्रश्न स्वय ही गौण बन गया किन्तु सन १६४६ के बाद आयात निर्यात मे सन्तुलन स्थापित करने के लिए एक बार फिर आयात करो को प्रधानता दी गयी।

---

1 "Tariffs are a cause of wars and wars cause tariffs"
—*Kemmerer and Jones in American Economic History.*

2 G A T T General Agreement on Trade and Tariffs, More than 80 countries are its members

3 E C M European Common Market (Members—Belgium, France West Germany, Italy, Luxemberg, Netherland)

4 E F T A European Free Trade Association (Members—U K, Norway, Sweden, Denmark, Switzerland, Austria and Finland)

5 C O M E C O N—Council of Mutual Economic Aid (Members—Russia and Russian block countries)

Customs Duties (Dumping and Subsidies) Act, 1957 के अन्तर्गत व्यापार मन्डल (Board of Trade) को यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी देश द्वारा राशिपातन (Dumping) के उद्देश्य से ब्रिटेन को भेजी जानी वाली वस्तुओं पर ऊँची दर मे कर लगा सके। सरक्षण-करो से सम्बद्ध नियमो को मिलाकर सन् १६५८ मे आयात-कर अधिनियम (Import Duties Act) पास किया गया और आयात करो सम्बन्धी वर्तमान नीति इसी पर आधारित है। इसे १ जनवरी, १६५६ मे लागू किया गया और इसम प्रशुल्क-सूची को अन्तरराष्ट्रीय स्वीकृत रूप मे फिर से तैयार किया गया है।

अक्तूबर सन १६६४ मे भुगतान शेष की प्रतिकूल स्थिति को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने आयात की वस्तुओ पर मूल्यानुसार १५ प्रतिशत अस्थायी चार्ज लगा दिया। यह अधिभार खाद्य पदार्थो ईधन एव कच्चे माल एव अनिर्मित तम्बाकू को छोडकर अन्य सब वस्तुओ के आयात पर लगाया गया। यह अस्थायी कदम है और इसका उद्देश्य निर्मित एव अर्द्ध-निर्मित माल क आयात को कम करना है। भुगतान शेष की स्थिति मे कुछ सुधार हो जाने से ब्रिटिश सरकार ने इस चार्ज को १५ प्रतिशत से घटाकर २७ अप्रैल, १६६५ से १० प्रतिशत कर दिया है।

पिछले महायुद्ध के बाद से अन्तरराष्ट्रीय व्यापारिक सस्थाओ, समझौतो एव सम्मेलनो का विभिन्न देशो की व्यापारिक नीति पर गहरा प्रभाव पडा है। ब्रिटेन भी इनसे प्रभावित हुआ है और उसके अनुसार उसने अपनी व्यापारिक नीति मे परिवर्तन भी किये हैं। वह इन सस्थाओ अथवा सम्मेलनो के आयोजनो मे सक्रिय भाग लेता रहा है और अनेक सस्थाओं का सस्थापक सदस्य रहा है। बहुपक्षीय व्यापार समझौतो के कारण अब सरक्षण करो का महत्त्व बहुत ही कम हो गया है। सन् १६६७-६८ मे सरक्षण करो से होने वाली कुल आय केवल २१५ मिलियन पौण्ड थी जोकि ब्रिटेन के कुल आयात के मूल्य की केवल तीन प्रतिशत थी। ब्रिटेन की सम्पन्नता उसके निर्यात व्यापार पर निर्भर करती है। वह स्वय एक अत्यन्त विकसित राष्ट्र है तथा उसके उत्पादनो का स्तर काफी ऊँचा होता है जिनकी विदेशो में माँग है और आगे भी रहेगी। अत ब्रिटेन चाहता है कि अन्य देश उसके माल के आयात पर कम से कम कर लगायें तथा वह स्वय भी उनके माल पर कम से कम आयात-कर लगाने की नीति मे विश्वास करता है। इधर पिछले पाँच वर्षो से उसकी भुगतान शेष की स्थिति खराब रहने के बावजूद ब्रिटेन अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के मार्ग मे राष्ट्रीय प्रतिबन्धो एव कृत्रिम बाधाओं के समाप्त करने की नीति का समर्थक है। यह सब होते हुए भी ब्रिटेन की वर्तमान व्यापार नीति को पूर्णत स्वतन्त्र व्यापारवादी और पूर्णत सरक्षणवादी कहना उचित नही होगा और वास्तव मे उसको वर्तमान नीति उचित व्यापारवादी (Fair Trade Policy) है।

अन्तरराष्ट्रीय व्यापारिक सहयोग एव ग्रेट ब्रिटेन
(International Trade Co-operation and Great Britain)

यह पहले ही कहा जा चुका है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से अन्तरराष्ट्रीय

व्यापार की वृद्धि एव उसके मार्ग मे उत्पन्न राष्ट्रीय कृत्रिम बाधाओं के समाप्त करने के उद्देश्य से जितने भी प्रयत्न अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हुए हैं उन सबमे ब्रिटेन का सक्रिय योग रहा है। इस दिशा मे निम्नलिखित सस्थाओं एव समझौतों से ब्रिटेन की व्यापार नीति पर प्रभाव पडा है

(१) अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (I. M F)—सन् १९४४ मे ब्रेटनवुड (Breten woods) नामक स्थान पर अमरीका द्वारा आयोजित अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा सम्मेलन मे स्वीकृत योजना के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों की विनिमय दरों मे स्थायित्व लाने के उद्देश्य से अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा सहयोग एव अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के विकास के लिए एक ऐसी प्रणाली को जन्म देना था जो कि स्वर्णमान का स्थान ले सके। इसमे प्रारम्भ मे केवल ४० राष्ट्र सदस्य थे किन्तु अब सदस्यों की सख्या १०२ है और सदस्य राष्ट्रों के निर्धारित कोटे के आधार पर अब इसका कोष २१,००० मिलियन डालर है। सदस्य राष्ट्रों को इस कोष मे से अपने भुगतान सन्तुलन को बनाये रखने के लिए अन्य किसी भी सदस्य राष्ट्र की मुद्रा मे ऋण लेने का अधिकार प्राप्त है। ब्रिटेन के ऋण कोटा (Quota) को सन् १९६६ मे बढाकर २,४४० मिलियन डालर (१,०१७ मिलियन पौण्ड) कर दिया गया। सन् १९६४ के बाद से अनेक बार ब्रिटेन अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण ले चुका है। सन् १९६४ मे १,००० मिलियन डालर का ऋण लिया गया जिसका भुगतान नवम्बर १९६७ मे कर दिया गया। सन् १९६५ मे १,४०० मिलियन डालर सन् १९६६ मे १२२ मिलियन डालर तथा १४०० मिलियन डालर जून १९६८ मे उधार लिये गये जिनका भुगतान अभी शेष है।

(२) राष्ट्रमण्डल अधिनियम (Commonwealth Preference)—यह श्रीयुत जोसेफ चेम्बरलेन के मस्तिष्क की उपज थी जिन्होंने रचनात्मक साम्राज्यवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत इम्पीरियल प्रीफरेन्स की नवीन पद्धति का विकास किया जिसे अब 'कामनवेल्थ प्रीफरेन्स' कहा जाता है। कनाडा ने सर्वप्रथम सन् १८९७ मे ब्रिटेन एव साम्राज्य के अन्य देशों से आयात की जाने वाली वस्तुओं पर रियायती दर से कर लिए जाने की नीति अपनाई। ब्रिटेन ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद सन् १९१९ मे व्यवहार मे इस नीति को अपनाया किन्तु वह पूर्णत इस नीति को सन् १९३२ के ओटावा समझौते के बाद व्यवहार मे ला सका। इसके अनुसार राष्ट्रमण्डल के राष्ट्रों मे आयात किये जाने वाली वस्तुओं पर रियायती दर से आयात कर लिये जाने की व्यवस्था है तथा यह सुविधा राष्ट्रमण्डल के राष्ट्र परस्पर एक-दूसरे को देते हैं। ब्रिटेन के लिए यह नीति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई और वह राष्ट्रमण्डलीय गुट के अन्तर्गत इसके आधार पर विश्व मे अपनी व्यावारिक स्थिति को कायम रख सका तथा राष्ट्रमण्डल के कुछ विकासशील देशों को भी इससे लाभ हुआ क्योंकि वे अपने माल के ब्रिटेन मे निर्यात को बढाकर अधिक स्टर्लिंग आय प्राप्त करने मे

सफल हुए। उदाहरण के लिए, भारत इस नीति के कारण ही ब्रिटेन में अपने कपडे का निर्यात बाजार बना गया।

खाद्य-पदार्थ एव कच्चा माल अधिकाशत कर-मुक्त सूची मे है अथवा यदि वे कर सूची मे हैं भी तो उन पर कर की दर बहुत कम है। अर्द्धनिर्मित माल पर कर की दर १५ प्रतिशत अथवा इससे कम है, तथा निर्मित माल पर ये दर १० से ३३ प्रतिशत तक है। मई सन १९६४ मे सयुक्त राष्ट्र सघ के तत्वावधान मे व्यापार एव विकास पर जेनेवा मे हुए सम्मेलन मे ब्रिटेन द्वारा यह घोषणा की गयी थी कि वह तटकर अधिमान (Tariff preference) की रियायत समस्त विकासशील देशो को प्रदान करने के लिए तैयार है बशर्ते कि अन्य प्रमुख औद्योगिक देश भी ऐसा करने के लिए तैयार हो।

(३) जी० ए० टी० टी० (G. A T T)—द्वितीय महायुद्ध के बाद विदेशी व्यापार मे भेदभाव एव कृत्रिम बाधाओ को दूर करके अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का विकास करने के उद्देश्य से सन् १९४८ मे विश्व के अनेक राष्ट्रो के बीच यह समझौता सम्पन्न किया गया। सदस्य राष्ट्र इस समझौते के अन्तर्गत किये गये निर्णयो से बाध्य होते है। ब्रिटेन भी इस समझौते के अन्तर्गत निर्धारित किये गये सिद्धान्तों का पालन करता है। ब्रिटेन को राष्ट्रमण्डल अधिमान (Commonwealth preference) को बनाये रखने की छूट है किन्तु वह उसके अन्तर्गत नयी रियायतें किन्ही देशो को नही दे सकेगा। जी० ए० टी० टी० के अनुसार किये गये बहुपक्षीय व्यापार समझौते मे निहित '*Most, Favoured Nation*' के आधार पर ब्रिटेन करो मे वे सब रियायतें देता है जो अन्य राष्ट्र बदले मे देते हैं। ब्रिटेन आयात किये जाने वाले माल का लगभग आधा भाग इन समझौतो से प्रभावित होता है।

सन् १९६४ से १९६७ तक की अवधि के लिए निर्धारित रियायतो के आधार पर ब्रिटेन औद्योगिक निर्मित माल के आयात पर यूरोपीय साझा बाजार को ३७ प्रतिशत, संयुक्त राज्य अमरीका को ४० प्रतिशत तथा जापान को ३४ प्रतिशत कमी आयात करो मे कर चुका है। जुलाई सन १९६८ से इन मे और अधिक कमी किये जाने की घोषणा ब्रिटेन कर चुका है। ये रियायतें सन् १९७२ तक लागू रहेगी बशर्ते ये राष्ट्र भी ब्रिटेन को ऐसी ही रियायतें देने की घोषणा करें।

(४) यूरोपीय साझा बाजार (E C M)—मार्च सन् १९५७ मे रोम मे की गयी सन्धि के अनुसार यह सगठन अस्तित्व मे आया जिसमे पश्चिमी यूरोप के छः राष्ट्र सदस्य हैं—फ्रान्स, पश्चिमी जर्मनी, इटली, हालैण्ड, बेलजियम तथा लक्जमबर्ग। इस सगठन ने अपना कार्य १ जनवरी, १९५८ मे आरम्भ किया। इस सगठन का मुख्य उद्देश्य पश्चिमी यूरोप को एक आर्थिक सगठन मे बाँधना है तथा प्रथम चरण मे सन् १९७० तक सदस्य राष्ट्रो मे परस्पर व्यापार पर लगे सभी प्रकार के तटकर एव प्रतिबन्धों को समाप्त करना है। स्वाभाविक है कि ब्रिटेन के

पड़ोसी देशों के इस सगठन ने ब्रिटेन की व्यापार नीति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। आरम्भ में ब्रिटेन को इसका सदस्य बनने के लिए आमन्त्रित किया गया था किन्तु अपने राष्ट्रमण्डलीय गठबन्धन के कारण वह इसका सदस्य न बना क्योंकि वह कुछ शर्तों एव सशोधनों के साथ इसकी सदस्यता स्वीकार करने को इच्छुक था जो कि सम्भव न हो सका। एक ओर वह अपने राष्ट्रमण्डल के देशों को नाराज नहीं करना चाहता था, तो दूसरी ओर वह यह भी अनुभव करता था कि साझा बाजार का सदस्य बने बिना उसका व्यापारिक पक्ष भविष्य में सुदृढ नहीं हो सकेगा। इसीलिए सन् १९६१ में ब्रिटेन ने इसकी सदस्यता के लिए आवेदन किया किन्तु फ्रान्स के विरोध के कारण वह सदस्य न बन सका और सन् १९६३ में यह वार्ता भग हो गयी। ब्रिटेन इसकी सदस्यता के लिए अब भी प्रयत्नशील है तथा कोई ऐसा मार्ग निकालना चाहता है कि जिससे अपने राष्ट्रमण्डलीय व्यापारिक सम्बन्धों को कायम रखते हुए भी वह इस सगठन के लाभ में भागीदार हो जाय। पिछले बारह वर्षों में साझा बाजार के देशों को ब्रिटेन का निर्यात २७ प्रतिशत से बढ कर ३६ प्रतिशत हो गया है जबकि इसी अवधि में राष्ट्रमण्डलीय देशों एव स्टर्लिंग क्षेत्र के अन्य देशों के साथ उसका निर्यात व्यापार ४७ प्रतिशत से घटकर ३६ प्रतिशत रह गया है। अत व्यापारिक दृष्टि से वह साझा बाजार के प्रति उदासीनता की नीति नहीं अपना सकता और इसीलिए इसका सदस्य बनने का इच्छुक है। सन् १९६७ में ब्रिटेन द्वारा एक बार फिर सदस्यता के लिए आवेदन किया गया। फ्रान्स के अतिरिक्त अन्य पाँचों सदस्य राष्ट्र ब्रिटेन को सदस्यता प्रदान करने के लिए सहमत हैं। आवेदन अब भी सदस्य राष्ट्रों के समक्ष विचाराधीन है।

(५) **यूरोपीय स्वतन्त्र व्यापार सगठन (E F T A)**—इगलैंड ने साझा बाजार की एक प्रतिद्वन्द्वी सस्था के रूप में E F T A. (European Free Trade Association) की स्थापना मई १९६० में की जिसके सदस्य ब्रिटेन के अतिरिक्त स्विट्जरलैण्ड, आस्ट्रिया, पुर्तगाल, नार्वे, स्वीडन तथा डेनमार्क हैं। इस सगठन के अन्तर्गत सन् १९६५ तक औद्योगिक माल पर पारस्परिक तटकर में ८० प्रतिशत की कमी सदस्य राष्ट्र द्वारा कर दी गयी तथा सन् १९६६ के अन्त तक पारस्परिक व्यापार पर लगे सभी करों एव बन्धनों को समाप्त कर दिया गया है। यह कार्य सन १९७० तक सम्पन्न किया जाना था किन्तु लक्ष्य दो चार वर्ष पूर्व ही पूरा कर लिया गया। फिनलैण्ड सहित सात देशों की दस करोड जनसंख्या इससे लाभ प्राप्त कर रही है और विश्व में यह सगठन प्रथम है जिसमें शत प्रतिशत व्यापार स्वतन्त्रता प्राप्त करली गयी है। फलत सातों देशों का बाजार एक इकाई के रूप में कार्य कर रहा है और पिछले दस वर्षों में इन देशों का पारस्परिक व्यापार दो गुने से भी अधिक बढ गया है। अब फिनलैण्ड[1] भी इसका सदस्य बन

[1] Finland was made an Associate Member in 1961

गया है। यूरोपियन साझा बाजार की प्रतिद्वन्द्विता में यह संगठन बनाने की ब्रिटेन की योजना अधिक सफल नहीं हो सकी क्योंकि ब्रिटेन के अतिरिक्त इस संगठन के अन्य समस्त सदस्य छोटे राष्ट्र हैं फिर भी इस संगठन के अन्तर्गत ब्रिटेन ने पारस्परिक आयात-निर्यात में वृद्धि की है।

यूरोपीय साझा बाजार (E C M) एवं यूरोपीय स्वतन्त्र व्यापार संगठन (E F T A) पश्चिमी यूरोप के दो प्रमुख व्यापारिक एवं आर्थिक संगठन बन गये हैं। ब्रिटेन इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि इन दोनों संगठनों का एकीकरण होकर यूरोप में एक वृहत संगठन का निर्माण हो जाय।

प्रश्न

1. Discuss the circumstances that forced England to adopt the protectionist policy after the world depression of the thirties and assess the effect of this change.

   विश्वव्यापी मन्दी के बाद इंगलैण्ड को संरक्षणवादी नीति किन परिस्थितियों में अपनानी पड़ी? इस परिवर्तन के प्रभावों का मूल्यांकन कीजिए।

   (राजस्थान, १९६३)

2. What is meant by imperial preference? What was the effect of the policy of imperial preference on British economy?

   'शाही अधिमान' से आप क्या तात्पर्य समझते हैं? ब्रिटिश अर्थव्यवस्था पर शाही अधिमान का क्या प्रभाव पड़ा। (B H U, १९५८)

3. Explain fully why England adopted the policy of protection in 1932.

   सन् १९३२ में इंगलैण्ड द्वारा संरक्षण की नीति क्यों अपनाई गयी। पूर्णतः समझाइए। (राजस्थान, १९६४)

१६

श्रमिक संघ आन्दोलन

(Trade Union Movement)

वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था ने समाज मे आर्थिक विषमताओ को जन्म दिया है उसी के परिणामस्वरूप श्रमिक-सघ आन्दोलन अस्तित्व मे आया है। वस्तुत श्रमिक सघ आन्दोलन औद्योगिक-क्रान्ति की ही देन है। जब औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप श्रमिक ग्रामो से शहरो की ओर उन्मुख हुए उस समय उन्हे अपनी कार्य-दक्षता का विक्रय करना पडा। कृषि क्रान्ति ने उन्हे जीविका-विहीन कर दिया था। उन्हें एक भिन्न प्रकार के नियोजकों का सामना करना था। श्रमिको के श्रम की नाशवान प्रकृति ने श्रमिको एव नियोजकों के मध्य प्रतियोगिता मे असमानता उत्पन्न कर दी। अत श्रमिको ने यह अनुभव किया कि उस ी क्रय-शक्ति की न्यूनता के अभाव को सगठित होकर हल किया जा सकता है। इस आवश्यकता ने ही श्रमिक-सघ आन्दोलन को जन्म दिया।

औद्योगिक-क्रान्ति से पूर्व श्रमिको मे इस प्रकार का श्रम-सघ आन्दोलन विद्यमान नहीं था। उस समय गृह उद्योगो की स्थिति म शिल्पकार-सघ (Craft-guild) विद्यमान थे जिनमे स्वामी, श्रमिक और नव-सिखुआ सगठित थे। इन सघो का नियन्त्रण और नियमत स्वामियो के हाथ मे था। स्वामी, श्रमिक और नव-सिखुओं के बीच के सम्बन्ध बहुत ही मधुर थे। नव-सिखुओ के लिए स्वामी बनने के अवसर उपलब्ध थे। उद्योगो की स्थिति भी इस प्रकार की नही थी कि श्रमिक स्वामी के विरुद्ध सघर्षरत हो।

सोलहवीं शताब्दी मे शिल्पकार-सघो के पतन के बाद श्रमिको और नियो-जको मे विरोध उत्पन्न होने लगा। श्रमिको के सगठन के रूप म टोप बनाने वाले दर्जियों, और जूता बनाने वालो के सगठन दृष्टिगोचर हुए। राज्य का दृष्टिकोण इस रूप म अधिक सहानुभूतिपूर्ण नही था। राज्य ने इस प्रकार के अधि-नियम स्वीकृत किये जिनमे उनकी अधिकतम मजदूरी की व्यवस्था की गयी थी

और सगठन को अवैध घोषित किया गया। सन् १५६३ के अधिनियमों के अन्तर्गत न्यायाधीशों (Justices of peace) को अधिकार दिये गये कि वे अधिकतम मजदूरी अधिनियमों को लागू करें। सन् १७२० और १७२५ से अधिनियमों के अन्तर्गत दर्जियो, जुलाहों, बुनकरों इत्यादि के सघ अवैध घोषित किय गये। श्रमिकों की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति म यह और भी दुखद घटना थी कि सन १७०० के पश्चात् राजकीय नियमों क अन्तर्गत विदेशी मशीनरी और श्रमिकों का आयात निषिद्ध कर दिया गया। यही कारण था कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री आदिम स्मिथ को कहना पड़ा—"जब कभी श्रमिकों और स्वामियों क विभेद को दूर करने का प्रयत्न किया गया, कार्य क सलाहकार स्वामी ही होते थे। क्योंकि एक नियमित और सगठित मज़दूर वर्ग का अभाव था।

औद्योगिक क्रान्ति एवं श्रमिक सघ

औद्योगिक क्रान्ति ने एक नये श्रमिक वर्ग को जन्म दिया। क्रान्ति के फल-स्वरूप श्रमिकों का आपसी सम्पर्क अधिक बढ़ा। गृह-उत्पादन विधि के अन्तर्गत श्रमिकों को आपस में मिलने का अवसर नहीं मिलता था पर औद्योगिक क्रान्ति के समय बहुत-से श्रमिकों को एक कारखाने में आपस में मिलने का अवसर प्राप्त होता था। श्रमिक-सघ-आन्दोलन को अपने प्रारम्भिक विकास के चरण में निम्न कठिनाइयों का अनुभव हुआ :

(१) सन् १७९९ और १८०० ई० मे सयोग प्रतिबन्धक अधिनियम (Combination Laws) स्वीकृत हुए, जिनके अन्तर्गत उन सस्थाओं को अवैधानिक घोषित किया गया जो कि सामान्य व्यवसाय को सुचारु रूप से चलाने मे बाधक थीं। इसके अतिरिक्त इगलैण्ड का कामन लॉ भी श्रमिक-आन्दोलन के विरुद्ध था।

(२) श्रमिक निर्धन होने के कारण श्रमिक-सघ कोष मे साल में एक दिन का पारिश्रमिक भी चन्दे के रूप में नहीं दे सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिक-सघ-कोष मे बहुत कम रकम रहती थी जिससे सगठित रूप से कोई कार्य नहीं किया जा सकता था।

(३) आवागमन के साधनों के पर्याप्त विकास के अभाव मे श्रमिक आपस में मिल नहीं पाते थे।

(४) जाति, धर्म और भाषा सम्बन्धी विभिन्नताओं ने भी प्रारम्भिक काल में श्रमिकों के सगठित होने मे रुकावट उत्पन्न की।

(५) राज्य और मिल-मालिकों की निरकुश और दमनपूर्ण नीति ने श्रमिक-सघ-आन्दोलन के जाग्रत और सशक्त होने मे रुकावटें उत्पन्न कीं। श्रमिक नेताओं को आजन्म कारावास की सजाएँ देने के कारण योग्य कार्य-कर्ताओं का अभाव उत्पन्न हो गया। सन् १७९३ म म्योर और पामा तथा बाद के वर्षों मे हार्डी, हार्नटक और जॉन थुलवेल नामक श्रमिक नेताओं को आजन्म कारावास की सजाएँ देना श्रमिक-सघ आन्दोलन के पैरों पर कुठाराघात था।

(६) सन १८१९ ई० में ६ अधिनियम स्वीकृत हुए, जिनका श्रमिकों की सभा और प्रकाशन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

(७) श्रमिकों में सच्चे नेताओं का अभाव था।

सगठन की प्रेरणा

इतना सब कुछ होने पर जो श्रमिक आन्दोलन औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पन्न हो गया था, वह धीरे-धीरे अपनी जड़ें मजबूत करता गया। श्रमिक आन्दोलन के इतिहास में उतार चढ़ाव का क्रम रहा है। **श्रमिक आन्दोलन को निम्नलिखित कारणों और घटनाओं से प्रोत्साहन मिला**

(१) प्रारम्भिक काल में श्रमिकों की काम करने की दशाएं अत्यन्त शोचनीय थी। बालकों और महिला श्रमिकों का बहुत ही बुरा हाल था। कारखानों का अस्वास्थ्यपूर्ण वातावरण भी इस बात के लिए उत्तरदायी था।

(२) जिस समय इगलैण्ड ने औद्योगिक क्रान्ति का सृजन किया, फ्रांस ने सन् १७८९ में राज्य-क्रान्ति का सूत्रपात किया। राजतन्त्र के स्थान पर प्रजातन्त्र स्थापित हुआ और क्रान्ति के आकर्षक नारे—समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व—श्रमिकों में सगठित होने की चेतना भरने लगे।

(३) फ्रांसीसी क्रान्ति ने इगलैण्ड की सरकार की दमन नीति को प्रोत्साहन दिया। सरकार ने सन १७९७, १८०० में दमनकारी अधिनियम स्वीकृत किये जिसमें श्रमिकों के सभी प्रकार के सगठन अवैध घोषित किये गये। सरकार ज्यों-ज्यों दमन नीति का सहारा लेती गयी त्यों त्यों श्रमिक आन्दोलन अधिक सुदृढ होता गया।

(४) उद्योगपतियों का सगठन सुदृढ था जिसका अप्रत्यक्ष फल यह हुआ कि श्रमिकों को भी अपना सगठन अधिक दृढ बनाना पड़ा।

(५) श्रमिकों की बढती हुई सख्या ने यह भावना उत्पन्न करने में सहायता दी कि वे यदि सगठित हुए तो देश की राजनीति में हस्तक्षेप कर सकते है तथा अपने हित में श्रम-अधिनियमों का निर्माण कर सकते हैं।

औद्योगिक-क्रान्ति ने जहाँ एक ओर पूँजी के केन्द्रीकरण और उद्योगों के स्थानीकरण में योग दिया वहाँ दूसरी ओर उसने श्रमिक-वर्ग में सगठित होने की भावनाओं को भी प्रोत्साहन दिया। वैसे तो मध्यकालीन उद्योगों की स्थिति में भी श्रमिक-वर्ग किसी न किसी रूप में सगठित था और इस प्रकार के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्रमिकों की एक शाखा जिसे Journey Men नाम से पुकारा जाता है, औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व भी मजदूरी की वृद्धि के लिए और अन्य व्यावसायिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए सगठित हुआ करती थी। सन् १६९६ की Journey Men Fett Makers of London की Charterd Company के विरुद्ध हड़ताल, सन् १७२१ में Journey Men Tailors of London की मास्टर क्राफ्टमैन के विरुद्ध हड़ताल तथा Wool Combers Union की मिल-मालिकों के विरुद्ध हड़ताल इस बात की प्रतीक है कि श्रम सस्थाएँ आर्थिक

रूप में ही सही, अधिकारों के प्रति जागरूक अवश्य थी। इसके अतिरिक्त १७७० के मध्य में देश के विभिन्न उद्योगों में दशव्यापी श्रमिक हड़तालें भी इस बात का प्रमाण हैं।

'फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति' और 'अमरीकी स्वातन्त्र्य युद्ध', इंगलैंड में श्रमिकों के लिए संगठित होने के लिए महान प्रेरणा स्रोत थे। कुछ श्रमिक संस्थाओं की भी स्थापना हुई थी। सन् १७९३ में फ्रांस के साथ इंगलैंड का युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस आपत्ति-काल में सरकार सतर्क हो गयी कि कहीं फ्रांसीसी क्रान्ति के विचार यहाँ के श्रमिक वर्ग में नवीन चेतना न भर दें। नेपोलियन के आक्रमणों से प्रभावित सरकार ने श्रमिक अधिनियमों और संगठन अधिनियमों को स्वीकार किया। सन् १७९४ में बन्दी-प्रत्यक्षीकरण अधिनियम (Habeas Corpus Act) स्थगित कर दिया गया तथा सन् १७९६ में गुप्त-मन्त्रणा और सभाओं के अधिनियम के विरुद्ध अधिनियम स्वीकृत किया गया। सन् १७९७ और १८०० में संयोग-प्रतिबन्धक अधिनियम (Combination Acts) स्वीकृत किये गये जिनके अन्तर्गत श्रमिक संगठनों पर रोक लगा दी गयी। इसी प्रकार के अधिनियम नियोजक के लिए भी स्वीकृत किये गये।

(१) मैत्री संघ एवं लुड्डाइट आन्दोलन (Friends Societies & Luddait Movement)

यह ठीक है कि जिस समय इस प्रकार के अधिनियम स्वीकृत किये गये उस समय श्रमिक संगठन अवैधानिक करार दे दिये गये थे परन्तु मूल रूप में वे समाप्त नहीं हुए थे। कुछ श्रमिकों ने मैत्री संघों (Friends Societies) के रूप में अपने को संगठित किया जिसको सन् १७९३ में वैधानिक रूप प्राप्त हो चुका था। उसी समय एक गुप्त संस्था लुड्डाइट के नाम से चल पड़ी। यह आन्दोलन मुख्यतः मशीन विरोधी था। इसका सूत्रपात नोटिंघम, लिसेस्टरशायर और डर्बीशायर से हुआ था। वहाँ से यह आन्दोलन शीघ्र देश के अन्य भागों में फैल गया। सन् १८०२ से १८०६ तक इंगलैंड के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में ऊनी-वस्त्रों के कारखानों में कारीगरों ने जिगमिल (Gig Mill) नामक यन्त्र के उपयोग को रोकने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु उनका प्रयास असफल रहा। उत्तरी भाग और मिडलैण्ड्स में लुड्डाइट्स ने सन् १८११ में फैक्टरियों की अलाभकर मशीनों को तोड़ फोड़ दिया। उसी तरह लंकाशायर के बुनकरों ने सन् १८१२ के अप्रैल महीने में वैस्टहोटन नामक स्थान पर स्थित वाष्प-चालित कारखाने को जला दिया। इस कार्य में चार लुड्डाइटों को फाँसी की सजा दी गयी तथा १७ को ७ वर्ष के लिए जेल भेज दिया गया। यार्कशायर में लुड्डाइटों ने ऊन उद्योगों की मशीनों को तोड़ डाला। यहाँ १४ व्यक्तियों को फाँसी दी गयी।

इंगलैंड की सरकार ने बहुत कड़ाई से लुड्डाइट आन्दोलनों को दबा दिया। अपनी दमन की नीति में सरकार ने गुप्तचर, पुलिस, घुड़सवार तथा सिपाहियों का उपयोग किया। सन् १८१२ में मशीन तोड़ने के अपराध के लिए फाँसी की सजा

निश्चित की गयी। इतना सब कुछ होने पर भी साधारण श्रमिक वर्ग अचेतन तथा अशिक्षित ही था।

(२) फ्रांसिस प्लेस एवं जोसफ ह्यूम

सन् १८१५ में नैपोलियन युद्धों से इंगलैंड ने मुक्ति की साँस ली। उस समय श्रमिक आन्दोलन ने नयी करवट ली क्योंकि नैपोलियन युद्धों के बाद आर्थिक मन्दी के काल में श्रमिकों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। बेकारी की समस्या और मजदूरी की गिरावट ने मजदूरों को संगठन की नवीन प्रेरणा दी। श्रमिक संस्थाएँ जो अब तक वैधानिक थीं पुनः अस्तित्व में आने लगीं। फ्रांसिस प्लेस (Francis Place) ने, जो कि मास्टर टेलर था और चैरिंग क्रॉस का रहने वाला था, श्रमिक आन्दोलन के कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। श्रमिक संगठन को वैधता प्रदान करने में उसे संसद सदस्य श्री जोसेफ ह्यूम की अत्यधिक सहायता मिली। पर्याप्त विरोधों और प्रदर्शन के बाद संसद ने श्री ह्यूम की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की जो संयोग या संगठनों के औचित्य का अध्ययन करे। श्री ह्यूम समिति के माध्यम से इस बात में सफल हुए कि संयोग प्रतिबन्ध हटा दिये जाने चाहिए। ह्यूम समिति की सिफारिश पर संसद ने सन् १८२४ में एक अधिनियम स्वीकार किया जिसके अन्तर्गत श्रमिकों का संगठित होना और हड़ताल करना वैध मान लिया गया। पर्याप्त संघर्ष के बाद श्रमिकों ने जब संगठन और हड़ताल का अधिकार प्राप्त किया तो उसी वर्ष में हड़तालों का तांता लग गया, फलस्वरूप सरकार ने एक दूसरी समिति नियुक्त की जिसने श्रमिकों के इस अधिकार को नियन्त्रित (Restricted) रूप में मानने के लिए सिफारिश की। अतः सन् १८२५ में पुराना अधिनियम पुनः लागू किया और एक नवीन अधिनियम स्वीकृत किया जिसके अन्तर्गत नियन्त्रित रूप में श्रमिकों को हड़ताल और संगठन का अधिकार दिया गया। इस अधिनियम की धाराएँ इस प्रकार की थीं कि एक सुदृढ़ श्रमिक आन्दोलन पनप नहीं सकता था। इंगलैंड के 'कॉमन लॉ' के अन्तर्गत इस प्रकार की धाराएँ थीं जो नियोजकों के पक्ष में थीं। अतः श्रमिकों को लगभग आधी शताब्दी तक इस बात का प्रयत्न करना पड़ा कि उनका आन्दोलन वैध और सुदृढ़ हो सके। सन् १८२५ के अधिनियम के बाद श्रमिकों का जिस प्रकार शोषण किया गया उससे यह स्पष्ट हो गया कि इस अधिनियम में परिवर्तन और संशोधन वांछनीय था। सन् १८३२ में लंकाशायर के खनिज श्रमिक और १८३४ में मिट्टी के बर्तनों के कारीगर दमन के शिकार हुए। इस समय के दमन का एक ज्वलन्त उदाहरण ६ कृषक श्रमिकों का है जिन्हें शपथ लेने के कारण सात साल के लिए निर्वासित कर दिया गया। यह दण्ड उनको उस पुराने नियम के अन्तर्गत दिया गया जो फ्रांसीसी युद्ध के समय प्रचलित रहा।

चार्टिस्ट आन्दोलन
(Chartist Movement)

इन बाधाओं के होते हुए भी सन् १८२५ के बाद श्रमिक-आन्दोलन का प्रभाव बढ़ता गया। सन् १८२६ में इस बात का प्रयत्न किया गया कि राष्ट्रीय श्रमिक सगठन बनाये जायें। इस काल में जिन श्रमिक सगठनों की स्थापना हुई उसमें ग्राण्ड जनरल यूनियन ऑव यू० के०, दि नेशनल एसोसिएशन फॉर प्रोटेक्शन ऑव लेबर तथा ग्राण्ड नेशनल कन्सोलिडेटेड ट्रेड यूनियन के नाम उल्लेखनीय हैं। यह अन्तिम श्रमिक-संस्था प्रसिद्ध समाजवादी विचारक और उद्योगपति श्री रोबर्ट ओवन (Robert Owen) द्वारा स्थापित की गयी। यह समय श्रमिक आन्दोलन के लिए क्रान्तिकारी समय था। किन्तु ये श्रमिक संस्थाएँ व्यवस्था, सगठन, अनुभव और धनाभाव के कारण असफल हो गयीं। परिणाम यह हुआ कि श्रमिक पुन राजनीतिक कार्यों की ओर उन्मुख हुए। सन् १८३७ में प्रचलित चार्टिस्ट आन्दोलन की ओर श्रमिकों का ध्यान आकर्षित हुआ। इस आन्दोलन का प्रारम्भ लन्दन से हुआ। बहुत सीमा तक यह राजनीतिक आन्दोलन था जो आर्थिक माँगों पर आधारित था। सन् १८३६ में लन्दन के श्रमिकों ने श्रमिक संघ (London Working Man's Association) की स्थापना की और चार्टिस्ट आन्दोलन का यहीं से श्रीगणेश हुआ। इस संस्था के मन्त्री श्री विलियम लोवेट (Lowett) थे जो १६वीं शताब्दी के सबसे प्रसिद्ध श्रमिक नेता माने जाते थे। इस संस्था का उद्देश्य राजनीतिक समानता एव सामाजिक न्यायपरता था और तत्कालीन उद्देश्य स्वशिक्षा, सस्ता-प्रेस और शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली था।

धीरे-धीरे चार्टिस्ट आन्दोलन इंगलैंड के उत्तरी भागों में भी फैला। सन् १८३६ में लन्दन श्रमिक-संघ की एक सभा बुलायी गयी जिसमें एक अधिकार-पत्र तैयार किया गया था। इस पत्र में ६ मुख्य बातें थीं जिनके आधार पर वे अपनी माँगों का स्वरूप निर्धारित करना चाहते थे। वे माँगें इस प्रकार थीं .

(१) समान चुनाव-क्षेत्र।
(२) संसद की सदस्यता के लिए सम्पत्ति अधिकार की समाप्ति।
(३) सार्वभौम वयस्क मताधिकार।
(४) वार्षिक पार्लियामेण्ट।
(५) पर्चे द्वारा मतदान।
(६) संसद के सदस्यों का वेतन।

उपर्युक्त माँगों को सभी श्रमिकों का समर्थन प्राप्त हुआ। किन्तु आरम्भ से ही चार्टिस्ट लोग कई दलों में विभाजित हो गये थे। विलियम लोवेट के अतिरिक्त दो दल और हो गये। प्रमुख दल उत्तर वालों का था जिसमें अधिकतर जुलाहे और कारखानों में काम करने वाले श्रमिक थे। इस दल के प्रमुख नेताओं में ओसलरा,

स्टीफेन्स और अवकोनोर के नाम उल्लेखनीय हैं। दूसरे दल में मध्यम वर्ग के लोग थे जो सिक्कों में सुधार लाना चाहते थे। इसका प्रधान नेता अत्तवुड था। चार्टिस्ट आन्दोलन को ट्रेड यूनियनों और ओवेनाइट दल से प्रोत्साहन नहीं मिला। आपसी मतभेद के कारण आवेदन-पत्र प्रस्तुत करने में देरी हो गयी। इस देरी के कारण सरकार को सँभलने का समय मिल गया। अन्त में, १२ जुलाई, १८३९ ई० को अत्तवुड ने संसद में राष्ट्रीय आवेदन-पत्र प्रस्तुत किया। २३५ मतों द्वारा वह आवेदन-पत्र अस्वीकार कर दिया गया, फलतः १५ जुलाई को द्वितीय बुलरिंग का दंगा हुआ।

सन् १८३९-४२ तक का काल चार्टिस्ट आन्दोलन का द्वितीय काल माना जाता है। इस काल में भी एकता की कमी के कारण कोई भी नीति सफल नहीं हो सकी। सन् १८४० में राष्ट्रीय अधिकार-पत्र-समिति की स्थापना हुई। सन् १८४१ में आम चुनावों के समय चार्टिस्ट प्रतिनिधियों की संख्या बहुत कम थी। अतः ह्विग अथवा टोरी की सहायता देने के प्रश्न पर उनमें मतभेद हो गया। सन् १८४२ में चार्टिस्ट दल दो भागों में बँट गया। ३ मई, १८४२ ई० में डन्कोब ने पार्लियामेण्ट में आवेदन पत्र प्रस्तुत किया। २८७ मतों से आवेदन-पत्र अस्वीकार कर दिया गया। फलस्वरूप १८४२ में चैस्टर, लंकाशायर और यार्कशायर आदि स्थानों में श्रमिकों की हड़तालें हुईं। उसमें लगभग १,५०० चार्टिस्ट गिरफ्तार किये गये और हड़ताल में सफलता नहीं मिल सकी।

चार्टिस्ट आन्दोलन की समाप्ति

सन् १८४२ के बाद चार्टिस्ट आन्दोलन का तृतीय विकास काल आरम्भ हुआ। अप्रैल सन् १८४५ में चार्टिस्ट भूमि सहयोग-समिति की स्थापना हुई जो आगे चलकर राष्ट्रीय-भूमि कम्पनी में परिणित कर दी गयी। सन् १८४८ में चार्टिस्टों ने पाँच बड़ी रियासतें स्थापित कर लीं। परन्तु श्रमिकों का प्रभुत्व स्थापित करने की यह योजना भी सफल नहीं हो सकी। इसके बाद संसद में तृतीय आवेदन-पत्र प्रस्तुत किया गया। इस बार वह २२२ मतों द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। इस प्रकार चार्टिस्ट आन्दोलन समाप्त-सा होने लगा। सन् १८५३ में ओकोनोर को पागलखाने भेज दिया गया जहाँ वह दो वर्ष बाद मर गया। इस प्रकार चार्टिस्टों की रही-सही शक्ति भी समाप्त हो गयी और उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहा। इस प्रकार उपयुक्त वर्णन से स्पष्ट है कि चार्टिस्ट आन्दोलन असफल रहा। उसकी असफलता के कारण निम्नलिखित थे :

(१) आन्दोलनकर्ताओं में मतभेद की प्रचुरता थी तथा आन्दोलन की सफलता के लिए धनाभाव एक बड़ी बाधा थी।

(२) औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि अथवा ह्रास हो जाना भी असफलता का एक कारण था।

(३) आन्दोलन को दीर्घकाल तक सफलतापूर्वक सचालित करने के लिए

योग्य नेताओं की आवश्यकता थी किन्तु दुर्भाग्य से ऐसे योग्य नेताओं का अभाव था।

(४) मध्यम वर्ग ने भी इस आन्दोलन का विरोध किया।

(५) चार्टिस्ट आन्दोलन को अन्य दूसरे राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त नहीं था।

(६) चार्टिस्ट आन्दोलन के नेताओं की अदूरदर्शिता ने आन्दोलन को असफल बनाया।

(७) आन्दोलनकारियों की आपसी ईर्ष्या और मनोमालिन्य ने भी आन्दोलन को असफल बनाने में सहयोग दिया।

न्यू मोडल यूनियनिज्म
(New Model Unionism)

जब चार्टिस्ट आन्दोलन की माँगों को ससद द्वारा अस्वीकार कर दिया गया तो शताब्दी के उत्तरार्द्ध में श्रमिक आन्दोलन में नवीन चेतना दृष्टिगोचर हुई। श्रमिक-आन्दोलन ने अपने क्रान्तिकारी प्रयत्नों और उद्देश्यों में परिवर्तन कर लिया तथा वह श्रमिकों की दशा सुधारने सम्बन्धी कार्यों में प्रगतिशील भी हुआ। इस नवीन दिशा में नेतृत्व कुछ विशिष्ट उद्योगों के श्रमिक संगठनों ने दिया। इंजीनियरिंग उद्योग में कई श्रमिक संगठन स्थापित हुए और बाद में सन् १८५१ में संयुक्त इंजीनियरिंग श्रमिक संस्था भी अस्तित्व में आयी। इस संस्था की केन्द्रीय कार्यकारिणी के पास पर्याप्त धन था और वह अपने सदस्यों के स्वास्थ्य, बेकारी, पेन्शन इत्यादि में सहायता करती थी। इस प्रकार की संयुक्त श्रमिक संस्थाएँ अन्य उद्योगों में भी स्थापित की गयीं। यह युग न्यू-मोडल-यूनियनिज्म के नाम से पुकारा गया। इस आन्दोलन को कई नेताओं ने प्रोत्साहित किया किन्तु पाँच व्यक्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—एलन, एपलगर्थ, गाइल, कॉलसन और ओडगर। इनके आन्दोलन और प्रयत्नों के फलस्वरूप सन् १८५६ का अधिनियम स्वीकृत हुआ जिसके अन्तर्गत श्रमिक संगठन अपनी माँगें शान्तिमय उपायों द्वारा मनवाने का प्रयत्न कर सकते थे।

इस प्रकार आन्दोलन सन् १८६० के पश्चात् श्रमिक संगठन अधिनियमों के अन्तर्गत अधिकाधिक शक्तिशाली होने लगा। कई श्रम-संस्थाओं ने वैधानिक सुधार के लिए आन्दोलन किये। इसी बीच सन् १८६६ में गैर-यूनियनिस्ट लोगों पर शेफील्ड, नोटिंघम और मैनचेस्टर में आक्रमण किये गये। एतदर्थ सरकार ने एक आयोग की स्थापना की जिसे ट्रेड-यूनियन आन्दोलन की सही स्थिति का अध्ययन करने को कहा गया। आयोग के अधिकांश सदस्यों ने संयोग प्रतिबन्ध नियम को उठाने, श्रम-संगठनों के निर्माण करने तथा कोष के उपयोग में सावधानी अपनाने की राय दी। अल्पमत ने संयोग-प्रतिबन्धक अधिनियमों को पूर्णरूप से हटाने की माँग भी की।

सरकार अल्पमत की राय से प्रभावित हुई और लगातार अधिनियम बनाकर उन धाराओं को कार्यरूप दे दिया जिन्हें अल्पमत ने श्रम-संगठन की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक माना था।

श्रमिक संघ अधिनियम
(Trade Union Acts)

सन् १८६६ के श्रम संगठन (संरक्षण कोष) अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिक संस्थाओं के कोषों के संरक्षण की ओर ध्यान दिया गया। सन् १८७१ में श्रमिक संघ अधिनियम (Trade Union Act) स्वीकृत करके सरकार ने श्रम आन्दोलन को नया स्वरूप प्रदान किया गया। व अब अवैधानिक नहीं मानी गयी और उन्हें मैत्री-संघों के रूप में संगठित होने का भी अवसर दिया गया। एक श्रमिक संस्था (जो रजिस्टर्ड हो) अपनी इमारत तथा भूमि रख सकती थी तथा अधिनियम के अन्तर्गत उनका संरक्षण कर सकती थी।

सन् १८७१ के अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ निम्न थीं :

(i) व्यापार अथवा उद्योग के विरुद्ध संघों का संगठन करना अवैधानिक नहीं रहा।

(ii) संघों का रजिस्ट्रेशन वैकल्पिक था, अनिवार्य नहीं।

(iii) इन्हें सम्पत्ति रखने का अधिकार प्राप्त हो गया तथा वे अपने आप से अनुबन्ध कर सकते थे, मुकदमे चला सकते थे। अन्य पक्ष भी उन पर मुकदमे दायर कर सकते थे।

(iv) अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए वे उचित कार्यवाही कर सकते थे।

इसी समय 'क्रिमिनल-लॉ एमेण्डमेण्ट अधिनियम' स्वीकृत होने से उपर्युक्त अधिनियम का प्रभाव निष्प्रभ हो गया। जन्ता (Junta)[1] ने इस बात का आन्दोलन चलाया और १८७४ में वह इस बात में सफल भी हुआ। सन् १८७५ के 'षड्यन्त्र और संरक्षण-अधिनियम' के अन्तर्गत श्रमिक-संस्थाओं के कार्य को औचित्य प्रदान किया गया। सन् १८७६ में १८७१ के श्रमिक-संस्था अधिनियम में संशोधन किया गया जिसके अनुसार यदि वे अपना हिसाब-किताब नियमित रूप से प्रस्तुत कर रहीं हों तो श्रम-संस्थाओं का पंजीयन अमान्य नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सन् १८२४, १८५६, १८६६, १८७१, १८७५ और १८७६ के अधिनियमों के अन्तर्गत श्रम-संस्थाओं की अवैधानिकता समाप्त कर उन्हें वैधानिक और गौरवपूर्ण स्थान दिया गया था।

---

1 पाँच समद सदस्यों के समूह को पार्लियामेन्ट में जन्ता कहा जाता था क्योंकि ये मध्यवर्ग की कठिनाइयों से परिचित थे और हड़ताल के बजाय मैत्रीपूर्ण बातचीत पर जोर देते थे। इन समद सदस्यों के नाम थे—एलन (Allen), एपिलगर्थ (Applegarth), गाइल (Guile), कोलसन (Coulson), तथा ओडगर (Odger)।

इसी अवधि में सन् १८६६ में ट्रेड यूनियन कांग्रेस का उद्घाटन हुआ। मैनचेस्टर ट्रेड कौंसिल ने साधारण नियन्त्रण-पत्र निकाला, तत्पश्चात् सन् १८७१ में जो ट्रेड यूनियन कांग्रेस का अधिवेशन बुलाया गया वह देश की श्रम-संस्थाओं का प्रतिनिधि अधिवेशन था। इसी प्रकार पंच-निर्णय के लिए भी प्रयत्न किया गया। श्री मुन्डेला (Mr Mundella) ने १८६० में हौजरी उद्योग में इसी प्रकार का प्रयत्न किया। इस प्रकार का पंच निर्णय-मण्डल कोयला उद्योग में स्थापित किया गया जो कि सफलतापूर्वक चला किन्तु अन्य उद्योगों में यह प्रयत्न सफल न हो सका।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में श्रमिक-संघ आन्दोलन सभी क्षेत्रों में फैल गया, यद्यपि आर्थिक मन्दी के काल में इसकी सदस्य-संख्या घट गयी। सन् १८८० से पूर्व तो श्रमिक-संस्थाएँ कुशल कारीगरों की ही थीं, परन्तु बाद में अकुशल कारीगर भी इन श्रम-संस्थाओं की ओर आकर्षित होने लगे। अकुशल श्रमिकों की सफल हड़ताल सन् १८८९ में लन्दन-डॉक कर्मचारियों की हड़ताल थी। हड़ताल की सफलता से अकुशल श्रमिक भी श्रम-संघों की ओर आकर्षित होने लगे। रेल-श्रमिकों में सन् १८७१ में श्रम-संस्थाओं का श्रीगणेश हुआ किन्तु वास्तविक विकास सन् १८९० में 'ऐमेलगैमेट सोसाइटी ऑव रेलवे सर्वेन्ट्स' की स्थापना के साथ हुआ था।

इस शताब्दी का एक महत्त्वपूर्ण कार्य समाजवादी विचारधाराओं का प्रभावशाली ढंग से प्रचलन था। श्रम-संस्थाओं में यह धीरे-धीरे अनुभव किया जाने लगा कि बीमारी, बेकारी और बुढ़ापे के समय सहायता का कार्य राज्य द्वारा सम्पादित होना चाहिए। यद्यपि दो दशकों से संसद में श्रम-प्रतिनिधि चुनने के बाद ही जाते थे परन्तु उनका कोई स्थायी और नियमित संगठन नहीं था। अतः उन्हें उदारवादियों के साथ ही अपना मतदान करना पड़ता था। सन् १८९३ में स्वतन्त्र-श्रमिक-दल की स्थापना की गयी जिनका उद्देश्य समाजवादी समाज की स्थापना की ओर प्रयत्नशील होना था। सन् १८९९ में इस मजदूर दल को ट्रेड-यूनियन कांग्रेस ने मान्यता दी।

(१) टैफ वेल रेलवे हड़ताल

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ इस प्रकार की घटनाएँ हुईं कि जिससे श्रमिक-आन्दोलन को आघात लगा। सन् १९०० में टैफ वेल रेलवे श्रमिक हड़ताल पर गये, उस पर कम्पनी ने हानि के लिए श्रमिकों पर मुकदमा चलाया। हाउस-ऑफ लार्ड्स के निर्णयानुसार कम्पनी को २३,००० पौण्ड डिग्री रूप में प्राप्त होने का आदेश हुआ। इससे श्रमिक आन्दोलन को बड़ा धक्का लगा। सन् १९०६ में 'ट्रेड डिस्प्यूट एक्ट' की स्वीकृति से श्रम-संस्थाएँ हानि के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरायी गयीं और पिकेटिंग या धरना वैधानिक माना गया। इस प्रकार के संशोधन ने कई रेल हड़तालों को जन्म दिया।

(२) ओसबोर्न द्वारा आपत्ति

सन् १९०८ से पुनः परीक्षा का अवसर आया। एक रेल श्रमिक ओसबोर्न (Osborne) ने श्रमिकों द्वारा संघ को दिये गये धन के कोष में से राजनीतिक कार्यों

की पूर्ति के लिए धन व्यय किये जाने पर आपत्ति की। उसका यह कहना था कि इस कोष का उपयोग श्रमिकों के हितों के ही लिए होना चाहिए, न कि राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए। न्यायालय ने श्री ओसबोर्न की आपत्ति को उचित ठहराया और आदेश दिया कि संघों के कोष से राजनीतिक कार्यों के लिए धन व्यय नहीं किया जा सकेगा। यह श्रमिक-दल के भविष्य पर सीधा प्रहार था। पर्याप्त संघर्ष और विरोध के फलस्वरूप सन् १९१३ में यह अधिनियम स्वीकार किया गया कि श्रम-संस्थाएँ अलग से राजनीतिक-कोष का निर्माण कर सकती है परन्तु उसका चन्दा उगाहना अनिवार्य नहीं होगा। सन् १९१३ के अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार थीं

(i) श्रमिक संघ राजनीतिक कार्यों के लिए चन्दा इकट्ठा कर सकते थे किन्तु इस प्रकार का प्रस्ताव बहुमत द्वारा गुप्त मतदान के आधार पर पास किया जाना आवश्यक था।

(ii) राजनीतिक कोष तथा सामान्य कोष अलग रखे जाने की व्यवस्था की गयी।

(iii) राजनीतिक कोष में चन्दा देना वैकल्पिक था। जो सदस्य इस कोष में चन्दा नहीं देना चाहते थे उन्हें संघ का लिखित नोटिस देना होता था।

सन १९२७ में इसमें संशोधन करके यह व्यवस्था की गयी कि नोटिस देना उन लोगों के लिए अनिवार्य हो गया जो चन्दा देना चाहते हैं—उनके लिए नहीं जो चन्दा नहीं देना चाहते। सन् १९१३ के अधिनियम के अनुसार राजनीतिक फण्ड में चन्दा देना एक सामान्य बात थी और न देना एक अपवाद था। अब स्थिति विपरीत हो गयी। फिर भी धीरे-धीरे राजनीतिक कोष में चन्दा देने वाले श्रमिकों की संख्या बढ़ती गयी।

प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध एवं श्रमिक संघ

प्रथम महायुद्ध (सन् १९१४-१९) के समय श्रम-संस्थाओं की सदस्य-संख्या ४२,२५,००० तक पहुँच गयी थी। जब युद्ध का प्रारम्भ हुआ तो देश के हित को ध्यान में रखकर श्रम संस्थाओं ने अपनी माँगें स्थगित कर दीं। इतना होने पर भी १९१६ १७ में पर्याप्त श्रमिक असन्तोष हो गया। अतः सरकार ने भी जे० एच० विटले की अध्यक्षता में एक आयोग की स्थापना की। इस आयोग की सिफारिशों से श्रमिक वर्ग सन्तुष्ट नहीं हुआ। सन् १९१९ में सदस्य संख्या ८,५०,००० तक पहुँच गयी थी। इसी समय श्रमिकों में भयंकर असन्तोष हो गया। सरकार ने सभी उद्योगों व श्रमिकों का एक अधिवेशन वैस्टमिन्स्टर में आमन्त्रित किया जिसमें प्रधान मन्त्री और श्रम-मन्त्री ने भाग लिया। अधिवेशन ने ८ घण्टे काम, न्यूनतम मजदूरी और श्रम-संस्थाओं की सार्वभौमिक मान्यता को स्वीकार किया। समझौता कराने के लिए राष्ट्रीय उद्योग परिषद् की स्थापना की गयी। किन्तु फिर भी श्रमिकों का असन्तोष कम नहीं हुआ। सन् १९२२ के चुनाव में संसद में १२२ प्रतिनिधि श्रमिक

दल के ये और इस प्रकार यह दल एक प्रमुख विरोधी दल बन गया। सन् १९२४ में दस महीने के लिए श्रम-दल (Labour Party) ने अपनी सरकार भी बनायी।

युद्ध की विभीषिका और आर्थिक मन्दी ने श्रमिकों की मजदूरी में भीषण कठिनाई उपस्थित कर दी। ज्यों-ज्यों राजनीतिक चेतना जाग्रत होती गयी श्रमिक अपने अधिकारों के लिए हड़ताल का सहारा लेने लगे। अधिकारों के संघर्ष की पराकाष्ठा तब हुई जब सन् १९२६ में कोयला उद्योग में हड़ताल हुई। उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए ट्रेड-यूनियन कांग्रेस द्वारा सम्पूर्ण देश में हड़ताल करने का आमन्त्रण दिया गया। सम्भवतया यह सबसे बड़ी हड़ताल थी। अतः सरकार को सन् १९२७ में श्रमिक संस्था अधिनियम में कुछ संशोधन करना पड़ा जिसके अनुसार कुछ दशाओं में हड़ताल को अवैधानिक माना गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत पुनः श्रम-संस्थाओं का भविष्य न्यायाधीशों की इच्छा पर छोड़ दिया गया। सन् १९३६ में श्रम-संस्थाओं की सदस्य संख्या ४० लाख के लगभग थी। श्रम-दल ने राजनीतिक क्षेत्र में फिर भी अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। श्रम-दल ने १९२९ से १९३१ तक सरकार का निर्माण किया। सन् १९३५ में कुल ३ करोड़ मतों में से श्रम-दल ने ८० लाख मत प्राप्त किये तथा संसद में १०० स्थान प्राप्त किये।

द्वितीय-महायुद्ध काल में श्रमिक-वर्ग ने सरकार का पूरा साथ दिया। युद्ध से पूर्व भी श्रमिकों ने अपनी इसी प्रकार की सत्ता प्रकट की थी। श्रमिक आन्दोलन के बढ़ते प्रभाव का यह प्रत्यक्ष उदाहरण था कि सन् १९४० में श्री चेम्बरलेन के त्याग-पत्र देने पर संयुक्त-सरकार बनाने के लिए श्रम-दल को आमन्त्रित किया गया। कई प्रमुख श्रम-नेता सरकार में ले लिए गये। श्री अर्नेस्ट बेविन श्रम और राष्ट्रीय सेवा मन्त्री बने। युद्धकाल में श्रमिकों ने भी अभूतपूर्व त्याग व बलिदान का परिचय दिया तथा उन्होंने संगठन को और भी सुदृढ़ बना लिया।

श्रमिक-संघों की वर्तमान स्थिति
(Present Position of Trade Unions)

इंगलैण्ड के श्रमिक आन्दोलन का इतिहास विश्व के श्रमिकों के लिए एक गौरव-गाथा है, जहाँ श्रम-संस्थाएँ हड़तालें और माँगें स्वीकार कराने के अतिरिक्त कल्याणकारी कार्यों का सृजन करती हैं ये कल्याणकारी कार्य इतने सुदृढ़ आधार पर संगठित हैं कि वे विश्व के औद्योगिक देशों और विशेषतः हमारे देश के लिए आदर्श उदाहरण का कार्य कर सकते हैं। ये संस्थाएँ सदस्यों के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक हितों का पूरा ध्यान रखती हैं। सदस्यों की योग्यता में वृद्धि करने के उद्देश्य से इनके द्वारा अल्पकालीन प्रशिक्षण कक्षाएँ चलायी जाती हैं। शिक्षा एवं मनोरंजन के कार्यों में भी इनके द्वारा धन व्यय किया जाता है।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस
(Trade Union Congress)

अब यह स्पष्ट रूप में माना जाने लगा है कि वहाँ श्रम-संस्थाएं जनतन्त्रीय

सिद्धान्तो पर आधारित हैं। ट्रेड यूनियन काग्रेस श्रमिक-आन्दोलन की शीर्ष सस्था है जिससे देश की श्रम सस्थाएँ सम्बन्धित रहती हैं। ट्रेड यूनियन काग्रेस अपना कार्य साधारण-कार्यकारिणी द्वारा चलाती है। सम्बन्धित श्रम-सस्थाएँ १८ वर्गों मे विभाजित हैं। साधारण कार्यकारिणी मे एक-एक सदस्य इन वर्गों मे से चुना जाता है। दो स्थान महिलाओ के लिए सुरक्षित होते हैं। ट्रेड-यूनियन का मुख्य लक्ष्य देश के औद्योगिक विकास का श्रमिको के हितो के लिए अध्ययन करना है।

ट्रेड यूनियन काग्रेस की बढती हुई शक्ति ने उसके कार्यों को विविध रूप प्रदान किया है। किन्तु सगठन, अन्तरराष्ट्रीय प्रश्न, श्रमिक-परिषदें, शिक्षा, अनुसन्धान, आर्थिक और सामाजिक कार्य, बीमा, प्रचार व प्रकाशन, वैधानिक और महिला समस्याओ से सम्बन्धित कई विभिन्न विभाग हैं। इसके अतिरिक्त भी कई सलाहकार समितियाँ हैं जो विभिन्न विषयो पर ट्रेड यूनियन काग्रेस को सलाह देती हैं।

श्रम-दल श्रम-सस्थाओ, समाजवादी और सहकारी-समितियो और व्यक्तिगत सदस्यो से मिलकर बना हुआ सघ है। श्रम-दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के २५ सदस्यो मे १२ सदस्य सम्बन्धित श्रम-सस्थाओ से चुने जाते हैं।

इगलैण्ड के श्रमिक आन्दोलन का अन्तरराष्ट्रीय-श्रमिक-आन्दोलन से भी गहरा सम्बन्ध है। ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काग्रेस विश्व फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त सहायक अन्तरराष्ट्रीय समितियाँ भी हैं जो विभिन्न प्रश्नो पर विचार-विनिमय करती रहती हैं। सयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा आदि से भी इसके सम्बन्ध हैं।

श्रम-सस्थाओ की प्रतिनिधि सस्था के रूप मे ट्रेड यूनियन काग्रेस (TUC) को सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गयी है जो कि ब्रिटिश श्रमिक आन्दोलन का केन्द्र रही है। इस ट्रेड यूनियन काग्रेस से नेशनल एण्ड लोकल गवर्नमेण्ट आफिसर यूनियन, नेशनल यूनियन ऑफ टीचर्स तथा इसी प्रकार की कुछ नागरिक सेवाओ की यूनियनें सम्बन्धित नहीं हैं किन्तु यह केवल एक अपवाद ही है। इस काग्रेस का उद्देश्य सभी सम्बन्धित सस्थाओ मे विकास कार्यों के लिए रुचि उत्पन्न करना तथा श्रमिको के आर्थिक और सामाजिक जीवन-स्तर मे सुधार करना है। १८६ सस्थाएँ इसकी सदस्य हैं जिनमे लगभग १२ बडी फेडरेशन है तथा १५० यूनियनें हैं। लगभग ३५० यूनियन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से काग्रेस से सम्बन्धित हैं। यह काग्रेस साधारणतया उन सभी प्रश्नो और समस्याओ पर विचार करती है जो राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय रूप मे श्रमिको से सम्बन्धित विषयो पर चर्चा करती है।

इसका चुनाव प्रति वर्ष होता है। पिछले वर्षों मे ट्रेड यूनियन काग्रेस सदस्यो की शिक्षा की ओर भी ध्यान देने लगी है। इसके प्रधान कार्यालय लन्दन मे एक ट्रेनिंग कॉलेज है जिसमे १,००० ट्रेड यूनियनिस्टो को पाठ्यक्रम की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त ग्रीष्मकालीन विद्यालय और साप्ताहिक स्कूल भी

चलाये जाते हैं। यद्यपि ट्रेड यूनियन कांग्रेस एक गैर-राजनीतिक संस्था है किन्तु व्यक्तिगत रूप से श्रम-संस्थाएँ चुनाव के लिए कोष इकट्ठा कर सकती हैं। लगभग ८० प्रतिशत श्रम संस्थाएँ ऐसा कोष निर्माण करती हैं और उससे श्रम-दल (Labour Party) या सहकारी दल (Co-operative) को सहयोग दिया जाता है। सन् १९६६ के अन्त में ब्रिटिश ट्रेड यूनियनों की सदस्य संख्या एक करोड़ से कुछ अधिक थी। देश में श्रमिक संघों की संख्या ५७४ थी जिसमें से दो तिहाई संघ १९ विशाल संघों में सम्बद्ध थीं।

इंगलैन्ड एवं भारतीय श्रमिक आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन

(क) समानताएँ

(१) औद्योगिक क्रान्ति की देन—इंगलैंड और भारत में श्रमिक आन्दोलन औद्योगिक क्रान्ति की देन रहे हैं। औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व इस प्रकार के श्रमिक आन्दोलन का नितान्त अभाव था।

(२) श्रमिकों के हितों का प्रतिनिधित्व—दोनों ही देशों में श्रमिक आन्दोलन श्रमिकों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके विकास में भी प्रतिनिधित्व की मूल भावना ही निहित है।

(३) काम की दशाएँ, काम के घण्टे, न्यूनतम मजदूरी इत्यादि लक्ष्य—दोनों ही देशों के श्रमिक आन्दोलनों के प्रारम्भिक लक्ष्यों में पर्याप्त समानता पायी जाती है। लगभग वे ही लक्ष्य—अच्छी काम की दशाएँ, निश्चित काम के घण्टे तथा न्यूनतम मजदूरी आदि बातें भारतीय श्रम-आन्दोलन द्वारा भी अपनायी गयीं जो इंगलैण्ड के श्रम आन्दोलन के आधार रहे हैं।

(४) प्रारम्भिक कठिनाइयाँ लगभग समान—दोनों ही देशों में श्रम आन्दोलन को अपने प्रारम्भिक विकास-काल में राज्य के उदासीन दृष्टिकोण का सामना करना पड़ा। इसके अतिरिक्त संगठन और विभेद की कठिनाइयाँ भी लगभग समान ही रही हैं।

(५) श्रम-कल्याणकारी कार्यों का प्रारम्भिक अवस्था में अभाव—दोनों ही देशों के श्रम-आन्दोलनों को प्रारम्भिक रूप में हड़ताली आन्दोलन कहा जा सकता है, क्योंकि आरम्भिक काल में कल्याणकारी कार्यों का सर्वथा अभाव ही था।

(६) नियोजकों द्वारा श्रम-आन्दोलन को कुचलने के प्रयत्न—इंगलैण्ड और भारत में प्रारम्भिक श्रम-आन्दोलन को दमन का शिकार होना पड़ा क्योंकि उसे नियोजकों की सहानुभूति प्राप्त नहीं थी।

(७) दीर्घ संघर्ष का इतिहास—दोनों ही देशों का श्रमिक आन्दोलन दीर्घ संघर्ष का इतिहास है।

यह स्पष्ट है कि श्रमिक आन्दोलन औद्योगिक क्रान्ति की देन है। अतः भारत और इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ के साथ ही श्रमिक आन्दोलन का भी आविर्भाव हुआ है। एक ही छत के नीचे कार्य करने वाले श्रमिकों ने अपने

को श्रमिक समूहो के रूप मे सगठित करना आरम्भ किया है। दोनो ही देशो के श्रमिकों की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ लगभग समान ही थीं। काम करने की दशा, काम करने के घण्टे, काम के समय और काम समाप्ति के पश्चात आराम की व्यवस्था मजदूरी की न्यूनता दुघटनाओ के प्रति उपेक्षा तथा मुआवजे की अनुपस्थिति मकानो और जीवन निर्वाह के साधनो का अभाव, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरजन के साधनो का अभाव और उपेक्षा आदि व महत्त्वपूर्ण समस्याएँ थी जिनसे दोनो देशो के श्रमिक आन्दोलन को बल मिला है। श्रमिक सगठनो ने समय समय पर नियोजको के सामने अपनी माँगें प्रस्तुत कीं और उन्हें पूरी करने के लिए हडताल, बहिष्कार इत्यादि साधनो का आश्रय भी लिया गया।

(ख) असमानताएँ

भारतीय श्रमिक आन्दोलन एक शताब्दी पुराना होने पर भी अपरिपक्व और अपूर्ण नेतृत्व को प्राप्त किये हुए है वहा इगलैण्ड का श्रमिक आन्दोलन विश्व के श्रमिक आन्दोलन का आदर्श आन्दोलन है। यह तथ्य हम भारतीय और आग्ल श्रमिक आन्दोलन की विशेषताओ और कमजोरियो की ओर आकर्षित करता है। निम्न तथ्य यह बताते हैं कि किन कारणो से इगलैण्ड का आन्दोलन आदर्श रहा है और क्या भारतीय श्रमिक आन्दोलन एक शताब्दी पुराना होने हुए भी अपरिपक्व और अपूर्ण नेतृत्व वाला है।

(१) **सदस्यता**—इगलैण्ड के कुल श्रमिको का ६० ६५ प्रतिशत भाग श्रमिक सगठना के रूप मे सगठित है किन्तु हमारे देश के कुल श्रमिको का ६०% भाग श्रम-सगठनो की सदस्यता से अलग है। इगलैण्ड के श्रमिक आन्दोलन की सुदृढता और भारत के आन्दोलनो की कमजोरी का यही प्रमुख कारण है। एक ही स्तर पर सगठित रूप मे नियोजको के समक्ष माँगें प्रस्तुत करना (इगलैण्ड मे) सम्भव है किन्तु भारत मे यह कठिन है।

(२) **सचालन**—इगलैण्ड का श्रमिक आन्दोलन श्रम नेताओ के हाथ मे है, पेशेवर राजनीतिज्ञो के हाथ मे नहीं। किन्तु हमारे देश मे यह आन्दोलन पशेवर राजनीतिज्ञो के हाथ मे कठपुतली की तरह है। श्रमिको को राजनीतिक उद्देश्यो की आड मे फसाया और भडकाया जाता है जब कि उनके आर्थिक हितो की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है।

(३) **शैक्षणिक धरातल**—इगलैण्ड मे श्रमिको का शैक्षणिक धरातल उच्च है जिससे वे अपने हिताहित का अधिक विचार कर सकते हैं किन्तु हमारे देश मे सम्पूर्ण जनसख्या का बहुत ही कम भाग शिक्षित है। यही कारण है कि वे अपने हिताहित की दृष्टि से विचार नहीं कर पाते और अन्य भावनाओ मे बह कर शक्ति का अपव्यय करते हैं।

(४) **सम्पन्नता एव सदस्यता शुल्क की नियमितता**— इगलैण्ड के श्रमिको का आर्थिक जीवन-स्तर उन्नत है। और वे इतने सम्पन्न हैं कि श्रम-सस्थाओ का मासिक

या वार्षिक शुल्क नियमित रूप से जमा कराते हैं जिसके फलस्वरूप श्रम-संस्थाओं को आपत्तिकाल में तथा श्रम-कल्याणकारी योजनाओं के लिए अभाव नहीं रहता, किन्तु हमारे देश के श्रमिकों का आर्थिक जीवन-स्तर बहुत ही नीचा है, श्रमिक निर्धन हैं और वे श्रम-संस्थाओं को नियमित चन्दा देने में अपने को असमर्थ पाते हैं। परिणाम यह होता है कि श्रम-संस्थाओं का कार्य साधारण समय में भी नियमित ढंग से नहीं चल पाता। श्रम-कल्याणकारी कार्यों का आयोजन और संचालन उनकी क्षमता और पहुँच से बाहर की बात है।

(५) राष्ट्रीयता की भावना—इंगलैण्ड के श्रमिक आन्दोलन की सुदृढ़ता उसकी राष्ट्रीय भावनाओं में निहित है। देश-भक्ति की भावना के कारण जाति, धर्म, भाषा प्रान्त की भावनाएँ दब जाती हैं और संगठन में सुदृढ़ता आ जाती है किन्तु भारत का श्रमिक, जाति, धर्म, लिंग, भाषा, प्रान्त की संकुचित परिधि में इस प्रकार बँधा हुआ है कि वह राष्ट्रीयता से बहुत दूर रह जाता है। परिणाम यह होता है कि वह विभाजित और विशृंखलित हो जाता है।

(६) स्थायित्व—इंगलैण्ड का श्रमिक अप्रवासी स्वभाव का है, उसने औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही एक स्थायी औद्योगिक श्रमिक वर्ग के रूप में अपने को व्यवस्थित कर लिया है, उसका हिताहित स्थायी रूप से औद्योगिक प्रगति से सम्बन्धित है। इस प्रकार उसने औद्योगिक श्रमिक वर्ग के स्थायी संस्कारों का प्रस्फुटन किया है जबकि भारत का श्रमिक अभी भी अपनी भूमि से चिपका हुआ है। जिन दिनों भूमि पर काम नहीं होता उन दिनों वह औद्योगिक नगरों की ओर चला जाता है और फसल या अन्य काम होने पर पुनः ग्रामों में आ जाता है। अतः उनके स्थायी रोजगार और आय का माध्यम उसकी भूमि ही है, कल-कारखाने तो केवल मात्र अस्थायी साधन हैं। इसलिए श्रमिक आन्दोलन स्थायी आन्दोलन नहीं हो पाया है।

(७) नियोजकों की श्रम हितकारी प्रवृत्ति—इंगलैण्ड का औद्योगिक विकास इस स्तर तक हो चुका है कि वहाँ श्रमिक आन्दोलन को नियोजकों की सहानुभूति प्राप्त होने लगी है। नियोजक श्रम-कल्याणकारी कार्यों में अधिक रुचि लेते हैं, वे यह जानते हैं कि सन्तुष्ट और उन्नत आर्थिक-स्तर वाला श्रमिक कल-कारखानों का अधिक उत्तमता से संचालन कर सकेगा, जब कि भारतीय नियोजक अभी भी रिकार्डों के उस युग में जीवित है जिसमें मजदूरी का लौह नियम (Iron Law of Wages) प्रचलित है।

(८) समझौता प्रवृत्ति—इंगलैण्ड में सरकार और नियोजकों द्वारा ऐसी व्यवस्था की जा चुकी है कि हड़तालें प्रायः नहीं होतीं तथा श्रमिकों की माँग समझौते की भावना से स्वीकार कर ली जाती है, जब कि भारत में समझौता प्रवृत्ति का अभाव है। भारत में दोनों ओर से रचनात्मक दृष्टिकोण का अभाव है एवं संघर्ष की भावना प्रबल है।

(९) कल्याणकारी आन्दोलन—इ गलैण्ड का श्रम-आन्दोलन हडताली आन्दोलन के स्थान पर कल्याणकारी आन्दोलन अधिक है। श्रम-सस्थाओ के द्वारा श्रम-कल्याण की विविध प्रवृत्तियाँ सचालित की जाती हैं जिससे श्रमिको का शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास होता है। ये प्रवृत्तियाँ स्थायी होती हैं जिनका अनुकूल प्रभाव श्रमिको के उन्नत स्तर मे अनुभव किया जा सकता है जबकि भारतीय श्रमिक आन्दोलन हडताली आन्दोलन है। बरसाती मेढक की तरह हडताल के समय इनका अस्तित्व दृष्टिगोचर होता है और हडताल की समाप्ति के साथ ही आन्दोलन भी मृतप्राय-सा हो जाता है। कारण कि यहाँ कल्याणकारी प्रवृत्तियो का *या तो पूर्ण अभाव है या फिर वे अस्थायी अग के रूप मे अविकसित हैं।*

(१०) जनतन्त्रीय सिद्धान्तो का आकलन—इ गलैंड के श्रमिक आन्दोलन मे जनतन्त्रीय सिद्धान्तो का इस ढग से आकलन किया गया है कि जिससे वह रचनात्मक आन्दोलन बन सका है न कि विध्वसात्मक, जबकि भारतीय आन्दोलन मे ऊपर से तो जनतन्त्रीय सिद्धान्तो का आकलन किया गया है किन्तु सिद्धान्तो की जडें गहरी नही जम पायी हैं अत आन्दोलन विध्वसात्मक रूप ले लेता है।

(११) पृथक श्रम दल के रूप मे राजनीतिक सगठन का अस्तित्व—इगलैण्ड के श्रमिक आन्दोलन को अधिक बल प्रदान करने मे एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व गतिशील है वह यह कि यहाँ श्रम दल (Labour Party) के रूप मे एक पृथक राजनीतिक दल है जो अनवरत रूप से श्रमिको के हितो के लिए सघर्ष करता है। इस दल ने कई बार सरकार का निर्माण किया है और यह इगलैण्ड की ससद का प्रमुख विरोधी दल है। इसकी तुलना मे भारत मे ऐसा कोई पृथक श्रम-दल नही है जो श्रमिको के हितो का उचित प्रतिनिधित्व कर सके। भारत मे श्रमिक वर्ग चार पृथक राजनीतिक दलो मे बटा हुआ है। ये चार दल हैं इन्टक (INTUC), आइटक (AITUEC), यूटक (UTUC) तथा हिन्द मजदूर सभा (HMS)। ये चारो दल श्रमिक वर्ग को अपनी-अपनी ओर खीचते हैं और इस प्रकार श्रमिकों की शक्ति विभाजित हो जाती है। यदि भारत मे इगलैण्ड की भाँति श्रमिको का एक पृथक दल हो तो वे राजनीतिक दृष्टि से अधिक प्रभावशाली हो सकते हैं।

इगलैण्ड के श्रमिक आन्दोलन का भविष्य

इगलैण्ड की श्रमिक-सस्थाएँ और श्रम-आन्दोलन विश्व मे सबसे उत्तम ढग से सगठित हैं। श्री बेवन ने ठीक ही कहा है, "श्रमिक सस्थाएँ प्रति क्षण उत्साह का प्रेरणा स्रोत है, जिससे आने वाली पीढियाँ श्रमिक उत्तरदायित्व उठाने को तत्पर प्रतीत होती हैं।" श्रम सस्थाओ ने अपने पुराने आन्दोलन के ढगो मे तेजी से परिवर्तन कर लिया है। यद्यपि उनका हडताल का अधिकार वैधानिक रूप मे उनकी धरोहर है परन्तु उसके उचित प्रयोग के लिए वे सावधान हैं। प्रजातन्त्रीय देशो मे श्रमिको के पास हडताल का हथियार महती शक्ति का प्रतीक है परन्तु यहाँ उन्होंने ऐसे उपाय खोज निकाले है कि उनकी कठिनाइयो का समाधान इस

हथियार की बिना सहायता के ही हो सकता है। इस प्रकार राष्ट्रीय क्षेत्र में इंगलैण्ड का श्रमिक आन्दोलन एक आदर्श आन्दोलन है जो नव स्वतन्त्रता प्राप्त औद्योगिक दृष्टि से अविकसित देशों के लिए प्रेरणा स्रोत है। इंगलैण्ड के श्रमिक संघों का प्रमुख उद्देश्य अपने सदस्यों के आर्थिक हितों की रक्षा करना तथा काम की दशाओं में सुधार करना है किन्तु इसके अतिरिक्त राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक नीति के निर्माण में भी वे अधिकाधिक रुचि लेने लगे हैं। श्रमिक संघों से ब्रिटेन के श्रमिकों को पाँच प्रमुख लाभ हुए हैं जो इस प्रकार हैं[1]

(i) उत्तम वेतन एवं काम की दशाएँ।

(ii) दुर्भाग्य एवं अन्याय के विरुद्ध सुरक्षा।

(iii) कार्य के स्तर एवं रोजगार की स्थिति की सुरक्षा।

(iv) औद्योगिक नीति का निर्धारण में योग।

(v) शिक्षा।

बीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश श्रमिक संघ आन्दोलन ने सन्तोषजनक विकास किया है। इन संघों की सदस्यता जो कि सन् १६०० में केवल बीस लाख थी अब सन् १६६६ में बढ़कर एक करोड़ के लगभग हो गयी है जिसमें बीस प्रतिशत सदस्य महिला श्रमिक हैं। इस काल में सरकार मालिकों एवं श्रमिकों के पारस्परिक सम्बन्धों में भी पर्याप्त सुधार हुआ है।

प्रश्न

1 Give a brief account of the labour movement in England from the beginning of this century.
वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ से इंगलैंड में हुए श्रमिक आन्दोलन का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (पंजाब, १६६२)

2 Trace the development of Trade Unionism in Enland How does it compare with that in India
इंगलैंड में श्रमिक संघ आन्दोलन के विकास का वर्णन कीजिए। भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन से इसकी तुलना कीजिए। (राजस्थान, १६६३)

3 Discuss the leading changes in the character of the British Labour Movement after 1875
सन् १८७५ के पश्चात् ब्रिटिश श्रमिक संघ आन्दोलन के स्वरूप में हुए प्रमुख परिवर्तनों की विवेचना कीजिए। (राजस्थान, १६६४)

4 Assess briefly the growth of the trade union movement in England. How far is it different from that in U. S A

---

1 *Trade Union in Britain*, p 21 Published by British Information Service, India

इगलैण्ड मे हुए श्रमिक सघ आन्दोलन के विकास का सक्षिप्त वर्णन कीजिए। इसमे और सयुक्त राज्य अमरीका मे हुए विकास मे क्या असमानताएं हैं ?

(इलाहाबाद, १९६५)

5 Write a short history of the growth of Trade Unionism in Great Britain

ग्रेट ब्रिटेन मे श्रमिक सघ आन्दोलन के विकास का सक्षिप्त इतिहास दीजिए।

(कलकत्ता, १९६५)

6 Discuss briefly the broad features of present day Trade Union Movement in Britain How far the labour participates in the management of British industries ?

ब्रिटेन के वर्तमान श्रमिक सघ आन्दोलन की प्रमुख विशेषताओ की सक्षेप मे विवेचना कीजिए। ब्रिटिश उद्योगो के प्रबन्ध मे श्रमिक किस सीमा तक भाग लेते हैं ?

(पजाब, १९६६)

7 "Labour is a living force in England" Discuss the role of Trade Unionism in this respect

'इगलैंड मे श्रम एक प्रबल शक्ति है।' इस कथन के सन्दर्भ मे श्रमिक सघ आन्दोलन के पहले की विवेचना कीजिए।

(राजस्थान, १९६८)

१७
कारखाना अधिनियम
(Factory Legislation)

औद्योगिक क्रान्ति ने जहाँ सम्पन्नता और वैभव के युग का आरम्भ किया, वहाँ यह भी स्वीकार करना पडता है कि उसने एक सर्वहारा वर्ग को जन्म दिया है। औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भिक वर्ष उस भयावह स्थिति के द्योतक हैं जिसके अन्तर्गत सर्वहारा-वर्ग का अधिकाधिक शोषण होता था। औद्योगिक क्रान्ति जिस पूँजीवादी पद्धति की देन रही है उसके अन्तर्गत कारखानो की दशा, काम के घण्टे, श्रमिको की मजदूरी, बालक एव स्त्री श्रमिकों द्वारा प्रत्याशित श्रम-कार्य शामिल किये जा सकते हैं। इन परिस्थितियो का तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि श्रमिको को बहुत अधिक समय तक घुटनशील वातावरण मे कार्य करना पडता था। कुटीर उद्योगो का स्थान जब बडे उद्योगो ने लिया तो परिस्थिति और भी जटिल हो गयी। एक ही छत के नीचे हजारो श्रमिको को अठारह-अठारह घटो तक भी कार्य करना पडता था तथा पारिश्रमिक बहुत ही कम दिया जाता था। इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि श्रमिको के स्वास्थ्य और उनकी कार्य करने की क्षमता पर बडा विपरीत प्रभाव पडा। श्रम के सरक्षण का प्रश्न उपस्थित हुआ। इससे पूर्व नियोजित और नियोजको के सम्बन्धो मे शत्रुता या वैमनस्य नही था तथा काम करने की दशाएँ भी अस्वास्थ्य-कर और हानिकारक नही थी। श्रमिको को तब कार्य करने मे एक प्रकार का आनन्द प्राप्त होता था और अपनी कलापूर्ण वस्तुओ पर उन्हे गर्व होता था। औद्योगिक क्रान्ति ने इस प्रकार की स्थिति मे आकस्मिक और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया।

कारखाना अधिनियमों की पृष्ठभूमि

उपर्युक्त परिस्थितियो मे श्रमिक और कारखानो के कल्याण को ध्यान मे रखते हुए यह अनुभव किया गया कि कारखाना अधिनियम पारित किये जायें। प्रत्येक प्रकार के अधिनियम बनाने से पूर्व प्रत्येक देश, जाति व व्यवस्था के इतिहास

में एक ऐसा वातावरण उत्पन्न हो जाता है जो तत्सम्बन्धी अधिनियम की पृष्ठभूमि का आधार होता है। इसी प्रकार की पृष्ठभूमि का वर्णन करते हुए **श्री इर्विंग** (Irving) ने सूती उद्योग के सम्बन्ध में लिखा है।[1]

प्रारम्भिक सूती मिलों में श्रमिक प्रतिदिन २४ घण्टे कार्य करते थे जिससे शरीर थककर चूर हो जाता था। बालकों को शेड्स के नीचे काम करना पड़ता था और ज्योंही एक पारी के श्रमिक हटते दूसरे श्रमिक उनका स्थान ले लेते। जिस प्रकार का कठिन परिश्रम उन्हें करना पड़ता उसका परिणाम शारीरिक अयोग्यताओं के रूप में दृष्टिगोचर होता था और अनावृत (unfenced) मशीनों से दुर्घटनाएँ होना एक साधारण-सी बात थी। फोरमैनों (Foremen) को शारीरिक शक्ति देखकर नियुक्त किया जाता था जिससे वे श्रमिकों पर चाबुकों की वर्षा कर उन्हें जाग्रत रख सकें और अधिकाधिक काम ले सकें। उन्हें सस्ता और निम्न कोटि का भोजन दिया जाता था। जो श्रमिक इस प्रकार जीवित रह जाते थे वे विकलांग, विकृतांग के रूप में जीवनयापन करते थे जो कि स्पष्टतः उनकी दयनीय बचपन की स्थिति के परिचायक संकेत थे।

अत ऐतिहासिक दृष्टि से यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि समाज सुधारक और उदारमना-व्यक्तियों द्वारा समय-समय पर इस प्रकार के प्रयत्न किये गये कि श्रमिकों की दशा में आवश्यक सुधार हो सके। सन् १६०१ का दरिद्रता अधिनियम (Poor Law) सन् १७८४ का **मैनचेस्टर के मजिस्ट्रेटों का प्रस्ताव** और सन् १७९५ में कारखानों में बाल-श्रमिकों की दशा के लिए **मैनचेस्टर स्वास्थ्य** प्रमण्डल की स्थापना ऐसे प्रयत्न थे जो कारखाना अधिनियमों के आधार कहे जा सकते हैं।

(१) सन् १८०२ का अधिनियम—प्रथम कारखाना अधिनियम (Factory Legislation) (जिसका प्रस्ताव सर रोबर्ट पील के पिता ने प्रस्तुत किया था) सन् १८०२ में स्वीकार हुआ था। इसका नाम **'प्रशिक्षार्थियों का नैतिक एवं स्वास्थ्य अधिनियम'** (Morals and Health Apprentices Act) था यह अधिनियम विशेषतौर से उन निरीह बालकों पर लागू होना था जो नौसिखियों के रूप में वस्त्र उद्योग में भर्ती किये जाते थे। इस अधिनियम की कुछ मुख्य बातें इस प्रकार थीं

(१) कार्य के घण्टे नौसिखियों के लिए १२ निश्चित किये गये थे।

(२) रात्रि श्रम बिल्कुल समाप्त कर दिया गया।

(३) बच्चों का साधारण गणित और लेखन का ज्ञान कराया जाना अनिवार्य किया गया।

---

[1] Prof. Irving *An Introduction to Economic History*, p 213.

(४) अधिनियम का पालन न्यायाधीशों (Justices of Peace) के हाथ में रखा गया।

व्यावहारिक दृष्टि से यह अधिनियम असफल ही रहा। इस अधिनियम के असफल होने का कारण यह था कि जब जलशक्ति के स्थान पर वाष्पशक्ति के प्रयोग से नगरों में कारखाने स्थापित हुए तो श्रमिक अधिक संख्या में उपलब्ध होने लगे अतः वे बालकों को व्यवस्थापूर्वक नियोजित करते थे।

(२) सन् १८१९ का कारखाना अधिनियम—जब नैपोलियन युद्धों में इंगलैंड संलग्न था तब इस प्रकार के 'कारखाना अधिनियम' बनाने का अवसर ही नहीं था। अतः ज्योंही देश नैपोलियन युद्धों से आराम की साँस ले सका त्योंही पुनः कारखाना अधिनियमों की ओर श्रमिक वर्ग का ध्यान आकृष्ट हुआ। इस प्रकार के प्रयत्न में **श्री रॉबर्ट ओवन (Robert Owen)** नामक उद्योगपति और समाजवादी विचारक प्रमुख था। श्री पील महोदय का प्रयत्न और पार्लियामेंट-समिति का सर्वेक्षण सन् १८१९ के कारखाना अधिनियम को नया स्वरूप प्रदान कर सके। यह भी सूती वस्त्र उद्योग में ही लागू किया गया। इस अधिनियम की कुछ बातें इस प्रकार हैं :

(१) बाल-श्रमिकों की न्यूनतम नियुक्ति आयु ९ वर्ष कर दी गयी।

(२) ९ से १६ वर्ष तक के बच्चों को संरक्षण प्रदान किया गया।

(३) यह अधिनियम नौकरी की शर्तों के विचार को छोड़ सभी उम्र के बालकों पर लागू किया गया।

(४) बारह घण्टे की अवधि में १½ घण्टा भोजन और आराम के लिए निश्चित किया गया।

(५) शनिवार के दिन कार्य के अधिकतम नौ घण्टे निश्चित किये गये।

(३) सन् १८३३ का कारखाना अधिनियम—इस अधिनियम का सूती मिल-मालिकों ने भारी विरोध किया और इस प्रकार यह अधिनियम भी पूर्व अधिनियम की तरह फलदायी सिद्ध नहीं हुआ। श्रमिक और समाज-सुधारक भी असन्तुष्ट ही रहे। अतः श्री ओस्टलर (Oastler), रावर्ट ओवन (Robert Owen), हाबहाउस (Hobhouse), **माइकेल सेडलर (Michel Sadler)** तथा एशले कूपर सदृश्य समाज-सुधारकों, उदारचेता उद्योगपतियों और समाजवादी विचारकों ने जन-जागरण द्वारा श्रम-संरक्षण की भावना के लिए कार्य किया। सन् १८२५ में श्रमिक संघों को जो वैधानिक मान्यता प्राप्त हुई थी, उसके बाद से ही लोगों को कारखाना अधिनियमों के लिए प्रेरणा मिली। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति थी कि इसी काल में निर्बाध व्यापार नीति (Free Trade Policy) का प्रभाव जन-समाज पर तथा सरकार पर आवश्यकता से अधिक पड़ा। श्री माइकेल सेडलर (Michael Sadler) ने प्रतिदिन १० घण्टे कार्य करने का बिल संसद के समक्ष प्रस्तुत किया। श्री माइकेल का यह प्रयत्न असफल रहा परन्तु सरकार को विवश होकर कारखानों की दशा ज्ञात करने के लिए श्री माइकेल सेडलर की ही अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त करनी

पड़ी जिसने श्रमिकों के कारखानों के अन्तर्गत शोषण का प्रत्यक्ष रूप सामने रखा। इस समिति को सन् १८३३ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आंशिक सफलता प्राप्त हुई। यह अधिनियम सभी वस्त्र कारखानों पर लागू किया गया (रेशम उद्योग को छोड़कर)। इस अधिनियम की कुछ मुख्य बातें इस प्रकार थीं

(१) नौ से तेरह वर्ष के बच्चों के लिए प्रतिदिन कार्य के ९ घण्टे निश्चित किये गये।

(२) कार्य का सप्ताह ४८ घण्टों का माना गया।

(३) १३ और १८ वर्ष के युवकों के लिए प्रतिदिन कार्य के घण्टे १२ निश्चित कर दिये गये और उनका सप्ताह ६९ घण्टों का माना गया।

(४) प्रतिदिन कार्य अवधि के मध्य में विश्राम और भोजन के लिए १½ घण्टे का समय निश्चित किया गया।

(५) बालकों को कारखानों में नौकरी के लिए आयु का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना पड़ता था।

(६) प्रथम बार रात्रि कार्यों की अवधि की परिभाषा दी गयी जिसमें ८.३० बजे रात से ५-३० बजे सुबह का उल्लेख किया गया।

(७) अधिनियम में सभी बालकों के लिए २ घण्टे पाठशाला में पढ़ने की व्यवस्था अनिवार्य की गयी।

(८) इस अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिए कारखाना निरीक्षक (Factory Inspectors) नियुक्त किये गये। इन निरीक्षकों को वर्ष में चार बार संसद को विवरण देना होता था तथा वर्ष में दो बार सभाएँ करनी पड़ती थीं।

(४) **सन् १८४४ का कारखाना अधिनियम**—सन् १८३३ के कारखाना अधिनियम ने सामाजिक कार्यकर्ताओं और श्रम-नेताओं की आकांक्षाओं की पूर्ति उतनी नहीं कि जितनी की उसमें आशा की गयी थी। अतः जन-आन्दोलन का यह सिलसिला कारखाना अधिनियमों के लिए बराबर जारी रहा और समय समय पर इस प्रकार के परिवर्तनों और संशोधनों के लिए प्रयत्न किया जाता रहा। सन् १८४४ में रोबर्ट पील (Robert Peel) का कारखाना अधिनियम स्वीकृत हुआ इसमें (i) न्यूनतम आयु आठ वर्ष की निश्चित की गयी और आठ से तेरह वर्ष के बच्चों के लिए कार्यकाल ६½ घण्टे प्रतिदिन का निश्चित किया गया। (ii) जो नियम युवकों पर लागू थे उन्हें प्रौढ़ और स्त्रियों पर भी लागू किया गया। इस प्रकार प्रथम बार प्रौढ़ और वयस्क श्रमिकों को भी संरक्षण दिया गया। (iii) मशीनों का ढकना अनिवार्य कर दिया गया और मशीनों की सफाई का कार्य बच्चों द्वारा किये जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। दस घण्टों के काम के लिए आन्दोलन जारी रहा। सन् १८४७ के अधिनियम के अन्तर्गत यह व्यवस्था बन गया परन्तु नियम की पाबन्दी में कपटपूर्ण व्यवहार के लिए गुंजायश थी जिसके दोषों की ओर लार्ड ऐशले ने संसद सदस्यों का ध्यान आकर्षित किया और सर जार्ज ग्रे (Sir George Gray) ने

सन् १८५० में एक विधेयक प्रस्तुत किया जिसमें स्त्रियों और युवा व्यक्तियों के काम के घण्टे निर्धारित किये गये। ये ६ बजे प्रातः से ६ बजे साय तक तय किये गये और डेढ़ घण्टा भोजन के लिए दिया गया। इस प्रकार दैनिक कार्य का समय घटाकर साढ़े दस घण्टा कर दिया गया, परन्तु साठ घण्टे प्रति सप्ताह की सीमा थी क्योंकि शनिवार को दो बजे काम बन्द कर दिया जाता था। परन्तु बालकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अब भी कानून से कष्टपूर्वक बचा जा सकता था। सन् १८५३ में एक संशोधक अधिनियम के बनाने से यह समस्या हल हुई।

(५) अधिनियमों के क्षेत्र में विस्तार—इस प्रकार सन् १८५० के अधिनियम के वस्त्र उद्योग में लागू हो जाने से जब श्रमिकों की कार्यक्षमता नहीं घटी तो सन् १८६० में धुलाई और रंगाई के कारखानों का अधिनियम भी पारित किया गया। सन् १८७० में रंगाई, छपाई और सफाई से सम्बन्धित अधिनियम एकीकृत कर लिये गये। सन् १८६२ ६६ में सरकार ने अन्य कारखानों में श्रमिकों की अवस्थाओं की जांच के लिए एक शाही-आयोग (Royal Commission) की स्थापना की और सन् १८६४ में एक विशेष नियमन (Special Legislation) के अन्तर्गत अनेक उद्योगों पर श्रम नियम लागू किये गये। सन् १८६७ में दो महत्त्वपूर्ण अधिनियम, **कारखाना अधिनियमों का विस्तार अधिनियम** (Factory Acts Extension Act) **और शिल्पशाला नियमन** (Workshop Regulation Act) पारित किये गये। पहले अधिनियम को लौह-इस्पात, कागज, कांच, छपाई, गटापार्चा, जिल्द बंधाई और तम्बाकू कारखानों में (जहाँ ५० से अधिक व्यक्ति काम करते थे), लागू किया गया। दूसरे अधिनियमों में कारखानों की परिभाषा दी गयी। इस अधिनियमों का कारखानों पर लागू करने का अधिकार स्थानीय अधिकारियों को दिया गया अतः यह अधिक सफल नहीं हो सका। सन् १८७१ के कारखाना और शिल्पशाला अधिनियम में इसे लागू करने का अधिकार निरीक्षकों को हस्तान्तरित किया गया।

(६) सन् १८७४ से १९०० तक—सन् १८७४ के अधिनियम से स्त्रियों और युवा व्यक्तियों के काम के घण्टे १० कर दिये गये और सप्ताह के लिए ५६½ घण्टे सीमित कर दिये गये। बच्चों की काम करने की उम्र ९ से बढ़ाकर १० कर दी गयी और निश्चित समय से अधिक काम बन्द कर दिया गया। १८७८ के कारखाना और शिल्पशाला अधिनियम के अन्तर्गत संरक्षण की मांग हुई। सन् १८८३ के कारखाना अधिनियम में सफेद कांच के कारखानों और बेकरी उद्योग के लिए विशेष नियम बनाये गये। इसी प्रकार सन् १८८९ के सूती-वस्त्र कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत कारखानों में जलवायु को कृत्रिम रूप से नम करने की व्यवस्था अनिवार्य कर दी गयी। बालकों को निर्दयता से बचाने के लिए सन् १८८९ में एक अधिनियम स्वीकृत किया गया जिसके अन्तर्गत नाटकीय मनोरंजनों में नियुक्त बालकों को भी संरक्षण दिया गया।

सन् १८९१ का कारखाना अधिनियम बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है

क्योंकि इसमे समस्त बातों का पुन अध्ययन किया गया। बच्चों की उम्र ११ वर्ष कर दी गयी। सन् १८६५ के अधिनियम के अधीन सभी कार्यों म बालको का कार्य तीस घण्टे प्रति सप्ताह सीमित कर दिया गया और १४ वर्ष के बच्चो के लिए रात का काम निषिद्ध कर दिया गया। बन्दरगाहों, भग्न तटो, उत्तरण स्थानो और धोबी घाटों जैसे स्थानो को नियन्त्रण म ले लिया गया। सन् १८६६ में चिकित्सकों को कतिपय व्यावसायिक रोगों की सूचना कारखाना को देने का आदेश दिया गया।

(७) बीसवीं शताब्दी मे कारखाना अधिनियमों की प्रगति—सन् १९०१ म कारखानों और शिल्पशालाओं क अधिनियमों म संहिता (Code) निर्माण का प्रयत्न किया गया। बच्चों की उम्र १२ साल कर दी गयी। सन् १९०८ मे दियासलाई के उद्योग को (जिसम उजले फासफोरस म काम लिया जाता था) बन्द कर दिया गया। इसमें फोसी जाव (Phossy Jaw) नामक बीमारी हो जाती थी। १९१८ मे शिक्षा सम्बन्धी अधिनियम स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार बाल मजदूरों की उम्र १४ वर्ष कर दी गयी तथा आधे समय तक काम करने की प्रणाली को समाप्त कर दिया गया। इससे पूर्व सन् १९०३ मे 'बाल-विधान' स्वीकृत हुआ था जिसके अनुसार बच्चों द्वारा फेरी लगाकर चीजों को बचने की प्रथा का अन्त कर दिया गया था। सन् १९०६ म श्रमिक क्षतिपूर्ति (Workmen's Compensation) अधिनियम स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार बेकार हो जाने वाले श्रमिकों को मुआवजा देने की व्यवस्था भी की गयी। सन् १९११ म राष्ट्रीय बीमा अधिनियम स्वीकृत हुआ। सन् १९१३ मे खान श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निश्चित की गयी इसके पश्चात् सन् १९२० के अधिनियम के अन्तर्गत स्वास्थ्य के देखभाल की व्यवस्था की गयी।

विश्वव्यापी मन्दी के काल म इस दिशा म अन्य कोई महत्त्वपूर्ण कदम नहीं उठाये गये। सन् १९३७ म पास किये गये कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत सुरक्षा एव स्वास्थ्य के विषय म विशेष व्यवस्थाएँ की गयीं। द्वितीय विश्व युद्ध के समय म उत्पादन बढाने के उद्देश्य स कारखाना अधिनियमों की कुछ व्यवस्थाओं मे छूट दी गयी एवं काम के घण्टे बढा दिये गये। युद्ध समाप्ति क बाद सन् १९४८ में नया कारखाना अधिनियम पास किया गया जिसके अनुसार निम्न व्यवस्थाएँ की गयी

सन् १९४८ का कारखाना अधिनियम

(i) अधिनियम का कार्यक्षेत्र बढा दिया गया जिसके अनुसार लगभग ३ लाख कारखाने एव वर्कशाप फैक्टरी एक्ट के अन्तर्गत आ गये।

(ii) काम के घण्टे ४८ प्रति सप्ताह एव ९ प्रतिदिन निर्धारित कर दिये गये।

(iii) अठारह साल से कम आयु के श्रमिकों के लिए मेडीकल परीक्षक (Medical Examiner) अनिवार्य कर दिया गया।

(iv) प्राथमिक चिकित्सा, शुद्ध जल, स्नान की सुविधाएँ, कैण्टीन, शिशुगृह, आदि के लिए व्यवस्थाएँ की गयीं।

(v) सफाई, रोशनी, हवा, स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि के विषय में निर्धारित नियमों को अधिक सन्तोषप्रद बना दिया गया।

इसके बाद की अवधि में ब्रिटेन के श्रमिकों की कार्य-दशाओं को सुधारने की दिशा में अनेक अधिनियम पास किये गये हैं। सन् १९५० में दुकान अधिनियम (Shops Act) पास हुआ जिसके अनुसार उनको खोलने एवं बन्द करने के समय निर्धारित किये गये। दुकान में काम करने वाले कर्मचारियों को रविवार के अतिरिक्त आधे दिन का अतिरिक्त अवकाश दिये जाने की व्यवस्था की गयी। सोलह से अठारह वर्ष के कर्मचारियों के लिए ४८ घण्टे प्रति सप्ताह कार्य की व्यवस्था हुई। सन् १९५४ में खनिज श्रमिकों के कार्य की दशाओं को सुधारने के लिए अधिनियम पास किया गया जो कि विगत खान अधिनियमों से अधिक व्यापक एवं प्रभावशाली था। इसके अन्तर्गत खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों की कार्य दशा में पर्याप्त सुधार हुआ है। हाल ही में The Term and Conditions of Employment Act, 1959 तथा Contracts of Employment Act, 1963 पास हुआ है, जिनके अनुसार सामूहिक समझौतों (Collective Agreements) की शर्तों का पालन करने तथा नियुक्ति की शर्तों को लिखित रूप में दिये जाने एवं नौकरी से हटाये जाने की दशा में न्यूनतम नोटिस दिये जाने की व्यवस्था की गयी है। सन् १९६५ के Redundancy Payments Act के अनुसार दो वर्ष की सेवा पूरी करने के बाद यदि कोई श्रमिक सेवामुक्त किया जाय तो उसके लिए क्षतिपूर्ति के रूप में एक न्यूनतम धन-राशि दिये जाने की व्यवस्था है। सन् १९६१ में पिछले अधिनियमों एवं नियमों को एक सूत्र में बाँधकर एक नया कारखाना अधिनियम (Factories Act, 1961) पास किया गया जिसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया गया है।

सन् १९६१ के कारखाना अधिनियम की प्रमुख व्यवस्थाएँ एवं कारखाना श्रमिकों की वर्तमान स्थिति

(Main Provisions of the Factory Act of 1961) And (Present Position of Factory Labour)

ब्रिटेन के श्रमिकों की कार्यदशाओं के विषय में न्यूनतम वैधानिक व्यवस्थाएँ निर्धारित की गयी हैं, किन्तु व्यवहार में ये दशाएँ मालिकों तथा श्रमिकों के बीच सम्पन्न सामाजिक समझौतों के द्वारा निर्धारित होती हैं तथा वे प्रायः विधान द्वारा निर्धारित न्यूनतम व्यवस्थाओं से कहीं अधिक अनुकूल होती हैं। वैधानिक न्यूनतम व्यवस्थाएँ उन उद्योगों के लिए ठीक है जिनमें श्रमिक उतने सगठित नहीं हैं, अन्यथा सभी बड़े उद्योगों में जिनमें श्रमिकों के दल शक्तिशाली एवं संगठित हैं, श्रमिकों को विधान द्वारा निर्धारित सुविधाओं से भी अधिक सुविधाएँ प्राप्त हैं। व्यवहार में श्रमिकों की स्थिति इस प्रकार है :

(१) **काम के घण्टे** —विधान द्वारा यद्यपि ४८ घण्टे का सप्ताह निर्धारित है किन्तु व्यवहार में औसतन ४० से ४२ घण्टे प्रति सप्ताह श्रमिकों को कार्य करना होता है। अलग-अलग उद्योगों में पाँच दिन प्रति सप्ताह से लेकर साढे पाँच दिन प्रति सप्ताह काम होता है। महिलाओं एवं बच्चों के लिए काम के घण्टे कुछ कम हैं और उनके लिए रात्रि में काय करना निषिद्ध है।

(२) **प्रति घण्टे आय**—ब्रिटेन के साधारण श्रमिक की आय ४ शिलिंग ६ पैंस से लगाकर ६ शिलिंग प्रति घण्टा है। महिला श्रमिकों की आय ३½ शिलिंग से ५ शिलिंग प्रति घण्टा है। इसके अतिरिक्त ओवरटाइम कार्य करने के कारण व्यवहार में यह औसत दर इससे कुछ अधिक ही हो जाती है।

(३) **अवकाश एवं छुट्टी**—रविवार एवं आधे शनिवार के साथ-साथ समस्त बैंक एवं सार्वजनिक छुट्टियों के दिनों में भी ब्रिटेन के श्रमिकों को सवैतनिक छुट्टी मिलती है। साथ ही वर्ष में १२ दिन का उन्हें सवेतन अवकाश भी प्राप्त होता है। कुछ उद्योगों में इससे भी अधिक अवकाश श्रमिकों को प्राप्त होता है जो कि सेवा काल की अवधि के साथ-साथ बढ़ता जाता है।

(४) **सुरक्षा**—सामान्य कानून के अन्तर्गत मालिकों का यह दायित्व है कि वे श्रमिकों की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखें। इसके अन्तर्गत खान अधिनियम, १९५४ (Mines and Quarries Act), कृषि (सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण), अधिनियम (Agriculture [Safety, Health and Welfare Provisions] Act, 1956) तथा कारखाना अधिनियम, १९६१ के अन्तर्गत सुरक्षा के विषय में पर्याप्त व्यवस्थाएँ की गयी हैं। वे व्यवस्थाएँ खतरनाक मशीनों को ढकने, गतिशील मशीनों की सफाई, सुरक्षा के लिए प्रशिक्षण, आग निरोधक व्यवस्था एवं हानिकारक गैस आदि से नेत्रों की सुरक्षा आदि के विषय में हैं।

(५) **स्वास्थ्य एवं चिकित्सा**—कारखानों एवं वर्कशाप आदि में सफाई, रोशनी, वायु, ताप नियन्त्रण, शुद्ध जल, स्नान गृह, प्राथमिक चिकित्सा, तथा अनिवार्य डाक्टरी परीक्षा आदि के विषय में समुचित नियम बनाये गये हैं जिनकी देखरेख फैक्टरी इन्स्पैक्टर्स करते हैं।

सन् १९६१ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत डाक्टरी परीक्षा के लिए व्यापक प्रावधान किया गया है। इस समय ब्रिटेन में १,६०० कारखाना डाक्टर नियुक्त हैं। सन् १९६६ में सरकार द्वारा कारखाना डाक्टरी सेवा के पुनर्गठन की आवश्यकता पर भी विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त ७०० कारखाना मेडिकल अधिकारी भी नियुक्त हैं। इनका कर्तव्य नये भरती किये गये श्रमिकों की स्वास्थ्य जाँच करना है जो कि कारखाना अधिनियम, १९६१ के अन्तर्गत अनिवार्य है। कारखानों के मालिकों द्वारा भी ४५० पूर्णकालीन एवं ४,५०० पार्टटाइम डाक्टर नियुक्त हैं।

(६) श्रम-कल्याण—कारखाने के अन्दर श्रम-कल्याण कार्यों के लिए न्यूनतम व्यवस्थाएँ विभिन्न अधिनियमो द्वारा निर्धारित हैं, किन्तु व्यवहार मे मालिको और श्रमिको की पारस्परिक बातचीत एव समझौतो के आधार पर श्रम-कल्याण नीति निर्धारित की जाती है। स्पोर्ट्स, क्लब्स, वाचनालय आदि का समस्त व्यय मालिको द्वारा वहन किया जाता है। कैन्टीन, शिशु-गृह, आराम कक्ष आदि की व्यवस्था भी सन्तोषजनक ढग से की जाती है।

(७) आवास—श्रमिको की आवास सुविधा के लिए इगलैण्ड ने पिछले महायुद्ध के बाद मे सराहनीय प्रयत्न किया है जो यह सिद्ध करता है कि सरकारी नीति एव सम्मिलित प्रयास के द्वारा बडी से बडी समस्याएँ सुलझायी जा सकती हैं। सन् १९४५ से १९६८ तक के बीस वर्षों मे सत्तर लाख आवास गृहो का निर्माण इगलैण्ड मे किया गया और अब आवास गृहो की कुल सख्या परिवारो की कुल सख्या के लगभग बराबर है। ब्रिटेन मे इस समय १ करोड ८३ लाख आवास गृह हैं। सन् १९६८ तक लगभग बारह लाख गन्दे मकानो (Slum Dwelling) को सुधारा जा चुका था। बढती हुइ जनसख्या और नये परिवारो के लिए प्रतिवर्ष इगलैण्ड मे नये मकान पर्याप्त सख्या मे बनाने की योजनाएँ कार्यशील हैं। इनमे से अधिकाश मकान आवास गृह निगम एव स्थानीय सस्थाओ द्वारा बनाये जाते हैं।

इस प्रकार काम करने की दशाओ की दृष्टि से ब्रिटेन के एक औसत श्रमिक की स्थिति विश्व मे एक विशिष्ट स्थान रखती है। सम्पन्न, सन्तुष्ट, सुसगठित एव सुसस्कृत श्रमिक वर्ग आज ब्रिटेन की एक धरोहर है।

प्रश्न

1 *Describe the development of Factory-laws in U K from 1901 to 1919.*
   सन् १९०१ से १९१९ तक ब्रिटिश कारखाना अधिनियमो के विकास का वर्णन कीजिए। (बिहार, १९६२)

2 Discuss the important changes which have been introduced in the Factory Legislation of Great Britain in recent years to improve the working conditions of British Labour
   ब्रिटेन के श्रमिकों की कार्य दशाओ मे सुधार के उद्देश्य से ग्रेट ब्रिटेन के कारखाना अधिनियमो मे किये गये महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो की विवेचना कीजिए। (बिहार, १९६६)

१८

सामाजिक सुरक्षा

(Social Security)

आज हम समाजवादी-व्यवस्था के युग में जीवनयापन कर रहे हैं। व्यक्तिवादी विचारधाराएँ हमसे एक शताब्दी पीछे रह गयी हैं जबकि व्यक्ति अपने हितों की रक्षा के लिए स्वयं ही सजग रहता था किन्तु धीरे-धीरे औद्योगिक-क्रान्ति के फलस्वरूप उद्योगपतियों और श्रमिकों के संगठन बनने लगे तो यह स्वाभाविक ही था कि राज्य सरकार द्वारा इस दिशा में प्रयत्न किये जाते। सामाजिक सुरक्षा सेवाओं का उद्भव और विकास इंगलैण्ड के सामाजिक वातावरण में परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। इस शताब्दी से पूर्व व्यक्ति की निर्धनता अथवा असमर्थता उसके दुर्भाग्य की प्रतीक मानी जाती थी। जनतन्त्र के विकास के साथ-साथ सोचने की प्रणालियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए और इस दुर्भाग्य का दायित्व समाज एवं राज्य के ऊपर आ गया।

यह अनुभव किया जाने लगा कि व्यक्तियों को इन आकस्मिक संकटों की चिन्ता से मुक्त किया जाना समाज का परम कर्तव्य है अन्यथा कल्याणकारी राज्य (Welfare State) का स्वप्न व्यर्थ है। अभाव, रोग, अज्ञान, निर्धनता, एवं अकर्मण्यता[1] के कारण समाज की अपार जनशक्ति का उपयोग नहीं हो पाता जिसके कारण सामाजिक विषमताएँ तो उत्पन्न होती ही हैं साथ ही राष्ट्रीय आय एवं सम्पन्नता को भी क्षति होती है। अतः प्रत्येक कल्याणकारी राज्य में प्रशासन का यह दायित्व होना चाहिए कि इन पाँच संकटों से नागरिकों की रक्षा की जा सके।

सर्वप्रथम जर्मनी (जिसका औद्योगीकरण इंगलैण्ड के बाद हुआ) में सामाजिक बीमा का विकास किया गया। प्रिन्स बिस्मार्क ने सामाजिक बीमा पद्धति को जर्मनी में प्रचलित किया था। इंगलैण्ड में समय-समय पर प्रचलित सामाजिक सहायता व्यवस्था को "तीन चरणों" में विभक्त किया जा सकता है।

(१) प्रथम चरण के अन्तर्गत परम्परागत सहायता व्यवस्था सम्मिलित है जो सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रचलित रही। इसके अन्तर्गत दरिद्रता कानूनों (Poor Laws) का अध्ययन प्रमुख रूप से किया जाता है।

---

[1] Want, disease, ignorance squalor & idleness

(२) द्वितीय चरण मे बीसवी शताब्दी के आरम्भ से द्वितीय महायुद्ध तक की सामाजिक सुरक्षा एव बीमा योजनाएँ सम्मिलित की जा सकती हैं। स्वास्थ्य बीमा, बेकारी बीमा, श्रमिक क्षतिपूर्ति एव वृद्धावस्था पेन्शन के क्षेत्र मे किये गये ये छुट-पुट प्रयत्न थे जिनमे एकसूत्रता या एव समन्वय का अभाव था।

(३) तीसरे चरण मे बीवरिज योजना (Beveridge plan) एव उसके बाद की व्यवस्थाएँ सम्मिलित की जाती हैं। इनमे हमे सामाजिक सुरक्षा एव बीमा और सहायता की सुसगठित एव व्यापक व्यवस्थाओं के दर्शन होते हैं।

(१) प्रथम चरण—परम्परागत सहायता व्यवस्था

दरिद्रता अधिनियम
(Poor Laws)

१६वीं शताब्दी मे ही इगलैण्ड की सरकार ने दरिद्रता अधिनियम के अन्तर्गत निर्धनो, वृद्धो, अनाथो, विकलांगो, विधवाओ आदि के पालन-पोषण का कार्य सँभार रखा था। दरिद्रता अधिनियम (Poor Relief Act) सन् १६०१ मे सर्वप्रथम पास हुआ था[1] और उसके बाद समय-समय पर इसमे अनेक सशोधन एव परिवर्तन किये गये। इस प्रकार के सहायता कार्यों के लिए धन का सग्रह स्थानीय करों द्वारा ही होता था। १८३४ मे 'दरिद्रता अधिनियम' मे निर्धनता कानूनो के अन्तर्गत की जाने वाली व्यवस्थाएँ स्थानीय अधिकारियो एव न्यायाधीशों द्वारा सम्पन्न की जाती थी।

इस कोष से सुधारगृह (Work House) सचालित किये जाते थे किन्तु कालान्तर मे सुधार गृहो के सचालन का भार निजी व्यक्तियों पर डाल दिया गया। परिणामत इन निर्धन गृहो (Poor Houses) मे घोर अव्यवस्था और उत्पीडन एव शोषण का प्रसार हो गया।

सन् १७८२ मे Gilbert's Act के अन्तर्गत अत्यन्त न्यून वेतन पाने वाले श्रमिको को न्यायाधीश 'दरिद्रता कोष' से सहायता दे सकते थे। इस व्यवस्था का भी आशातीत फल नही हुआ क्योंकि कारखानो के मालिको ने जानबूझ कर श्रमिको के वेतनो मे और कमी कर दी।

---

[1] यद्यपि इससे पहले भी सन् १५३१ एव १५३६ मे भी अपगो तथा ऐसे स्वस्थ व्यक्तियों के लिए जो स्वस्थ थे। किन्तु अकर्मण्य थे, सहायता के लिए कुछ अधिनियम पास किये गये। किन्तु पर्याप्त कोष के अभाव मे ये प्रयत्न सफल नही हो सके। सोलहवी शताब्दी के अन्त तक यह अनुमान कर लिया गया कि स्वैच्छिक चन्दे के द्वारा पर्याप्त कोष इकट्ठा नहीं किया जा सकता है और ऐसी योजनाओं की सफलता के लिए अनिवार्य करो की व्यवस्था की जानी चाहिए। ऐसी व्यवस्था सन् १६०१ के दरिद्रता अधिनियम के अन्तर्गत की गयी जिसके अनुसार अपगो को सहायता दी जाती थी और अकर्मण्यों तथा आलसी व्यक्तियों को सुधार गृहों (Work Houses) मे रख कर उनसे कार्य लिया जाता था।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में इगलैंड और फ्रांस के मध्य युद्ध के कारण खाद्य वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो गयी। अतः स्पीनहमलैंड नामक स्थान पर न्यायाधीशों की एक सभा के सुझाव पर सन् १७९५ में Speenhamaland Act पास किया गया जिसके अन्तर्गत दरिद्रता कोष से दी जाने वाली राशि की मात्रा कीमतों में उतार-चढ़ाव के साथ-साथ घटाई या बढ़ाई जा सकती थी। परिवार के आकार के अनुसार भी सहायता राशि में वृद्धि की जाने लगी। किन्तु इससे कृषि उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ा और श्रमिक निर्धन सहायता के सहारे अकर्मण्य होने लगे। अतः इसकी सभी क्षेत्रों में आलोचना की गयी। सन १८३४ के निर्धनता कानून के अन्तर्गत तीन निर्धन कानून आयुक्तों (Poor Law Commissioners) की नियुक्ति की गयी। निरीक्षण एवं हिसाब किताब की जांच के लिए निरीक्षकों आदि की नियुक्ति भी की गयी। ये निर्धन कानून प्रथम महायुद्ध के बाद तक लागू रहे और समय समय पर इनमें संशोधन भी किये जाते रहे।

श्रमिक क्षतिपूर्ति पद्धति का प्रचलन बहुत ही छोटे स्तर पर सन् १८९६ में किया गया। यद्यपि सरकार ने इसके लिए कोई धनराशि नहीं जुटाई किन्तु दुर्घटनाओं के समय नियोजक का दायित्व निश्चित कर दिया गया था। दरिद्रता अधिनियम के अतिरिक्त इस दिशा में सरकार अधिक कुछ नहीं कर सकी। सम्पन्न श्रमिकों ने अपने ही सहयोगियों द्वारा मैत्री-सभाओं का कार्य प्रारम्भ किया। जब श्रमिक संघ आन्दोलन विकसित होने लगा तो संघों ने कल्याण कार्यों के अन्तर्गत बहुत ही छोटे स्तर पर इस प्रकार के कार्यों का आयोजन प्रारम्भ किया। **बेकार श्रमिक अधिनियम, १९०५** के अन्तर्गत सरकार ने प्रथम बार योग्य व्यक्तियों के बेकार रहने का आंशिक दायित्व स्वीकार किया। अधिनियम के अन्तर्गत स्थानीय संकट निवारक समितियों की स्थापना पर जोर दिया गया। सन् १९०७ का **भोजन अधिनियम** उदार-दलीय सरकार के इस दृष्टिकोण की झलक थी जिसमें यह अनुभव किया गया कि विद्यालय में अभावग्रस्त बच्चों को भोजन सुविधा प्रदान की जानी चाहिए। सन् १९०८ में **स्कूली बच्चों का स्वास्थ्य जाँच अधिनियम** लागू किया गया। इसी वर्ष ७० वर्ष की अवस्था के व्यक्तियों के लिए **पेंशन व्यवस्था अधिनियम** भी पारित किया गया।

(२) **द्वितीय चरण—बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से द्वितीय महायुद्ध तक**

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं बेकारी बीमा योजनाएँ
(National Health and Unemployment Insurance Schemes)

सन १९०५ में दरिद्रता अधिनियम प्रशासन की जाँच के लिए शाही आयोग की स्थापना की गयी। इस आयोग ने सन १९०९ में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की। इस आयोग की सिफारिशों के आधार पर १९११ में श्री लॉयड जार्ज ने राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा अधिनियम स्वीकार किया। यह अधिनियम जर्मन आदर्श पर आधारित था। जिसमें निम्न आय वर्ग की चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकताओं और उस आर्थिक

सहायता प्रदान करने की व्यवस्था का पूरा ध्यान रखा गया। यह अधिनियम उन सभी श्रमिकों पर लागू किया गया जिनकी वार्षिक आय १६० पौण्ड से कम थी। इस अधिनियम के अन्तर्गत निम्न लाभ प्राप्त हुए :

(१) निःशुल्क डाक्टरी निरीक्षण तथा मुफ्त दवा और इलाज की सुविधा।

(२) कुछ निश्चित सप्ताह से अधिक रोग की दशा में प्रत्येक पुरुष को १० शिलिंग प्रति सप्ताह और प्रत्येक स्त्री को ७ शिलिंग ६ पैन्स प्रति सप्ताह आर्थिक सहायता।

(३) २६ सप्ताह लगातार बीमार रहने पर अयोग्यता भत्ता।

(४) जिस श्रमिक का बीमा है उसके बीमार होने पर उसकी पत्नी को ३० शिलिंग की सहायता।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक धनराशि श्रमिक-नियोजक और सरकार द्वारा जुटायी जाती थी। उपर्युक्त अधिनियम में अनेक वर्षों तक बहुत ही कम परिवर्तन हुए। बाद में संशोधित अधिनियमों में वास्तविक परिवर्तन अनुभवों के अनुसार ही किया गया। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत सन् १९११ में बेकारी बीमा की योजना भी लागू की गयी। आरम्भ में इसका क्षेत्र सीमित था और यह केवल उन्हीं स्थानों पर लागू की गयी जहाँ बेकारी अधिक थी। यह एक अंशदायी योजना (Contributory Scheme) थी जिसमें श्रमिक, मालिक एवं राज्य तीनों ही योगदान करते थे। श्रमिकों का चन्दा २½ पैन्स, मालिक का २½ पै० एवं राज्य का १⅔ पै० प्रति सप्ताह प्रति श्रमिक था। बेकारी की दशा में श्रमिक को ७ शिलिंग प्रति सप्ताह पन्द्रह सप्ताह तक दिये जाने की व्यवस्था थी। प्रथम विश्व युद्ध की अवधि में यह योजना सफल हुई क्योंकि बेकारी घट गयी तथा कोष में पर्याप्त धन इकट्ठा हो गया। योजना की सफलता से प्रभावित होकर सन् १९२१ में बेकारी बीमा अधिनियम (Unemployment Insurance Act) पास करके योजना के क्षेत्र का विस्तार कर दिया गया जिसके अन्तर्गत बड़े कारखानों में काम करने वाले लगभग सभी श्रमिक आ गये। इस क्रम में सरकार को अधिक धन की आवश्यकता अनुभव हुई। १९२४ में श्रम-दलीय सरकार ने इस नियम वाले लाभ को वैधानिक अधिकार घोषित किया, किन्तु यह नियम पुनः दूसरी सरकार के पदारूढ़ होने पर रद्द कर दिया गया। सन् १९२५ में अंशदायी-पेंशन अधिनियम (Contributory Pension Act) के अन्तर्गत ६५ वर्ष की उम्र पर पेंशन और बिना अंशदायी पेंशन ७० वर्ष की उम्र पर देने का निर्णय किया। द्वितीय श्रम-दलीय सरकार ने १९२९ में इस अधिनियम का और भी विस्तार किया और 'दरिद्रता अधिनियम' को परिवर्तित करके उसका नाम सार्वजनिक सहायता अधिनियम कर डाला।

विश्वव्यापी मन्दी एवं द्वितीय महायुद्ध का काल

सन् १९३४ में बेकारी सहायता मण्डल (Unemployment Assistance Board) स्थापित किया गया जिसका आर्थिक दायित्व सरकार का था। सन् १९३६

में इस योजना को कृषि मजदूरों के लिए भी लागू कर दिया गया। दूसरे ही वर्ष अशदानी-बुढ़ापा पेन्शन और विधवा पेन्शन अधिनियम को बेकार व्यक्तियों पर लागू किया गया। सन् १९३८ में अन्धों की पेंशन प्राप्त करने की उम्र ५० से घटाकर ४० कर दी गयी।

विश्व मन्दी ने इस योजना को बुरी तरह प्रभावित किया। बेकारी में वृद्धि होने से कोष समाप्त हो गया। बेकारी सहायता मण्डल को अपना दायित्व पूरा करने के लिए सरकार से ऋण लेना पड़ा जो कि सन् १९३४ में सौ मिलियन पौण्ड तक पहुँच गया। संकट से मुक्ति पाने के लिए चन्दे की दरें बढ़ा दी गयीं और लाभ-राशि कम कर दी गयी। सन् १९३४ में शाही आयोग (Royal Commission) के सुझाव पर सहायता की राशि एवं अवधि दोनों में वृद्धि कर दी गयी तथा शुल्क की दर में कमी की गयी। सन् १९३६ में कृषि श्रमिकों की बेकारी के बीमे के लिए भी एक योजना आरम्भ की गयी।

नकदी लाभों का कुल योग (जो विभिन्न सामाजिक सेवाओं के अन्तर्गत प्राप्त होता था) १९२४ में २५० लाख पौण्ड से बढ़कर १९३८-३९ में २,३६० लाख पौण्ड तक पहुँच गया।

ट्रेड बोर्ड अधिनियम सन् १९१८ के अन्तर्गत अत्यधिक कठिन श्रम करने वाले श्रमिकों के लिए निश्चित वैधानिक न्यूनतम मजदूरी तय की गयी। कारखाना और कोयला-खदान अधिनियमों को श्रमिकों और खनिजों के पक्ष में संशोधित किया गया। सन् १९२० के पश्चात् सार्वजनिक अस्पतालों के निर्माण का कार्य तीव्र गति से बढ़ा। सन् १९४० में महिलाओं की पेन्शन उम्र ६५ से घटाकर ६० वर्ष कर दी गयी। 'बेकारी सहायता प्रमण्डल' (Unemployment Assistance Board) का युद्धकाल में नवीन नामकरण सहायता मण्डल (Assistance Board) किया गया। इसको युद्धकालीन आवश्यकताओं के अनुसार सहायता देने के व्यापक अधिकार दिये गये। जब युद्धकाल में श्रम-दल ने संयुक्त सरकार में स्थान प्राप्त किया तो पारिवारिक जाँच के स्थान पर व्यक्तिगत जाँच को सहायता-कार्य में मान्यता दी गयी। आपत्तिकालीन चिकित्सा सेवाएँ भोजन और दुग्ध वितरण सेवाओं का भी विस्तार किया गया।

(३) तृतीय चरण—बीवरिज योजना एवं उसके बाद का काल

बीवरिज योजना
(Beveridge Plan)

सन् १९४१ में सामाजिक बीमा और सम्बन्धित सेवाओं की जाँच-पड़ताल और सिफारिशों के लिए श्री बीवरिज (Lord Beveridge) की अध्यक्षता में एक समिति भी स्थापित की गयी। यह एक व्यक्ति समिति ही थी उसका प्रतिवेदन सन् १९४२ में प्रस्तुत किया गया। यह एक ऐतिहासिक प्रतिवेदन है। प्रो० जी० डी०

एच० कोल के शब्दों में—"यह वास्तव में एक सीमा चिह्न है, क्योंकि यह प्रथम प्रयास है जिसमें सरकार व्यक्तिगत नागरिकों के सहयोग से सम्पूर्ण सामाजिक सुरक्षा के लिए संघर्ष करने को कृत सकल्प है, जिसे लॉर्ड बीवरिज ने उपयुक्त नाम दिया है। पचसूत्री सहायता सामाजिक प्रगति की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। सहायता के पाँच सूत्र हैं—अभाव, रोग, अज्ञान, गन्दगी और आलस्य। यहाँ आलस्य से आशय विवश बेकारी से है।

सामाजिक सुरक्षा योजना का मुख्य ध्येय आय के साधनों और शक्ति के व्याघात-प्रतिघात के विरुद्ध सामाजिक बीमा करना है। साथ ही विशिष्ट व्यया, जैसे जन्म, विवाह मृत्यु आदि के समय आवश्यक खर्चों के लिए विशेष सहायता की व्यवस्था करना है।

बीवरिज योजना की प्रमुख विशेषताएँ

(१) योजना का सैद्धान्तिक पक्ष—इस योजना के निम्नलिखित छह प्रमुख सिद्धान्त निर्धारित किये गये

(i) लाभों की पर्याप्तता (Adequacy of Benefits),

(ii) लाभों की समानता (Flat Rates of Benefits),

(iii) अंशदान की समानता (Uniform Rates of Contributions),

(iv) प्रशासनिक दायित्वों का एकीकरण (Unified Administrative Responsibility),

(v) वर्गीकरण (Classification),

(iv) व्यापकता (Comprehensiveness)।

ब्रिटेन के इतिहास में प्रथम बार सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में उपर्युक्त सिद्धान्त निर्धारित किये गये। इस दृष्टि से व्यापकता, सुसम्बद्धता, चन्दों एवं लाभों की समानता एवं पर्याप्तता तथा नागरिकों का कुछ वर्गों में उचित वर्गीकरण योजना की प्रमुख एवं उल्लेखनीय विशेषताएँ मानी जा सकती हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से बीवरिज योजना के प्रतिवेदन में उल्लिखित निम्न पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं "योजना पूर्णतः एकीकृत हो जिसमें एक ही प्रकार का कार्ड, समान चन्दा, लाभों की दरों का समान मानक, तथा लाभों के भुगतान के लिए एक कार्यालय की व्यवस्था का समावेश हो। योजना में पर्याप्त लाभ प्रदान किये जाने की व्यवस्था हो तथा ऐसे लाभों को प्रदान करने की व्यवस्था उस समस्त अवधि के लिए हो जिसमें उन खतरों अथवा आकस्मिकताओं के उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहे।"[1]

---

1 "The scheme must be with one card, one contribution and one standard rate of benefit and one office from which payments are made It must provide adequate benefits It must provide these benefits for the entire duration of the contingency." —Report on the Beveridge Plan.

इस प्रकार सर विलियम बीवरिज ने एक ऐसी योजना प्रस्तुत की जो सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होती थी और जिसके अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को 'जन्म से मृत्यु तक" (from birth to death) सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध थी। वस्तुत यह योजना इससे भी एक कदम आगे थी और ब्रिटेन के प्रत्येक नागरिक को "गर्भ से कब्र तक" (From the womb to the tomb) सुरक्षा प्रदान करने की भावना इस योजना मे निहित थी।

(२) वर्गीकरण (Classification)— इस योजना मे समस्त नागरिकों को निम्नलिखित छह वर्गों मे वर्गीकृत किया गया

(i) कर्मचारी या श्रमिक (Employed Persons)—इसमे समस्त ऐसे वेतन भोगी कर्मचारी सम्मिलित थे जो नौकरी करते है।

(ii) स्वय नियोजित व्यक्ति (Self Employed Persons)—इसमे ऐसे व्यक्ति सम्मिलित किये गये जो अपना कोई स्वतन्त्र कार्य या व्यवसाय करते है।

(iii) ग्रहणियाँ (Housewives)—ऐसी विवाहित स्त्रियाँ जो कार्य शील आयु की है।

(iv) अन्य व्यक्ति—ऐसे व्यक्ति जो न तो नौकरी करते हैं और न अपना कोई स्वतन्त्र व्यवसाय ही।

(v) अल्पायु या अवयस्क—इनमे समस्त नाबालिग व्यक्ति सम्मिलित किये गये।

(vi) अवकाश प्राप्त व्यक्ति—जो कार्य शील आयु पार कर चुकने पर रिटायर हो चुके हो।

(३) प्रशासनिक व्यवस्था—इसके लिए बीवरिज योजना मे सामाजिक सुरक्षा के लिए पृथक राजकीय विभागो एव स्थानीय कार्यालयो के खोलने का प्रस्ताव किया गया जो सब एक पृथक मन्त्रालय के अधीन होगे जिसे सामाजिक सुरक्षा मन्त्रालय कहा जायगा। यह मन्त्रालय अपने विभागो एव स्थानीय कार्यालयो के द्वारा सामाजिक बीमा, राष्ट्रीय सहायता एव अन्य ऐसे सम्बन्धित दायित्वो को सम्पन्न करेगा।

(४) लाभ (Benefits)—प्रथम वर्ग मे सम्मिलित व्यक्तियो को (अर्थात् वेतन भोगी कर्मचारियों को) प्राय सभी प्रकार के लाभ प्राप्त होगे जैसे बीमारी के समय निशुल्क चिकित्सा, बेकारी लाभ, अपगुता लाभ, पेंशन लाभ आदि। इसके साथ ही मृत्यु के समय अन्तिम सस्कार के लिए एक निश्चित धन राशि भी प्रदान किये जाने की व्यवस्था होगी। दूसरे एव चौथे वर्ग के व्यक्तियो को बेकारी एव अपगुता लाभ को छोडकर प्राय सभी अन्य लाभ प्राप्त करने का अधिकार होगा। तीसरे वर्ग मे सम्मिलित गृहणियों को प्रसूति लाभ एव वैधव्य लाभ (Maternity Benefit and Widowhood Benefit) प्राप्त करने का अधिकार होगा। पाँचवें वर्ग मे सम्मिलित व्यक्तियो को राष्ट्रीय कोष से भत्ता प्राप्त करने का अधिकार होगा। अन्तिम वर्ग के व्यक्तियो को पेन्शन प्राप्त करने का अधिकार दिया जायगा। यह अवकाश प्राप्ति के बाद ही दिया जायगा।

(५) अशदान (Contributions)—प्रथम, द्वितीय एव चतुर्थ वर्ग के व्यक्तियो को प्रति सप्ताह आवश्यक चन्दा (Contribution) देना होगा। प्रथम वर्ग मे नियोजक (Employer) को भी अपने प्रत्येक कर्मचारी के लिए अतिरिक्त चन्दा (कर्मचारी के स्वय के चन्दे के अतिरिक्त) देना होगा जो प्रति सप्ताह देना होगा। इन चन्दो से एक कोष की स्थापना की जायगी। इस कोष मे समय-समय पर सरकार भी अनुदान देगी। इस कोष म से ही सहायता की राशि वितरित किये जाने का प्रस्ताव योजना म किया गया।

(६) अन्य व्यवस्थाएँ (Other Provisions)—पेन्शन, अवकाश प्राप्ति के बाद ही प्राप्त होगी। न्यूनतम अवकाश प्राप्ति की उम्र के बाद कभी भी तत्सम्बन्धी दावा प्रस्तुत किया जा सकता है। बेकारी एवं अपगुता लाभ आवश्यक जाँच पडताल के बाद ही प्राप्त हो सकेंगे। राष्ट्रीय सहायता सरकारी कोष मे से दी जायगी।

बीवरिज योजना इगलैण्ड के इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण योजना मानी गयी। इस योजना के विषय मे इगलैण्ड के सभी विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये। योजना का प्राय सभी क्षेत्रो द्वारा समर्थन किया गया। युद्ध की समाप्ति के बाद ही सन् १६४५ मे श्रम-दल (Labour party) की सरकार श्री एटली के नेतृत्व मे बनी और उसके बाद ही बीवरिज योजना को कार्य रूप मे परिणित करने का निर्णय किया गया।

योजना का क्रियान्वयन एव वर्तमान व्यवस्था

उपर्युक्त प्रसिद्ध योजना के आधार पर युद्धोत्तर काल मे ब्रिटेन न सामाजिक बीमा एव सहायता का एक व्यापक कार्यक्रम लागू किया। इस दिशा मे जो योजनाएँ इस समय ब्रिटेन मे प्रचलित हैं वे निम्न हैं

(क) पारिवारिक भत्ता (Family Allowance) योजना।

(ख) राष्ट्रीय बीमा (National Insurance) योजना।

(ग) औद्योगिक क्षति बीमा (Industrial Injury Insurance) योजना।

(घ) पूरक लाभ योजना (Supplementary Benefits Scheme)।

(ङ) युद्ध पेन्शन (War Pensions) योजना।

(च) सामाजिक कल्याण सेवाएँ (Social Welfare Services)।

नीचे इनमें से प्रत्येक योजना का पृथक विवरण दिया गया है

(क) पारिवारिक भत्ता योजना
(Family Allowance Scheme)

सन् १६४५ म पारिवारिक भत्ता अधिनियम (Family Allowance Act) पास करके यह योजना ६ अगस्त, १६४६ स प्रचलित की गयी। इस योजना का उद्देश्य परिवारो के आर्थिक बोझ मे कमी करना है। यह केवल सहायता योजना है, बीमा योजना नही है अत इसमे कोई अशदान या चन्दा (Contribution) नही देना

पडता। यह सहायता सरकारी कोष मे स प्रदान की जाती है तथा बच्चो की माता इसकी अधिकारिणी होती है—वैसे सहायता की राशि माता-पिता मे से किसी को भी दी जा सकती है। परिवार के प्रथम बच्चे को कोई सहायता नही दी जाती किन्तु दूसरे एव अन्य सभी बच्चो के लिए १५ वर्ष तक की उम्र तक यह सहायता मिलती है। यदि बच्चा १५ वर्ष के बाद शिक्षा ग्रहण कर रहा है अथवा काम सीख रहा है तो यह भत्ता उसके लिए १६ वर्ष की उम्र तक मिलता रहता है।

सन् १९६५ मे **नया पारिवारिक भत्ता अधिनियम** पास किया गया जिसमे पिछले बीस वर्षों मे पारित विभिन्न व्यवस्थाओं का एकीकरण कर दिया गया। अक्तूबर १९६८ से भत्ते की दरो मे वृद्धि कर दी गयी है। अब द्वितीय बच्चे के लिए १८ शिलिंग एव तृतीय तथा अन्य बच्चो मे से प्रत्येक के लिए २० शिलिंग प्रति सप्ताह भत्ता दिया जाता है। इस समय चालीस लाख से कुछ अधिक परिवारो को ६६ लाख पारिवारिक भत्ते दिये जा रहे हैं। बच्चो के स्वस्थ्य पालन-पोषण के लिए इगलैण्ड द्वारा यह एक आदर्श प्रयास किया गया है। इगलैण्ड ने यह भलीभाँति अनुभव कर लिया है कि परिवार के सीमित साधनो को बच्चो के पालन-पोषण के मार्ग मे बाधक नही बनने देना चाहिए क्योकि प्रत्यक परिवार का प्रत्येक बालक परिवार के साथ-साथ राष्ट्र की भी सम्पत्ति होता है।

(ख) राष्ट्रीय बीमा योजना
(National Insurance Scheme)

राष्ट्रीय बीमा अधिनियम सन् १९४६ मे पास किया गया तथा ५ जुलाई, १९४८ से यह योजना प्रचलित की गयी। यह योजना १५ वर्ष की आयु से अधिक के प्रत्येक ऐसे व्यक्ति पर लागू होती है जो ब्रिटेन का निवासी है। यह एक अशदायी योजना (Contributory Scheme) है और इसके अन्तर्गत बीमित प्रत्येक व्यक्ति को निर्धारित चन्दा या शुल्क प्रति सप्ताह देना होता है। इसके कोष मे प्रत्येक कर्मचारी के लिए नियोजक (employer) भी निर्धारित शुल्क देता है और राज्य द्वारा भी इस कोष मे धन दिया जाता है। अत यह एक ऐसी योजना है जिसमे बीमित व्यक्ति, नियोजक एव सरकार तीनो ही अशदान करते हैं तथा इस कोष मे से योजना के अन्तर्गत निश्चित दशाओ मे बीमित व्यक्ति एव उसके परिवार के सदस्यो को निर्धारित लाभ प्रदान किये जाते है।

(१) **वर्गीकरण (Classification)**—इसके अन्तर्गत बीमित व्यक्तियो के तीन वर्ग किये गये हैं जो निम्न है

प्रथम वर्ग—सेवा नियोजित व्यक्ति (Employed Persons),

द्वितीय वर्ग—स्वय-नियोजित व्यक्ति (Self-employed Persons),

तृतीय वर्ग—अनियोजित व्यक्ति (Non employed Persons)।

प्रथम वर्ग म वे सब व्यक्ति आते हैं जो वेतनभोगी कर्मचारी हैं। इस वर्ग के अन्तर्गत दो करोड तीस लाख व्यक्तियो का बीमा किया गया है। द्वितीय वर्ग मे

ऐसे व्यक्ति आते हैं जो अपना स्वय का कोई व्यवसाय या अन्य लाभ-दायक काम करते हैं और किसी की सेवा मे नहीं हैं। ऐसे लगभग १५ लाख व्यक्ति इस बीमा योजना का लाभ प्राप्त किये हुए हैं। तृतीय वर्ग मे वे अन्य व्यक्ति आते हैं जो प्रथम अथवा द्वितीय वर्ग में सम्मिलित नहीं हैं। ऐसे करीब ढाई लाख व्यक्ति इसका लाभ उठा रहे हैं। विवाहित महिलाएँ जो वेतनभागी कर्मचारी नहीं हैं और अपना कोई अन्य पृथक व्यवसाय नहीं करतीं, अपने पति के अधिकार के अन्तर्गत इस योजना के कार्यों मे सम्मिलित हैं और उन्हें अलग से कोई शुल्क नहीं देना पड़ता। ऐसी महिलाओं का उनके पति के बीमे के अन्तर्गत प्रसूति-लाभ अवकाश प्राप्ति पेन्शन (कुछ कम दर पर) वैधव्य लाभ एव मृत्यु अनुदान की प्राप्ति का अधिकार प्राप्त होता है। ऐसी विवाहित महिलाओं को, जो नौकरी अथवा अन्य लाभदायक व्यवसाय करती हैं यह विकल्प प्राप्त है कि वे पृथक से चन्दा देकर अपना बीमा इस योजना के लिए करवा सकती हैं अथवा यदि वे चाहें तो अपने पति के बीमा के अन्तर्गत ही लाभ प्राप्त कर सकती है।

विद्यार्थियो को १८ वर्ष की उम्र तक कोई चन्दा देने की आवश्यकता नहीं होती यद्यपि वे योजना के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले लाभो के अधिकारी होते हैं। इस प्रकार स्वय नियोजित (Self-employed) व्यक्तियों को, जिनकी आय ३१२ पौण्ड प्रतिवर्ष से कम होती है, चन्दे से छूट प्राप्त कर सकते हैं। प्रथम-वर्ग के (Employed & Persons) व्यक्तियों की दशा मे उनके मालिक यह देखते हैं कि शुल्क नियमित रूप से जमा हो रहा है। वे प्रति सप्ताह[1] वेतन मे से भी शुल्क की राशि काटकर बीमित व्यक्ति के बीमा कार्ड पर पोस्ट आफिस से खरीदे गये बीमा टिकटों को चिपकाकर अशदान जमा करते हैं जिसमे प्रत्येक बीमित कर्मचारी के लिए मालिक (Employer) द्वारा दिया जाने वाला चन्दा भी सम्मिलित होता है, अन्य व्यक्ति स्वय बीमा कार्ड पर बीमा योजना के स्टाम्प या टिकट चिपकाकर चन्दा जमा करते हैं। ये स्टाम्प पोस्ट आफिस से प्राप्त होते हैं।

(२) चन्दे की दरें (Rates of Contributions)—चन्दे की दरें[2] समस्त पुरुषों के लिए समान हैं। महिलाओं एव १५ से १८ वर्ष तक के बच्चों के लिए ये दरें कुछ कम हैं। निम्न तालिका मे पुरुषों के लिए निर्धारित साप्ताहिक दरें दी गयी हैं। राष्ट्रीय बीमा दरों मे औद्योगिक क्षति बीमा (Industrial Injury Insurance) दरें भी सम्मिलित होती हैं। स्पष्ट है कि प्रथम वर्ग के बीमित व्यक्तियों द्वारा १३ शिलिंग ६ पैन्स से लगाकर १५ शिलिंग ११ पैन्स तक प्रति सप्ताह देना

---

[1] In Great Britain wages and salaries are paid every week and not every month as in India

[2] Rates for contribution and benefits change from time to time. The rates given here relate to the year 1969.

राष्ट्रीय बीमा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा आदि के अंशदान की साप्ताहिक दरें[1]

वर्ग	राष्ट्रीय बीमा[2]		राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा		मालिकों द्वारा अतिरिक्त अंशदान		सिलेक्टिव एम्प्लायमेन्ट टैक्स		कुल निश्चित अनुदान		क्रमबद्ध अंशदान[3] न्यूनतम	क्रमबद्ध अंशदान[3] उच्चतम	
	शि०	पैं०	शि०	पैं०	शि०	पैं०	शि०	पैं०	शि०	पैं०	पैं०	शि०	पैं०
(I) प्रथम वर्ग नियोजित व्यक्ति (Employed persons) (१८ से ७० वर्ष की आयु के) जो क्रमबद्ध पेंशन योजना में शामिल हैं और जिन्होने सेवा से अवकाश नही लिया है।													
(अ) कर्मचारी द्वारा	१३	६	३	२	—		—		१६	८	१	९	९
(ब) मालिक द्वारा	१५	०		८	१	३	३७	६	५४	५	१	९	९
योग									७१	१			
(II) प्रथम वर्ग नियोजित व्यक्ति (Employed Persons) (१८ से ७० वर्ष की उम्र के) जो क्रमबद्ध पेंशन योजना में शामिल हैं और जिन्होने सेवा से अवकाश नही लिया है।													
(अ) कर्मचारी द्वारा	१५	११	३	२	—		—		१९	१	१	२	१
(ब) मालिक द्वारा	१७	५		८	१	३	३७	६	५६	१०	१	२	१
योग									७५	११			
(III) द्वितीय वर्ग स्वय नियोजित (Self Employed)	१८	१०	३	४	—		—		२२	२	—	—	
(IV) तृतीय वर्ग अनियोजित (Non-Employed)	१४	३	३	४	—		—		१७	७	—	—	

1 उपर्युक्त चन्दे की दरें वयस्क पुरुषों के लिए हैं। महिलाओ एव बच्चो की दशा में अंशदान की दरें कुछ कम हैं।
2 राष्ट्रीय बीमा की दरों में औद्योगिक क्षति बीमा (Industrial Injuries Insurance) के चन्दे की राशि भी सम्मिलित है जो कर्मचारी से १० पैं० और मालिक से ११ पैं० है।
3 यदि आय ९ पौण्ड से कम है, तो क्रमबद्ध अंशदान की अदायगी से छूट मिल जाती है।

WEEKLY NATIONAL INSURANCE, NATIONAL HEALTH SERVICE AND EMPLOYERS' REDUNDANCY CONTRIBUTIONS AND SELECTIVE EMPLOYMENT TAX

Class	National Insurance Flat Rate (b)	Health Service	Employers' redundancy contribution	Selective Employment Tax	Total Flat Rate	Graduated Contributions (additional) (c) (From)	Graduated Contributions (additional) (c) (To)
Class 1 (d)							
I Employed Men (18 to 70 years) nor contracted out of the graduated pension part of the Scheme and not retired '	s. d	s. d	s d	s. d.	s. d	d	s. d
paid by the employee	13 6	3 2	—	—	16 8	1	9 9
paid by the employers	15 0	8	1 3	37 6	54 5	1	9 9
Total							
II Employed Men (18 to 70 years) contracted out and not retired :							
paid by the employee							
paid by the employer							
Total							
Class 2							
Self Employed persons							
Class 3							
Non Employed persons							

होता है। इसके अतिरिक्त मालिको (Employers) द्वारा प्रत्येक बीमित कर्मचारी के लिए १५ शिलिंग से १७ शिलिंग ४ पेंस तक अलग अशदान दिया जाता है। दूसरे वर्ग (Self Employed) के व्यक्ति १८ शिलिंग १० पैन्स तथा तीसरे वर्ग के व्यक्ति १४ शिलिंग ३ पैन्स प्रति सप्ताह इस योजना में चन्दा देते हैं।

(३) योजना के अन्तर्गत प्राप्त लाभ (Benefits Under the Scheme)—योजना के अन्तर्गत बीमित व्यक्ति एव उसके परिवार के सदस्यो को अनेक प्रकार के व्यय प्राप्त होते हैं जिनका सम्बन्ध बीमारी, बेकारी, प्रसूति, वैधव्य, वृद्धावस्था एव मृत्यु से है। न्यूनतम निर्धारित सख्या में साप्ताहिक शुल्को का भुगतान देने पर ही कोई व्यक्ति लाभ प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। अधिकारी बनने पर पूर्ण दर पर लाभ उसी दशा मे प्राप्त होते हैं जबकि वह व्यक्ति निर्धारित साप्ताहिक शुल्को की सख्या पूरी कर चुका है। अन्यथा उसी अनुपात में लाभ की दर कम हो जाती है। योजना के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले लाभ इस प्रकार है

(i) बीमारी लाभ (Sickness Benefit)—बीमारी की दशा में व्यक्ति को चार पौण्ड दस शिलिंग प्रति सप्ताह दिये जाते हैं। तीन वर्ष के निरन्तर सेवाकाल मे यदि शुल्को की सख्या १५६ से कम है तो बीमारी लाभ एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए नही मिलता।

(ii) बेकारी लाभ (Unemployment Benefit)—बेकारी की दशा में भी व्यक्ति को चार पौण्ड दस शिलिंग प्रति सप्ताह मिलता है। यह अधिक से अधिक एक वर्ष के लिए दिया जाता है। यदि बेरोजगार व्यक्ति की अन्य किसी साधन से आय होती है तो यह लाभ कम दर से दिया जाता है। इसके साथ ही आवश्यकतानुसार अधिक से अधिक छह महीने के लिए पूरक लाभ भी दिया जा सकता है।

(iii) प्रसूति लाभ (Maternity Benefit)—यह लाभ दो प्रकार से प्राप्त होता है—प्रथम प्रसूति भत्ता (Maternity allowance) तथा दूसरा प्रसूति अनुदान (Maternity grant)। प्रसूति भत्ते का उद्देश्य गर्भवती महिला को प्रसव से पूर्व एव पश्चात् निश्चित अवधि का अवकाश देना है। जबकि प्रसूति अनुदान बच्चे के जन्म के समय होने वाले व्ययो की पूर्ति करना है, अत इसे जन्म अनुदान (Birth Grant) भी कहा जा सकता है। प्रसूति-भत्ते की दर चार पौण्ड दस शिलिंग प्रति सप्ताह ही है और यह सम्भावित प्रसव से ११ सप्ताह पहले से प्रसव के छह सप्ताह बाद तक मिलता है। जन्म अनुदान की राशि एक मुश्त मिलती है और इसकी राशि २२ पौण्ड है।

(iv) आश्रित लाभ (Dependents Benefit)—उपर्युक्त दशाओ मे यदि परिवार में आश्रित व्यक्ति हैं तो सम्बन्धित व्यक्ति के भत्ते में प्रति आश्रित व्यक्ति के लिए पृथक रूप से निर्धारित भत्ता और जुड जाता है जो इस प्रकार है—वयस्क के लिए २ पौण्ड १६ शिलिंग, पन्द्रह वर्ष की उम्र से कम के प्रथम बच्चे के लिए १

पौण्ड ८ शिलिंग, द्वितीय बच्चे के लिए १० शिलिंग, तथा तृतीय एवं अन्य बच्चों में से प्रत्येक के लिए ८ शिलिंग प्रति सप्ताह (पारिवारिक भत्ते के अतिरिक्त) प्राप्त होता है। विधवाओं की दशा में आश्रित लाभ की राशि कुछ अधिक होती है। इसका उद्देश्य बीमारी अथवा बेकारी की दशा में उस व्यक्ति के परिवार के व्यय में सहयोग देना है ताकि वह अपनी न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी कर सके।

(v) संरक्षक भत्ता (Guardian's Allowance)—यदि कोई बच्चा जिसके माता-पिता में से किसी एक का बीमा था, माता पिता की मृत्यु के कारण अनाथ हो जाता है और कोई व्यक्ति उसका संरक्षक (Guardian) बनकर उसे अपने परिवार में रखता है तो उस संरक्षक को उस बच्चे के लिए दो पौण्ड ५ शिलिंग ६ पेन्स प्रति सप्ताह संरक्षक-भत्ता मिलता है। इसका उद्देश्य बीमित व्यक्तियों के निराश्रित बच्चों के लिए अन्य परिवारों में उचित व्यवस्था किये जाने को प्रोत्साहित करना है ताकि उनकी देखरेख उचित रीति से हो सके और वे आगे चलकर अपने पैरों पर खड़े हो सकें।

(vi) वृद्धावस्था पेन्शन (Old Age Pension)—यह पेन्शन उन व्यक्तियों को दी जाती है जो ६५ वर्ष की आयु के हो चुके हैं और सेवा से अवकाश प्राप्त कर चुके हैं। महिलाओं के लिए यह आयु ६० वर्ष है। न्यूनतम अवकाश प्राप्ति की आयु के बाद भी यदि कुछ व्यक्ति नौकरी करते रहते हैं तो अवकाश प्राप्ति के बाद उनकी पेन्शन की दर कुछ अधिक होती है। यह उल्लेखनीय है कि पेन्शन, कार्य से अवकाश लेने के बाद ही प्राप्त हो सकती है। विवाहित महिलाओं को जिनका अलग से बीमा नहीं है अपने पति के अधिकार के अन्तर्गत अवकाश प्राप्त के बाद २ पौण्ड १६ शि० प्रति सप्ताह पेन्शन मिलती है। जो लोग क्रमबद्ध पेन्शन योजना का अलग से चन्दा देते हैं, उनकी पेन्शन की दर न्यूनतम दर से कुछ अधिक बढ जाती है। यह वृद्धि ६ पेन्स प्रति सप्ताह होती है।

(vii) वैधव्य लाभ (Widowhood Benefit)—यह लाभ विधवाओं की सहायतार्थ दिया जाता है। पति की मृत्यु के बाद प्रथम १३ सप्ताह तक विधवाओं को ६ पौण्ड ७ शिलिंग प्रति सप्ताह भत्ता मिलता है। इसके बाद यदि विधवा की उम्र पचास वर्ष है अथवा उसके बच्चे छोटे हैं तो कुछ कम दर पर ४ पौण्ड १० शिलिंग यह सहायता आगे भी मिलती रहती है, जब तक कि बच्चे १५ वर्ष के न हो जायें अथवा शिक्षा प्राप्त करने की दशा में १६ वर्ष के न हो जायें। विधवा को प्रत्येक बच्चे के लिए विधवा मातृ भत्ता (Widowed Mother's Allowance) निर्धारित दरों पर मिलता है।

(viii) मृत्यु लाभ (Death Benefit)—योजना के अन्तर्गत जन्म एवं मृत्यु दोनों ही दशाओं में अनुदान मिलता है। प्रत्येक वयस्क की मृत्यु की दशा में ३० पौण्ड अनुदान इस योजना में प्राप्त होता है ताकि उसका अन्तिम संस्कार समुचित ढंग से किया जा सके। ब्रिटेन में जन्म एवं मृत्यु दोनों ही दशाओं में भारी व्यय का

दायित्व वहन करना होता है जिसकी व्यवस्था सामाजिक बीमा के अन्तर्गत राज्य द्वारा की गयी है जो कि इस बात का परिचायक है कि ब्रिटेन व्यक्ति का कितना सम्मान करता है।

(ग) राष्ट्रीय बीमा (औद्योगिक क्षति) योजना
(National Insurance (Industrial Injuries) Scheme)

सन् १९४६ में सर्वप्रथम राष्ट्रीय बीमा (औद्योगिक क्षति) अधिनियम पास किया गया जिसे जुलाई सन् १९४८ से लागू किया गया। इसने विगत श्रमिक क्षति-पूर्ति (Workmen's Compensation) योजना का स्थान ले लिया। सन् १९६५ में नया औद्योगिक क्षतिपूर्ति-अधिनियम पास किया गया। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य उन व्यक्तियों की सहायता करना है जो कारखाने में काम करते समय दुर्भाग्य से दुर्घटना अथवा किसी जीर्ण रोग के शिकार हो जायें। यह भी एक बीमा योजना है जिसके लिए विभिन्न पक्षों द्वारा चन्दा जमा किया जाता है। इसके लिए प्रत्येक कर्मचारी से १० पैन्स और प्रत्येक कर्मचारी के लिए मालिक से ११ पैन्स चन्दा लिया जाता है। यह चन्दा राष्ट्रीय बीमा दर के साथ ही लिया जाता है और उसमें जुड़ा होता है। इस योजना के अन्तर्गत आवश्यकतानुसार तीन प्रकार के लाभ प्राप्त हो सकते हैं—क्षति लाभ, अयोग्यता लाभ एवं मृत्यु लाभ।

(i) क्षति लाभ (Injury Benefit)—यदि कोई व्यक्ति काम करते समय क्षतिग्रस्त हो जाता है अथवा व्यावसायिक बीमारी का शिकार हो जाता है तो उसे २६ सप्ताह तक प्रति सप्ताह ७ पौ० ५ शि० भत्ता मिलता है। इसके अतिरिक्त आश्रित वयस्क के लिए २ पौ० १६ शि०, प्रथम बच्चे के लिए १ पौ० ८ शि० एवं दूसरे बच्चे के लिए १० शिलिंग तथा तीसरे एवं बाद के प्रत्येक बच्चे के लिए ८ शिलिंग प्रति सप्ताह आश्रित भत्ता भी मिलता है जो कि पारिवारिक भत्तों के अतिरिक्त होता है। यह भत्ता केवल उसी दशा में मिलता है जबकि दुर्घटना या क्षति के कारण वह व्यक्ति काम करने की दशा में नहीं है।

(ii) अयोग्यता लाभ (Disablement Benefit)—यदि २६ सप्ताह के बाद भी कोई व्यक्ति काम करने की दशा में नहीं हो पाता तो वह अस्थायी अथवा स्थायी अयोग्यता की श्रेणी में आ जाता है और इस प्रकार अयोग्यता भत्ता प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। अयोग्यता कितने प्रतिशत है यह डाक्टरों के बोर्ड के द्वारा निश्चित किया जाता है। बीस प्रतिशत से कम की अयोग्यता में भत्ता नहीं मिलता, केवल ग्रैच्युटी (Gratuity) मिलती है जिसकी राशि ५०० पौण्ड तक हो सकती है। बीस प्रतिशत अयोग्यता की दशा में १ पौ० १०½ शि० प्रति सप्ताह अयोग्यता भत्ता मिलता है और अधिक अयोग्यता के साथ-साथ भत्ते की साप्ताहिक राशि भी अधिक निश्चित की जाती है। शत-प्रतिशत अयोग्यता की दशा में उस व्यक्ति को ७ पौण्ड १२ शि० प्रति सप्ताह अयोग्यता भत्ता दिया जाता है। सम्पूर्ण अयोग्यता (100% Disablement) उस दशा में मानी जाती है जब क्षति इतनी

अधिक है कि वह व्यक्ति कोई भी कार्य करने लायक नहीं रहता जैसे दोनों आँखों अथवा हाथों का नष्ट हो जाना आदि।

विशेष परिस्थितियों में अयोग्यता भत्ते में वृद्धि की जा सकती है। यदि किसी व्यक्ति को परिचारक की आवश्यकता है तो उसे ३ पौण्ड से लेकर ६ पौण्ड प्रति सप्ताह तक परिचारक भत्ता (Attendance Allowance) मिलता है। विशेष कठिनाई के समय ३ पौण्ड प्रति सप्ताह की दर में विशेष कठिनाई भत्ता (Special Hardship Allowance) प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अस्पताल में रहने के व्यय एवं आश्रित लाभ भी प्राप्त होते हैं। कुछ दशाओं में ४ पौण्ड १० शिलिंग प्रति सप्ताह की दर से बेकारिता अनुदान (Unemployability Supplement) भी दिया जाता है।

(iii) मृत्यु-लाभ (Death Benefit)—*दुर्घटना या व्यावसायिक बीमारी के कारण यदि किसी बीमित व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसके आश्रितों को यह लाभ भत्ते के रूप में प्राप्त होता है।* विधवा को प्रथम २६ सप्ताह तक ६ पौ० ७ शि० प्रति सप्ताह की दर से वैधव्य पेन्शन मिलती है और उसके बाद विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार ५ पौ० १ शि० प्रति सप्ताह तक उसे पेन्शन प्राप्त होती रहती है। यह पेन्शन प्राय ऐसी दशा में मिलती रहती है, यदि वह ५० वर्ष की है और अपने पैरों पर खड़ी हो सकती अथवा उसे बच्चों का लालन-पालन करना पड़ रहा है। पारिवारिक भत्ते इसके अतिरिक्त प्राप्त होते रहते हैं। यदि विधवा इनमें से किसी भी श्रेणी में नहीं आती तो भी उसे १ पौ० १० शि० प्रति सप्ताह की पेन्शन मिलती रहती है।

(घ) पूरक लाभ योजना
(Supplementary Benefits Scheme)

सन् १९४८ से पूर्व दरिद्रता कानूनों (Poor Laws) के *अन्तर्गत केन्द्रीय एवं स्थानीय प्रशासन द्वारा सार्वजनिक कोष से ऐसे व्यक्तियों को सहायता दिये जाने की* व्यवस्था थी जिन्हें इसकी आवश्यकता होती थी। सन् १९४८ में राष्ट्रीय सहायता अधिनियम (National Assistance Act) पास किया गया जिसने दरिद्रता कानूनों का एवं अन्य इसी प्रकार की छुट पुट व्यवस्थाओं का स्थान ले लिया। इस अधिनियम ने इंगलैण्ड के इतिहास में प्रथम बार सामाजिक सहायता कार्यक्रमों को एक सूत्र में बाँधकर राष्ट्रीय-स्तर प्रदान किया। इसके प्रशासन के लिए एक बोर्ड की नियुक्ति की गयी जिसे **राष्ट्रीय सहायता मण्डल** (National Assistance Board) कहा गया। सन् १९६६ में सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (Ministry of Social Security Act) के अन्तर्गत पूरक लाभ आयोग (Supplementary Benefits Commission) का गठन किया गया और राष्ट्रीय सहायता मण्डल को समाप्त कर दिया गया। अब पूरक लाभ योजना का समस्त दायित्व पूरक लाभ आयोग पूरा करता है।

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि यह योजना कोई बीमा योजना नहीं है और इसलिए इसके अन्तर्गत किसी प्रकार के चन्दे आदि की आवश्यकता नहीं होती। यह एक विशुद्ध सामाजिक दान (Social Charity) योजना है जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक कोष से पात्र व्यक्तियों को आर्थिक सहायता दी जाती है। कुछ अपवादों को छोड़कर कोई भी व्यक्ति जिसकी उम्र १६ वर्ष से अधिक है और जिसे सहायता की जरूरत है, पूरक लाभ आयोग को प्रार्थनापत्र दे सकता है। पूरक लाभ का आधार एवं परिमाण पार्लियामेण्ट द्वारा समय-समय पर पास किये गये नियमों, प्रार्थी व्यक्ति की आय के अन्य साधनों के अनुसार निश्चित किया जाता है। अन्धों एवं क्षय रोगियों के लिए विशेष रूप से उदार नियम बनाये गये हैं। योजना के प्रशासन के लिए अधिकारी नियुक्त किये गये हैं जो कि नियमानुसार पूरक लाभ के बारे में निर्णय करते हैं तथा उनके निर्णय से असन्तुष्ट होने की दशा में अपील किये जाने की व्यवस्था है। शारीरिक रूप से सक्षम व्यक्तियों को पूरक लाभ रोजगार विनिमय दफ्तरों (Employment Exchanges) के माध्यम से मिलता है और यह आवश्यक होता है कि वे इन दफ्तरों में अपना रजिस्ट्रेशन करायें।

(ड) युद्ध पेन्शन
(War Pensions)

युद्ध काल में अथवा उसके बाद सैनिकों के घायल हो जाने पर उन्हें पेन्शन दिये जाने की व्यवस्था है। पूर्ण अयोग्यता की दशा में ऐसे व्यक्ति को राजकीय कोष से ७ पौ० १२ शि० प्रति सप्ताह पेन्शन दी जाती है किन्तु पदवी (Rank) के अनुसार यह राशि इससे अधिक हो सकती है। इसके साथ ही पत्नी एवं बच्चों के लिए भी पर्याप्त भत्ते दिये जाते हैं। ऐसी दशाओं में प्राय व्यक्ति को अन्य कई प्रकार के अतिरिक्त भत्ते भी दिये जाते हैं जैसे बेकारिता भत्ता (Unemployability Allowance), परिचारक भत्ता (Attendance Allowance) आदि। युद्धग्रस्त विधवाओं को ५ पौ० १७ शि० प्रति सप्ताह प्राप्त होता है। ऐसी विधवाओं की आश्रित बच्चों के लिए अतिरिक्त भत्ते (पारिवारिक भत्तों के अलावा) भी प्राप्त होते हैं। युद्ध पीड़ित सैनिक परिवारों को दी जाने वाली सहायता मानवीय दृष्टि से तो उचित है ही साथ ही सैनिक सेवाओं में संलग्न व्यक्तियों के हौसले को भी यह बढ़ाती है। आर्थिक सहायता के अतिरिक्त ऐसे परिवारों की हर प्रकार की अन्य मदद एवं परामर्श देने के लिए भी उचित व्यवस्था की गयी है।

(च) सामाजिक कल्याण
(Social Welfare)

सामाजिक कल्याण एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जिसमें सामाजिक बीमा, सामाजिक सहायता एवं समाज की भलाई के लिए की जाने वाली अन्य समस्त कल्याणकारी सेवाएँ सम्मिलित की जाती हैं। इसमें शिक्षा तथा चिकित्सा सेवाओं

के अतिरिक्त बच्चो, वृद्धो, अपाहिजो, विधवाओं, दरिद्रों एव अन्य प्रकार से पीडित या अयोग्य व्यक्तियो के लिए सचालित विशेष सेवाएँ भी सम्मिलित की जाती हैं। ब्रिटेन अपने सामाजिक कल्याण कार्यक्रमो पर प्रतिवर्ष ७,००० मिलियन पौण्ड व्यय करता है अर्थात प्रति व्यक्ति लगभग १३० पौण्ड वार्षिक। राजकीय व्यवस्थाओं के अतिरिक्त अनेक स्वेच्छिक सस्थाएँ सामाजिक कल्याण के कार्य मे सलग्न हैं जिन्हे सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। पाँच से पन्द्रह वर्ष की आयु तक शिक्षा अनिवार्य है और ६० प्रतिशत बच्चे सहायता प्राप्त सार्वजनिक स्कूलो मे ही शिक्षा प्राप्त करते हैं। ऊँची शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियो की सख्या बहुत अधिक है। इसी प्रकार रोजगार दिलाने मे सहायता करने के लिए भी ब्रिटेन मे अनेक सस्थाएँ कार्यशील हैं। आवास सुविधाओं को प्रदान करने मे भी पिछले दस वर्ष मे बहुत अधिक कार्य किया गया है। लगभग ५० प्रतिशत नये भवन स्थानीय सस्थाओ द्वारा बनाये जाते हैं जिन्हें केन्द्रीय कोष से सहायता मिलती है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के अन्तर्गत ब्रिटेन के प्रत्येक निवासी को नि शुल्क अथवा नाम मात्र के शुल्क पर सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं जिनमे ओषधियो एव अस्पताल तथा विशेषज्ञो की परामर्श की सुविधाएँ भी सम्मिलित हैं। वृद्धो की सेवा के लिए अनेक क्लब (Old Men's Clubs) सगठित किये गये हैं जिनमे वृद्धों के मनोरजन के साधन उपलब्ध होते हैं। ब्रिटेन मे ऐसे वृद्ध व्यक्तियो की सख्या बहुत अधिक है जिन्हे अकेले रहना पडता है क्योंकि उनके सगे-सम्बन्धी व्यस्त जीवन के कारण उनकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते। अत इनकी सेवा सुश्रुषा के लिए अनेक सस्थाएँ कार्य करती हैं जो उन्हे उनके निवास-स्थान पर ही सुविधाएँ प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए, ऐसी सस्थाएँ[1] हैं जो उन्हे Meals on Wheels सेवा के अन्तर्गत उन्हे उनके निवास-स्थान पर ही भोजन नियमित रूप से प्रदान करती हैं।

दो अन्य महत्त्वपूर्ण विवाह सलाहकार ब्यूरो (Marriage Guidance Bureaux) तथा नागरिक सलाहकार ब्यूरो (Citizens Advice Bureaux) हैं। इन्हे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, मनोवैज्ञानिको, डाक्टरो, पादरियो, वकीलो आदि का सहयोग प्राप्त है और ये सस्थाएँ अपने क्षेत्र मे अत्यन्त उपयोगी 'सेवाएँ कर रही हैं। ब्रिटेन मे तलाक का प्रतिशत बढ रहा है किन्तु इन सस्थाओ ने उचित समय पर उपयुक्त सलाह देकर ऐसे मामलो, समझौते का मार्ग अपनाने मे प्रेरणा दी है। लगभग ४० हजार ऐसे मामलो मे प्रतिवर्ष समझौते कराने मे ये सस्थाएँ सफल होती हैं। नेशनल मैरिज गाइडेन्स कौन्सिल की सन् १६३८ मे स्थापना की गयी थी और अब १२० मैरिज गाइडेन्स सस्थाएँ इससे सम्बद्ध है। ये सस्थाएँ विवाह से सम्बद्ध समस्त सामाजिक, आर्थिक एव पारिवारिक पहलुओं पर लोगो को शिक्षित किये जाने

[1] Citizens Advice Bureau

के कार्यक्रम बनाती हैं जिनका प्रचार क्लबो नवयुवको की गोष्ठियो, स्कूल एव कालेजो, विश्वविद्यालयो आदि के तत्वावधान मे किया जाता है और जिनमे पारिवारिक नियोजन पर अधिक जोर दिया जाता है। नागरिक सलाहकार ब्यूरो[1] (CAB) नागरिको को किसी भी प्रकार की समस्या पर उपयुक्त परामश देते है। ऐसी ४३० से अधिक सस्थाएँ ब्रिटेन के शहरो एव कस्बो मे फैली हुई हैं और ये सब नेशनल सिटीजन्स एडवाइस ब्यूरो कौन्सिल से सम्बद्ध हैं। इन सस्थाओ द्वारा इस प्रकार कार्यों का विगत अनुभव का लाभ प्राप्त है जो इनकी सेवाओ को अत्यन्त उपयोगी बना देता है। नागरिक कैसी भी समस्या ले जा सकते है—जैसे मकान मालिक से झगडा मकान की खरीद बच्चो की समस्याएँ पडोसियो के झगडे आदि। ये सस्थाएँ ऐसे मामलो के वैधानिक पहलुओ पर प्रकाश डालती है तथा इनके निराकरण के लिए अन्य उपलब्ध सुविधाओ से व्यक्तियो को अवगत कराती है।

उपर्युक्त सस्थाओ के अतिरिक्त नागरिको मे सद्भावना उत्पन्न करने एव समाज के सास्कृतिक, धार्मिक एव साहित्यिक स्तर की उन्नति करने के उद्देश्य से भी ब्रिटेन मे अनेक प्रकार के सामाजिक सगठन बन गये हैं। आर्थिक विकास एवं उन्नत जीवन-स्तर के कारण ब्रिटेन के सामाजिक जीवन मे उत्पन्न जटिलताओ को कम करने मे इन सामाजिक सस्थाओ का योगदान प्रशसनीय है तथा सामाजिक कल्याण के क्षेत्र म वे सरकार के लिए एक उत्तम माध्यम बन चुकी हैं।

प्रश्न

1. What do you mean by Social Insurance? How has it been provided in England? Do you also find it in India?
   सामाजिक बीमा से आप क्या तात्पर्य समझते हैं? इगलैण्ड मे इसकी व्यवस्था किस प्रकार की गयी है? क्या इस प्रकार की व्यवस्था भारत मे भी है?
   (राजस्थान, १९६१)
2. Give a brief historical account of the development of the social security in Great Britain during the 20th century
   बीसवीं शताब्दी मे ग्रेट ब्रिटेन की सामाजिक सुरक्षा के विकास का सक्षिप्त विवरण दीजिए।
   (बिहार, १९६१)
3. What steps have been taken by British Government for the relief of the poor in the present century
   वर्तमान शताब्दी मे गरीब लोगो को राहत या सहायता देने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा क्या कदम उठाये गये हैं?
   (पजाब, १९५६)
4. Review the development of social security legislation in Great Britain up to the twenties of the present century

[1] Citiezen's Advisory Bureau

वर्तमान शताब्दी में सन् १९३० तक ग्रेट ब्रिटेन में पास किये गये सामाजिक सुरक्षा अधिनियमों के विकास की समीक्षा कीजिए। (पटना, १९६१)

5 Give a birds eye view of social welfare in Great Britain Is there any difference in fundamentals between British and Russian system of Social Insurance ?
ग्रेट ब्रिटेन में सामाजिक कल्याण के विषय में संक्षिप्त विवरण दीजिए। ब्रिटिश एवं रूस की सामाजिक बीमा प्रणालियों में क्या मूलभूत अन्तर है ? समझाइए।
(इलाहाबाद, १९६१, कलकत्ता, १९६२)

6 What do you understand by Social Insurance ? What is its necessity and how has it been provided in England ?
सामाजिक बीमा से आप क्या तात्पर्य समझते हैं ? इसकी क्या आवश्यकता है तथा इंगलैण्ड में इसकी व्यवस्था किस प्रकार की गयी है ?
(राजस्थान, १९६३)

7 Examine the broad aspects of the scheme of social security introduced in England under the Beveridge Plan.
बीवरेज योजना के अन्तर्गत इंगलैण्ड में लागू की गयी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए। (इलाहाबाद, १९६४)

8 What is meant by social security ? Describe its growth in Great Britain
सामाजिक सुरक्षा से क्या तात्पर्य है। ग्रेट ब्रिटेन में इसके विकास का वर्णन कीजिए। (जोधपुर, १९६४)

9 Discuss the main features of the present social security system in Great Britain
ग्रेट ब्रिटेन की वर्तमान सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए। (राजस्थान, १९६६)

१९
परिवहन मे क्रान्ति
(Revolution in Transport)

परिवहन का विकास भी औद्योगिक क्रान्ति के साथ साथ इगलैण्ड मे ही हुआ। किसी भी प्रकार के तान्त्रिक आविष्कार के लिए तीन महत्वपूर्ण बातो का होना आवश्यक है—प्रथम, पूँजी की उपलब्धि जिससे कि नवीन प्रयोग किये जा सकें। द्वितीय, नवीन वस्तुओ और सेवाओ की उपलब्धि और तृतीय, प्राविधिक योग्यता जो वस्तु के निर्माण के लिए आवश्यक है। तत्कालीन ब्रिटेन मे सौभाग्य से ये तीनो ही उपलब्ध थीं जिनके सयोग से जो भी वैज्ञानिक आविष्कार किये गये उनका उपयोग उद्योग एव परिवहन दोनो मे किया गया जिनका मूल आधार वाष्प शक्ति थी। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि औद्योगिक क्रान्ति ने परिवहन क्रान्ति को जन्म दिया अथवा परिवहन क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति को ? सच तो यह है कि इन दोनो ने एक दूसरे को जन्म दिया और इस अर्थ मे ये दोनों एक दूसरे की पूरक थी।

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व इगलैण्ड मे परिवहन के उत्तम साधनो का अभाव था। यात्रा करना अत्यन्त सकटपूर्ण था और साधन इतने धीमे थे कि दक्षिणी इगलैण्ड से स्काटलैण्ड तक की यात्रा मे पन्द्रह दिन लग जाते थे। माल लाना और ले जाना और भी सकटपूर्ण था। रोमन लोगो ने सडको की तरफ कुछ ध्यान दिया था किन्तु पाँचवीं शताब्दी मे रोमन आधिपत्य की समाप्ति के बाद सडको की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। सडकों का प्रबन्ध स्थानीय ग्रामपतियो के हाथो मे था जो कि इस ओर पूरी तरह ध्यान नहीं दे सकते थे। इसके अतिरिक्त परिवहन के साधन अत्यन्त खर्चीले थे। एक मन गेहूँ को सौ मील भेजने मे लगभग ३ पौण्ड व्यय हो जाता था जो कि उस समय के मूल्य-स्तर को देखते हुए बहुत अधिक था। अत व्यापार केवल स्थानीय वस्तुओ तक ही सीमित रहता था अथवा जलमार्ग द्वारा होता था। सोलहवीं शताब्दी मे जब इगलैण्ड का विदेशी व्यापार बढने लगा, आन्तरिक परिवहन मार्गों के सुधार की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। सडक विकास के

लिए एक राष्ट्रीय नीति निर्धारित की गयी और सन् १५५५ मे अधिनियम पास करके सडको के विकास का दायित्व ग्रामीण चर्च (Parish) को सौप दिया गया, किन्तु अठारहवी शताब्दी के मध्य तक परिवहन के साधनो का विकास नही हुआ था।

औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही परिवहन साधनो के विकास की आवश्यकता प्रतीत हुई। अत सडकों और नहरो के विकास एव निर्माण पर ध्यान दिया जाने लगा। सडको क विकास के लिए टर्न-पाइक ट्रस्टो (Turn-pike Trusts) का निर्माण किया गया तथा पक्की एव मजबूत सडको के निर्माण के तरीके निकाले गये। **जॉन मेटकाफ** (John Metcalf), **टामस टेलफोर्ड** (Thomas Telford) एव **जॉन मेकएडम** (John McAdam) ने इस दिशा मे प्रशसनीय कार्य किया जिसका वर्णन अगले अध्याय म किया गया है। लगभग इस अवधि मे आन्तरिक जल परिवहन के लिए नहरो के निर्माण मे प्रगति की गयी। सर्वप्रथम लकाशायर से मैनचेस्टर तक ब्रिजवाटर नहर (Bridgwater Canal) का निर्माण किया गया। इसके द्वारा लकाशायर की खानो का कोयला मैनचेस्टर के कारखानो तक सरलता से पहुँचने लगा और इससे परिवहन व्यय मे भी कमी हो गयी। इसके बाद आन्तरिक नहरो के निर्माण मे बहुत अधिक प्रगति की गयी और उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक इगलैण्ड मे ऐसी नहरो का जाल-सा बिछ गया। भारी सामान जैसे कोयला, लोहा, चूना आदि की ढुलायी के लिए नहर परिवहन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ, क्योकि सन् १८३० तक वहाँ रेल परिवहन का अधिक विकास नही था।

'स्टीमशिप' के आविष्कार ने और सन् १८२५ मे जार्ज स्टीफेन्सन द्वारा 'राकेट' (Rocket) रेलवे इजन के निर्माण ने जल परिवहन एव रेल परिवहन मे क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इससे पूर्व जहाज पतवार एव पाल की सहायता से चलते थे और रेल के कोयला ढोने के डिब्बे घोडो द्वारा खीचे जाते थे। अब जहाज स्टील के बनने लगे और स्टीम पावर के शक्तिशाली इजनो द्वारा चलने लगे तथा रेलो के लिए भी वाष्पचालित इजन प्रयोग मे लाये जाने लगे। विश्व मे परिवहन के इतिहास मे यह एक महान परिवर्तन था जिसने परिवहन की प्रकृति एव उपयोगिता का बिलकुल बदल दिया और परिवहन और व्यापार की विचारधाराओ को नवीन मूल्य प्रदान किये। उन्नीसवी शताब्दी मे इगलैण्ड की समृद्धि एव प्रगति मे परिवहन के इन दो नवीन साधनो ने बहुमूल्य योग दिया। कदाचित इसी से प्रेरित होकर श्रीमती नोल्स ने व्यक्त किया कि "उन्नीसवी शताब्दी का नया ब्रिटिश साम्राज्य सयुक्त एव समान रूप से रेल और स्टीमर का सृजन था।"[1] रेल विकास ने ब्रिटेन के भीतरी क्षेत्रो को अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के लिए खोल दिया तथा 'स्टीमर' ने

---

1 "The new British Empire of the nineteenth century was equally a product of railway and steamer combined" —*L C A. Knowles*

ब्रिटेन के विशाल औद्योगिक उत्पादन को विश्व के विभिन्न भागों तक पहुँचाने में सहयोग दिया।

परिवहन क्रान्ति की विशेषताएँ

क्रान्ति के पश्चात् परिवहन के जिन नवीन साधनों का विकास हुआ वे परम्परागत साधनों से सर्वथा भिन्न थे। इनकी कुछ विशेषताएँ थीं जो इस प्रकार हैं

(१) गति नियन्त्रण (Speed Control)—परम्परागत साधनों में यान्त्रिक शक्ति का उपयोग नहीं होता था, अत वे धीमे थे। स्टीम इंजिन के चलन ने रेलों एवं जहाजों की स्पीड को बढ़ा दिया जिससे समय एवं व्यय दोनों की बचत होने लगी। सन् १८५० तक ब्रिटिश रेलें २०-३० मील प्रति घण्टा तक चलने लगी थीं। परम्परागत व्यापारिक जहाजों की गति वायु के वेग एवं दिशा पर निर्भर रहा करती थी। वाष्पचालित स्टीम के जगी जहाजों में यह कठिनाई दूर हो गयी। अब जहाज की गति एवं दिशा पर स्टील इंजिन की सहायता से नियन्त्रण रखना सम्भव हो गया। जहाजों की स्पीड भी पहले की अपेक्षा बहुत अधिक हो गयी।

(२) सुरक्षा (Safety)—क्रान्ति से पूर्व यात्रा करना अथवा माल भेजना खतरे से पूर्ण होता था। जहाज परिवहन में समुद्री डाकुओं (Pirates) का भय तो बना ही रहता था साथ ही उस समय के जहाज समुद्री सकटों एवं तूफानों का सामना भी नहीं कर सकते थे। स्टील के जहाज आकार में बहुत बड़े होते थे तथा उनसे सुरक्षा के लिए समुचित प्रबन्ध होता था ताकि आवश्यकता होने पर वे मानवीय अथवा प्राकृतिक सकटों का सामना कर सकें। सुरक्षा ने माल भेजने के जोखिम को कम कर दिया और इसके कारण समुद्री बीमा की दरों में भी कमी हुई। इसी प्रकार रेल परिवहन भी सड़क परिवहन की अपेक्षा अधिक सुरक्षित माना जाने लगा।

(३) मितव्ययता (Economy)—यह पहले ही कहा जा चुका है कि इंगलैण्ड में माल परिवहन का व्यय क्रान्ति से पूर्व बहुत अधिक था। लन्दन से एडिनबर्ग तक एक मन गेहूँ भेजने में तीन पौण्ड खर्च होते थे। नये साधनों ने परिवहन के व्यय में बहुत अधिक कमी कर दी क्योंकि स्पीड अधिक होने के कारण समय कम लगता था तथा सुरक्षा के कारण हानि की सम्भावनाएँ कम हो गयी। कोयला, खनिज एवं इसी प्रकार का भारी सामान अब कम व्यय से ऐसे नगरों में भी पहुँचने लगा जो समुद्र के किनारे अथवा नहरों से जुड़े हुए नहीं थे।

(४) नियमित सेवा (Regular Service)—गति नियन्त्रण एवं सुरक्षा के तत्त्वों ने परिवहन सेवाओं को नियमित रूप देने में सहयोग किया। चूँकि मार्ग के व्यवधान एवं सकट अब न्यूनतम हो गये, परिवहन सेवाओं की निरन्तरता एवं नियमितता स्थापित की जा सकती थी। भारी पूँजीगत एवं चालू व्यय भी सेवाओं की नियमितता को आवश्यक बना देने में सहायक हुए क्योंकि विनियोजित पूँजी पर उचित लाभ प्राप्त करने के लिए सेवाओं को नियमित रूप से सचालित करना अत्यन्त आवश्यक था। इन तत्त्वों ने एक स्थान से दूसरे स्थान को नियमित रूप से आवश्यक

पदार्थों को भेजना सम्भव बना दिया और इस प्रकार औद्योगिक विकास एव अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन मिला।

(५) क्षमता (Capacity)—रेलों के विकास ने स्थल परिवहन की क्षमता मे वृद्धि की क्योंकि शक्तिचालित इंजिन रेल पथ पर अनेक डिब्बो को सरलता से खींच सकता था। इसी प्रकार जहाजो की टन-क्षमता मे वृद्धि हो गयी। क्योंकि स्टील के जहाज परम्परागत जहाजो से बहुत अधिक विशाल होते थे। गत शताब्दी के अन्त तक ब्रिटेन मे पच्चीस-तीस हजार टन क्षमता वाले जहाज बनने लगे थे तथा कुछ जहाजों की क्षमता इससे भी अधिक थी। बढ़ी हुई क्षमता ने भारी एव सस्ते मूल्य के पदार्थों के परिवहन को भी सम्भव बना दिया। माल ढोने की क्षमता के साथ-साथ *यात्रियो को लाने-ले-जाने की क्षमता मे भी वृद्धि हुई।*

(६) सुविधा (Comfort or Ease)—जहाँ तक यात्रियो का प्रश्न है उनके लिए यात्रा अत्यन्त सुखपूर्ण एव आरामदेह हो गयी। कालान्तर मे सभी आवश्यक सुख-सुविधाएँ रेल परिवहन एवं जहाज *यात्राओ मे प्रदान की जाने लगी। अब* व्यक्ति एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक बिना किसी कठिनाई अथवा असुविधा के यात्रा करने लगे।

परिवहन मे यह क्रान्ति रेलो और जहाजो तक ही सीमित नही रही बल्कि पिछली शताब्दी के अन्त तक पेट्रोल शक्तिचालित इंजिनो ने सडको पर मोटर परिवहन आरम्भ करके सडक परिवहन मे क्रान्ति ला दी। बिजली के आविष्कार ने *विद्युतचालित रेलो को प्रारम्भ किया तथा बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे वायुयान* के आविष्कार ने परिवहन क्रान्ति को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। आकाश मार्ग से यात्रा करने मे अनेक लाभ अनुभव किये जाने लगे। सडक एव वायु परिवहन मे हुए इन परिवर्तनो ने इन दोनों को अधिक लोकप्रिय बना दिया है। ब्रिटेन से यह क्रान्ति अन्य देशो की ओर उन्मुख हुई। ब्रिटेन अब भी अपनी परिवहन व्यवस्था म नित्य नये प्रयोग कर रहा है। लन्दन के आसपास के क्षेत्रो म परिवहन की बढती हुई माँग ने उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया है। लन्दन से यार्कशायर डोवर, एव दक्षिणी वेल्स तक मोटर वे (motor ways) बनाये गये हैं। मोटरवे एक ऐसा सडक माग है जो कुछ सीमित प्रकार के वाहनो के लिए सुरक्षित होते हैं। आने और जाने के लिए दो पृथक मार्ग होते हैं तथा रास्ते मे किसी प्रकार की बाधाएँ नही होतीं जिससे तेज स्पीड से मोटरें इन पथो पर दौड सकती हैं। इसी प्रकार लन्दन के चारो ओर ६ दिशाओ मे ८८ मील लम्बी अन्डरग्राउन्ड रेलवे (Underground Railway) बनी हुई है। यह विश्व की सबसे बडी अन्डर ग्राउन्ड रेलवे प्रणाली है। हाल मे लन्दन से वालथम्स्टो (Walthamstow) तक दस मील लम्बी एक और अन्डरग्राउन्ड रेलवे बनायी गयी है जिस पर ५६ मिलियन पौण्ड व्यय हुआ है। इसमे सतह से ६६ फीट की नीचाई मे बारह बारह फीट चौडी दो सुरगें हैं तथा गाडियाँ

प्रति दो मिनट के अन्दर में भरती है। इस प्रकार प्रत्येक दिशा में ४४,००० यात्री प्रति घण्टे इस मार्ग से यात्रा कर सकते हैं।

परिवहन में क्रान्ति के प्रभाव
(Impact of Revolution in Transport)

ब्रिटेन का कोई भी स्थान समुद्र से ७५ मील से अधिक दूर नहीं है, अतः इसकी औद्योगिक उन्नति में परिवहन के साधनों का प्रमुख योग रहा है। यह द्वीप यूरोप के उत्तर-पश्चिम एवं अटलान्टिक महासागर के उत्तर-पूर्व में स्थित है जहाँ से चारों ओर प्रसिद्ध जलमार्ग जाते हैं। ब्रिटेन में छोटे-बड़े ३०० बन्दरगाह हैं जिनमें से दस बहुत बड़े हैं और ये सब रेल तथा सड़क मार्गों के भीतरी क्षेत्रों से जुड़े हुए हैं। अतः इस देश की परिवहन व्यवस्था पर इसकी भौगोलिक स्थिति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है तथा इसकी परिवहन व्यवस्था ने इसकी आर्थिक प्रगति को प्रभावित किया है। परिवहन क्रान्ति ने ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था को निम्न प्रकार से प्रभावित किया

(१) नवीन नगरों का विकास—क्रान्ति से पूर्व केवल वे नगर ही उन्नति कर सकते थे जो जलमार्गों से मिले हुए थे। क्रान्ति के बाद सड़क एवं रेल परिवहन का विकास हो जाने से ऐसे स्थानों का विकास होने लगा जो अब तक परिवहन के साधनों से वंचित थे। शेफील्ड, मैनचेस्टर, लीड्सयार्क, नोटिंघम, बर्मिंघम आदि शहरों का विकास सड़क एवं रेलवे परिवहन के विकास के बाद अधिक हुआ।

(२) व्यापक बाजार क्षेत्र—क्रान्ति के बाद बाजार की स्थानीय प्रकृति समाप्त हो गयी। सड़क, नहर एवं रेल परिवहन के विकास ने इसे राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया एवं समुद्री परिवहन में क्रान्ति के बाद तथा वायु परिवहन की उन्नति के बाद इसका स्वरूप अन्तरराष्ट्रीय हो गया। इसने इंगलैण्ड के विदेशी व्यापार में आश्चर्यजनक वृद्धि की। व्यापारिक दृष्टि से ब्रिटेन विश्व का सबसे बड़ा राष्ट्र बन गया। इसके आयात एवं निर्यात दोनों ही बहुत अधिक बढ़े और इसके कारण ब्रिटेन की समृद्धि में वृद्धि हुई। ब्रिटेन अनेक नयी वस्तुओं का आयात करने लगा जिनमें एसे खाद्य पदार्थ भी सम्मिलित थे जो सुदूर देशों से मँगाये जाते थे।

(३) औद्योगिक विकास—परिवहन क्रान्ति ने सबसे अधिक प्रोत्साहन औद्योगिक विकास को दिया। इसने उद्योगों के लिए पर्याप्त मात्रा में निरन्तर माल की पूर्ति को सम्भव बना दिया। साथ ही उद्योगों द्वारा उत्पादित माल को उपभोक्ताओं तक शीघ्रता एवं मितव्ययतापूर्वक ले जाने की समस्या को भी इसने हल कर दिया। यह पहले ही कहा जा चुका है कि औद्योगिक क्रान्ति ने परिवहन क्रान्ति को जन्म दिया तथा परिवहन क्रान्ति ने औद्योगिक विकास को आगे बढ़ाया। रेल परिवहन के विकास ने इंगलैण्ड के भारी उद्योगों के परिवहन की समस्या का निराकरण कर दिया जिनके लिए भारी मात्रा में कोयला, खनिज पदार्थों एवं अन्य

वस्तुओ को ढोने की आवश्यकता थी । धातु उद्योग, मशीन निर्माण, इंजीनियरिंग उद्योग आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण है ।

(४) **श्रम की गतिशीलता**—सस्ते, शीघ्र एव निरन्तर उपलब्ध परिवहन के साधनो के विकास के कारण व्यक्तियो की गतिशीलता मे बहुत अधिक वृद्धि हुई। अब व्यक्ति एक ही स्थान पर स्थिर न रहकर इधर-उधर यात्राएँ करने लगे और इस प्रकार जीविकोपार्जन के लिए वे नये स्थानो पर आकर बसने लगे। इसका इगलैण्ड के सामाजिक वातावरण पर गहरा प्रभाव पडा। इगलैण्ड की जनसख्या ग्रामीण से शहरी हो गयी और शहरो मे काम करने के लिए आसपास के सुदूर क्षेत्रो से श्रमिक आने लगे क्योकि उन्हे शीघ्र परिवहन के साधन उपलब्ध थे। यही नही समुद्री परिवहन ने लोगो को अन्य देशो मे प्रवास की प्रेरणा दी, जिससे एक बडी सख्या मे ब्रिटिश नागरिक कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अमरीका तथा दक्षिणी अफ्रीका मे जाकर बस गये।

(५) **प्रतियोगिता मे वृद्धि**—परिवहन के साधनो मे क्रान्ति ने उत्पादन के विभिन्न साधनो की गतिशीलता मे वृद्धि करके प्रतियोगिता मे भी वृद्धि कर दी जिसके कारण व्यावसायिक एव औद्योगिक इकाइयो का आकार उत्तरोत्तर बडा होता गया। यह प्रतियोगिता आरम्भ मे राष्ट्रीय स्तर पर और फिर उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर होने लगी। अत यह कहा जा सकता है कि व्यावसायिक एव औद्योगिक इकाइयो के आकार मे वृद्धि के लिए अप्रत्यक्षतः परिवहन क्रान्ति उत्तरदायी थी।

(६) **जहाजरानी का विकास**—ब्रिटेन नौ-वहन की दृष्टि से क्रान्ति से पूर्व ही एक शक्तिशाली राष्ट्र बन चुका था किन्तु परिवहन क्रान्ति के बाद तेज गति से चलने वाले इस्पात के बडे जहाजो ने इसकी नौ-वहन शक्ति को और बढा दिया। यह विश्व का सबसे बडा जहाज निर्माता एव माल वाहक बन गया। प्रथम विश्व युद्ध के पहले तक विश्व के तीन-चौथाई जहाजो का निर्माण ब्रिटेन के जहाज निर्माण उद्योग द्वारा किया जाता था तथा विश्व की दो-तिहाई जहाजी क्षमता ब्रिटेन के पास थी। विश्व के आयात-निर्यात का दो-तिहाई भाग ब्रिटेन के जहाजो द्वारा लाया ले जाया जाता था। इससे ब्रिटेन को विदेशी मुद्रा के रूप मे पर्याप्त आय प्राप्त होने लगी।

(७) **साम्राज्य विस्तार**—राजनीतिक दृष्टि से परिवहन क्रान्ति ब्रिटेन के लिए वरदान सिद्ध हुई क्योकि इससे उसे व्यापार के विस्तार मे तो सहायता मिली ही, साम्राज्य के विस्तार मे भी इसने बहुत अधिक सहायता की। वस्तुत. साम्राज्य का विस्तार व्यापार के माध्यम से तथा व्यापार का विस्तार परिवहन के माध्यम से किया गया। जहाजी शक्ति एव रेलवे परिवहन मे प्राप्त दक्षता ने उपनिवेशो मे ब्रिटेन के साम्राज्य की जडे मजबूत कर दी। आवश्यकता पडने पर जहाजो एव रेलो के द्वारा सैनिको एव माल को शीघ्रता से साम्राज्य के किसी भी स्थान तक भेजा

जा सकता था और विरोध, राजनीतिक विरोध अथवा विप्लव को दबाया जा सकता था।

(८) अन्तरराष्ट्रीयता—परिवहन की सुसगठित व्यवस्था ने ब्रिटेन की सस्कृति एव सभ्यता को विश्व के हर कोने मे फैलने का अवसर दिया। केवल उपनिवेशो से ही नही अन्य स्वतन्त्र देशो से भी ब्रिटेन के सम्बन्धो मे सुधार हुआ क्योकि ब्रिटिश पूँजी एव तकनीकी ज्ञान ने वहाँ औद्योगिक विकास मे सहयोग दिया। सन् १८०० मे स्वेज नहर (Suez Canal) के निर्माण के बाद ब्रिटन मध्य-पूर्व, भारत और सुदूर-पूर्व के देशो के और निकट आ गया जिससे यात्रा व्यय एव समय मे बचत होने लगी।

उपर्युक्त प्रभावो के अध्ययन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि परिवहन क्रान्ति ने ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था तथा सस्कृति के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया। परिवहन मे क्रान्ति के बिना औद्योगिक क्रान्ति अपने उद्देश्य मे सफल नही हो सकती थी। यह क्रान्ति यद्यपि अठारहवी शताब्दी के मध्य से उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक हुई, किन्तु उसके बाद भी परिवहन के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन होते रहे। परिवहन मे खनिज तेल एव विद्युत शक्ति का प्रयोग इस काल के बाद ही किये गये और वायु परिवहन का विकास बीसवी शताब्दी मे हुआ। परिवहन के क्षेत्र मे क्रान्ति का यह प्रयास आज भी जारी है और जेट एव राकेट विमानो के इस युग मे यह कहना कठिन है कि भविष्य मे इस दिशा मे किस सीमा तक परिवर्तन होगे।

प्रश्न

1. Discuss the role of transport in the economic development of the U K.

   ब्रिटेन के आर्थिक विकास मे परिवहन के महत्त्व एव योगदान की विवेचना कीजिए। (पटना, १९६०)

2. "Rapid transport development by land and sea backed by coal resources and a free trade policy made England the workshop of the world in the third quarter of the 19th century" Discuss

   "उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे स्थल और जल परिवहन तथा कोयला उद्योग म हुए त्वरित विकास ने तथा स्वतन्त्र व्यापार नीति ने इगलैंड को विश्व का वर्कशाप बना दिया।" समझाइए। (इलाहाबाद, १९६४)

२०
सड़क और नहर परिवहन
(Road and Canal Transport)

सडक परिवहन
(Road Transport)

सडक परिवहन का अत्यन्त पुराना साधन रही है। रोमन काल की सडकें दीर्घकाल तक देश की आवश्यकता पूर्ति करती रही। मध्यकाल मे तो ये ठीक-ठीक दशा मे थी किन्तु समय निकलने से उसकी दशा धीरे-धीरे खराब होती गयी, क्योंकि ये कभी सुधारी नही गयी।

१८वी शताब्दी से पूर्व इगलैंड मे राष्ट्रीय मार्ग साधारण कच्चे रास्ते थे जिन पर पशुओं द्वारा माल ढोया जाता था। ये कच्चे मार्ग सन् १५५५ के अधिनियम के अन्तर्गत शासित थे जिनके अनुसार सडको की देखभाल का कार्य गाँवो (Parish—वहाँ के स्थानीय शासन क्षेत्र का नाम) के अधिकारियो द्वारा किया जाता था। इन क्षेत्रो मे रहने वाले व्यक्तियो को वर्ष भर मे ६ दिन सडक बनाने और सुधारने के लिए अनिवार्य श्रम करना पडता था। इस क्षेत्र मे रहने वाले जिन व्यक्तियो की आमदनी ५० पौण्ड प्रतिवर्ष से अधिक होती उन्हे वर्ष मे ६ दिन घोडा-गाडी या अन्य व्यक्ति की सेवाएँ सडको के लिए देनी होती थी। गाडियो का चलन सत्रहवी शताब्दी तक बहुत कम था किन्तु व्यापार की आवश्यकताओ के कारण अब यह बढ रहा था। किन्तु सडकें सन्तोषजनक नही थी अत यदि इनकी दशा में सुधार नही किया जाता तो औद्योगिक क्रान्ति का चक्र अवरुद्ध हो जाता। इगलैंड की सरकार की प्रवृत्ति अधिकाधिक कार्य व्यक्तियो पर छोडने की थी। १८वी शताब्दी मे कुछ प्रभावशाली जमीदारो ने 'व्यक्तिगत-अधिनियम' स्वीकृत कराकर सडको के बनाने का कार्य अपने हाथो में लिया जिसके परिणामस्वरूप गाडियो के लिए जहाँ-तहाँ सडको का निर्माण और सुधार किया गया। इन्ही व्यक्तियो के समूह को 'टर्न-पाइक ट्रस्ट' नाम से पुकारा गया, इन्हे न केवल सडको के निर्माण का अधिकार था वरन् इन्हें सडक पर चलने वाले या माल ढोने वाले व्यक्तियो से कर वसूल करने का अधिकार भी प्राप्त

था। उस समय का जो विवरण हमे मिलता है उससे ज्ञात होता है कि देश मे ११,००० 'टर्न-पाइक ट्रस्ट' विद्यमान थे जो विभिन्न प्रकार की श्रेणियो और उत्तम सडको का निर्माण कर रहे थे। इसके अतिरिक्त सडकें गाँवो के अधीन थी। १८वीं शताब्दी मे इन ट्रस्टो को सडक बनाने के सामान की कमी थी। सडकें बनने के बाद एक महीने से अधिक नही टिक पाती थी। गाँवो के अधीन सडको मे ६ दिन के अनिवार्य श्रम को हटाकर कर लगाने और अनाथ, दरिद्र व्यक्तियो को सडको पर लगाने का नियम बनाया गया। सन् १८३२ मे ५२,८०० व्यक्ति २,६४,००० पौण्ड के व्यय पर सडको पर काम करने के लिए लगाये गये। कुल १,२५,००० मील की सडको मे २०,८७५ मील सडकें टर्न-पाइक ट्रस्टो के अधीन थी।

इस प्रकार की परिस्थिति मे घोडे की पीठ पर ही यात्रा करना सम्भव था। श्री आर्थर यंग ने अपने दक्षिण यात्रा ग्रन्थ मे सडको की दुर्दशा का बडा आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है, "सामान भी पशुओ की पीठ पर लादकर ले जाया जाता था। इस प्रकार का परिवहन महँगा पडता था। उदाहरण के लिए, १४ सेर गेहूँ को १०० मील भेजने के लिए २० शिलिंग व्यय हो जाते थे। इस प्रकार सडक परिवहन खर्चीला, धीमा और असुविधाजनक था।" सडक परिवहन के विकास की आवश्यकता निम्न कारणो से अनुभव की गयी

(१) **राजनीतिक** आवश्यकता— देश मे उस समय डाक सेवाओ की वृद्धि हो रही थी अत देश मे सडको के विकास की आवश्यकता थी।

(२) जो उद्योग देश मे विकसित हो रहे थे उनके लिए परिवहन के उन्नत **साधनो का विकास आवश्यक था।**

(३) किसानो को भी उत्तम सडक परिवहन की आवश्यकता थी क्योंकि **उनके खेतों का विकास उत्तम सडको पर ही निर्भर था।**

सडक सुधारक

ऐसे समय टर्न-पाइक ट्रस्टो द्वारा सडक बनाने का कार्य अपने हाथ मे लिया गया। टर्न-पाइक ट्रस्टो द्वारा सडको के निर्माण की विभिन्नता ने सडक परिवहन के क्षेत्र मे सुधार की आवश्यकता अनुभव की। सडक सुधारको मे मुख्य ये थे

(१) श्री जॉन लण्डन मैकेडम,
(२) श्री थोमस टेलफोर्ड,
(३) श्री जॉन मेटकाफ।

इन व्यक्तियो द्वारा सडक परिवहन के निर्माण मे जो सुधार किये गये वह इस प्रकार हैं

(१) **श्री जॉन लण्डन मैकेडम** एक स्काटलैंडवासी भद्र पुरुष थे जिन्हे सन् १८०० के आसपास सडक निर्माण मे रुचि उत्पन्न हुई। उन्होने सम्पूर्ण इंगलैंड और स्काटलैण्ड का भ्रमण किया और यह सीखने का प्रयत्न किया कि सडकें कैसे बनायी

जाती हैं ? उन्होने यह निष्कर्ष निकाला कि बडा धरातल जिसमे पत्थर के टुकडे दबा दिये जायें उत्तम प्रकार की सडक हो सकती है। सन् १८१६ मे बिस्ट्रोल के टर्न-पाइक ट्रस्टियो ने उसे अपना सर्वेयर नियुक्त किया। जो सडकें श्री मैकेडम ने बनायी वे इतनी प्रसिद्ध हुईं कि दूसरे टर्न पाइक ट्रस्टो ने भी उसे अपना सर्वेयर नियुक्त किया और उसकी देखभाल मे सडको का काम चालू किया। उसके सडक बनाने का ढग इतना स्थायी और प्रसिद्ध हुआ कि सडको के नाम मैकेडम मार्ग (Macadamised Roads) रखे गये।

(२) **श्री थॉमस टेलफोर्ड का नाम** सडक-निर्माण कार्य मे स्मरणीय रहेगा। वह एक गडरिये का लडका था जिसका जन्म १७५७ मे उमफ्रीशायर मे हुआ। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् वह पत्थर के कारीगर के यहाँ प्रशिक्षार्थी बना और जब वह २५ वर्ष का हुआ तो पत्थर का कारीगर बनकर लन्दन गया। वह १७८७ से पब्लिक सर्वेयर नियुक्त किया गया। वह पुलें, नहरें और सडकें बनाने मे निपुण था। वह श्रोपशायर मे इतना प्रसिद्ध हुआ कि सन १८०२ मे पार्लियामेण्ट ने उसे स्काटलैण्ड मे सडकें बनाने के लिए नियुक्त किया। सन् १८०२ से १८२३ के काल मे उसने योजनाबद्ध ढग से लगभग १०० मील लम्बी सडकें स्काटलैंड मे बनायी। सन् १८१० मे टेलफोर्ड से लन्दन हौलीहेड सडक के प्रतिवेदन के लिए कहा गया। उस समय वहाँ ७ टर्न पाइक-ट्रस्ट कार्यशील थे तथा श्रूसबरी से लन्दन तक १७ विभिन्न ट्रस्ट कार्य कर रहे थे। उसने इन ट्रस्टो का एकीकरण किया और १८२६ तक लन्दन-हौलीहेड सडक पूर्ण हो गयी।

(३) **श्री जॉन मेटकाफ**—ये जन्मान्ध थे परन्तु वह बनेअर्मबर्ग और यॉर्क के बीच गाडी चलाया करते थे। जब सन १७६५ मे हेरोगेट से बोरोब्रिज तक टर्न पाइक बनने का प्रस्ताव हुआ तो मेटकाफ की सहायता माँगी गयी। इनका कार्य इतना अच्छा था कि अन्य ट्रस्टो ने भी इनकी सेवाओ का उपयोग किया। इस प्रकार सन् १७६५ से १७९२ की अवधि मे उन्होने १८० मील लम्बी सडकें यार्कशायर, लकाशायर, चेशायर और डरबी क्षेत्रो मे बनायी।

टर्न-पाइक ट्रस्टो की व्यवस्था धीरे-धीरे समाप्त सी हो रही थी। वे सडको का निर्माण एक ढग से नही कर पा रहे थे। उनमे एकीकरण की प्रवृत्ति जोर पकडने लगी। उपर्युक्त सुधारको द्वारा निर्मित सडको ने नये युग का श्रीगणेश किया जिसे **स्टेज कोच युग** (Stage Coach Age) कहा जा सकता है। श्री टेलफोर्ड और मैकेडम ने सख्त धरातल की पद्धति का विकास किया और श्री मेटकाफ से सुदृढ आधार पर सडक-निर्माण कार्य (जिसमे नालियो की व्यवस्था हो), को प्रोत्साहन दिया। इन व्यक्तियो के कार्यों ने सडक परिवहन मे वास्तविक क्रान्ति का श्रीगणेश किया। सन् १८३० तक लगभग २२,००० मील सडकें उत्तम ढग की बन चुकी थी। ट्रस्टो के एकीकरण की प्रवृत्ति तो सन १८१५ मे ही प्रारम्भ हो गयी। इसका परिणाम

यह हुआ कि बड़े बड़े ट्रस्ट बनाये गये जो अधिक साधनो और उत्तम रोड इंजीनियरो की नियुक्ति कर सकते थे।

सन् १८३५ के राष्ट्रीय मार्ग अधिनियम ने सन् १५५५ के पिछले अधिनियम को समाप्त कर दिया। गाँवो को यह अधिकार मिला कि वे पूरे समय के अधिकारी नियुक्त कर सडको के काम को अधिक गतिशील बना सकें। इस प्रकार जब काम सुधरने लगा और ट्रस्टो का काम सुधार रूप से चल रहा था तो रेलो के रूप मे नयी कठिनाई खडी हुई। सन् १८५० तक ट्रस्टो का काम ठीक चला परन्तु उसके बाद इनका पतन आरम्भ हो गया। सन् १८७५ तक आते-आते तो ट्रस्ट बिलकुल ही समाप्त हो गये। सडक परिवहन के विकास कार्य को सरकार को अपने हाथ मे लेना पडा। सन् १८८८ मे मुख्य सडको का काम काउन्टी-कौंसिलो को और सडको का कार्य ग्रामीण और शहरी जिला-परिषदो को सौंप दिया गया।

सन् १८६१ मे अमरीका से इगलैण्ड मे ट्रामे मँगाई गयी अत कुछ दिनो तक इसके विकास की गति धीमी पड गयी परन्तु सन् १९११ तक २,५३० मील लम्बी ट्राम लाइन बिछा दी गयी। इस शताब्दी के प्रारम्भ मे ही बसो का चलना भी आरम्भ हो गया था। सन् १८६५ मे लोकोमोटिव अधिनियम स्वीकृत किया गया और १९०३ मे इसमे सशोधन किया गया। इसके फलस्वरूप वाष्पचालित गाडियो की चाल प्रति घण्टा २० मील कर दी गयी।

प्रथम महायुद्ध और सडक परिवहन

प्रथम महायुद्ध के समय सडक परिवहन के विकास का कार्य रोक दिया गया या कम कर दिया गया। सन् १९१९ मे परिवहन-मन्त्रिमण्डल का निर्माण हुआ और नवीन योजना के अनुसार सडको को पाँच श्रेणियो मे विभाजित किया गया—(१) ट्रक रोड, (२) वर्ग अ, (३) वर्ग ब, (४) वर्ग स, और (५) अवर्गित सडकें। ट्रक रोड की मरम्मत का पूरा व्यय सरकार द्वारा निर्मित सडक-कोष द्वारा पूरा किया जाता है। इसके अतिरिक्त वर्ग 'अ' 'ब' 'स' की मरम्मत मे कुल व्यय का क्रमश ५०, ६० और ५० प्रतिशत सडक कोष से ही दिया जाता था। शेष व्यय स्थानीय सरकार करती थी।

इन्ही वर्षो मे सडक-प्रबन्ध सस्थाओ को सरकार द्वारा ८४ लाख पौण्ड की आर्थिक सहायता दी गयी। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सडक उन्नति बोर्ड को भी २५ लाख पौण्ड की आर्थिक सहायता दी गयी।

प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त होने पर केन्द्रीय सडक उन्नति के बोर्ड के स्थान पर परिवहन मन्त्रिमण्डल की स्थापना की गयी। सन् १९२० मे सडको की उन्नति के लिए (क) विशेष कोष की स्थापना की गयी। इस कोष मे दो प्रकार की आमदनी जमा होती थी—अनुमति-कर और चुगी-कर। परिवहन मन्त्रिमण्डल की स्थापना से सडको की दशा मे महान परिवर्तन हुए। परिवहन मन्त्रिमण्डल के अधीन निम्नलिखित प्रकार के कार्यो को किया गया।

(१) सड़कों के प्रबन्ध का केन्द्रीकरण,
(२) अल्पव्यय के लिए प्रयत्न करना,
(३) सड़क निर्माण-कला की उन्नति करना,
(४) नवीन पुलों का निर्माण करना,
(५) सड़कों की मरम्मत करना,
(६) सड़कों के सम्बन्ध में अनुसन्धान करना और
(७) नवीन सड़कों का निर्माण।

परिवहन मन्त्रिमण्डल के प्रयत्न से सड़क परिवहन में पर्याप्त प्रगति हुई।

सन् १९३० तक मोटरों और रेलों के बीच प्रतियोगिता आरम्भ हो गयी थी। इसको रोकने के लिए एक अधिनियम स्वीकृत किया गया जिसके द्वारा मोटरों के अनुमति-पत्र की स्वीकृति देने का काम परिवहन कमिश्नरों के हाथ सौंपा गया। मोटर चलाने की सीमा को निर्धारित कर दिया और उसका समय और किराया भी निश्चित किया गया। सन् १९३३ में एक अधिनियम के अन्तर्गत सड़क पर माल ढोने वाले परिवहन के साधनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इन प्रतिबन्धों से विवश होकर मोटर कम्पनियों को प्रतिस्पर्द्धा बन्द कर देनी पड़ी।

द्वितीय महायुद्ध और उसके पश्चात्

द्वितीय विश्व-युद्ध के समय सड़कों का उपयोग बहुत अधिक होने के कारण उनकी दशा बहुत खराब हो गयी। युद्ध के समय सरकार ने आपत्तिकालीन सड़क परिवहन संगठन का निर्माण किया। सन् १९४३ में सरकार ने 'Road Haulage Organisation' भी स्थापित किया था। युद्ध समाप्त होने के बाद सन् १९४६ में परिवहन मन्त्रिमण्डल ने एक दसवर्षीय योजना का निर्माण किया था। सन् १९४६ में एक 'विशेष सड़क अधिनियम' पारित किया गया जिसके अनुसार माल ढोने का कार्य सुगम हो गया क्योंकि कुछ सड़कों को सुरक्षित (Reserve) कर लिया गया। अधिक यातायात के कारण ये शीघ्र नष्ट न हो सकें इसका भी प्रबन्ध किया गया। सन् १९४८ में श्रमिक सरकार ने सड़कों का राष्ट्रीयकरण का कार्य अपने हाथ में ले लिया। माल ढोने व यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए उन्हीं संस्थाओं को अधिकार दिया गया जिन्हें सरकार से अनुमति-पत्र प्राप्त हो।

अब सरकार सड़क परिवहन के सचालन के लिए पूर्ण जागरूक है। इसने दो समितियों की स्थापना की है। प्रथम, ब्रिटिश परिवहन आयोग तथा द्वितीय सड़क परिवहन कार्यकारिणी समिति (Road Haulage Executive)। इन दोनों समितियों का कार्य सड़क-निर्माण और उनकी देखभाल करना है। सन् १९५३ में मालपरिवहन बोर्ड (Road Haulage Disposal Board) भी स्थापित किया गया परन्तु अनुदार-दलीय सरकार ने १९५३ ई० में शासनारूढ़ होने से 'परिवहन अधिनियम' स्वीकार कर सड़क परिवहन को पूँजीपतियों के हाथ में दे दिया। अभी भी यही व्यवस्था चालू है।

वर्तमान स्थिति

इस समय ब्रिटन म सार्वजनिक सडको की कुल लम्बाई २,०२,०४३ मील है जो विभिन्न प्रकार की सडको म इस प्रकार विभाजित है

	(मील)
(१) ट्रक सडकें (Trunk Roads)	८३३२
(२) मोटरवेज[1] (Moterways)	४६१
(३) प्रमुख सडकें (Principal Roads)	२०,२५०
(४) अन्य सडकें (Other Roads)	१,७३,०००
कुल लम्बाई	२,०२,०४३

सडको का वर्गीकरण ट्रैफिक के महत्त्व को देखते हुए किया गया है। स्थानीय महत्त्व की सडको को अन्तिम वर्ग मे स्थान दिया गया है। लगभग ४०० मील नयी Trunk Road इस समय बन रही है। सन १९६८-६९ म सडको के निर्माण पर २७५ मिलियन पौण्ड व्यय किये गये है।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् मोटरो के प्रचलन म अधिक प्रगति हुई है। रलो से प्रतिस्पर्द्धा का अनुभव भी किया गया है। सार्वजनिक रोड परिवहन को नियन्त्रित करन के लिए सर्वप्रथम १९२४ म लन्दन ट्रैफिक अधिनियम स्वीकार किया गया जिससे परिवहन मन्त्री को बसो की सख्या और परिवहन का नियन्त्रित करने का अधिकार मिला। यही अधिनियम १९३३ म लन्दन पैसेन्जर ट्रान्सपोर्ट बोर्ड की स्थापना मे सहायक हुआ। सन् १९२८ म रॉयल कमीशन की नियुक्ति हुई जिसे मोटर परिवहन से उत्पन्न स्थिति का अध्ययन करने को कहा गया।

सन १९३० के सडक परिवहन अधिनियम (Road Traffic Act) ने स्थानीय अधिकारियो को लाइसेन्स देने की पुरानी प्रथा को समाप्त कर दिया तथा देश कई ट्रैफिक क्षेत्रो मे विभाजित कर दिया गया जिनकी सख्या अभी ११ है जो तीन ट्रैफिक आयुक्तो की देखभाल म रखे गये (केवल लन्दन क्षेत्र को छोडकर जो मन्त्री क हाथ मे है)। ये आयुक्त सभी सडको के लिए लाइसेन्स प्रदान करने हैं तथा समय-सारिणी आदि का निर्धारण करते हैं।

इसी प्रकार माल ढोने की व्यवस्था सडक तथा रेल ट्रैफिक अधिनियम से नियन्त्रित और शासित है जिसकी स्वीकृति रॉयल कमीशन की सिफारिशो पर हुई है। सन् १९४७ मे आयुक्तो ने ट्रैफिक अधिनियम, १९४७ के अन्तर्गत 'ए' तथा

---

[1] Motorways are through routes from one city to another e g London to Yorkshire, London to Dover and so on It was planned to construct 1000 miles of motorways by 1970.

'बी' सड़कों को अपने अधिकार में ले लिया। 'सी' और विशेष प्रकार के माल ढोने वाले लाइसेन्स प्रभावित रहे। इसी प्रकार सन् १६५१ और १६५३ में भी संशोधन किए गए। सन् १६५८ के अन्त तक १२,६०,००० माल ढोने वाली अधिकृत गाड़ियाँ कैरियर्स लाईसेंस के अन्तर्गत थी।

सड़क परिवहन का विकास तथा हाईवे अधिनियम सन १६५६

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सड़क परिवहन के विकास और निर्माण की मांग जोर पकड़ती गयी। सन् १६४८ के विशिष्ट अधिनियम के अन्तर्गत परिवहन मन्त्री को सड़क-निर्माण का अधिकार दिया गया। केन्द्रीय सरकार का नयी सड़कों और वृहद् सुधारों पर विकास व्यय बढ़ता चला जा रहा है। विगत कुछ वर्षों का आर्थिक विकास कार्यक्रम इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। सन १६५५ के बाद से सड़क निर्माण कार्यक्रम की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। सन १६६५ से १६७० तक के पाँच वर्षों में सड़क विकास के लिए १,००० मिलियन पौण्ड व्यय का प्रावधान है। इसमें मोटरवेज (Motorways) निर्माण का कार्यक्रम भी सम्मिलित है। हाईवे अधिनियम (Highways Act), १६५६ के अन्तर्गत सम्बद्ध मन्त्री को यह अधिकार दिया गया है कि वे मोटरवेज के विकास की व्यवस्था करें जिसका उद्देश्य कुछ सीमित श्रेणी के परिवहन के लिए सीधे मोटर मार्गों (Through routes) की व्यवस्था करना है ताकि भीड़भाड़ कम करके स्पीड बढ़ायी जा सके और समय की बचत हो। ब्रिटेन में सड़क परिवहन पर उत्तरोत्तर अधिक बोझ पड़ता जा रहा है। इस भीड़भाड़ के कारण वहाँ प्रतिवर्ष ८,००० व्यक्तियों की सड़क दुर्घटनाओं में मृत्यु हो जाती है तथा लगभग ४ लाख व्यक्ति घायल हो जाते हैं। लन्दन के चारों ओर २५ मील का क्षेत्र जिसमें एक करोड़ से अधिक व्यक्ति निवास करते हैं, परिवहन की दृष्टि से अत्यन्त जटिल क्षेत्र है। दो हजार वर्ग मील का यह क्षेत्र एक पृथक संस्था को हाथ में लिए लन्दन ट्रान्सपोर्ट संस्था कहा जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सड़क परिवहन के विकास की कहानी अठारहवीं शताब्दी के मध्य से आरम्भ होकर अभी भी समाप्त नहीं हुई है। इसके महत्व को सर्वाधिक रूप से माना गया है और इसके विकास के हर सम्भव प्रयत्न को प्राथमिकता दी जा रही है। किसी ने सच ही कहा है कि सड़कें राष्ट्रीय परिवहन की रगें हैं। हाल ही में इंगलैण्ड और फ्रांस को इंगलिश चैनल के नीचे सुरंग (टनल) द्वारा जोड़ने की योजना बनायी गयी है जिसे पूरा करने में ६ वर्ष लगेंगे तथा जिस पर १६० मिलियन पौण्ड का व्यय होगा। अभी इस योजना के सर्वेक्षण का कार्य हो रहा है।

नहर परिवहन
(Canal Transport)

१८वीं शताब्दी में इंगलैण्ड में कोयले की आवश्यकता और मांग में वृद्धि हुई। इसके लिए सस्ता और उत्तम कोयला ढोने का उपाय खोज निकाला गया

क्योंकि गाड़ियों और पशुओं से ढुलाई का कार्य सुव्यवस्थित ढंग से हो नहीं पा रहा था। सन् १६५० में लोहा गलाने के कारखाने स्थापित हो गये थे अतः भारी मात्रा में कोयले की माँग बढ़ी। इस समय मिट्टी के बर्तनों और वस्तुओं का उद्योग भी पनपा, अतः खानों से कोयला लाना आवश्यक हो गया। इसी समय देश में लकड़ी का दुर्भिक्ष पड़ा जिससे वस्त्र उद्योग और घरों में ईंधन हेतु कोयले की आवश्यकता उत्पन्न हुई। लंकाशायर के लिए यह अनिवार्य हो गया कि उन भारी मात्रा में कपास और हजारों गज कपड़ा मैनचेस्टर में सुरक्षित भेजने की आवश्यकता अनुभव हुई। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि सर्वप्रथम नहर उत्तर में खोदी गयी जहाँ सड़कें भी खराब थीं। यह कहना कुछ कठिन है कि औद्योगिक क्रान्ति ने परिवहन के सुधरे साधनों को जन्म दिया या परिवहन के साधनों ने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। सच तो यह है कि एक ने दूसरे को प्रभावित किया है। सड़कों का सुधार या निर्माण इसलिए किया गया कि परिवहन में वृद्धि हो परन्तु नहरों का विकास इसलिए किया गया कि वे कोयले की माँग की वृद्धि से लाभदायक सिद्ध होंगी। यदि कोयला उपलब्ध न होता तो छोटे छोटे कारखाने कभी विशालकाय कारखानों का स्वरूप धारण न करते।

ब्रिटिश नहरों के इतिहास को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं : (१) १७६०-१८३० ई० (२) १८३०-१९१४ (३) सन् १९१४ से वर्तमान काल।

(१) **१७६०-१८३० ई० का नहर विकास काल**—सर्वप्रथम **ड्यूक ऑफ ब्रिजवाटर (Duke of Bridgewater)** ने ब्रिन्डले (Brindley) नामक इंजीनियर की सहायता से वर्सले से मैनचेस्टर तक नहर बनायी क्योंकि इस क्षेत्र में परिवहन के लिए नहरों की अधिक आवश्यकता थी अतः ड्यूक ने पहली नहर की सफलता से प्रभावित होकर दूसरी नहर बनायी जो मैनचेस्टर से रनकॉर्न और लिवरपूल तक जाती थी। इन दोनों नहरों की सफलताओं से प्रभावित होकर अन्य उद्योगपतियों ने भी मध्यवर्ती भागों में नहरों का निर्माण प्रारम्भ किया। ये नहरें ट्रेण्ट, कर्सी, स्टेफर्डशायर, ओरसेस्टरशायर, बर्मिंघम, कवण्टरी और आक्सफोर्ड के नाम से प्रसिद्ध हुईं। **ग्राण्ड-जंकशन नहर** (जो लन्दन को मध्यवर्ती भागों से जोड़ती है) १७९३ में बनी। इस शताब्दी के अन्तिम चरण में तो नहरों का उन्माद सा सवार हो गया और निजी कम्पनियों द्वारा (१७९३ से १७९७ तक) इंगलैण्ड में आन्तरिक जल मार्ग के रूप में नहरों का जाल-सा बिछा दिया गया। सन् १८३० तक लगभग ३,४०० मील तक नहरें बन चुकी थीं। इन नहर-निर्माण कम्पनियों ने संसद में एक अधिनियम स्वीकृत कराया जिसके अन्तर्गत उन्हें नहर-परिवहन पर कर लगाने का अधिकार मिला। अतएव जो व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से नहरों से गुजरता था, वह उन लोगों से कर वसूल कर सकता था जो उन नहरों का प्रयोग करता था। स्काटलैण्ड में दो नहरों—कलडोनियन और क्रीनन—की खुदाई सरकारी सहायता

और पूंजी मे की गयी थी पर इन नहरों से सरकार को कोई लाभ नहीं हुआ। इसलिए सरकार ने नहरों की खुदाई का भार अपने ऊपर से हटा दिया।

नहरों की खुदाई का कार्य शीघ्रता से हुआ। नहर-कम्पनियों को पर्याप्त लाभ हुआ। उनके अंशों के मूल्य में वृद्धि हुई। यह समय नहर परिवहन के विकास का स्वर्ण-युग कहलाता है। इस प्रकार के विकास से औद्योगिक और व्यापारिक प्रगति भी अधिक तेजी से हुई क्योंकि परिवहन का एक सस्ता साधन उपलब्ध हो गया था। यह अनुमान लगाया गया है कि नहरों का किराया सड़कों के किराये का चौथाई था। इनके बनने से कृषि को भी प्रोत्साहन मिला। नहरों ने अप्रत्यक्ष रूप से सड़कों को भी सहायता दी। सड़कें उस समय इतनी खराब थी कि उन पर आना जाना व माल ढोना कठिन था अतः नहरें इंग्लैण्ड के कई भागों के लिए वरदानस्वरूप सिद्ध हुईं। कई भागों में भूमि की कीमतें नहरों की प्रगति से बढ़ गयी। अविकसित प्रदेशों की औद्योगिक सम्भावनाओं को भी नहरों से सहायता मिली तथा नए नगरों का निर्माण भी सम्भव हो सका।

नहरों से सभी प्रकार के श्रमिकों को रोजगार मिला। १८वीं शताब्दी में साउथ सी बबल (South Sea Bubble) के कारण पूंजी अपने नियोजन का मार्ग ढूंढ़ रही थी। नहरों ने पूंजी नियोजन का उपयुक्त अवसर प्रदान किया। ज्योंही प्रारम्भिक नहरों की सफलता का चित्र सामने आया लोग नहर-निर्माण की ओर बहुत अधिक आकर्षित हुए। सन् १७९१ से १७९४ तक का काल नहरों के चरमोत्कर्ष का काल था। इस अवधि में इतनी नहरें बनायी गयी जितनी माल ढोने के अनुपात में आवश्यक नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि नहरों से प्राप्त आय गिरने लगी।

(२) १८३० से १९१४ ई० तक नहर-विकास-काल—इस काल में नहरों के विकास को आघात लगा। यही कारण है कि इस काल को नहरों के पतन का काल कहा जाता है। नहरों का निर्माण केवल व्यावसायिक दृष्टि से किया गया था और इसीलिए कम्पनी देश के लाभ की अपेक्षा व्यक्तिगत लाभ पर अधिक ध्यान देती थी। शताब्दी के अन्तिम चरण तक कम्पनियों ने नहर-निर्माण से पर्याप्त लाभ उठाया। रेलों और जहाजों के विकास से नहरों का विकास ठप्प हो गया। सन् १९०६ में नहरों तथा अन्तर्देशीय जलमार्गों का अध्ययन करने के लिए सरकार ने एक आयोग की स्थापना की। आयोग ने परिस्थितियों का अध्ययन करने के पश्चात् जो प्रतिवेदन सरकार के सामने प्रस्तुत किया उसमें यह विचार प्रकट किया गया कि आधुनिक समय में नहरों का विकास कार्य सम्भव नहीं है। आयोग के इस प्रतिवेदन के पश्चात् नहरों द्वारा परिवहन बहुत ही कम हो गया।

नहरों के पतन के कारण—इस काल में नहरों के महत्त्व में कमी के कई कारण थे

(१) इंगलैण्ड की नहर-कम्पनियां केवल नहर का प्रयोग करने वालों से कर

वसूल करती थी। वे स्वयं माल ढोने का कार्य सम्पादित नहीं करती थी। कोई भी व्यक्ति कर चुका कर अपनी नाव नहरों में चला सकता था। इसके विपरीत रेल कम्पनियाँ माल ढोने और किराया वसूल करने का कार्य दोनों ही स्वयं करती थी। अत रेल कम्पनियों की प्रतिस्पर्द्धा में नहर कम्पनियों का टिका रहना सम्भव नहीं हो सका।

(२) चूँकि नहरें व्यक्तिगत कम्पनियों द्वारा विभिन्न समयों में बनायी गयी थी अत उनकी चौडाई और गहराई आदि में बहुत ही अन्तर था। परिणाम यह हुआ कि उन सबमें बडी नाव या जहाज चलाना सुविधाजनक नहीं रहा। कुछ नहरें बिलकुल ही बेकार हो गयी।

(३) नहर कम्पनियों ने युग की माँग के अनुरूप नहरों के विकास और आविष्कारों की ओर ध्यान नहीं दिया।

(४) रेलों के डिब्बे कोयले की खानों तक जाकर कोयला ढो सकते थे किन्तु नहर परिवहन में यह सुविधा नहीं थी। व्यापारिक दृष्टिकोण में नहरों तक माल ढोना और वहाँ से पुन उपयोग के स्थान तक माल ले जाने का दोहरा व्यय युक्ति-सगत नहीं था।

(५) मक्खन, पनीर, दूध, फल, ऐसी वस्तुएँ थी जिनके लिए शीघ्रगामी परिवहन की आवश्यकता थी। नहरों की अपेक्षा रेल इसके लिए अधिक उपयुक्त थी।

(६) कोयले को सुरक्षित रखने के लिए पहले से गोदामों की आवश्यकता कम हो गयी क्योंकि रेल के डिब्बों में उसे रखा जाता था और आवश्यकता पड़ने पर वहाँ से मँगवा कर उपयोग में लाया जाता था। नहर परिवहन में यह सुविधा उपलब्ध नहीं थी।

(७) नहरों द्वारा केवल बडी मात्रा में ही माल का मँगाना लाभप्रद हो सकता था परन्तु रेल द्वारा थोडा सामान भी कम खर्च में आसानी से भेजा जा सकता था।

(८) रेल-यात्रा में नहरों की अपेक्षा कम समय लगता था तथा यात्रियों के आराम के लिए उत्तम व्यवस्था थी।

(९) रेल के आने-जाने का समय निश्चित था पर ऐसी नियमितता नहर परिवहन में सम्भव नहीं थी।

(१०) सरकारी नियन्त्रण रहने पर भी बहुत-सी नहरों पर रेल कम्पनियों का अधिकार हो गया था इसी कार्य के लिए १८७३ ई० में रेल और नहर-आयोग की स्थापना की गयी थी।

(११) तटीय स्टीमरों के प्रचलन से नहरों द्वारा भेजा जाने वाला माल अब इनके द्वारा भेजा जाने लगा। इससे भी नहरों को घाटा हुआ।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से नहर परिवहन का शनै-शनै ह्रास होता गया।

(३) १९१४ से वर्तमान काल तक—प्रथम विश्व-युद्ध के समय नहरों का महत्त्व पुनः अनुभव किया गया। परन्तु यह अस्थायी था। युद्धोपरान्त काल में नहरों का पतन फिर से आरम्भ हो गया। सरकार ने नहरों के महत्त्व को बनाये रखने के लिए १९२१ तथा १९३१ में सार्वजनिक ट्रस्ट बनाने की योजना प्रस्तुत की परन्तु वह किन्हीं कारणों से सफल नहीं हो सकी। रेल कम्पनियों द्वारा सन् १९४७ तक एक तिहाई नहरें अपने अधिकार में ले ली गयीं। सन् १९४९ में श्रमदलीय सरकार ने नहरों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। अब लगभग सभी नहरों का प्रबन्ध ब्रिटिश-परिवहन-आयोग के अधीन है। यहाँ २,६०० मील लम्बे नहर मार्ग हैं जिनसे १९५३ में १३७ लाख टन माल नहरों द्वारा ढोया गया।

इतने उत्थान-पतन के युग के पश्चात् नहर परिवहन का नियन्त्रण और निगमन सरकार ने अपने हाथ में लेकर उसकी दशा सुधारने का प्रयत्न किया है।

नहर यातायात से निम्नलिखित लाभ हुए हैं :

(१) व्यापार और उद्योग को अधिक प्रोत्साहन मिला है।

(२) नहर परिवहन द्वारा अनाज का वितरण व्यवस्थित किया गया जिससे कृषि को सहायता मिली तथा उस समय उत्तरी-भाग के नगर जीवित रखे जा सके।

(३) *नहर परिवहन से जनसंख्या का सम्यक् विभाजन हो गया।*

(४) नहर परिवहन से बन्दरगाहों के विकास का कार्य अधिक बढ़ा।

(५) श्रमिकों को एक नवीन प्रशिक्षण प्राप्त हुआ जिससे वे अच्छे मल्लाह बन सकें।

(६) नहर परिवहन ने व्यापारिक यात्राओं और यात्रियों को भी प्रोत्साहन दिया। यही संक्षेप में नहर परिवहन के विकास की कहानी है।

इस समय ब्रिटेन में २,५०० मील लम्बी नहरें हैं तथा इनमें से २,००० मील लम्बी नहरें ब्रिटिश वाटरवेज बोर्ड के अधीन हैं जिनका निर्माण सन् १९६२ के परिवहन अधिनियम के अन्तर्गत ब्रिटिश ट्रान्सपोर्ट कमीशन के भंग होने पर किया गया। अधिकतर नहरों में पच्चीस-तीस टन क्षमता वाली नावें चलती हैं किन्तु कुछ बड़ी नहरों में ४०० टन क्षमता वाले स्टीमर तक चल सकते हैं। सन् १९५५ से १९६६ तक *नहर परिवहन में ३० प्रतिशत की कमी हुई। यह कमी सड़क और* रेल परिवहन द्वारा प्रस्तुत प्रतियोगिता के कारण हुई। सन् १९६८ में ब्रिटिश नहरों द्वारा ७० लाख टन माल की ढुलाई की गयी जो कि ब्रिटेन के समस्त माल परिवहन का एक प्रतिशत थी। नहरों द्वारा ढोये जाने वाले माल में मुख्यतः कोयला, लोहा व अन्य खनिज पदार्थ थे। सभी नहरों का उतना महत्त्व नहीं है। तीन-सौ चार-सौ मील लम्बी नहरें अधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वे औद्योगिक शहरों को मिलाती हैं। ये नहरें यार्कशायर, लंकाशायर में अधिक हैं। **ब्रिटिश वाटरवेज बोर्ड** की कुल आय ४७ लाख पौण्ड प्रति वर्ष होती है।

प्रश्न

1 Account for the decline of canal transport in England

इगलैण्ड मे नहर परिवहन के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।

(पंजाब, १९६१)

2 Give an account of the development of either road or inland water transport in Britain

ब्रिटेन के सड़क अथवा आन्तरिक जल परिवहन के विकास का वर्णन कीजिए।

(राजस्थान, १९६२)

3 Discuss the recent developments in road transport in Great Britain

ग्रेट ब्रिटेन के सड़क परिवहन के क्षेत्र में हाल के वर्षों मे हुए विकास का विवरण दीजिए।

२१
रेल परिवहन
(Railway Transport)

ब्रिटेन विश्व में रेल परिवहन का जन्मदाता कहा जा सकता है। सर्वप्रथम स्टॉकटन और डार्लिंगटन के मध्य १८२५ में रेल मार्ग का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् लिवरपूल तथा मानचेस्टर लाइनें १८३० में बनाई गयीं, जबकि जार्ज स्टीफेन्सन के प्रसिद्ध राकेट एन्जिन का उपयोग हुआ। इस घटना के साथ रेल विकास की शताब्दी का श्रीगणेश हुआ। रेलों ने परिवहन के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न करदी तथा परिवहन के एक सस्ते साधन का सूत्रपात किया। वाष्प-एंजिन ने प्रत्येक औद्योगिक क्षेत्र में क्रान्ति की। रेल परिवहन से जो लाभ उस समय प्राप्त हुए, वे इस प्रकार हैं

(१) रेलों ने श्रमिकों के लिए अनेक नये कार्यों का सृजन किया।

(२) रेलों के विकास ने नवीन नगरों को जन्म दिया।

(३) माल को दूरी तक ढोने की सुविधा ने परिवहन का मूल्य सस्ता कर दिया। भारी और सस्ते पदार्थ अब पर्याप्त दूरी तक भेजे जा सकते थे। इस प्रकार उन पदार्थों का बाजार अधिक विस्तृत हो गया।

(४) रेलों द्वारा व्यापारिक नियमितता का विकास हुआ। उत्पादकों और उपभोक्ताओं को इससे बड़ी सुविधा मिली।

(५) परिवहन की नियमितता ने मालगोदाम व्यय को कम कर दिया। अब माल का अधिक जमा और संग्रह की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि जब भी कमी हो, वह रेलों द्वारा मगाया जा सकता था। रेलों का इस प्रकार विकास किया गया कि वे फैक्टरियों के दरवाजे पर माल की पूर्ति कर पाती थीं।

(६) रेल यात्रा को सस्ता और सुगम बना दिया गया अतः लोगों की गति-शीलता में वृद्धि हुई। इससे व्यापारिक कार्य-कलापों के क्षेत्र में वृद्धि हुई।

(७) रेलों ने विशिष्टीकरण की प्रक्रिया को पर्याप्त सहायता पहुँचाई। कुछ उद्योगों ने अपने को कुछ विशिष्ट प्रकार के उत्पादन में निपुण बना लिया और रेलों

के माध्यम से जहाँ उसकी आवश्यकता होती भेजने लगे। इस प्रकार उद्योगों का विकेन्द्रीकरण सम्भव हो गया।

(८) रेलों ने लौह-इस्पात की माँग को भी अधिक प्रोत्साहन दिया। उन्होंने इस प्रकार उद्योगों के निर्माण को सहयोग दिया।

सड़कों और नहरों के समान ही रेल परिवहन का प्रारम्भिक विकास व्यक्तिगत व्यवसायियों द्वारा किया गया था। इस देश के रेल परिवहन विकास में यूरोप महाद्वीप से विशेषताएँ पायी जाती हैं। ये विशेषताएँ निम्नांकित हैं :

(१) रेलों के विकास काल में राज्य की सहायता और संरक्षण का सर्वथा अभाव था जबकि फ्रान्स और जर्मनी में सड़क और नहर परिवहन के समान रेलों का विकास करना राष्ट्रीय जिम्मेदारी थी, न कि व्यक्तिगत।

(२) इंगलैण्ड में रेलों के विकास में व्यापारिक दृष्टिकोण मुख्य कारण था किन्तु फ्रान्स, जर्मनी, प्रशा और रूस में सैनिक तथा सुरक्षात्मक दृष्टिकोण मुख्य कारण था। भारत में भी अंग्रेजों द्वारा रेलों का निर्माण सैनिक और सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से ही किया गया।

(३) विश्व की समस्त रेलों से इंगलैंड की रेलों में प्रति मील अधिक पूँजी लगी थी। प्रति मील रेल लाइन बिछाने में इतना अधिक खर्च होने के कई कारण थे, जैसे विरोध को दबाने का व्यय, नहरों से होने वाली प्रतिस्पर्द्धा को दबाने का खर्च और भूमि का अधिक मूल्य इत्यादि। इसके अतिरिक्त पटरियों को अधिक मजबूत बनाने के लिए भी अधिक पूँजी लगानी पड़ी थी। फ्रांसिस ने रेल कम्पनियों द्वारा चुकाये गये प्रति मील भूमि के मूल्य को इस प्रकार बताया है

कम्पनियाँ	मूल्य प्रति मील (पौण्ड में)
(१) लन्दन तथा सा० वेस्टर्न रेलवे	४,०००
(२) लन्दन-बर्मिघम रेलवे	६,३००
(३) ग्रेट वेस्टर्न रेलवे	६ ०९६
(४) लन्दन तथा ब्राइटन रेलवे	८,०००

(४) इंगलैण्ड में छोटे-छोटे पैमाने पर रेल मार्ग खोले गये थे जबकि और देशों में बड़े पैमाने पर।

(५) इंगलैण्ड में रेलों के प्रारम्भिक विकास में देशी पूँजी ही काम में ली गयी थी जबकि यूरोपीय देशों और भारत में विदेशी पूँजी भी लगायी गयी थी।

(६) इंगलैण्ड में रेलों के विकास का घोर विरोध किया गया और तरह-तरह के तर्क प्रस्तुत किये गये। रेल-पथों के कारण लोहा कम मिलने का भय दिखाया गया और यह कहा गया कि घोड़े भाग उठेंगे, गायें दूध नहीं देंगी, माल-पान पैदा होना बन्द हो जायगा।

(७) रेलों के विकास ने नहरों के महत्त्व को समाप्त कर दिया परन्तु फ्रान्स, जर्मनी और बेल्जियम में रेलों के साथ-साथ नहरों का भी विकास हुआ।

(८) इगलैण्ड में प्रति मील रेलों का व्यय अधिक पड़ता था क्योंकि यहाँ रेल लाइनें छोटे-छोटे पैमाने पर बिछी हुई थीं। इगलैण्ड में कोई स्थान बन्दरगाह से ७५ मील से अधिक दूर नहीं था। यही कारण था कि यात्रा की दूरी कम हुआ करती थी।

(९) इगलैण्ड के पश्चिम में भूमि अधिक पथरीली थी, अत यहाँ पटरियों के बिछाने के लिए विशेष यान्त्रिक-कला की आवश्यकता होती थी। इसमें प्रति मील अधिक खर्च पड़ता था। सयुक्त राज्य अमरीका का मध्य भाग और जर्मनी का उत्तरी भाग रेलों की पटरी बिछाने के लिए अधिक उपयुक्त थे।

(१०) प्रारम्भ मे इगलैण्ड की रेलों की एक विशेषता यह भी थी कि कम्पनियाँ पटरियाँ बिछा दिया करती थीं उन पर कोई भी व्यक्ति अपनी गाड़ी चला सकता था। इसके लिए गाड़ी वाले को कर चुकाना पड़ता था।

(११) इगलैण्ड की रेलों की कर-प्रणाली भी असाधारण थी। इसमे निम्न कर सम्मिलित थे :

(अ) सड़क कर, (आ) गाड़ी खींचने का कर, (इ) रेल डिब्बों का किराया, (ई) सग्रह और अदायगी कर, (उ) उतारने, चढाने, ढँकने और खोलने की लागत, (ऊ) स्टेशनों की लागत।

यदि कोई व्यक्ति उनमें से कोई भी कार्य स्वय करता तो उसका वह कर काट दिया जाता था।

रेलों का विकास

इगलैण्ड मे रेलों के विकास को निम्न छह भागों मे विभाजित किया जा सकता है :

(१) प्रयोगों का युग (सन् १८२१ से १८४४),
(२) एकीकरण का युग (१८४५ से १८७२),
(३) राजकीय हस्तक्षेप का युग (१८७३ से १८९४),
(४) प्रतिस्पर्द्धा का काल (१८९५ से १९१३),
(५) प्रथम युद्ध एव पुनर्निर्माण काल (१९१४ से १९३८),
(६) द्वितीय महायुद्ध एव आधुनिक काल (१९३९ से १९६५)।

प्रयोगों का युग (१८२१-१८४४)

कोयले ने ही नहर परिवहन को जन्म दिया और कोयले ने ही रेलों को जन्म दिया। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी में लकड़ी की पटरियाँ कोयला खानों से नदियों तक बिछायी गयी थीं। परन्तु सन् १७६७ के पश्चात् लोहे की पटरियाँ प्रतिस्थापित की जाने लगीं। ये पटरियाँ कोयला क्षेत्रों से नहरों को जोड़ती थीं और व्यक्तिगत लाइनें थीं जो कोयला खानों द्वारा ही उपयोग की जाती थीं। सन् १८०१ में पहले

पयवेक्षण के रूप मे एक मार्ग क्रोयडोन और वेन्डसवर्थ के बीच खोला गया जिस पर जनता किसी प्रकार का मामान ले जा सकती थी। वह घोडो से चलायी जाती थी। यह प्रयोग आर्थिक रूप से लाभदायक और सफल सिद्ध नही हुआ। कुछ क्षेत्रो मे इस बात का भी प्रयत्न किया गया कि वाष्प चालित एन्जिनो द्वारा सामान ढोया जाये। पहले यह अनुभव किया गया था कि समतल पहियो से माल ढोने मे कठिनाई होगी अत दातेंदार पहियो का प्रयोग किया गया। सन् १८१४ मे हेडले वायलम कोयला खान और जार्ज स्टीफेन्सन, किलिंग वर्थ खान ने वाष्पचालित रेलो का एन्जिन गोन और चिकने पहियो वाला बनाया जो पर्याप्त भार खीच सके।

सन् १८२१ मे स्टोकटन और डार्लिगटन के मध्य रेल लाइन बनाने के लिए अधिनियम स्वीकृत किया गया। यह रेल पथ कोयले को बन्दरगाह तक ले जाने के लिए बनाया गया था। यह प्रथम रेलवे लाइन थी जिस पर यात्री और सामान दोनो ढोये गये थे। सन् १८२३ मे इस अधिनियम मे सशोधन किया गया और १८२५ में नयी रेल लाइन खुली। सामान एन्जिनो से ले जाया गया किन्तु यात्रियो को ले जाने के लिए घोडो की सहायता ली गयी। सन् १८३० मे लिवरपूल और मैनचेस्टर रेल कम्पनी ने भी गमनागमन के लिए वाष्पचालित एन्जिन का व्यवहार किया। उत्तर मे नहरो की कमी के कारण इस कम्पनी को बहुत सफलता मिली। यह प्रथम रेल कम्पनी थी जिसने नहरो को भारी धक्का पहुँचाया था और नहरो की अवनति का सूत्रपात किया था।

सन् १८३० मे स्टेवेंस-राकेट लाइन खोली गयी। इस रेलवे कम्पनी ने प्रथम वर्ष मे ही अपने अशधारियो को ८ प्रतिशत की दर से लाभाश दिया था। यह कम्पनी नहरो और सडको से सस्ते किराये पर माल तथा यात्रियो को ढोया करती थी। सामान को ढोने की भी अधिक सुविधा प्राप्त थी। इस कम्पनी की सफलता को देखकर और भी बहुत सी नयी-नयी रेलवे लाइनें बिछाई गयी। सन् १८३६ मे २६ रेलवे लाइनो को आज्ञापत्र मिला। सन् १८३८ तक ११२ मील लम्बी रेल लाइन बिछ चुकी थी। सन् १८४३ तक पटरियां बिछाने की एक बीमारी-सी फैल गयी थी। अधिक लाभ होने के कारण इस कार्य मे काफी पूंजी लग चुकी थी। अधिक लाभ होने के कारण रेल कम्पनी के शेयर-मूल्यो मे अधिक वृद्धि हो गयी। नयी-नयी रेल कम्पनियो के शेयर प्रीमियम पर बेचे जाने लगे, ऐसी परिस्थिति मे १८४५ ई० तक देश मे आर्थिक सकट आ गया। सकट का कारण इगलैण्ड के बैंक द्वारा ब्याज दर म परिवर्तन का किया जाना था। इससे बहुत सी रेल कम्पनियो का दिवाला निकल गया। अशो क मूल्यो मे गिरावट हुई, लाखो परिवार निर्धन हो गये। बहुत-से लोग इगलैण्ड छोडकर अमरीका और यूरोप मे जा बसे। कहा जाता है कि बहुत से लोगो ने आत्महत्या तक कर ली।

सन् १८४० मे ही ससद इस नये प्रकार के परिवहन के महत्त्व को स्वीकार करने लगी थी और उसके पश्चात् वार्षिक समितियो और आयोगो की नियुक्ति

करना एक समस्या बन गया। एक व्यापार-मण्डल (Board of Trade) भी स्थापित किया गया जिसके अधिकार सन् १८४४ में और भी बढ़ा दिये गये। नयी रेल लाइनों के खुलने को आज्ञा के बाद सभी कार्यवाही और स्वीकृति में मण्डल का हाथ था। दुर्घटनाओं का विवरण भी एक आवश्यक शर्त थी। इस समय देश का जनमत और राज्य व्यापार-मण्डल के पक्ष में नहीं था। अतः मण्डल को अधिक सफलता नहीं मिली। सन् १८४४ में एक विधान स्वीकृत हुआ जिसके अन्तर्गत रेल कम्पनी की लाभांश दर १० प्रतिशत से अधिक होने पर उसकी कर-दर में परिवर्तन किया जा सकता था। उस वर्ष के बाद बनी रेल राज्य कोष द्वारा क्रय किये जाने की व्यवस्था थी। उपर्युक्त विधान के अनुसार प्रत्येक रेलगाड़ी को निश्चित समय पर रवाना होना और निश्चित समय में निश्चित स्थानों पर पहुँचना अनिवार्य था। उस समय तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए प्रति मील एक पैन्स किराया निश्चित किया गया।

एकीकरण का युग (१८४५-१८७२)

सन् १८४४ तक प्रयोगों का काल समाप्त हो गया था। इस काल में रेल के एकीकरण करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण सुधार किये गये। इस समय की दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ सभी रेल लाइनों को मिलाकर ट्रंक (Trunk) लाइन बनाकर नहरों के मार्ग में कड़ी प्रतिद्वन्द्विता खड़ी करना था। संसद ने सन् १८५४ में एक *अधिनियम द्वारा व्यापार-मण्डल के अधिकार-क्षेत्र को बढ़ा दिया।* सन् १८४४ में एकीकरण (Consolidation) की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी।

इस कार्य में जिस व्यक्ति ने सबसे अधिक प्रेरणा दी वह था जार्ज हडसन (George Hudson) जिसे रेलों के राजा (The Railway King) की संज्ञा दी गयी थी। उसके अनुसार रेलों की कुशलता, सुविधा एवं यात्रा के लिए एकीकरण अत्यन्त आवश्यक था। सन् १८४५ से १८४७ तक देश में नये रेल-मार्ग खोलने का *उन्माद-सा सवार हो गया।* हडसन के *कार्यों से रेलों में आर्थिक विकास का काल* आरम्भ हुआ। उसमें एक योग्य अर्थ-विद, प्रशासक और व्यवस्थापक के गुण थे। सभी स्थानों पर रेलों का जाल-सा बिछ गया। १८५० तक ग्रेट ब्रिटेन में ६,६२१ मील लम्बी लाइनें थीं।

सन् १८४२ से १८७० तक ब्रिटेन में रेल विकास
(लाइनें जो ३१ दिसम्बर तक खोली गयीं)

सन्	मील	सन्	मील
१८४२	१,८५७	१८५०	६,६२१
१८४३	१,६५२	१८५१	६,८९०
१८४४	२,१४८	१८५२	७,३३६
१८४५	२,१४१	१८५३	७,६६८

१८४६	३,०३६	१८५४	८,९५४
१८४७	३,९४५	१८६०	१०,०००
१८४८	५,१२७	१८७०	१५,०००
१८४९	६,०३१		

निकास-गृहों (Clearing Houses) की सुविधा से भी कम्पनियो के बीच समझौतो का सुअवसर प्राप्त हुआ। सन् १८४६ मे ५० व्यक्तियो की एक समिति सगठित की गयी जिसका कार्य था एकीकरण के कारण होने वाली बुराइयो को सरकार के सामने रखना, पर समिति को सफलता नही मिली। अत सन् १८५१ मे इस समिति को भग कर दिया गया।

सन् १८५४ मे कार्डवेल विधान स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार बिना बदले यात्रा करने की सुविधा और विस्तृत हो गयी। रेल कम्पनियों के ऊपर नियन्त्रण रखने की दृष्टि से १८६७ ई० मे इगलैण्ड की सरकार ने एक आयोग की स्थापना की जिसके अनुसार एक निश्चित विधि से हिसाब रखना रेल कम्पनियो के लिए आवश्यक हो गया।

सरकारी हस्तक्षेप का युग (१८७३-१८९४)

इस तेईस वर्ष के काल मे रेलो ने पर्याप्त प्रगति की, किन्तु अब यह निश्चित हो गया था कि बिना राज्य के नियन्त्रण के लागतो और दरो मे सुधार होना सम्भव नही था। सन् १८७३ मे एक विशेषज्ञ समिति बनायी गयी जिसका कार्य रेलो को नियन्त्रित करना था। कुछ सीमा तक रेलो को नियन्त्रण मे लिया भी गया किन्तु बाद मे यह समिति सन् १८८८ मे अतिरिक्त अधिकार दिये जाने पर स्थायी बना दी गयी। सरकार ने सन् १८८८ और १८९४ के बीच अधिकतम दरें निर्धारित कर दीं।

राज्य-नियन्त्रण और हस्तक्षेप का जो युग आरम्भ हुआ था उसका कारण सरकार का यह डर था कि एकाधिकार और एकीकरण की प्रवृत्ति स्थायी न हो जाय। सन् १८७१ मे एकीकरण सम्बन्धी ९ बिल ससद मे प्रस्तुत किये गये। उसका परिणाम यह हुआ कि सन् १८७२ मे एक आयोग की स्थापना की गयी। रेल कम्पनियों ने भेदभाव का भी व्यवहार करना आरम्भ कर दिया था। एक व्यापारी से कम और दूसरे व्यापारी से एक ही दूरी के लिए अधिक किराया लिया जाने लगा। इस प्रश्न की जाँच के लिए सन् १८७३ मे पाँच वर्ष के लिए विशेष रेल-नहर-समिति की स्थापना की गयी। इस समिति के अधीन ये कार्य सौंपे गये .

(१) बिना बदले यात्रा मे उचित किराये का निश्चय करना,
(२) रेलो के विलयन या एकीकरण की जाँच करना,
(३) रेलो द्वारा नहरो की देखभाल करना, तथा

(४) भेदभाव के प्रश्न की जाँच करना।

इस समिति का कार्य संचालन सरल नहीं था। इस समिति के सामने किसी भी प्रकार की शिकायत करने का शुल्क बहुत अधिक था। इस समिति से यह लाभ हुआ कि नहरों पर रेलों का पूर्ण अधिकार होना रुक गया। सन् १८८८ में एक विधान स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार किराये की प्रणाली को फिर से संशोधित किया गया। विधान के अनुसार रेल कम्पनी को प्रति ६ माह पर मालों की संशोधित वर्गीकरण-तालिका और अधिकतम किराये का एक विवरण व्यापार-मण्डल (Board of Trade) के पास भेजना आवश्यक ही था। इस विधान के अनुसार रेलों और नहर समितियों को नये ढंग से संगठित किया गया। व्यापार-मण्डल ने अपने आयोग के सामने शिकायत लाने की विधि में बहुत सुविधा कर दी। शुल्क-सूची, वृद्धि-शुल्क सूची, टरमिनल किराया आदि बातों में सूचना देना आवश्यक था। व्यापार-मण्डल द्वारा रेल-किराया निश्चय करने का सिद्धान्त था, "उतना किराया जितना यात्री दे सके (Ability to pay)।" इस सिद्धान्त के फलस्वरूप रेल की भाड़ा दर सस्ती हो गयी, और रेल कम्पनियों को कुछ विशेष मालों पर अधिक किराया लेने का अधिकार भी प्राप्त हो गया।

सन् १८९४ में एक अधिनियम स्वीकृत किया गया जिसके अनुसार यदि रेल कम्पनियाँ सन् १८९२ के रेल किराये को बढ़ाना चाहें तो उन्हें प्रमाण देना पड़ता था कि उनका ऐसा करना उचित था। सेवा-कार्य के खर्च में वृद्धि होने पर किराये में वृद्धि की जा सकती थी पर यह वृद्धि सीमा के अन्दर ही की जा सकती थी। सन् १८९४ के बाद रेल-कम्पनियों के बीच सुविधा देने की प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हो गयी।

प्रतिस्पर्द्धा का काल (१८९५-१९१३)

बीस वर्ष का यह काल कई कारणों से महत्त्वपूर्ण माना जाता है जैसे :

(१) इस काल में रेल के व्यय में तो वृद्धि होती गयी परन्तु लाभांश दरों में ह्रास प्रारम्भ हो गया।

(२) उपर्युक्त दोष को दूर करने के लिए एकीकरण और विलयन को सही मार्ग समझा गया जिससे कड़ी प्रतिस्पर्द्धा से मुकाबला किया जा सके।

(३) इस एकीकरण प्रक्रिया के साथ श्रमिक संघ आन्दोलन का प्रश्न भी उठा। सन् १९०० में टैफ वेल रेल कम्पनी के श्रमिकों ने हड़ताल कर दी। उनकी माँग थी कि मजदूरी में वृद्धि की जाय तथा काम करने के समय को घटाया जाय। इस हड़ताल का फल यह हुआ कि रेल-कर्मचारियों के श्रमिक-संघ कोष को कम्पनी की हड़ताल के कारण होने वाली क्षति को पूरा करने के लिए जब्त कर लिया गया। उससे श्रमिक आन्दोलन को आघात लगा।

(४) रेल कम्पनियों में संगठन हो जाने के कारण व्यापारियों तथा यात्रियों की सुविधाएँ कम होने लगी थीं। रेल श्रमिकों को भी घाटा होने लगा। श्रमिक भी

आपस मे सगठित होने लगे। आम जनता और श्रमिकों ने रेल कम्पनियों के राष्ट्रीय-करण की माँग की। श्रमिकों ने यह भी माँग की कि मजदूरी के झगडे सुलझाने के लिए समझौता-बोर्डों की स्थापना की जाय।

रेलो के अधिकारों को समाप्त करने के लिए नहरो के पुन सगठन की माँग भी उठ खड़ी हुई। इस प्रश्न की जाँच करने के लिए सन् १६०६ मे एक विशेष समिति की स्थापना की गयी। समिति ने हल से लिवरपूल तक जाने वाली नहरों को फिर से सरकारी अधिकार म लेने की सिफारिश की। जनता द्वारा भी यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि चूँकि जल-परिवहन मे स्थल-परिवहन की तुलना मे कम खर्च होता है अत नहर-परिवहन का पुनर्निर्माण जारी रहना चाहिए। इस प्रकार सरकार के सामने दो प्रस्ताव थ

(१) नहरो का पुनर्निर्माण किया जाना चाहिए, तथा

(२) रलो का राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिए।

प्रथम महायुद्ध और पुनर्निर्माण काल (१९१४-१९३८)

प्रथम महायुद्ध काल म रेलो का नियन्त्रण सरकार के हाथ मे आ गया था। देश की रक्षा का प्रश्न सर्वोपरि था। अत रेल परिवहन के प्रत्येक पक्ष पर सरकारी नियन्त्रण था। रेल क इजिन, डिब्बो इत्यादि को एक स्थान पर सुरक्षित रखा जाता था जहाँ से आवश्यकता पडने पर देश-विदेश म भेजा जा सके। युद्ध मे किरायो और लागतों म वृद्धि की गयी इससे यात्रियों की सुविधा मे ह्रास हुआ। रेलो के समान की कमी अनुभव की जाने लगी। रल श्रमिको मे भी असन्तोष बढ़ रहा था व बार-बार हड़ताल की धमकी दे रहे थे। युद्धोपरान्त रेलो के सुधार, श्रमिक सगठना क व्यवस्थापन और सरकारी अधिकारों की समस्याएँ उठ चुकी थीं। युद्ध समाप्त होने पर भी सन् १६२१ तक रेलों पर सरकारी नियन्त्रण चलता रहा। इन दिनो राष्ट्रीयकरण की चर्चा चल रही थी परन्तु सरकार ने पुन रेलों को व्यक्तिगत कम्पनियों को सौंप दिया। सन् १६२१ मे एक रेल विधान स्वीकृत किया गया जिसके अनुसार इगलैण्ड-वल्स की १२३ रेल कम्पनियो को मिलाकर चार ट्रक लाइनो मे परिवर्तित कर दिया गया। उनके नाम इस प्रकार थे—(१) ग्रेट-वेस्टर्न रेल कम्पनी, (२) नार्थ ईस्टर्न रल कम्पनी, (३) लन्दन, मिडलैण्ड और स्काटलैण्ड रेल कम्पनी, और (४) सदर्न रल कम्पनी। रेल किराया-दर की सूची भी अधिक सरल बना दी गयी। समय सारिणी और किराये को तय करने के लिए रेलवे रेट ट्रिब्यूनल की स्थापना की गयी। रल श्रमिकों की मजदूरी निश्चित करने के लिए केन्द्रीय पारिश्रमिक मण्डल भी स्थापित किया गया। सन् १६२३ के बाद जब रेल-मोटर प्रतियोगिता आरम्भ हुई, उसे सुव्यवस्थित रूप देने के लिए एक समिति नियुक्त हुई जिसकी सिफारिशें इस प्रकार हैं

(१) रेलों के वर्गीकरण को सुव्यवस्थित किया जाय।

(२) व्यवसायियों तथा यात्रियों को रेलों द्वारा अधिकाधिक सुविधा उपलब्ध की जाय।

(३) रेलगाड़ियों को बिजली द्वारा चलाया जाय।

(४) मोटर-परिवहन पर उचित नियन्त्रण रखा जाय।

इसके पश्चात् आर्थिक मन्दी का काल आरम्भ होता है। आर्थिक मन्दी में मोटर परिवहन प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप सरकारी संरक्षण और सहायता की आवश्यकता थी। सन् १९३३ में लन्दन यात्री परिवहन-मण्डल की स्थापना हुई। रेलों के इस मण्डल का कार्य अधिक से अधिक माल और यात्रियों को प्राप्त करना था। मोटर परिवहन के नियन्त्रण के लिए एक अधिनियम स्वीकृत हुआ जिसके अन्तर्गत इंगलैण्ड को १३ क्षेत्रों में बाँटा गया तथा प्रत्येक क्षेत्र में एक परिवहन-विभाग स्थापित किया गया। इस परिवहन-विभाग के कार्य ये थे (१) मोटर चलाने की अनुमति देना, (२) किरायों की देख रेख और व्यवस्था करना, (३) सड़कों की देखभाल करना, (४) मोटरों के आने-जाने का समय निश्चित करना। सन् १९३५ में लन्दन इलैक्ट्रिक ट्रान्सपोर्ट कॉरपोरेशन ने २½ प्रतिशत ब्याज पर ३२० लाख पौण्ड ऋण प्राप्त करने की कोशिश की। लन्दन पैसेन्जर ट्रान्सपोर्ट बोर्ड को १०० लाख पौण्ड ऋण प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ। यात्रियों की सुविधाओं की जाँच के लिए एक समिति बनायी गयी। इस परिवहन सलाहकार समिति के दो काम थे—प्रथम, विभिन्न प्रकार के परिवहन साधनों की उन्नति करना एवं द्वितीय, परिवहन के साधनों का परस्पर एकीकरण करना।

द्वितीय महायुद्ध एवं आधुनिक काल (१९३९-१९६५)

यह काल द्वितीय महायुद्ध का काल था। प्रथम महायुद्ध के समान ही सामरिक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए रेलों पर सरकारी नियन्त्रण पुनः लागू किया गया और नागरिक सुविधाओं की कटौती कर सैनिकों को अधिक सुविधाएँ प्रदान की गयीं। रेल किरायों में भी वृद्धि की गयी। युद्धोपरान्त काल में राष्ट्रीयकरण की माँग पुनः जोर पकड़ने लगी और उसके फलस्वरूप सन् १९४७ में मजदूर सरकार ने 'रेल राष्ट्रीयकरण अधिनियम' को अन्तिम रूप दे दिया। इसके अन्तर्गत एक 'ब्रिटिश ट्रान्सपोर्ट कमीशन' की स्थापना करके रेल परिवहन एवं उससे सम्बद्ध अन्य गतिविधियों का संचालन इस कमीशन को सौंप दिया। वास्तविक प्रबन्ध के लिए 'रेलवे कार्यकारिणी' का गठन किया गया।

सन् १९५१ में अनुदार-दल की सरकार ने नवीन नीति की घोषणा की जिसके अनुसार सन् १९४७ की राष्ट्रीयकरण की नीति में कुछ परिवर्तन करने के लिए सन् १९५३ में परिवहन अधिनियम पास किया। रेलवे कार्यकारिणी को भंग कर दिया गया और रेलवे के प्रबन्ध के लिए छह क्षेत्रीय बोर्ड (Area Boards) बनाये गये। लन्दन के आसपास के सड़क परिवहन को छोड़कर अन्य भागों के सड़क

परिवहन के कार्य को कमीशन के अधिकार क्षेत्र से हटा दिया गया ताकि इसका विराष्ट्रीयकरण (Denationalisation) करके उसे निजी क्षेत्र के नियन्त्रण में दिया जा सके।

१ जनवरी, १९५५ को ब्रिटिश परिवहन आयोग (British Transport Corporation) का पुनर्गठन के कार्य को पूर्ण कर दिया गया। पुनर्गठन के बाद भी ब्रिटिश ट्रान्सपोर्ट कमीशन ब्रिटिश परिवहन की एक बहुत बडी सस्था रही जिसके अधिकार क्षेत्र में समस्त ब्रिटिश रेल परिवहन लन्दन के आसपास का सडक परिवहन एव पर्याप्त नहर परिवहन था। ब्रिटिश ट्रान्सपोर्ट कमीशन की दो-तिहाई आय रेलवे से ही होती थी और सन् १९५५ तक कमीशन का पर्याप्त लाभ होता रहा किन्तु उसके बाद से धीरे-धीरे घाटे की मात्रा बढने लगी। यह घाटा प्रतिवर्ष बढता रहा और सन् १९६२ मे बढकर १०४ मिलियन पौण्ड हो गया।

घाटे की स्थिति को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने सन् १९६१ मे ही डाक्टर रिचार्ड बीचिंग को ब्रिटिश ट्रान्सपोर्ट कमीशन का अध्यक्ष नियुक्त किया जिन्होंने इस स्थिति का पूर्ण अध्ययन करके २७ मार्च, १९६३ को The Reshaping of British Railways नामक रिपोर्ट प्रकाशित की। इससे पूर्व सन् १९६२ मे ही सरकार ने ब्रिटिश ट्रान्सपोर्ट कमीशन को भग करके रेलो का प्रबन्ध रेलवे बोर्ड (Railway Board) को सौंप दिया। यह ब्रिटिश ट्रान्सपोर्ट अधिनियम, १९६२ के अधीन किया गया।

डा० रिचार्ड बीचिंग (Dr Richard Beeching) ने अपनी रिपोर्ट मे रेल सकट के लिए सडक परिवहन द्वारा की जाने वाली प्रतियोगिता को उत्तरदायी ठहराया। रिपोर्ट मे ४,८०० यात्री स्टेशनो, २६६ रेल मार्गों पर यात्रा सेवाओ, ७५०० यात्री डिब्बो एव ३,५०,००० माल डिब्बो को हटाने का सुझाव दिया गया ताकि रेल परिवहन को आर्थिक बनाया जा सके। सरकार ने इस रिपोर्ट की सभी सिफारिशो को स्वीकार कर लिया और इस ओर प्रयत्न किये जाने लगे। किन्तु रेल परिवहन से होने वाले घाटे मे वृद्धि होती रही। सन् १९६७ मे रेलो से होने वाले घाटे की मात्रा १५३ मिलियन पौण्ड थी। सन् १९६८ मे ब्रिटिश पार्लियामेन्ट मे "ब्रिटिश ट्रान्सपोर्ट अधिनियम" (Transport Bill) पास किया गया जिनके अन्तर्गत ब्रिटिश परिवहन प्रणाली के एकीकरण एव आधुनीकरण की व्यवस्था की गयी है। इसी के सन्दर्भ मे ब्रिटिश रेलो के आधुनीकरण की प्रक्रिया अभी चालू है जिसमे भाप के स्थान पर विद्युत एव डीजल के इन्जनो का प्रयोग शीघ्रगामी मान परिवहन सेवाएँ, प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों को जोडने वाली रेलों पर अधिक ध्यान, ढुलाई आदि मे अधिक मशीनीकरण तथा यात्री सेवाओ मे गति, समय की पाबन्दी और आरामदायक सुविधाओ का समावेश आदि सम्मिलित है। ब्रिटेन के कुछ क्षेत्रों मे यात्री-रेलो की गति १०० मील प्रति घटा से भी अधिक है। माल परिवहन की दिशा म ब्रिटिश रेलें अब ऐसे माल को ढोने पर अधिक जोर देती हैं जिनसे उन्हें

लाभ अधिक हो। यात्री सेवाओं में आधुनीकरण एवं यात्रियों की सुविधा पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है ताकि अधिक संख्या में यात्री रेल यात्रा की ओर आकर्षित किये जा सकें। फिर भी ब्रिटेन में निजी कारों एवं स्कूटरों का इतना अधिक प्रचलन होता जा रहा है कि रेल में यात्रा करना अब असुविधाजनक समझा जाता है।

प्रश्न

1 Give a critical account of the development of Railway Transport in England What were its effects on economic life of that country ?

इंग्लैण्ड में रेल परिवहन के विकास की समीक्षा कीजिए। उस देश के आर्थिक जीवन पर इसका क्या प्रभाव पडा ? (पंजाब, १९५९, राजस्थान, १९६२)

2 ' *The chief characteristics of Railway transport in recent years is* the progressive intensification of control of the Railways by the *State Discuss this statement in the light of* Railway Nationalisation in Great Britain

"हाल के वर्षों में रेल परिवहन की प्रमुख विशेषता राज्य द्वारा रेलों के अधिकाधिक नियन्त्रण करने की रही है।" ब्रिटेन में हुए रेलों के राष्ट्रीयकरण के सन्दर्भ में इस कथन को समझाइए। (बिहार, १९५९)

3 Discuss the Railway Policy in England since 1913

सन् १९१३ से इंग्लैण्ड की रेलवे नीति की विवेचना कीजिए।

(जोधपुर १९६३)

२२
जल एव वायु परिवहन
(Water and Air Transport)

प्राचीन और मध्यकाल म भी इगलैण्ड सामुद्रिक परिवहन म अग्रणी रहा है। स्पेन क अजेय आर्मेडा की पराजय को कौन नही जानता ? इसके कारण इगलैण्ड की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। रिचार्ड द्वितीय के कायकाल में एक विशेष विधान स्वीकृत किया गया जिसके अनुसार इगलैण्ड के बने जहाजो द्वारा ही इगलैण्ड का आयात निर्यात व्यापार करना अनिवार्य था। इन जहाजों के चालकों को भी इगलैण्ड का ही निवासी होना आवश्यक था। सन् १६२४ के विधानानुसार वर्जीनिया की तम्बाकू का आयात इगलैण्ड म वहाँ के बने जहाजो द्वारा ही करने का निश्चय किया गया। इन सार प्रयत्नो का अर्थ इगलैण्ड के जहाजी उद्योग और परिवहन को उन्नत करना था। प्रारम्भिक काल म इगलैण्ड क राजाओ ने जहाजी परिवहन की उन्नति क कई प्रयत्न किय थ जैसे (१) जहाज बनाने वाली कम्पनियो को आर्थिक सहायता देना, (२) जगलो म जहाज बनाने योग्य लकडी को अन्य कार्यों क लिए काट जाने पर रुकावट डालना (३) जहाजो के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाना, (४) सन और पटुआ की खेती का प्रोत्साहन देना, (५) पुराने बन्दरगाहों की मरम्मत और उनकी उन्नति करना और नए बन्दरगाहों की स्थापना करना, (६) मत्स्य उद्योग की उन्नति करना, तथा (७) सामुद्रिक-यात्रा को प्रोत्साहन देना।

नौ-वहन विधान (Navigation Laws)

सन् १३८१ म नौ-वहन विधान सबसे पहले स्वीकृत हुआ था। किन्तु सन् १५५९ म इस अधिनियम का रद्द कर दिया गया। सन् १६५१ और १६६० की अवधि म इसको फिर स लागू किया गया। सन् १६५१ के नौ वहन विधान के अनुसार इगलैण्ड की सरकारी नीति इस प्रकार थी

(१) विदेशी जहाजों को व्यापार क कुछ सीमित क्षेत्रो म ही आने की अनुमति थी।

(२) इगलैण्ड और उसके उपनिवेशो के बीच व्यापार या तो इंगलैण्ड के या उनके उपनिवेशो के जहाजो द्वारा ही हो सकता था।

(३) इगलैण्ड क बन्दरगाहो के मध्य होने वाला व्यापार केवल इगलैण्ड के जहाजो द्वारा ही हो सकता था।

(४) अंग्रेजी जहाजो का निर्माण इगलैण्ड मे ही हो सकता था और उनके कप्तान और तीन-चौथाई कर्मचारियो का अंग्रेज होना आवश्यक था।

(५) उपनिवेशवासियो के लिए भी यह आवश्यक था कि वे आपस का व्यापार इगलैण्ड के बने जहाजो द्वारा ही करें।

(६) यह आवश्यक था कि इगलैण्ड के जहाजो द्वारा लाया गया माल किसी बीच के बन्दरगाह पर नही उतारा जा सकता था।

सन् १६६० मे एक नया विधान स्वीकृत किया गया जिससे इगलैण्ड की जहाजी शक्ति और अधिक बढ गयी। इस विधान के अनुसार इगलैण्ड के जल में अन्य देशों के जहाजो को आने पर उनको सामान के साथ जब्त कर लिया जाता था। कुछ परिगणित वस्तुओ का आयात इगलैण्ड मे ही हो सकता था। उपनिवेशो से बाहर जाने वाले जहाजो को प्रतिज्ञा-पत्र लिखना पडता था। इस प्रकार निर्यात और आयात दोनो इगलैण्ड होकर ही पूरे होते थे। इस विधान के अनुसार अमरीका को लोहा और इस्पात उद्योग की उन्नति करने की स्वतन्त्रता नही थी। हालैण्ड की जहाजी-शक्ति भी समाप्त हो गयी थी। इस प्रकार इगलैण्ड का एकाधिकार स्थापित हो गया।

सन् १६६० के नौवहन विधान (Navigation Law) को १६६३, १६७२ और १६९६ ई० मे सशोधित और परिवर्द्धित किया गया जिसके अनुसार सभी विदेशी जहाजो को शत्रु जहाज घोषित किया गया। अन्य उपनिवेशो को जाने वाले जहाज को भी उतना ही कर देना पडता जितना कि जब कोई जहाज इगलैण्ड सामान लाता तो उसे देना पडता।

उपर्युक्त अधिनियमो के अन्तर्गत इगलैण्ड मे जहाजी परिवहन की बहुत उन्नति हुई। इगलण्ड के जहाज सुदूरपूर्व की यात्रा करने लगे। इगलैण्ड के विदेशी-व्यापार मे भी आशातीत वृद्धि हुई। इन विधानो के कारण इगलैण्ड विश्व का सर्वश्रेष्ठ सामान-वाहक, जहाज-निर्माता, कारखानो वाला देश तथा बडा व्यापारिक केन्द्र बन गया। नौ-वहन विधान के विपरीत प्रभाव भी पडे। अमरीका ने इन्ही नियमो से भयभीत होकर स्वतन्त्रता का युद्ध आरम्भ किया जिसके फलस्वरूप अमरीका इगलैण्ड के हाथ से जाता रहा।

(१) **नौ-व्यापार की स्वतन्त्रता**—यह काल जहाजरानी (shipping) की स्वतन्त्रता का काल कहा जा सकता है। इस काल मे बहुत-से देशो को व्यापार करने की स्वतन्त्रता दे दी गयी। सन् १७९६ मे **संयुक्त राज्य अमरीका** को अपने ही जहाजो मे माल लाने की छूट दे दी गयी। यह रिआयत **वेस्ट् इण्डीज** को भी दी

गयी। संयुक्त राज्य अमरीका को सन् १८०७ में कनाडा के साथ व्यापार करने की भी स्वतन्त्रता दी गयी। इसी प्रकार की सुविधाएँ ब्राजील को सन् १८०८ और स्पेनिश-अमरीका गणराज्यों को सन् १८२२ में दी गयी। कई देशों ने भी इंगलैण्ड के इन नौ-वहन विधानों के विरुद्ध आवाज उठाई अतः सम्राट को संसद के द्वारा इन देशों से संधि करने और छूट देने का अधिकार प्राप्त हुआ। इसमें सन् १८२५ और सन् १८४३ के बीच प्रशा, डेनमार्क, स्वीडन, हॉलैण्ड और रूस के साथ सन्धियाँ की गयी।

नौ-वहन विधान में और भी संशोधन किये गये जिससे उपनिवेश माल का नामांकन समाप्त कर दिया गया और उपनिवेशों को विदेशों से सीधा व्यापार करने की आज्ञा दे दी गयी। यद्यपि कुछ प्रतिबन्ध अब भी थे। एशिया और अफ्रीका से समान ब्रिटिश जहाजों में ही आ सकता था।

सन् १८४० के पश्चात का यह काल स्वतन्त्र-व्यापार के पूर्ण ज्वार का काल था, इस समय अमरीका के जहाजरानी व्यवसाय को उन्नति के पूरे अवसर मिले। अमरीकी जहाज इंगलैण्ड से सस्ते और शीघ्रगामी होते थे। पर्याप्त विरोध और असन्तोष के पश्चात सन् १८४९ में नौ वहन विधान स्थगित कर दिया गया। व्यापार सब देशों के लिए निर्बाध कर दिया गया। ब्रिटिश जहाज और ब्रिटिश नाविक होने का प्रतिबन्ध भी हटा लिया गया।

(२) **वाष्पचालित जहाज और जहाजी कला का विकास**—नौ-वहन विधान की समाप्ति ऐसे समय हुई जबकि सामुद्रिक परिवहन में शान्ति हो रही थी। सन् १८५० से १८६० के बीच वाष्पचालित जहाजों का प्रचलन हुआ। लोहे के जहाजों का निर्माण धीरे-धीरे हो रहा था। **विल्किसन** ने सन् १८८७ में लोहे के जहाज का निर्माण किया था परन्तु उस समय यह अनुभव किया गया कि यह प्रकृति के विरुद्ध है। धीरे धीरे लोहे के जहाज भी बनाये जाने लगे। **चारलोट डण्डा** (Chartlotte Dundas) पहला जहाज था जो सफलतापूर्वक वाष्प संचालित किया गया, यह कार्य सन् १८०२ में सम्पन्न हुआ। सन् १८२० में लोहे के जहाज होसलें आयरन वर्क्स में बनने लगे। सन् १८६० तक भी पुराने ढंग के जहाज ही प्रचलित थे। उस समय ६,८७६ पुराने ढंग के जहाज और ४४७ स्टीमर थे जो १,००० से २,००० टन भार के थे। इस प्रकार स्टीमर दूर की यात्रा के लिए अधिक उपयुक्त नहीं समझे जाते थे पहले स्टीमर यात्रियों और डाक को ले जाते थे। वाष्प चालित जहाजों में प्रथम पैसेन्जर-स्टीमर **'कामेट'** सन् १८१२ में बना किन्तु **फलटन अमरीका** में सन् १८०७ में ही बन चुका था। सन् १८१४ में स्लाइड में बना जहाज टेम्स नदी पर यात्रा करता था। सन् १८१३ में स्लाइड में चार जहाज बने, सन् १८१६ में ८ और सन् १८२२ में ४८। सन् १८३८ में ४ जहाज अटलान्टिक को पार कर गये। सन् १८२५ में एण्टरप्राइज जहाज भारत भी पहुँचा। सन् १८५०-६० तक यह सिद्ध हो गया कि ये जहाज व्यावहारिक ही नहीं आर्थिक रूप से लाभप्रद भी रहेंगे। सन् १८६०

तक इगलैण्ड के पास ३० लाख टन के वाष्पचालित जहाज थे। सन् १६०० तक २० लाख टन के जहाज रह गये और १६१३ तक ८,५०,००० टन तक के।

स्वेज नहर के खुल जाने से वाष्पचालित जहाजो को अपनाने की प्रेरणा मिली। जहाजो के निर्माण और प्रसार म चार बातें आवश्यक थी—ईंधन, श्रम की मितव्ययिता, सामान के लिए जहाज और निर्माण का सस्थापन। इन चारों साधनो की उपलब्धि ने इगलैण्ड के इस व्यवसाय को खूब चमका दिया। मोटर तथा टरबाइन के उपयोग को भी जहाजो म स्थान मिला। प्राचीन काल मे भी दो तरह के जहाज थे—**ईस्ट इण्डियामेन और वेस्ट इण्डियन फ्री ट्रेडर।** इस्पात से बने जहाजों को भी दो भागो म विभाजित किया गया—एक का नाम लाइनर और दूसरे का नाम ट्रेम्प पडा। लाइन के छूटने का और स्थानों पर पहुँचने का समय निश्चित था। ट्रेम्प साधारणत भारवाही जहाज होते थे।

(३) जहाज-निर्माण एव माल-वाहन मे इगलैण्ड की सर्वोच्चता—लौह और इस्पात के जहाज बनाने म इगलैण्ड विश्व का सर्वोपरि देश रहा है। युद्ध से पूर्व जहाजरानी और मामरिक इन्जीनियरिंग उद्योग मे २ लाख श्रमिक नियोजित थे तथा ३५० लाख पौण्ड की पूँजी लगी हुई थी। इससे वार्षिक आय ५० पौण्ड की होती थी। युद्ध स पूर्व का जहाजी उत्पादन सभी विदेशी जहाजरानी कारखानो से भी अधिक था। इस प्रकार युद्ध आरम्भ होन से पहले इगलैण्ड की व्यापारिक-जहाजरानी सबसे उत्तम थी। जहाजो की निर्माण सख्या और टनेज का विवरण इस प्रकार है

वर्ष	सख्या	टन भार
१६१३		
जहाज १,००० हजार टन से कम भार वाले	८,८५५	११,००,०००
जहाज १,००० हजार टन से अधिक भार वाले	३,७४७	१,०१,७६,०००
कुल	१२,६०२	१,१२,७३,०००

इस काल मे विदेशी प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई। हालैण्ड का जहाजी एकाधिकार समाप्त हुआ और इगलैण्ड की प्रभुता सर्वोपरि हो गयी। सभी देशो मे राष्ट्रीयता की भावना ने इस उद्योग के विकास मे सहायता की। सन् १८८१ मे फ्रास की सरकार ने जहाजरानी के लिए आर्थिक सहायता देना प्रारम्भ किया। सन् १८८५ मे जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया, जापान और अमरीका मे भी अधिक सहायता देने की प्रथा प्रचलित हुई। सन् १८६० तक आर्थिक सहायता और सरक्षणवादी नीति के

कारण जर्मनी की जहाजी शक्ति बहुत बढ़ गयी थी। विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से बचने के लिए इंगलैंड मे रिंग (Ring) नामक जहाजी कम्पनियो का सगठन बन गया। इंगलैंड की जहाजी कम्पनियों ने डेफर्ड रिबेट (Deferred Rebate) की प्रथा भी चलायी। इस समय एकीकरण की प्रवृत्ति जोरो पर थी अतः सरकार द्वारा सरक्षण तथा आर्थिक सहायता दी गयी।

(४) प्रथम युद्ध- यह काल प्रथम महायुद्ध का था। इस काल मे ग्रेट ब्रिटेन के ८० लाख टन से अधिक और मित्र राष्ट्रों के १० लाख टन से अधिक के जहाज नष्ट हो गये थे। टैंक, स्टीमर आदि जहाजो की विशेष क्षति हुई। युद्ध मे नष्ट होने के कारण जहाजो की क्षति पूरी करने के लिए जहाज निर्माण कार्य को प्रोत्साहन देना पड़ा। जो जहाज उपलब्ध थे वे सभी सैनिक कार्य मे लगे थे। उन वस्तुओं का आयात (जिनकी आवश्यकता युद्ध के लिए नही थी) बहुत कम कर दिया गया। इस काल मे जहाजी किराये मे वृद्धि हुई। सरकार ने जहाजी कम्पनियो पर अतिरिक्त लाभ-कर लगाया। श्रमिक दल ने सभी जहाजो पर अधिकार करने के लिए सरकार से अनुरोध किया, परन्तु यह कार्य कठिन था। इस समय सभी जहाजो पर केवल सरकारी नियन्त्रण था। इस कार्य के लिए नियन्त्रणकर्ता की नियुक्ति हुई।

सन् १९१७ में जब पनडुब्बी जहाजो का कार्य तेजी से होने लगा, तो मित्र राष्ट्रों ने जहाज पर अन्तरराष्ट्रीय नियन्त्रण करना आरम्भ किया जिससे युद्ध मे सामान और सैनिक शीघ्रता से पहुँच सकें। युद्ध सम्बन्धी सामानो को मित्र-राष्ट्रों मे ठीक-ठीक बाँटने के लिए नवम्बर सन् १९१७ मे एक **एलाइड मेरीटाइम ट्रासपोर्ट कौन्सिल** की स्थापना की गयी जिसका प्रधान कार्यालय लन्दन म था। सन् १९१८ मे यह कौन्सिल भग कर दी गयी।

(५) विदेशी प्रतिस्पर्द्धा—इंगलैंड के सामुद्रिक परिवहन का विकास स्वतन्त्र वातावरण मे हुआ था। किसी प्रकार का राज्य द्वारा प्रतिबन्ध नही लगाया गया फिर भी जब-जब इस उद्योग में कठिनाई का अनुभव हुआ सरकार ने तत्क्षण सहायता की। जब कैसर विलहैम ने सबसे तीव्रगति का रिकार्ड स्थापित किया और यह अनुभव होने लगा था कि सामुद्रिक परिवहन की जीत का सेहरा जर्मनी के माथ पर बंधने वाला है तो सन १९०३ म इंगलैंड की सरकार ने कनार्ड लाइन को २६,००,००० पौण्ड का ऋण प्रदान किया जिस पर २¾ प्रतिशत का ब्याज निर्धारित था। इसी प्रकार जब वैस्ट-इण्डीज और इंगलैंड के बीच व्यापार बढ़ाने का प्रश्न आया तो ४०,००० पौण्ड आर्थिक सहायता प्रति वर्ष देना तय किया गया।

इस प्रकार युद्धोपरान्त काल मे जब जर्मनी स प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो गयी तो सयुक्त राज्य अमरीका और जापान प्रतिद्वन्द्वी क रूप मे सामने आये। युद्धोत्तरकाल मे जहाज-निर्माण उद्योग अन्य कई कठिनाइयो से अस्तव्यस्त था। सन् १९१४ और १९२५ मे विश्व के देशो की सामुद्रिक परिवहन म सर्वोच्चता निम्नलिखित तालिका मे प्रकट होती है

विश्व का सामुद्रिक परिवहन

देश	कुल टनेज		प्रतिशत विश्व टनेज	
	१ जुलाई, १९१४ (मिलियन टन)	१ जुलाई, १९२५ (मिलियन टन)	१ जुलाई, १९१४	१ जुलाई, १९२५
विश्व	४२.५	५९ ८	१०० ०	१०० ०
ब्रिटिश साम्राज्य	२० ३	२१ ५	४७ ७	३६ ६
स० रा० अमरीका	१ ८	११ ६	४ ३	१९ ७
जापान	१ ६	३ ७	३ ९	६ ३
फ्रांस	१ ९	३ ३	४ ५	५.६
जर्मनी	५ १	३ ०	१२.०	५ १
इटली	१ ४	२ ९	३ ४	४ ९
हॉलैण्ड	१ ५	२ ६	३.५	४ ४
नार्वे	१.९	२ ६	४ ५	४ ४
स्वीडन	१ ०	१ २	२ ३	२.०
स्पेन	० ९	१.१	२ १	१.९
डेनमार्क	० ८	१ ०	१.८	१ ५
यूनान	१ ८	० ९	१ ८	१ ५
बेल्जियम	० ३	०.५	०.७	०.९
अन्य देश	३.२	२.९	७ ५	५.०

मोटर जहाजों में भी सन् १९१४ के बाद आशातीत उन्नति हुई है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :

देश	संख्या	टन भार
ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड	३०५	७,५४,४९५
नार्वे	२३३	३,४५,६६५
स्वीडन	२११	२,७७,६४७
जर्मनी	१६६	२,७५,६२६
संयुक्त राज्य अमरीका	१६७	२,६७,११९
डेनमार्क	११२	१,६१,८३७
इटली	९६	१,४२,१५८
हालैण्ड	१२८	१,३८,३९७
अन्य देश	६६७	३,२०,४९९

सरकारी नियन्त्रण भी युद्धोत्तर काल में समाप्त हो गया। सन् १९२१ के बाद जहाजी परिवहन में मन्दी आरम्भ हुई। इसका कारण था विदेशी व्यापार की कमी। यह मन्दी सन् १९२६ तक चलती रही। सन् १९२६ के बाद विदेशी व्यापार

की उन्नति के कारण जहाजी-परिवहन की दशा सुधरने लगी। सन १९२७-३० के बीच मे कुल जहाजो के उत्पादन का ५३% ब्रिटेन में ही तैयार होने लगा।

इस काल की प्रमुख विशेषताएँ थीं

(१) विदेशी व्यापार की कमी के कारण जहाजी किराये मे कमी होना।

(२) जहाज निर्माण-उद्योग का स्थगित हो जाना।

(३) जहाज-उद्योग और परिवहन मे श्रमिकों की छंटनी होना।

(४) श्रमिकों की मजदूरी मे कमी होना।

(५) जहाजी कम्पनियो के लाभ मे कमी।

(६) **वर्तमान स्थिति**—द्वितीय महायुद्ध काल मे ग्रेट-ब्रिटेन के बहुत-से जहाज नष्ट कर दिये गये। जर्मनी, इटली, जापान के पनडुब्बी जहाजों की तीव्र कार्यवाही के कारण ब्रिटेन को काफी घाटा उठाना पडा। युद्धकाल मे सभी प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

युद्ध के बाद अन्य देशो मे जहाजरानी का विकास अत्यन्त तेजी से हुआ किन्तु फिर भी आज ब्रिटेन का स्थान समुद्री परिवहन की दृष्टि से विश्व मे द्वितीय है। ब्रिटेन की जहाजी क्षमता विश्व की कुल जहाजी क्षमता की १२ प्रतिशत है। जहाँ तक व्यापारिक जहाजी बेडे का प्रश्न है, ब्रिटेन का बेडा आज भी विश्व के सबसे बडे जहाजी बेडो मे से है। सन् १९६७ से पहले के दस वर्षों मे ब्रिटेन ने अपने व्यापारिक बेडे मे ९ प्रतिशत की वृद्धि की और इस प्रकार इसकी क्षमता २० मिलियन से २१ ७ मिलियन टन हो गयी। ब्रिटेन को जहाजरानी से प्रतिवर्ष २४६ मिलियन पौण्ड की विदेशी आय प्राप्त होती है जो कि उसके कुल अदृश्य निर्यात का एक बडा भाग है। इस समय के ब्रिटेन के पास अनेक विशाल यात्री जहाज (Liners) है, जिनमे से प्रत्येक की क्षमता पचास हजार टन के आसपास है। कुछ वर्षों से विशाल तेलवाहक जहाजों (Tankers) का निर्माण ब्रिटेन मे होने लगा है। सन् १९६२ मे २२ तेलवाहक जहाज बनाये गये और सन् १९६४ मे २६ ऐसे जहाज बन रहे थे। इनमे से प्रत्येक की क्षमता ५०,००० टन से एक लाख टन के बीच मे थी। मार्च सन् १९६५ को एक लाख टन क्षमता वाले तेलवाहक जहाज को सर्वप्रथम पानी मे उतारा गया। जिसका नाम 'ब्रिटिश एडमिरल' रखा गया है। जहाँ तक यात्री जहाजों का प्रश्न है पिछले वर्षों मे ब्रिटेन ने Oriana (42000 g t) तथा Canberra (46000 g t) नामक यात्री वाहक जहाज बनाये जो प्रशान्त महासागर म चलते हैं। सन् १९६९ में Queen Elizabeth 2 (58000 g t) का निर्माण हुआ। यह जहाज अटलांटिक महासागर मे यात्री सेवाओ के काम आता है।

वायु परिवहन
(Air Transport)

वायु परिवहन के विकास मे भी ब्रिटेन का स्थान विश्व के प्रमुख देशो मे है। ब्रिटेन ने व्यापारिक स्तर पर वायुसेवा प्रथम विश्व युद्ध के बाद आरम्भ की जबकि

२५ अगस्त, १६१६ को लन्दन और पेरिस के बीच वायु सेवा आरम्भ की गयी। किन्तु इससे पहले भी सन् १६११ से ब्रिटेन ने वायुयान द्वारा डाक भेजने का काम आरम्भ कर दिया था। द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने तक ब्रिटेन में 'इम्पीरियल एयरवेज लि०' एवं 'ब्रिटिश एयरवेज लिमिटेड' नामक दो कम्पनियों की प्रधानता रही जिन्हें सरकारी डाक-लाने-ले जाने का ठेका प्राप्त था तथा सरकार से उन्हें समय-समय पर अनुपूर्ति (Subsidy) मिलती रहती थी। युद्ध आरम्भ होते ही इन दोनों को मिलाकर ब्रिटिश ओवरसीज एयरवेज कार्पोरेशन (B O A C) का गठन किया गया। युद्ध के बाद महत्त्वपूर्ण उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की नीति के अन्तर्गत सन् १६४६ में एयर कार्पोरेशन्स एक्ट पास करके निम्न दो निगमों की स्थापना की गयी

(i) ब्रिटिश ओवरसीज एयरवेज कारपोरेशन (B O A C)—यह ब्रिटेन से विश्व के अन्य भागों तक लम्बी वायु सेवाएँ प्रदान करता है। इसकी सेवाएँ ब्रिटेन से यूरोप, मध्य पूर्व, सुदूर पूर्व, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, उत्तरी व दक्षिणी अमरीका तक जाती हैं। सन् १६६५ में इस निगम की सेवा में जितने विमान थे वे सब जेट विमान थे जिनमें बोइंग, कोमेट एवं वाइकर्स प्रमुख थे। इस निगम ने पिछले वर्षों में वायु सेवा के मार्ग में अत्यन्त ख्याति प्राप्त की है किन्तु फिर भी चालू खाते में प्रति वर्ष इसे घाटा रहा है। सन् १६५७ के बाद से इसने प्रति वर्ष घाटा सहन किया है और सन् ६४ में इसका कुल घाटा ६० ५ मिलियन पौण्ड था। मार्च सन् १६६५ में ब्रिटिश सरकार ने निगम के इस घाटे की रकम को अपलिखित (write off) कर दिया, आकस्मिकताओं के लिए एक सुरक्षित कोष स्थापित किया तथा निगम के प्रबन्ध में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये। फलत सन् १६६५ से यह निगम लाभ प्राप्त करने लगा है।

(ii) ब्रिटिश यूरोपियन एयरवेज (B E A)—यह निगम ब्रिटेन एवं पड़ोसी देशों के लगभग ८० स्थानों पर वायु सेवाएँ प्रदान करता है। इसके बेड़े में **कोमेट, वेनगार्ड, वाइकाउन्ट** नामक जेट विमान हैं। सन् १६६४ में ट्राइडेन्ट (Trident) नामक तीन एन्जिन वाला नया विमान प्रयुक्त किया जाने लगा जिसकी गति ६०० मील प्रति घण्टा है और जो चार सौ-पाँच सौ मील की सेवाओं के लिए अधिक उपयुक्त है। सन् १६६५ तक इस प्रकार के २४ विमान इसकी सेवा में प्रयुक्त हो रहे थे। सन् १६५५ से ६१ तक यह निगम लाभ प्राप्त करता रहा किन्तु इसके बाद दो वर्षों तक नये विमानों में पूँजी लगाने के कारण इसे हानि हुई। सन् १६६४ के बाद से इसमें फिर लाभ हो रहा है। सन् १६६५ में लाभ की राशि १३ लाख पौण्ड थी।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सन् १६६० से नागरिक वायु उड्डयन (लाइसेंस) अधिनियम के अन्तर्गत इन दोनों निगमों का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया है और अब नये क्षेत्रों के लिए 'निजी वायु कम्पनियों' को भी अनुमति दी जाने लगी है

इस समय ब्रिटेन मे ऐसी लगभग ३० कम्पनियाँ हैं जो कि ऐसे मार्गों पर सेवाएँ प्रदान करती हैं जहाँ उनकी इन निगमो से प्रतियोगिता न हो। व्यवहार मे ब्रिटेन का लगभग सब महत्त्वपूर्ण वायु परिवहन उपयुक्त दो सरकारी निगमो द्वारा सचालित होता है।

ब्रिटेन मे लगभग १२० नागरिक हवाई अड्डे हैं जिनमे से १६ का नियन्त्रण सीधा मन्त्रालय से है। प्रति वर्ष ये हवाई अड्डे १८३ लाख यात्रियों को सेवाएँ प्रदान करते हैं जिनमे मे आधे यात्री लन्दन के हीथरो (Heathrow) हवाई अड्डे पर चढते-उतरते हैं।

प्रश्न

1 What do you know about Britains shipping industry? How far has it been responsible for the making of modern Britain
ब्रिटेन के जहाज उद्योग के विषय में आप क्या जानते हैं? ब्रिटेन को आधुनिकता प्रदान करने मे यह कहाँ तक सफल हुआ। (राजस्थान, १६६०)

2 Describe briefly the development of shipping in England during the 19th century
उन्नीसवी शताब्दी मे इगलैण्ड मे जहाजरानी के विकास का सक्षिप्त विवरण दीजिए। (पटना, १६६०)

3 How for did the growth of shipping help the development of British industry in the 19th century? What part did it play in meaning the united kingdom a Colonial Power?
उन्नीसवी शताब्दी मे ब्रिटिश उद्योग के विकास मे जहाजरानी के विकास ने क्या सहायता प्रदान की? ब्रिटेन द्वारा औपनिवेशिक साम्राज्य के गठन मे इसका क्या योग रहा। (इलाहाबाद, १६६५)

२३

सहकारिता आन्दोलन

(Co-operative Movement)

सहकारिता जीवन की ऐसी पद्धति का सूचक हो गया है जो पूँजीवाद और साम्यवाद की बुराइयों और दोषों का निराकरण करती है। यह उन निराश्रितों, कम साधन वाले व्यक्तियों के लिए रामबाण औषधि बन गयी है जो स्वयं के साधनों से आर्थिक प्रगति की प्राप्ति करना चाहते हैं। इस प्रकार का आन्दोलन इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के बाद ही अस्तित्व में आया है। इंगलैण्ड में इस आन्दोलन का जन्म उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन के रूप में हुआ। यह श्रमिकों की उस भावना का प्रतिरूप था जिसमें उन्होंने यह अनुभव किया कि उन्हें स्वावलम्बन और स्वसाधनों के विकास के दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए। सम्भवतया उनकी इस प्रकार की विचारधारा के मूल में यह भावना अन्तर्निहित थी कि शोषण से किस प्रकार मुक्ति प्राप्त की जाय। विभिन्न देशों में भी यह आन्दोलन सामाजिक असन्तोष और असमान वितरण की भावना का द्योतक रहा है। जहाँ-जहाँ पूँजीवादी पद्धति से उत्पन्न बुराइयों का विरोध करना पड़ा, वहाँ इस प्रकार की उदार राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक विचारधाराओं ने जन्म लिया, जिससे मानव-समाज मुक्ति की श्वाँस ले सके। सहकारिता अपने आप में इसी प्रकार का स्वेच्छापूर्वक चलाया हुआ स्वावलम्बन और स्वात्म-निर्भरता के सिद्धान्त का आन्दोलन है जिसने विश्व के कोटि मानवों को राहत दी है और आज यह विश्वव्यापी आन्दोलन और विचारधारा हो गयी है।

सहकारिता आन्दोलन का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

इंगलैण्ड में सहकारिता आन्दोलन श्रमिकों द्वारा आरम्भ किया गया था। यह आन्दोलन औद्योगिक क्रान्ति के बाद आरम्भ हुआ, क्योंकि श्रमिकों ने यह अनुभव किया कि मजदूरों के रूप में उन्हें मध्यस्थों पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः उन्होंने श्रमिकों के रूप में नियोजकों से पूरी मजदूरी पाने के लिए अपने

को श्रम-सघो मे सगठित किया और मध्यस्थो के शोषण से बचने के लिए सहकारी समितियो के रूप मे सगठित किया। कुछ सहकारी समितियाँ रॉबर्ट ओवन (Robert Owen) के उपदेशो से पहले ही प्रारम्भ हो गयी थी परन्तु इन सहकारी-सस्थाओ को वास्तविक प्रेरणा रॉबर्ट ओवन के प्रयोगो से ही मिली।

(१) उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन

इगलैण्ड मे *उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन* रोचडेल-इक्विटेबुल-पॉयनियर्स सस्था के प्रारम्भ से हुआ जिसकी स्थापना सन् १८४४ मे २८ जुलाहो द्वारा एक-एक पौण्ड के अनुदान से की गयी। इन जुलाहो ने अपनी दुकान टोडलेन व रोचडेल मे खोली। यह एक प्रयोग था जो सफल रहा। बाद मे ये सिद्धान्त रोचडेल योजना के नाम से विख्यात हुए। ये सिद्धान्त निम्नलिखित थे

(१) माल का विक्रय बाजार मूल्य पर किया जाय। (२) तीन माह मे लाभाश का वितरण सदस्यो की खरीद के अनुपात से किया जाय। (३) पूंजी किश्तो मे जमा की जाय। (४) पूंजी पर ५% ब्याज दिया जाय। (५) ऋण या उधार नही दिया जाय। (६) आय का कुछ भाग शिक्षा और सुधार पर व्यय किया जाय। (७) सभी मामलो म सदस्यो का समान मतदान हो चाहे उनका अशदान कम या अधिक हो। रोचडेल सहकारी सस्था की प्रगति इन आँकडो से प्रकट है

वर्ष	सदस्य सख्या	बिक्री (पौण्डो मे)
१८४५	७४	७१०
१८५५	१,४००	४४,९०२
१८६५	५,३२६	१,९६,२३४
१८७५	८,४१५	३,०५,६५७

इस प्रगति से उत्साहित होकर रोचडेल समिति ने अपना कार्यक्षेत्र और भी विस्तृत कर लिया। सन् १८४७ मे लिनन और ऊनी वस्त्रो, १८५० मे गोश्त और १८६७ मे डबलरोटी के क्षेत्र म भी व्यवसाय चालू किया गया। सन् १८६७ मे तो समिति ने अपनी बेकरीज (Bakeries) भी स्थापित कर ली थी। इसी समय आन्दोलन उत्तरी इगलैण्ड और दक्षिणी स्कॉटलैण्ड मे भी फैलने लगा। यह बात स्मरणीय है कि यह आन्दोलन प्रारम्भिक काल मे सुव्यवस्थित ढग से नही चल सका क्योंकि थोक व्यापारियों की ईर्ष्या, सदस्यो पर स्थानीय व्यापारियो का ऋण, व्यवस्थापको की बेईमानी, असीमित उत्तरदायित्व, साधारण सहकारी अधिनियमो की अनिश्चितता, कुछ ऐसी कठिनाइयाँ थीं जिससे आन्दोलन को पूर्ण गति प्राप्त नही हुई। ये वैधानिक आपत्तियाँ १८४६, १८५२ और १८६२ के अधिनियमो द्वारा दूर कर दी गयीं। अन्तिम अधिनियम ने समितियो का उत्तरदायित्व सीमित कर दिया। इस अधिनियम का तात्कालिक प्रभाव पडा। सन् १८६३ मे ४५४ रोचडेल प्रकार की समितियाँ थीं जिनमे से ३८१ समितियो की सदस्य सख्या १,०८,००० थी और

उनका वार्षिक व्यवसाय २६,००,००० पौण्ड का था। सन् १६०० के बाद उपभोक्ता भण्डारों का सगठन आरम्भ हुआ। इसके फलस्वरूप सदस्य-संख्या में भारी अभिवृद्धि हुई। मांस, दूध, रोटी तथा अन्य प्रकार के खाद्य पदार्थ भी इन भण्डारों द्वारा बेचे जाने लगे। सन् १६२८ में डा० फे के मतानुसार सम्पूर्ण जनसंख्या के २० प्रतिशत व्यक्ति उपभोक्ता सहकारी भण्डारों से सम्बन्ध रखते थे। प्रथम महायुद्ध के समय सहकारी भण्डारों ने ही खाद्य-पदार्थों, कपड़ा, तम्बाकू, साबुन इत्यादि का अधिकांश वितरण किया था। ये भण्डार ही युद्ध में पीड़ित लोगों के अस्पतालों को भी विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ देते थे।

सन् १८६३ में ४३ सहकारी समितियों ने (जिनकी सदस्य संख्या १८,३३७ थी), सहकारी थोक समिति की स्थापना की और सन् १८६४ में मैनचेस्टर में काम करना आरम्भ कर दिया। इन समितियों की पूँजी पुदस्य समितियों से प्राप्त की गयी। जो समितियाँ इनकी सदस्य थीं, उन्हें निश्चित ब्याज और खरीद पर लाभांश प्राप्त होना था। यह आन्दोलन उन स्थानों में अधिक फैला जहाँ श्रमिक लोग अधिक थे। सन् १८६० तक सहकारी आन्दोलन के मार्ग में अनेक वैधानिक कठिनाइयाँ थीं। ईसाई समाजवादी विचारकों एफ० डी० मोरिस, चार्ल्स किंगसले, वेनसिटार्ट नील आदि के अथक प्रयत्नों से सहकारी आन्दोलन को वैधानिक रूप प्राप्त करने में सहायता प्राप्त हुई क्योंकि इन लोगों की विचारधाराओं से प्रभावित होकर सहकारी-विधान स्वीकृत हुए।

सहकारी-आन्दोलन इस प्रकार वैधानिक रूप प्राप्त करके निरन्तर बढ़ने लगा। सन् १८६८ में सहकारी थोक समिति, स्कॉटलैण्ड में भी प्रारम्भ की गयी। 'इंगलिश सहकारी थोक समिति' जिसकी बिक्री सन् १८७० में सात लाख पौण्ड थी सन् १८६० में बढ़कर सत्तर लाख पौण्ड हो गयी। इसी प्रकार 'स्कोटिश सहकारी थोक समिति' की बिक्री सन् १८७० में एक लाख पौण्ड से बढ़कर सन् १८६० में लगभग २३ लाख पौण्ड हो गयी।

इसी समय इंगलैण्ड और वेल्स में भण्डारों की संख्या ७६४ से बढ़कर १,१३४ हो गयी तथा सदस्य संख्या ४,७१,४७४ से बढ़कर १,१३,३६,६६६ हो गयी। सन् १८६० में लार्ड रोजबेरी ने कहा था, "सहकारी आन्दोलन अपने आप में एक राज्य है।" छब्बीस वर्षों में बिक्री ४७,१२,००,००० पौण्ड और लाभांश ४,००,००,००० पौण्ड रहा। सदस्य संख्या नेपोलियन की रूस को कूच करने वाली सेना की आधी और पूँजी, रानी एन के समय राष्ट्रीय ऋण के बराबर थी। सहकारी वार्षिक आय विलियम तृतीय के शासनकाल में प्राप्त सरकारी आय के बराबर थी।

सहकारी उपभोक्ता आन्दोलन को प्रोत्साहन और आश्रय गृहिणियों द्वारा दिया गया। सन् १८८३ में महिला सहकारी गिल्ड स्थापित किया गया जिसने सहकारी सिद्धान्तों के प्रचार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

धीरे-धीरे आंग्ल सहकारी थोक समिति ने उत्पादन का कार्य भी अपने हाथों मे ले लिया और सन् १८६० मे उसके स्वय के ६ जहाज थे। चाकलेट, ऊनी वस्त्र, बिस्कुट, मिठाइयाँ, साबुन, जूते और अन्न मिलो का कार्य भी इन समितियो ने अपने हाथ मे ले लिया। स्कॉटिश सहकारी थोक समिति ने उत्पादन के क्षेत्र मे कार्यारम्भ किया और १६२३ में आंग्ल और स्कॉटिश सहकारी थोक समिति के रूप मे एकीकरणात्मक सगठन हो गया। इस समिति का उत्पादन-कार्य अधिकांशत ब्रिटेन से बाहर चला करता था। उत्पादन के विविध क्षेत्रो मे इन समितियो ने अपना अधिकार जमा लिया—कोयला, खान, गहूँ, फल, डेरी-फार्म, चाय बागान की व्यवस्था, कांच, वर्तन इत्यादि उद्योगो का नियन्त्रण भी अपने हाथ मे ले लिया। ये समितियां चाय की सबसे बडी आयातक थी। दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य इन समितियो का यह था कि इन्होने कनाडा, रूस, आस्ट्रेलिया की कृषि सहकारी समितियो स सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इन समितियो के वितरणात्मक विभागो ने सबसे पहले न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को अपनाया।

आंग्ल सहकारी थोक समिति बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे सबसे बडी व्यापारिक सस्था हो गयी जिसके पास सबसे अधिक भूमि का स्वामित्व था। सबसे बडी आटा मिल, सबसे बडी सूसं फल-मेवो की आयातक और इमारती सामान मे सरकार से दूसरा नम्बर इस समिति का था। इस समिति ने बैंकिंग का व्यवसाय भी विकसित किया जिसका कुल लेन देन १६२५ मे ५८,८०,००,००० पौण्ड का था। इस सयुक्त समिति ने सहकारी बीमा समिति भी प्रारम्भ की। श्री सी० आर० फे ने १६२५ म लिखा था—"ब्रिटिश सहकारी आन्दोलन की सबसे प्रमुख विशेषता **खुदरा उत्पादन है जो कि विभिन्न भण्डारों के आवश्यकतानुसार सचालित होता है।"** प्रथम महायुद्ध के पश्चात् सहकारी भण्डारो की प्रगति नीचे की सदस्य-सख्या तालिका से स्पष्ट है

सहकारी भण्डारों की प्रगति

वर्ष	१६१४	१६२५	१६३५	१६४७
सदस्य सख्या	३०,५३,७७०	५०,००,०००	७४,००,०००	१,००,००,०००

इसी प्रकार सहकारी थोक समिति ने भी प्रगति की और सन् १६४८ मे आंग्ल सहकारी थोक समिति की पूँजी १,६८० लाख पौण्ड थी और सुरक्षित कोष ५३ लाख पौण्ड था।

सहकारी-उपभोक्ता आन्दोलन ने इगलैण्ड मे अपनी जडें गहरी जमा ली हैं। उसने एक ओर लाभ की प्रवृत्ति और तत्सम्बन्धी शोषण को समाप्त किया है वहाँ

दूसरी ओर श्रमिकों की मजदूरी और आर्थिक दशा सुधारने में सहायक हुआ है। सहकारी समितियों की ऊँची मजदूरी ने श्रम-संघों को अन्य क्षेत्रों में भी अपनाने की प्रेरणा दी है। इन समितियों ने शिक्षा, बालक-वयस्क कल्याण और बीमा के कार्य द्वारा सामाजिक सेवा भी की है। सहकारिता ने सदस्यों में आत्म-निर्भरता और ईमानदारी आदि गुणों का संवर्द्धन भी किया है।

(२) उत्पादक सहकारी समिति आन्दोलन

जिन ईसाई समाजवादी विचारकों ने उपभोग के क्षेत्र में सहकारिता का प्रचार किया उन्होंने यह भी अनुभव किया कि स्वयं शासित कल-कारखानों में श्रमिकों को अधिक लाभांश प्राप्त हो सकता है। अतः सन् १८५४ में उत्पादक समितियों की स्थापना की गयी। आटे की चक्की, सिलाई, लौह-इस्पात उद्योगों में भी सहकारी सिद्धान्त लागू किया गया। सहकारी कारखाना में श्रमिक स्वयं पूँजी और श्रम लगाते थे। श्रमिकों को श्रम के लिए पारिश्रमिक, पूँजी के लिए ब्याज और लाभांश मिलता था। सन् १८५४ से १८८० के मध्य उत्पादन सहकारिता ने नवीन प्रेरणा प्राप्त की। सन् १८८२ में एक सहकारी उत्पादन समिति अस्तित्व में आयी। किन्तु इनमें से कई समितियों का जीवन अल्पकालीन था और सन् १८८३ तक केवल १५ समितियाँ ही जीवित रह सकीं। जब उपभोक्ता समितियों ने उत्पादन कार्य भी अपने हाथ में ले लिया तो इन्होंने आपत्ति प्रस्तुत की परन्तु उनकी यह आपत्ति अस्वीकार कर दी गयी और सहकारी थोक समितियाँ उत्पादक समितियों से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुईं। इस शताब्दी में उत्पादक-समितियों की संख्या १०० तक पहुँची परन्तु प्रथम महायुद्ध तक बहुत-सी समितियाँ समाप्त हो गयी थीं। उसके पश्चात् उत्पादन क्षेत्र में सहकारिता ने कोई महत्त्वपूर्ण प्रगति नहीं की।

(३) कृषि-सहकारिता

श्री सी० आर० फे के शब्दों में हम कह सकते हैं—"१६०० से पूर्व कृषि के क्षेत्र में सहकारिता नाममात्र का आन्दोलन था जिसके पीछे असफलताओं का इतिहास भरा है।" सन् १६०० तक इस क्षेत्र में १२ समितियाँ थीं। आयरलैण्ड में इस प्रकार की समितियाँ अधिक थीं। सन् १६०५ में थोक पूर्ति एजेन्सी के रूप में 'कृषि-सहकारी फेडरेशन' (Agricultural Co-operative Federation) की स्थापना की गयी। आयरलैण्ड की भाँति यहाँ ऐसी समितियों को राज्य द्वारा सहायता प्राप्त नहीं थी, परन्तु राज्य द्वारा इन्हें प्रोत्साहन दिया जाता था। बाद में सरकार लघु-क्षेत्र आन्दोलन में इनका उपयोग करने लगी।

(४) अन्य समितियाँ

(क) मार्केटिंग सहकारी समितियाँ (Co-operative Marketing Societies)—सन् १६२३ तक इन समितियों की संख्या १,००० तक पहुँची और सदस्य संख्या १,५०,००० तक। सन् १६३५ में यह संख्या आधी रह गयी। इस प्रकार बाजार क्षेत्र में इन समितियों ने विशेष प्रगति नहीं की।

(ख) साख सहकारिता (Credit Co-operation)—इस प्रकार की समितियो ने भी इस देश मे अधिक प्रगति नही की है। यूरोप के अन्य देशो की अपेक्षा यहा ब्याज की दर कम थी। इसलिए लोगो ने सहकारी ऋण-समितियो की उपादेयता अनुभव नही की। सन् १८७५ के आर्थिक सकट का प्रभाव भी जैसा यूरोपीय देशो पर पडा वैसा बुरा प्रभाव यहां अनुभव नही किया गया जिससे कि सहकारिता आन्दोलन को बढावा मिल सके। सन् १९१३ मे सरकार ने एक आयोग की स्थापना की जिसका उद्देश्य सहकारी साख समितियो की असफलता के कारणो का अध्ययन करना था। आयोग ने अपने प्रतिवेदन मे बताया कि (१) व्यापारी किसानो को अधिक समय के लिए भी सामान उधार दिया करते थे अत उन्हे सहकारी साख समितियो से ऋण लेने की आवश्यकता अनुभव नही हुई। (२) ऋण लेकर कृषक नकदी खरीद की अपेक्षा उधार खरीद अधिक पसन्द करते थे। (३) असीमित दायित्व की जोखिम को कम ही लोग लेना चाहते थे। (४) सयुक्त पूंजी वाले बैंको की शाखाओ का पर्याप्त विस्तार हो चुका था जिनसे किसान ऋण लिया करते थे। (५) सहकारी साख समिति के सदस्य अधिकतर एक दूसरे के पडौसी होने के कारण ऋण नही लेना चाहते थे क्योकि उनकी वास्तविक आर्थिक दशा की जानकारी उनके दूसरे पडौसी को हो जाती थी।

सहकारिता के व्यापक सिद्धान्तो का जितना प्रभाव इगलैण्ड मे दृष्टिगोचर होता है उतना कई देशो मे दृष्टिगोचर नही होता। जनसाधारण म कोआपरेटिव काग्रेस, कोआपरेटिव यूनियन, कोआपरेटिव न्यूज, कोआपरेटिव वीमेन गिल्ड और कोआपरेटिव पार्टी आदि शब्द खूब प्रचलित हैं। ज्यो-ज्यो राजनीतिक चेतना फैलने लगी, श्रमिको ने यह अनुभव किया कि सहकारिता को भी राजनीति मे प्रवेश करना चाहिए। इस प्रकार का पहला प्रश्न विलियम मेक्सवेल (William Maxwell) द्वारा १८९७ मे उठाया गया था। सन् १९१७ मे स्वान सी काग्रेस म एक कोआपरेटिव पार्लियामेन्टरी प्रतिनिधि समिति का गठन किया गया। इस समिति ने सन् १९२० म कोआपरेटिव पार्टी (Co-operative Party) को जन्म दिया। सन् १९२६ मे इस पार्टी के ५ सदस्य ससद मे थे। पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् सन् १९२७ मे श्रम-दल और कोआपरेटिव पार्टी मे समान हित होने के कारण समझौता हो गया। इस प्रकार सरकारी प्रतिनिधि श्रम दल (Labour Party) के साथ राजनीतिक क्षेत्र मे गतिशील है। पिछली शताब्दी में 'कोआपरेटिव न्यूज' नामक पत्र निकाला गया था। प्रथम महायुद्ध के बाद सहकारी सिद्धान्तो के प्रचार के लिए मैनचेस्टर मे 'कोआपरेटिव कालेज' खोला गया। विगत वर्षो मे सहकारी आन्दोलन ने शोध और गवेषणा कार्य को भी अपने हाथो मे लिया है। इस प्रकार सहकारी आन्दोलन का उद्भव, विकास और वर्तमान स्थिति की कहानी विश्व के अविकसित और अर्द्ध-विकसित देशो के लिए प्रेरणास्पद है।

ब्रिटेन मे उपभोक्ता सहकारी समितियो को अधिक सफलता प्राप्त हुई है।

ऐसी समितियों को थोक म माल की पूर्ति करने के लिए दो बहुत बड़ी समितियाँ कार्य कर रही है—(i) कोआपरेटिव हालसेल सोसाइटी लिमिटेड (CWS), और (ii) स्काटिश कोआपरेटिव हालसेल सोसाइटी लिमिटेड (SCWS)। प्रथम का कार्यक्षेत्र इंगलैण्ड और वेल्स म तथा दूसरी का स्काटलैण्ड मे है। सन् १९६७ मे प्रथम समिति (CWS) के विक्रय का वार्षिक मूल्य ४७० मिलियन पौण्ड था तथा दूसरी समिति (SCWS) ने ९० मिलियन पौण्ड का माल खुदरा सहकारी समितियों को बचा। इस समय ब्रिटेन म लगभग ८७१ सहकारी समितियाँ हैं जिनकी कुल सदस्यता एक करोड तीस लाख है किन्तु इनम दस समितियाँ बहुत बडी हैं जिनकी सदस्यता कुल सदस्यता की एक-चौथाई है। उदाहरण के लिए, लन्दन कोआपरेटिव सोसाइटी के १३ लाख सदस्य हैं और इसका वार्षिक विक्रय पाँच करोड पौण्ड से भी अधिक है। इस प्रकार यह विश्व की सबसे बडी सहकारी उपभोक्ता समिति है। महायुद्ध के बाद स स्वय सेवा विक्रय केन्द्रों (Self Service Retail Establishment) का चलन अधिक लोकप्रिय हुआ है। सहकारी समितियों ने भी ऐसे केन्द्र खोले हैं। सन् १९६१ म ऐसे केन्द्रों की सख्या १,६०० थी जिनके चालीस प्रतिशत सहकारी केन्द्र थे।

प्रश्न

1 Trace the growth of the cooperative movement in Great Britain during the last 100 years
पिछले सौ वर्षों मे ग्रेट ब्रिटेन में हुई सहकारी आन्दोलन की प्रगति का मूल्यांकन कीजिए। (पजाब, १९५८)

2 Write a note on the consumer's cooperative movement in Great Britain
ग्रेट ब्रिटेन के उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन के बारे म एक नोट लिखिए। (राजस्थान, १९६६)

3 Trace the development of cooperative movement in Great Britain since 1844.
सन् १८४४ से ग्रेट ब्रिटेन के सहकारी आन्दोलन के विकास का वर्णन कीजिए। (बिहार, १९६२)

२४
महायुद्धों का प्रभाव एवं युद्धोत्तरकालीन समस्याएँ
(Effect of World Wars and Post-war Problems)

प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी महान परिवर्तनों की शताब्दी है। किसी भी देश की आर्थिक स्थिति का अध्ययन तब तक अपूर्ण माना जायगा जब तक कि इस शताब्दी में घटित दो महान् विश्व-युद्धों और उसके बाद विश्व के अनेक देशों और उनके गुटों द्वारा की जाने वाली प्रतिस्पर्द्धा का आर्थिक प्रभावों की दृष्टि से पूर्ण अध्ययन न किया जाय। विगत वर्षों में जो घटनाएँ घटित हुई हैं उन्होंने कई नवीन राष्ट्रों को जन्म देकर पुराने राष्ट्रों के नतृत्व को चुनौती दी है। ऐसी स्थिति में इगलैण्ड जो कि द्वितीय विश्व-युद्ध तक किसी भी प्रकार विश्व का अग्रणी राष्ट्र रहा और अपनी औद्योगिक उन्नति के बल पर विश्व का प्रथम श्रेणी का राष्ट्र रहा वह द्वितीय महायुद्ध के आघातों से ऐसा क्षत-विक्षत हुआ कि अभी तक अपनी अर्थ-व्यवस्था से युद्ध के दूषित प्रभावों को पूर्णरूपण मिटा नहीं पाया है। आज वह राष्ट्र-मण्डलीय देशों का प्रणेता है तथा अपनी बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति को पुनर्जीवित करने के *लिए राष्ट्रमण्डल के सदस्य राष्ट्रों के हितों की अवहेलना करके भी वह* **यूरोपीय साझा बाजार (ECM)** का सदस्य बनने का इच्छुक है। इससे वह दिन भी आ सकता है कि राष्ट्रमण्डल ही समाप्त हो जाय। प्रश्न उठता है कि इस प्रकार की बिशृंखलित अर्थ-व्यवस्था के मूल में कौन से तथ्य गतिशील हैं। प्रस्तुत अध्याय में इगलैण्ड की अर्थ-व्यवस्था पर दो महायुद्धों के प्रभाव के विश्लेषण के साथ-साथ उन युद्धोत्तरकालीन समस्या का भी विवेचन करेंगे जो इगलैण्ड के लिए चिन्ता का कारण रही है। इनमें से कुछ समस्याएँ आज भी इगलैण्ड के लिए प्रश्न चिह्न बनी हुई हैं।

प्रथम महायुद्ध और इगलैण्ड

प्रथम महायुद्ध से पूर्व इगलैण्ड का आर्थिक विकास अपने चरमोत्कर्ष पर था। अन्य देशों से पूर्व औद्योगिक क्रान्ति का सृजन इगलैंड की अर्थ-व्यवस्था के लिए

वरदान सिद्ध हुआ। औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था का उत्तम आधार लिए हुए इंगलैण्ड विशाल साम्राज्य का अधिष्ठाता बना जिसके विस्तृत भू-भाग में सूर्य कभी अस्त ही नहीं होता था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के पश्चात् यूरोप की राजनीतिक और आर्थिक घटनाओं ने नया मोड़ लिया और फलस्वरूप सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ। इस महायुद्ध का इंगलैण्ड की अर्थ-व्यवस्था पर जो व्यापक प्रभाव पड़ा उसे क्रमश इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है

(१) व्यापार पर प्रभाव— प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व तक इंगलैण्ड व्यापारिक क्षेत्र में विश्व का अगुआ राष्ट्र था। किसी देश का अगुआ होना इसी बात पर निर्भर करता है कि वह आयात की तुलना में निर्यात अधिक करे। इंगलैण्ड की भी स्थिति इसी प्रकार की रही और उसके निर्यात सन् १९१४ तक बढ़ते चले गये। परन्तु युद्धारम्भ के साथ ही निर्यातों का युद्ध पूर्व स्तर बनाये रखना सम्भव नहीं था क्योंकि युद्ध की आकस्मिक सकट-पूर्ण स्थिति ने उत्पादन के साधनों, जहाजरानी और शक्ति के साधनों को अत्यधिक प्रभावित किया। युद्धकाल में ब्रिटिश वस्तुओं का निर्यात सम्भव न हुआ अत विश्व के उन आयातक देशों ने अपने उद्योग स्थापित और विकसित कर लिए। उदाहरणार्थ भारत और जापान ने अपनी आर्थिक सुविधाओं तथा सस्ते श्रम से सूती वस्त्रोद्योग स्थापित और विकसित कर लिए और पूर्वीय बाजारों को हथियाने में इंगलैण्ड से प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ की। इसी प्रकार कोयले की विश्व बाजार माँग पर तेल शक्ति के अधिकाधिक प्रयोग का विपरीत प्रभाव पड़ा और साथ ही साथ नवीन यूरोपीय कोयला खानें इंगलैण्ड के लिए प्रतिस्पर्द्धा का कारण बन सकीं। सन् १९१३ में ब्रिटेन का कुल निर्यात व्यापार ५२२ करोड़ पौण्ड का था। युद्ध काल में मूल्य स्तर में तीन गुनी से भी अधिक वृद्धि हो चुकी थी, फिर भी सन् १९१८ में ब्रिटिश निर्यातों का मूल्य केवल ५० करोड़ पौण्ड ही था। विशेषतया सूती वस्त्र, कोयला तथा लोहा-इस्पात के निर्यात में भारी कमी हुई। युद्धोपरांत काल में कुछ समय के लिए आर्थिक समृद्धि के लक्षण दृष्टिगोचर हुए, तब निर्यातों का मूल्य १२३४० करोड़ पौण्ड हो गया परन्तु आर्थिक मन्दी का प्रभाव शीघ्र ही दृष्टिगोचर हुआ और निर्यात घटकर ७० करोड़ पौण्ड मूल्य के रह गये। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध और आर्थिक मन्दी ने व्यापारिक क्षेत्र में इंगलैण्ड की स्थिति दयनीय बना दी।

(२) कृषि पर प्रभाव—आंग्ल कृषि को भी व्यापार के समान ही कठिनाई का अनुभव करना पड़ा। युद्ध से पूर्व विश्व के अन्य देशों से कृषिजन्य पदार्थों का आयात सम्भव था परन्तु युद्धकाल में विदेशों से आयात रुक-सा गया। ऐसी स्थिति में 'कृषि' का विकास करने के अलावा कोई चारा नहीं था। सरकार का कृषि पर नियन्त्रण बढ़ा और राशनिंग की पद्धति प्रारम्भ की गयी तथा सरकार ने खाद्य पदार्थों के स्वावलम्बन के कारण कृषि कार्य को भी प्रोत्साहन दिया। बंजर और बेकार भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाया गया। फसलों के उत्पादन क्रम में परिवर्तन

किया गया और सरकारी खाद्य विभाग ने अधिक तत्परता तथा कुशलता से इस कार्य को सम्भाला। कृषि पदार्थों तथा कृषि श्रमिको की न्यूनतम कीमत और न्यूनतम मजदूरी निश्चित की गयी। अनुमानत इस काल मे तीस लाख एकड अतिरिक्त भूमि पर उत्पादन बढाया गया तथा ४० लाख टन अतिरिक्त मात्राओं का उत्पादन हुआ। इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि युद्धकाल आग्ल कृषि के विकास और पुनर्जीवन का काल था। कृषि के महत्व को पुन एक बार अनुभव किया गया।

(३) **उद्योग पर प्रभाव**—उद्योगो पर भी प्रथम विश्व-युद्ध का सामान्य प्रभाव सैनिक महत्व के उद्योगो को प्राथमिकता के रूप मे परिलक्षित हुआ। विदेशी व्यापार और परिवहन की अव्यवस्था और कठिनाइयो ने कई उद्योगो के लिए कच्चे माल की उपलब्धि और पक्के माल की बिक्री को विपरीत रूप से प्रभावित किया। सूती वस्त्र कोयला और लौह-इस्पात उद्योगो को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है।

सूती वस्त्र उद्योग के अन्तर्गत उत्पादन पर बहुत भारी आघात हुआ। युद्ध से आयात पर (कच्चे माल—कपास के आयात पर) प्रतिबन्ध लगा और अधिकाश जहाजो का उपयोग सैनिक कार्यों के लिए किया जाने लगा। इन दोनो ही तथ्यो का विपरीत प्रभाव यह पडा कि सूती वस्त्र उद्योग ठप्प-सा हो गया। युद्धोपरान्त काल मे कुछ समय जो आर्थिक समृद्धि (Economic Boom) का काल प्रारम्भ हुआ उसमे वस्त्र की माँग मे वृद्धि और उद्योग को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ किन्तु सन् १९२० के बाद पुन गिरावट आने लगी। अनुमानित आँकडो के अनुसार यह कहा जा सकता है कि सन् १९२४ मे सन् १९१२ की तुलना मे सूत का उत्पादन ३० प्रतिशत और वस्त्र का उत्पादन ३३% घटा। इस रूप मे सूती वस्त्र उद्योग को देशी और विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पडा। इसी प्रकार **कोयला उद्योग** भी युद्धकाल मे श्रमिको की कमी अनुभव करता रहा। श्रमिको की तथा नागरिक जनसख्या की सेना मे भर्ती गहरी खानो की खुदाई के कार्य मे बाधक सिद्ध हुई। निर्यात के अभाव मे भी कोयला उद्योग पर सकट ही था। किन्तु उपर्युक्त उदाहरणो की तुलना म **लौह-इस्पात उद्योग** ने युद्धकाल मे प्रगति की, क्योकि इस उद्योग का सामरिक महत्व भी था। उत्पादन और मजदूरी मे वृद्धि हुई, मूल्यो पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित हो गया। युद्धोत्तरकाल मे उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पडा।

(४) **आर्थिक प्रभुता को चुनौती**—बीसवी शताब्दी की इस महत्वपूर्ण घटना ने इगलैण्ड के आर्थिक प्रभुत्व को सबसे बडी चुनौती दी। पूरी एक शताब्दी क एकछत्र नेतृत्व के बाद इगलैण्ड को *प्रथम बार* यह महसूस होने लगा कि भविष्य म इस नेतृत्व को बनाये रखना उसके लिए कठिन हो जायगा।

(५) **मुद्रा स्फीति एव मूल्य वृद्धि**—बढते हुए रोजगार एव उत्पादन की पूर्ति के लिए पत्र मुद्रा मे बहुत अधिक वृद्धि की गयी। इससे मूल्य स्तर और ऊँचा

चला गया। सन् १९१३ की तुलना मे मूल्य स्तर सन् १९२० मे लगभग तीन गुना ऊँचा हो गया था। अन्य देशों में मूल्य वृद्धि की तुलना मे इगलैण्ड मे हुई मूल्य वृद्धि बहुत अधिक थी। ऐसी परिस्थिति मे इगलैण्ड के प्रिय स्वर्ण मान (Gold standard) को कायम रखना असम्भव दिखायी देने लगा।

(६) व्यापारिक नीति एव वित्त नीति पर प्रभाव- यद्यपि वैधानिक रूप मे इगलैण्ड द्वारा सरक्षणवादी नीति बाद मे चल कर अपनायी गयी किन्तु व्यवहार मे युद्धकाल मे ही इगलैण्ड ने स्वतन्त्रवादी नीति (Free Trade Policy) का परित्याग कर दिया जबकि मेकेना ड्यूटीज (Mckenna Duti s) अनेक वस्तुओं के आयात पर लगायी गयी। सैनिक व्ययों को पूरा करने के लिए करो की दरो मे भी वृद्धि की गयी। सन् १९१३ मे राष्ट्रीय आय की तुलना मे करो की दर केवल ११ प्रतिशत थी जो युद्ध के बाद बढकर २० प्रतिशत से भी अधिक हो गयी।

विश्वव्यापी मन्दी का युग
(The Great Depression)

विश्व-युद्ध के कारण ब्रिटेन के विदेशी बाजारो मे अन्य देश उसके साथ प्रतियोगिता करने लगे। इनमे जर्मनी, जापान और अमरीका के नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। इनका प्रभाव ब्रिटेन के सूती वस्त्र, कोयला, लौह एव इस्पात, एव इजीनियरिंग उद्योगों पर पडा और इन्हे अपने उत्पादन को सीमित करना पडा' इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन मे बेकारी की सीमा मे वृद्धि हो गयी। विश्वव्यापी मन्दी का आरम्भ अक्टूबर सन् १९२९ मे सयुक्त राज्य अमरीका से हुआ जब कि शेयरो के भाव अचानक गिरने से स्टाक एक्सचेंजो मे सकट आ गया, अनेक बैंक फेल होने लगे, भाव गिरने लगे, कारखानों एव कारोबारो मे घाटा होने लगा और उनके बन्द होने से लाखो व्यक्ति बेकार होने लगे। इसका असर सभी देशो पर न्यूनाधिक मात्रा मे पडा और ब्रिटेन भी मन्दी के इस चक्र से अछूता न रह सका। इस काल मे ब्रिटेन के उत्पादन, आयात निर्यात, रोजगार एव निवासियो के रहन-सहन के स्तर मे गिरावट आ गयी। सामान्यत- सन् १९२२ के बाद कुल कार्यशील जनसख्या के १४ प्रतिशत व्यक्ति बेकार रहते थे, किन्तु सन् १९३२ मे यह अनुपात बढकर २२ प्रतिशत हो गया। सन् १९३२ मे ब्रिटेन ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति का परित्याग कर दिया और सरक्षणवादी नीति अपनाकर अपने उद्योगों की विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा की। इसी समय ब्रिटेन ने स्वर्णमान (Gold Standard) का भी परित्याग कर दिया। औपनिवेशिक अधिमान (Colonial Preference) के कारण ब्रिटेन पर, इस भयकर मन्दी का उतना विकट प्रभाव नहीं पडा जितना कि अमरीका पर, फिर भी सन् १९३५ तक ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था सकट-पूर्ण स्थिति मे रही। राष्ट्रीय उत्पादन एव रोजगार को बढाने के उद्देश्य से सस्ती मुद्रा नीति अपनायी गयी जिससे अर्थ-व्यवस्था को सम्बल मिला तथा निर्यात मे कुछ वृद्धि होने

लगी। कृषकों की दशा को सुधारने के लिए कृषि उत्पादनों के लिए न्यूनतम मूल्य की गारण्टी सरकार द्वारा दी गयी जिसके अन्तर्गत विदेशी आयात के कारण बाजार मूल्य कम होने पर कृषकों को सरकार द्वारा क्षतिपूर्ति की जाती थी। इससे ब्रिटिश कृषि उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। मन्दी का चक्र इगलैण्ड मे सन् १६२६ के अन्त मे आरम्भ हुआ। ब्रिटेन के निर्यातो पर इसका बुरा असर पडा। विदेशी भुगतान सन्तुलन लडखडा गया। बेरोजगारो की सख्या बढने लगी और सन १६३२ तक यह सख्या बीस लाख से भी अधिक हो गयी। बेकारी एव स्वास्थ्य बीमा योजनाओं के अधीन पूरे किये जाने वाले दायित्वो म इतनी अधिक वृद्धि हो गयी कि उन्हें विशप ऋण लेकर पूरा किया गया और लाभो की मात्रा को कम करने के लिए बाध्य होना पडा।

मन्दी के उपचार के लिए किये गये प्रयत्न

यद्यपि आर्थिक मन्दी का सकट ब्रिटेन म इतना नही था जितना कि सयुक्त राज्य अमरीका म था। फिर भी ब्रिटिश सरकार द्वारा समय पर अनेक ऐसे उपाय किय गये जिनके द्वारा अर्थ व्यवस्था म सुधार सम्भव हो सका। ये उपाय निम्न-लिखित थे

(१) **स्वर्ण मान का परित्याग एव पौण्ड का अवमूल्यन** किया गया। किन्तु इसका लाभ अल्पकालीन रहा, क्योंकि सन् १६३३ के बाद अमरीका न तथा फिर जापान, स्वीडन, नार्वे, हालैण्ड आदि अन्य देशो न भी स्वर्णमान छोड दिया।

(२) **स्वतन्त्र व्यापार नीति का परित्याग एव उसके स्थान पर सरक्षण-वादी नीति का अपनाया जाना।** इससे ब्रिटिश उद्योग को विदेशी प्रतियोगिता मे सरक्षण मिला।

(३) **शाही अधिमान (Imperial Preference) की नीति का चलन**—इसमे उपनिवेशो के साथ व्यापार म ब्रिटेन को रियायतें प्राप्त हो गयी जिससे निर्यातो को प्रोत्साहन मिलना रहा।

(४) **व्यापारिक समझौते (Trade Agreements)**—ब्रिटेन द्वारा अनेक देशो से द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते किये गये।

(५) **आन्तरिक अर्थव्यवस्था में सुधार**—निर्यात करने वाले उद्योगो को आर्थिक सहायता दी गयी। गृह निर्माण कार्य (House building) को बढाया गया और इसम रोजगार की स्थिति मे सुधार हुआ। कृषि के क्षेत्र मे उत्पादको को सरक्षण देने के लिए न्यूनतम मूल्यो की गारण्टी दी गयी।

(६) **मुद्रा नीति मे परिवर्तन**—सस्ती मुद्रा नीति (Cheap Money Policy) अपनायी गयी। विदेशो मे किये जाने वाले विनियोगो पर प्रतिबन्ध लगाये गये। करो की दरो मे कमी की गयी। बैंको द्वारा सस्ती ब्याज दर पर ऋण दिये जाने की व्यवस्था की गयी।

उपर्युक्त उपायों का उत्साह वर्धक परिणाम हुआ। सन् १९३७ तक उत्पादन में ५० प्रतिशत वृद्धि हो गयी। सन् १९३९ में द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो जाने पर ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था में स्वतः ही सुधार होने लगा।

द्वितीय विश्व युद्ध

यह कहा जा सकता है कि आर्थिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रथम महायुद्ध ने प्रभावित किया। 'स्वतन्त्र-व्यापार नीति (Free trade policy) के दिन लदे और राजकीय संरक्षण का प्रारम्भ हुआ और युद्ध के पश्चात् निरन्तर विविध समस्याओं के हल के प्रयत्न लगभग बीस वर्ष तक (सन् १९१८ से १९३८ तक) किये जाते रहे। सन् १९३९ के बाद द्वितीय विश्व-महायुद्ध ने पुनः इंगलैण्ड की अर्थ-व्यवस्था को नियन्त्रित और युद्ध-स्तरीय-स्वरूप प्रदान किया। द्वितीय महायुद्ध से ब्रिटेन की घरेलू पूंजी में ३,००० मिलियन पौण्ड तक की कमी हुई जो कि जहाजी नुकसानों, बम विस्फोटों, औद्योगिक व्यवस्था और प्रतिस्थापना की कमी के कारण सम्भव हुई। अन्य प्रभावों का वर्णन निम्नांकित है

(१) **समुद्रपारीय सम्पत्ति की हानि**—लगभग १,००० मिलियन पौण्ड मूल्य के विदेशी विनियोग युद्ध सामग्री क्रय करने के लिए बेच दिये गये जिसमें उत्तरी अमरीका के ४२८ मिलियन पौण्ड भी सम्मिलित हैं। इन सम्पत्तियों के विक्रय से हुई आय ब्रिटेन के युद्ध पूर्व आयात के अधिकांश भाग के लिए दी गयी।

(२) **नये समुद्रपारीय ऋण (New Overseas Debts)**—लगभग ३,००० मिलियन पौण्ड कीमत के नये विदेशी ऋण संचित हो गये (इनमें भारत के पौण्ड पावने (Sterling-balances) भी सम्मिलित थे)।

(३) **व्यापार की शर्तें (Terms of Trade)**—आयात होने वाले कच्चे माल के मूल्यों में तीव्रता से वृद्धि हुई और सन् १९४६ में १९३८ की तुलना में उतने ही माल का आयात करने के लिए २० प्रतिशत अधिक माल निर्यात करना पड़ा।

(४) **निर्यात में कमी**—युद्ध के कारण निर्यात होने वाले माल की मात्रा में कमी हुई। सन् १९४४ में १९३८ की तुलना में एक तिहाई कम निर्यात हुए थे।

(५) **अल्प कोष (Smaller Reserves)**—युद्ध पूर्व काल की तुलना में स्वर्ण और डालर कोषों के मूल्य आधे के लगभग रह गये।

(६) **डालर संकट (World Dollar Shortages)**—युद्ध से हुए विनाश और विध्वंस के कारण ब्रिटेन तथा अन्य स्टर्लिंग क्षेत्रों (अन्य कई देशों को भी) को उत्तरी अमरीका से अधिक मात्रा में वस्तुएँ खरीदनी पड़ी। इन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रों के पास डालर की आय अपर्याप्त थी।

(७) **उद्योगों पर प्रभाव**—विश्व युद्ध का ब्रिटेन के उद्योगों पर बहुत अधिक बोझ पड़ा। अधिक मात्रा में सैनिक सामान तैयार करने के लिए उद्योगों ने अधिक समय तक एवं अधिक पारियों में कार्य किया। इससे औद्योगिक उत्पादन बढ़ गया

विशेषकर लौह एवं इस्पात मशीनें, रासायनिक पदार्थ एवं इन्जीनियरिंग उद्योगों की बहुत अधिक उन्नति हुई। किन्तु कुछ उद्योगों में उत्पादन गिर गया क्योंकि औद्योगिक कच्चे माल की कमी थी। ऐसे उद्योगों में वस्त्र उद्योग प्रमुख था।

(८) **श्रमिकों पर प्रभाव**—औद्योगिक समृद्धि एवं सैनिक अवसरों ने श्रमिकों की माँग में वृद्धि की तथा बेकारी की मात्रा घट गयी। श्रमिकों की आय में भी वृद्धि हुई तथा वे पिछले वर्षों की महान मन्दी के प्रभावों से मुक्त हो गये।

(९) **उपभोग पर नियन्त्रण**—आयात में कमी तथा परिवहन की कठिनाइयों के कारण इस काल में ब्रिटेन को खाद्य वस्तुओं के वितरण के लिए मूल्य नियन्त्रण तथा राशनिंग की नीति अपनानी पड़ी। अनाज, चीनी, मांस, अण्डे आदि का वितरण राशनिंग कार्डों पर किया जाने लगा और कपड़ा भी नागरिकों को नियन्त्रित मूल्य पर राशन के द्वारा प्राप्त था। सन् १९३९ से १९४५ तक और उसके बाद भी कुछ वर्षों तक इंगलैण्ड ने मूल्य नियन्त्रण एवं राशनिंग व्यवस्था का कठोरता से पालन किया तथा उपभोक्ताओं ने अत्यन्त नियन्त्रित ढंग से इसे सफल बनाने में योग दिया।

युद्धोत्तरकालीन समस्याएँ
(Post-War Problems)

द्वितीय महायुद्ध काल में इंगलैण्ड की अर्थ-व्यवस्था को जिस अप्रत्याशित संकट का सामना करना पड़ा उससे यह स्पष्ट था कि विजयी इंगलैण्ड की दशा विजय के बावजूद कोई अच्छी दशा नहीं थी। *वर्षों तक युद्ध से जर्जरित क्षत-विक्षत अर्थ-व्यवस्था* इंगलैण्ड की सरकार और जनता के लिए सर दर्द बनी रही है। हम क्रमशः उन प्रमुख समस्याओं का वर्णन करेंगे जो इंगलैण्ड के लिए युद्धोत्तर काल में चिन्ता का विषय रहीं।

(१) **उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण की प्रवृत्ति**—युद्धकाल में तो देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता और सुरक्षा की दृष्टि से उद्योग-धन्धे सरकारी नियन्त्रण में थे ही परन्तु युद्ध समाप्ति के पश्चात् श्री एटली के नेतृत्व में जो श्रम-दलीय सरकार बनी उसने उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के प्रश्न को महत्व का प्रश्न बना दिया और सन् १९४६ में कोयला उद्योग, १९४७ में बिजली उद्योग, सन् १९४८ में गैस उद्योग, सन् १९४९ में लौह इस्पात उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया। इसी काल में वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण करके दो निगमों B O A C तथा B E A का गठन किया गया तथा रेल, सड़क एवं नहर परिवहन के लिए भी आवश्यक कदम उठाये गये। यह ठीक है कि इस प्रकार श्रम-दलीय सरकार ने उद्योगों के आर्थिक संकट की निवृत्ति के लिए संगठित उपाय अपनाने का माध्यम निकाला। इन उद्योगों के प्रबन्ध और कार्य-संचालन के लिए सार्वजनिक निगम बनाये गये। सन् १९५१ से पुनः जब अनुदार दलीय सरकार पदारूढ़ हुई तो उसकी प्रवृत्ति राष्ट्रीयकरण के विपक्ष में सिद्ध हुई। उसने लौह-इस्पात उद्योग को पुनः व्यक्तिगत (Private) क्षेत्र को सौंप दिया। सन् १९६४ में मजदूर दल की सरकार बनने के उपरान्त लौह एवं

इस्पात उद्योग के पुनः राष्ट्रीयकरण की नीति अपनायी गयी और अन्तत लोह एवं इस्पात अधिनियम, १९६७ के अधीन तेरह विशाल कम्पनियों को सार्वजनिक क्षेत्र मे ले लिया गया। इस प्रकार ये कम्पनियाँ ब्रिटिश इस्पात निगम (British Steal Corporation) का अंग बन गयी।

इस समय ब्रिटेन के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योग, परिवहन सेवाएँ एवं अन्य जनोपयोगी सेवाएँ सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। उद्योगों मे लोह एवं इस्पात उद्योग तथा कोयला उद्योग, परिवहन मे वायु एवं रेल-परिवहन, विद्युत उत्पादन एवं वितरण आदि सरकारी क्षेत्र मे हैं। इनका सचालन स्वायत्त निगमों (Autonomous Corporation) के द्वारा होता है और इनमे कुछ जनसख्या का दसवाँ भाग कार्यशील है।

(२) डालर संकट—युद्धकाल मे कल-कारखानों, मकानों, दुकानों के नष्ट होने तथा निर्यातों मे भारी कमी होने के कारण ब्रिटेन को आयातों का सहारा लेना पडा। सयुक्त राज्य अमरीका ही इस प्रकार की वस्तुओं की पूर्ति कर सकता था। सयुक्त राज्य अमरीका से आयात बढ़ता गया किन्तु ब्रिटेन का डालर देशो को निर्यात कम था। यही डालर सकट का सबसे बड़ा कारण था। युद्ध के बाद लैंड लीज (Land Lease) के अन्तगत मिलने वाली सहायता बन्द हो गयी। अत सन् १९५३ तक डालर क्षेत्रो से इग्लैण्ड का भुगतान सन्तुलन विपक्ष मे रहा। मार्शल योजना के अन्तर्गत अमरीका ने इग्लैण्ड को इस सकट से मुक्त होने के उद्देश्य से सहायता दी। ब्रिटेन न स्वर्णकोष एवं विदेशी विनियोगों को कम करके भी इस सकट का सामना किया।

इसी प्रकार की स्थिति मे भी तात्कालिक आर्थिक सकट पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकी और राष्ट्रमण्डल देशों के डालर साधनों को भी एकत्रित किया गया। साथ ही सयुक्त राज्य अमरीका के आयात-निर्यात बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक से ऋण लिया गया तथा १८ दिसम्बर, १९४९ को पौण्ड का अवमूल्यन (Devaluation) किया गया। साथ ही मार्शल योजना के अन्तर्गत उसे कुछ अन्य देशों से सहायता मिल सकी तब स्थिति कुछ सुधरी। सन् १९५३ तक ब्रिटेन के भुगतान सन्तुलन की स्थिति मे उतार-चढाव आते रहे। उसके बाद से इसमे सुधार हुआ है। किन्तु इधर सन् १९६२ के बाद से फिर व्यापार सन्तुलन की स्थिति बिगड गयी है। ब्रिटेन आज युद्ध काल मे लिए गये ऋणों के लिए ६७ मिलियन पौण्ड प्रतिवर्ष सयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा को ब्याज एवं मूल की किस्त के रूप मे देता है। इसके अतिरिक्त विदेशो मे सैनिक कार्यों के लिए २७५ मिलियन पौण्ड और विकासशील देशो के आर्थिक विकास के लिए लगभग ३०० मिलियन पौण्ड प्रतिवर्ष ब्रिटेन देता है। पिछले चार वर्षों मे ब्रिटेन ने अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से अनेक बार ऋण लिए हैं। ब्रिटेन द्वारा अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से सन् १९६५ मे १,४०० मिलियन

पौण्ड एव १९६८ में १,४०० मिलियन पौण्ड के ऋण लिये गये इसके अतिरिक्त फेडरल रिजर्व बैंक ऑफ न्यूयार्क तथा यूरोप के कुछ बडे बैंको से भी ब्रिटेन को ऋण सुविधाएँ प्राप्त हैं। फिर भी स्थिति मे सुधार नहीं हुआ और ब्रिटेन को १९६७ मे पौण्ड का अवमूल्यन करने को बाध्य होना पडा।

(३) पौण्ड पावनों के भुगतान की समस्या—युद्धोत्तरकाल मे एक महत्त्वपूर्ण समस्या जो ब्रिटेन के लिए चिन्ता का विषय थी वह यह कि युद्धकाल में उसे भारत, मिस्र इत्यादि देशो से ऋण लेने पडे अथवा ब्रिटेन का वहाँ शासन होने से प्रतिरक्षा व्ययो का भार उन देशो पर डाला गया। वे सभी ऋण पौण्ड पावना (Sterling Balance) के रूप मे सग्रह होते रहे। युद्धोत्तरकाल म अपने औद्योगिक विकास को ध्यान मे रखते हुए जब इन देशो ने पूँजीगत वस्तुओ के क्रय के लिए इच्छा प्रकट की तो ब्रिटेन के लिए इस रूप म सम्पूर्ण राशि को चुकाना समस्या हो गयी। विभिन्न समझौता वार्ताओ के अन्तर्गत भारत को ६५० लाख, १८० लाख और ८०० पौण्ड की राशियाँ उपयोग के लिए मिल सकी थी। इसी प्रकार मिस्र की पौण्ड पावना राशि की समस्या के हल समय-समय पर होते रहे। युद्धोत्तरकाल में स्वेज नहर के सकट ने ब्रिटिश पूँजी और ऋणो की स्थिति को अधिक पेचीदा बना दिया। एक स्थिति तो यह आई कि ब्रिटेन ने सभी प्रकार के सम्बन्ध मिस्र (जो अब सयुक्त अरब गणराज्य (N A R.) कहलाता है) से तोड लिए। अब पुन आर्थिक व्यापारिक भुगतानो के समझौते चल रहे हैं।

(४) उत्पादन और रोजगार—सन् १९४६ से ब्रिटेन मे बेकारी मे पर्याप्त कमी हुई है। यदि हम दोनो विश्व युद्धो का तुलनात्मक अध्ययन करें तो मालूम होगा कि उस समय बेकारी का औसत १४% था तो सन् १९४६ और १९५६ के मध्य काम करने वाली जनसख्या का दो प्रतिशत भाग बेकार था। इधर कुछ वर्षों मे विशेषत सन् १९६६ के बाद बेरोजगारी म कुछ वृद्धि हुई है। फिर भी कुल जनसख्या की तुलना म बेरोजगारी का अनुपात ब्रिटेन मे २ २ प्रतिशत से अधिक नहीं है जो विश्व के अनेक देशो से कम है। औद्योगिक उत्पादन भी युद्धोत्तरकाल मे ५% औसत दर से वृद्धि पा रहा है। सन् १९५४ तक ब्रिटेन को राष्ट्रीय उत्पादन बढाने के लिए निरन्तर प्रयास करना पडा। उसके बाद यह युद्ध पूर्व के स्तर पर आ गया और फिर इसम वृद्धि हुई। पिछले दस वर्षों मे राष्ट्रीय उत्पादन मे कुल मिलाकर लगभग एक तिहाई की वृद्धि हुई।

(५) प्रतिरक्षा पर व्यय—युद्ध समाप्त होने के कुछ वर्षों तक युद्ध या प्रतिरक्षा पर व्यय मे ह्रास हुआ लेकिन सन् १९५० से पुन इसमें वृद्धि हुई है। सन् १९५२ से प्रतिरक्षा व्यय सकल राष्ट्रीय उत्पादन के ६% म कम नहीं हुए हैं। सन् १९६५-६६ मे प्रतिरक्षा पर किये जाने वाले व्यय की मात्रा २,१२० मिलियन पौण्ड थी जो कुल राष्ट्रीय आय की ६ ८ प्रतिशत थी। इसके बाद में प्रतिरक्षा व्यय को सीमित रखने

का प्रयास किया गया है। सन् १९६८-६९ का प्रतिरक्षा बजट २,२७१ मिलियन पौण्ड का था जो कुल राष्ट्रीय आय का केवल ६ प्रतिशत था।

(६) पुनर्निर्माण कार्यक्रम—क्षत विक्षत अर्थ-व्यवस्था के निर्माण का कार्य तेजी से सम्पन्न किया गया। इस क्षेत्र के कार्य सम्पादन के लिए अमरीका, कनाडा इत्यादि देशों से सहायता मिली साथ ही राष्ट्रीय चरित्र का धनीमानी इगलैण्ड युद्ध के अवशेषों को मिटाने के कार्य में जुट गया। इस रूप में सफलता प्रशंसनीय है। युद्ध के बाद के आठ वर्षों में ही पुनर्निर्माण कार्य इतना अधिक हुआ कि युद्ध से पूर्व की स्थिति प्राप्त हो गयी। इसके बाद अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रों में नया निर्माण कार्य आगे बढ़ाया गया है।

(७) मूल्यों की समस्या—ब्रिटेन को भी अन्य देशों के समान ही मूल्यों की वृद्धि की समस्या का सामना करना पड़ा। सन् १९५६ तक के प्रथम युद्धोत्तरकालीन दशक में ५०% मूल्य वृद्धि हुई। सरकार ने इस रूप में इसे नियन्त्रण रखने के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के साधन अपनाये। मुद्रा स्फीति को भी नियन्त्रित किया गया और बैंकिंग दरों में घट बढ़ करके समस्या को हल करने का प्रयत्न किया गया। सन् १९५७ से १९६६ तक मूल्य-स्तर में लगभग ३ प्रतिशत वार्षिक की वृद्धि हुई है।

सन् १९६५ में इगलैण्ड में मूल्यों एवं आय के लिए एक बोर्ड (National Board for Prices and Incomes) की स्थापना की गयी। यह बोर्ड आय एवं मूल्यों के प्रश्नों पर जाँच पड़ताल करता रहता है। सन् १९६६ एवं सन् १९६८ में मूल्य एवं आय अधिनियमों को पास करके सरकार ने मजदूरी एवं मूल्यों को सीमित रखने के लिए आवश्यक कदम उठाने के अधिकार प्राप्त कर लिए हैं।

(८) व्यापार सन्तुलन (Balance of Trade)—युद्ध ने अर्थ-व्यवस्था को असन्तुलन प्रदान किया और निर्यात की वृद्धि की समस्या को प्रकट रूप में सामने रखा। इगलैण्ड धीरे-धीरे इस सन्तुलन की अवस्था को प्राप्त करने के लिए तथा निर्यातों के प्रोत्साहन के लिए जो नवीनतम प्रयत्न करने जा रहा है उसे हम ब्रिटेन का "यूरोपीय संयुक्त मण्डी" (European Common Market) में शामिल होने का प्रयत्न कह सकते हैं। अनुमान लगाया गया है कि इस प्रकार के प्रवेश से ब्रिटेन अपने निर्यातों को अधिक सन्तुलित कर सकेगा क्योंकि एशिया और अफ्रीका के नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों में इस दशक से इगलैण्ड का निर्यात घटता जा रहा है क्योंकि इन देशों में स्वसाधनों को विकसित कर औद्योगीकरण का मार्ग अपनाया जा रहा है। अतः इगलैण्ड के लिए कोई विकल्प नहीं है, सिवा इसके कि वह यूरोपीय संयुक्त मण्डी में शामिल होकर निर्यातों को सन्तुलित करे। यद्यपि इगलैण्ड राष्ट्र-मण्डल का सदस्य है, इस नाते एक विपरीत विचारधारा यह प्रचलित सी है कि ब्रिटेन को राष्ट्रमण्डल देशों के आर्थिक और व्यापारिक हित को ध्यान में रखते हुए यूरोपीय संयुक्त मण्डी में शामिल नहीं होना चाहिए। किन्तु धीरे-धीरे राष्ट्रमण्डलीय

देश के साथ उसके व्यापार के प्रतिशत मे कमी हो रही है और पश्चिमी यूरोपीय देशो से उसका व्यापार अपेक्षाकृत बढ रहा है। अत इगलैण्ड का साझा बाजार (ECM) मे शामिल होना निश्चित-सा है। यदि फ्रान्स विरोध न करता तो सन् १९६३ मे ही इगलैण्ड इसका सदस्य बन गया होता।

(९) पौण्ड का अवमूल्यन (Devaluation of Pound)—युद्ध के बाद इगलैण्ड दो बार अपनी मुद्रा का अवमूल्यन कर चुका है। पहला अवमूल्यन सितम्बर सन् १९४९ मे किया गया जब ब्रिटिश पौण्ड का मूल्य ३०.५ प्रतिशत कम कर दिया गया। इसके साथ ही स्टर्लिंग क्षेत्र के अन्य अनेक देशो ने भी अपनी मुद्राओ का अवमूल्यन कर दिया जिसमे भारत भी सम्मिलित था। इससे ब्रिटेन का निर्यात बढाने एव आयात को कम करने मे सफलता मिली।

दूसरा अवमूल्यन सन् १९६७ मे किया गया और इसके बाद ब्रिटिश पौण्ड २.८० डालर के बजाय २.४० डालर का रह गया। इसका उद्देश्य भी डालर क्षेत्रो को निर्यात बढाना और आयातो को कम करना है ताकि व्यापार और भुगतानो मे सन्तुलन कायम किया जा सके।

उपसहार

इस प्रकार हम देखते है कि युद्धोत्तरकाल मे ब्रिटेन के कई उपनिवेश स्वतन्त्र हो गये और बहुत से बाजार उसके हाथ से निकल गये। अत उसकी अर्थ-व्यवस्था पर इस प्रकार के राजनीतिक परिवर्तनो का प्रभाव पडना आवश्यक था। इस असन्तुलन की स्थिति म ब्रिटेन अपने को अव्यवस्थित-सा पा रहा है और गतिशील अर्थ-व्यवस्था के पहलुओ को ध्यान मे रखते हुए वह यूरोपीय सयुक्त मण्डी का हल ढूँढ रहा है। देखते देखते इन विगत पन्द्रह वर्षो मे भारत, पाकिस्तान, श्रीलका, ब्रह्मा, मलाया, घाना और इसी प्रकार के अन्य एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्र इगलैण्ड से राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुके हैं। इसने इगलैण्ड की आर्थिक स्थिति पर विपरीत प्रभाव डाला है। उसे जहाँ एक ओर अपनी आर्थिक प्रतिष्ठा तथा समृद्धि पुन प्राप्त करनी है वहाँ दूसरी ओर विश्व की नवीन राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियो मे सन्तुलन स्थापित कर नेतृत्व प्राप्त करना है। देखना यह है कि किस प्रकार इगलैण्ड इस कार्य को सम्पादित करता है। यद्यपि विश्व का राजनीतिक एव आर्थिक नेतृत्व इगलैण्ड के हाथ से निकलकर सयुक्त राज्य अमरीका के हाथ मे पहुँच चुका है किन्तु फिर भी आज विश्व की राजनीति एव अर्थ नीति मे इगलैण्ड का प्रभाव महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न

1 Describe briefly some of the problems that Britain has faced since the end of the second world war
द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से इगलैण्ड न जिन समस्याओ का सामना किया है उनकी विवेचना कीजिए। (बनारस, १९५८; कलकत्ता, १९६३)

2 Discuss the effects of the second world war on the economy of Great Britain

ग्रेट ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था पर द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रभाव की विवेचना कीजिए । (पटना १९६०, गौहाटी, १९६५, पजाब, १९६६)

3 Discuss the effects of second world war on Britains Economy. What measures have been adopted by the British Govt in the post war period to promote rapid recovery and expansion of her war ravaged economy?

ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था पर द्वितीय विश्वयुद्ध का क्या प्रभाव पड़ा ? युद्ध द्वारा क्षत विक्षत अर्थ-व्यवस्था शीघ्र सुधार एव विकास के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा युद्धोत्तरकाल म क्या उपाय किये गये ?

(पजाब, १९५८, इलाहाबाद, १९६०)

4 Give a short account of British economic development in the post war period

युद्धोत्तर काल मे ब्रिटेन के आर्थिक विकास का सक्षिप्त वणन कीजिए ।

(कलकत्ता, १९६४)

5 Discuss the effects of the second world war on British agriculture and industry

ब्रिटिश कृषि एव उद्योग पर द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभाव की विवेचना कीजिए । (राजस्थान, १९६५)

6 Briefly discuss the major change in the direction and composition of foreign trade of England after the second world war

द्वितीय विश्वयुद्ध ने ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था और विशेषत उसके व्यापार एव उद्योग के क्षेत्र को किस प्रकार प्रभावित किया ? विवेचना कीजिए ।

(जोधपुर, १९६६)

7 Briefly discuss the major changes in the direction and composition of foreign trade of England after the second world war

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इगलैण्ड के विदेशी व्यापार की दिशा एव उसके स्वरूप मे क्या क्या प्रमुख परिवर्तन हुए ? (राजस्थान, १९६६)

२५

यूरोपीय साझा मण्डी, ब्रिटेन एवं अन्तरराष्ट्रीय सहयोग
(E C M Britain and International Cooperation)

> "We regard it as a first priority to secure a fundamental reshaping of the present frame-work of world trade. As a member of the European Community, the possibilities of moving at last towards world wide agreement on trade should be greatly improved We believe that it would decisively reinforce those European forces which are—already working in favour of liberal and progressive policies "
>
> —*Mr Macmillan, British Prime-Minister*

यूरोपीय साझा बाजार (ECM) की स्थापना 'रोम सन्धि' के अन्तर्गत १ जनवरी, १९५८ में की गयी। रोम सन्धि के घोषित उद्देश्यों में यह व्यक्त किया गया है कि "इसकी स्थापना समान आर्थिक नीतियों एवं व्यापारिक नीतियों को लागू करने के उद्देश्य से की जा रही है ताकि संयुक्त समाज का समान एवं सन्तुलित आर्थिक विकास हो सके जिससे कि सदस्य राष्ट्रों में निकट सम्बन्ध स्थापित करके उनके आर्थिक विकास की दर में वृद्धि की जा सके और उनके नागरिकों के जीवन-स्तर को बढ़ाया जा सके।" इसका मुख्य उद्देश्य पश्चिमी यूरोप में स्थित अनेक राष्ट्रों को एक सूत्र में बाँधना है ताकि आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से विश्व के रंगमंच पर वे प्रभावपूर्ण इकाई बन सकें। आज के युग में छोटे राष्ट्र को व्यक्तिगत रूप से हर प्रकार का राजनीतिक एवं आर्थिक संकट बना रह सकता है। अतः इनके लिए मिलकर एक बड़ा संघ बनाना आवश्यक था। साझा बाजार के छह सदस्य राष्ट्रों की जनसंख्या मिलकर संयुक्त राज्य अमरीका अथवा रूस की जनसंख्या के लगभग बराबर हो जाती है और पूर्ण होने पर यह एक बड़ा प्रभावशाली संघ बन सकता है। बड़े पैमाने की मितव्ययता (Large-Scale Economics) एवं श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के आधार पर इसके सदस्य अपने उत्पादन व्ययों को कम करके

विश्व प्रतियोगिता मे खडे हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त परिवहन, बिजली, सिंचाई, अनुसन्धान आदि की योजनाएँ सम्मिलित रूप से कार्य रूप मे परिणित की जा सकती हैं।

यूरोपीय सयुक्त मण्डी यूरोप के ६ राष्ट्रो (फ्रान्स, जर्मनी, इटली, हालैण्ड (नीदरलैण्ड), बेल्जियम तथा लक्समबर्ग) का सामूहिक आर्थिक सगठन है, जिसका आधार २५ मार्च, १९५७ की रोम सन्धि है। इस प्रकार के सगठन की आवश्यकता द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात यूरोप म अनुभव की गयी। एक धारणा तो यह कार्य कर रही थी कि युद्ध म पराजित जर्मन राष्ट्र पुन शक्तिशाली न बने और उसके आर्थिक साधनो का विजयी राष्ट्रो द्वारा अधिकाधिक उपयोग किया जाय। परन्तु यूरोप के विजयी राष्ट्र भी पराजित राष्ट्रो के समान युद्ध का प्रभाव अनुभव कर रहे थे। अत युद्धोपरान्त काल मे **मार्शल सहायता कार्यक्रम** (Marshall Aid Programme) के अन्तर्गत सयुक्त राज्य अमरीका ने यूरोपीय मित्र राष्ट्रो को आर्थिक सहायता देना आरम्भ किया जिससे ऐसे राष्ट्र अपनी अर्थ-व्यवस्था को युद्ध-पूर्व स्तर की बना सके। इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत **यूरोपीय आर्थिक सहयोग सगठन** (Organisation for European Economic Co-operation) की स्थापना की गयी, जिसे अब **आर्थिक सहयोग एव विकास सगठन** (Organisation for Economic Co-operation and Development) कहा जाता है, जिसमे **मत्री-स्तरीय समिति और सलाहकार परिषद्** की व्यवस्था थी। इस प्रकार की सन्धि सन १९४८ की मई म ब्रिटेन, फ्रान्स, इटली, हालैण्ड, बेल्जियम, लक्समबर्ग, आयरलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क के मध्य सम्पन्न हुई।

लगभग इसी समय एक और विशेष घटना घटित हुई। फ्रान्स और पश्चिमी जर्मनी (युद्धकाल के पश्चात् पराजित जर्मनी, पश्चिमी और पूर्वी जर्मनी के रूप मे विभाजित कर दिया गया) के मध्य उनके लोहा, इस्पात और कोयला साधनो के उपयोग के सम्बन्ध मे 'यूरोपीय समिति' के अस्तित्व म आने के एक वर्ष पश्चात् मई १९५० मे एक समझौता हुआ और अप्रैल १९५१ मे **'यूरोपियन कोयला, इस्पात कम्यूनिटी'** नामक सस्था सरकारी-स्तर पर समझौते के फलस्वरूप स्थापित की गयी। इस सस्था मे फ्रान्स और पश्चिमी जर्मनी के अतिरिक्त इटली, बेल्जियम, हालैण्ड और लक्समबर्ग भी शामिल हो गये। इस प्रकार कोयला, लोहा और इस्पात के लिए एक सयुक्त बाजार की नीव पडी। लगभग इसी प्रकार **यूरोपीय अणु-शक्ति** *सस्था या यूरेटम (European Atomic Energy Authority Euratom)* भी अस्तित्व मे आई जिसका उद्देश्य सामूहिक रूप से अणु शक्ति के विकास और नियन्त्रण की व्यवस्था करना था। सन् १९५५ मे **'यूरोपीय आर्थिक समाज'** (European Economic Community—E E C.), **यूरोपीय साझा बाजार** (European Common Market—E C M)—स्थापना की जब चर्चा चल रही थी तब इगलैण्ड को भी आमन्त्रित किया गया परन्तु इगलैण्ड ने स्पष्ट रूप से यह

आमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। इसकी अपेक्षा इंगलैण्ड ने, 'कोयला-इस्पात कम्यूनिटी' तथा 'यूरोपीय अणु शक्ति संस्था' की सदस्यता चाही परन्तु यह प्रार्थना इसलिए अस्वीकार की गयी कि रोम सन्धि के देशों का दृष्टिकोण एकांगी सदस्यता देने का नहीं था।

यूरोपीय साझा मण्डी का जन्म
(Origin of European Common Market)

सन् १९५५ की मन्त्री-स्तरीय बातचीत के पश्चात् मार्च १९५७ में रोम-सन्धि के अन्तर्गत **यूरोपीय साझा बाजार** या **यूरोपीय आर्थिक समाज** अस्तित्व में आया जिसमें फ्रान्स, पश्चिमी जर्मनी, इटली, हालैण्ड, बेल्जियम, लक्समबर्ग राष्ट्र सम्मिलित हुए तथा १ जनवरी, १९५८ से यह संस्था प्रभावशाली ढंग से कार्य करने लगी। आज तो **यूरोपीय साझा बाजार** एक ऐसा प्रभावशाली संगठन है जो सोवियत रूस को छोड़कर यूरोप का सबसे शक्तिशाली आर्थिक संगठन है।

रोम सन्धि के अन्तर्गत इस संगठन के तीन व्यापक उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं

(१) तटकर संघ (Custom's Union)—जिसके अन्तर्गत सदस्य राष्ट्रों में आयात-निर्यात पर लगे समस्त कर समाप्त कर दिये जायेंगे और यह क्षेत्र पूर्ण रूप से स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र बन जायगा।

(२) आर्थिक संघ (Economic Union)—जिसके अन्तर्गत पूंजी, मुद्रा एवं श्रम सम्बन्धी समान नीतियां सदस्य राष्ट्रों में लागू की जायेंगी ताकि समान जीवन-स्तर एवं मूल्य स्तर प्राप्त किया जा सके।

(३) राजनीतिक संघ (Political Union)—इसका उद्देश्य धीरे धीरे सदस्य राष्ट्रों के शासन को एक सूत्र में बाँधना है। इसके लिए एक मिली-जुली चुनाव पद्धति तथा सबकी समान पार्लियामेण्ट बनाने का लक्ष्य है।

सन् १९६६ तक तटकर संघ बनाने की दिशा में द्वितीय चरण समाप्त हो चुका था और ६० प्रतिशत से अधिक करों को समाप्त किया जा चुका था। सन् १९७० तक समस्त करों को समाप्त करने का प्रावधान है। आर्थिक संघ बनाने की दिशा में अभी कोई ठोस प्रयत्न नहीं हो सका है और राजनीतिक संघ का निर्माण तो एक दुष्कर स्वप्न के समान है।

विस्तार से संघ के अन्य उद्देश्य इस प्रकार हैं—(१) सन्धि के अन्तर्गत तटकर समाप्त करने का प्रावधान है जिसके अनुसार १२ से १५ वर्षों के अन्तर्गत सभी प्रकार के व्यापारिक प्रतिबन्ध और कर सदस्य देशों पर नहीं लगेंगे। (सर्वसम्मति से अब यह समय १९७० निश्चित हुआ है जो कि १२ वर्ष का काल कहा जा सकता है।)

(२) सन्धि के अन्तर्गत निश्चित समय-चक्र रखा गया है जिसमें आर्थिक एकीकरण सम्भव हो सकेगा। इस १२ वर्ष की अवधि को ३ चरणों में विभाजित

किया गया है। प्रथम चरण (चार वर्ष की समाप्ति) को समाप्ति पर आन्तरिक तटकर में ४० प्रतिशत कटौती प्रत्येक वस्तु पर होगी और निर्यात कर भी आर्थिक समाज में समाप्त कर दिये जायेंगे। सन् १९६२ में प्रथम चरण समाप्त हो गया और अब दूसरा चरण चालू है। इस काल में भी ४० प्रतिशत कटौती का लक्ष्य है और बाकी तटकर सन् १९७० तक समाप्त हो जायेंगे।

(३) गैर-सदस्य राष्ट्रों पर आयात-कर लगाया जा सकता है। आयात-कर की दरें समान होंगी।

(४) परिवहन-खर्च सदस्य राष्ट्रों में समान या एकरूप होगा और श्रम सम्बन्धी अधिनियम भी एक-से होंगे।

(५) प्रत्येक राष्ट्र (६ देशों में से प्रत्येक) को पूँजी और श्रम की एक-रूपता से उपयोग का अधिकार होगा।

(६) सन्धि के अन्तर्गत कृषि पदार्थों के आयात नियमन के लिए सदस्य राष्ट्रों और गैर-सदस्य राष्ट्रों के लिए व्यवस्था है। संक्रान्ति काल की समाप्ति पर कृषि पदार्थों की 'केन्द्रीय विपणि संस्था' (Central Marketing Organization) बनाने का भी विचार है।

(७) अन्त में सभी आर्थिक प्रतिबन्ध समाप्त होकर सदस्य राष्ट्रों में समान, सेवाएँ, श्रम और पूँजी स्वतन्त्रतापूर्वक आ-जा सकेंगी।

(८) सदस्य राष्ट्रों की अधीनस्थ बस्तियों के लिए भी व्यवस्था है।

(९) सन्धि में 'यूरोपियन सामाजिक कोष' और 'यूरोपीय विनियोग बैंक' नामक आर्थिक संस्थाएँ स्थापित करने की व्यवस्था भी है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से यह स्पष्ट है कि 'यूरोपीय साझा बाजार' का आर्थिक प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। रोम-सन्धि के अनुसार 'यूरोपीय आर्थिक समाज' वाले देशों के अन्तर्गत औद्योगिक और कृषिजन्य पदार्थों को सभी प्रकार के करों से मुक्त रखा जायगा और समाज से बाहर वाले देश के आयात पर तटकर लगेगा। 'यूरोपीय साझा बाजार' न केवल आर्थिक उद्देश्यों तक ही सीमित है वरन् सन्धि के अन्तर्गत वित्तीय, सामाजिक, वैधानिक समस्याओं का भी उसी प्रकार समाधान किया गया है, वर्तमान में चाहे यह विभिन्न स्वतन्त्र राष्ट्रों की संस्था हो परन्तु कुछ इसकी सामान्य संस्थाएँ—यूरोपीय संसदीय समिति, न्यायालय, मन्त्रि-परिषद, आर्थिक और सामाजिक समितियाँ और आयोग—इसे राष्ट्रीय सत्ता से भी अधिक महत्ता प्रदान करती है जिसका राजनीतिक उद्देश्य स्पष्ट है और वह संयुक्त यूरोप की सम्भावना को जन्म देती है। यह एक ऐसा अनुभव है कि यूरोपीय राष्ट्र द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका से पीड़ित होने के पश्चात् संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत रूस के प्रभावों से अपने को मुक्त करके बचा सकते हैं।

यूरोपीय साझा बाजार एवं ब्रिटेन
(European Common Market and Britain)

पिछले कुछ वर्षों से अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक जगत में इंगलैण्ड के यूरोपीय साझा बाजार में प्रवेश करने के विषय पर बड़ा विवाद रहा है। इंगलैण्ड प्रथम महायुद्ध तक विश्व का सबसे अधिक शक्तिशाली देश था तथा द्वितीय महायुद्ध तक भी वह विश्व के कुछ इने-गिने शक्तिशाली राष्ट्रों में से एक था। उस समय तक उसे आर्थिक साधना एवं बाजारों की दृष्टि से किसी अन्य देश अथवा देशों के समूह से समझौता करने की उतनी गरज नहीं थी। वस्तुतः वह इतने विशाल साम्राज्य का स्वामी था कि उसके पास उपनिवेशों के रूप में विश्व का सबसे बड़ा बाजार स्वतः ही उपलब्ध था। उसके अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का दो तिहाई से भी अधिक भाग उपनिवेशों के साथ सम्पन्न होता था। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् इंगलैण्ड के हाथ से धीरे-धीरे उपनिवेश निकलने चले गये। इस स्थिति से बचाव करने एवं अपने आर्थिक हितों को सुरक्षित रखने के लिए राष्ट्र-मण्डलीय गुट का निर्माण किया। पहले ब्रिटिश कामनवेल्थ एक गुलाम राष्ट्रों का समूह था जिसमें ब्रिटेन की स्थिति सर्वोपरि थी, किन्तु अब कामनवेल्थ स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक समूह है जिसमें ब्रिटेन की स्थिति वैसी ही है जैसी कि अन्य किसी राष्ट्रमण्डलीय देश की। युद्धजनित प्रभावों एवं साम्राज्य के विघटन के कारण इंगलैण्ड की अर्थ-व्यवस्था अस्तव्यस्त हो रही थी और एक ओर राष्ट्रमण्डलीय देशों से उसके सम्बन्ध तथा दूसरी ओर पड़ोस में साझा बाजार के छह सदस्य देशों द्वारा प्रस्तुत चुनौती ने उसके समक्ष कठिन समस्याएँ उत्पन्न कर दीं जिनको तत्काल हल करना उसकी सामर्थ्य से बाहर था।

'इफ्टा' का उदय
(Rise of EFTA)

सन् १९५५ में जब रोम सन्धि का प्रारूप तैयार किया जा रहा था इंगलैण्ड को इसका सदस्य बनने के लिए आमन्त्रित किया गया था, किन्तु राष्ट्र मण्डलीय देशों के साथ अपने विशिष्ट सम्बन्धों को देखते हुए तथा इन देशों द्वारा विरोध की आशंका के कारण ब्रिटेन ने इसकी सदस्यता अस्वीकार कर दी। साझा बाजार ने १ जनवरी, १९५८ को औपचारिक रूप से कार्य करना प्रारम्भ किया। ब्रिटेन अपनी शर्तों पर इसका सदस्य बनने का इच्छुक था किन्तु ऐसा करने के लिए साझा बाजार के राष्ट्र सहमत नहीं हुए। अतः ब्रिटेन ने साझा बाजार के समानान्तर यूरोप में एक अन्य संघ सन् १९६० में स्थापित किया जिसे यूरोपियन फ्री ट्रेड एसोसिएशन (EFTA) के नाम से सम्बोधित किया जाता है और जिसमें ब्रिटेन के अतिरिक्त

नार्वे स्वीडन, डेनमार्क, पुर्तगाल, स्विटजरलंण्ड, आस्ट्रिया एव फिनलैंण्ड[1] सदस्य हैं।

सर्वप्रथम जुलाई १९६० मे तटकरो (tariffs) मे कमी की गयी। प्रथम जनवरी सन् १९७० तक त करो को सम्पूर्ण रूप से हटा देने का लक्ष्य रखा गया था, किन्तु लक्ष्य से पहले ही दिसम्बर सन् १९६६ तक 'इफटा' (EFTA) के सदस्यों ने पूर्ण *रूप से तटकरों को समाप्त कर दिया। आज विश्व मे 'इफटा' (EFTA) ही एक* मात्र ऐसा अन्तरराष्ट्रीय सगठन है जिसके सदस्य राष्ट्रो ने पारस्परिक आयात निर्यात पर लगाये जाने वाले करो को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया है। 'इफटा' के सदस्य राष्ट्रो की जनसंख्या कुल मिलाकर लगभग दस करोड है जबकि साझा-मण्डी के सदस्य राष्ट्रो की कुल जनसंख्या लगभग साढे सत्रह करोड है। इंगलैण्ड को छोडकर इस सगठन के अन्य सदस्य राष्ट्र औद्योगिक विकास एव व्यापार की दृष्टि से इतने शक्तिशाली नही है जितने कि साझा मण्डी के कुछ सदस्य हैं। अत ब्रिटेन ने कुछ ही समय मे यह अनुभव कर लिया कि 'इफटा' साझा बाजार की तुलना मे एक छोटा सघ है और वह साझा मण्डी का मुकाबला नही कर सकेगा। इस बीच मे इंगलैण्ड के विदेशी व्यापार की प्रकृति एव दिशा मे महत्त्वपूर्ण परिवतन हो रहे थे। राष्ट्र मन्डलीय देशो के साथ उसके व्यापार का अनुपात कम हो रहा था जबकि पश्चिमी यूरोपीय देशो के साथ बढ रहा था। सन् १९५३ मे स्टलिंग क्षेत्रो को ब्रिटेन का निर्यात ४७ प्रतिशत था जो कि सन् १९६६ मे गिरकर केवल ३० प्रतिशत रह गया है अर्थात् ब्रिटेन के कुल निर्यात का एक-तिहाई से कुछ कम भाग ही स्टर्लिंग क्षेत्रो को जाता है। किन्तु उधर इसी अवधि मे पश्चिमी यूरोप[2] मे उसका निर्यात बढा है—यह सन् १९५३ मे २७ प्रतिशत था जो कि सन् १९६६ मे ३८ प्रतिशत हो गया। इसके कारण ब्रिटेन की विचारधारा मे परिवर्तन हुआ और उसने आखिरकार सन् १९६१ मे यूरोपीय साझा बाजार का सदस्य बनने का निश्चय किया तथा इसके लिए औपचारिक रूप से आवेदन दिया गया।

सदस्यता की प्रेरणा

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् का इंगलैण्ड युद्ध पूर्व का इंगलैण्ड नही है। अतः किसी ने ठीक ही कहा है कि **विजयी इंगलैण्ड पराजित इंगलैण्ड से भी निकृष्ट है।** इंगलैण्ड के यूरोपीय साझा बाजार के सदस्य बनने की प्रेरणा देने वाले कारण सम्भवत ये हैं

(१) इंगलैण्ड ने जिस यूरोपीय स्वतन्त्र व्यापार सस्था की स्थापना की थी वह अपनी उदार व्यापार नीतियो मे अधिक सफलता नही प्राप्त कर सकी है।

---

1 फिनलैण्ड सन् १९६१ मे 'इफटा' मे शामिल हुआ और यह इस सस्था का उप-सदस्य (Associate member) है।

2 'इफटा' के सदस्य राष्ट्रो को सम्मिलित करते हुये।

इ गलैण्ड को उनमे जितना अपेक्षित आर्थिक लाभ प्राप्त होना चाहिए था वह नही हो पा रहा है। अत दूसरे उत्तम विकल्प के रूप मे इ गलैण्ड यूरोपीय साझा बाजार का सदस्य बनना चाहता है।

(२) इ गलैण्ड का निर्यात व्यापार राष्ट्रमण्डलीय देशो से युद्ध के पश्चात् सरक्षण के अभाव मे निरन्तर ह्रासोन्मुख रहा है। निर्यात के प्रोत्साहन और स्थायित्व के लिए यह आवश्यक है कि उसे बाजार प्राप्त हो। राष्ट्रमण्डलीय देश भी आर्थिक विकास और औद्योगिक क्रान्ति के सम्पादन मे व्यस्त है अत इ गलैण्ड का औद्योगिक माल वहाँ पूर्णत खप नहीं पाता और कच्चे माल के स्रोत के रूप मे राष्ट्रमन्डलीय देश उससे दूर होते जा रहे हैं।

(३) यूरोपीय साझा बाजार के सदस्य देशो ने अपने आपसी व्यापार म सभी प्रकार के तटकर और अलगाव की स्थितियाँ समाप्त कर दी हैं तथा इस प्रकार से कीमतो को न्यूनतम स्तर पर स्थिर रखने और उत्पादन-लागत घटाने मे सफल हुए हैं। वे अफ्रेशियाई देशों से कच्चा माल प्राप्त करने मे सफल हुए ह सम्भवतया इ गलैण्ड को भी इसी प्रकार के आकर्षण न सदस्यता के लिए प्रेरित किया हो।

(४) यूरोपीय साझा बाजार के सदस्य राष्ट्रो ने अपनी राष्ट्रीय आय बढाने मे अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। सन् १९६० से १९७० तक के काल म प्रतिवर्ष इन राष्ट्रो की आय मे ५½ प्रतिशत वृद्धि हुई तथा औद्योगिक उत्पादन म औसत वृद्धि ७ प्रतिशत की हुई है।

(५) इ गलैन्ड का व्यापार सन्तुलन बिगड रहा है और भुगतान सम्बन्धी घाटे की समस्या भी मुँह बाये खडी हैं अत इ गलैन्ड अपनी उत्पादन-व्यवस्था तथा आर्थिक प्रबन्ध म परिवर्तन चाहता है।

(६) यूरोपीय साझा बाजार स्वत इ गलैन्ड के लिए भी विशिष्ट बाजार बन गया है। साझा बाजार के देश इ गलैण्ड के माल को ले सकते हैं और ले रहे हैं तथा उसका नकदी मे भुगतान कर रहे हैं। यदि इ गलैण्ड किसी कारण इस मण्डी की सदस्यता से बाहर रहता है तो उसे तटकर की भारी दीवार से सिर टकराना पडेगा जो कि उसके लिए महँगा पडेगा, उसके स्थान पर यदि वह सदस्य हो जाता है तो उसका माल इन देशो मे कर-मुक्त रूप म प्रवेश पायेगा।

(७) भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधानमन्त्री श्री हैरॉल्ड मैकमिलन के मतानुसार ब्रिटेन का यूरोपीय साझा बाजार का सदस्य होना राष्ट्रमण्डलीय देशो के लिए हितकर होगा। इ गलैण्ड इनका प्रमुख प्रवक्ता होगा और उनके आर्थिक हितो के लिए सदा प्रयत्नशील होगा। इस रूप मे चार तर्क प्रस्तुत किये गये हैं—(अ) विश्व व्यापार की आवश्यकता, (आ) सुव्यवस्थित बाजारो की आवश्यकता, (इ) विकासशील देशो की मान्यता जिससे वे अपने उद्योग और निर्यात को विकसित कर सकें, और

(ई) उन देशों के लिए अतिरिक्त अन्न का नियमन जिनको खाद्यान्न की आवश्यकता है।

(८) इंगलैण्ड इस नतीजे पर पहुँच चुका है कि यदि यह यूरोपीय साझा बाजार का सदस्य नहीं बनता तो वह कई राजनीतिक परिवर्तनों और विकास धाराओं से अलग हो जायगा। साथ ही ज्यों-ज्यों रोम की सन्धि के अन्तर्गत प्रस्तावों का दृढ़ता से पालन किया जायगा त्यों-त्यों उसके साथ व्यापार में भेदभाव बढ़ता जायगा तथा प्रतिस्पर्द्धा तीव्रतर होती जायगी।

(९) इंगलैण्ड का यह भी अनुभव है कि वर्तमान परिस्थिति में यह सम्भावना है कि यूरोप से अलग-अलग रहने पर गम्भीर राजनीतिक परिणाम उसे भोगने पड़ सकते हैं।

(१०) इंगलैण्ड की आर्थिक शक्ति के ह्रास से उसका राजनीतिक प्रभाव अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में कम हो जायगा और उधर यह ६ राष्ट्रों का समूह अपने बढ़ते हुए प्रभाव से निर्दिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति कर सकेगा।

अतः उपर्युक्त परिस्थितियों और तथ्यों के परिणामस्वरूप इंगलैण्ड ने यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता के लिए आवेदन-पत्र दिया जिस पर पर्याप्त समय तक विचार-विमर्श हुआ। जहाँ एक ओर ब्रिटेन अपनी अर्थ व्यवस्था की सुदृढ़ता के लिए इसे आवश्यक समझता है वहाँ राष्ट्रमण्डलीय देशों की अर्थ-व्यवस्थाओं पर भी इसका अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, अतः सम्बन्धित सरकारें भी इस सम्बन्ध में इन विगत वर्षों में इस पर विचार-विमर्श करती रही हैं तथा इंगलैण्ड की सरकार पर यह दबाव डालती रही है कि यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता में साथी देशों के पारस्परिक हितों का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। इस प्रकार की सबसे प्रभावशाली बैठक सितम्बर सन् १९६२ की राष्ट्रमण्डलीय देशों के वित्त मन्त्रियों की अकारा (घाना) में बैठक कही जा सकती है। इस बैठक की प्रतिक्रिया इतनी तीव्र थी कि एक क्षण तो यह अनुभव किया गया कि ब्रिटेन यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता के लिए प्रयत्न छोड़ देगा। लेकिन यदि हम इस परिस्थिति पर एक तटस्थ आलोचक के दृष्टिकोण से विचार करें तो यह मानना होगा कि ब्रिटेन द्वारा यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता स्वीकार करना हमारे राष्ट्रमण्डलीय देशों के साथ कोई विश्वासघात नहीं है। जब किसी राष्ट्र के सामने अपने जीवन-मरण का अपने अस्तित्त्व का प्रश्न प्रस्तुत हो उसी समय वह अपना सम्पूर्ण ध्यान इस प्रकार की ज्वलन्त समस्या के हल के लिए लगायेगा न कि मित्रों की सहायता की ओर। इस पर भी ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का यह मत है "राष्ट्रमण्डल और यूरोप दो भिन्न प्रकार के संगठन हैं और एक की सदस्यता दूसरे की सदस्यता को हानि न पहुँचाकर लाभ ही पहुँचायेगी।" अतः इंगलैण्ड इस बात का निरन्तर प्रयत्न करेगा कि राष्ट्रमण्डलीय देशों को व्यापारिक प्राथमिकताएँ और तटकर

सम्बन्धी सुविधाएँ पर्याप्त सीमा तक सुरक्षित रहें। इसी प्रकार यूरोपीय साझा बाजार में ब्रिटिश प्रवेश के मुख्य प्रवक्ता श्री हीथ ने भी यह माना है कि कई राष्ट्र-मण्डलीय देशों की अर्थ-व्यवस्था ब्रिटिश बाजार पर आधारित है क्योंकि उनके माल को बिना किसी प्रतिबन्धों और करों से प्रवेश मिलता रहा है, अतः इंगलैण्ड निरन्तर इस बात का प्रयत्न करेगा कि जहाँ तक सम्भव हो ऐसे देशों के हितों की रक्षा हो।

इस प्रकार मुद्र राष्ट्रमण्डलीय देशों के सन् १९६० के निर्यात का २३ प्रतिशत ब्रिटेन को और १२ प्रतिशत 'यूरोपीय आर्थिक समाज' को किया गया, किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि सभी देश इस प्रकार से इंगलैण्ड पर निर्भर करते हैं। कुछ देश ऐसे भी हैं जो ब्रिटेन के निर्यात पर कम निर्भर कर यूरोपीय आर्थिक समाज वाले देशों के व्यापार या निर्यात पर अधिक निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए, मलाया, सिंगापुर, घाना, युगाण्डा का नाम लिया जा सकता है।

भारत की स्थिति इन देशों के मध्य की है अर्थात् उसका कुल निर्यात व्यापार का २७% ब्रिटेन से और ८% 'यूरोपीय आर्थिक समाज' में सम्पन्न होता है। अतः विभिन्न राष्ट्रमण्डलीय देशों के व्यापार दृष्टिकोण से चार वर्ग किये जा सकते हैं :

(१) प्रथम वर्ग में कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड को शामिल किया जा सकता है जिनका व्यापार २२% इंगलैंड के साथ और ११% साझा बाजार[1] (EEC) के साथ होता है।

(२) द्वितीय वर्ग में भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका को शामिल किया जा सकता है जिनके कुल निर्यात व्यापार का २१% इंगलैण्ड से तथा ७% साझा बाजार से सम्पन्न होता है।

(३) तीसरे वर्ग में वे सभी स्वतन्त्र देश शामिल किये जा सकते हैं जोकि उष्णकटिबन्धीय परिधि में आते हैं जिनके कुल निर्यात का २५% इंगलैण्ड और ७ प्रतिशत साझा बाजार के साथ व्यापार सम्पन्न होता है।

(४) वे शासित-प्रदेश या उपनिवेश जिनके कुल निर्यात का २१ प्रतिशत इंगलैण्ड तथा ७ प्रतिशत साझा बाजार के साथ सम्पन्न होता है।

अतः इंगलैण्ड के यूरोपीय साझा बाजार में शामिल होने के प्रश्न के साथ ही यह मान लिया गया कि इन विभिन्न-वर्गों के साथ विभिन्न प्रकार का प्रबन्ध करना अनिवार्य होगा। इसका परिणाम यह है कि इन देशों को जो निर्यात के कम होने तथा उन पर अतिरिक्त चुंगी लगने से आर्थिक हानि होगी उसको कुछ समय तक न होने देने के लिए समझौते सम्पन्न किए जायें। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड इंगलैण्ड को खाद्यान्न का निर्यात करते

---

[1] EEC European Economic Community,

हैं और इसी प्रकार कनाडा और आस्ट्रेलिया खनिज तथा धातुएँ तथा कनाडा उत्पादित माल, भी इगलैण्ड को भेजते हैं। खाद्यान्न के क्षेत्र में 'यूरोपीय साझा बाजार' के सदस्यों ने न्यूजीलैण्ड की समस्या को विशेष समस्या माना है। ब्रिटेन न्यूजीलैण्ड का ६० प्रतिशत मक्खन और ६० प्रतिशत मांस आयात करता है अत मण्डी के सदस्य देशों ने इस समस्या के समाधान के लिए भी सुझाव स्वीकार कर लिये हैं।

आस्ट्रेलिया और कनाडा के खाद्यान्न के निर्यात के सम्बन्ध मे साझा बाजार (EEC) की मूल्य नीति के सन्दर्भ म विचार किया जा सकता है जिसमे सम्भवतया ब्रिटेन अपना प्रभाव काम म ला सकेगा। साझा बाजार (EEC) मे सदस्य देश इस बात पर तो सहमत हो गये हैं कि मूल्य नीति उचित होनी चाहिए। ये सदस्य इस बात के लिए भी उत्सुक हैं कि एक ऐसा विश्व-व्यापक समझौता खाद्यान्न सम्बन्धी वस्तुओं के सम्बन्ध म होना चाहिए ताकि समुद्र पार उत्पादकों के हितों का ध्यान रखा जा सके। इसी प्रकार निर्मित मालों के सम्बन्ध म भी यह समस्या मुँह बाय खड़ी है। कनाडा की सालमन मछली और आस्ट्रेलिया के फल विशेष रूप से समस्या उपस्थित करते हैं।

कनाडा के निर्मित माल मे अल्यूमीनियम और अखबारी कागज की विशेष समस्या है और ब्रिटेन ने इसके लिए निःशुल्क आयात की बात कही है। इसी प्रकार अफ्रीका और महाद्वीप के स्वतन्त्र राष्ट्रमण्डलीय देशों तथा कैरीबियन देशों (दक्षिणी अमरीका) और अधिकांश इगलैण्ड की अधीनस्थ बस्तियों के लिए साझा बाजार (EEC) ने यूरोपीय साझा बाजार के एसोसिएटेड सदस्यता का प्रस्ताव रखा है और इन देशों को वे सभी प्राथमिकताएँ देना स्वीकार कर लिया है जो फ्रान्स, वेल्जियम और उच्च अधीनस्थ बस्तियों के लिए स्वीकार की गयी है।

भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका की समस्याओं और आवश्यकताओं का भी अध्ययन किया गया है। चाय के सम्बन्ध मे सामान्य तटकर घटाने का समझौता हो गया है। सूती वस्त्रों के सम्बन्ध म भी कुछ रियायतें देने का निर्णय किया गया है।

कुछ खनिज पदार्थों और खेल-कूद की वस्तुओं पर सामान्य तटकर शून्य तक घटा दिया जायगा। अन्य औद्योगिक वस्तुओं के लिए इस प्रकार की रिआयतें धीरे-धीरे समाप्त कर दी जायगी। यह सामान्य तटकर का नियम पाच सोपानों म व्यवहार म लाया जायेगा। भारतीय चमड़ा (East India Kips) कुछ भारी जूट पदार्थों और इसी प्रकार के पदार्थों के सम्बन्ध म अभी कोई निर्णय नहीं हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत से जाने वाले जूट पदार्थों पर तटकर लगेगा किन्तु साथ ही ब्रिटिश जूट उद्योग को दिया जाने वाला सरक्षण समाप्त कर दिया जायगा। कहवा और काजू के सम्बन्ध म अभी रिआयतें प्राप्त नहीं की गयी हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इगलैण्ड ने 'यूरोपीय साझा बाजार' की सदस्यता प्राप्त करने के प्रयत्न के साथ-साथ इस बात का प्रयत्न भी किया है कि राष्ट्रमण्डलीय देशो को भी लाभ पहुँचे तथा अनावश्यक रूप से उन देशो की आर्थिक स्थिति पर इसका विपरीत प्रभाव न पडे। जब इस प्रकार पर्याप्त समय से यूरोपीय साझा बाजार के ६ सदस्य देशो और इगलैण्ड द्वारा सदस्यता प्रवेश की शर्तों पर विचार-विनिमय चल रहा था कि अकस्मात ही फ्रान्स के कठोर रवैये से ब्रिटिश प्रवेश की बात पर तुषारापात हो गया। फलस्वरूप बातचीत का सिलसिला जनवरी सन् १९६३ मे टूट गया। राष्ट्रमण्डलीय एव EFTA के सदस्य राष्ट्रो का माल ब्रिटेन मे कर-मुक्त अथवा न्यून दर पर करों के आधार पर आयात होता है। इसी प्रकार ये राष्ट्र ब्रिटेन से आयात किये जाने वाले माल पर कर नही लेते अथवा कम दर से कर लेते हैं। यदि ब्रिटेन यूरोपियन साझा बाजार का सदस्य हो जाता है तो उसे इसके छह सदस्य राष्ट्रो से आने वाले माल कर-मुक्त करना होगा तथा अन्य देशो (Commonwealth and EFTA Members) से आने वाले माल पर उसी दर से कर लगाना होगा जो कि साझा बाजार अन्य देशो से होने वाले आयात के लिए निर्धारित करे। स्वाभाविक है कि ऐसी दशा मे राष्ट्रमण्डलीय देशो द्वारा ब्रिटेन को प्रदान की जाने वाली समस्त सुविधाएँ और रिआयतें भी समाप्त कर दी जाती। अत ब्रिटेन कोई ऐसा हल चाहता है जिससे कि वह एक ओर राष्ट्रमण्डल तथा यूरोपीय स्वतन्त्र व्यापार सघ मे अपने हितो को सुरक्षित रख सके और दूसरी ओर साझा बाजार के अपने छह पडोसी देशो के सघ का भी लाभ प्राप्त कर सके। मई सन् १९६७ मे ब्रिटेन द्वारा यूरोपीय साझा मण्डी की सदस्यता प्राप्त करने के लिए पुन आवेदन पत्र दिया। इस आवेदन पत्र पर दिसम्बर सन् १९६७ मे साझा मण्डी के सदस्य राष्ट्रो ने विचार किया। छह सदस्यो मे से पाँच सदस्य राष्ट्र ब्रिटेन को सदस्यता प्रदान किये जाने के पक्ष मे थे किन्तु एक सदस्य राष्ट्र (फ्रान्स) के विरोध के कारण कोई निर्णय नहीं किया जा सका। साझा मण्डी मे सदस्यता के लिए ब्रिटेन का आवेदन पत्र आज भी साझा मण्डी के सदस्यों के समक्ष विचाराधीन है। अपने इस प्रयत्न मे ब्रिटेन कब और किस सीमा तक सफल होगा यह तो भविष्य ही बतलायगा।

अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक सहयोग
(International Economic Cooperation)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से विश्व के विभिन्न देशो पारस्परिक आर्थिक सहयोग का निरन्तर विकास हुआ है। इस सहयोग का प्रारम्भ अनेक राष्ट्रो की युद्ध से ध्वस्त अर्थ व्यवस्था को सुधारने के उद्देश्य से हुआ। पश्चिमी यूरोप के आर्थिक पुनर्निर्माण के बाद विकसित राष्ट्रो का ध्यान एशिया, अफ्रीका एव लेटिन अमरीका के पिछडे हुए देशो के विकास की ओर गया। युद्धोत्तर कालीन समस्याओ एव आर्थिक सकटों के बावजूद ग्रेट ब्रिटेन ने विकासशील देशो के आर्थिक विकास मे

पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है। वैसे उपनिवेशों के साथ ब्रिटेन के आर्थिक सम्बन्ध बहुत पहले से चले आ रहे थे। प्रथम विश्व युद्ध के पहले ही विभिन्न उपनिवेशों के उद्योगों, परिवहन, बीमा, बैंकिंग, खनिज, विद्युत, तथा रबर एवं चाय आदि में विनियोजित ब्रिटिश पूंजी की मात्रा ४००० मिलियन पौंड (तत्कालीन मूल्यों के अनुसार) से भी कुछ अधिक थी। इस प्रकार विदेशों में पूंजी विनियोग की दृष्टि से ब्रिटेन विश्व का प्रमुख राष्ट्र था। उपनिवेशों के स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी ब्रिटिश पूंजी में कमी नहीं हुई है, अपितु विदेशों में उसके विनियोग की दिशाओं एवं उसके स्वरूप में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है।

ब्रिटिश निजी पूंजी का अन्य देशों में विनियोग
(Foreign Investment of Private British Capital)

ब्रिटिश नागरिकों, फर्मों एवं कम्पनियों द्वारा स्टर्लिंग क्षेत्र के देशों में पूंजी लगाने पर प्रायः कोई पाबन्दी नहीं है। केवल बड़ी मात्रा के विनियोगों (पचास हजार पौण्ड से अधिक) के लिए ही सरकार से स्वीकृति लेना आवश्यक होता है। सन् १९६६ के बाद से न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका एवं आयरलैण्ड में ब्रिटिश पूंजी लगाने पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये हैं।

स्टर्लिंग क्षेत्र के बाहर के देशों में पूंजी लगाने के लिए भी विशेष प्रतिबन्ध नहीं हैं। यदि ऐसे विनियोगों से ब्रिटेन के भुगतान सन्तुलन की स्थिति में सुधार होने की आशा हो अथवा ऐसी पूंजी विदेशों में कमाये गये लाभ में से लगायी जानी हो, तो ब्रिटिश सरकार इसका स्वागत करती है। ब्रिटिश पूंजी का विनियोग विदेशों में अनेक रूपों में किया जाता है

(१) विदेशी प्रतिभूतियों में पूंजी विनियोग (Portfolio investment)।

(२) विदेशों द्वारा लन्दन पूंजी बाजार से ऋण (Loans raised from London Capital Market)।

(३) प्रत्यक्ष विनियोग (Direct investment)—यह प्रायः विदेशों में सहायक कम्पनियों की स्थापना करके उनके माध्यम से किया जाता है।

(४) विदेशों में अर्जित लाभ का पुनर्विनियोग।

(५) विदेशी फार्मों या कम्पनियों में आंशिक या पूर्ण हिस्सेदारी।

सन् १९६७ के अन्त में विदेशों में ब्रिटेन द्वारा किये गये विनियोग निम्न प्रकार थे

(१) विदेशों द्वारा लन्दन पूंजी बाजार से लिये गये ऋण (मिलियन पौण्ड) एवं विदेशी प्रतिभूतियों में विनियोजित ब्रिटिश निजी पूंजी ४,१५०

(२) प्रत्यक्ष विनियोग (Direct investment)

(क) तेल उद्योग में १,६००
(ख) अन्य उद्योगों में
(बीमा बैंकिंग के अतिरिक्त) ५,३०० ६,९००

समस्त विनियोग योग ११,०५०

प्रत्यक्ष विनियोगों का अधिकांश निर्माणकारी उद्योगों Manufacturing industry) में लगा हुआ था। शेष पूंजी व्यापार, खनिज परिवहन एवं चाय, रबर, कहवा आदि के बागानों में लगी हुई थी। विदेशों में बीमा एवं बैंकिंग के व्यवसाय में लगी हुई ब्रिटिश निजी पूंजी को उपर्युक्त विवरण में सम्मिलित नहीं किया गया है, क्योंकि उसके विषय में सही आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

विकासशील देशों को ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गयी सहायता

विकासशील देशों को ब्रिटिश सरकार द्वारा अनेक रूपों में अनेक संस्थाओं के माध्यम से ऋण एवं आर्थिक एवं तकनीकी सहायता प्रदान की जाती है जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न पंक्तियों में किया गया है

(१) राष्ट्र मण्डल विकास निगम (Commonwealth Development Corporation)

यह निगम फरवरी सन् १९४८ में स्थापित किया गया और इसका उद्देश्य राष्ट्र मण्डल के विभिन्न देशों के आर्थिक विकास की परियोजनाओं में सहायता प्रदान करना है। सहायता ऋण देकर अथवा तकनीकी सहयोग देकर प्रदान की जाती है। निगम व्यावसायिक आधार पर कार्य करता है, और प्रायः विदेशों की विकास परियोजनाओं में हिस्सेदारी भी करता है। यह निगम अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति ब्रिटिश सरकार से ऋण लेकर पूरा करता है। सन् १९६१ तक इसके द्वारा राष्ट्र मण्डलीय देशों को प्रतिवर्ष दी जाने वाली सहायता की राशि १०० मिलियन पौंड तक हो गयी थी, किन्तु उसके बाद इसमें कमी होना शुरू हुआ, क्योंकि अनेक उपनिवेशिक देश एक के बाद एक स्वतन्त्र होते चले गये। सन् १९६७ के अन्त में निगम के द्वारा १४० मिलियन पौंड की सहायता स्वीकृत थी जिसमें से ११४ मि० पौंड की सहायता प्रदान की जा चुकी थी। इस सहायता का अधिकांश भाग सुदूर पूर्व, अफ्रीका एवं मध्य पूर्व के देशों को प्राप्त होता है।

(२) कोलम्बो योजना (Colombo Plan)

श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो में राष्ट्र मण्डल के विभिन्न देशों के प्रधान मन्त्रियों का एक सम्मेलन जनवरी सन् १९५० में हुआ। इस सम्मेलन में ही दक्षिण पूर्वी एशिया के विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक सहयोग के उद्देश्य से कोलम्बो योजना का प्रारूप तैयार किया गया। अब इसमें कुल मिला कर २२ सदस्य हैं जिनमें संयुक्त राज्य अमरीका, इंग्लैंड, कनाडा और जापान जैसे विकसित देश भी सम्मिलित हैं। इस योजना के अन्तर्गत दक्षिण पूर्वी एशिया में कृषि, सिंचाई, बिजली, परिवहन,

स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास आदि के विकास के लिए तकनीकी एवं आर्थिक सहायता सदस्य देशों द्वारा उपलब्ध की जाती है। सन् १९५१ से लेकर सन् १९६८-६९ तक लगभग २,२०० करोड़ डालर की सहायता इस योजना के अन्तर्गत सम्बद्ध देशों को प्रदान की गयी। इसमें सर्वाधिक भाग संयुक्त राज्य अमरीका का रहा है जिसने कुल मिला कर अब तक ३४० करोड़ डालर की सहायता दी है। उसके बाद ब्रिटेन का भाग है जिसके द्वारा दी गयी सहायता की राशि लगभग १५० करोड़ डालर रही है।

(३) राष्ट्र मण्डल विकास वित्त कम्पनी लिमिटेड (Commonwealth Development Finance Company Limited)

इसकी स्थापना सन् १९५३ में की गयी ताकि राष्ट्र मण्डलीय देशों में ब्रिटिश निजी पूँजी के विनियोग को एक नवीन माध्यम मिल सके। इस कम्पनी की *अधिकृत अंश पूँजी ३० मिलियन पौण्ड है जिसमें ब्रिटेन की अनेक कम्पनियाँ, बैंक* आफ इंगलैण्ड तथा राष्ट्र मण्डलीय देशों के केन्द्रीय बैंक हिस्सेदार हैं। स्थापना के बाद से मार्च सन् १९६८ तक इस कम्पनी के द्वारा लगभग ३९ मिलियन पौण्ड की सहायता उपलब्ध की जा चुकी है।

(४) अन्य संस्थाएँ (Other Agencies)

इनमें अनेक अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ सम्मिलित हैं—जैसे विश्व बैंक (I B R D), अन्तरराष्ट्रीय विकास संघ (I D A) तथा अन्तरराष्ट्रीय विकास निगम (I F C)। संयुक्त राज्य अमरीका के बाद इन संस्थाओं को ब्रिटेन ने सबसे अधिक अंशदान दिया है। सन् १९६८ से १९७० तक के तीन वर्षों में ब्रिटेन द्वारा इन संस्थाओं के लिए ६५ मिलियन पौण्ड उपलब्ध करने के वचन दिये गये हैं। सन् १९५० के बाद से जब संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (*United Nations Development Programme*) आरम्भ हुआ ब्रिटेन विकास के लिए १,२८८ विशेषज्ञों की सेवाएँ प्रदान कर चुका है तथा १७७ स्थानों पर प्रशिक्षण केन्द्र संचालित कर रहा है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र की अन्य संस्थाओं में भी ब्रिटेन का आर्थिक योगदान सन्तोष जनक रहा है जैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन (W H O), संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (UNICEF) आदि।

भारत की विकास योजनाओं के लिए भी ब्रिटिश सरकार द्वारा पर्याप्त सहायता दी गयी है। विकास कार्यों के लिए ब्रिटेन से भारत को दिये गये ऋणों की *मात्रा सन् १९६९ के मार्च में लगभग ६४० करोड़ रुपये थी जो कि भारत के कुल* विदेशी ऋणों की राशि का दस प्रतिशत थी।

ब्रिटेन में विनियोजित विदेशी निजी पूँजी
(Foreign Private Capital Investments in Britain)

ब्रिटेन के विभिन्न उद्योगों में विदेशी निजी पूँजी भी पर्याप्त मात्रा में लगी हुई है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में उसमें निरन्तर वृद्धि हुई है। सन्

१९६९ के अन्त मे विदेशो के प्रत्यक्ष विनियोगो (direct investments) की राशि २,५०० मिलियन पौण्ड से कुछ अधिक थी। इसका ८२ प्रतिशत भाग निर्माण कारी उद्योगो (Manufacturing Industries) मे तथा शेष १२ प्रतिशत भाग व्यापार आदि मे लगा हुआ था। यह पूँजी विदेशो मे स्थापित कम्पनियो की सहायक कम्पनियो अथवा शाखाओ के माध्यम से लगी हुई थी। प्रत्यक्ष विनियोगो मे सबसे अधिक पूँजी सयुक्त राज्य और कनाडा की थी। इस पूँजी मे सयुक्त राज्य अमरीका का भाग ६६ प्रतिशत, कनाडा का १२ प्रतिशत, स्विटजरलैण्ड का ८ प्रतिशत और शेष १४ प्रतिशत अन्य देशों का था। स्विटजरलैण्ड द्वारा लगायी गयी पूँजी मे अप्रत्यक्ष रूप से अमरीका पूँजी ही प्रधान थी।

प्रत्यक्ष विनियोगो के अतिरिक्त विदेशो द्वारा ब्रिटिश कम्पनियो की प्रतिभूतियो मे भी पर्याप्त पूँजी लगी हुई थी। इसकी राशि सन् १९६९ के अन्त मे १,५०० मिलियन पौण्ड से कुछ अधिक थी। ब्रिटेन मे लगी हुई विदेशी पूँजी की वापसी पर कोई प्रतिबन्ध नही हैं। पूँजी के साथ-साथ पूँजी पर प्राप्त लाभ (Capital gains) की वापसी भी प्रतिबन्ध रहित है। पूँजी पर अर्जित लाभ एव लाभाशो को सम्बद्ध देशो मे भेजने के लिए विदेशी मुद्रा सुलभ की जाती है।

प्रश्न

1 What do you mean by European Common Market? What benefits would accrue to England if she joins it?

यूरोपीय साझा मडी से आप क्या तात्पर्य समझते हैं? यदि इगलैण्ड इसमे सम्मिलित होता है तो इससे उसे क्या लाभ प्राप्त होगे? (जोधपुर, १९६३)

2 Critically examine the role of Great Britain towards the economic development of developing countries

विकासशील देशो के आर्थिक विकास म ब्रिटेन के योगदान का उचित मूल्याकन कीजिए।

BIBLIOGRAPHY

Acworth, W M	The Railways of England
Allen, G C	The Structure of Industry in Britain
Arndt, H W	The Economic Lessons of the Nineteen Thirties
Ashley, W J,	Economic Organisation of England
Ashton, S	Industial Revolution
Beveridge, W H	Pillars of Social Security
,,	Full Employment in a Society—A Report, 1945
Birnie	*An Economic History of Europe*
Bhir & Pradhan	Modern Economic Development, Vol I & II
Bracey, H E	English Rural Life
Burn Duncan	The Steel Industry (1939-1959) C U P,
Blund, A E and Brown P A etc	English Economic History Select Documents
Bowley, A L	Some Econmic Consequences of the Great War
Buchanan, Keith and Sinclare	Types of Farming in Britain, 1967
Caves R E	Britain's Economic Prospects, 1968
Clapham, J A	A Concise Economic History of Britain, upto 1750
,,	An Economic History of Modern Britain, 3 Vols
,,	England in the Eighteenth Century
Clark, G N	Wealth of England, 1746 1760
Cohan, E W	The English Social Service—Methods of Growth
Cole, G D H	A Short History of the British Working Class Movement
,,	British Trade & Industry
Court, W B A	Concise Economic History of Britain From 1750 to Recent Times
Coures, A G	The Merchant Navy Today
Croome, H M and Hammond, R J	Economy of Britain
Cunningham, W	The Growth of English History and Commerce, Vol II and III

Cullingworth, J B	English Housing Trends, 1965
Das Gupta, A	Economic & Commercial Geog, 1961
Day J P	Introduction to World Economic History Since the Great War
Day Clive	Economic Development in Modern Europe
Deane, Phyllis & Cole, W A	British Economic Growth
Digby, M Editor	Year Book of Agricultural Co operation, 1964
Dobb, M	Studies in the Development of Capitalism
Dow J C R	The Management of British Economy
Dube, R N	(i) Economic Development of England
	(ii) Economic & Commercial Geography
Doonison Chapman	Social Policy and Administration, 1965
Dunning & Thomas	British Industry, 1963
Ernle, Lord	English Farming—Past and Present
Ellis, H	British Railway s History
Fay, C R	Life and Labour in the Nineteenth Century
,,	Co operation At Home and Abroad, Vol I
Findly, R M	Britain Under Protection
Flanders A	Trade Unions
Flanders A and Clegg, (Ed)	The System of Industrial Relation in Great Britain.
Fuchs, C J	The Trade Policy of Great British and her Colonies Science, 1860
Grove, J W	Government & Industry in Britain
Hanson, H A	Parliament & Public Ownership.
Halayya, M	A Text Book of Economic History.
Halevy E	A History of the English People in 1815, Book II.
Hall M P	The Social Services of Modern England
Heaton, H	British Way to Recovery
Heckscher, E F.	Mercantilism
Hirsch, F P and Hunt, K E	British Agriculture Structure and Organisation
Hobson, J A	The Evolution of Modern Capitalism
Holyoake, G F	Co-operation Today
Howell, G.	Trade Unionism—New and Old
Hunt, W and Poole, R. L	A Hundred Years of Economic Development, 1840–1940.
Kahn, A. E.	Great Britain in World Economy

Keeling & Wright	The Development of the Modern British Steel Industry
Knight, H M and Barnes, H C and Flugel, F	Economic History of Europe
Kowles L C A	Industrial and Commercial Revolutions in England in 19th Century
"	Economic Development in the 19th Century
Lafitte, F	Britains Way to Social Security
LewesF M M	Statistics of British Economy 1967
Lewis, W A	Economic Survey (1919-1939)
Liposn, E	Economic History of England, Vol II and III
"	Planned Economic Versus Free Enterprise—The Lessons of History
"	Europe in the 19th Century
Marshall, T H	*Social Policy, 1965*
Morris, R. N and Mogey John	The Sociology of Housing
Maney G	Climate and British Scene
Mantoux, P	The Industrial Revolution in the 18th Century
Melchett, L	Imperial Economic Unity
Milton and Briggs	Economic History of England
Nogeshrao, S	Modern Economic Development
Nee, J U	Rise of British Coal Industry, 2 Vols
Ogg, F A and Sharp W R	Economic Development of Modern Europe
P E P	(i) Agriculture and Land Use (ii) British Shipping
Robbins, L	The Great Depression
Robson, R	The Cotton Industry in Britain
"	The Man-made Fibres Industry
Robson W A	Nationalised Industry and Public Ownership
Ross H M	British Railways
Rostow H M	British Economy in the 19th Century.
Robertson, D H	The Control of Industry.
Sarkar, D S	*Modern Economic Development of Great Powers.*
Sargent, J R	British Transport Policy
Scott, J D	Life in Britain
Slater, G	(i) Making of Modern England. (ii) Growth of Modern England

Smart, W — Economic Annals of 19th Century
Southgate, H W — Economic History of England
Stamp L D — (i) The Face of Britain
(ii) Land of Britain—Its Use and Misuse
Beaver, S H — The British Isles—A Geographic and Economic Survey 1954
Srivastava, C P — Modern Economic Development of England
Srinivasraghwan T — Modern Economic History—Vol I, 1954
Sheth, K — Modern Economic Development of Great Powers
Thornton, R H — British Shipping
Townshend-Rose H — The British Coal Industry
Toynbee, A — Lectures on Industrial Revolution of the 18th Century
Trevelyan, G M — Social History of England
Viswanathan, M Rajendran, S and Vasudevan, K — Modern Economic History of England America and Russia
Waters, C M — An Economic History of England
Webb, B, and *S* — (i) The English Poor Law Policy
(ii) English Trade Unionism
Wood, W V and Stamp, J — Railways 1825 1928
Worswick, G D N and others — The British Economy 1945–1950 (1952)
Williams, H T (Ed) — Principles of British Agriculture Policy, 1960
Youngson, A J — The British Economy, 1920 1957 (1964)

Publications of Central Office of Information, London :

(i) Britain An Official Handbook, 1969
(ii) Social Services in Britain, 1968
Family and Community Service in Britain, 1967
(iii) Social Security in Britain, 1967
(iv) National Income and Expenditure, 1968
(v) The National Plan, 1965
(vi) Productivity Prices & Incomes Policy, 1969
(vii) Nationalised Industries in Britain 1965
(viii) Development of Agriculture 1968
(ix) Annual Report of British Railways Board, 1967
(x) BOAC and BEA—Annual Reports, 1968
(xi) Trade Unions in Britain, 1965
(xii) Report of the Royal Commission on Trade Unions, 1968
(xiii) Annual Report Commonwealth Development Corporation 1968

१
परिचयात्मक
[INTRODUCTORY]

आज से पचास वर्ष पहले का कृषि प्रधान सोवियत देश आज विश्व का एक अग्रगण्य राष्ट्र बन चुका है, यह पश्चिमी जगत के लिये एक आश्चर्य का विषय होने के साथ-साथ विश्व के समस्त पिछड़े हुए राष्ट्रों के लिए एक नवीन आशा का प्रतीक है। सोवियत रूस कृषि की अवनत दशा से ऊपर उठकर औद्योगिक, वैज्ञानिक और प्राविधिकी क्षेत्रों में आशातीत सफलता प्राप्त कर चुका है। विश्व के राजनीतिक क्षितिज पर सोवियत संघ का निरन्तर बढ़ता हुआ प्रभाव तथा विकासशील देशों के आर्थिक विकास में उसकी गहन अभिरुचि सहज ही प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान इस देश की अद्वितीय सफलताओं एवं उपलब्धियों की ओर आकृष्ट करती है। मानव जाति के इतिहास में जो ज्ञान की पिपासा शान्त करने की अद्भुत प्रतिस्पर्धा हो रही है उसमें सोवियत रूस के द्वारा सफलता पूर्वक अन्तरिक्ष में मानव का प्रेषण कृत्रिम उपग्रहों का एवं अन्तर प्रायद्वीपीय शस्त्रों का निर्माण उसकी अनुपम सफलता एवं प्रगति के परिचायक हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् के वर्षों में युद्ध से जर्जरित और विशृङ्खलित अर्थव्यवस्था को रूस ने जिस कुशलता एवं शीघ्रता से सुधारा उसकी प्रशंसा उसके प्रतिद्वन्द्वी संयुक्तराज्य अमेरिका जैसे देश ने भी की है। आइये हम इन अग्रिम पृष्ठों में सोवियत रूस की इन उपलब्धियों के मूल में निहित विशेषताओं का अध्ययन प्रस्तुत करें।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तक पाश्चात्य जगत के विचारक, मनीषी और राजनीतिक नेता रूस की उपलब्धियों एवं प्रयोगों पर विश्वास करने से कतराते थे अथवा यों कहिये कि नग्न या कटु सत्य को देखने से इनकार करते थे, किन्तु जब नाजी जर्मनी का नायक हिटलर रूस से अपनी सी मुँह की खाकर लौटा तो उस प्रगतिशील जर्मनी की आधुनिक साज सज्जा से युक्त सेना ने रूस की अनुशासित जनता में रूस की अजेय शक्ति के दर्शन किये। स्टालिन के नेतृत्व में युद्ध और पुनर्निर्माण के कार्यों की आश्चर्यजनक सफलताओं ने पाश्चात्य जगत को प्रथम बार उसकी सुनियोजित प्रणाली द्वारा प्राप्त उपलब्धियों को स्वीकार करने के लिये विवश किया।

कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित 'समाजवाद' या 'साम्यवाद' की कल्पना तो सन् १८४८ के 'कम्यूनिस्ट घोषणा-पत्र' (Communist Manifesto) में की गयी थी

और उसने उससे पूर्व के समाजशास्त्रियो और अर्थशास्त्रियो के विचारो की भरसक आलोचना करते हुये यह व्यक्त किया था कि पहले के विचारको की समाजवादी आयोजना कल्पनापूर्ण अधिक थी और वास्तविक कम । अत उसने 'वैज्ञानिक-समाजवाद' अथवा 'वास्तविक समाजवाद' की आधारशिला रखने के रूप मे कुछ तथ्य विश्व के समक्ष रखे । मार्क्स के समय तक पूँजीवाद कुछ देशो मे अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँच चुका था । अत उसने पूँजीवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप समाजवाद की व्यावहारिक परिकल्पना हमारे सामने प्रस्तुत की परन्तु वह भी तब तक परिकल्पना ही थी जब तक कि कोई देश उसके सफल और व्यावहारिक प्रयोग के लिये आगे नही बढ़े। इस रूप मे सन् १६१७ मे 'सोवियत क्रान्ति' ने यह अवसर सोवियत सघ को प्रदान किया । उसके महान विधायक एव सर्वोच्च प्रशासक लेनिन मार्क्सवाद के अध्ययन से प्रभावित थे और क्रान्ति के मूलभूत आधारो के रूप मे जीवन के प्रारम्भ से ही उन्होने क्रान्ति के पश्चात् मार्क्सवादी ढग को अर्थव्यवस्था का व्यावहारिक रूप देने का निश्चय कर रखा था । अत रूस मे जो अर्थव्यवस्था या आर्थिक सगठन बना, और आज औद्योगिक और कृषि के क्षेत्र मे वह जैसा वहाँ है, मानव की पुरातन और पूँजीवादी कल्पना से वह इतना भिन्न है कि सहसा कोई व्यक्ति इस प्रकार के सगठन की व्यावहारिकता और सफलता पर विश्वास करने के लिये तैयार नही होता। परन्तु अब तो वह व्यवस्था विगत पचास वर्षों मे विश्व के सबसे बडे भूखण्ड और साढ़े तेईस करोड से कुछ अधिक जनसख्या वाले देश रूस मे व्यवहृत और सफल हो रही है । उसकी जडें दिन प्रति दिन और स्थायी और गहरी होती जा रही है । अत अब इस प्रकार की सगठनात्मक स्थिति की वास्तविकता एव व्यावहारिकता को अस्वीकार नही किया जा सकता ।

सोवियत रूस ने सन् १६१७ की 'क्रान्ति' के पश्चात् और सन् १६२८ के बाद 'आर्थिक आयोजन' के द्वारा एक अविकसित कृषि-प्रधान राष्ट्र से स्वय को एक अग्रिम औद्योगिक राष्ट्र मे परिणत किया वह हमारे आकर्षण का प्रमुख कारण है। इतिहास मे यह पहला अवसर है कि श्रमिको और किसानो ने सर्वहारा वर्ग की अधिनायक शाही के रूप मे अपनी सार्वभौम प्रभुसत्ता सम्पन्न सरकार विश्व के सबसे बडे भूखण्ड पर स्थापित की जिसने शोषक वर्ग को समाप्त करके उसके स्थान पर समाजवादी अर्थ-व्यवस्था कायम की । सोवियत रूस ने आर्थिक आयोजन के द्वारा अविकसित और कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था को गतिशील औद्योगिक अर्थव्यवस्था मे बदल दिया । औद्योगिक विकास का यह क्रम तो कोई भी देश आरम्भ कर सकता है और भारत भी इसका अपवाद नही है । किन्तु एक बार प्रारम्भ करके बिना विदेशी सहानुभूति एव सहायता के जो औद्योगिक प्रगति एव सुव्यवस्थित केन्द्रीय आर्थिक आयोजन प्रणाली के अतर्गत हुई वह अप्रत्याशित सफलता की द्योतक है । जिस प्रकार इससे पूर्व इगलैंड की औद्योगिक क्रान्ति समस्त यूरोप एव अमेरिका के लिये सदेशवाहक और प्रेरणा केन्द्र सिद्ध हुई, उसी प्रकार कोई आश्चर्य नही कि सोवियत रूस

द्वारा सम्पादित अपने ढग की विलक्षण औद्योगिक क्रान्ति विश्व के अविकसित एव विकासशील देशो के लिये वरदान और प्रेरणा स्रोत सिद्ध हो। इसके लिये यह बिलकुल भी आवश्यक नही है कि घटना चक्र उसी रूप म घटित हो जिस प्रकार कि रूस मे हुआ। हिंसा और उत्पीडन का सहारा लिये बिना वैधानिक एव शान्तिपूर्ण प्रयासो के द्वारा भी समाज म क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जा सकते हैं और आज यह तथ्य रूस समेत अनेक पूर्वी यूरोप के देश स्वीकार करते हैं यद्यपि चीन अभी तक इस विषय म कट्टर दृष्टिकोण अपनाये हुये है। फिर भी एशिया और अफ्रीका के अनेक विकासशील देश सोवियत आर्थिक नियोजन को आधार मान कर अपनी अर्थ-व्यवस्था म सुधार के लिये प्रयत्नशील हैं। यह स्पष्ट है कि सोवियत योजनायें एकाकी दृष्टिकोण को अपनाये हुये नहीं हैं। इनमे राष्ट्र के सम्पूर्ण जीवन का चित्र हम दृष्टिगोचर होता है। यही नही कि आर्थिक उन्नति ही इनका एक मात्र ध्येय हो वरन इनका यह प्रयत्न रहता है कि व्यक्ति का राष्ट्र की इकाई के रूप मे सर्वांगीण विकास हो।

(१) भौगोलिक स्थिति (Geographical Situation)

सोवियत रूस यूरोप और एशिया दोनो महाद्वीपो मे फैला हुआ है। इसमे यूरोप का पूर्वी भाग तथा एशिया के उत्तरी एव पश्चिमी भाग सम्मिलित हैं। आकार की दृष्टि से रूस विश्व का सबसे बडा राष्ट्र है। इसके अन्तर्गत यूरोप का ४० प्रतिशत एव एशिया का ४५ प्रतिशत भाग आता है। इसका क्षेत्रफल लगभग २२४ लाख वर्ग किलोमीटर है। दूसरे शब्दो मे आकार की दृष्टि से रूस, केनाडा से लगभग ढाई गुना, आस्ट्रेलिया एव सयुक्त राज्य अमेरिका से पौने तीन गुना एव भारत से सात गुना बडा है। इसका फैलाव पूर्व से पश्चिम लगभग ११,००० किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण लगभग ४,५०० किलोमीटर तक है। इसके उत्तर मे आर्कटिक महासागर, पश्चिम मे फिनलैण्ड, पोलेण्ड, जेकोस्लोवाकिया, हगरी और रूमानिया, पूर्व मे प्रशान्त महासागर तथा दक्षिण में तुर्की, ईरान, अफगानिस्तान, चीन, कोरिया आदि स्थित हैं। इस प्रकार अनेक देशो की सीमायें रूस के साथ जुडी हुई हैं। विशाल आकार एवं विस्तृत फैलाव सोवियत रूस की राजनीतिक स्थिति तथा उसके भौतिक साधनों को एक प्रकार की विशेषता प्रदान करते हैं। पश्चिम मे जर्मनी, फ्रान्स एव इगलैंड जैसे देशों के समीप होने हुये भी सुदूर पूर्व म रूस जापान एव एलास्का (सयुक्त राज्य अमेरिका) से सामीप्य स्थापित किये हुये है।

इतने बडे देश मे भौतिक विभिन्नताओ का होना स्वाभाविक ही है। यह देश दक्षिण से उत्तर लगभग ३५° १५′ उत्तरी अक्षाश से ७७° २५′ उत्तरी अक्षाश तथा १९° ३०′ पूर्वी देशान्तर से बेरिंग सागर तक १६९° ३०′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। आन्ध्र महासागर, प्रशान्त महासागर और आर्कटिक महासागर इसको तीन ओर से घेरते हैं। रूस की दक्षिणी सीमा से काले सागर होते हुए भूमध्य सागर

मे प्रवेश करना सम्भव है और वस्तुत यही मार्ग रूसी जलशक्ति का सबसे उत्तम स्थल है क्योकि उत्तर एव पूर्व की रूसी समुद्री सीमायें शीतकाल में हिमयुक्त हो जाती हैं।

२ जलवायु

रूस की जलवायु विशेषत महाद्वीपीय है। अधिकाश भागो मे गर्मियों और सर्दियो के तापक्रमो म बहुत अधिक विषमता दृष्टिगोचर होती है। ग्रीष्म ऋतु मे +३०° से० तथा शीत ऋतु म —३०° से० तक तापक्रम पहुँच जाते हैं। यहाँ सरदी की ऋतु सबसे लम्बी और जनवरी का महीना सबसे ठण्डा होता है जबकि तापक्रम हिमाक बिन्दु से नीचे चले जाते हैं, विशेषकर उत्तरी क्षेत्रों मे। ग्रीष्म ऋतु मे दक्षिणी भाग अपेक्षाकृत अधिक गरम हो जाते हैं। स्टेपी प्रदेश एव मध्य एशिया के कुछ भागो म तापक्रम जून जुलाई के महीनो म अधिक ऊँचे रहते हैं। रूस मे वर्षा पश्चिम मे अधिक होती है तथा पश्चिम से पूर्व की ओर वर्षा का औसत घटता जाता है। वर्षा का वार्षिक औसत मास्को म ६७ सेन्टीमीटर, याकुटस्क म ३५ सेन्टीमीटर तथा वरखोयान्स्क म केवल ८ सेन्टीमीटर है। साइबेरिया की जलवायु और भी विषम है जहाँ गर्मियो और सर्दियो के औसत तापान्तर म १९° सेन्टीग्रेड तक का अन्तर पाया जाता है। मध्य एशिया और कज्जाकिस्तान सामुद्रिक प्रभाव से दूर होने के कारण बहुत कम वर्षा प्राप्त कर पाते है और वहाँ ग्रीष्म ऋतु प्राय बहुत गरम एव सूखी बीतती है तथा सिंचाई के बिना कृषि करना असम्भव होता है। अत रूस के विभिन्न भागो म जलवायु की दशाओ म पर्याप्त विभिन्नतायें मिलती हैं जिनके कारण विभिन्न क्षेत्रो की वनस्पति एव फसलो म भी भिन्नता पायी जाती है।

३ जनसख्या

रूस की जनसख्या मे अनेक सस्कृति वाले जाति-समूह मिलते हैं। आरम्भ मे चार जाति-समूह वाले लोगों ने ही पश्चिमी रूस को बसाया था। ये समूह क्रमश: स्लाव नॉर्समैन, तातार और जर्मन थे। नॉर्समैनों का आधिपत्य कीव के व्यापार एव सस्कृति पर, स्लावों का मास्को पर, तातारों का वोल्गा और यूक्रेन प्रदेशो पर रहा। सन् १२०० ई० के बाद जर्मनों का अधिकार बाल्टिक सागरवर्ती प्रदेशो पर हुआ। ये लोग धीरे धीरे व्यापारी एव जमीदार बनते गये। इस प्रकार पाँच-छ शताब्दियो मे ही रूसी लोगों का विस्तार मास्को से लगाकर काले सागर, बाल्टिक सागर, पूर्वी पोलैण्ड, साइबेरिया होता हुआ मध्य एशिया और प्रशान्त महासागर के तट तक पहुँच गया। एशियायी रूस मे तुर्क, उजबक, कज्जाक, मगोल, किरगीज, एस्कीमो आदि जाति समूहों की प्रधानता है। इस प्रकार वर्तमान रूस मे विभिन्न सस्कृति के भिन्न-भिन्न भाषा भाषी जाति समूह पाये जाते हैं तथा वहाँ लगभग १५० प्रकार की विभिन्न भाषायें तथा ६०० प्रकार की विभिन्न बोलियाँ (dialects)

प्रचलित हैं। प्रत्येक क्षेत्र को अपनी क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग की छूट है किन्तु उसके साथ-साथ राष्ट्रीय भाषा के रूप मे रूसी भाषा का ज्ञान भी अनिवार्य है। भारत के भाषा विवाद के सन्दर्भ मे रूस का उदाहरण हमारे लिये एक उपयुक्त मार्ग दर्शन का आधार बन सकता है।

सन् १९१७ की रूसी क्रान्ति के बाद रूसी जनसख्या की प्रकृति मे तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। प्रथम, जनसख्या का आन्तरिक स्थानान्तरण बहुत अधिक हुआ है। यह स्थानान्तरण मुख्यत पश्चिमी रूस से पूर्वी साइबेरिया एव मध्य एशिया के दक्षिणी भागों को हुआ है। यद्यपि रूसी जनसख्या का अधिकाश भाग अब भी यूरोपीय रूस मे ही रहता है, किन्तु स्टेलिन की प्रवास नीति एव औद्योगीकरण होने के फलस्वरूप जनसख्या का एक बडा भाग पिछले पचास वर्षों मे और विशेषकर सन् १९२८ के बाद से साइबेरिया, और मध्य एशिया मे बस गया है। द्वितीय, पिछले पचास वर्षों मे नागरीकरण (urbanisation) की प्रवृत्ति मे बहुत अधिक वृद्धि हुई है। क्रान्ति से पूर्व ८० प्रतिशत जनसख्या गाँवो मे तथा केवल २० प्रतिशत शहरो मे निवास करती थी, किन्तु सन् १९६७ के आँकडो के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रो मे ४५ प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रो मे ५५ प्रतिशत निवास करते थे। पचास वर्षों मे ग्रामीण एव नागरिक जनसख्या मे प्राप्त किया गया यह सन्तुलन सोवियत रूस की औद्योगिक प्रगति का प्रतीक है। तृतीय, नागरिको के औसत जीवन-काल (life expectancy) मे पहले की अपेक्षा बहुत सुधार हुआ है। पचास वर्ष पूर्व सन् १९१७ मे रूस मे औसत जीवन-काल केवल ३२ वर्ष था जो सन् १९६७ के आँकडो के अनुसार अब ७० वर्ष हो गया है। इसका कारण उच्च रहन-सहन, समुचित पौष्टिक आहार, निवास की उत्तम सुविधाओ, चिकित्सा सुविधाओ मे सुधार आदि के कारण मृत्यु दर मे कमी हो जाना है। बाल मृत्यु दर मे विशेष रूप से बहुत कमी हुई है।

रूस आज चीन एव भारत के बाद विश्व का तीसरा सबसे अधिक जनसख्या वाला देश है। दिसम्बर १९६७ मे रूस की जनसख्या २३ करोड ६५ लाख थी। रूस मे जनसख्या वृद्धि की दर पश्चिमी यूरोपीय देशो से कुछ अधिक है, फिर भी भारत की तुलना मे रूस की जनसख्या वृद्धि की दर केवल आधी है। भारत मे जनसख्या वृद्धि की वार्षिक दर २ ४ प्रतिशत है जबकि रूस मे यह केवल १ १ प्रतिशत है। इसी प्रकार रूस मे जन्म-दर एव मृत्यु-दर भी भारत की तुलना मे आधी से भी कुछ कम हैं। भारत मे जन्म-दर ४० प्रति हजार हैं और मृत्यु-दर १७ है, जबकि रूस मे यह क्रमश १८ ५ और ७·५ प्रति हजार है। रूस मे जनसख्या का घनत्व भी भारत की अपेक्षा बहुत कम है। वहाँ जनसख्या का औसत घनत्व केवल १०·५ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है, जबकि भारत मे यह १३८ व्यक्ति प्रति वर्ग किलो-मीटर है। रूस के विभिन्न भागो मे जनसख्या के घनत्व मे बहुत अधिक असमानता

मे प्रवेश करना सम्भव है और वस्तुत यही मार्ग रूसी जलशक्ति का सबसे उत्तम स्थल है क्योकि उत्तर एव पूर्व की रूसी समुद्री सीमायें शीतकाल मे हिमयुक्त हो जाती हैं।

२ जलवायु

रूस की जलवायु विशेषत महाद्वीपीय है। अधिकाश भागो मे गर्मियो और सर्दियो के तापक्रमो मे बहुत अधिक विषमता दृष्टिगोचर होती है। ग्रीष्म ऋतु मे +३०° से० तथा शीत ऋतु मे —३०° से० तक तापक्रम पहुँच जाते हैं। यहाँ सरदी की ऋतु सबसे लम्बी और जनवरी का महीना सबसे ठण्डा होता है जबकि तापक्रम हिमाक बिन्दु से नीचे चले जाते हैं, विशेषकर उत्तरी क्षेत्रो मे। ग्रीष्म ऋतु में दक्षिणी भाग अपेक्षाकृत अधिक गरम हो जाते हैं। स्टैपी प्रदेश एव मध्य एशिया के कुछ भागो मे तापक्रम जून जुलाई के महीनो मे अधिक ऊँचे रहते हैं। रूस में वर्षा पश्चिम मे अधिक होती है तथा पश्चिम से पूर्व की ओर वर्षा का औसत घटता जाता है। वर्षा का वार्षिक औसत मास्को मे ६७ सेन्टीमीटर, याकुटस्क मे ३५ सेन्टीमीटर तथा वर्ख्योयान्स्क मे केवल ८ सेन्टीमीटर है। साइबेरिया की जलवायु और भी विषम है जहाँ गर्मियो और सर्दियो के औसत तापान्तर मे १६° सेन्टीग्रेड तक का अन्तर पाया जाता है। मध्य एशिया और कज्जाकिस्तान सामुद्रिक प्रभाव से दूर होने के कारण बहुत कम वर्षा प्राप्त कर पाते हैं और वहाँ ग्रीष्म ऋतु प्राय बहुत गरम एव सूखी बीतती है तथा सिंचाई के बिना कृषि करना असम्भव होता है। अत रूस के विभिन्न भागो मे जलवायु की दशाओ मे पर्याप्त विभिन्नतायें मिलती हैं जिनके कारण विभिन्न क्षेत्रो की वनस्पति एव फसलो मे भी भिन्नता पायी जाती है।

३ जनसख्या

रूस की जनसख्या मे अनेक सस्कृति वाले जाति-समूह मिलते हैं। आरम्भ मे चार जाति-समूह वाले लोगो ने ही पश्चिमी रूस को बसाया था। ये समूह क्रमशः स्लाव नॉर्समैन, तातार और जर्मन थे। नॉर्समैनों का आधिपत्य कीव के व्यापार एव सस्कृति पर, स्लावों का मास्को पर, तातारों का वोल्गा और यूक्रेन प्रदेशो पर रहा। सन् १२०० ई० के बाद जर्मनो का अधिकार बाल्टिक सागरवर्ती प्रदेशो पर हुआ। ये लोग धीरे-धीरे व्यापारी एव जमीदार बनते गये। इस प्रकार पाँच-छ शताब्दियो मे ही रूसी लोगो का विस्तार मास्को से लगाकर काले सागर, बाल्टिक सागर, पूर्वी पोलैण्ड, साइबेरिया होता हुआ मध्य एशिया और प्रशान्त महासागर के तट तक पहुँच गया। एशियायी रूस मे तुर्क, उजबक, कज्जाक, मंगोल, खिरगीज, एस्कीमो आदि जाति समूहो की प्रधानता है। इस प्रकार वर्तमान रूस मे विभिन्न सस्कृति के भिन्न-भिन्न भाषा भाषी जाति समूह पाये जाते हैं तथा वहाँ लगभग १५० प्रकार की विभिन्न भाषायें तथा ६०० प्रकार की विभिन्न बोलियाँ (dialects)

प्रचलित है। प्रत्येक क्षेत्र को अपनी क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग की छूट है किन्तु उसके साथ-साथ राष्ट्रीय भाषा के रूप में रूसी भाषा का ज्ञान भी अनिवार्य है। भारत के भाषा विवाद के सन्दर्भ में रूस का उदाहरण हमारे लिये एक उपयुक्त मार्ग दर्शन का आधार बन सकता है।

सन् १९१७ की रूसी क्रान्ति के बाद रूसी जनसख्या की प्रकृति मे तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। प्रथम, जनसख्या का आन्तरिक स्थानान्तरण बहुत अधिक हुआ है। यह स्थानान्तरण मुख्यत पश्चिमी रूस से पूर्वी साइबेरिया एव मध्य एशिया के दक्षिणी भागो को हुआ है। यद्यपि रूसी जनसख्या का अधिकाश भाग अब भी यूरोपीय रूस मे ही रहता है, किन्तु स्टेलिन की प्रवास नीति एव औद्योगीकरण होने के फलस्वरूप जनसख्या का एक बडा भाग पिछले पचास वर्षों मे और विशेषकर सन् १९२८ के बाद से साइबेरिया, और मध्य एशिया मे बस गया है। द्वितीय, पिछले पचास वर्षों मे नागरीकरण (urbanisation) की प्रवृत्ति मे बहुत अधिक वृद्धि हुई है। क्रान्ति से पूर्व ८० प्रतिशत जनसख्या गाँवो मे तथा केवल २० प्रतिशत शहरो मे निवास करती थी, किन्तु सन् १९६७ के आँकडो के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रो मे ४५ प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रो मे ५५ प्रतिशत निवास करते थे। पचास वर्षों मे ग्रामीण एव नागरिक जनसख्या मे प्राप्त किया गया यह सन्तुलन सोवियत रूस की औद्योगिक प्रगति का प्रतीक है। तृतीय, नागरिको के औसत जीवन-काल (life expectancy) मे पहले की अपेक्षा बहुत सुधार हुआ है। पचास वर्ष पूर्व सन् १९१७ मे रूस मे औसत जीवन-काल केवल ३२ वर्ष था जो सन् १९६७ के आँकडो के अनुसार अब ७० वर्ष हो गया है। इसका कारण उच्च रहन-सहन, समुचित पौष्टिक आहार, निवास की उत्तम सुविधाओं, चिकित्सा सुविधाओ मे सुधार आदि के कारण मृत्यु दर मे कमी हो जाना है। बाल मृत्यु दर मे विशेष रूप से बहुत कमी हुई है।

रूस आज चीन एव भारत के बाद विश्व का तीसरा सबसे अधिक जनसख्या वाला देश है। दिसम्बर १९६७ मे रूस की जनसख्या २३ करोड ६५ लाख थी। रूस मे जनसख्या वृद्धि की दर पश्चिमी यूरोपीय देशो से कुछ अधिक है, फिर भी भारत की तुलना मे रूस की जनसख्या वृद्धि की दर केवल आधी है। भारत मे जनसख्या वृद्धि की वार्षिक दर २ ४ प्रतिशत है जबकि रूस मे यह केवल १ १ प्रतिशत है। इसी प्रकार रूस मे जन्म दर एव मृत्यु-दर भी भारत की तुलना मे आधी से भी कुछ कम हैं। भारत में जन्म दर ४० प्रति हजार है और मृत्यु-दर १७ है, जबकि रूस मे यह क्रमश १८ ५ और ७·५ प्रति हजार है। रूस मे जनसख्या का घनत्व भी भारत की अपेक्षा बहुत कम है। वहाँ जनसख्या का औसत घनत्व केवल १० ५ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है, जबकि भारत मे यह १३८ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। रूस के विभिन्न भागो मे जनसख्या के घनत्व मे बहुत अधिक असमानता

है। सुदूर उत्तर एवं पूर्व के भागों में औसतन केवल २ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करते हैं जबकि यूरोपीय भागों में (मास्को एवं यूक्रेन) में औसत घनत्व ५० से १०० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

४ राजनीतिक भाग

सोवियत संघ के अनुसार "रूस श्रमिकों एवं कृषकों का समाजवादी राज्य है जहाँ सभी शक्ति नगर एवं ग्राम के उन श्रमिकों के हाथ में है जिनका प्रतिनिधित्व श्रमिकों एवं कृषकों के प्रतिनिधियों की सोवियतों द्वारा होता है।" सोवियत संघ की स्थापना विभिन्न चरणों में हुई है। सन् १९१७ तक रूस का राज्य प्रबन्ध जार परिवार के सदस्यों द्वारा होता था किन्तु सोवियत बोल्शेविक क्रान्ति के बाद वहाँ बोल्शेविक सरकार की स्थापना की गयी। दिसम्बर सन् १९२२ में सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ की स्थापना की गयी तथा इसमें रूस सोवियत गणतन्त्र, यूक्रेनियन गणतन्त्र और बाइलोरशियन गणतन्त्र सोवियत संघ में तथा आजरबेजान, आर्मेनियन, और जार्जियन गणतन्त्र ट्रान्स काकेशियन संघ में सम्मिलित किये गये। सन् १९२५ में उजबक और तुर्कमान राज्यों को तथा सन् १९३१ में तजाकिस्तान, बाद में केरलो-फिनिश गणतन्त्र, मालदेविया, लिथुवानिया, ऐस्टोनिया और लटविया भी इसमें सम्मिलित कर लिये गये। द्वितीय महायुद्ध के बाद फिनिश गणतन्त्र पृथक हो गया, किन्तु जापान की पराजय के बाद दक्षिणी सखालीन के आधे भाग और क्यूराइल द्वीपों को भी रूस में सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार इस समय रूस में १५ संघीय गणराज्य (Federated Republics) हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं—रूसी सोवियत संघीय समाजवादी गणराज्य, यूक्रेनियन सोवियत समाजवादी गणराज्य तथा बाइलोरशियन, उजबक, कजाक, जार्जियन, अजरबेजान, लिथुवानियन, माल्देवियन, लटवियन, किरगीज, तजाकिस्तान, आर्मेनियन, तुर्कमैन और एस्टोनियन गणराज्य। इसके अतिरिक्त अठारह छोटे स्वतन्त्र गणराज्य तथा अनेक स्वतन्त्र क्षेत्र एवं राष्ट्रीय जिले हैं।

५ भौतिक साधन

रूस का धरातल विस्तृत मैदानों, पहाड़ों, दर्रों, अनेक नदियों एवं उत्तर में हिमाच्छादित निचले भागों से मिलकर बना है। विस्तृत मैदान पश्चिम में यूरोप की सीमा से लगाकर पूर्व में मध्य साइबेरिया के उच्च प्रदेशों तक लगभग तीन हजार मील की लम्बाई में फैला हुआ है। इस मैदान के मध्य में यूराल पर्वत यूरोप और एशिया की सीमा बनाते हैं जिनमें अनेक दर्रे होने के कारण दोनों ओर आना जाना सरलतापूर्वक हो सकता है। इसी बड़े मैदान पर रूस का राजनीतिक, ऐतिहासिक एवं आर्थिक घटना चक्र पिछले अनेक वर्षों से घटित होता रहा है। मैदान समुद्रतल से लगभग १००० फीट ऊँचे हैं और पहाड़ों की ऊँचाई २४०० से ५००० फीट के बीच है। यूक्रेन एवं स्टेपी प्रदेश के मैदानों में उच्चकोटि की उर्वरा मिट्टी पायी जाती है

जिसमे अनेक प्रकार की फसलें बहुलता से उत्पन्न होती हैं। उत्तरी अक्षांशो की ओर मुलायम लकडी वाले कोणधारी वन बहुतायत से पाये जाते हैं जिनके आधार पर कागज, कृत्रिम रेशम और दियासलाई आदि अनेक उद्योग विकसित किये गये है। पहाडी प्रदेशो एव पठारो मे अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों की प्रचुरता है जैसे लोहा, कोयला, तांबा, जस्ता, सीसा, सोना, प्लेटीनम, खनिज तेल, निकल इत्यादि। इन खनिज पदार्थों की सुलभता एव प्रचुरता ने रूस के औद्योगीकरण मे बहुत अधिक सहायता दी है।

रूस असख्य नदियों वाला देश है। यूरोपीय रूस मे इन नदियों का प्रवाह प्राय उत्तर से दक्षिण एव साइबेरिया मे दक्षिण से उत्तर की ओर है। छोटी बडी नदियो की सख्या यहाँ लगभग डेढ लाख है जिनकी लम्बाई तीस लाख किलोमीटर से भी अधिक है। इन नदियो के जल से अनुमानत ३००० लाख किलोवाट जल विद्युत उत्पन्न की जा सकती है इनमे से ८० प्रतिशत शक्ति साइबेरिया एव सुदूर पूर्व की नदियो द्वारा सम्भावित है। वोल्गा, लीना, यनीसी और ओबी नदियों की गणना विश्व की बडी नदियो मे की जाती है। यहाँ की अधिकाश नदियो मे बसन्त ऋतु मे बाढ आती है। केवल दक्षिणी एव पश्चिमी भागो की नदियो के अतिरिक्त रूस की अन्य सभी नदियाँ शीत ऋतु म बर्फ से जम जाती हैं।

वोल्गा यहाँ की सबसे बडी नदी है जो मास्को के उत्तरी भाग से निकल कर लगभग ३६८० किलोमीटर बहने के बाद कैस्पियन सागर मे गिर जाती है। यह नदी जल शक्ति एव जल यातायात का एक प्रमुख साधन है। इसके किनारे रूस के प्रमुख नगर गोर्की, कजन, क्यूबिसेव, सराटोव, स्तालिनग्राड आदि बसे हुये हैं। विश्व मे सबसे अधिक माल इसी नदी मे ढोया जाता है। अन्य मुख्य नदियाँ नीपर, नेस्टर, डोन, कामा और इवाइना हैं। साइबेरिया म ओबी, यनीसी और लीना प्रमुख हैं किन्तु शीत ऋतु मे जम जाने के कारण यातायात के काम की नही हैं। सुदूर पूर्व म आमूर नदी और मध्य एशिया मे सर-दरिया और आमू-दरिया उल्लेखनीय है। रूस मे ढाई लाख से भी अधिक झीलें हैं जिनमे पाँच झीलो का क्षेत्रफल दस हजार वर्ग किलोमीटर से अधिक है। रूस की अर्थ-व्यवस्था मे इन झीलों का महत्व यातायात की दृष्टि से अधिक है। इन झीलो म सबसे बडी कैस्पियन है जिसका क्षेत्रफल ३९ लाख वर्ग किलोमीटर है।

वनों की दृष्टि से रूस की स्थिति विश्व भर म सर्वोत्तम है। ससार के एक तिहाई से भी अधिक वन यहाँ पाये जाते हैं और ये वन इस देश के ७० करोड हेक्टेयर क्षेत्र मे फैले हुये हैं। उत्तरी वन कोणधारी वृक्षो से भरे हुये हैं जिनम स्प्रूस, फर, लार्च, चीड उल्लेखनीय हैं। यह मुलायम लकडी कागज, दियासलाई, लुग्दी और कृत्रिम रेशम आदि के निर्माण मे प्रयुक्त होता है। वस्तुत प्रकृति ने रूस मे औद्योगिक लकडी का अटूट भण्डार प्रदान किया है और इसका उपयोग अभी पूरी

तरह से नहीं हुआ है, क्योंकि उत्तर में शीत प्रधान बर्फीले प्रदेशों एवं दलदलों के कारण वनों की कटाई एवं ढुलाई एक कठिन कार्य है। फिर भी यूरोपीय रूस के पश्चिमी भागों में लकड़ी का धन्धा विकसित हुआ है और अनेक नगरों में विभिन्न प्रकार से लकड़ी का उपयोग किया जाता है। इसका अनुमान केवल इस तथ्य से ही लगाया जा सकता है कि सन् १९६७ में समस्त रूस में बनाये गये फर्नीचर आदि का मूल्य लगभग १६०० करोड़ रूबल था, तथा उसी वर्ष लगभग ८ करोड़ टन कागज का निर्माण किया गया जो कि भारत के वार्षिक उत्पादन से सौ गुना अधिक है।

रूस का पशु जीवन भी बड़ा विचित्र है। यहाँ लगभग एक लाख किस्म के पशु जिनमें ३०० किस्म के स्तनपायी, ७०० किस्म की चिड़ियायें, ३२ किस्म के रेंगने वाले जीव और ३००० किस्म की मछलियाँ मिलती हैं। रूस की झीलों एवं समुद्रों में अनेक प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं। सन् १९६७ में रूस में लगभग ६० लाख टन मछलियाँ पकड़ी गयीं जो कि भारत में पकड़ी गयीं मछलियों के वजन से चार गुना था। प्रथम जनवरी सन् १९६७ के आँकड़ा के अनुसार रूस में १० करोड़ गाय बैल (Cattle), ६ करोड़ सूअर एवं १४ करोड़ भेड़ बकरियाँ थी। इन पशुओं पर अनेक महत्वपूर्ण उद्योग धन्धे आधारित हैं। जैसे डेयरी-उद्योग, मांस-उद्योग, चमड़ा-उद्योग, ऊन-उद्योग आदि। सन् १९६७ में रूस ने ७६१ लाख टन दूध, १०८ लाख टन मांस, ३१०० करोड़ अंडे एवं ३.७ लाख टन ऊन का उत्पादन किया। इस प्रकार रूस का पशुधन बहुमूल्य खाद्यों एवं औद्योगिक कच्चे माल का स्रोत है।

खनिज पदार्थों की दृष्टि से रूस का स्थान संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद विश्व में दूसरा है। विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह है कि बहुमूल्य खनिज पदार्थ रूस के किसी एक भाग में केन्द्रित न होकर अनेक दिशाओं और भागों में बिखरे हुये हैं। अतः भारी उद्योगों की स्थापना रूस के अनेक भागों में सम्भव हो सकी है। रूस के खनिज प्रधान क्षेत्र, यूक्रेन, उत्तर पूर्वी यूरोपीय रूस, कोला प्रायद्वीप, लेनिनग्राड क्षेत्र, मध्यवर्ती क्षेत्र, यूराल पर्वतीय क्षेत्र, काकेशस पर्वतीय क्षेत्र, कजाकिस्तान क्षेत्र, कुजनेटस्क क्षेत्र एवं सुदूर पूर्वीय क्षेत्र हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य एवं औद्योगिक खनिज पाये जाते हैं, जैसे सोना, चाँदी, प्लेटीनम, कोयला, लोहा, सीसा, जस्ता, मैंगनीज, निकल, टिन, सुरमा, ताँबा, बाक्साइट, टंगस्टन, वेनेडियम, मोलीबिडनम, पोटाश, फोस्फेट, गन्धक, पेट्रोलियम आदि। रूस में प्रतिवर्ष ६३ करोड़ टन कोयला और १६ करोड़ टन खनिज लोहा निकाला जाता है जो कि भारतीय उत्पादन से क्रमशः नौ गुना और आठ गुना अधिक है। कोयले और खनिज लोहे की आवश्यकता रूस को इस्पात निर्माण के लिए बहुत अधिक रहती है। रूस प्रतिवर्ष ९६.६ मिलियन टन इस्पात का निर्माण करता है। इसकी तुलना में भारत का उत्पादन केवल ६ मिलियन टन है।

रूस यान्त्रिक शक्ति के साधनों का विपुल भण्डार है। यह शक्ति कोयला,

खनिज तेल, जलविद्युत एव अणु शक्ति केन्द्रो द्वारा उत्पन्न की जाती है। कोयले के भण्डार रूस मे इतने प्रचुर हैं कि भावी छ हजार वर्षो तक भी उनके समाप्त होने की आशका नही है। इसी प्रकार विश्व का लगभग आधा तेल भण्डार रूस मे सचित है। इसके अतिरिक्त यूराल एव काकेशियन क्षेत्रो म प्राकृतिक गैस भी बहुतायत मे प्राप्त हो जाती है, जो पाइप लाइना के द्वारा मास्को और लेनिनग्राड तक ले जायी गयी है। रूस की वोल्गा नीपर, यनीसी आदि नदियो पर अनेक जल विद्युत केन्द्रों की स्थापना की गयी है जिनम प्रतिवर्ष ४८,४०० करोड किलोवाट घटे बिजली उत्पन्न की जाती है। जल विद्युत का विकास लेनिन की योजना के अनुसार सन् १६२० के बाद से वहाँ प्रारम्भ किया गया। विश्व के सबसे बडे अणु शक्ति केन्द्र की स्थापना भी सन् १६५४ म रूस म ही की गयी। ऐसे केन्द्रो की स्थापना यूराल पर्वत एव मास्को के निकट के क्षेत्रो म की गयी है और उनकी सख्या मे तेजी से वृद्धि हो रही है। बिजली के अतिरिक्त रूस मे प्रतिवर्ष ६० करोड टन कोयला, २६ ५ करोड टन खनिज तैल और १४ ५ करोड टन प्राकृतिक गैस का उत्पादन होता है। इस प्रकार यान्त्रिक शक्ति के साधनो की दृष्टि से रूस ने पिछले वर्षो मे बहुत ही अधिक प्रगति कर ली है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राकृतिक एव भौतिक साधनो की दृष्टि से सोवियत रूस कितना भाग्यशाली देश है। इन साधनो की प्रचुरता एव सुलभता ने रूस को अपने औद्योगीकरण म बहुत अधिक सहायता प्रदान की है। किन्तु सोवियत रूस द्वारा पिछली अर्धशताब्दी मे जो उन्नति की गयी है उसका समस्त श्रेय केवल भौतिक साधनो की सम्पन्नता को ही नही दिया जा सकता है। इसम उन सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक विशेषताओ का बहुत बडा योग है जो इस अवधि म रूस मे हुए परिवर्तनों के कारण इस देश की व्यवस्था का अभिन्न अग बन गयी हैं। अत सोवियत जनता के जीवन मान को ऊँचा उठाने मे इन विशेषताओ का बहुत बडा हाथ रहा है।

२
सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ
[MAIN CHARACTERISTICS OF SOCIO ECONOMIC SET-UP]

यह पहले ही कहा जा चुका है कि रूस द्वारा की गयी उन्नति केवल भौतिक अथवा आर्थिक उन्नति ही नही है। यह प्रगति सर्वांगीण अथवा बहुमुखी है जिसमे राष्ट्र के सामाजिक एव सास्कृतिक जीवन के सुधार का भी पूरा ध्यान रखा गया है। राष्ट्र के भौतिक साधनो एव राष्ट्रीय आय के वितरण तथा उत्पादन आदि की व्यवस्था के प्रति परम्परागत दृष्टिकोणो से भिन्न एक सवथा नवीन विचार शैली का जन्म रूस म हुआ है तथा समाज एव जीवन क प्रति व्यक्तियो के सोचने समझने के तरीको मे मूलभूत परिवर्तन हुआ है। इन परिवतनो ने सोवियत रूस मे एक नवीन सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को जन्म दिया है जिसकी अपनी कुछ प्रमुख विशेषतायें है।

१ पूर्ण समाजवाद (Full Socialism)

क्रान्ति के बाद के वर्षों मे सोवियत रूस न समाजवादी सिद्धान्तो को पूर्णत कार्य रूप म परिणत करन का प्रयत्न किया है। इस व्यवस्था के अन्तगत भौतिक साधनो एव उत्पादक गतिविधियो का नियत्रण एव सचालन व्यक्तिगत लाभ के लिये न होकर समस्त समाज के लाभ के लिय किया जाता है। उत्पादन के समस्त महत्वपूर्ण साधन राज्य अथवा समाज के हाथो मे होते हैं तथा राष्ट्रीय उत्पादन का वितरण इस प्रकार से किया जाता है कि जिससे एक ओर तो समाज का अधिकतम लाभ हो सके और दूसरी ओर राष्ट्र की आर्थिक उन्नति के लिये उत्पादन के एक बडे भाग का विनियोग भविष्य म और अधिक उत्पादन के लिये किया जा सके। इस प्रकार पूँजी एव व्यक्तिगत लाभ को सोवियत अर्थव्यवस्था मे कोई महत्व नही दिया जाता है। पूँजी का स्थान मानव शक्ति यन्त्र कौशल एव प्रबन्ध क्षमता ने ले लिया है। प्राय यह शका उठाई जाती है कि समाजवादी व्यवस्था म जहाँ निजी सम्पत्ति एव व्यक्तिगत लाभ या मुनाफे के लिये कोई स्थान नही होता, व्यक्तियो को अधिक

परिश्रम करने और अधिकाधिक कुशल बनने की प्रेरणा कैसे मिल सकती है? ऐसी उत्प्रेरणाओं के अभाव म तथा प्रतिस्पर्धा एवं प्रतियोगिता के अभाव में समाज कैसे और किस आधार पर उन्नति कर सकता है? किन्तु सोवियत समाजवाद ने पिछले वर्षों में राष्ट्रीय उत्पादन, प्रति व्यक्ति आय, जन साधारण के उपयोग के स्तर और समाज कल्याण तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान के क्षेत्र म अभूतपूर्व उन्नति करके पूँजीवादी जगत की उपर्युक्त मान्यताओं को निर्मूल सिद्ध कर दिया है।

प्रोफेसर डिकिन्सन के अनुसार 'समाजवाद समाज की एसी आर्थिक व्यवस्था है जिसम उत्पादन के भौतिक साधनों का स्वामित्व समाज के हाथों मे होता है, तथा एक सामाजिक कार्यक्रम के अनुसार इन साधनों का सचालन ऐसे सगठनों द्वारा किया जाता है जो समस्त समाज का प्रतिनिधित्व करते हो और समाज के प्रति उत्तरदायी हों, जिससे कि समाज के सभी सदस्यों को यह समान अधिकार प्राप्त हो कि वे समाजीकरण के आधार पर नियोजित उत्पादन के फल का उपभोग कर सकें।[1] सोवियत अर्थव्यवस्था प्रतियोगिता को अनावश्यक समझती है, क्योंकि यह उत्पादन के प्रकारों मे अनावश्यक वृद्धि, समाज के असतुलित विकास, वर्ग सघर्ष एव आर्थिक शोषण को प्रोत्साहन देती है। व्यक्तियों एव समूहों को उत्प्रेरणायें (incentives) प्रदान करने के उद्देश्य से रूस म अनेक मौद्रिक तथा अमौद्रिक तरीके अपनाये गये हैं। मौद्रिक उत्प्रेरकों म व्यक्तिगत कुशलता एव अधिक उत्पादन के लिए ऊँचे वेतन एव अन्य पारितोषिक सम्मिलित किये जाते हैं जबकि अमौद्रिक उत्प्रेरकों मे राजकीय प्रशसा और सम्मान तथा सामाजिक प्रशस्ति आदि होते हैं।

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था स्वय मे कोई लक्ष्य नहीं है, बल्कि वह तो एक ऐसे समाज की स्थापना का एक साधन-मात्र है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करते हुए अपनी आवश्यकता के अनुसार वस्तुयें प्राप्त करने की सुविधा हो।[2] यह साम्यवादी अवस्था ही समाजवाद का अगला चरण है। किन्तु तथ्य यह है कि रूस पूर्णरूप से समाजवादी होते हुए भी साम्यवाद की स्थापना करने म अभी सफल नहीं हुआ है।

२ अधिकेन्द्रित आर्थिक नियोजन (Centralised Economic Planning)

आर्थिक नियोजन वस्तुत सोवियत रूस की देन है। इसकी सफलता से प्रेरित होकर ही आज अनेक पूँजीवादी देशों तथा अन्य विकासशील देशों ने भी विभिन्न रूपों म आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया है। रूस म आर्थिक नियोजन सन् १९२८ से प्रारम्भ किया गया, जबकि सन् १९२८ से १९३३ तक के पाँच वर्षों के लिए प्रथम

---

1 Dickenson, A D. *Economics of Socialism*

2 From each according to his ability, to each according to his need —*Karl Marx.*

पंचवर्षीय योजना लागू की गयी। रूसी क्रान्ति से लगाकर प्रथम योजना लागू करने तक का काल विभिन्न परिवर्तनों, प्रयोगों एवं सुधारों का काल था। युद्धकालीन साम्यवाद (War Communism) की नीति की असफलता के पश्चात सन् १९२१ में लेनिन द्वारा नवीन आर्थिक नीति (The New Economic Policy) का अवलम्बन किया गया। यह एक सुधारवादी एवं उदारतावादी नीति थी जिसके अन्तर्गत समाजवादी सिद्धान्तों के साथ साथ कुछ अंश तक अस्थायी रूप से पूँजीवादी सिद्धान्तों को भी मान्यता दी गयी। लेनिन के अनुसार यह एक संक्रमणकालीन मिश्रित व्यवस्था थी जिसमें परस्पर विरोधी अनेक तत्वों का समावेश था, और इस बात की पूरी सम्भावना थी कि कुछ तत्व इतने प्रभावशाली हो जायें कि वे अन्य विरोधी तत्वों को नष्ट करने में सफल हो सकें। कुछ समय पश्चात ऐसा अनुभव भी किया गया। औद्योगिक उत्पादन में आशातीत वृद्धि न हो सकी जबकि कृषि उत्पादन पर्याप्त बढ़ा। फलतः औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य कृषि-वस्तुओं के मूल्यों की तुलना में बहुत अधिक बढ़ गये। इस असन्तुलन को कैंची संकट (Scissors Crisis) की संज्ञा दी गई। अतः यह अनुभव किया गया कि आर्थिक नियोजन के आधार पर भारी औद्योगीकरण के द्वारा ही इस प्रकार के संकटों से मुक्ति मिल सकती है। वस्तुतः रूस की प्रथम पंचवर्षीय योजना भारी औद्योगीकरण की ही एक योजना थी।

सन् १९२८ से लेकर अब तक रूस सात योजनाओं को सफलतापूर्वक पूरा कर चुका है और आठवीं योजना (१९६६-७०) इस समय वहाँ चल रही है। इन योजनाओं के निर्माण के लिए रूस में एक सुव्यवस्थित नियोजन-तन्त्र का संगठन किया गया है। सन् १९२० में लेनिन के सुझाव पर वहाँ विद्युतीकरण हेतु राजकीय आयोग[1] (Goelro) की स्थापना की गई थी। सन् १९२१ में वहाँ राजकीय नियोजन आयोग[2] (Gosplan) की स्थापना की गयी तथा गोयलरो (Goelro) को इसमें मिला दिया गया। इसके बाद से अनेक बार नियोजन आयोग का पुन-संगठन किया जा चुका है। केन्द्र में उच्चतम आर्थिक परिषद (Supreme Economic Council) है जिसका प्रमुख कार्य योजना तन्त्र के विभिन्न अंगों में समन्वय स्थापित करना तथा विभिन्न समितियों एवं विभागों को आवश्यक निर्देश देना है। इसकी तुलना भारत में कार्यशील राष्ट्रीय विकास परिषद (NDC) से की जा सकती है। इसी प्रकार गास्प्लान के समकक्ष भारत में योजना आयोग (Planning Commission) कार्यरत है। इसके अतिरिक्त रूस में केन्द्रीय सांख्यिकी बोर्ड (Central Statistical Board) योजना निर्माण के लिए आवश्यक आँकड़ों के संग्रह, वर्गीकरण, विश्लेषण आदि का कार्य करता है। केन्द्रीय स्तर के अतिरिक्त नीचे के स्तरों पर भी योजनाओं के निर्माण में सहयोग देने के लिए समुचित व्यवस्था की

[1] State Commission for Electrification (Goelro)
[2] The State Planning Commission (Gosplan)

गयी है। राज्य स्तर, जिलास्तर, नगर एवं गांव स्तर तथा यहाँ तक कि प्रत्येक औद्योगिक और कृषि इकाई स्तर पर योजना निर्माण के लिए स्थानीय सहयोग की सक्रिय व्यवस्था रूस में की गयी है। इसी लिए प्रायः कहा जाता है कि रूस में आर्थिक नियोजन का स्वरूप अधिकेन्द्रित होते हुए भी उसे विकेन्द्रित करने का यथासम्भव प्रयत्न किया जाता है। उच्चतम-स्तर एवं निम्नतम स्तर दोनों स्तरों पर प्रत्येक संगठन, संस्था और इकाई का योजना निर्माण में सहयोग होता है।[1]

इस प्रकार समाजवादी क्रान्ति एवं आर्थिक नियोजन की प्रणाली के आधार पर सोवियत रूस ने सामाजिक अन्याय एवं आर्थिक असमानताओं में कमी करके जनसाधारण के सामने व्यापक राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का भव्य मार्ग प्रशस्त किया है। "यह मार्ग उसे जमींदारी, पूंजीवादी व्यवस्था से बुनियादी समाजवादी परिवर्तनों की ओर, शोषणहीन समाज की ओर, मेहनतकश जनता के लिए राजनीतिक अधिकारों के अभाव से समाजवादी जनवाद की ओर, जाति और वर्ग संघर्ष से उत्पीड़ित जनता को स्वतन्त्रता, समता, मैत्री और बन्धुत्व की ओर, प्राविधिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन से आधुनिक उद्योग धन्धे और यन्त्रीकृत सहकारी कृषि की ओर, निरक्षरता की स्थिति से सार्वजनिक शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति के अभूतपूर्व विकास की ओर ले गया है।" पिछले पचास वर्षों में रूस द्वारा प्राप्त की गयी आर्थिक उपलब्धियों से इस कथन की पूर्णतः पुष्टि होती है। क्रान्ति से पूर्व रूस का औद्योगिक उत्पादन विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन का केवल तीन प्रतिशत था, जो सन् १९६७ में बढ़कर बीस प्रतिशत से भी कुछ अधिक हो गया—अर्थात् रूस विश्व के समस्त औद्योगिक उत्पादन का पाँचवां भाग उत्पादित करता है। इसी अवधि में सोवियत रूस ने इस्पात के उत्पादन में बाईस गुना, कोयले के उत्पादन में अठारह गुना, तेल के उत्पादन में छब्बीस गुना और विद्युत-शक्ति के उत्पादन में तीन सौ गुना वृद्धि की।

३. औद्योगिक संगठन (Organisation of Industry)

राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के दो प्रमुख अंग हैं—उद्योग एवं कृषि। सोवियत उद्योगों का नियंत्रण सम्बन्धित मन्त्रिमण्डल करता है। इसके विभिन्न सदस्यों में अधिकांश के पास सोवियत उत्पादन की मुख्य शाखाओं में से किसी एक शाखा का दायित्व होता है। इससे सम्बन्धित अनेक संगठन हैं जैसे राजकीय योजना आयोग (Gosplan) केन्द्रीय, सांख्यिकी संगठन आदि। मन्त्रालय दो प्रकार के होते हैं—अखिल संघीय व संघीयगण राज्यकीय। प्रथम प्रकार के मन्त्रालय देश के प्रशा-

---

1 Besides '*planning from above*', every organisation, every institution and every unit actively participates in plan formulation to introduce the element of *planning from below*'

सैनिक खण्डों का ध्यान रखे बिना उद्योगों का संचालन करते हैं। संघीय गण-राज्यकीय मन्त्रालय के अन्तर्गत एक मन्त्रालय तो केन्द्र में होता है और दूसरा विभिन्न गणराज्यों में। प्रत्येक मन्त्रालय में तकनीकी, आयोजना, वित्तीयपूर्ति, विक्रय, निर्माण, जनशक्ति एवं लेखा सम्बन्धी विभाग होते हैं। मन्त्रालय के अधीन मुख्य प्रशासकीय विभाग होते हैं जिन्हें ग्लावकी (Glavki) कहा जाता है। इन विभागों के अधीन क्षेत्र के समस्त कारखाने होते हैं। इन विभाग के नीचे ट्रस्ट अथवा कम्बाइन होते हैं। ट्रस्ट अथवा कम्बाइन अनेक कारखानों का प्रशासकीय संगठन होता है। अतः प्रशासन की दृष्टि से उत्पादन की इकाई ट्रस्ट अथवा कारखाना है।

वस्तुतः कारखाना ही सोवियत औद्योगिक व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु है। इनका उचित संगठन एवं संचालन प्राथमिक आवश्यकता मानी जाती है। संचालक कारखाने का एकमात्र प्रबन्धक होता है और उसका अधिकार क्षेत्र कारखानों के सभी विभागों पर होता है। कारखानों का प्रत्येक विभाग, उप विभागों एवं प्रत्येक उप-विभाग ब्रिगेडों में बँटा होता है। उपविभाग का अध्यक्ष अथवा फोरमैन उत्पादन शृंखला का अन्तिम व्यक्ति माना जाता है। ब्रिगेड-नेता उत्पादन मजदूरों के अग्रदूत होते हैं। उत्पादकता में वृद्धि का दायित्व ब्रिगेड पर ही होता है जो अन्य ब्रिगेडों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के उद्देश्य से कठिन प्रतियोगिता करता है। इसी प्रकार कारखाना साम्यवादी दल संगठन और कारखाना श्रमिक संघ समितियाँ भी उद्योगों की व्यवस्था में कार्यशील हैं। अन्ततः प्रत्येक औद्योगिक संगठन अधिक उत्पादन के लिए प्रयत्नशील रहता है। सभी संगठनों एवं संस्थाओं के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य यही होता है।

सोवियत औद्योगिक संगठन तथा उत्पादन तीन अंगों द्वारा किया जाता है—राजकीय प्रतिष्ठान, औद्योगिक सहकारी संस्थायें तथा व्यक्तिगत रूप से कार्य करने वाले कारीगर। इनमें राजकीय प्रतिष्ठान ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है तथा समस्त बड़े और मूलभूत उद्योग राजकीय उपक्रमों के रूप में हैं। सहकारी क्षेत्र में प्रायः मध्यम आकार के उपभोक्ता उद्योग होते हैं जिनमें समस्त सम्पत्ति सामूहिक होती है तथा इसकी सदस्यता के लिये प्रवेश शुल्क देने अथवा शेयर खरीदने की व्यवस्था होती है। किन्तु इन सामूहिक सहकारी उद्योगों का सारा कार्य राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकार-पत्र से ही शासित एवं नियन्त्रित होता है। बहुत छोटे आकार के उद्योग व्यक्तिगत कारीगरों द्वारा चलाये जाते हैं। किन्तु उद्योगों में संलग्न अधिकांश व्यक्ति राजकीय उपक्रमों अथवा सामूहिक सहकारी औद्योगिक संस्थानों के वेतन भोगी कर्मचारी हैं तथा उन्हें वेतन के अतिरिक्त राज्य द्वारा समाज कल्याण एवं सामाजिक बीमा योजनाओं के अन्तर्गत अनेक लाभ भी प्राप्त होते हैं। क्रांति से पूर्व कारखानों एवं दफ्तरों में काम करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत कुल जनसंख्या का केवल १७ प्रतिशत था जो सन १९६७ में बढ़कर ७५ प्रतिशत हो गया। यह पिछले पचास वर्षों में रूस

मे हुये भारी औद्योगीकरण का प्रतीक है। इस्पात, कोयला और विद्युत शक्ति के उत्पादन मे अब रूस का स्थान अमरीका के बाद विश्व मे दूसरा हो गया है। वैज्ञानिको, इन्जीनियरों, टेक्नीशियनों और श्रमिको के सयुक्त रचनात्मक प्रयत्नो और विचारो को तथा वैज्ञानिक अनुसधानो को प्रतिवर्ष नये यन्त्रों, उपकरणो और औजारो के विविध नमूनो के रूप मे साकार बनाया जाता है तथा उनके उपयोग के द्वारा अर्थतन्त्र का तकनीकी अभिनवीकरण किया जाता है। अनुसधान सस्थानों, डिजाईनिंग सगठनों और औद्योगिक प्रतिष्ठानों ने पिछले दस वर्ष मे ३०,००० किस्म की नई मशीनें तथा १०,००० किस्म के नये औजार रूस मे तैयार किये हैं।

४ कृषि का सगठन (Organisation of Agriculture)

सोवियत क्रान्ति ने कृषि सगठन के स्वरूप मे आमूलचूल परिवर्तन किया। लेनिन ने यह अनुभव किया कि यदि किसान को समाजवादी बनाना है तो यह आवश्यक है कि उसे समूहो मे सगठित किया जाय। सामूहिक खेती इसका उत्तम साधन मानी गयी। इसके तीन रूप सामने आये—तोज (Toz), आरटेल (Artel) और कम्यून (Commune)। तोज सयुक्त कृषि के लिये सहकारी सगठन था। कृषक सयुक्त रूप से खेती के लिये अपना सगठन बनाते थे और भूमि पर उनका स्वामित्व कायम था। इसके साथ ही पशु और औजार भी व्यक्तिगत होते थे तथा भूमि पर हुई उपज आपस मे बाँट ली जाती थी। आरटेल के अन्तर्गत अधिकाश उत्पादन सामूहिक रूप से होता है। कृषि कार्य भी सामूहिक रूप से किया जाता है तथा सामूहिक उत्पादन की आय परस्पर बाँट ली जाती है। इसके अलावा निजी उपयोग के लिये कुछ भूमि एव औजार भी होते हैं। इस प्रकार कृषक सामूहिक प्रणाली एव व्यक्तिगत उपक्रम दोनो का अग बन जाता है और उसे दुहरी आय के साधन भी प्राप्त हो जाते हैं। कम्यून मे सदस्य सामूहिक रूप से कार्य ही नही करते बल्कि सामूहिक रूप से रहते भी हैं। उत्पादन के साधन एव समस्त सम्पत्ति कम्यून की होती है। आवास-निवास, भोजन, बच्चो का लालन-पालन आदि सब सामूहिक रूप से होता है। यह सामुदायिक विकास का उच्चतम रूप है।

रूसी कृषि सगठन के तीन प्रधान अग हैं—सामूहिक फार्म (Kolkhoz), राजकीय फार्म (Sovkhoz) तथा मशीन ट्रैक्टर स्टेशन (मट्रस्टे)।

(क) सामूहिक फार्म या कोलखोज (Kolkhoz)

सोवियत कृषि मे कोलखोज का सबसे महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। इनके निर्माण का उद्देश्य श्रम तथा उत्पादन के साधनो का समाजीकरण करके कृषक वर्ग को निर्धनता, अज्ञानता एव शोषण से मुक्ति दिलाना है। भूमि राष्ट्र की सम्पत्ति के रूप मे समाजीकृत इकाइयो मे विभक्त कर दी जाती है। ऐसी इकाइयो पर सामूहिक फार्मों का अधिकार होता है और इनके अन्तर्गत भूमि का क्रय-विक्रय नही किया

जा सकता है। उत्पादन के अन्य समस्त साधनो पर भी समुदाय का अधिकार होता है किन्तु प्रत्येक सदस्य को व्यक्तिगत उपयोग के लिये कुछ भूमि रखने की छूट होती है जिस पर वह अपना निवास स्थान, पशु पक्षी, औजार रख सकता है तथा लघुस्तर पर फल सब्जी अथवा अन्य उपज पैदा करके अपनी आय बढा सकता है। सोलह वर्ष से अधिक के युवक एव युवतियाँ इसके सदस्य बन सकते हैं जिसकी स्वीकृति सार्वजनिक सभा से की जाती है। सदस्यो के निष्कासन का अधिकार भी सार्वजनिक सभा को ही है। कृषिकार्य सदस्यो के व्यक्तिगत श्रम पर आधारित होता है जिसके लिए उन्हें वेतन दिये जाने की व्यवस्था होती है। सदस्य उत्पादन ब्रिगेडो मे बाँट दिये जाते हैं। प्रत्येक ब्रिगेड मे फिर छोटे छोटे दल होते हैं जिनमे ७ से १४ तक सदस्य हो सकते हैं।

कोलखोज[1] का प्रबन्ध आरटेल के सिद्धान्तो को ध्यान मे रखते हुए **प्रजातन्त्रात्मक रीति से चुनाव द्वारा** होता है सभापति, प्रबन्ध समिति, अंकेक्षण समिति सभी की नियुक्ति आम सभा मे चुनाव प्रणाली के द्वारा होती है। कुल आय में से राजकीय टैक्स और बीमा, उत्पादन व्यय, प्रबन्ध और व्यावसायिक व्यय, सास्कृतिक एव प्रशिक्षण कार्य के लिये व्यय आदि निकालने के बाद एक निर्धारित राशि अविभाजनीय कोष मे जमा करदी जाती है। इसके बाद जो धन शेष बचता है वह सदस्यो के कार्यदिवसो के अनुपात मे बाँट दिया जाता है। प्रत्येक कोलखोज के उत्पादन का एक निश्चित भाग राज्य अथवा बाजार मे बेचने के लिये पृथक रखा जाता है। विशेष बीज, चारा, वृद्ध, पशु एव असमर्थ व्यक्तियो, सैनिक परिवारो तथा बाल शिक्षण सस्थाओ आदि के लिये विशेष कोष रखने की व्यवस्था होती है। राज्य से प्राप्त ऋणों एव अन्य सुविधाओ के लिये उत्पादन मे से भुगतान अग्रिम प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है।

कोलखोज अब सोवियत सामूहिक कृषि प्रणाली का एक बुनियादी अग बन चुका है। सामूहिक फार्म प्रणाली प्रारम्भिक पचवर्षीय योजनाओ के दौरान विकसित हुई क्योकि उस समय तक सामूहिक फार्मिंग के विभिन्न रूपो कृषि सहकारिता, कृषि आर्टेल और कम्यून की परीक्षा हो चुकी थी। इन तीनो मे आर्टेल को ही सामूहिक कृषि प्रणाली का सबसे उपयोगी सगठन माना गया। जनवरी सन् १९६७ मे ३६,५०० सामूहिक फार्म (कृषि आर्टेल) रूस मे कार्यशील थे। एक कोलखोज के आधीन औसतन ६,००० हेक्टेयर भूमि होती है तथा उसमे हजारो पशु होते हैं। ये सामूहिक फार्म प्राय पूर्णत **मशीनीकृत एव विद्युतीकृत** होते हैं। इस समय लगभग १७ लाख ट्रैक्टर रूसी कृषि मे प्रयोग मे लाये जा रहे हैं। **कम्बाइन्ड हारवेस्टरों, ट्रकों** एव अन्य मशीनों की सख्या इनके अतिरिक्त है।

---

[1] Collective Farm

(ख) राज्य फार्म या सोवखोज[1] (Sovkhoz)—इस प्रकार के फार्म पूर्णत: राज्य के अधीन होते हैं। सोवखोज का सगठन औद्योगिक ढाँचे के समान ही होता है। एक क्षेत्र मे एक ही प्रकार का उत्पादन करने वाले सोवखोज एक ट्रस्ट में आबद्ध किये जाते हैं। अधिकाशत ट्रस्ट सोवखोज मन्त्रालय के केन्द्रीय बोर्ड (Central Board of the Ministry of Sovkhoz) के अन्तर्गत कार्य करते हैं। इस केन्द्रीय बोर्ड को ग्लावक (Glavk) कहा जाता है। विशिष्ट वस्तुओं का उत्पादन करने वाले सोवखोज अन्य मन्त्रालयों म सम्बद्ध रहते हैं। कारखानों के समान ही एक-व्यक्ति प्रबन्ध प्रणाली इनमे भी अपनाई जाती है। इसका सचालक विशेष अधिकार प्राप्त राज्य कर्मचारी होता है। फार्म का पूरा उत्तरदायित्व उसे उठाना पड़ता है। स्थानीय सोवियत शासन का अधिकार क्षेत्र भी उस पर नहीं होता। क्रांति के बाद कृषि सगठन का यह रूप बोल्शेविक पार्टी ने अपनाया। साम्यवादी सिद्धान्तो और सोवखोज मे साम्य होने से यह कार्य अधिक उत्साह के साथ किया गया। सन् १६५४ मे इस सगठन मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। सोवखोज मुद्रा प्रणाली मे अपना हिसाब रखने लगे। राजकीय अनुदान प्राय बन्द कर दिये गये और यह निश्चय किया गया कि प्रत्येक सोवखोज अपने व्यय की पूर्ति अपने साधनो से ही करेगा। फार्म के उत्पादन का मूल निर्धारण प्रणाली म भी फेर बदल किया गया। सन् १६६७ की जनवरी में रूस मे लगभग १२,२०० राज्यफार्म (Sovkhoz) थे। 'सोवखोज' का आकार 'कोलकोज' से बड़ा होता है। प्रत्येक 'सोवखोज' के पास औसतन ४१,००० हक्टेयर जमीन होती है। इसमे से लगभग ६० प्रतिशत भूमि पर खेती की फसलें बोई जाती हैं। शेष भूमि चारे उगाने के लिये तथा पशु आदि को पालने तथा श्रमिकों के आवास आदि के लिये प्रयुक्त होती है। पशुशाला, कुक्कुट-शाला एव अन्य छोटे उद्योग इनमे कार्य करते हैं। इनमे भी पूर्ण मशीनीकरण होता है तथा कृषि कार्यों एव अन्य कार्यों के लिये विद्युत शक्ति का उपयोग किया जाता है। श्रमिकों के लिये आवास, शिक्षा, चिकित्सा आदि की समुचित व्यवस्था इन फार्मों मे की जाती है। वेतन के अतिरिक्त उत्तम कार्य के लिये बोनस देने की प्रथा भी है। कृषि श्रमिकों के जीवन को सुखद बनाने का पूरा प्रयत्न किया जाता है। उनके लिये पुस्तकालय, वाचनालय और मनोरजन आदि की उचित व्यवस्था की जाती है।

इस प्रकार कोलखोज और सोवखोज सोवियत कृषि के आधार बन चुके हैं। प्राय ६६ प्रतिशत अनाज और ५८ प्रतिशत माँस और दूध का उत्पादन सामूहिक फार्मों और राज्य फार्मों द्वारा ही किया जाता है। सन् १६५४ के बाद से विशाल आकार के फार्मों की स्थापना मुख्यत छोटे-छोटे सामूहिक फार्मों एव राज्य फार्मों के एकीकरण के फलस्वरूप हुई। लेकिन इधर कुछ वर्षों से अब अनुभव किया गया है कि

---

[1] State Farm

विशाल फार्म का आकार एक निर्धारित सीमा से अधिक नहीं होना चाहिए अन्यथा उत्पादन के साधनों के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति फार्म के कार्यों को सुचारु रूप से सञ्चालित करने में बाधक हो सकती है। उल्लेखनीय है कि रूस की ही सहायता से भारत में सूरतगढ़ (राजस्थान) में लगभग ३० हजार एकड़ भूमि में एक विशाल स्टेट फार्म की स्थापना कुछ वर्षों पूर्व हुई।[1] इसके लिये लाखों रुपये की मशीनें रूस द्वारा प्रदान की गयीं। कृषि उत्पादन बढ़ाने की दिशा में भारत में राज्य द्वारा यह सर्वथा नवीन प्रयोग है। रूस द्वारा ऐसे दस अन्य राज्यफार्मों के लिये आवश्यक मशीनें एवं साज सामान देने का प्रस्ताव भारत के समक्ष रखा गया है। रूस द्वारा सोवखोजों के द्वारा राष्ट्रीय कृषि उत्पादन का लगभग २५ प्रतिशत उत्पादन किया जाता है। यदि कुशल प्रबन्ध की व्यवस्था की जा सके तो स्टेटफार्म भारत में भी सफल हो सकते हैं—विशेषकर ऐसे क्षेत्रों में जहाँ भूमि बेकार पड़ी हुई है तथा आबादी कम है। लाखों लोगों को स्टेटफार्मों पर बसाया जा सकता है और साथ ही खाद्य पदार्थों के अभाव को भी दूर किया जा सकता है।

पिछले २० वर्षों में सोवियत कृषि सगठन एवं तकनीक में निरन्तर सुधार किये गये हैं। अधिक उपज के लिए रासायनिक उर्वरकों का उपयोग बढ़ा है, और सन् १९६७ में ३२१ लाख टन रासायनिक खाद खेतों में प्रयुक्त की गई और इसी वर्ष ६४१०० मिलियन रूबल के मूल्य का कृषि उत्पादन किया गया। रूस का वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन १७ करोड़ टन है जो भारत के वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन से लगभग दो गुना है। सातवीं योजना की अवधि में कृषि उत्पादन में केवल ३ ४ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई जो कि अधिक आशाजनक नहीं थी, किन्तु सन् १९६६ के बाद स्थिति में सुधार हुआ है और ८वीं योजना में ६ ५ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि होने की आशा है। सन् १९७१ तक रूसी कृषि में ३० लाख ट्रेक्टरों और २० लाख ट्रकों का प्रयोग होने लगेगा तथा रासायनिक खाद का उपयोग भी डेढ़ गुना हो जायगा।

मशीन ट्रैक्टर स्टेशन (मट्रेस्टे)—मट्रेस्टे राजकीय संस्थायें हैं जिनका प्रमुख कार्य सामूहिक फार्मों (Colkhoz) के यन्त्रीकरण में सहायता देना है। मशीनों एवं यन्त्रों की सहायता के अतिरिक्त सिंचाई, सड़क निर्माण, कुएँ, तालाब चरागाह एवं नई भूमि की उन्नति में भी ये संस्थायें योग देती हैं। सामूहिक फार्म इन संस्थाओं से मशीनों के उपयोग के लिए अनुबन्ध करते हैं। मशीनों के उपयोग के बदले सामूहिक फार्मों को अपनी उपज का राज्य द्वारा निर्धारित अंश देना पड़ता है। मशीन ट्रैक्टर स्टेशन प्रथम बार सन् १९२८ में स्थापित किये गये। इस समय हजारों ट्रैक्टर स्टेशन रूस के विभिन्न भागों में स्थापित हैं। केन्द्रीय मन्त्रालय के अधीन एक विशेष बोर्ड इन स्टेशनों का सचालन करता है। एक स्टेशन के पास चार पाँच कोलखोज

---

[1] ऐसा ही एक और स्टेट-फार्म राजस्थान के जैसलमेर में स्थापित कर दिया गया है।

होते हैं। प्रत्येक मशीन ट्रैक्टर स्टेशन मे सचालक, तीन सह सचालक एक एकाउन्टेण्ट और अनेक मिस्त्री आदि होते हैं। कार्य की सुविधा के लिए अनेक ट्रैक्टर ब्रिगेड बनाये जाते हैं और प्रत्येक ब्रिगेड म तीन या चार ट्रैक्टर एव यन्त्र होते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस समय रूस मे १७ लाख ट्रैक्टर प्रयुक्त हो रहे हैं तथा आठवीं योजना के अन्त तक इनकी सख्या ३० लाख हो जायगी। सन् १९५८ के पश्चात् रूस मे अब मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों का पुनर्संगठन कर दिया गया है। अनेक स्टेशनो को बडे-बडे सामूहिक कृषि फार्मों मे मिला दिया गया है और उनके उपकरण आदि उन्हें सौंप दिये गये हैं।

५ परिवहन (Transport)

पचास वर्ष पहले रूस परिवहन की दृष्टि से एक पिछडा हुआ देश था। सन् १९२२ तक रूस के पास केवल ३६००० मील लम्बा रेल मार्ग था जिसमे ट्रान्स-साइबेरियन रेल मार्ग प्रमुख था जो कि लेनिनग्राड से व्लाडीवोस्टक तक एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ था। उसके बाद से नवीन रेल मार्गों के निर्माण और पुराने मार्गों के सुधार का कार्य तेजी से किया गया। द्वितीय महायुद्ध के काल मे कोयला और तेल क्षेत्रों को सम्बद्ध करने और सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रेल मार्ग बनाये गये। मध्य एशिया और पूर्वी साइबेरिया मे भी इनका विकास किया गया। सन् १९५६ म आन्तरिक व्यापार का लगभग ८४ प्रतिशत रेलो द्वारा ढोया गया। शेष १६ प्रतिशत म जल मार्गों का महत्व अधिक तथा सडक एव वायुमार्गों का कम था। किन्तु उसके बाद से मोटर और वायुमार्गों का महत्व बढा है। जल यातायात की दृष्टि से रूस की नदियाँ उत्तम हैं। कुल मिलाकर रूस मे पौने दो लाख मील लम्बी नदियाँ जल यातायात के योग्य हैं। सडक यातायात के मार्ग मे अनेक कठिनाइयाँ रही हैं। स्टैपी मरुस्थलीय हिमाच्छादित और दलदली प्रदेशो मे सडको का निर्माण बहुत कठिन है। किन्तु पिछले बीस वर्षों मे वायुमार्गों का बहुत अधिक विकास किया गया है। यात्रियो मे मोटर बसो एव वायुयानो म यात्रा करने की प्रवृत्ति बढी है। कुल यात्री परिवहन का लगभग एक तिहाई भाग मोटर बसो से यात्रा करता है। सचार व्यवस्था मे भी सातवी योजना की अवधि मे विशेष प्रगति की गयी है। तार, बेतार एव टेलीविजन स्टेशनो का जाल सा बिछ गया है। रूस रेडियो युग से टेलीविजन युग मे प्रवेश कर चुका है। सन् १९६७ मे वहाँ लगभग ४६ लाख टेलीविजन सैट थे और मास्को टेलीविजन केन्द्र की ५२५ मीटर ऊँची "टेलीविजन" (TV-Tower) भी इसी वर्ष पूरी की गयी जो विश्व की सबसे ऊँची टेलीविजन टावर है।

६. देशी विदेशी व्यापार (Internal and Foreign Trade)

सोवियत सघ मे जिस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था प्रचलित है उसमे व्यापार का उद्देश्य लाभ कमाना नही होता है और न बिक्री बढाने

के लिए प्रचार या विज्ञापन पर व्यर्थ व्यय किया जाता है। विकास के प्रारम्भिक काल में भारी औद्योगीकरण पर अधिक ध्यान दिया गया और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर कम। उपभोक्ताओं की विभिन्न रुचियों के अनुसार वस्तुओं की किस्मों में विविधता पर भी अधिक ध्यान नहीं दिया गया। अत उपभोक्ताओं को वस्तुओं की खरीद में रुचि के अनुसार अपने विकल्प का प्रयोग करने के अवसर सीमित ही रहे। किन्तु सन् १९५४ के बाद अब आर्थिक सम्पन्नता के कारण रूस ने उपभोक्ता वस्तुओं के प्रचुर उत्पादन और उपभोक्ताओं की रुचि के अनुसार उनमें विविध किस्मों के उत्पादन पर अधिक ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया है। सोवियत रूस म आन्तरिक व्यापार मुख्यत. **सरकारी संस्थाओं और सहकारी** संस्थाओं के हाथों म है। **कोलखोजों** एव **सोवखोजों** द्वारा भी अपने अतिरिक्त उत्पादन का विक्रय बाजार म किया जाता है। **सरकारी एम्पोरियम, व्यापार** प्रतिष्ठान एव बिक्री केन्द्र राज्य के व्यापार मन्त्रालय द्वारा सचलित होते हैं तथा इनके द्वारा आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के क्रय विक्रय का प्रबन्ध किया जाता है। उपभोक्ता सहकारी समितियाँ देश के विभिन्न भागों में फैली हुई हैं और य सभी एक केन्द्रीय संस्था से सम्बद्ध हैं जिसे **'सेन्ट्रो-सोयनज'** (Centro-Soynz—Central Union of Consumers Co operation of the U S S. R.) कहते हैं।

क्रान्ति से पूर्व रूस म निर्यात और आयात का ढाँचा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देश जैसा था। निर्यात मे लगभग ९४ प्रतिशत कृषि उपज, उपभोक्ता माल तथा औद्योगिक कच्चा माल ही होता था तथा मशीनरी और अन्य निर्मित माल केवल ६ प्रतिशत ही होता था। आयातों मे मुख्यत औद्योगिक निर्मित माल, मशीन, औजार, धातुयें, ईंधन आदि हुआ करते थे। कुल व्यापार का ७० प्रतिशत केवल पाँच देशों से होता था—जर्मनी **ब्रिटेन, फ्रान्स, हालैण्ड और अमरीका**। किन्तु अब इस ढाँचे मे बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। २२ अप्रैल सन् १९१८ के एक समादेश द्वारा रूस सरकार द्वारा समस्त विदेशी व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। उसके बाद से समस्त आयात एव निर्यात एकाधिकार प्राप्त राजकीय नियमों के द्वारा किया जाता है। राष्ट्रीयकरण के बाद कुछ वर्षों मे विदेशी व्यापार मे बहुत ही अधिक कमी हो गयी, क्योंकि विकसित पूँजीवादी देशों ने इसका विरोध किया। किन्तु धीरे-धीरे इसमे वृद्धि होती गयी और इस समय रूस लगभग ८० देशों से व्यापारिक सम्पर्क स्थापित किये हुए है जिनमे समाजवादी, विकसित एव विकासशील, सभी प्रकार के राष्ट्र सम्मिलित हैं। इस समय रूस का विदेशी व्यापार प्रतिवर्ष १५०० करोड रूबल का होता है जिसमे आयात और निर्यात का भाग लगभग समान होता है। कुल विदेशी व्यापार का ६८ प्रतिशत समाजवादी देशों के साथ, २० प्रतिशत पूँजीवादी देशों के साथ और १२ प्रतिशत विकासशील देशों के साथ हुआ। सोवियत निर्यात मे लगभग दो तिहाई निर्मित माल होता है जिसमे मशीनें, उपकरण, धातुयें, तेल एव

अन्य वस्तुयें होती हैं। इसी प्रकार आयात के ढाँचे का भी परिवर्तन हुआ है और इसमें औद्योगिक कच्चे माल एवं उपभोक्ता वस्तुओं की प्रधानता रहती है जैसे ऊन, चमड़े का सामान, सूती कपड़े, फर्नीचर, बिजली के उपकरण एवं अन्य सामान एवं फल, चीनी और अनाज आदि। सन् १९५५ के बाद से भारत के साथ भी रूस का व्यापार बहुत अधिक बढ़ा है। सन् १९५६ में रूस के साथ भारत का विदेशी व्यापार केवल एक करोड़ रूबल के मूल्य का था जो सन् १९६७ में बढ़कर ३५ करोड़ रूबल तक पहुँच गया।

७. मूल्य निर्धारण एवं मूल्य-यन्त्र (Price Determination and Price Mechanism)

मूल्य रचना एवं मूल्यनीति अर्थशास्त्र का सम्भवतः सबसे जटिल प्रश्न है जिसका सम्बन्ध उत्पादक, उपभोक्ताओं और अर्थतन्त्र की विभिन्न शाखाओं से होता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक गतिविधियों और मूल्यों में होने वाले परिवर्तन परस्पर घनिष्ठ रूप से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, तथा मूल्य मुख्यतः माँग एवं पूर्ति की दशाओं एवं प्रतियोगिता की सीमाओं द्वारा निर्धारित होते हैं। किन्तु मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अनुसार किसी भी पदार्थ की कीमत का आधार उपयोगिता है—अर्थात् एक विशेष समय पर प्रत्येक देश की ठोस परिस्थितियों में माल के उत्पादन और वसूली में लगने वाले आवश्यक सामाजिक श्रम से ही कीमतें तय होती हैं। समाजवादी अर्थ-व्यवस्थाओं में यही सिद्धान्त कीमत सम्बन्धी नीति का आधार माना जाता है। सोवियत संघ में उत्पादन एवं वितरण पर मुख्यतः राज्य का पूर्ण नियन्त्रण होता है, अतः खुली प्रतियोगिता वस्तुओं के संचय एवं सट्टे का वहाँ कोई विशेष स्थान नहीं होता है। जब तक उद्योग एवं वाणिज्य पर व्यक्तिगत पूँजी की प्रधानता रही और कृषि व्यक्तिगत आधार पर होती रही, तब तक मूल्यों पर माँग एवं पूर्ति के अनुसार उतार चढ़ाव एवं संचय तथा सट्टे की प्रवृत्तियों के कारण मूल्यों में परिवर्तन होते रहे। किन्तु नवीन व्यवस्था के अधीन अधिकांश औद्योगिक एवं कृषि उत्पादनों तथा वस्तुतः समस्त सेवाओं और कार्यों की कीमतें राज्य निर्धारित करता है। केवल उस दशा में, जब सामूहिक फार्म एवं किसान अपने व्यक्तिगत उत्पादन को बाजार में बेचते हैं, कीमतें माँग एवं पूर्ति के नियम के अनुसार निश्चित होती हैं। किन्तु यहाँ भी राज्य सटस्थ द्रष्टा न होकर, आवश्यकतानुसार वस्तुओं की पूर्ति राज्य कोष द्वारा बढ़ाकर परोक्ष रूप से कीमतों में सामान्य स्तर लाने का प्रयत्न करता है।

मूल्य रचना में उत्पादन लागत तथा उसकी वसूली, जो वस्तुगत दृष्टि से आवश्यक होती है, मुख्य तत्व है। यही कारण है कि योजना में इनकी व्यवस्था की जाती है। यदि उद्योग का व्यय नियोजित व्यय से अधिक होता है, तो इसकी पूर्ति उपभोक्ता नहीं करता है। वास्तविक व्यय नियोजित व्यय से कम हो तो उद्योग को

लाभ अधिक होता है। उत्पादन एव वितरण व्यय के अलावा कीमत मे सचय का तत्व भी होता है। वह वास्तव मे श्रमिक के श्रम से उत्पन्न अतिरिक्त माल का वह मूल्य होता है जो श्रमजीवी समस्त समाज को देता है। सचय का एक भाग उद्योग के पास रहता है जो विस्तार इत्यादि के काम मे लिया जाता है। शेष बजट-आय अथवा राजस्व के रूप मे राज्य कोष मे चला जाता है। यदि किसी उद्योग मे उत्पादन का लागत-मूल्य औसत से काफी कम और सचय आवश्यकता से अधिक होता है, तो उसका एक भाग विक्रय के तत्काल बाद **वस्तु-कर** (Commodity-tax) के रूप मे राज्य-बजट मे चला जाता है तथा जिन उद्योगों मे सचय तथाकथित स्वस्थ धरातल से ऊपर नही उठता, उनसे वस्तुकर नही लिया जाता है। सोवियत सघ मे स्वस्थ मुनाफे का आशय उस मुनाफे से है जिसमे आवश्यक पूंजी निर्माण, सभरण मे वृद्धि तथा बोनस कोष के निर्माण मे सहायता मिलती है।

सोवियत सघ के मूल्य ढांचे का यदि हम उपर्युक्त दृष्टि से अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि मूल्य नीति की आधारभूत प्रवृत्ति उत्पादन के साधनो तथा उपभोक्ता सामानो के सम्बन्ध म कीमतो म सुव्यवस्थित ढग से कमी करने की रही है। जैसे ही उपयुक्त अवसर मिलता है राज्य किन्ही विशिष्ट पदार्थो के मूल्य मे अथवा सामान्य मूल्य स्तर मे कमी करने का प्रयत्न करता है। सुनियोजित ढग से मूल्यों मे कटौती वह शक्तिशाली नियत्रण है जिसमे उद्योग पर प्रभाव डालना, उनकी कुशलता मे वृद्धि करना, उत्पादन मूल्य म कमी करना, बिजली के व्यय मे बचत करना तथा अपने धन और मशीनो के उपयोग मे मितव्ययिता लाना सम्भव होता है। कीमतो मे कमी करने से जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊपर उठाने मे सहायता मिलती है। सोवियत सघ म उत्पादन एव माँग म सतुलन बनाये रखने का सदैव प्रयत्न किया जाता है। **भौतिक-सन्तुलनो** (Material Balances) एव **वित्तीय-सन्तुलनों** (Finance Balances) के द्वारा योजनाओ मे विभिन्न उत्पादनो के लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। अत समाजवादी व्यवस्था मे अधिक उत्पादन और आर्थिक मन्दी जैसे अभिशाप प्राय लोप हो चुके हैं। सर्वविदित है कि सन् १९२९ के बाद की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी का प्रभाव प्राय सब देशो पर पडा किन्तु रूस पर वह प्रभाव नही के बराबर था। विगत दस वर्षों मे रूस ने अपनी कीमतो मे काफी कमी की है। विशेषकर सातवी योजना म कीमतो म कमी की ओर विशेष ध्यान दिया गया।

अत यह स्पष्ट है कि समाजवादी व्यवस्था मे कीमतें जितनी कम होगी उतना ही जनता के रहन-सहन के स्तर मे वृद्धि होगी, श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि होगी, तथा उसके फलस्वरूप लागत मूल्य घटेगा तथा कीमतें और कम होगी। सोवियत अर्थ-व्यवस्था मे मूल्य-निर्धारण और मूल्य ढांचा पूंजीवादी व्यवस्था से भिन्न रूप मे सगठित एव सचालित है।

८ जीवन यापन का स्तर एव जन-कल्याण (Living Standards and Public Welfare)

सन् १९६७ मे सोवियत सघ मे सोवियत सत्ता की स्थापना की पचासवीं जयन्ती मनाई गयी। इस अर्धशताब्दी के काल म और विशेषकर द्वितीय महायुद्ध के बाद से सोवियत जनता के जीवन यापन के स्तर मे बहुत अधिक सुधार हुआ है। सर्वाधिक महत्व की बात यह है कि बेरोजगारी जैसे सामाजिक अभिशाप को वहाँ समूल नष्ट कर दिया गया है। प्रत्येक सोवियत नागरिक को कार्य करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त है और प्रत्येक नागरिक इस अधिकार का प्रयोग करता है। जार के समय म ८० प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर थे किन्तु अब रूस मे प्रत्येक व्यक्ति साक्षर है तथा आठ वर्षीय स्कूली शिक्षा अनिवार्य बना दी गयी है और अब अनिवार्य शिक्षा कार्यक्रम को पूरे माध्यमिक पाठ्यक्रम पर लागू करने का विचार है। सोवियत सघ मे कालेजो मे पढने वाले विद्यार्थियो की सख्या ब्रिटेन, फ्राम, इटली और पश्चिमी जर्मनी के समस्त कालेज-छात्रो की सख्या से चार गुनी अधिक है, जबकि इन चारो देशो की जनसख्या कुल मिलाकर सोवियत सघ की जनसख्या के बराबर है। उच्च शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसधान पर बहुत ध्यान दिया गया है, तथा सात लाख से कुछ अधिक वैज्ञानिक कालेजो, विश्वविद्यालयो और अनुसधान केन्द्रो मे कार्यरत हैं। प्रौढशिक्षा, सामाजिक शिक्षा एव स्वस्थ मनोरजन पर भी सोवियत सरकार पर्याप्त धन व्यय करती है तथा इसके लिए प्रौढ शिक्षा केन्द्रो, क्लबों, थियेटरो, सिनेमाघरो की स्थापना देश के विभिन्न भागो मे की गयी है। टेलीविजन पारिवारिक मनोरजन का सर्वोत्तम साधन बन चुका है और इस समय रूस मे लगभग ४९ लाख टेलीविजन सेट उपयोग मे लाये जा रहे हैं।

प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय मे सन् १९१३ की तुलना मे लगभग पच्चीस गुनी वृद्धि की जा चुकी है। सातवीं योजना (१९६१-६५) में वास्तविक प्रति व्यक्ति आय मे २० प्रतिशत वृद्धि की गई और आठवीं योजना (१९६६-७०) मे यह वृद्धि लगभग ३० प्रतिशत होने की आशा है। लोगों के आहार, निवास एव स्वास्थ्य के स्तर मे भी बहुत अधिक वृद्धि हुई है। दूध, मक्खन, पनीर, मांस, अडे, फल एव सब्जियाँ तथा चीनी जैसे अधिक मूल्यवान, खाद्य पदार्थों के उपभोग म दो से चार गुनी तक वृद्धि की गयी है। इसी प्रकार, ऊनी, सूती एव रेशमी वस्त्रो, घडियो, सिलाई की मशीनों, मोटर साइकिलों, रेफ्रीजरेटरो, तथा अन्य बिजली के उपकरणो का उपयोग पहले की अपेक्षा कई गुना अधिक हो गया है। किन्तु जन सुविधा एव जन कल्याण की दृष्टि से सबसे आश्चर्यजनक प्रगति भवन-निर्माण एवं चिकित्सा-सुविधाओं की दिशा मे हुई है। पिछले दशक मे ११ करोड २० लाख व्यक्तियो को नये घरो के रहने की सुविधा दी गयी अथवा उनके घरो मे सुधार किया गया। आठवीं-योजना की अवधि (१९६६-७०) म लगभग साढ़े छह लाख व्यक्तियो को आधुनिक-घरों मे रहने की

सुविधा दी जा रही है। रूस में बनाये जाने वाले आधुनिक आवास गृहों में नल, बिजली, गैस इत्यादि की सुविधायें होती हैं तथा औद्योगिक श्रमिकों और सामूहिक फार्मों या राज्य फार्मों के कृषकों को भी इस प्रकार की सुविधायें प्रदान की जाती हैं। इस समय सोवियत रूस में लगभग चालीस लाख डाक्टर स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवाओं में सलग्न हैं और इसी प्रकार डाक्टरों की संख्या की दृष्टि से रूस का स्थान विश्व में पहला है। ससार में सबसे कम मृत्यु दर रूस में है तथा वहाँ औसत आयु (life expectancy) भी सबसे अधिक ७० वर्ष है।

कारखानों एवं फार्मों में कार्य सप्ताह चालीस अथवा इक्तालीस घंटों का है जिसे घटा कर ३५ घंटा प्रति सप्ताह करने का लक्ष्य रखा गया है। दफ्तरों एवं औद्योगिक संस्थानों में पाँच दिवसीय कार्य सप्ताह लागू किया गया है—अर्थात् प्रत्येक सप्ताह में दो दिन का अवकाश। इससे उत्पादकता बढ़ी है और बीमारी तथा अन्य कारणों से की जाने वाली छुट्टियों में कमी हुई है। सोवियत श्रमिकों को वेतन एवं उत्तम निवास के अतिरिक्त अनेक अन्य प्रकार की सुविधायें राज्य से मिली हुई हैं जिनमें शिक्षा, प्रशिक्षण चिकित्सा, सामाजिक सुरक्षा एवं मनोरंजन आदि सम्मिलित हैं।

पिछले पन्द्रह वर्षों से व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं पारिवारिक जीवन के विषय में भी वहाँ नवीन दृष्टिकोणों का विकास हुआ है। समाजवाद के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध विचार प्रकट करने अथवा प्रचार करने की स्वतंत्रता यद्यपि आज भी वहाँ नहीं है किन्तु फिर भी समाजवादी सिद्धान्तों के अन्तर्गत विचार विमर्श करने की सुविधा अब वहाँ पहले से अधिक है। समस्त समाचार पत्र, प्रशासन संस्थायें एवं प्रेस सरकारी नियंत्रण में हैं और वे प्राय समाजवादी दृष्टिकोणों का निरूपण करने में सहयोगी हैं। फिर भी रूस में ७७०० से अधिक समाचार पत्रों और ४००० पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है और इनकी लगभग चौबीस करोड़ प्रतियों का वितरण होता है। अनुवादित एवं मौलिक ग्रन्थों का प्रकाशन भी बहुत अधिक है। इन पत्रों एवं पुस्तकों का प्रकाशन सोवियत संघ के विभिन्न क्षेत्रों की लगभग ६५ क्षेत्रीय भाषाओं में होता है।

सोवियत समाज में परिवार को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। व्यक्ति के हितों और समाज के हितों के बीच सामंजस्य स्थापित हो जाने के कारण, सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन में कोई व्यवधान अथवा विरोधाभास उत्पन्न नहीं करता बल्कि उसे और सुदृढ़ बनाता है। महिलाओं को पूर्ण समानता का दर्जा प्राप्त है। इस प्रकार सोवियत संघ की मान्यता है कि समाजवाद एक 'अपारिवारिक समाज' का निर्माण न करके एक ऐसे समाज का निर्माण करता है जो स्नेह, वैवाहिक और पारिवारिक बन्धनों से आबद्ध होता है तथा ये बंधन आर्थिक आधारों पर न टिक कर वास्तविक एवं पारस्परिक स्नेह एवं नैतिक आधारों पर टिके होते हैं।

इस प्रकार समाजवादी प्रणाली ने समस्त भौतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को परिश्रमी जनता की सम्पत्ति बना दिया है। दो भयंकर महायुद्धों के बावजूद इस प्रणाली में जीवन स्तर लगातार ऊँचे उठे हैं। अक्टूबर क्रान्ति की पचासवीं जयन्ती के अवसर पर उद्घोषित निम्न पंक्तियाँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। रोजगार, अवकाश, निशुल्क-शिक्षा, डाक्टरी सेवा और पेंशन के अधिकार सोवियत जनता के लिये स्वाभाविक और सामान्य रूप धारण कर चुके हैं। समाजवाद ने सोवियत मानव को भविष्य के प्रति विश्वास प्रदान किया है। उसे बेरोजगारी, मनमाने शासन और निर्धनता की आशंका नहीं है। समाजवादी समाज में प्रत्येक व्यक्ति का और उसके सुख-कल्याण का ध्यान रखना राज्य का प्रमुख लक्ष्य होता है।

३

क्रान्ति से पूर्व रूस

[PRE-REVOLUTIONARY RUSSIA]

"रूस एक ऐसी अर्थ-व्यवस्था का प्रतिरूप है जिसमें एक ओर तो आधुनिक पूँजी साम्राज्यवाद अच्छी तरह लिपटी हुई है, दूसरी ओर पूँजीवादी स्थापना से पूर्व विस्तृत होने वाली जागीरदारी प्रथा (कृषि में) से सम्बन्धित पत्रों का घना जाल सा बिछा हुआ है। एक ओर तो उसके पुराने गांव तथा पिछड़ी हुई कृषि पद्धति है पर दूसरी ओर बहुत ही प्रगतिशील औद्योगिक और वित्तीय पूँजीवाद स्थापित है।" —लेनिन, रूस में पूँजीवाद का विकास

प्राचीन रूस की आर्थिक व्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान था। कृषि जन-जीवन का आधार-भूत उद्योग था जो लाखों व्यक्तियों की जीविका का आधार था। इसके स्वरूप में धीरे-धीरे विकास और परिवर्तन होता गया, साथ ही युद्ध-कालीन दृष्टिकोण से भी कृषि का महत्व अधिक था। निरन्तर आक्रान्त जातियों—पीड़ित और प्रपीड़ित—देश का आधार कृषि ही हो सकता था। आक्राता देश और जाति का अधिक से अधिक ध्यान कर वसूली और अन्न प्राप्ति की ओर रहता था। साथ ही साथ देश की रक्षा के लिए सैनिकों की भर्ती का दायित्व भी ग्रामों पर था। इस प्रकार राजस्व, सैनिक और सामरिक दृष्टिकोण से कृषि का व्यवसाय महत्वपूर्ण ही नहीं वरन् एक आधारभूत उद्योग था जिसके उत्थान और पतन पर देश का उत्थान और पतन निर्भर करता था। अतः यह कहना युक्तिसंगत होगा कि रूस क्रांति से पूर्व एक कृषि प्रधान देश रहा। उत्तर के वनाच्छादित प्रदेश व दक्षिणी स्टेप्स के बीच का भाग प्राचीन काल से ही कृषि का प्रधान भाग रहा है। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक दशा में राजनीतिक कारणों से भ्रमणशील जातियाँ स्टेप्स में लोगों को खेती नहीं करने देती थी और कृषि का विकास प्रारम्भ में वहाँ अधिक नहीं हुआ। कृषि का विकास शताब्दियों के विविध परिवर्तनों की शृंखला में चलता रहा।

१ प्राचीन आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था

रूस के प्राचीन इतिहास में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान था। प्राचीन कृषि सगठन की उल्लेखनीय विशेषतायें निम्नलिखित थी —

स्लाव जाति, जिसमे किसी जाति का प्रादुर्भाव हुआ, दीर्घकाल से जन-समूहो मे विभाजित थी। अत सहयोगात्मक ढग का साम्यवाद समाज म प्रचलित था। भूमि प्राकृतिक वरदान और असीमित होने म स्वामित्व का कोई प्रश्न ही नही उठता था। किसान अपनी इच्छानुसार कृषि कर पाते थे। धीरे-धीरे इस अवस्था म परिवर्तन होने लगा और यह प्रणाली टूटने सी लगी और इसका स्थान व्यक्तिगत भू-स्वामित्व प्रणाली ने लिया क्योंकि कृषि योग्य भूमि की कमी अनुभव होने लगी। सामुदायिक भूस्वामित्व की रूसी कृषि प्रणाली १५वीं शताब्दी मे निश्चित रूप धारण कर सकी थी। दास प्रथा का आरम्भ लगभग इसी काल मे हुआ था।

सामन्तवाद का उदय नवी शताब्दी मे हो चुका था जो धीरे-धीरे एक प्रमुख सस्था बन गई और सामाजिक सगठन का रूप धारण कर सकी। बेकार और निमूंल्य पडी हुई भूमि की बडी मात्रा अनायास ही इनके हाथ लग गई। किसान और कारीगर अपने औजारो की सहायता से इन बडे भूस्वामियो से भूमि प्राप्त करके कृषि कार्य करते थे। इस कार्य और सुविधा के बदले अपने उत्पादन का एक अश अब्रोक (Obrok) तथा अपने श्रम विभाग का निश्चित समय बारशीना (Bartschina) भूमि स्वामियों को देना पडता था। ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, किसान भूस्वामियो को आर्थिक और अनार्थिक भार का शिकार हो पूर्णरूपेण दास बन सका। सामन्तवाद के अन्तर्गत, सामन्ता ने भूमि पर अपना स्वामित्व घोषित कर रखा था जिसको वॉशीना (Voichina) अथवा वशानुगत भूसम्पत्ति कहा जाता था। वॉशीना भूस्वामियो को बोयर (Boyer) अथवा विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति कहा जाता था। १८वी शताब्दी तक सामन्तवाद का प्रभुत्व रूसी सम्राटो और शासको पर गहरा जम चुका था। इससे पूर्व १६वीं शताब्दी मे आइवन तृतीय के नेतृत्व म एक नई प्रकार की भूस्वामित्व-प्रणाली को प्रोत्साहन मिला। बडे सामन्त भूस्वामियो की तुलना मे छोटे और मध्यवर्ग के किसानो का भूस्वामित्व वर्ग अस्तित्व मे आया जिसे पोमेस्ती भू-स्वामी कहा जाता था। इस वर्ग का कार्य सीमान्त प्रदेश की रक्षा और राज्य की सैनिक सेवा था। यह प्रणाली इतनी अधिक प्रचलित हुई है कि १५% भूमि ऐसे वर्ग के अधिकार मे चली गई।

अर्थ-व्यवस्था के नवीन विकास ने कृषि की समस्या को जटिल बना दिया। एक ऐसा युग इतिहास मे आया कि भूमि पर काम करने वाले श्रमिकों की कमी अनुभव हुई अत पोमेस्ती वर्ग ने कृषि ऋण देकर श्रमिकों को जमीन से बाँध दिया और सरकार द्वारा भूमि छोडने पर प्रतिबन्ध सा लग गया। १७वीं सदी मे पोमेस्ती वर्ग की शक्ति क्षीण होने लगी, साथ ही आइवन चतुर्थ की लिवोनियन युद्ध मे पराजय

कृषि और किसानो की शोचनीय दशा के महत्वपूर्ण कारण थे। इसके अलावा, १६०७ से १६१२ के काल मे पोलैण्ड द्वारा आक्रमण और मास्को पर अधिकार ने किसानो के असन्तोष को अधिक प्रोत्साहित किया। फिर क्या था किसान विद्रोही बन बैठा और उसने १६०५, १६०८ तथा १६७० मे प्रबल विद्रोह किये। किसान विद्रोह क्रूरता से दबा दिये गये और पोमस्ती वर्ग ने किसानो की श्रमशक्ति तथा शरीर पर वैधानिक अधिकार प्राप्त कर लिया और यह वर्ग इतना शक्तिशाली हो गया कि रोमानोव वंश का जार चुना गया। वारशीना पद्धति का दासता यन्त्र के रूप मे अधिकाधिक और प्रभावशाली प्रयोग होने लगा।

इतना सब कुछ होने पर भी कृषि की हालत मे कोई उल्लेखनीय सुधार दृष्टिगत न हुए। सम्राट इतने कमजोर और पगु थे कि वे सामन्तवर्ग का विरोध नही कर सकते थे और तो और उनका चुनाव और टिका रहना सामन्तो की प्रसन्नता और अनुकम्पा पर आधारित था। व्यापार के फैलाव और अनाज का बाहर निर्यात होने से व्यापारी किस्म का वर्ग धीरे-धीरे अस्तित्व में आ रहा था। यूरोपीय कला, संस्कृति, सभ्यता के प्रभाव से रूस बच न सका। सामन्तो की विलासिता बढी और इस प्रकार कर मे वृद्धि हुई। १७०५, १७०७ के **किसान विद्रोह** इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। यही समय रूस के औद्योगिक विकास का भी समय रहा है। अत सामन्तवर्ग शहरो की ओर आकृष्ट हुआ, परिणामस्वरूप कृषि-व्यवस्था और अधिक बिगड़ी। अत यह निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि दास मुक्ति के समय तक कृषि की अवस्था मे पिछले तीन सौ सालो की व्यवस्था से अधिक परिवर्तन नही हुआ। उत्पादन की गिरती समस्या ने भूस्वामियो को अपने निरीक्षण मे कृषि कराने को विवश किया **इगलैंड की औद्योगिक** और कृषि क्रान्ति ने इस रूप मे प्रेरणा का कार्य किया। और दास-प्रणाली को एक अवरोध माना जाने लगा। परन्तु **दुर्भिक्षों की निरन्तर आवृत्ति** ने स्थिति को बिगड़ने मे सहायता दी। सन् १८२०-२१, १८३२-३४, १८३६, १८४३-४७, १८५०-५१ के दुर्भिक्ष इसके प्रमाण थे।

इधर सामन्तवाद के ढाँचे मे भी एक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। सामन्तो का **बोयर** वर्ग अपनी अन्तिम स्वासें ले रहा था और निरन्तर युद्ध की साज-सज्जा ने पोमेस्तो वर्ग के प्रभाव को थोड़े समय के लिये अधिक बढावा दिया। महान **पीटर** (Peter the Great) ने बोयर वर्ग को समाप्त कर दिया और स्थायी सेना की स्थापना से पोमेस्ती वर्ग पर भी इसका प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ अत यह कहना युक्तिसगत होगा कि १८वी शताब्दी के आरम्भ तक इस नई व्यवस्था ने भूमि स्वामी वर्ग के अस्तित्व को समाप्त कर दिया। बोशीना और पोमेस्ती वर्ग को शामिल कर दिया गया और भूमि सम्पत्ति वंशानुगत, अविभाजनीय, व **पारिवारिक** बनी तथा सबको राज्य सेवा करना अनिवार्य हो गया।

२. भूस्वामित्व के प्रधान वर्ग

१८वीं सदी के अन्त में भूस्वामित्व निम्न प्रकार का था —

(१) जार स्वामित्व।

(२) दरबार भूस्वामित्व।

(३) चर्च स्वामित्व।

(४) राज्य स्वामित्व।

(५) अन्य स्वामित्व।

इनका क्रमश वर्णन इस प्रकार है —

(क) जार स्वामित्व—महान पीटर के समय में कुछ भूमि जार ने अपने परिवार वालों की वंशानुगत स्वामित्व में दे दी थी। इनको जार की व्यक्तिगत सम्पत्ति माना जाता था। इसका प्रबन्ध और व्यवस्था व्यक्तिगत रूप से अलग से की जाती थी। प्रति व्यक्ति के स्थान पर चार दम्पत्ति पर एक साथ कर लगता था।

(ख) दरबार भूस्वामित्व—यह प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही थी। मध्य रूस के विस्तृत प्रदेश मध्यकालीन युग में इसमें शामिल कर लिये गये। दरबार स्वामित्व १८वीं सदी के अन्त तक बढ़ता गया। सन् १७७२ में दरबार के अन्तर्गत ३,५७,३२८ और १७८२ में ५,६७२३८ पुरुष थे। इस भूमि का मुख्य कार्य दरबार के प्रमुख राजकुमारों तथा कर्मचारियों को दी जाने वाली राजकीय अर्थ-सहायता इकट्ठा करना था। कृषि वर्ग की स्थिति पोमेस्ती किसानों से अच्छी थी। इसका प्रबन्ध दरबार के एक विभाग द्वारा होता था। धीरे-धीरे कैथराइन द्वितीय के समय दरबार की भूमि राज्य स्वामित्व में बदल गई।

(ग) राज्य स्वामित्व—राज्य की भूमि पर जो किसान बसते थे राज्य की सम्पत्ति थे। चूँकि ये राज्य की सम्पत्ति थे अत राजाज्ञा द्वारा इन्हें भी भेजा जा सकता था। कैथराइन ने किसानों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया तो जारिना (Tzarina) ने किसानों को अधिक दासता में बाँधा।

(घ) चर्च स्वामित्व—कैथराइन द्वितीय (१७६०) के समय १० लाख व्यक्ति *अर्थात् रूस और साइबेरिया की ग्रामीण जनसंख्या का लगभग १४% इस श्रेणी में* था। रूस के सम्राटों ने समय-समय पर चर्च या मठों की भूमि हथियाने का प्रयत्न किया जिसमें १६४७ में जारएलेक्सो, १७०१ में पीटर महान्, १७६२ में पीटर तृतीय तथा १८६४ में कैथराइन द्वितीय ने ऐसे प्रयत्न किये। इस भूस्वामित्व के अन्तर्गत *किसानों की दशा अच्छी न थी। वर्ष में १६३ दिन किसानों को मठों की जमीन पर* काम करना पड़ता था, वोशोना देना पड़ता था। बाद में राज्य-कर लगा दिया और १½ रूबल प्रति किसान को ओब्राक देना पड़ता था।

(ङ) अन्य भूस्वामित्व—इसमें पोलो लोको का नाम लिया जा सकता है। यह वर्ग १८वीं सदी में अस्तित्व में आया। इस प्रथा के अन्तर्गत किसान को उत्पादन का आधा भाग भू-स्वामी को देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त फसल

काटना, भूसा निकालना, जंगल साफ करना, कपड़ा बुनना इत्यादि काम भूस्वामी के लिये करने पड़ते थे। स्त्रियाँ और बच्चे उनके घरों पर काम करने के लिये बाध्य थे।

इसके अलावा स्वतन्त्र किसान उन किसानों को कहते थे जिन्हें विदेश की सीमा की रक्षा के लिये सैनिकों के रूप में रखा गया था।

३. कृषि-दासता और स्वतन्त्रता

सत्रहवीं शताब्दी तक का कृषि प्रणाली का सगठन इस बात को स्पष्ट करता है कि किसानों को दास बनाने के नियमों में अधिक से अधिक कठोरता आने लगी। यही कारण था कि किसानों में असन्तोष घर करने लगा और स्थान-स्थान पर कृषक-विद्रोह होने लगे। सन् १६४१ में "सोबर नियम" बना जिसके अन्तर्गत जमीन छोड़ कर भागे हुए किसानों को फिर से वापस बुला लेने का अधिकार मिला, स्वतन्त्र किसानों का अस्तित्व इस रूप में समाप्त सा हो गया और किसान दास या सर्फ रूप में परिणत हो गये। पीटर महान् तथा कैथराइन द्वितीय ने जहाँ एक ओर रूस को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया, वहाँ दूसरी ओर किसानों की दासता को अधिक कठोर बना दिया।

उस समय पारिश्रमिक भुगतान की दो रीतियाँ प्रचलित थीं—वस्तु तथा मुद्रा भुगतान तथा श्रम भुगतान। वस्तु भुगतान में ओब्राक, बारशीना, द्वोरोवी, ल्यूद (Obork, Batschina Dvorovie, Lyude) सबत्र कृषक के अधिकारों के भुगतान का साधन खेत में उत्पन्न वस्तु थी। इसमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहे। १६वीं सदी में मुद्रा का प्रचलन बढ़ने से वस्तु का भुगतान का स्थान मुद्रा ने ले लिया।

श्रम-भुगतान के रूप में 'बारशीना' पद्धति सामने आती है। इसके अन्तर्गत हर किसान को एक सप्ताह में निश्चित दिन अपने खेतों के अलावा स्वामी के खेतों पर काम करना पड़ता है। यह भू-स्वामी का एक वैधानिक अधिकार था, तीन दिन का बारशीना औसत माना जाता था, वैसे स्थान-स्थान पर इसमें भेद पाया जाता है।

गृह-दास—सभवत सम्पूर्ण यूरोप ही एक ऐसा देश था जहाँ गृह-दास पाये जाते थे इनको अकेले या परिवार रूप में पशुओं के हाट में ले जाकर बेचा जाता था। इस रूप में इन दास दासियों का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व और अस्तित्व नहीं था, ये भू-स्वामी की सम्पत्ति-सी बन गये।

सह कृषि—इस रूप में किसान स्वामी के साथ एक सहयोगी के रूप में काम करता था और सुविधाओं के लिए उपज का एक निश्चित अंश स्वामी को देता था।

रूसी कृषि प्रणाली का सगठन—रूस में जिस प्रकार कृषि उत्पादन की प्रणाली और सगठन पाया जाता था उसे मीर अथवा ओबुशीना (Mir or Obschina) कहा जाता था। इसकी उत्पत्ति के बारे में इतिहासकार एव अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं। भिन्न भिन्न स्थानों पर इसके भिन्न-भिन्न रूप पाए जाते थे अत यह निर्णय करना मुश्किल है कि कौन-सा रूप वास्तविक और सच्चा है। सन् १८६१ तक के मीर सगठन की विशेषताएँ य थी —

(क) वशानुगत सदस्यता—इसकी सदस्यता वशानुगत थी, परन्तु नये सदस्य भी बनाये जा सकते थे।

(ख) सदस्य खेतों पर परिवार सहित काम करते थे और पट्टियो का सामयिक बँटवारा किया जाता था। यह बँटवारा श्रम-शक्ति के अनुसार होता था।

(ग) ग्रामीण सगठन के सदस्य—सार्वजनिक चरागाह, मछली के तालाब, जगल इत्यादि का प्रबन्ध करते थे, इसके साथ अनावश्यक सार्वजनिक भूमि का इस्तेमाल, नई जमीन खरीदना अथवा विशेष अधिकार प्राप्त करना सामूहिक रूप से मीर के द्वारा होता था।

मीर की उत्पत्ति, विकास और दास मुक्ति से पूर्व की स्थिति का विश्लेषण—मीर की उत्पत्ति या उद्गम के बारे मे अर्थशास्त्री एकमत नही हैं, कुछ इतिहासकारो के मतानुसार कृषि के क्रमिक विकास मे मीर प्रथा का जन्म हुआ। किसान की सहकारी प्रवृत्तिया का यह ग्रामीण सगठन स्वाभाविक परिणाम था।

अन्य विचारक १६ वी सदी से राज्य के निरन्तर बढते हुए प्रभाव तथा राज्य के शासन प्रबन्ध और वित्त का प्रत्यक्ष सम्बन्ध का प्रभाव मीर सगठन को मानते हैं।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि राज्य और दास स्वामित्व से मीर सगठन अपना स्वरूप प्राप्त कर सका। १७वी तथा १८वीं शताब्दी मे राजकीय करो की वसूली का भार इस सगठन पर डाला गया। मीर का रूसी भाषा की शब्द व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ है 'गांव' अथवा 'ससार'। ग्राम आत्म-निर्भर, पृथक और स्वशासित सगठन थे। सामुदायिक उत्तरदायित्व, इस सगठन की एक विशेषता थी। भूमि का विभाजन करो का विभाजन, सामाजिक कर्त्तव्यो का पालन, आशिक रूप से न्याय का कार्य मीर का होता था। समाज निष्कासन, जुर्माना या दण्ड भी इसके क्षेत्र मे थे। मीर के प्रतिनिधि को शासन मे भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वह केन्द्रीय सरकार के अधिकारियो का सहायक था।

मीर की आर्थिक कमजोरियाँ निम्न थी—

(१) खुले खेतों की यूरोपीय पद्धति रूसी कृषि का भी आधार थी।

(२) भूमि की त्रि क्षेत्रीय (Three Field System) पद्धति किसान की आय म कर देती थी।

(३) जमीन के एक तिहाई भाग पर भी कुछ उत्पादन सम्भव नहीं था।

(४) फसल की उचित अदला-बदली का कोई उपाय न होना।

(५) मीर की बढ़ती हुई जनसंख्या को कृषि मे खपाना मुश्किल हो रहा था। भूमि की मात्रा धीरे-धीरे कम होती जा रही थी।

(६) कृषि प्रणाली और खाद का अवैज्ञानिक तरीका भी इसमे एक रुकावट सी थे।

(७) भू-स्वामित्व का अस्थायित्व भी किसान में अपमान अनुभव करते देते थे, यही कारण था कि वह उस पर मन लगाकर उत्पादन नही करता था।

(८) जोत का विभाजन और छोटे होने का डर भी प्रगति मे बाधक थे।

(९) रूसी कृषि मे रूढ़िवाद ने अपना घर कर लिया था।

(१०) सामूहिक कृषि प्रथा के कारण सभी को अपनी फसल एक ही समय पर एक सी विधि द्वारा बोना और काटना पड़ता था। अत. व्यक्तिगत-उत्साह व प्रेरणा का अभाव था।

(११) मीर से प्राप्त सुरक्षा इतनी पूर्ण थी कि किसानों को अपनी पूर्ण बुद्धि और कार्यशक्ति के साथ काम करने की इच्छा नही रहती थी।

(१२) सयुक्त उत्तरदायित्व ने किसान को लापरवाह बना दिया, वह आलसी और कामचोर भी हो गया।

(१३) खेतों का बिलरापन लाभपूर्ण प्रयोग के मार्ग मे रुकावट थी।

(१४) नई भूमि के वितरण मे पक्षपातपूर्ण व्यवहार होता था।

इतना होने पर भी मीर विश्व की प्राचीनतम कृषि सगठन की सामाजिक सुरक्षा प्रणाली कही जा सकती है। इस सगठन की मुख्य विशेषताएँ चार थीं :

(१) भूमि का सामान्य अधिकार।

(२) खेत की अनिवार्य समानता।

(३) समाज का कठोर वर्ग विभाजन।

(४) भुगतान का आपसी आश्वासन।

अततोगत्वा हम यह कहना चाहेंगे कि मीर एक प्रभावशाली कृषि सगठन का स्वरूप था, जिसकी अपनी विशेषताएँ थीं, वह ग्रामीण जीवन का आधार था। आत्म-निर्भरता और स्वायत्तता में शाति, सन्तोष और सुरक्षा का आदर्श परिपालन होना सामान्य था। श्रम, गरीब और बुड्ढो की सहायता, आपसी सौहार्द और उदारता, सामाजिक बीमा के समान फलदायी थी। मुद्रा के आविर्भाव और उसके अधिकाधिक प्रयोग तथा औद्योगीकरण की लहर ने मीर सगठन को इस शताब्दी के प्रारम्भ मे समाप्त सा कर दिया।

४ दास प्रथा की समाप्ति (Emancipation of Serfdom)

कृषि सगठन के जिस महत्वपूर्ण अग मीर की चर्चा हमने की है, उसके साथ ही साथ एक बात की चर्चा की गई थी कि दास प्रथा ने सगठन को पर्याप्त रूप मे

प्रभावित कर रखा था। दास प्रथा के उद्गम के रूप में "ओगनी शान" (Ogani-Schan) नामक सामाजिक वर्ग का उल्लेख प्राचीन रूसी इतिहास में प्राप्त होता है। यह वर्ग विशेषाधिकार प्राप्त सामाजिक वर्ग था। युद्ध और उसकी स्थायी प्रवृत्ति ने युद्ध-बन्दियों को दासों के रूप में परिणत किया। इस प्रकार युद्ध द्वारा प्राप्त दास तथा उनके वंशज 'चेलाद' (Chelad) कहलाये। १२ वीं शताब्दी के आसपास इनकी सहायता से कृषि आरम्भ हुई। भूस्वामित्व की प्रणाली का प्रारम्भ भी इन्हीं के कारण हुआ। चेलाद (युद्ध दास), खोलोप (दास कृषक) दो वर्ग दासों के रूप में अधिक प्रसिद्धि पा सके। खोलोप की प्रवृत्ति ने स्वतन्त्र व्यक्तियों को भी दास बना दिया।

साथ ही साथ कुछ लोग दास प्रथा का आरम्भ राजनीति न मानकर आर्थिक मानते हैं। उनके अनुसार —

(१) किसान अधिकांशत अत्यन्त निर्धन थे।
(२) औजार, घोड़े तथा आवश्यक पूंजी की उपलब्धि का अभाव।
(३) भूमि जोतने के लिये आर्थिक साधनों का उधार लेना।
(४) राज्य कर, भूमि का लगान, ऋण का ब्याज भी चुकाना पड़ता था।
(५) एक ही भूस्वामी के यहाँ दीर्घकाल तक टिके रहने से स्वतन्त्र अधिकार की समाप्ति दास प्रथा के रूप में परिणत हुई।

साथ ही साथ १५वीं तथा १६वीं शताब्दी में इस प्रकार की वैधानिक रुकावटें राज्य द्वारा लगायी गयी कि किसान अपना ऋण चुकाये बिना भूमि छोड़ कर नहीं जा सकता था। दास प्रथा में बन्धक दास (Kabala Kholop) तथा पूर्ण दास के रूप में दो वर्ग पाये जाते हैं। सत्रहवीं शताब्दी में दास प्रथा का अधिक विस्तार पाया जाता है। सन् १६४६ में सम्राट एलेक्जी के आदेशानुसार, किसानों को बन्दी बना कर बुलाया जा सकता था उसके फलस्वरूप दासों में और अधिक वृद्धि हुई।

सम्राट पीटर, साम्राज्ञी कैथेराइन द्वितीय तथा निकोलस प्रथम एवं अलेक्जेन्डर द्वितीय ने दास प्रथा को राज्य का आधार मानकर इस प्रकार नियम बनाये जिससे कि वे अधिक दासता के बन्धनों में जकड़ दिये गये।

दास मुक्ति के कारण

दास प्रथा का जो स्वरूप हमें सन् १८६१ तक दृष्टिगोचर होता है उससे स्पष्ट है कि वह इतनी अधिक घिनौनी और भयंकर हो गई थी कि असह्य हो गई और उसके अन्दर विद्रोह की आग प्रज्ज्वलित होने लगी। दास प्रथा के टूटने के कारणों में मुख्य निम्नलिखित थे :—

(१) आर्थिक कारण—कृषि दासता की प्रणाली प्राचीन आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था के अनुकूल हो सकती थी, परन्तु ज्यों-ज्यों बाह्य प्रभाव तथा विदेशी सम्बन्ध

विकसित होने लगे दास प्रथा अपने आप समाप्त सी होने लगी। भूस्वामी भूमि की उपज बाहर बेचने लगे। उत्तरी प्रदेश के भूस्वामी मुद्रा लेकर दासो को कारखानो मे काम करने के लिए आज्ञा देने लगे। दक्षिण-मध्य रूस के अनाज और कच्चे माल का आदान-प्रदान उत्तर के औद्योगिक उत्पादन के साथ होना अधिक दिनो तक रुक न सका। बाजार के लिये उत्पादन की प्रवृत्ति घर करने लगी। सन् १८२०-२५ के दुर्भिक्ष और अन्नाभाव ने श्रम विभाजन की महत्ता और श्रेष्ठता का अनुभव कराया। व्यापारवादी पद्धति ने कृषिदासता की अलाभिकता पर प्रकाश डाला। पूँजीवादी बाजार मूल्य निर्धारण की परिस्थिति ने इसमे सक्रिय सहयोग दिया।

(२) राजनैतिक कारण—रूसी सम्राट जब तक विजय प्राप्त करते रहे और अन्य देशों पर अधिकार करते रहे तब तक पुराना सामाजिक आधार निर्विवाद रूप से चलता रहा। परन्तु ज्यो ही निकोलस प्रथम ने क्रीमिया के युद्ध मे पराजय प्राप्त की तो देश के औद्योगीकरण की समस्या ने तीव्र रूप धारण किया और देश का औद्योगीकरण निश्चित ही दास प्रथा और सामन्तवाद की समाप्ति पर निर्भर था।

(३) सामाजिक कारण—किसान और दासो का बढ़ता हुआ असन्तोष कभी-कभी विद्रोह के रूप म प्रकट होता रहता था। ऐसे विद्रोहो म नतृत्व का अभाव अवश्य था, नैतिक स्थिति की गम्भीरता और अस्वस्थता अवश्य ही प्रगट हो रही थी। १९वी शताब्दी के किसान विद्रोहो की संख्या इस प्रकार है —[1]

१८२६–१८३४	१४८ विद्रोह
१८३५–१८४४	२१६ विद्रोह
१८४५–१८५४	३४८ विद्रोह
१८५५–१८६१	४७४ विद्रोह
कुल योग	१,१८६

रूस मे इन विद्रोहो को दबाने के लिये जार तथा सामन्तो ने सैनिक शक्ति का सहारा लिया। परन्तु वे असन्तोष की आग को शान्त न कर सके। परिस्थिति दिन व दिन बिगड़ती गई और अन्त मे १८६१ मे दास-मुक्ति अधिनियम (Emancipation Law of 1861) की घोषणा करनी पड़ी।

५ दास मुक्ति के परिणाम

सन् १८६१ के दास-मुक्ति अधिनियम से रूसी कृषि-समाज के इतिहास मे एक नया युग आरम्भ होता है। असन्तोष, विद्रोह तथा दमन-चक्र निरन्तर चलता रहा

---

[1] Lyascheno, *op cit*, p. 370

और जो सन् १९१७ की क्रान्ति का आधार बना। दास-मुक्ति के प्रभावों का विवेचन उपर्युक्त तथ्य को समझने में सहायक होगा —

(१) ४ करोड़ दासों की मुक्ति वैसे एक महान विजय थी परन्तु उन्हें देश में बसाना एक समस्या थी।

(२) घूंसखोरी, पक्षपात, बेईमानी ने कानून की व्यावहारिक सफलता के मार्ग को अवरुद्ध किया।

(३) *भूस्वामियों और किसानों तथा दासों की इस अधिनियम से विपरीत* आशाएँ फलीभूत नहीं हो रही थी क्योंकि यह आर्थिक स्वार्थों का संघर्ष था।

(४) थोड़ी-सी स्वतन्त्रता पाकर किसान और अधिक स्वतन्त्रता के लिये बेचैन हो उठे।

(५) अलेक्जेण्डर द्वितीय की यह दास-मुक्ति-घोषणा जहाँ एक ओर उसकी सदाशयता का प्रतीक थी वहाँ जारशाही के ध्वंस के निमन्त्रण का संकेत थी।

(६) अधिनियम में स्वतः ऐसी कमजोरियाँ थी कि वह व्यावहारिक और सफल न हो सका।

सुपरिणाम—इस प्रथा के टूटने के सुपरिणाम इस प्रकार हैं :—

(१) दास अधिनियम ने टूटती हुई सामन्तवादी प्रथा को गहरा धक्का लगाया।

(२) शासन-व्यवस्था के अन्य अंगों में भी सुधार के प्रयत्न इसलिए प्रारम्भ किये गये।

(३) इस सुधार ने प्रथम बार जनता की इच्छा को राजनैतिक रूप से संगठित होने को प्रेरित किया।

(४) सुधारों की माँग के स्थान पर देश का ढाँचा ही बदलने का प्रयत्न होने लगा।

(५) दास-मुक्ति ने रूढ़िवादिता को जड़ से उखाड़ फेंका।

हम यह कहना चाहेंगे कि दास-मुक्ति-अधिनियम अपने आप में एक क्रान्तिकारी अधिनियम था। इससे समाज के जीर्ण-शीर्ण आधार को बदलने की प्रेरणा मिली। पुराने रूस में कृषि समस्या सदा बहुत ही जरूरी समस्याओं में से थी। क्योंकि *प्रबल बहुसंख्या जनसंख्या किसानों की थी। लेकिन सन् १९१७ की अक्टूबर क्रान्ति* से पहले इस समस्या को उनके पक्ष में हल नहीं किया गया। सन् १८६१ का यह सुधार ऐसे ढंग से किया गया कि लाभ इससे जमींदारों को ही हो। किसानों को भू-दासता से मुक्त करते हुए जारशाही की सरकार ने उस जमीन का २०% काट लिया जिसे किसान अपने काम में लाते थे तथा वह जमीन जमींदारों को दी गई। सबसे निकृष्ट भूमि जिसमें बहुधा चारागाह तक न थी, किसानों के लिये बच रहीं और

यह जमीन भी मुफ्त नहीं मिली। इस भूमि का मूल्य ६५ करोड़ रूबल आँका गया। लेकिन किसानों से जितना धन लिया गया वह २ अरब स्वर्ण रूबल था अर्थात् मूल्य का लगभग तिगुना। संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि क्रान्ति तक कृषि समस्या का इतिहास इसी प्रकार था।

सन् १८६१ से सन् १९१७ तक की कृषि प्रणाली का अध्ययन दास मुक्ति के रूप मे अत्यन्त लाभप्रद होगा। व्यापारिक दृष्टिकोण से कृषि आरम्भ हो गई थी। वैतनिक श्रम और बड़े पैमानों पर काम करना लाभप्रद था। पूँजी की इस रूप में अधिक आवश्यकता थी। अत निश्चित ही भूमि बड़े किसानों, व्यापारियों और पूँजीपतियों के अधिकार मे जाने लगी। अब तक जो ग्राम समुदाय सगठन अस्तित्व मे था वह एक रूप मे तो शक्ति ग्रहण कर सका कि भूमि के पुर्नवितरण का प्रश्न उसको सौंपा गया परन्तु साथ ही अमीर किसानों (कुलक) का प्रभाव इतना बढा कि मीर सन् १८९० तक पतन की ओर अग्रसर हुए।

दास मुक्ति अधिनियम ने किसानों मे खेत प्राप्त करने की लालसा तीव्र रूप मे जाग्रत की परन्तु उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी। भूमि की कमी तथा मुआवजे के भुगतान ने किसान की कमर तोड दी। दुर्भिक्ष और सूखे के प्रभाव की जाँच के लिये एक आयोग इस समय स्थापित किया गया परन्तु यह आयोग अपने परीक्षण मे सामन्तवादी तत्त्वो के सन्निहित होने से सफल न हो सका। तत्पश्चात् १८७२ मे वेल्यूयेव कमीशन (Valuyev Commission) की जाँच ने शासन को चौकन्ना कर दिया। राजकर की असमानता तथा पक्षपात कारण रूप मे प्रस्तुत किया। सामन्तों की तुलना में किसान १०, २० और ४० गुना अधिक लगान देता था। सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र से प्राप्त २०० मिलियन रूबल म से १९५ मिलियन रूबल किसान देते थे। किसानों के बकाया कर की प्रतिशत वृद्धि इस प्रकार थी[1] :—

प्रान्त	१८७१-७५	७६-८०	८१-८५	८६-९०	९१-९५	९६	९८
सिम्बर्स्क	५%	६%	३४%	४२%	२०४%	२२३%	२७७%
तूला	३	५	१६	३५	१३४	१५१	२४४
कजान	४	३१	१०१	१७०	७३०	३३४	४१८
ऊफा	२५	४०	७७	२०८	३३६	३६०	३९७

इसी कारण से पूँजीवादी कृषि का प्रारम्भ हुआ।

६ कुलक अथवा समृद्धिशाली किसान वर्ग का उदय (Rise of Kulak or Rich Peasant)

जैसा कि हमें उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आर्थिक और कृषि सकटों ने पूँजीवादी कृषि का मार्ग साफ कर दिया। सामन्त वर्ग तथा किसान जो आत्म-निर्भर

---

[1] Lyaschenko. *op. cit.*, p 447

केंद्रीयकरण की इस प्रवृत्ति का यह परिणाम था कि ८०% से अधिक जनसंख्या के पास सिर्फ ५% भूमि थी २०% जनसंख्या ९५% भूमि की मालिक थी।[1] व्यापारिक कृषि के लिए पूँजी की आवश्यकता हुई। इस रूप में सामन्त भूस्वामियों का ऋण भार बढ़ाया गया। १८८५ में सामन्त भूमि बैंक (Noble Mens' Land Bank) स्थापित किये गये जिनका उद्देश्य सामन्तों की इस स्थिति में सहायता करना था। भूमि को बंधक रखकर ये बैंक उधार देते थे। सन् १८८६ १९१२ के बीच १,१४६ मिलियन रूबल उधार दिया गया।

इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मन्दी का आविर्भाव रूसी कृषि के लिए एक आघात सिद्ध हुआ। अनाज का निर्यात ही रूसी कृषि का एक मात्र अवलम्ब था। बाजार में अनाज के मूल्य इतने गिरे कि उत्पादन ही कठिन हो गया। कृषि उत्पादित वस्तुओं का दाम सन् १८७० की तुलना में ½ रह गया। इस कृषि ने पूँजीवादी और समृद्ध किसानों को अधिक सुविधा प्रदान की।

दास मुक्ति के बाद भी किसानों की दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। लगभग उन्नीसवीं सदी के अन्त तक भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भू-स्वामी और व्यापारियों का प्रभाव निरन्तर वृद्धि कर रहा था। बड़े पैमाने की कृषि प्रणाली उन्नत होती गई। पूँजीवादी किसान और व्यापारी किसान ने वर्ग संघर्ष को और अधिक प्रोत्साहन दिया। सामन्त लोग अपनी खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त करना चाहते थे अतः किसानों की आर्थिक पराधीनता सम्बन्धी नियम बनाये गये। १८८१ से १८९३ के बीच सामन्तों ने किसानों को विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत आर्थिक पराधीनता में बांध दिया। इसी प्रकार १८९३ में किसानों की दशा की जाँच के लिये एक आयोग स्थापित किया गया।

पीटर स्तोलाइपिन के कृषि सुधार—रूस के शक्तिशाली प्रधान मंत्री श्री पीटर स्तोलाइपिन ने १९०५ की क्रांति को ध्यान में रखकर एक कृषि सुधार की योजना प्रस्तुत की। सन् १९०५ की क्रांति ने यह सिद्ध कर दिया था कि यदि किसान की भूख शांत कर दी जाय तो उन्हें क्रांति से विमुख किया जा सकता है। इस भूमि के लिये श्री पीटर की नवीन सुधारवादी योजना में सामूहिक भूस्वामित्व तथा पारिवारिक अधिकार समाप्त कर दिये गये और उनके स्थान पर व्यक्तिगत स्वामित्व स्थापित किया गया। मीर के संगठन से १९०३ में मुआवजे के भुगतान की सामूहिक जिम्मेदारी ले ली गई थी और इस प्रकार वह संगठन पहले ही समाप्त कर दिया गया। सन् १९०६ में स्तोलाइपिन के सुधार लागू किये गये जिसके प्रमुख प्रावधान इस प्रकार थे —

(१) *ग्रामीण समुदाय दो भागों में विभाजित किया गया—(अ) वह समुदाय* जहाँ दास मुक्ति के पश्चात् किसानों के बीच पुनर्वितरण हो चुका था। यत्र तत्र

---
1. *Ibid*

बिखरी हुई खेतो की पट्टियो के स्थान पर एक ही स्थान पर खेत की व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया। मीर से स्वतन्त्र होने की व्यवस्था भी की गई थी।

(आ) वह कृषक समुदाय जहाँ वितरण नहीं हुआ था। ऐसे मीर या ग्रामीण सगठन मे जितनी भूमि उस समय एक परिवार के पास थी, उसे उस परिवार की सम्पत्ति मान लिया गया। व्यक्तिगत किसानो की भूमि उनके स्वामित्व मे सौंप दी गई।

(२) बहुमत के आधार पर किसी मीर का भूस्वामित्व व्यक्तिगत स्वामित्व मे बदला जा सकता था। मीर व्यवस्था के भग होने पर व्यक्तिगत खेतो को उत्तराधिकारियो को बेचने का अधिकार दिया गया।

(३) इस सुधारवादी योजना का ध्येय क्राति को रोकना था। बलवान, समृद्ध, व्यक्तिगत कृषक समाज पर ही शासन की नीव होनी चाहिये।

(४) मीर को षडयन्त्रकारियो और क्रातिकारियो का स्थान माना गया। उसे भग करने का हर सम्भव प्रयत्न किया गया। व्यक्तिगत कृषि को प्रोत्साहित किया गया और प्रथम महायुद्ध तक २४% किसान व्यक्तिगत कृषि अपना चुके थे।

पीटर स्तोलाइपिन ने अपनी सुधारवादी योजना से बडी-बडी आशाएँ की थी। उसे यह पक्का विश्वास था कि इससे क्राति की लहर रुक जाएगी। परन्तु उसकी सुधारवादी योजना ने व्यक्तिगत स्वामित्व का प्रचार उच्च ग्रामीण वर्ग के लिए किया। छोटे और गरीब किसानो को भूमि छोडन और श्रमिक बनन पर विवश होना पडा। भूमि का केन्द्रीयकरण पूँजीपति किसान वर्ग (कुलक) के पास हुआ जो अन्तत क्राति की आग को भडकाने म सहायक हुआ। इस योजना के प्रभावो के रूप मे इतना अवश्य कहा जा सकता है कि एक अलग स्वतन्त्र श्रमिक वर्ग का विकास हुआ। कारण कि उनका सम्बन्ध भूमि से सदा सर्वदा के लिए टूट सा गया। साथ ही साथ व्यापारी पूँजीवादी वर्ग के रूप मे एक प्रबल वर्ग अस्तित्व मे आया जो जार और उसकी व्यवस्था का समर्थक था।

प्रथम महायुद्ध ने अन्नाभाव और आर्थिक स्थिति के बिगाड मे योग दिया और उसका स्पष्ट प्रभाव यह हुआ कि किसान क्राति के लिए तैयार हुआ। यह कहना ठीक होगा कि यदि किसान की आन्तरिक दशा ठीक होती तो वह कभी भी क्राति न करता, उसने अपने भूमि की भूख मिटाने के लिए ही क्राति मे अपनी आशाएँ निहित कर दी थी।

७ औद्योगिक व्यवस्था

प्रथम महायुद्ध से पूर्व का रूस एक कृषि प्रधान देश था, इसके औद्योगीकरण का इतिहास लगभग विश्व के अन्य देशो मे समान ही रहा। नवी-दसवी शताब्दी तक छोटे पैमाने के उद्योग ही यहाँ पाये जाते थे वे भी प्रयोगात्मक रूप मे। यह एक

सर्वविदित सत्य है कि किसी देश की औद्योगिक प्रगति के लिए उस देश की राजनीतिक स्थिति अधिकांशतः उत्तरदायी होती है। जो देश राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर हो, जिसे हमेशा युद्ध का भय हो, सैनिक अवरोध आये दिन की घटनाएँ हों वहाँ बड़े कारखाने या कुटीर उद्योग कम स्थापित हों। देश के आर्थिक निर्माण और प्रगति के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता, सुरक्षा और शान्ति आवश्यक तत्व हैं।

यदि हम रूस में रूस के राजनीतिक स्वरूप का अध्ययन करें तो हमें स्पष्ट मालूम होगा कि सोवियत रूस का राजनीतिक स्वरूप १७वीं सदी तक अस्थिर और डाँवाडोल था अतः यहाँ के शहरों की स्थापना शासन, नियन्त्रण केन्द्र और सैनिक शिविरों के रूप में हुई न कि व्यापारिक और औद्योगिक दृष्टिकोण से। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जिस समय यूरोप और विशेषतः इंगलैण्ड में कारीगरी और व्यापारी वर्ग का निर्माण हो चुका था वहाँ रूस में औद्योगिक वर्ग का जन्म ही नहीं हुआ था। ग्राम ग्राम-निर्भर अर्थ-व्यवस्था के आधार थे और शहरों में अफसर और सैनिकों का निवास था। अतः १७वीं सदी तक जो भी उत्पादन या वस्तु निर्माण का कार्य होता था वह किसान के स्वयं के उपभोग के लिए ही होता था।

औद्योगीकरण की नींव—पीटर महान् (१६८२-१७२५) रूस के उन महान् शासकों में गिना जाता है जिसने देश के औद्योगीकरण में महान् योगदान दिया। रूस की औद्योगिक उन्नति के लिए उसने विदेशी विशेषज्ञों को आमन्त्रित किया और इसके लिए विदेशों में स्थापित अपने दूतावासों को विशेष रूप से इस कार्य में नियोजित किया। वह स्वयं भी एक दूरदर्शिता और अनुशासन-प्रिय वृत्ति का शासक था जिसने इंगलैण्ड और पश्चिमी यूरोप के भ्रमण काल में औद्योगिक उन्नति को स्वयं देखा और उसका अनुकरण करने के लिए प्रवृत्त हुआ। वह सामरिक दृष्टि से अपनी सेना को तत्कालीन आधुनिक साज-सज्जा से युक्त करना चाहता था अतः इस रूप में औद्योगिक विकास एक अनिवार्यता थी। वह अपनी राजधानी भी नेवा नदी के किनारे बनाना चाहता था जिसे सेंट पीटर्सबर्ग (वर्तमान लेनिनग्राड) नाम दिया गया। औद्योगिक आवश्यकताओं का स्फुरण तब था। इस प्रकार पीटर महान देश को औद्योगिक दृष्टि से समृद्ध बनाना चाहता था।

रूस के औद्योगीकरण की नींव पीटर महान् (Peter the Great) द्वारा रखी गई। सन् १७२१ की प्रसिद्ध राजाज्ञा के द्वारा व्यापारियों को यह अधिकार मिला कि वे फैक्टरी में काम कराने के लिए निवासियों सहित पूरे गाँव खरीद सकते हैं ये ग्राम सदा के लिए कारखानों के अंग मान लिए जायेंगे। साथ ही कुछ व्यक्तियों को कारखानों में काम करने के लिए नियुक्त किया जाता था। पीटर महान् के शासन काल में यूराल भाग ने महत्ता प्राप्त की और लौह खदानों का प्राचीन रूस का केन्द्र बन गया। १८वीं शताब्दी के मध्य तक लौह उत्पादन इंगलैण्ड से कई गुना अधिक था और स्वीडन से निर्यात क्षेत्र में प्रतिस्पर्धी हो गया था।

सन् १७१८ में रूस लगभग २०,००० अन्स-टन लाह की धातु उत्पन्न करता था, जबकि इंगलैण्ड में, जो औद्योगिक क्रान्ति का जनक कहा जाता है, १८४० में केवल २०,००० अन्स-टन लोहे की धातु उत्पन्न की जाती थी। पीटर के नेतृत्व में १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक रूस लोहे और तांबे के उद्योग में सर्व प्रथम हो गया था। फ्रान्स, हालैण्ड और इंगलैण्ड में जो भी औद्योगिक उन्नति हुई, पीटर ने उनके अनुकरण की पूरी-पूरी कोशिश की। इस रूप में विदेशी विशेषज्ञों को निमन्त्रण और देश के श्रमिकों को उन कला के प्रशिक्षण की पूरी सुविधाएँ दी गयीं। साथ ही औद्योगीकरण के लिये जितनी भी सुविधाएँ दी जा सकती थीं उन्हें देने का प्रयत्न किया गया। करों में छूट, आर्थिक सहायता, संरक्षण तट-कर, एकाधिपत्य व विशेषाधिकार आदि की योजनाएँ थीं जिनके अन्तर्गत देश के औद्योगीकरण की हर सम्भव कोशिश को अपनाया गया। अधिक से अधिक सुविधाओं और छूटों का यह परिणाम हुआ कि पूँजी इस ओर आकर्षित हुई। पीटर के शासन काल में स्थापित १९१ बड़े कारखानों में से २६ ऊन, रेशम, रुई वस्त्रों के, ५ चमड़े के, ८ कागज के, ७२ शस्त्रों के कारखाने थे। २० लोहे व दूसरी धातुओं की शोधशालाएँ थीं।

ये कारखाने जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है दास-श्रमिकों द्वारा चलाये जाते थे। कभी-कभी तो राज्य इन विभागों का संचालन करता था, उदाहरणार्थ ट्रेजरी आइरन वर्क्स, टूला (१७१२)। कुछ रूप में विदेशियों को इस प्रकार के उद्योगों की स्थापना की इजाजत थी।

पीटर के पश्चात् कैथराइन द्वितीय (१७६२-१७९६) के राज्य-काल में भी उद्योगों को स्थापित करने को प्रोत्साहन दिया जाता रहा। खनिज उद्योगों की प्रगति का विवरण इस रूप में अधिक उल्लेखनीय है। यूराल पर्वत के क्षेत्र की खानों पर कार्य द्रुत गति से हो रहा था। समस्त रूसी उत्पादन का ६०% तांबा, ६५% लोहा यूराल क्षेत्र से निकाला जाता था। साथ ही जिस प्रकार का श्रम इन कारखानों में नियोजित किया जाना था वह दास-श्रम सामन्तों से ही खरीदा जा सकता था। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक इन दास श्रमिकों (Serfs) की संख्या लगभग ३ लाख तक पहुँच चुकी थी। इनमें ३/४ भाग ट्रेजरी वर्क्स से सम्बन्धित थे। सन् १७५२ और १७६२ में कुछ अधिनियम स्वीकार करके दास-श्रमिकों की उपलब्धि पर कुछ ऐसे प्रतिबन्ध लगाये गये जो कि व्यक्तिगत व्यवसायियों के हाथ में उद्योगों की स्थापना में अवरोधक थे। इन अधिनियमों की स्पष्ट मंशा थी कि लौह-उद्योग सामन्त वर्ग के एकाधिकार में रहे।

आधुनिक उद्योगों की नींव १९वीं शताब्दी के प्रथम बीस वर्षों में रखी गई। नैपोलियन के हमले के पश्चात् जब देश ने मुक्ति की सांस ली तब ही यूरोप की नवीन औद्योगिक प्रणाली की ओर देश का ध्यान जा सका। मास्को-क्षेत्र में मजदूरी पर मजदूरों को प्राप्त करना सरल था। सन् १८०५ में प्रथम वाष्प एंजिन सूती-वस्त्र

उद्योग मे लगाया गया। यही कारण है कि इस क्षेत्र मे पूँजीवादी उद्योग का विकास हुआ और वेतन भोगी श्रमिक नियोजित किये जाने लगे। सन् १८६६ तक ऐसे कपडा कारखानो की संख्या ४२ तक पहुँच गई जिनमे शक्ति का उपयोग हो रहा था। शताब्दी के अन्तिम चरण म सूती वस्त्र उद्योग का विकास और भी तेजी से हुआ। अधिकांश कारखाने विदेशियों द्वारा स्थापित किये गये।

सन् १७७०-१८६० के मध्य रूस के वस्तु-उत्पादन करने वाले उद्योगो के कारखानो व उनम काम करने वाले मजदूरो की संख्या[1]

वर्ष	कारखानो की संख्या	श्रमिकों की संख्या (००० में)
१७७०	१९० से अधिक	६० के लगभग
१८०४	२३९९	९५ २
१८११	२३४१	१३७ ८
१८२०	४५७८	१६९ ६
१८३०	५४५३	२५३ ९
१८४०	६८६३	४३५ ८
१८५०	९८४३	५०१ ६
१८६०	१५३३८	५६५ १

सन् १८१५ म प्रथम वाष्प नौका (Steam boat) और १८३६ म रेलवे तथा तार की स्थापना न औद्योगिक क्षेत्र म नवीन जागरण पैदा किया। सन् १८६० से १८७० क मध्य रेलवे निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ राज्य ने इस उद्योग म पूँजी और रुचि का परिचय दिया। यह नवीन उद्योग डोन और नीपर नदियों के आसपास स्थापित किया गया। सन् १८८४ म लोहा खनिज उद्योग के केन्द्र को रेलवे द्वारा डोनवास कोयला क्षेत्र स सम्बन्धित किया गया।

सन १९१७ तक के औद्योगिक विकास के रूप म यही कहा जा सकता है कि बडी मात्रा के उद्योगो म बीस-तीस लाख व्यक्ति लगे हुये थे। लगभग दस लाख रेलवे और ७½ लाख अन्य श्रमिक खनिज उद्योग म नियोजित थे। १९१३ तक लोहे का उत्पादन ९२ लाख टन, मैंगनीज १२ लाख टन, कोयला २९ मिलियन टन था। श्रमिको के पारिश्रमिक की स्थिति भी सन्तोषजनक नहीं थी। धातु उद्योगो म ३५ रूबल प्रति माह, वस्त्र उद्योग म १६-१७ रूबल प्रति माह और औसत २० से २८ रूबल प्रति माह मजदूरी मिलती थी। यातायात के क्षेत्र म भी यही हाल था। १८५०

[1] H Schwartz *Russia s Soviet Economy*, p 36

मे सारे रूस में २०० किलोमीटर रेलवे लाइन थी, १९०० में यह ६८,००० तथा १९१३ मे ७३,००० किलोमीटर तक पहुँच चुकी थी। सड़कें बीस हजार मील से कम थीं जिनमे पक्की सड़कें तो ३,००० मील ही थी। सन् १८६० से १९१३ के मध्य जो औद्योगिक विकास हुआ वह निम्न प्रकार है

सन् १८६०-१९१३ के बीच रूस में कुछ प्रमुख वस्तुओं का उत्पादन[1]

वस्तु का नाम	इकाई	१८६०	१८७०	१८८०	१८९०	१९००	१९१३
कोयला	(दस लाख पूडो मे)[2]	१८ ३	४२ २	२००·९	३६७ २	९९५ २	२२१४
पट्रोल	,, ,,	—	१ ८	३४ ०	२४१ ०	६३१ ०	५६१
कच्चा लोहा	,, ,,	१९ ६	२०·७	२९·१	५६ २	१७६ ८	२८३
लोह-इस्पात	,, ,,	१२·४	१४ ५	३५·३	४८ ४	१३४ ४	२४७

फिर भी सन् १९१३ तक रूस म औद्योगीकरण का श्रीगणेश हो चुका था। *दास प्रथा का अन्त हो जाने पर रूस मे औद्योगिक पूँजीवाद का विकास तेजी से होने* लगा। फिर भी नवम्बर १९१७ की क्रान्ति से पूर्व का रूस उस रूप में औद्योगिक राष्ट्र नही कहा जा सकता जिस रूप मे कि इगलैण्ड, फ्रास, जर्मनी का नाम ले सकते हैं। वह औद्योगिक क्षेत्र मे अत्यन्त अविकसित और पिछड़ा हुआ था। विद्युत शक्ति के उत्पादन मे रूस का स्थान १५वाँ, सुपर फासफेट्स के उत्पादन में १६वाँ, कोयले के उत्पादन म ६वाँ, लोहे के उत्पादन मे ५वाँ, व ताँबे के उत्पादन मे ७वाँ था। *रूसी क्रान्ति के समय की दशा का वर्णन करते हुए ई० लॉक्स ने लिखा है कि सुई, हैसिये,* बिस्कुट आदि छोटी-छोटी वस्तुओं के लिये भी तत्कालीन रूस विदेशो पर आश्रित था। रूसी श्रमिकों की कार्य दक्षता बहुत ही कम थी। रूस में उस समय जो कुछ थोड़े बहुत उद्योग चल रहे थे उनमें विदेशी पूँजी का प्रभुत्व था। सन् १९१६-१७ मे रूसी उद्योगों में २२०० मिलियन स्वर्ण रूबल के मूल्य की विदेशी पूँजी लगी हुई थी जिसमे से ३२ ६% *भाग फ्रान्स का*, २२ ६% *भाग ब्रिटेन का*, १९·७% *भाग जर्मनी का*, १४ ३% भाग बेल्जियम का व ५·२% भाग अमेरिका का था।[3] प्रथम महायुद्ध से पहले के बीस वर्षों मे लगभग २० करोड रूबल की विदेशी पूँजी प्रति वर्ष रूस म विनियोजित की जाती रही।

---

1 *Op cit*, p 61.

2 One pood is equivalent to about 16 4 kilogram

3 H Schwartz *Russia's Soviet Economy*, p. 63.

डोनेट्ज के कोयले के उद्योग मे जो पूँजी लगी थी उसकी ५०% विदेशी पूँजी थी। यही दशा लौह-उद्योग आदि की थी जिनमे लौह-उद्योग धातु, उद्योग और तेल-उद्योग मे जो पूँजी लगी थी उसका ८०% भाग विदेशी पूँजी का था। देश मे १८ बडे सयुक्त-स्कन्ध बैंक थे उनकी मूल पूँजी का ४२% विदेशो, विशेषकर फ्रान्स, जर्मनी से आया था। अत स्पष्ट है कि सोवियत सघ का राज्य क्रान्ति से पूर्व का औद्योगिक विकास समान रूप वाला औद्योगिक विकास न था।

४
राज्य-क्रान्ति
[THE REVOLUTION]

"मज़दूरों, जारशाही से लड़ते हुए गृह युद्ध में तुमने सर्वहारा वीरता के, जनता की वीरता के चमत्कार दिखाये हैं। अब क्रान्ति की दूसरी मंजिल फतह करने के लिये तुम्हें संगठन के चमत्कार, सर्वहारा वर्ग और सारी जनता के संगठन के चमत्कार दिखाने होंगे।"

—लेनिन, *संक्षिप्त लेनिन-ग्रन्थावली, अ० म० ख० ६, पृ० ११*

सोवियत संघ ही विश्व में एक ऐसा देश है जिसमें सर्वहारा वर्ग की सरकार स्थापित है, ऐसी स्थिति में सर्वहारा वर्ग द्वारा सन् १९१७ में की गई क्रान्ति की पृष्ठ-भूमि का अध्ययन जहाँ एक ओर राजनीतिक स्थिति का स्पष्टीकरण करेगा वहाँ दूसरी ओर विश्व के इतिहास में आर्थिक नियोजन तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के इतिहास को अधिक उज्ज्वल रूप में प्रस्तुत करेगा। सोवियत संघ की अपनी एक विशेष पृष्ठभूमि रही है। उसने प्रत्येक युद्ध या संघर्ष के पश्चात् नई करवट बदली है। इतिहास साक्षी है कि क्रीमिया के युद्ध का प्रभाव दास मुक्ति (Emancipation of Serfdom) पर पड़ा तो रूस-जापान का १९०५ का युद्ध प्रजातन्त्र शासन में प्रयोग तथा ड्यूमा (संसद) की स्थापना के रूप में हुए और प्रथम युद्ध (सन् १९१४-१९) में रूस का शामिल होना महान् सोवियत क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ जिसने विश्व के इतिहास की धारा को ही मोड़ दिया और जो समाजवाद पहले कल्पना लोक की वस्तु समझा जाता था, जिसका *आदर्श आकाश-पुष्प की प्राप्ति के समान दुर्लभ और असम्भव था* वह समाजवाद धरती पर अवतीर्ण हुआ। अतः यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि रूस ने प्रत्येक युद्ध के पश्चात् अपने स्वरूप में परिवर्तन किया है। सन् १८६० के क्रीमिया युद्ध के पश्चात् दास मुक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ा। यह जार-शासन के विरुद्ध असन्तोष की प्रथम चिनगारी थी। क्रीमिया के युद्ध में पराजय से निर्बल होकर और जमींदारों के विरुद्ध किसानों के विद्रोह से त्रस्त होकर १८६१ में जार-शासन को दास-प्रथा का अन्त करना पड़ा।

दास प्रथा का अन्त कर देने पर भी जमींदारों का अत्याचार बन्द नहीं हुआ। दासों को मुक्त करते-करते उन्होंने बहुत सी उस धरती को छीन लिया जिस पर पहले दास काम करते थे। धरती के इन छीने हुए भागों को किसान ओत्रेसकी (लूट की धरती) कहते थे। अपनी मुक्ति के मूल्य स्वरूप उन्हें जमींदारों को २,००,००,००,००० रूबल भी देने पड़े। दास-युग की अवशिष्ट रूढ़ियों से लगान और अपनी मुक्ति का मूल्य चुकाने से—जो अवसर उनकी सम्पूर्ण आय से भी बढ़ जाता था—किसान परेशान हो गये। वृत्ति की तलाश में वे गाँव छोड़कर शहरों की ओर उन्मुख हुए। मिलों और कारखानों में वे भर्ती होने लगे। श्रमिकों और कृषकों के सिर पर मुंशी, दरोगा, चौकीदार, जमादार, इत्यादि की एक लम्बी फौज थी जो जार, पूँजीपतियों और जमींदारों की रक्षा करती थी। लोकवाद और क्रान्ति के लिए घातक उससे भ्रांतिपूर्ण सिद्धान्तों से जो पहले संघर्ष हुआ, उसी से रूस की मार्क्सवादी सामाजिक जनवादी श्रमिक पार्टी का जन्म हुआ, लोकवाद के सिद्धान्तों का खण्डन किये बिना रूस में श्रमिकों की मार्क्सवादी पार्टी बनाना दुष्कर कार्य था। सन् १८८० के आस-पास प्लेखानोफ और "श्रमिकों का उद्धार" करने वाले दल ने इस पर घातक प्रहार किये। सन् १८९० में लेनिन ने रद्दी-सही कसर पूरी करके उसका काम समाप्त कर दिया। सन् १८८३ में स्थापित "श्रमिकों का उद्धार" करने वाले गुट ने रूस में मार्क्सवाद का प्रचार करने के लिये बहुत काम किया। उसने सामाजिक जनवादी-पार्टी की सैद्धान्तिक नींव तैयार की और श्रमिक आन्दोलन के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रारम्भिक कार्य किया।

औद्योगिक सर्वहारा वर्ग का उदय

जैसा कि हम देखते हैं रूस में ज्यों-ज्यों पूँजीवाद का विकास हुआ त्यों-त्यों औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की संख्या बढ़ती गई। सन् १८८५ के आस-पास श्रमिकों ने संघ-बद्ध होकर लड़ने की नीति अपनाई और हड़तालें करके सामूहिक आन्दोलन चलाना आरम्भ किया। लेकिन मार्क्सवादी दल केवल प्रचार करता रहा। सन् १८९५ में लेनिन ने सेंटपीटर्स बर्ग में "श्रमिकोद्धारक संघ" स्थापित किया, इस संघ ने श्रमिक आन्दोलन और मार्क्सवाद को एक करने के लिए श्रमिकों में सामूहिक-आन्दोलन चलाया और श्रमिकों की हड़तालों का नेतृत्व किया। सेंटपीटर्स बर्ग का "श्रमिकोद्धारक संघ" ही रूस में सर्वहारा-वर्ग की एक क्रांतिकारी पार्टी की स्थापना का आधार था। सेंट-पीटर्स बर्ग के "श्रमिकोद्धारक संघ" की अनुमति पर रूस के सीमा-प्रदेशों और मुख्य-मुख्य औद्योगिक केन्द्रों में मार्क्सवादी संघ बनाये गये। सन् १८९८ में रूस की सामाजिक-जनवादी श्रमिक पार्टी की प्रथम कांग्रेस हुई जिसमें प्रथम बार मार्क्सवादी सामाजिक जनवादी दलों को एक पार्टी में संगठित करने का असफल प्रयत्न किया गया अलग-अलग मार्क्सवादी दलों को एक पार्टी में संगठित करने के लिए लेनिन ने एक पत्र निकालने की योजना बनायी और सारे रूस के लिये क्रांतिकारी मार्क्स-

वादियो का पहला पत्र "इस्क्रा" प्रकाशित किया । श्रमिको की एक स्वतन्त्र राजनीतिक पार्टी बनाने के मुख्य विरोधी उस समय 'अर्थवादी' थे । अर्थवादियो का कहना था कि श्रमिको को केवल आर्थिक लडाई लडनी चाहिये । सन् १८९९ मे प्रोकोपोविच, कुस्कोवा तथा अन्य अर्थवादियो ने जो आगे चलकर वैधानिक जनवाद बन गये थे, एक विज्ञप्ति निकाली जिसमे उन्होने क्रांतिकारी मार्क्सवाद का विरोध किया । इस अवसरवादी विज्ञप्ति के समाचार पाकर लेनिन ने आस-पास के काले पानी पाये हुए मार्क्सवादियो की एक कान्फ्रेंस की । उसम १७ मार्क्सवादी आये और लेनिन के निर्देशानुसार अर्थवादियो की बातो का तीव्र विरोध करते हुए एक वक्तव्य प्रकाशित किया । यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि इस काल मे लेनिन देश के बाहर रहते हुए भी नेतृत्व प्रदान करते रहे ।

लेनिन का अर्थवादियो से युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय अवसरवाद से युद्ध था । उन्होंने 'इस्क्रा' के माध्यम से यह युद्ध प्रारम्भ किया । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि १९०० और १९०६ मे 'इस्क्रा' के प्रकाशन के साथ ही नये युग का प्रारम्भ होता है जिसमे बिखरे हुए गुटो से सगठित होकर वास्तव मे रूसी श्रमिको की एक सामाजिक जनवादी पार्टी बन सकी ।

सन् १९०१ मे १९०४ तक श्रमिक आन्दोलन क्रांतिकारी रूप धारण करता गया वैसे अर्थवादियों को पराजय का सामना करना पडा और 'इस्क्रा' की क्रांतिकारी नीति की विजय होती गई । सामाजिक-जनवादियो के बिखरे हुए दल 'इस्क्रा' द्वारा सयुक्त हुए और दूसरी पार्टी काग्रेस के अधिवेशन के लिये मार्ग प्रशस्त हुआ । सन् १९०३ मे दूसरी पार्टी काग्रेस १७ जुलाई का प्रारम्भ हुई । काग्रेस विदेश मे गुप्त रूप से बुलाई गई । पहले ब्रुसेल्स म बैठक हुई लेकिन बेल्जियम की पुलिस ने प्रतिनिधियो से देश छोडने की प्रार्थना की । इसके पश्चात् काग्रेस लन्दन म हुई । काग्रेस मे २६ सस्थाओं से ४३ प्रतिनिधि एकत्र हुए । काग्रेस का मुख्य कर्तव्य उन सिद्धान्तो और सगठन-नीति के आधार पर, जिनका 'इस्क्रा' ने निर्देश और प्रचार किया था, एक वास्तविक पार्टी का निर्माण करना था । इसी पार्टी काग्रेस मे रूसी सामाजिक जनवादी-पार्टी म 'इस्क्रा'-नीति की पूर्ण विजय के लिय जो सग्राम हुआ, उसमे दो दलो की उत्पत्ति हुई—बोल्शेविक और मेन्शेविक । बाल्शेविको और मेन्शेविको के मतभेद की जड सगठन का प्रश्न था । मेन्शेविक 'अर्थवादियों' के निकट आते थे और उन्होंने पार्टी म उनकी जगह ले ली । कुछ समय के लिये मेन्शेविको का अवसरवाद सगठन के प्रश्नों के रूप मे सामने आता रहा । वे उस तरह की कमठ क्रांतिकारी पार्टी का विरोध करते थे जिस तरह की पार्टी लेनिन बनाना चाहते थे । पार्टी मे फूट डालने के काम उन्होन किये । प्लेखानोफ की सहायता से उन्होने इस्क्र और केन्द्रीय समिति का प्रयोग अपनी लक्ष्य-सिद्धि अर्थात् पार्टी म फूट डालन के लिये किया । मेन्शेविको को इस प्रकार फूट का हामी देखकर बोल्शेविको ने उनकी रोक-थाम करने

के उपाय किये। तीसरी काँग्रेस बुलाने के लिये उन्होंने स्थानीय संस्थाओं में आन्दोलन किया और व्पेर्योद नाम का अपना पत्र निकाला। इस प्रकार हम देखते हैं कि जब पहली रूसी क्रांति के दो दिन रह गये थे और रूस-जापान की लडाई छिड चुकी थी, तब बोल्शेविक और मेन्शेविक दो भिन्न राजनीतिक दलों के रूप में कार्य कर रहे थे।

१९वीं शती के अन्त में साम्राज्यवादी राष्ट्र प्रशान्त-महासागर पर अधिकार जमाने और चीन को वितरित करने के लिये संघर्ष करने लगे। जार के रूस ने भी इस संघर्ष में भाग लिया। सन् १९०० में जापानी, जर्मन, ब्रिटिश और फ्रेंच फौजों की सहायता से जार की सेना ने विदेशी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध चीनी जनता के विद्रोह को बर्बरता से दबा दिया। इसके पहले भी जार की सरकार ने चीनी को आर्थर बन्दरगाह के साथ लिआओतुंग प्रायद्वीप देने के लिये बाध्य किया था। उत्तरी मचूरिया में चीन की पूर्वी रेलवे (चाइनीज ईस्टर्न रेलवे) बनाई गई और उसकी रक्षा के लिये रूसी फौज रक्खी गई। जार का पंजा कोरिया की तरफ भी बढ रहा था। रूस का पूँजीपति वर्ग मचूरिया में एक 'पीला रूस' बनाने की साजिश कर रहा था। सुदूर पूर्व में जारशाही के इस प्रकार से उसकी मुठभेड एक दूसरे एशियाई देश जापान से हो गई जो बहुत तेजी से एक साम्राज्यवादी राष्ट्र बन बैठा था और एशिया महाद्वीप में, विशेष रूप से चीन में, अपना राज्य-विस्तार करने पर तुला हुआ था। जारशाही रूस की तरह जापान भी मचूरिया और कोरिया को अपने अधिकार में कर लेना चाहता था। इंगलैण्ड को सुदूर पूर्व में रूस की बढती हुई शक्ति से भय था, इसलिये वह गुप्त रूप से जापान की सहायता कर रहा था। सन् १९०४ में बिना लडाई की घोषणा किये ही जापान ने अचानक पार्ट आर्थर रूसी किले पर हमला कर दिया और बन्दरगाह में पड़े हुए रूसी जहाजी बेडे को भारी क्षति पहुँचाई। इस प्रकार रूस-जापान युद्ध आरम्भ हुआ।

जार की सरकार ने सोचा इस युद्ध से उसकी राजनीतिक स्थिति सुदृढ हो जायगी और क्रांति रुक जायगी। रूसी फौज अच्छी तरह शस्त्रों से सुसज्जित न थी, इसलिए हार पर हार खाती गई। जापानियों ने पोर्ट आर्थर को घेर लिया और बाद में उसे ले भी लिया। इस युद्ध में जार की ३ लाख सेना में १ लाख २० हजार सैनिक मृत्यु को प्राप्त हुए। सुशीमा के जलडमरूमध्य में पोर्ट आर्थर की सहायता के लिये बाल्टिक समुद्र से भेजा गया जार का जहाजी बेडा नष्ट कर दिया गया। यह पराजय घातक थी। सरकार को जापान से अपमानजनक संधि कर लेनी पड़ी। जापान ने कोरिया पर अधिकार कर लिया और रूस से पोर्ट आर्थर तथा आधा साखालिन का द्वीप ले लिया।

प्रथम असफल क्रान्ति

सन् १९०५ में जो पहली असफल क्रांति हुई उसके मूल में अग्रलिखित कारण गतिशील थे :—

(१) जार के सैनिकों की पराजय ने जनता की आँखें खोल दीं और जारशाही के खोखलेपन का पता लग गया।

(२) जार-शासन के लिए जनता की घृणा दिन व दिन बढ़ती गई।

(३) युद्ध से जार क्रांति की रोक-थाम करना चाहता था परन्तु हुआ उसका उल्टा ही। रूस-जापान युद्ध से क्रांति की आग और जल्दी भड़क उठी।

(४) जार के रूस में पूँजीवादी शासन के अंकुश पर जारशाही का बोझ रखा था। श्रमिकों को पूँजीवादी शोषण का शिकार ही नहीं होना पड़ता था वरन् सम्पूर्ण जनता सभी प्रकार के अधिकारों से भी वंचित थी। इसलिये राजनीतिक रूप से सचेत मजदूर, गाँव और शहर के सभी जनवादी लोग क्रांतिकारी आन्दोलन को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करने लगे।

(५) कृषकों के पास भूमि की कमी थी। दास-प्रथा अभी भी तरह-तरह के भेष बदलकर उनमें प्रचलित थी।

(६) जारशाही रूस में किसानों के अलावा अन्य जातियाँ दो अंकुशों के नीचे छटपटा रही थीं—एक तो अपने ही पूँजीवादियों और जमींदारों का अंकुश था और दूसरा रूसी पूँजीवादियों और जमींदारों का।

(७) सन् १९००-१९०३ के आर्थिक संकटों से श्रमिकों तथा कृषकों के रूप में कोटि-कोटि जनता के जो कष्ट बढ़े वे युद्ध से भी अधिक असहनीय थे।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि क्रांति के लिये यथेष्ट कारण थे। सन् १९०४ में बाकू की बोल्शेविक कमेटी के नेतृत्व में वहाँ के मजदूरों की एक भारी सुसंगठित हड़ताल हुई। हड़ताल में तेल के मजदूरों की विजय हुई और रूसी-श्रमिक आन्दोलन के इतिहास में प्रथम बार श्रमिकों और नियोजकों में यहाँ एक सामूहिक समझौता हुआ। बाकू हड़ताल से काकेशस प्रदेश और रूस के अन्य भागों में क्रांति की लहर फैल गई। इस अवसर पर स्तालिन ने कहा था—"बाकू हड़ताल एक संकेत थी जिससे जनवरी और फरवरी में सारे रूस में जोरदार हड़तालें आरम्भ हो गयी।" ३ जनवरी १९०५ को सेंटपीटर्सबर्ग में क्रांति की आग भड़क उठी। वहाँ की सबसे बड़ी मिल 'पुतिलोफ' (अब किरोफ) में हड़ताल शुरू हो गई। इस मिल की हड़ताल के पहले १९०४ में पुलिस ने अपने एक गुप्तचर, पादरी गैपन, से श्रमिकों की एक सभा बनवाली जिसका नाम रखा गया था "रूस के मिल मजदूरों की सभा।" इस सभा की शाखाएँ सेंटपीटर्सबर्ग के सभी जिलों में थीं, हड़ताल शुरू होने पर पादरी गैपन ने अपनी सभा के आगे एक विश्वासघाती योजना रखी। सभी श्रमिक ६ जनवरी को इकट्ठा हों, और जार की तस्वीरें और धार्मिक झंडे लेकर शांतिपूर्ण जुलूस बनाकर जार के शिशिर प्रासाद के सामने पहुँचें और वहाँ अपनी माँगों का प्रतिवेदन प्रस्तुत करें! जार जनता के सामने आयेगा, उनकी बातें सुनेगा और उनकी माँगें पूरी

करेगा। गैपन ने जार की गुप्तचर पुलिस, ओखराना को यह अवसर दिया कि श्रमिक-आन्दोलन श्रमिकों के रक्त में डुबो दिया जाय।

श्रमिकों की सभाओं में माँगों का आवेदन-पत्र पढा गया जहाँ संशोधन प्रस्तुत किये गये। इन सभाओं में बोल्शेविकों ने श्रमिकों को समझाया कि जार के पास आवेदन देने से स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती, स्वतन्त्रता मिलेगी सशस्त्र विद्रोह से। बोल्शेविकों ने श्रमिकों को चेतावनी दी कि उन पर गोली चलाई जायगी परन्तु वे जुलूस को शिशिर-प्रासाद की ओर जाने से न रोक सके। ९ जनवरी १९०५ को प्रातःकाल श्रमिक जार के शिशिर-प्रासाद की ओर चल दिये। वे महिलाओं, बच्चों और बूढों के साथ पूरे परिवारों के साथ आये। जार के चित्र और धार्मिक झंडे लिये वे धार्मिक गीत गा रहे थे। इन निहत्थे श्रमिकों की संख्या १,४०,००० के लगभग थी। जार निकोलस द्वितीय ने बजाय श्रमिकों की माँगों पर उदारता से विचार करने के उनके साथ दुर्व्यवहार किया और सेना को निहत्थे श्रमिकों पर गोली चलाने का आदेश दे दिया। उस दिन एक हजार से अधिक श्रमिक गोलियों के शिकार हो मृत्यु को प्राप्त हुए और दो हजार श्रमिक घायल हुए। सेंटपीटर्सबर्ग के मार्ग श्रमिकों के रक्त से लाल हो गये।

९ जनवरी १९०५ ई० का नाम 'खूनी इतवार' पड गया। श्रमिकों ने यह अनुभव किया कि बिना लडाई के वे अपने अधिकार नहीं प्राप्त कर सकते। श्रमिक कहते थे—"जार को जो देना था उसने दे दिया है, अब हमारी बारी है।" जनवरी में हडतालियों की संख्या बढते-बढते चालीस हजार तक पहुँच गई, जितने श्रमिकों ने दस वर्षों में हडताल न की उतने एक महीने में कारखाने छोडकर बाहर निकल आये। श्रमिक-आन्दोलन इस रूप में पिछली सभी सीमाएँ तोडकर बहुत आगे निकल गया। इस प्रकार रूस में क्रांति का आरम्भ हो गया।

९ जनवरी के बाद श्रमिकों के संघर्ष ने और अधिक उग्र रूप धारण किया और उस पर राजनीति का रूप-रंग चढने लगा। सेंटपीटर्सबर्ग, मास्को, वार्सा, रीगा और बाकू जैसे बडे-बडे औद्योगिक केन्द्रों और नगरों में विशेष रूप से संगठित और दृढ हडतालें हुईं। मई दिवस के समय भी कई शहरों में श्रमिकों तथा पुलिस में मुठभेड हुई। ओदेसा, वार्सा, रीगा, लोटस तथा दूसरे शहरों में इस तरह की मुठभेडें बढती गईं। पोलैण्ड के विशाल औद्योगिक केन्द्र लोत्स में लडाई ने और भी जोर पकडा। २२ जून से २४ जून (१९०५) तक तीन दिन श्रमिक जार की सेना का सामना करते रहे। यहाँ हडताल ने सशस्त्र विद्रोह का रूप धारण किया। रूस के भाग्य विधायक लेनिन का कहना था, कि रूस में श्रमिकों का यह पहला सशस्त्र विद्रोह था। उस समय की मुख्य हडताल ईवानोवो-वोज़्नेसेन्स्के के श्रमिकों की हडताल थी। मई के अन्त से अगस्त १९०५ के आरम्भ तक हडताल लगभग ढाई मास तक जारी रही। लगभग ७०,००० श्रमिकों ने इस हडताल में भाग लिया। श्रमिकों के साहस और

धैर्य, वीरता, एकता का परिचय इस हड़ताल में हुआ। हड़ताल में इवानोवो-वोजनेसेंस्क के श्रमिकों ने अपनी प्रतिनिधियों की एक समिति बनाई जो वास्तव में श्रमिकों के प्रतिनिधियों का पहला सोवियत था जो रूस में बना। इस प्रकार श्रमिकों के आन्दोलन से देश मस्त हो उठा।

आन्दोलन शहरों से ग्रामों की ओर बढ़ा। किसान आन्दोलन मध्य-रूस, वोल्गा प्रदेश और कॉकेशस इलाका में विशेषकर जॉर्जिया में फैलता ही गया। इसे भी जार सरकार ने सैनिक बल से रोकना चाहा। त्वेर, सारातोफ, पोल्तावा, चेर्नीगोफ, एकातेरी, नौस्लाफ, तिफ्लिस और दूसरे प्रान्तों की सामाजिक-जनवादी समितियों ने किसानों के नाम अपीलें निकालीं। सन् १९०५ की गर्मियों में खेतिहार श्रमिकों ने कई स्थानों पर हड़तालें कीं। इस आन्दोलन का क्षेत्र केवल ८५ जिलों या जारशाही रूस के योरोपीय प्रान्तों का लगभग १/६ भाग में सीमित था।

श्रमिकों और किसानों के आन्दोलन का प्रभाव तथा रूस-जापान युद्ध में हार का परिणाम सेनिकों पर दृष्टिगोचर हुआ। अधिक स्पष्टता से यदि कहा जाय तो जार-शाही की मूल भित्ति सैनिकता भी डगमगाने लगी। फिर क्या था जून १९०५ में काले सागर (Black Sea) के जहाजी बेड़े के एक युद्धपोत "पोतेम्किन" ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। उस समय जहाज ओदेसा के पास था जहाँ श्रमिकों की हड़ताल चालू थी। विद्रोहियों ने चुन चुन कर अधिकारियों को मौत के घाट उतार जहाज को ओदेसा की ओर उन्मुख किया। पोतेम्किन के विरुद्ध जार-सरकार ने कई लड़ाई के जहाज भेजे परन्तु इन जहाजों के मल्लाहों ने अपने विद्रोही साथियों पर गोली चलाने से इंकार किया। कई दिन क्रांति का लाल झंडा जहाज के मस्तूल पर फहराता रहा। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि सन् १९१७ की क्रांति की तरह क्रांति का नेतृत्व बोल्शेविक पार्टी के हाथ में न था। कोयला और खाद्य की कमी से क्रान्तिकारी युद्धपोत को रूमानियन समुद्र तट में लगकर अधिकारियों के हाथ आत्म-समर्पण करना पड़ा। इस प्रकार यह मल्लाहों का विद्रोह असफल रहा। परन्तु पोतेम्किन का विद्रोह स्थल और जल-सेना में सामूहिक क्रान्तिकारी युद्ध का प्रथम संकेत था।

एक ओर जार-सरकार श्रमिक किसान आन्दोलन का बर्बरतापूर्वक दमन करती रही वहाँ दूसरी ओर उसने कूटनीति का सहारा लेना आरम्भ किया। एक ओर उसने अपने गुप्तचरों की सहायता से अलमस्थक जातियों को एक दूसरे के विरुद्ध उभारा, दूसरी ओर उसने राज्य परिषद् (स्टेट ड्यूमा) के रूप में एक 'प्रतिनिधि संस्था' बुलाने का वचन दिया और मन्त्री बुलीगिन को इस तरह की ड्यूमा के लिये योजना बनाने की आज्ञा दी। सन् १९०५ की शरद ऋतु तक क्रान्ति की लहर सारे देश में फैल गई और अब उसका वेग अत्यन्त प्रखर हो उठा था। १९ सितम्बर को मास्को में प्रेस कर्मचारियों की हड़ताल हुई। अक्टूबर के आरम्भ में मास्को कजान रेलवे में हड़ताल शुरू हुई। दो दिन में ही मास्को रेलवे जंक्शन के सभी कर्मचारी उसमें शामिल

हो गये और शीघ्र ही सारे देश के रेलवे कर्मचारी हड़ताल में शामिल हो गये। तार और डाक घरों का काम ठप्प हो गया। रूस के अनेक शहरों में श्रमिकों ने बड़ी-बड़ी सभाएँ कीं। हड़ताल कारखाना से मिलों, मिलों से शहरों और शहरों से प्रान्तों में फैलती गई। श्रमिकों के साथ लघु कर्मचारी तथा विद्यार्थी, वकील, इन्जीनियर, डाक्टर आदि बुद्धिजीवी वर्ग के लोग शामिल हो गये। अक्टूबर की यह राजनीतिक हड़ताल एक अखिल रूसी हड़ताल बन गई। वह सारे देश में दूर-दूर के जिलों तक में फैल गई और लगभग सभी श्रमिकों ने यहाँ तक पिछड़े हुए श्रमिकों ने भी उसमें भाग लिया। इस राजनीतिक हड़ताल में भाग लेने वाले श्रमिकों की संख्या दस लाख थी। देश के सम्पूर्ण जीवन की गति बन्द हो गई। सरकार पंगु बनकर रह गई। १७ अक्टूबर १९०५ को जार ने घोषणा में जनता को वचन दिया कि उसे 'नागरिक स्वाधीनता के हर आधार अर्थात् व्यक्ति की वास्तविक स्वाधीनता तथा मिलने, बोलने, उपासना करने और सभाएँ करने की स्वतंत्रता' दी जायगी। धारा सभा बुलाने और जनता के सभी वर्गों को मताधिकार देने का वचन दिया गया। इस प्रकार बुलीगीन की अधिकारहीन विचार-सभा (ड्यूमा) क्रांति की लपटों में स्वाहा हो गई। फिर भी १७ अक्टूबर की घोषणा जनता की आँखों में केवल धूल फेंकने की बात थी। लोग आशा लगाये बैठे थे कि राजनीतिक बंदियों की आम रिहाई होगी लेकिन २१ अक्टूबर को उनमें से बहुत कम लोग छोड़े गये। जार ने क्रान्ति को दबाने के लिये पुलिस के इशारे पर चलने वाली गुण्डा सस्था बनवा दी जिनका नाम रखा गया "रूसी जनता का संघ" और "फरिश्ते माइकल का संघ"। जनता इन संघों को "यमराज की सभा" (Black Lands) कहती थी।

इस क्रान्ति के फलस्वरूप देश में एक प्रकार की प्रजातन्त्रात्मक सरकार की स्थापना हुई। विदेश नीति और प्रतिरक्षा के विषय ड्यूमा के अधिकार के बाहर थे। इसके साथ ही सरकार ड्यूमा के प्रति उत्तरदायी नहीं थी और जार को किसी भी विषय में राज्याज्ञा प्रचारित करने का अधिकार था। मताधिकार विस्तृत किया गया लेकिन वह भी एक ढकोसला था। भूमिधारियों के प्रति २,००० पर एक प्रतिनिधि, व्यापारियों, उद्योगपतियों आदि के प्रति ७,००० पर एक प्रतिनिधि, किसानों के प्रति ३०,००० पर एक प्रतिनिधि व श्रमिकों के प्रति ९०,००० पर एक प्रतिनिधि थे। यहाँ यह भी स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि सरकार इन वैधानिक सुधारों को भी ईमानदारी से लागू नहीं कर रही थी इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पहली रूसी क्रान्ति का अन्त पराजय में हुआ।

प्रथम क्रान्ति की विफलता के कारण

(१) क्रांति में जारशाही के विरुद्ध किसानों और श्रमिकों में अभी कोई स्थायी सहयोग स्थापित नहीं हो सका था। लेनिन ने एक स्थान पर लिखा है—'किसानों

का विद्रोह बहुत बिखरा हुआ, बहुत असंगठित और काफी कमजोर था। क्रान्ति की पराजय का यह एक मुख्य कारण था।"

(२) जारशाही का ध्वंस करने के लिए बहुत से किसानों ने श्रमिकों से सहयोग करने में जो आना-कानी की, उसका सेना पर भी प्रभाव पड़ा क्योंकि उसमें सैनिक वेश में किसानों के ही लड़के थे। अधिकांश सैनिकों ने अब भी श्रमिकों के विद्रोह और हड़तालों का दमन करने में जार की सहायता की।

(३) श्रमिकों का विद्रोह भी यथेष्ठ रूप से सुसबद्ध न था। श्रमिक वर्ग के अग्रिम विभाग ने १९०५ में वीरतापूर्ण क्रांतिकारी संघर्ष आरम्भ कर दिया था। उन प्रान्तों में जहाँ उद्योग-धन्धों का विकास कम हुआ था और गाँवों में रहने वाले श्रमिक पिछड़े हुए थे वे लड़ाई में देर से शामिल हुए। उन्होंने क्रान्तिकारी संघर्ष में १९०६ में विशेष सरगर्मी दिखाई लेकिन तब तक मजदूर वर्ग का अग्रदल यथेष्ट रूप से क्षीण हो चुका था।

(३) श्रमिक वर्ग क्रान्ति की प्रमुख और अग्रगामी शक्ति था लेकिन उस वर्ग की पार्टी में आवश्यक एकता और दृढता का अभाव था। रूसी सामाजिक जनवादी पार्टी, जो श्रमिक वर्ग की पार्टी थी, बोल्शेविक और मेन्शेविक दलों में बँटी हुई थी।

(४) १९०५ की क्रान्ति को दबाने में जारशाही को पश्चिमी योरोप के साम्राज्यवादियों से भी सहायता मिली। विदेशी पूँजीपतियों ने रूस में बड़ी-बड़ी रकमें फँसा रखी थी जिनसे उन्हें भारी मुनाफा होता था। अतः वे क्रान्ति के विरोधी हो गये।

(५) सितम्बर १९०५ में जापान से सन्धि कर लेने से भी जार के हाथ काफी मजबूत हो गये। युद्ध में पराजय और क्रान्ति के उद्धत वेग के कारण जार ने सन्धि करने में जल्दी की। युद्ध में पराजय से उसकी शक्ति क्षीण हुई थी, सन्धि करने से उसे नया बल मिला।

पहली सभा को राज्य सरकार ने १९०६ की गर्मियों में भंग कर दिया था। ३ जून १९०७ को जार सरकार ने दूसरी राज सभा को भी भंग कर दिया। इसे इतिहास में साधारणतः ३ जून का "राजकीय बलात्कार" कहा जाता है। तीसरी सभा के निर्वाचन के लिये जार ने एक नया कानून बनाया। इस तरह जार ने १७ अक्टूबर १९०५ के अपने ही घोषणापत्र का उल्लंघन किया। दूसरी सभा के प्रतिनिधियों पर अभियुक्त रूप से अदालतों में मुकद्दमे चले। श्रमिक प्रतिनिधियों को काले पानी और कड़ी मेहनत की सजाएँ दी गईं। नया कानून ऐसा बनाया गया कि सभा में जमींदारों, व्यापारियों और मिल मालिकों के प्रतिनिधि अधिक संख्या में हो जायँ। तीसरी सभा में यमदूत सभाओं और वैधानिक जनवादी पार्टी के प्रतिनिधियों का प्रभुत्व था। कुल मिलाकर सभा में ४४२ प्रतिनिधि थे, इनमें १७१ यमदूत सभा वाले

थे, ११३ अक्टूबरवादी या वैसे ही गुटो के, १०१ वैधानिक जनवादी पार्टी या वैसे ही दलो के, १३ त्रुयोविकी (या कथित लोकवादी) और १८ सामाजिक जनवादी थे।

सन् १९१२-१४ में क्रान्ति के नये उठान के समय बोल्शेविक पार्टी श्रमिक आन्दोलन के सिरे पर रही। पार्टी ने योग्यता से कानूनी और गैरकानूनी कार्यों का मेल किया, विसर्जनवादियों और उनके साथी त्रातस्की पंथियों और बहिष्कारवादियों के विरोध को तोड़कर पार्टी ने सब आन्दोलन के सभी रूपों में अपना नेतृत्व स्थापित किया। क्रांतिकारी प्रजा के लिये सभा का भरपूर उपयोग करके और आम मजदूरों के लिये एक पत्र 'प्रावदा' का प्रकाशन आरम्भ करके पार्टी ने प्रावदावादी क्रांतिकारी श्रमिकों की एक नई पीढ़ी तैयार की। साम्राज्यवादी युद्ध में ये श्रमिक अन्तर्राष्ट्रीयता और सर्वहारा क्रांति के हामी रहे। आगे चलकर अक्टूबर १९१७ की क्रांति में वही श्रमिक बोल्शेविक पार्टी की रीढ़ बने।

प्रथम विश्व युद्ध तथा द्वितीय क्रान्ति (१९१४-१९१६)

१४ जुलाई (नवीन शैली २७) १९१४ को जार सरकार ने सार्वजनिक सैन्य सगठन की आज्ञा निकाली। १९ जुलाई को जर्मनी ने रूस पर युद्ध की घोषणा की। रूस लड़ाई के मैदान में उतर आया। लड़ाई को चलते तीन साल हो गये। लाखों आदमी मारे गये या घावों से और युद्धकालीन परिस्थितियों से फैलने वाली महामारियों से नष्ट हो गये। इसी समय रूस में दूसरी क्रान्ति की तैयारी होने लगी।

क्रान्ति के कारण

(१) युद्ध से रूस का आर्थिक जीवन खोखला हो रहा था। लगभग १ करोड़ ४० लाख हट्टे-कट्टे आदमी अपनी रोजी से हटाकर सेना में भर्ती कर लिये गये थे। मिल और कारखाने ठप्प हो रहे थे। श्रमिक न मिलने से कृषि उत्पादन घट गया था।

(२) जार की सेना हार पर हार खाती गई। जर्मन तोपें जार की सेना पर अग्नि वर्षा करती थी लेकिन जार की सेना में तोपों, गोलों और राइफलों तक का अभाव था। जार का युद्ध सचिव सुखोम्लीनोफ विश्वासघाती था और जर्मन गुप्तचरों से मिला हुआ था। जार के कुछ मन्त्री और जनरल गुप्त रूप से जर्मन सेना की विजय में सहायता दे रहे थे। जारीना के साथ-साथ जिनका जर्मनों से सम्बन्ध था ये लोग भी जर्मनों को सैनिक भेद बता देते थे।

(३) रूस के साम्राज्यवादी पूँजीपतियों में भी असन्तोष फैलने लगा। वे इस बात से जल उठे कि 'रासपुटीन' जैसे गुण्डे (जारीना का धर्म गुरु, जिसके इशारों पर जारीना नाचती थी) जो जर्मन से अलग सन्धि करने की कोशिश कर रहे थे, दरबार में सिर बने हुए थे। वे सम्राट जार निकोलस द्वितीय के स्थान पर उसके भाई माइकेल रोमानोफ को गद्दी पर बिठाना चाहते थे। इसमें ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारों ने इन्हीं पूँजीपतियों की मदद की।

(४) आर्थिक विशृंखलता बढ़ती गई। जनवरी और फरवरी १९१७ में कच्चे माल, ईंधन और खाद्य-सामग्री को पहुँचाना इतना कठिन हो गया कि सारा काम अस्त-व्यस्त हो गया। पेत्रोग्राद और मास्को को खाना पहुँचना प्रायः बंद हो गया। एक के बाद एक कारखाना बंद होने लगा, बेकारी बढ़ने लगी, उत्पादन गिरने लगा।

फरवरी क्रान्ति

जारशाही का ध्वंस सन् १९१७ की ६ फरवरी की हड़तालों के श्रीगणेश से हुआ। पेत्रोग्राद, मास्को, बाकू, निज्जी-नोवगोरोद में प्रदर्शन किये। मेन्शेविक और सामाजिक क्रांतिकारी आन्दोलन को उस मार्ग से ले जाना चाहते थे जो उदार-पंथी पूँजीपतियों के लिये हितकर था। उन्होंने प्रस्ताव किया कि १४ फरवरी को दूमा के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर वहाँ एक श्रमिकों का जुलूस चले। लेकिन आम मजदूरों ने बोल्शेविकों का अनुसरण किया और दूमा न जाकर एक प्रदर्शन में चले गये। १८ फरवरी को पेत्रोग्राद में पुतिलोफ के कारखाने में हड़ताल हो गई। २२ फरवरी को अधिकांश बड़े कारखानों के श्रमिकों ने हड़ताल कर दी। २३ फरवरी को अन्तर्राष्ट्रीय महिला-दिवस के अवसर पर महिला-मजदूरों ने प्रदर्शन किया। २४ फरवरी को प्रदर्शन पहले से और जोर-शोर से आरम्भ हो गया। २५ फरवरी (१० मार्च नवीन शैली) को पेत्रोग्राद का समस्त श्रमिक-वर्ग क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित हो गया। २६ फरवरी को राजनीतिक हड़ताल और प्रदर्शन पर विद्रोह का रंग चढ़ने लगा। श्रमिकों ने सादी और हथियार बंद पुलिस से शस्त्र छीन लिये और उन्हें स्वयं धारण किया। पेत्रोग्राद सैनिक क्षेत्र के सेनापति जनरल खाबालोफ ने यह सूचना निकाली कि यदि श्रमिक २८ फरवरी (१३ मार्च) तक काम पर नहीं लौटते तो वे मोर्चे पर भेज दिये जायेंगे। २५ फरवरी को जार ने जनरल खाबालोफ को सूचित किया—"मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि कल तक राजधानी के झगड़े जरूर शान्त हो जायें।"

लेकिन अब असन्तोष इस सीमा तक बढ़ चुका था कि उसे शान्त करना असम्भव था। २६ फरवरी (११ मार्च) को पावलोवस्की पलटन की रिजर्व टुकड़ी की चौथी कम्पनी ने गोली चलायी लेकिन श्रमिकों पर नहीं वरन् घुड़सवार पुलिस के जत्थों पर जो मजदूरों से भिड़े हुए थे। सैनिकों को मिलाने के लिये पूरी ताकत से और डटकर काम किया गया विशेषकर मजदूर औरतों ने इस काम में भाग लिया, वे सीधे सैनिकों के पास गईं और उनसे भाईचारा स्थापित किया। उनसे कहा कि जुल्मी जारशाही का नाश करने में जनता की मदद करो। २७ फरवरी (१२ मार्च) को पेत्रोग्राद में सैनिकों ने श्रमिकों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। वे विद्रोही जनता के साथ होने लगे। २७ फरवरी के सवेरे विद्रोह में शामिल होने वाले सैनिकों की संख्या १०,००० से अधिक न थी लेकिन सन्ध्या तक यह संख्या बढ़कर ६०,००० से ऊपर पहुँच गई।

विद्रोही श्रमिक और सैनिक जार के मंत्रियों और सेनापतियों को पकड़ने लगे और क्रांतिकारियों को जेल से बाहर निकालने लगे। मुक्त होने वाले राजनीतिक बन्दी क्रांतिकारी-संग्राम में मिल गये। पैत्रोग्राद में क्रांति की विजय का समाचार जब दूसरे नगरों और मोर्चों पर पहुँचा तो हर जगह श्रमिक और सैनिक जार के अफसरों को हटाने लगे। इस प्रकार फरवरी की पूँजीवादी—जनवादी क्रांति की विजय हुई। क्रांति की विजय इसलिये हुई कि उसका अग्रदल श्रमिक वर्ग था जो सिपाहियों की वर्दी पहनने वाले उन लाखों किसानों के आन्दोलन के सिर पर था जो "शान्ति, भोजन और स्वाधीनता" की माँग कर रहे थे। सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व के कारण ही क्रांति सफल हुई।

क्रांति के प्रारम्भ में सोवियतों का उदय हुआ। विजयी क्रांति श्रमिक और सैनिकों के प्रतिनिधियों पर निर्भर थी। विद्रोही सिपाहियों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के सोवियत बनाये। १९१७ में बोल्शेविकों की प्रेरणा से श्रमिक प्रतिनिधियों के साथ सैनिक प्रतिनिधियों के भी सोवियत बन गये। जहाँ एक ओर बोल्शेविक सड़कों पर जनता की लड़ाई का नेतृत्व कर रहे थे तो दूसरी ओर अवसरवादी पार्टियाँ, मेन्शेविक और सामाजिक-क्रांतिकारी लोग सोवियतों में जगह लेकर अपना बहुमत बनाने में लगे थे। इसमें आंशिक सफलता की सुविधा इस बात में भी मिली कि बोल्शेविक नेताओं में अधिकांश जेल विदेश-निष्कासन की सजाएँ काट रहे थे। लेनिन विदेश में थे और स्तालिन साइबेरिया में कालापानी की सजा पा रहे थे। २७ फरवरी (१२ मार्च) १९१७ को चौथी राजसभा के उदारपंथी सदस्यों ने सामाजिक-क्रांतिकारी और मेन्शेविक नेताओं में समझौता करके राजसभा की एक अस्थायी समिति बनादी। इसका नेता रोदजियान्को नामक एक जमींदार और राज सत्तावादी था। अस्थायी सरकार में वैधानिक जनवादियों का नेता मिल्युकोफ था, अक्टूबरवादियों का नेता गुच्कोफ था। जनवाद के प्रतिनिधि के रूप में सामाजिक क्रांतिकारी केरेन्सकी था। परन्तु पूँजीवाद सरकार के साथ एक दूसरी शक्ति भी थी—श्रमिक और सैनिक प्रतिनिधियों के सोवियत। श्रमिकों और सैनिकों के प्रतिनिधियों का सोवियत जार के शासन-तन्त्र के विरुद्ध श्रमिकों और किसानों का सहयोग केन्द्र था। फलतः शासनसत्ता द्विधात्मक हो गई।

लेनिन ने लिखा था 'इस दशा में निम्न पूँजीवाद की एक विशाल लहर ने हर वस्तु को ढाप लिया और श्रेणी सजग सर्वहारा को दमन संख्या द्वारा ही नहीं विचार-दृष्टि से भी मोह लिया है अर्थात् मजदूरों के एक बड़े भारी समुदाय में इसमें निम्न-पूँजीवादियों के राजनीतिक दृष्टिकोण को बिठा दिया है और उसे जमा दिया है।" बोल्शेविक पार्टी के सामने अब यह कार्य था कि धीरज से काम लेकर जनता को समझायें कि अस्थायी सरकार साम्राज्यवादी है, सामाजिक क्रांतिकारी और

मेन्शेविक दगाबाज है और जब तक अस्थायी सरकार के बदले सोवियतों की सरकारें नहीं बनतीं, तब तक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती है।

अक्तूबर की समाजवादी क्रान्ति की विजय

फरवरी क्रान्ति के पाँच दिन बाद पैत्रोग्राद में 'प्रावदा' छपने लगा और कुछ दिन बाद ही मास्को में 'सोशियल डेमोक्रेट' *(सामाजिक जनवादी)* निकलने लगा। पार्टी उन लोगों का नेतृत्व अपने हाथ में ले रही थी जिनका उदार-पंथी पूँजीवादियों तथा मेन्शेविकों और सामाजिक क्रान्तिकारियों में विश्वास कम हो रहा था। घटना-क्रम से और अस्थायी सरकार के कार्यों व बोल्शेविक नीति से सही होने के नित नये प्रमाण निकलने लगे। दिन पर दिन यह स्पष्ट होने लगा कि अस्थायी सरकार जनता के पक्ष में न होकर उसके विरोध में है, वह शान्ति के बदले युद्ध के पक्ष में है और वह जनता को शान्ति, भूमि और अन्न देने में अनिच्छुक और असमर्थ है। बोल्शेविकों को अपने आन्दोलन-कार्य के लिए जमीन तैयार मिली। एक ओर तो मजदूर और सैनिक जार-सरकार का ध्वंस कर रहे थे और सम्राट-प्रथा को बनाये रखना चाहते थे। २ मार्च १९१७ को उसने गुच्कोफ और शुल्गिन को जार से मिलने का गुप्त रूप से निर्देश किया। पूँजीपति, जार निकोलस, रोमानोव के बदले उसके भाई माइकेल के हाथों में शासन-सूत्र देना चाहते थे। लेकिन जब रेलवे कर्मचारियों की एक सभा में गुच्कोफ ने अपने व्याख्यान के अन्त में "सम्राट माइकेल की जय" बोली तो लोगों ने उसके पकड़ने और तलाशी लेने की माँग की!

अस्थायी सरकार का पतन

अस्थायी सरकार के पतन के निम्नलिखित कारण थे :

(१) इस सरकार की यह इच्छा न थी कि वह किसानों की इस माँग को पूरा करे कि उन्हें भूमि लौटा दी जाय।

(२) न वे श्रमिकों के लिये अन्न का प्रबन्ध कर सकते थे क्योंकि ऐसा करने में उन्हें *अनाज के बड़े-बड़े व्यापारियों के हितों को कुचलना* पड़ता और हर उपाय से जमींदारों और धनी किसानों की खत्तियों से अनाज निकालना पड़ता।

(३) न यह सरकार शान्ति की स्थापना कर सकती थी।

(४) वह ब्रिटिश और फ्रान्सीसी पूँजीपतियों में फँसी थी, इसलिये उसकी जरा-सी मजाल न थी कि युद्ध बन्द किया जाय।

(५) क्रान्ति से लाभ उठाकर, साम्राज्यवादी युद्ध में रूस और भी जोर-शोर से हिस्सा ले तथा कुस्तुन्तुनिया, दर्रे दानियाल के जल-डमरूमध्य और गेलीशिया पर अधिकार करने की साम्राज्यवादी योजना सफल हो।

इस रूप में स्पष्ट था कि अस्थायी सरकार की नीति में जनता के विश्वास का शीघ्र ही अन्त हो जायगा। फरवरी से अक्तूबर १९१७ तक के आठ महीने में बोल्शेविक पार्टी ने यह कठिन काम पूरा किया कि मजदूर-वर्ग के बहु-भाग को

अपनी ओर कर लिया, सोवियतों मे अपना बहुमत स्थापित कर लिया और समाजवादी क्रांति के लिए लाखों किसानों का समर्थन प्राप्त किया। निम्न पूंजीवादी पार्टियां (सामाजिक क्रान्तिकारी मन्शेविकों और अराजकतावादियों) की नीति का धीरे धीरे पर्दाफाश करके और यह दिखाकर कि वह श्रमिक जनता के हितों के प्रतिकूल हैं, उसने जनता को इन पार्टियों के प्रभाव से मुक्त किया। जनता को अक्टूबर क्रांति के लिये तैयार करते हुए बोल्शेविक पार्टी ने मोर्चे पर और पीछे विस्तृत राजनीतिक कार्य किया।

पार्टी के इतिहास में इस समय निर्णायक महत्व की घटनायें थी, लेनिन का प्रवास से लौटना, उनका अप्रैल प्रस्ताव अप्रैल पार्टी कान्फ्रेंस और छठी पार्टी कांग्रेस। १७ अक्टूबर को गुप्त रूप से लेनिन फिनलैण्ड से पेत्रोग्राद आये। १० अक्टूबर १९१७ को पार्टी की केन्द्रीय समिति की ऐतिहासिक बैठक हुई जिसमें शीघ्र ही सशस्त्र विद्रोह करने का निश्चय किया। उससे पूर्व ३ अप्रैल १९१७ को लम्बे प्रवास के बाद लेनिन रूस में लौट आये। पार्टी और क्रांति के लिये लेनिन का वापस आना भारी महत्व रखता था।

केरेन्स्की सरकार इस प्रश्न पर विचार करने लगी कि सरकार को पेत्रोग्राद से मास्को उठा ले चला जाय। १६ अक्टूबर को पार्टी की केन्द्रीय समिति का एक विस्तृत अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन ने विद्रोह संचालन करने के लिये कॉ० स्तालिन के नेतृत्व में एक पार्टी केन्द्र निर्वाचित किया। पेत्रोग्राद सोवियत की क्रांतिकारी सैनिक समिति की रीढ़ यह पार्टी केन्द्र था और समूचे विद्रोह का प्रत्यक्ष निर्देश किया।

केरेन्स्की, कामनेफ जिनोवियेफ त्रात्स्कियान्क के सामने पार्टी की केन्द्रीय समिति के सशस्त्र विद्रोह सम्बन्धी निर्णय का भेद खोल दिया। २१ अक्टूबर को वाल्शेविकों ने सभी क्रांतिकारी फौजी दस्तों में क्रांतिकारी सैनिक समितियों के उन प्रतिनिधियों को भेजा। विद्रोह की तिथि तक बचे हुए समय में फौजी दस्तों और मिलों तथा कारखानों में जोरदार तैयारी की गई। जंगी जहाज अरोरा और जारिया स्वोबोदी को स्पष्ट निर्देश भेजा गया। २४ अक्टूबर (६ नवम्बर) के सवेरे केरेन्स्की ने अपना आक्रमण प्रारम्भ किया बोल्शेविक पार्टी के मुख-पत्र राबोचीपुत' (मजदूर पथ) को बन्द करने की आज्ञा दी गई। उसके सपादन-गृह और बोल्शेविकों के छापेखाने की ओर हथियार-बन्द गाड़ियाँ भेजी गई। परन्तु १० बजे तक कॉ० स्तालिन के निर्देश से लाल रक्षकों और क्रांतिकारी सिपाहियों ने हथियार बन्द गाड़ियों को पीछे ढकेल दिया। छापेखाने और राबोचीपुत के सम्पादन गृह के चारों ओर लाल रक्षकों की संख्या बढ़ा दी गई। ११ बजे के लगभग राबोचीपुत अस्थाई सरकार को ध्वंस करने के आह्वान के साथ प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही विद्रोह के पार्टी केन्द्र के निर्देश से क्रांतिकारी सिपाहियों और लाल रक्षकों के जत्थे स्मोलना की ओर दौड़

दिये गये। विद्रोह प्रारम्भ हो गया। २४ अक्टूबर की रात्रि को लेनिन स्मोलनी मे आ गये और स्वय विद्रोह का सचालन करने लगे। रात भर स्मोलनी मे फौज के क्रातिकारी दस्ते और लाल रक्षकों की टुकडियाँ आती रही। बोल्शेविको ने उन्हे राजधानी के मध्य भाग मे जाकर शिशिर प्रासाद को घेर लेने को कहा जहाँ कि अस्थाई सरकार जमी हुई थी।

२८ अक्टूबर (७ नवम्बर) को लाल रक्षकों के क्रातिकारी दस्तों ने रेलवे स्टेशनो, डाकघर, तारघर, मत्री भवन और सरकारी बैंक पर अधिकार कर लिया। प्रिपार्लमेन्ट (प्रारम्भिक परिषद्) भग कर दी गई। पैत्रोग्राद सोवियत और बोल्शेविक केन्द्रीय समिति का हैड क्वार्टर स्मोलिनी म था। वही अब क्राति का हैड क्वार्टर भी हो गया जहाँ से युद्ध सम्बन्धी निर्देश भेजे जाते थे। उस समय पैत्रोग्राद के मजदूरो ने दिखा दिया कि बोल्शेविक पार्टी की देख-रेख मे उन्हे कैसी शिक्षा मिली है? फौज के क्रातिकारी दस्ते जिन्हे बोल्शेविकों ने विद्रोह के लिये तैयार किया था, सही ढग से आज्ञाओ का पालन करते थे और लाल रक्षको के साथ-साथ लडते थे। जल सेना फौज के पीछे न रही। क्रोन्स्तात बोल्शेविक पार्टी का मजबूत अड्डा था और बहुत पहले अस्थाई सरकार की आज्ञा मानने मे इन्कार कर चुका था। अरोरा नाम के जहाज ने अपनी तोपें शिशिर प्रासाद की ओर सीधी की और २५ अक्टूबर को उनके वज्रघोष के साथ एक नये युग का, महान समाजवादी क्राति के युग का प्रारम्भ हुआ। २५ अक्टूबर (७ नवम्बर) को बोल्शेविकों ने **'रूसी नागरिकों के नाम एक घोषणा पत्र'** निकाला जिसमे उन्होने कहा कि पूँजीवादी अस्थायी सरकार हटा दी गई है और राज्य-शक्ति सोवियतों के हाथ म आ गई है। रगरूटो और लडाकू जत्थो के सरक्षण मे अस्थाई सरकार ने शिशिर प्रासाद मे शरण ली। २५ अक्टूबर की रात को क्रान्तिकारी मजदूरो, सिपाहियों और मल्लाहो ने शिशिर प्रासाद पर हल्ला बोल दिया और उस पर अधिकार करके अस्थाई सरकार को बन्दी बना लिया। पैत्रोग्राद मे सशस्त्र विद्रोह की विजय हुई। २५ अक्टूबर (७ नवम्बर) १९१७ को पौने ग्यारह बजे स्मोलनी मे दूसरी अखिल रूसी सोवियत काँग्रेस का अधिवेशन आरम्भ हुआ। इस समय तक पैत्रोग्राद का विद्रोह विजयी हो चुका था और राजधानी मे शासन तन्त्र पैत्रोग्राद सोवियत के हाथ मे आ चुका था। काँग्रेस मे बोल्शेविको का भरपूर बहुमत रहा। काँग्रेस ने घोषित किया कि सम्पूर्ण शक्ति सोवियतो के हाथ मे आ गई है। दूसरी सोवियत के घोषणा-पत्र मे लिखा था—"मजदूरों, सिपाहियों और किसानो के विशाल बहुभाग की इच्छा का सहारा पाकर, पैत्रोग्राद के मजदूरो और वहाँ की फौजी टुकडी के सफल विद्रोह का सहारा पाकर, काँग्रेस शासन-सूत्र अपने हाथ में लेती है।" २६ अक्टूबर (८ नवम्बर) १९१७ को दूसरी सोवियत काँग्रेस ने शान्ति सम्बन्धी विज्ञप्ति स्वीकार की। उसी रात को काँग्रेस ने भूमि सम्बन्धी विज्ञप्ति स्वीकार की जिसमे घोषित किया गया कि "जमीन पर जमींदारी अधिकार का अब

से बिना किसी मुआवजे के अन्त किया जाता है।" जमींदारो की जमीन, जार परिवार तथा मठो की जमीन श्रमिको को दे दी गई कि ये स्वाधीनता से उसका उपयोग करें। अन्त मे दूसरी सोवियत कॉग्रेस ने पहली सोवियत सरकार जन प्रतिनिधियों की समिति (काउन्सिल ऑफ पीपुल्स कमीसार्स) बनाई जिसमे सब बोल्शेविक ही थे, लेनिन जन-प्रतिनिधियो की इस पहली समिति के सभापति चुने गये। इस प्रकार इस ऐतिहासिक द्वितीय कॉग्रेस की कार्यवाही समाप्त हुई। अक्टूबर १९१७ से १९१८ की अवधि में सोवियत क्रांति देश की विशाल भूमि मे ऐसे वेग से फैली कि लेनिन ने उसे सोवियत शासन का विजय प्रयाण कहा था। रूस मे समाजवादी क्रांति की इस विजय के अनेक कारण थे। निम्नलिखित कारण मुख्य रूप से पठनीय हैं

(१) रूसी क्रांति के शत्रु थे रूसी पूंजीपति, जो अपेक्षाकृत निर्बल थे।

(२) अक्टूबर क्रांति का नेतृत्व सभी मजदूर वर्ग जैसे क्रांतिकारी वर्ग के हाथ मे था।

(३) कृषक जनता का विशाल बहु भाग, गरीब किसान, क्रान्ति मे रूसी वर्ग के शक्तिशाली सहायक थे।

(४) श्रमिक वर्ग का नेतृत्व बोल्शेविक पार्टी जैसी खरी और परखी हुई पार्टी के हाथ मे था।

(५) अक्टूबर क्रांति उस समय आरम्भ हुई जब साम्राज्यवादी युद्ध जोरो पर था। यही संक्षेप मे क्रांति का ऐतिहासिक विवेचन है।

राज्य-क्रान्ति का प्रभाव

सोवियत क्रान्ति के प्रभाव अत्यन्त व्यापक एव दूरगामी हुए हैं। क्रांति ने न केवल रूस की सीमाओं के अन्दर ही राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक परिवर्तन किये बल्कि रूस के बाहर अन्य देश भी इसके प्रभावो से अछूते न रह सके। इतिहास मे प्रथम बार एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित हुई जिसने उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व को सदैव के लिये समाप्त कर दिया, उन्हें श्रमिको एव कृषको के नियत्रण मे ला दिया तथा सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि उसने मध्यस्थो एव शोषक वर्गों को समाप्त कर दिया तथा उन कारणो का सफाया कर दिया जिनसे मानव द्वारा मानव का शोषण होता था। इस क्रान्ति ने शोषण व्यवस्था का अन्त कर दिया, जमींदारो एव पूंजीपतियो की राजनीतिक शक्ति को समाप्त करके जनवादी सर्वहारा वर्ग के ऐसे राज्य की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य प्रत्येक नागरिक को सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक न्याय प्रदान करना है।

क्रान्ति के बाद कुछ समय तक रूस में हुये बहुमुखी परिवर्तन अनेक देशों के लिये रहस्य बन रहे। किन्तु अन्तत लौह-आवरण (Iron-Curtain) के हटते ही अन्य देशो ने जब रूसी समाज की प्रगति एव सम्पन्नता को देखा और परखा तो उन्हें

सहसा अपनी आँखो पर विश्वास ही न हुआ। इस नवीन व्यवस्था के बीज संक्रामक रोगाणुओ की भाँति राष्ट्रीय परिधियो को लाँघ कर अन्य राष्ट्रो की सीमाओं मे प्रवेश करने लगे। इनसे केवल यूरोप के विकसित राष्ट्र ही प्रभावित नही हुये बल्कि एशिया, अफ्रीका एव दक्षिणी अमरीका के भी अनेक ऐसे देश प्रभावित हुये जो राजनीतिक दृष्टि से वर्षों से पराधीन थे। पिछले बीस वर्षों मे अनेक देशों की अर्थव्यवस्था मे समाजवादी पुट मे जो वृद्धि हुई है, वह इसी का परिणाम है।

इस प्रकार कोलचक और देनीकिन हार चुके थे, उत्तरी प्रदेशो से, तुर्किस्तान, साइबीरिया, दॉन प्रदेश, युक्राइन आदि से क्रान्ति विरोधियों और सेनाओ को हटाकर सोवियत प्रजातन्त्र अपनी राज्य भूमि वापिस ले रहा था, मित्र देशो को मजबूर होकर नाकेबन्दी उठानी पड रही थी, फिर भी अन्तिम निर्णायक वार के रूप मे पिलसुदस्की और रागेल दोनों का ही उपयोग किया गया। पिलसुदस्की क्रान्ति विरोधी राष्ट्रवादी था, पोलैण्ड के शासन की बागडोर उसी के हाथ मे थी। रागेल क्रीमिया मे देनीकिन की रही-सही सेना को सग्रह कर दोन्येत्स प्रदेश और युक्रेन को आतंकित किये हुए था।

निर्देशित पूँजीवाद की नीति (The Policy of Directed Capitalism)

क्रान्ति के तत्काल बाद रूस म जो सरकार स्थापित हुई उसे अनेक बाधाओ, कठिनाइयो एव असुविधाओ का सामना करना पडा। देश मे सर्वत्र अव्यवस्था एव अराजकता फैल गयी। जार की सरकार का यद्यपि अत हो चुका था और जनता की सरकार की स्थापना की जा चुकी थी, किन्तु फिर भी विदेशी एव देशी पूँजीवादी तत्व इतने सक्रिय थे कि पूँजीवादी व्यवस्थाओ एव सगठनो को एकदम उखाड फेंकना सम्भव न हो सका। लेनिन का विचार था कि ऐसा करना अहितकर होगा और सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण की नीति लागू करने से देश मे और अधिक आर्थिक अव्यवस्था फैलने की आशका थी। वह जानता था कि यदि समस्त कारखानो का राष्ट्रीयकरण करके उन्हे राज्य के स्वामित्व एव प्रबन्ध मे ले लिया गया और उन्हे अप्रशिक्षित तथा अनुभवहीन श्रमिको की समितियो के हाथो मे सौंप दिया गया तो इससे उत्पादन मे भारी गिरावट हो जायगी और औद्योगिक क्षेत्रो मे अनुशासनहीनता का प्रसार हो जायगा। किन्तु दूसरी ओर उसके अनेक साथी इस विचार के थे कि उद्योगपतियो एव पूँजीपतियों को कारखानों से हटाकर उनका पूरा नियत्रण श्रमिकों को सौंप दिया जाना चाहिये।

लेनिन की यह मान्यता थी कि समाजवाद की स्थापना एकदम नही की जा सकती है। तत्कालीन परिस्थितियो के सन्दर्भ मे यह मान्यता अत्यन्त व्यावहारिक थी, क्योकि पूँजीवादी तत्वो की तत्काल समाप्ति होने से आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे जो रिक्तता उत्पन्न हो जाती, उसकी पूर्ति के लिये समाजवादी तत्व न तो तत्पर हो थे और न वे इस योग्य ही थे। अत कम से कम उस समय तक तब तक कि पूर्ण-समाजवादी सिद्धान्तों की स्थापना के लिये अनुकूल एव सुदृढ भूमि तैयार नही करली जाती कतिपय अनिवार्य एव आवश्यक पूँजीवादी तत्वो से एक प्रकार का अस्थायी समझौता करने मे कोई हानि नही हो सकती थी। इस प्रकार उन कतिपय पूँजीवादी तत्वो को नियत्रित एव निर्देशित करके अन्ततोगत्वा पूर्ण समाजवाद की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो सकता था। इस नीति को निर्देशित अथवा नियत्रित-पूँजीवाद (Directed or controlled-capitalism) की सज्ञा दी गयी तथा लेनिन स्वय इसे

राजकीय-पूंजीवाद (State capitalism) के नाम से सम्बोधित करते थे। इस नीति के अन्तर्गत जबकि एक ओर अर्थव्यवस्था के कुछ मूलभूत अंगों पर राज्य का एकाधिकार स्थापित किया गया, तो दूसरी ओर अनेक ऐसे क्षेत्रों में जहाँ विदेशी पूंजी विनियोजित थी अथवा जहाँ तकनीकी ज्ञान एवं प्रबन्ध-क्षमता के उच्चस्तर की आवश्यकता थी निजी-स्वामित्व को अस्थायी रूप से कायम रहने दिया गया, किन्तु ऐसे मालिकों अथवा प्रबन्धकों को श्रमिकों की समितियों के नियंत्रण में रखे जाने की व्यवस्था की गयी। इस काल में उद्योगों के सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण की नीति को नहीं अपनाया गया, बल्कि परिस्थितियों द्वारा बाध्य किये जाने पर ही क्रमशः राष्ट्रीयकरण करने का निश्चय किया गया। साथ ही पूंजीवाद की अनेक प्रणालियों की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए उनका सहारा लिया गया जैसे मूल्य-तंत्र, मुद्रा के माध्यम से भुगतान, कार्यानुसार मजदूरी, वैतानिक प्रबन्ध के तरीके और निजी क्षेत्र में आन्तरिक व्यापार की छूट आदि। लेनिन के अनुसार पूंजीवादी एवं समाजवादी तत्वों के बीच इस प्रकार का अस्थायी समझौता संक्रमण काल के लिये अनिवार्य था।

विशेषताएं

१. भूसम्पत्तियों की परिसमाप्ति (Liquidation of Landed Estates)—लेनिन द्वारा ग्रामीण किसानों एवं नागरिक श्रमिकों के सुदृढ़ गठबन्धन पर बहुत अधिक बल दिया गया था क्योंकि सोवियत क्रान्ति के ये दो आधार स्तम्भ थे। कृषक वर्ग के असन्तोष के कारण ही रूसी क्रान्ति एक कोने से दूसरे कोने में फैल गयी थी। राजनीतिक कारणों से यह अत्यन्त आवश्यक था कि कृषकों को सन्तुष्ट रखा जाय और प्रशासन को उनका पूरा समर्थन प्राप्त होता रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये समस्त भूमि पर ऐसे किसानों का अधिकार स्थापित करना आवश्यक था जो भूमि को स्वयं जोत सकें। अतः इस सिद्धान्त की घोषणा अत्यन्त आवश्यक थी जिसे क्रान्ति के दूसरे ही दिन क्रियान्वित किया गया। सोवियत सरकार द्वारा एक आज्ञप्ति (decree) निकाली गयी जिसके अनुसार समस्त जागीरों अथवा भूसम्पत्तियों (Landed Estates) को जब्त (Confiscate) किये जाने की घोषणा की गयी। इन जब्त की गयी जागीरों में भूस्वामियों की जमीन-जायदादों के अतिरिक्त गिरजाघरों आदि की भूसम्पत्तियां भी सम्मिलित थीं। इसके लिये किसी प्रकार की कोई क्षतिपूर्ति (Compensation) दिये जाने की व्यवस्था नहीं थी।

जब्त की गयी इन भूसम्पत्तियों के प्रबन्ध आदि का अधिकार क्षेत्रीय ग्रामीण समितियों (Regional Rural Committees) एवं जिला सोवियत समितियों (District Soviets) को प्रदान कर दिया गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त आज्ञप्ति द्वारा इन समितियों को जब्त की गयी भूसम्पत्तियों पर केवल कब्जा या अधिकार दिया गया न कि स्वामित्व। इसी प्रकार ऐसी जमीनें, जो कि जोतने वाले किसानों के निजी कब्जे में थी, उन्हीं के अधिकार में रहने दी गयी। इस आज्ञप्ति

के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी क्योंकि नाममात्र की क्षेत्रीय अथवा जिला समितियां प्रभावहीन थीं और व्यावहारिक रूप में जब्त की गयी भूसम्पत्तियों पर किसानों ने कब्जा करके उसका आपस में बँटवारा कर लिया। जागीर भूमियों की इस छीना-झपटी के काण्ड में चिरकाल से जमींदारों द्वारा पीड़ित एवं शोषित कृषकों को एक प्रकार के परम सन्तोष की अनुभूति हुई और वे मनमाने ढंग से और कहीं-कहीं हिंसात्मक तरीकों से भी ऐसी भूमियों पर कब्जा करके उनका परस्पर बँटवारा करने लगे। जागीर भूमियों के इस मनमाने वितरण में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि प्रशासन एक मौन तथा निष्क्रिय दर्शक बना हुआ था, क्योंकि इसे रोकने की न तो तत्कालीन प्रशासन के पास पर्याप्त शक्ति ही थी, और न शायद इच्छा ही थी। इच्छा कदाचित इसलिये नहीं थी कि सोवियत सरकार ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वहारा वर्ग को प्राप्त होने वाले सन्तोष में बाधक नहीं होना चाहती थी। किन्तु बाद की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि ग्रामीण अराजकता एवं अव्यवस्था कृषि उत्पादन के लिये अहितकर थी और इसीलिये फरवरी सन् १९१८ में सोवियत सरकार ने राष्ट्र की समस्त भूमि का राष्ट्रीयकरण कर दिया तथा भूमि को स्वयं जोतने वाले किसानों के खेतों के वितरण और सुविधा एवं परिस्थितियों के अनुसार उत्तरोत्तर सामूहिक फार्मों एवं राजकीय फार्मों की स्थापना के लिये अपने निश्चय की घोषणा की।

२ **उद्योगों के राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी नीति** (Policy Regarding Nationalisation of Industries)—यह पहले ही कहा जा चुका है कि राजकीय पूँजीवाद के अन्तर्गत उद्योगों के सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण की नीति नहीं अपनाई गयी। उद्योगों का राष्ट्रीयकरण केवल कुछ निर्धारित परिस्थितियों में ही किया जा सकता था। ऐसे उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना अनिवार्य समझा गया जो राष्ट्र के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण थे अथवा युद्ध सम्बन्धी वस्तुओं का उत्पादन करते थे या अन्य प्रकार से सैनिक महत्व के थे। अन्य उद्योगों को निजी स्वामित्व में ही रहने दिया गया, किन्तु निजी मालिकों द्वारा कारखाने बन्द कर दिये जाने, उन्हें छोड़कर अन्यत्र चले जाने, श्रमिकों को निष्कासित करने अथवा "श्रमिकों द्वारा नियंत्रण" विषयक आज्ञप्ति का पालन करने से इनकार करने पर सम्बन्धित उद्योगों का राष्ट्रीयकरण राज्य द्वारा किया जा सकता था। इन आठ महीनों की अवधि में अनेक उद्योगों का राष्ट्रीयकरण उनके मालिकों के असहयोग के कारण करना पड़ा। कारखानों के मालिक राष्ट्रीयकरण की आशंका एवं मजदूरों के नियंत्रण से स्वयं को आतंकित अनुभव कर रहे थे। उनमें से अनेक कारखानों को छोड़कर विदेश भाग गये। ऐसे भी उदाहरण थे जबकि श्रमिकों के दबाव में उच्चस्तर पर निर्णय लिये बिना, मालिकों को भगा दिया गया अथवा हटा दिया गया और मजदूरों ने ही कारखानों को राष्ट्रीयकृत कर दिया।

३. श्रमिकों द्वारा नियन्त्रण सम्बन्धी आज्ञप्ति (Decree on Workers Control)—नवम्बर सन् १९१७ की चौदह तारीख को सोवियत सरकार द्वारा एक आज्ञप्ति (decree) जारी की गयी जिसके अनुसार प्रत्येक औद्योगिक उपक्रम के प्रबन्ध को श्रमिको द्वारा नियन्त्रित किये जाने की व्यवस्था की गयी। इस आज्ञप्ति के आधार पर प्रत्येक कारखाने में श्रमिको की समितियाँ बनाई गयीं, जिन्हे कारखाने के प्रबन्ध के अधीक्षण का अधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त श्रमिकों की इन समितियों को कारखाने, कागजपत्रो एव लेखे आदि को देखने और न्यूनतम उत्पादन की सीमा निर्धारित करने का अधिकार भी दिया गया। कारखानो के प्रबन्ध के लिये यह दुहरी प्रणाली (Dual Control System) राजकीय पूँजीवाद के अन्तर्गत अपनायी गयी समझौतावादी नीति का ही परिचायक थी। ऐसा करके एक ओर तो प्रबन्धको की कुशलता एवं दक्षता का लाभ प्राप्त किया गया और दूसरी ओर श्रमिक वर्ग को नियन्त्रण सौंपने से उन्हे सन्तुष्ट करने एव उनका सहयोग प्राप्त करने का अवसर सरकार को प्राप्त हुआ। कारखानो का पूरा दायित्व ऐसे प्रबन्धको को सौंपना, जो पुरानी पूँजीवादी व्यवस्था के अग रह चुके थे, उचित नही समझा गया और इसलिये उनके ऊपर श्रमिको का अकुश लगा दिया गया। इस आज्ञप्ति का यद्यपि यह आशय नही था कि श्रमिक कारखानो के दैनिक प्रशासन मे आवश्यक हस्तक्षेप करे, किन्तु व्यवहार मे ऐसे हस्तक्षेप को रोका नही जा सका। अनुभवहीन, निर्धन, पीडित, शोषित एव असन्तुष्ट श्रमिको को इससे अच्छा अवसर और कौन-सा मिल सकता था, तथा वे डटकर प्रबन्धको से बदला लेने लगे। इससे आगे चलकर औद्योगिक उत्पादन मे गिरावट आती चली गयी।

४ सर्वोच्च आर्थिक परिषद की स्थापना (Establishment of Supreme Economic Council)—दिसम्बर सन् १९१७ मे उद्योगो के प्रशासन एव समन्वय के लिये सर्वोच्च आर्थिक परिषद (Supreme Economic Council) की स्थापना की गयी जिसे स्थानीय भाषा मे 'वेसनखा' (Vesenkha) कहा जाता है। इसके अधीन विभिन्न उद्योगो के लिये उप-विभाग (Sub departments) खोले गये जिन्हें 'ग्लावकी' (Glavki) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। सर्वोच्च आर्थिक परिषद (Vesenkha) मे सरकार एव श्रमिक दोनो के प्रतिनिधि सम्मिलित थे और इसमे कुछ विशेषज्ञो को भी सलाहकार की हैसियत से स्थान दिया गया था। उप-विभागों (Glavki) का काम भारी उद्योगो म श्रमिको द्वारा नियन्त्रण के कार्यक्रम को समन्वित करना और राष्ट्रीयकरण के विषय म उचित निर्णय करना था। धीरे-धीरे भारी उद्योगो के अतिरिक्त मध्यम आकार के उद्योग भी इन उप-विभागो (Glavki) के अन्तर्गत आते गये।

५. नियन्त्रण सगठनों एव केन्द्रों की स्थापना (Establishment of Controlling Bodies and Centres)—ऐसे उद्योगो मे जिनमे राजकीय एवं

निजी दोनों प्रकार के कारखाने कार्यशील थे, निजी नियंत्रण संगठनों (Private Controlling Bodies) की स्थापना की गयी तथा इनमें निजी मालिकों, श्रमिक संघों तथा सरकार तीनों के प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये। इन संगठनों का कार्य ऐसे कारखानों के उचित नियंत्रण के लिये समान नीति का निर्धारण तथा उसका पालन करना था। कतिपय हलके और छोटे उद्योगों (Light Industries) के लिये नियंत्रण केन्द्रों (Control Centres) की स्थापना की गयी। हलके उद्योग प्राय निजी व्यक्तियों के हाथों में ही थे और उनके नियंत्रण और विकास के लिये ऐसे केन्द्रों की आवश्यकता थी। इन केन्द्रों को सम्बन्धित छोटे उद्योगों के नियंत्रण एवं निर्देशन का पूरा अधिकार दिया गया। छोटी-छोटी इकाइयों को मिलाकर बड़ी इकाइयों की स्थापना करने और आवश्यकता होने पर 'वेसनखा' की सहमति से किसी कारखाने को राष्ट्रीयकृत करने का अधिकार भी इन केन्द्रों को प्राप्त था।

६. मिश्रित कम्पनियों की स्थापना (Establishment of Mixed Companies)—कुछ ऐसे उद्योगों के लिये, जिनमें विदेशी-पूँजी आवश्यक थी तथा उसके बिना उत्पादन सम्भव न था, सोवियत सरकार द्वारा ऐसी मिश्रित कम्पनियों (Mixed Companies) की स्थापना का विकल्प रखा गया, जिनमें सरकार एवं विदेशी पक्ष दोनों साझीदार हैं। लौह उद्योग, कोयला उद्योग, तेल उद्योग एवं बिजली उद्योगों में वहाँ उस समय विदेशी पूँजी लगी हुई थी। किन्तु मिश्रित कम्पनियों के निर्माण के बारे में पार्टी में मतभेद था। लेनिन स्वयं पूँजी में विदेशियों को हिस्सेदार नहीं बनाना चाहता था। उसका ध्येय विदेशों से केवल तकनीकी विशेषज्ञों की सेवाओं तक ही सीमित था। अतः परस्पर विरोधी विचारों के कारण मिश्रित कम्पनियों की स्थापना की दिशा में कोई प्रगति न हो सकी।

७. व्यापार (Trade)—देश के अन्दर यद्यपि निजी व्यापार की छूट थी, किन्तु अनेक महत्वपूर्ण वस्तुओं का व्यापार राज्य के एकाधिकार में था। अस्थायी सरकार (Provisional Government) की नीति का परिपालन करते हुए खाद्यान्नों का व्यापार पूर्णतः राज्य के हाथों में था। किन्तु जैसे-जैसे दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं की कमी अनुभव होती गयी, खाद्यान्नों के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को भी राजकीय व्यापार की सूची में जोड़ा गया। कपड़े, कृषि में काम आने वाली वस्तुओं, खाद्य पदार्थ, ईंधन आदि का घोर अभाव उत्पन्न हो गया और अभाव ग्रस्त वस्तुओं की सूची दिन प्रति दिन लम्बी होती चली गयी। यहाँ तक कि आगे चल कर युद्ध-कालीन साम्यवादी नीति (Policy of War Communism) के अधीन समस्त आन्तरिक व्यापार पर राज्य का नियंत्रण करना पड़ा।

अप्रैल सन् १६१८ में विदेशी व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया, क्योंकि आज्ञापत्रों (Permits) के आधार पर आयात निर्यात की नीति सफल नहीं हो सकी। राज्य द्वारा आयात निर्यात अपने हाथ में लिया जाना राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। निजी क्षेत्र में रहने पर विदेशों से वित्तीय हस्तक्षेप किये जाने

का खतरा था जिसे उठाने के लिये उस समय की सोवियत सरकार कतई तैयार नहीं थी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकरण के द्वारा देश से आवश्यक वस्तुओं के निर्यात को रोका जा सकता था और केवल अति आवश्यक वस्तुओं के आयात की राज्य द्वारा व्यवस्था की जा सकती थी।

८ बैंकों का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of Banks)—बैंकों का राष्ट्रीयकरण २७ दिसम्बर सन् १९१७ को किया गया और इस प्रकार यह राजकीय नीति का ही एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग माना जा सकता है। लेनिन का यह दृढ़ विचार था कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण किये बिना समाजवाद की स्थापना असम्भव होगी। इसीलिये उसने सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये एक ऐसे राजकीय बैंक की स्थापना का निर्णय किया जिसकी शाखायें देश के विभिन्न नगरों और भागों में फैली हों। अतः समस्त निजी बैंकों को रूस के राज्य-बैंक (State Bank of U S S. R) में मिला दिया गया।

राजकीय पूँजीवाद का अन्त

राजकीय पूँजीवादी नीति केवल आठ महीने प्रचलित रही। सन् १९१८ के मध्य में गृह-युद्ध के छिड़ जाने और विदेशी सरकार के हस्तक्षेप में वृद्धि होने के कारण वे आधार नष्ट हो गये जिन पर इस मिली-जुली समझौतावादी नीति का निर्माण किया गया था। विदेशों की पूँजीवादी सरकारें सोवियत रूस की नवीन राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था को अन्य देशों की तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के लिये प्रत्यक्ष खतरा समझती थी और उसे नष्ट करने के लिए कटिबद्ध थी। इस संकट ने पूँजीवादी नीतियों से समझौता करने की प्रवृत्ति पर से सोवियत सरकार के विश्वास को हिला दिया। चारों ओर से बाहरी सेनाओं के पड़ाव एवं देश के अन्दर विभिन्न गुटों में गृह-युद्ध की लपटों ने सोवियत सरकार को बिलकुल नये सिरे से सोचने के लिये विवश कर दिया। बोल्शेविक पार्टी के सदस्य क्रान्ति के तत्काल पश्चात् देश में पूर्ण समाजवाद की स्थापना के लिये आतुर थे और उनमें से अनेक लेनिन द्वारा पूँजीवाद के अन्तर्गत उठाये गये कदमों को उचित नहीं समझते थे। पार्टी के अन्दर मतभेद एवं दबाव बढ़ रहा था और सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण की माँग जोर पकड़ती जा रही थी। उधर उद्योगों के प्रबन्ध के लिए जो दुहरी व्यवस्था (Dual Control System) स्थापित की गई थी वह सफल नहीं हो रही थी। मजदूर प्रबन्ध एवं प्रशासन की बारीकियों को समझते नहीं थे और अनुचित हस्तक्षेप करते थे। इससे औद्योगिक अनुशासनहीनता एवं शिथिलता में वृद्धि हो रही थी। मजदूरों में संघवादी प्रवृत्ति (Syndicalist Tendency) इतनी अधिक बढ़ चुकी थी कि वे कारखानों को पूर्ण रूप से स्वयं संचालित करना चाहते थे और उन्हें अपनी मिल्कियत मानते थे जिसे वे जैसे चाहें वैसे उपयोग में लाने का स्वयं को अधिकारी मानते थे। दुर्भाग्य से कारखानों को प्रशासित करने के लिये आवश्यक योग्यता, अनुभव एवं ज्ञान का उनमें अभाव था

और 'वेसनखा' (Vesenkha) एव 'ग्लावकी' (Glavki) इतने प्रभावहीन थे कि वे मजदूरों की इन समितियों पर कोई नियत्रण एव अनुशासन रख सकने मे असमर्थ रहे। परिणाम स्वरूप उत्पादन, क्रय, विक्रय आदि के विषय मे प्रत्येक कारखाना "अपनी ढपली अपना राग" का आलाप कर रहा था और ऐसी परिस्थितियो मे औद्योगिक ताल मेल अथवा समन्वय स्थापित करना असम्भव था और यह स्पष्ट दिखलाई दे रहा था कि यदि उचित उपचार न किया गया तो शीघ्र ही समस्त उत्पादन व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जायगी।

कार्यानुसार मजदूरी, वैज्ञानिक प्रबन्ध, मूल्य-व्यवस्था आदि सिद्धान्तो से मजदूरो को घृणा थी और वे इन्हे पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक मानते थे। विशेषज्ञो इन्जीनियरों, तकनीशियनों एव अर्थशास्त्रियों को 'बुर्जुआ वर्ग" (Bourgeois) का परिचायक माना जाता था और मजदूर समितियाँ न तो उनके परामर्श पर ध्यान देने के लिये तैयार थी और न उन्हे फूटी आखो देख सकती थी। आर्थिक-व्यवस्था दिन प्रतिदिन गिरती जा रही थी। दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का अभाव बढ रहा था। खाद्य पदार्थों, वस्त्रो एव ईंधन आदि की बहुत अधिक कमी थी। मुद्रा स्फीति बढती जा रही थी फिर वस्तुओ के भाव आसमान को छू रहे थे। ग्रामीण क्षेत्रो मे भू-सम्पत्तियो का विघटन हो चुका था और मनमाने ढग से किसानो द्वारा उनका बँटवारा कर लिया गया था, किन्तु व्यवस्थित ढग पर उनके सगठन के लिये कोई कार्यक्रम उस समय तक नही अपनाया जा सका था। इन समस्त अव्य-वस्थाओ का उपचार युद्ध-स्तर पर कोई कार्यक्रम अपना कर ही किया जा सकता था। अत नियत्रित पूँजीवाद या राजकीय पूँजीवाद की नीति का परित्याग करके युद्ध-कालीन साम्यवाद (War-Communism) की नीति अपनाई गयी जिसका विवरण अगले अध्याय म दिया गया है।

६१

युद्धकालीन साम्यवाद

[WAR COMMUNISM]

"युद्ध कालीन-साम्यवाद अग्रिम सैद्धान्तिक उपज न होकर अनुभव पर आधारित उत्पत्ति के रूप में हमारे सामने आया। लम्बे गृह-युद्ध की परिस्थितियों में आर्थिक अभावों और सैनिक अनिवार्यताओं के स्थान पर यह केवल एक काम चलाऊ नीति थी।"

—मौरिस डाब

सोवियत इतिहास मे जुलाई १६१८ से मार्च १६२१ तक का दो वर्ष एव नौ महीने का काल युद्ध कालीन-साम्यवाद (War-Communism) के नाम से जाना जाता है। इस काल का आर्थिक इतिहास युद्धकालीन आवश्यकताओ से सचालित हुआ। यह मानने मे कोई दुविधा नहीं होनी चाहिये कि आत्म-रक्षण की भावना से जो प्रयत्न किये जाते हैं वे शान्तिकालीन और सुरक्षात्मक समय के नियमो से भिन्न होते हैं। जब हम यह देखते हैं कि सोवियत रूस चतुर्दिक आक्रमणकारियो और साम्राज्यवादी देशो की रक्त लिप्सा और साम्राज्य-विस्तार भावनाओ से आक्रान्त था, उस समय नवस्थापित सोवियत सरकार के लिये समाजवाद या साम्यवाद के उच्च आदर्शों का पालन और व्यवहार असम्भव था। उस समय तो व्यवहार बुद्धि द्वारा जो भी सकटकालीन स्थिति का सामना करने के नियम पालन किय जा सके वे अधिक अच्छे माने जा सकते हैं। कहा भी गया है—'आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति' अत कोई आश्चर्य नही यदि सोवियत रूस ने, ऐसे समय जबकि देश मे उपभोक्ता वस्तुओ का अभाव था, यातायात व्यवस्था ठप्प हो चुकी थी, जनसख्या का एक बडा भाग उत्पादन से हटकर सैनिक गतिविधियो मे लगा हुआ था तथा मुद्रा स्फीति एव बढ़े हुए मूल्य जनता के प्रत्येक वर्ग मे असन्तोष उत्पन्न कर रहे थे आदर्शात्मक-नीति के स्थान पर अधिक व्यावहारिक-नीति का सहारा लिया।

अत जो व्यक्ति कभी-कभी यह सोचा करते हैं कि युद्धकालीन साम्यवाद कुछ घटिया तत्वों एव आदर्शों को लेकर निर्मित हुआ, वे प्राय: यह भूल जाते हैं कि

सङ्कट कालीन उपाय जीवन मरण की समस्या को हल करने के लिये अपनाये जाते हैं और व अस्थायी रूप से विवशता म अंगीकृत किये जाते हैं। ऐसे उपाय स्थायी आदर्श नही बन सकते तथा परिस्थिति म सुधार होते ही उनका परित्याग भी कर दिया जाता है। हो सकता है कि साम्यवादियो न नवीन उत्साहवश मुद्रा का प्रयोग समाप्त कर दिया, व्यापार म राजकीय एकाधिकार स्थापित कर दिया, किन्तु इन सब उपायो का यह आशय बिलकुल नहीं था कि उनकी सफलता पर अथवा विफलता पर समाजवाद का भाग्य निर्माण कर दिया जाता।

युद्धकालीन साम्यवाद का उद्भव

सोवियत सरकार द्वारा तत्कालीन परिस्थिति को ध्यान म रखत हुए राजकीय पूँजीवाद की नीति को १६१८ के ग्रीष्मकाल मे त्याग देना पडा। इसके मूल में जो कारण कार्यशील थे उनका विवरण निम्न प्रकार है :—

(१) **अवैध राष्ट्रीयकरण**—सोवियत शासन न उद्योग धन्धो पर राजकीय नियन्त्रण की दृष्टि से नवम्बर १६१७ म 'सर्वोच्च आर्थिक परिषद' (Supreme Economic Council Vesenkha) की स्थापना की और इसके नियन्त्रण को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिय कारखाना म श्रमिक समितियाँ बनाई गई। परन्तु वह समय अराजकतापूर्ण स्वतन्त्रता का समय हुआ अत जो श्रमिक समितियाँ स्थापित की गई उन्होन अपन अधिकार क्षेत्र स बाहर काय आरम्भ किए और एक स्थिति तो ऐसी आई कि कुछ श्रमिक समितियो न कारखानो पर भी अपना अधिकार कर लिया। इस रूप म कुछ उद्योगपतियो न तो श्रमिक समितियो की सलाह मानने से इन्कार कर दिया परन्तु अधिकाश देश छोडकर चले गय। जिन लोगो ने उत्पादन रोक दिया उन पर भी श्रमिक समितियो न अधिकार कर लिया। इस प्रकार के अवैधानिक राष्ट्रीयकरण को सर्वोच्च आर्थिक परिषद अपन आदेशो द्वारा रोकने का प्रयत्न करने लगी परन्तु यह प्रयत्न भी अधिक सफल न हुआ।

(२) **पूँजीपतियो का असहयोग**—सोवियत सरकार पूरी तरह जम भी न पाई थी कि देशी विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियो न गृह-युद्ध की आग लगा दी। अत पूँजी-पतियो का सहयोग मिलना असम्भव था। उत्पादन-यन्त्र एक प्रकार से ठप्प हो गया। सहयोग मिलना तो दूर पूँजीपति विदेशी शक्तियो से मिलकर नवीन व्यवस्था को समाप्त करने के लिय षडयन्त्र रचने लगे।

(३) **युद्धकालीन आवश्यकता**—युद्ध की भयावह स्थिति म सोवियत सरकार के लिय यह आवश्यक हो गया कि वह उन अनुत्पादक और अव्यवस्थित उद्योगो पर नियन्त्रण कर सके। इस प्रकार राष्ट्रीयकरण का क्रम बढा। स्वय लेनिन न इस बात को स्वीकार किया कि युद्धकालीन साम्यवाद हम पर युद्ध एव विनाश द्वारा थोपा गया। यह एसी नीति नहीं थी जिसका सर्वहारा वर्ग के आर्थिक कार्यक्रम स कोई मेल था, बल्कि यह तो केवल एक अस्थायी उपाय मात्र था।

(४) विदेशी पूँजी का राष्ट्रीयकरण—२८ जून १९१८ को सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण का आदेश प्रचलित किया गया क्योंकि एक ओर तो सरकार युद्ध में संलग्न थी दूसरी ओर उसे यह भय था कि विभिन्न कारखानों का राष्ट्रीयकरण बचाने के लिये उनका स्वामित्व जर्मनों के नाम हस्तान्तरित कर दिया जायगा। इस प्रकार की सूचना प्राप्त होने पर सर्वोच्च आर्थिक परिषद् ने तत्काल कदम उठाया और आम राष्ट्रीयकरण का आदेश प्रचलित किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त कारणों से युद्धकालीन साम्यवाद का उदय हुआ। अब हम युद्धकालीन साम्यवाद के समय देश की आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करेंगे।

युद्धकालीन साम्यवाद के अन्तर्गत देश की आर्थिक स्थिति

(१) आवश्यक वस्तुओं की कमी—सोवियत सरकार जब गृह-युद्ध में उलझी हुई थी तो चारों ओर अव्यवस्था का बोल-बाला था। गृह-युद्ध के क्षेत्र देश के महत्वपूर्ण औद्योगिक व कृषि क्षेत्र थे। गृह-युद्ध के समय ऐसी स्थिति भी आई कि सरकार के पास कोयले की पूर्ति पहले की तुलना में १०% कम, लोहे की ढलाई के कारखानों का २५% से कम, अन्न-उत्पादक क्षेत्र का आधा से भी कम भाग व चुकन्दर के उत्पादन क्षेत्र का १/१० भाग कम रह गया। आवश्यक वस्तुओं की कमी ने एक नई उलझन सरकार के सामने प्रस्तुत की।

(२) औद्योगिक उत्पादन में कमी—गृह-युद्ध के कारण औद्योगिक उत्पादन में भी कमी अनुभव की जाने लगी। श्रमिकों में अनुशासन की कमी आ गई। बाजार और औद्योगिक प्रबन्ध ठप्प हो गये। १९२० में युद्ध पूर्व की तुलना में आधे से भी कम श्रमिक काम कर रहे थे। श्रमिकों की उत्पादन शक्ति में ३०–३५ प्रतिशत की कमी आ गई थी। श्रमिकों की मजदूरी इतनी कम थी कि १०–१२ दिन का अनाज मुश्किल से खरीद सकते थे। औद्योगिक उत्पादन के सूचनांक (गोस प्लान द्वारा रचित) इस स्थिति को स्पष्ट करते हैं :—

१९१३=१००

वर्ष	बड़े पैमाने के उद्योग	छोटे पैमाने के उद्योग	कुल उद्योग
१९१३	१००	१००	१००
१९१६	११६	८८·२	१०९·४
१९१७	७४ ८	७८ ४	७५·७
१९१८	३३ ८	७७ ५	४३ ४
१९१९	२४ ९	४९ ०	३३ १
१९२०	१२ ८	४४·१	२०·४

(३) मुद्रा स्फीति—क्योंकि सरकार करो से अधिक रुपया प्राप्त नही कर सकती थी अत अधिक नोट छाप कर सामरिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा रही थी। लोगों के पास मुद्रा का तो बाहुल्य था, परन्तु वस्तुएँ नहीं थी। साख्यिक आँकडो के अनुसार १६१७ मे नोटो के चलन की मात्रा २२·४ मिलियार्ड रूबल थी। मार्च १६१८ तक ३० मिलियार्ड रूबल हुई और १ जून १६१८ को नोटो की मात्रा ४०·३ मिलियार्ड रूबल और १ जून १६१६ को ६०८ मिलियार्ड रूबल हो गई।

(४) यातायात की व्यवस्था—देश मे यातायात का एकमात्र साधन रेलें थी, ईंधन की कमी के कारण यह यातायात ठप्प हो गया। युद्ध के कारण भी रेलवे को भारी हानि उठानी पड रही थी। देश की कुल रेलवे लाइनो का ६०% भाग विद्रोही सेनाओ के अधिकार मे चला गया।

अधिक अच्छा यही होगा कि हम क्रमश इस स्थिति को सुधारने के प्रयत्नो का विवेचन करें।

कृषि और कृषक

सोवियत रूस की नई पदारूढ सरकार यह अच्छी तरह जानती थी कि किसानो का सहयोग साम्यवाद या समाजवादी स्थापना तथा सरकार की दृढता दोनो की दृष्टि से आवश्यक है। "शान्ति और जीवन" का आकर्षक नारा ही नही लगाया वरन् शान्ति का मूल्य चुकाने म लेनिन ने केरेन्स्की की अस्थायी सरकार की तुलना मे अपमानपूर्ण सन्धि करके भी युद्ध को समाप्त किया एक ही रात मे उसने भूमि का स्वामित्व बडे-बडे जमीदारो से छीन लिया। जमीन का नारा इतना आकर्षक था कि किसान चक्कर मे आ गया। किसानो को शान्त रखने के लिय राष्ट्रीयकरण व कृषि के पुनर्गठन पर अधिक जोर नही दिया गया। इसलिय युद्धकालीन साम्यवाद का केन्द्र बिन्दु व्यक्तिगत खेती बनी रही। बिना सरकारी सहायता के भू-स्वामियो को हटाकर, बडी बडी जमीदारियो को हटाकर किसानो ने लेनिन की मुसीबत को दूर कर दिया। उनका दिन भी आ गया है इसका आभास किसानो को बाद मे हुआ। फिर भी किसान सरकार व देश का साथ ऐसी सकटापन्न स्थितियो मे छोड देगा इसकी आशा लेनिन को नही थी क्योकि अन्नोत्पादन घटा कर, उपज बेचने से इन्कार कर, किसान ने प्रत्यक्ष रूप से सरकार से असहयोग प्रारम्भ कर दिया। देश ने इसके लिये किसानो को कभी क्षमा नही किया। शाति के समय किसानो द्वारा जिस भूमि पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया गया, उसके लिये कोई नवीन भूमि-व्यवस्था सोची जा रही थी ताकि किसानो का विरोध भी कम से कम हो और राज्य का स्वामित्व और प्रभाव अधिक दृढता से प्रकट हो। गाँवो की भूमि प्रत्येक परिवार म, कृषि पर आश्रित सदस्यों की सख्या के अनुसार वितरित की गई। यदि इस वस्तु स्थिति का विवेचन करें तो यह मालूम होगा कि एक समृद्ध किसान तथा पुराने भू-स्वामी के बीच यह अन्तर था कि प्रथम को समान अनुपात म भूमि रखने का अधिकार मिला जबकि दूसरे से

भूमि छीन ली गई। भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार तो वैधानिक बन गया, परन्तु भूमि राज्य की सम्पत्ति रही, जिसको बेचने का अधिकार किसान को न था।

कृषकों में असन्तोष के कारण

सोवियत सरकार ने १९१७ में जो बिना किसी मुआवजे के भू-स्वामियों की भूमि छीन ली थी, उसमें व्यवस्था उत्पन्न करने की बात किसानों को रुचिकर न हुई। असन्तोष के कारण निम्न थे :—

(१) विधान के अन्तर्गत भूमि स्वामित्व कृषकों को नहीं मिला।

(२) अस्थायी तौर पर इसे ग्राम समुदाय को दिया गया।

(३) भूमि का समान विभाजन हो जाने पर भी प्रत्येक किसान को आवश्यकतानुसार पर्याप्त भूमि उपलब्ध न हुई। कारण कि—

(अ) कृषियोग्य भूमि इतनी नहीं थी कि प्रत्येक किसान को आवश्यकतानुसार पर्याप्त भूमि मिलती।

(आ) अनेक बडे-बडे जमींदारों के विकसित फार्म किसानों में न बाँटकर राज्य ने अपने अधिकार में ले लिये।

(४) कृषक समुदाय को जार के शासन के बाद करों के समाप्त हो जाने की आशा थी परन्तु जब क्रान्ति के बाद भी कर माँगे गये तो असन्तोष हुआ।

(५) अनाज का सरकारी मूल्य निर्धारण किसानों को बडा अखरता था।

(६) बलपूर्वक किसानों से अनाज प्राप्त किया जाता था।

उत्पादन गिरने का सबसे बडा कारण सरकार द्वारा किसानों पर खाद्यान्नों की वसूली के लिये बनायी गयी अनिवार्य लेवी (levy) थी। वसूली के भाव प्राय बहुत नीचे निर्धारित किये जाते थे और प्रत्येक किसान से की जाने वाली वसूली की मात्रा निर्धनों की समितियों (Committees of Poor People) के द्वारा मनमाने ढंग से तय की जाती थी और कभी-कभी तो वह कृषक के वास्तविक उत्पादन से भी अधिक होती थी जिसे देना उसके लिये असम्भव हो जाता था। अत. किसानों ने खाद्यान्नों के उत्पादन में रुचि लेना छोड दिया और प्राय उत्पादन की मात्रा कम बतलाकर खाद्यान्नों को छिपाकर चोरी छिपे अधिक मूल्यों पर बेचने की प्रवृत्ति पनपती चली गयी। मौरिस डाब के अनुसार "युद्धकालीन साम्यवाद के नाम से प्रसिद्ध प्रणाली का आर्थिक आधार वस्तुत ग्रामीण कृषि के साथ नवीन सम्बन्धों पर रखा गया। इस प्रणाली के अन्तर्गत राज्य द्वारा अनिवार्य रूप से, प्रत्येक कृषक से, उसके गुजारे और बीज के लिये आवश्यक अनाज के अतिरिक्त, समस्त बचा हुआ खाद्यान्न अधिग्रहीत कर लिया जाता था। अतिरिक्त खाद्यान्न को निश्चित मूल्यों पर राज्य को सुपुर्द करने में जो कृषक आनाकानी करते थे उन्हें जनता के शत्रु (Enemies of the people) के नाम से सम्बोधित किया जाता था।

उपर्युक्त कारणों से सशंकित होकर जुलाई १६१६ मे सारे देश मे असाधारण आयोग (Extraordinary Commission) के द्वारा पूँजीपति तथा कथित पूँजीपति व्यक्तियों की खोज और उनके दमन का चक्र चालू हुआ। कृषि मे दरिद्रों की समिति (Committee of the Poor) को यह कार्य सौंपा गया। किसानों को कुलक (Kulak), केरेदन्याक (Ceredniak), बेदन्याक (Bedniak) के रूप मे विभाजित किया गया। जो कोई परिवार कुलक घोषित किया जाता उसका नागरिक अधिकार छिन जाता था। अपनी आय का ४०% कर देना पडता इत्यादि। आयोग और समिति की दृष्टि मे कुशल तथा अनुभवी, शिक्षित, समझदार, सफेद-पोश कर्मचारी देशद्रोही व पूँजीवादी बन गया।

किसानों ने असन्तोष को प्रकट करने का उपाय उत्पादन न करने के रूप मे अपनाया[1] —

वर्ष	कृषि क्षेत्र	कुल उपज
१६०६-१३	१००	१००
१६१६	६६	६३
१६१७	६७	८७
१६१८	७६	५४
१६२०	७०	४४

साथ ही साथ उत्पादन गिरने मे एक और कारण गतिशील था। १६१४ तक बडे किसान अपने आधुनिक खेतो पर वैज्ञानिक ढग से खेती कर अन्य किसानों से ५०% अन्न अधिक उत्पादन करते थे परन्तु भूमि का छिनना और वितरण यह क्रम तोडने मे समर्थ हुए। किसानों के भारी सख्या में सेना मे भर्ती होने से भी खेतो की पैदावार कम हो गई। १६१६-२० म वर्षा न होने से देश मे सूखा पडा, चारे की कमी ने घोडो तथा भेडो की सख्या मे भारी कमी करदी।

युद्धकालीन साम्यवाद के अन्तर्गत सकट से मुक्ति पाने के तीन उपाय किये गये —

(१) कृषि योग्य भूमि की पूर्ण रूप से जुताई राज्य की प्रथम आज्ञा घोषित की गई।

(२) कोई भी व्यक्ति, किसी भी बहाने यदि अपने पूरे खेत की जमीन को नही जोतेगा तो उसकी भूमि जब्त करली जायगी।

(३) लाल सेना के सैनिकों की भूमि समाज की ओर से जोती-बोई जायगी, अगर उसके परिवार मे दूसरा कोई नही है।

---

[1] *Collection of Statistical Figures for the U S S R* 1911-23, p 124

इतना सब कुछ होने पर भी पेत्रोग्राद की जनसंख्या १९१६ में २४ लाख से घटकर १९२० में ६ लाख तथा मास्को की आबादी २२ लाख से घटकर १० लाख हो गई।[1] यह ग्रामों की ओर प्रवास समस्यात्मक रूप धारण कर सका। सरकार की यह मंशा थी कि किसानों का पूर्ण सहयोग प्राप्त किया जाय। विदेशी हस्तक्षेप और गृह-युद्ध की समाप्ति के साथ ही किसानों की सन्तुष्टि के प्रयत्नों के रूप में नवीन आर्थिक नीति का उदय हुआ।

उद्योग

अक्सर यह विवाद उठाया जाता है कि बोल्शेविक पार्टी ही औद्योगिक ढाँचे को निष्प्राण करने के लिये उत्तरदायी थी, परन्तु यह विचार पूर्ण सत्य नहीं। क्रान्ति और उसके बाद "कारखाना समितियाँ" स्थापित की गईं जो कि एक मात्र प्रबन्धक होने की मान्यता प्राप्त कर सकी। इन समितियों में सहयोग स्थापित करने के दृष्टिकोण से अर्थ-व्यवस्था की उच्चतम समिति (Supreme Council of National Economy) या वेसेनखा (Vesenkhi) ५ दिसम्बर १९१७ में स्थापित की गई। पूँजीवादी मान्यता के अनुसार समस्त औद्योगिक व्यक्ति सरकार से उत्पादन कम करके या पूर्णतया स्थगित करके असहयोग करने लगे। विवशतापूर्वक सरकार को राष्ट्रीयकरण का कदम उठाना पड़ा। निम्नलिखित कारणों से राष्ट्रीयकरण अनिवार्य हो गया :—

(१) राज्य के दृष्टिकोण से उद्योग का महत्व।

(२) श्रमिक द्वारा नियंत्रण (workers control) को मालिकों द्वारा मानने से इनकारी।

(३) मिलों या कारखानों की तालाबन्दी या कारखानों को छोड़ देना।

(४) मालिकों की ऐसी मंशा थी कि श्रमिकों को हटा दिया जाय।

(५) कच्चे माल और ईंधन के होते हुए भी मालिकों द्वारा उत्पादन करने से इन्कार।

(६) उद्योगों को अन्य प्रकार से संचालित करना संभव न होने की दशा में।

इन कारणों से बिना केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के ही १९१८ जून के आरम्भ तक ४८६ बड़े कारखानों को स्थानीय अधिकारियों ने अपने नियन्त्रण में ले लिया। बाद में २८ जून १९१८ को सभी बड़े कारखानों का केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीयकरण किया जाकर स्थानीय अधिकारियों के पूर्व कार्य पर वैधानिकता की छाप लगादी गई। लगभग १,१०० कारखानों पर इनका प्रभाव पड़ा तथा २९ दिसम्बर १९१८ को लघु उद्योगों का भी राष्ट्रीयकरण किया गया।

---

[1] Alpert P *Twentieth Century Economic History of Europe*, p. 101.

उत्पादन म अवनति के कारणो का विवेचन इस प्रकार है :—

(१) औद्योगिक प्रजातन्त्र (Industrial Democracy)—चुनाव द्वारा स्थापित मजदूर समितियाँ भी औद्योगिक उत्पादन की गिरावट में सहायक थीं।

(२) नया सचालन स्वत अत्यन्त अपूर्ण, अनुभवहीन तथा विद्वेष की भावना से परिपूरित था।

(३) इस प्रबन्ध में उत्पादन-शक्ति और लागत का कोई स्थान न था।

(४) गृह-युद्ध ने उत्तरी तथा केन्द्रीय रूस के बड़े उद्योगों को ईंधन व कच्चे माल से पृथक कर दिया।

(५) लाल सेना ने बडी सख्या म श्रमिको को खीच लिया।

(६) केन्द्रीय सचालन सुव्यवस्थित न होने से परम आवश्यक कुशल कारीगर सेना मे भर्ती होने को लाचार किये।

(७) विद्रोही नेताओ की सेनाओ ने श्रमिको को उत्पादन क्षेत्र से हटाया।

(८) अनाज की कमी के कारण शहरो से ग्रामो को प्रवास।

(९) विदेशी मशीनो, रसायन तथा विशेषज्ञो की अनुपलब्धि।

रूसी राज्य योजना आयोग के अनुसार उत्पादन के सूचनाक इस स्थिति को और भी स्पष्ट करते हैं[1] —

वर्ष	बड़े उद्योग	छोटे उद्योग	कुल उद्योग
१९१३	१०० ०	१०० ०	१०० ०
१९१६	११६ १	८८ २	१०९ ४
१९१७	७४ ८	७८ ४	७५ ७
१९१८	३३ ८	७३ ५	४३ ४
१९१९	१४ ९	४९ ०	२३ १
१९२०	१२ ८	४४ १	२० ४

उद्योगों का तीन श्रेणियों में विभाजन

प्रशासन की दृष्टि से उद्योगों को तीन श्रेणियों मे विभाजित किया गया .

(१) भारी उद्योग—इनमे ऐसे उद्योग रखे गये जो बड़े पैमाने के अथवा राष्ट्रीय महत्व के थे। इन उद्योगों को सर्वोच्च आर्थिक परिषद (Vesenkha) के अधीन उपविभागों (Glavki) के अन्तर्गत रखा गया।

(२) मध्यम आकार के उद्योग—इनमे बीच के आकार के किन्तु राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों को सम्मिलित किया गया। इनको प्रान्तीय आर्थिक परिषदों के अन्तर्गत रखा गया। किन्तु व्यवहार मे ये परिषदें ग्लावकी (Glavki) के निर्देशों का

[1] By Kov, *A Soviet Economic System*, p 8

पालन करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं करती थीं। अत व्यवहार म प्रथम एव द्वितीय श्रेणी के उद्योगों में कोई विशेष भेद नहीं रहा।

(३) हलके और छोटे उद्योग—इन्हें लाइट इण्डस्ट्रीज की सज्ञा दी गयी और इन्हें प्रान्तीय आर्थिक परिषदों के अधीन रखा गया।

युद्धकालीन-साम्यवाद से केन्द्रीय तथा स्थानीय सस्थाओं के मतभेद के कारण अव्यवस्था हो गई। केन्द्रीय आज्ञाओं का कभी-कभी कोरा औपचारिक पालन ही किया जाता था। स्थिति इस रूप में असहनीय थी। इस प्रकार की अव्यवस्था से छुटकारा पाने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों को छाँट लिया गया। इनको "शॉक इण्डस्ट्रीज" कहा जाता था। यह व्यवस्था युद्ध काल तक तो ठीक चलती रही, परन्तु बाद में उत्तमता का प्रश्न इसने भी अव्यवस्था पैदा करने लगा।

उपर्युक्त स्थिति का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि इस गिरती हुई औद्योगिक स्थिति को हल करना भी एक समस्या थी। "उद्योगों को शॉक इण्डस्ट्रीज" (Shock Industries) एव नान शॉक इण्डस्ट्रीज (Non Shock Industries) के रूप म वर्गीकृत करने की पद्धति इसलिए असफल नहीं हुई कि इसके द्वारा प्राथमिकताओं के क्रम निर्धारित किये गये, बल्कि इसलिये असफल हुई कि प्राथमिकताओं को एक रीति के रूप में यह अत्यन्त निकृष्ट थी।"[1]

वित्त तथा मुद्रा व्यवस्था

क्रांति जहाँ एक ओर नयी व्यवस्था कायम करने म सहायक होती है, वहाँ प्रस्तुत व्यवस्था म एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती है कि क्या किया जाय यह निर्णय कभी-कभी मुश्किल हो जाता है। वित्त-व्यवस्था का जब हम अध्ययन करते हैं तो प्रतीत होता है कि दोहरी राज्यसत्ता से यह वित्तीय-व्यवस्था उलझनपूर्ण हो गई थी। वित्त सम्बन्धी व्यवस्था म एकरूपता न होने के दो मुख्य कारण थे :—

(१) बोल्शेविक सरकार पूर्णतया नवीन आर्थिक और राजनीतिक सगठन के निर्माण में सलग्न थी।

(२) क्रांतिकारी नेताओं को विशिष्ट आर्थिक ज्ञान और इससे भी कठिन अनुभव प्राप्त न था।

सरकार के सामने बुनियादी या आधारभूत समस्या मुद्रा का उन्मूलन करना था, उसका अपना यह विचार था कि मुद्रा का स्थान उपभोग की वस्तुओं को ले लेना चाहिये या ताकि वस्तु-विनिमय की प्रणाली चालू की जा सके। सोवनार खोज

---

1 The method of classifying as 'Shock' and 'Non-Shock' failed not because it enforced a scale of priorities but because as a priority method, it was too crude." —*Maurice Dobb*

ने श्रमिकों के लिये मुद्रा का प्रयोग बन्द कर दिया। भिन्न-भिन्न औद्योगिक इकाइयों के बीच के हिसाब-किताब में भी मुद्रा का प्रयोग बन्द कर दिया गया। इस कार्य में सरकार को सफलता मिली। मुद्रा का प्रयोग न करना, रूबल का विघटन, बढ़ते हुए मूल्यों से जनता को बचाना ही सरकार के सामने मुख्य समस्या थी। गृह-युद्ध, विदेशी हस्तक्षेप, शासन का बढ़ता हुआ खर्च, जार का निष्कासन, अस्थायी सरकार के ऊटपटाँग कार्यों ने आर्थिक और वित्तीय ढाँचे को बिलकुल निकम्मा कर दिया। सरकार ने कुछ समय के लिये अर्थ-व्यवस्था को अनाथ-सा छोड़ दिया। जब स्थिति सम्हली तो सरकार ने इस डर से कि कहीं पूँजीपति बैंकों से अपनी पूँजी न हटावें, अस्थायी रूप से बैंकों से जमा पूँजी निकालने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस प्रकार के साधनों की आर्थिक सफलता को कभी-कभी साम्यवाद की सफलता का नाम दिया जाता है। यह थोड़ा अतिशयोक्ति है। वास्तव में यह तो परिस्थितियों का तकाजा था कि इस प्रकार के उपाय अपनाये और वे सफल भी हो गये।

व्यापार

जब इस प्रकार की स्थिति आर्थिक क्षेत्र के प्रत्येक अंग में स्थापित की जा रही थी तो देशी तथा विदेशी व्यापार पर राजकीय नियन्त्रण होना स्वाभाविक ही था। जिस प्रकार हम देखते हैं कि युद्धकालीन परिस्थितियों ने राजकीय नियन्त्रण आवश्यक बना दिया था, वे ही परिस्थितियाँ व्यापारिक क्षेत्र में भी प्रचलित थीं। व्यापार को अपने नियन्त्रण में लेने के मुख्य कारण अग्रलिखित हैं —

(१) युद्ध में देश का विनाश हो रहा था।
(२) औद्योगिक और कृषि उत्पादन में कमी होती जा रही थी।
(३) वस्तुओं की माँग में असाधारण वृद्धि हो रही थी।
(४) मुद्रा प्रसार और मुद्रा स्फीति ने भयंकर रूप धारण कर लिया था।
(५) व्यक्तिगत व्यापारियों के हाथ व्यापार सुरक्षित न था।

यही कारण था कि १४ नवम्बर १९१७ के मजदूर निर्देशन (Workers-Control) में व्यापार में भी रुकावटें लगा दी गईं। २१ नवम्बर १९१८ को उपभोग की सभी वस्तुओं के व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और विद्रोह तथा गृह-युद्ध की जटिलता के कारण परिस्थिति बिगड़ती गई त्यों-त्यों राष्ट्रीयकरण उग्र रूप धारण करता गया। जनवरी १९१९ में अनाज के व्यापार का एकाधिकार राज्य ने अपने हाथ में ले लिया। मध्यस्थों की व्यापारिक कतार के रूप में जो सैकड़ों व्यक्ति नियोजित थे, हटा दिये गये। उपभोक्ता और उत्पादन के मध्य राज्य ही मध्यस्थ था। २१ नवम्बर १९१८ को एक विशेष संस्था, नारकमप्राद (Norcomprod) स्थापित की गई जिसे उपभोग की वस्तुओं को उत्पादकों से प्राप्त उपभोक्ताओं को वितरित करना था। राशनिंग व्यवस्था में विभिन्न वर्गों को अलग-अलग भोजन की मात्रा प्राप्त होती थी।

विदेशी व्यापार के नियन्त्रण के लिए १९१७ में लाइसेन्स प्रथा चलाई गई थी; परन्तु २२ अप्रैल १९१८ को विदेशी व्यापार पर भी राजकीय नियन्त्रण कर लिया गया। विदेशी साम्राज्यवादियों ने नई सोवियत सरकार को पराजित करने के लिए राजनीतिक और आर्थिक घेराबन्दी प्रारम्भ कर रखी थी। विदेशी व्यापार की तत्कालीन स्थिति का अनुमान इस प्रकार है —

विदेशी व्यापार[1]

मिलियन रूबल १९१३ मुद्रा मूल्य में

	निर्यात	आयात	शेष
१९१३	१५२०.१	१३७८.०	१४६.१
१९१४	१२७.०	८०२.०	६६५.०
१९१८	७.५	६१.१	५३.६
१९१९	०.१	३.०	२.९
१९२०	१.४	२८.७	२७.३

अतः यह कहना ठीक ही होगा कि युद्धकालीन स्थिति में विदेशी-व्यापार नाम-मात्र का हुआ। रूस अपने आयात का भुगतान सोना या हीरे जवाहरात में करता था। इस आकर्षण ने पहले जर्मनी, बाद में इंगलैण्ड, फ्रांस को आकर्षित किया और १९२० से १९२१ के मध्य आर्थिक घेराबन्दी टूट गई। साथ ही अपने औद्योगिक विकास के लिये कुछ विशेष सुविधाएँ विदेशी धन को दी गईं।

युद्धकालीन साम्यवाद का प्रभाव

जब हम युद्धकालीन साम्यवाद के प्रभावों का विवेचन करते हैं तो हमें स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि सोवियत सरकार ने बड़े पैमाने के उद्योग, यातायात, बैंक, विदेशी व्यापार, वितरण इत्यादि महत्वपूर्ण आर्थिक अंगों पर अधिकार कर लिया था। उत्पादन के साधनों का भी बहुत अंश तक राष्ट्रीयकरण हो चुका था। यह ठीक है कि अधिक केन्द्रीयकरण के कारण कुछ बुराइयों ने जन्म लिया, लेकिन शायद उस समय की परिस्थिति को देखकर यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार की नीति के अलावा कोई चारा नहीं था।

यह भी सत्य है कि कहीं-कहीं यह नीति औद्योगिक प्रगति के स्थान पर औद्योगिक अवनति का कारण बनी और यह भी अनुभव किया जाने लगा कि स्थायी आर्थिक सुधार और पुनर्निर्माण के लिये इस नीति में परिवर्तन होना चाहिये।

सोवियत संघ की सरकार ने इस युद्धकालीन साम्यवाद से कई बातें सीखीं जो आगे के लिये उनको मार्ग दर्शिका बन गईं। इस प्रयोगात्मक काल में कई भूलें हुईं और उन्हें सुधारा गया। अस्पष्टता और धुंधलापन दूर हुआ।

---

1 Baykov, *op cit.*, p 29.

किसानों को प्रथम और अन्तिम बार समाजवाद की स्थापना के रूप में प्राथमिकता और महत्व दिया गया। साम्यवाद के सफल प्रयोग के लिये राजकीय पूँजीवाद और तत्पश्चात् समाजवाद की स्थापना की अनिवार्यता मान ली गई। यह तो मानना ही होगा कि युद्ध किसी भी देश, समाज एव जाति के लिये लाभकारी नहीं होता। इस रूप में क्रांति तथा गृह-युद्ध ने देश को अत्यधिक नुकसान पहुँचाया और आर्थिक आधार को बिलकुल ही नष्ट कर दिया। एक और प्रभाव यह मान लिया जाना चाहिये कि पूँजीवाद की अच्छाइयों के रूप मे मजदूर समिति के स्थान पर एक व्यक्ति प्रबन्ध उत्तम मान लिया गया।

युद्धकालीन साम्यवाद के समय जो रीति नीति अपनाई गई वह परिस्थितिजन्य विपत्तियों के निराकरण के उपाय मात्र थी, उन्हें अन्तिम और स्थायी हल मानना भारी भूल होगी। युद्धकालीन साम्यवाद रूस के इतिहास मे वे परिवर्तन के वर्ष हैं जहाँ पुराने विचार, सस्थाएँ, प्रवृत्तियाँ, वर्ग और व्यक्ति ध्वस हो रहे थे और नवीन विचार, सस्थाएँ, प्रवृत्तियाँ, वर्ग और समाजवादी विचारधाराएँ अपना स्थान ले रही थी। यह आर्थिक और राजनीतिक सक्रमण का काल था, यह परीक्षण और भूलों का काल था, यह गल्तियो और सुधारो का काल था, सबसे अधिक यह समाजवाद की स्थापना के अग्नि-परीक्षण का काल था, जिसमे बोल्शेविक दल अपनी सूझ-बूझ, क्षमता, धीरता और साहस के फलस्वरूप विजय प्राप्त करता हुआ आगे बढ सका।

७

नवीन आर्थिक नीति

[NEW ECONOMIC POLICY]

"अपने आर्थिक आक्रमण में हम बहुत आगे बढ़ गये थे। हमने अपने लिए उचित आधार न बनाया था। इसलिए आवश्यक हो गया है कि कुछ समय के लिए सुरक्षित पृष्ठ भाग की ओर लौट चला जाय।"

"जनवादी सोवियत मन्त्रिपरिषद के निर्णय के अनुसार अब भविष्य के लिये खाद्यान्नों की अनिवार्य वसूली की पद्धति को समाप्त किया जाता है, कृषि उत्पादन पर कृषि-कर लागू किया जाता है। कृषि-कर देने के बाद जो कुछ उत्पादन किसान के पास बचेगा, उसे बाजार में बेचने अथवा अन्य प्रकार से उपयोग में लाने की पूरी छूट दी जाती है। अब प्रत्येक कृषक को यह ध्यान में रखना चाहिये एवं अनुभव करना चाहिये कि अधिकाधिक भूमि जोतकर जितना अधिक खाद्यान्न वह उत्पादित करेगा, कृषि-कर के रूप में उसका एक अंश चुकाने के बाद भी, उसके पास उतना ही अधिक अतिरिक्त खाद्यान्न उसके पास बचा रहेगा और इस बचे हुये भाग पर उसका पूर्ण अधिकार होगा।"

सोवियत रूस में १९१७ में जो सशक्त और रक्तपूर्ण क्रांति की थी उससे निश्चित ही लेनिन के नेतृत्व में प्रथम बार मानव जाति के इतिहास में श्रमिकों और किसानों की सरकार स्थापित तो हो गई थी, परन्तु उसकी कठिनाइयों का अन्त इस रूप में नहीं था कि चतुर्दिक पूँजीवादी घेरे से आवृत्त रूस अपने को किस प्रकार आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से सुदृढ़ और संगठित बनाये। गृह-युद्ध और विदेशी हस्तक्षेप की समाप्ति के पश्चात् सोवियत सरकार के सामने अब प्रमुख जटिल समस्या देश की आन्तरिक अर्थ-व्यवस्था को संगठित करना था। युद्धकालीन परिस्थिति अधिक समय तक किसी देश व समाज को जिन्दा नहीं रख सकती। उसकी अपनी सीमायें होती हैं और अपनी विवशताएँ भी। यह भी स्पष्ट है कि जिस सोवियत जनता को साम्यवाद या समाजवाद का स्वप्न दिखाकर जिस क्रांति का श्रीगणेश किया गया था, वह अब सफलतापूर्वक सम्पादित हो चुकी थी तो यह आवश्यक था कि देश के सामने

नवीन कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता क्योंकि जब तक लड़ाई चलती रही, तब तक लोग यह कमी सहते रहे और कभी-कभी उसे भुला भी देते थे, लेकिन युद्ध बंद हो जाने पर उन्होंने सहसा अनुभव किया कि यह कमी असहनीय है। वे इस बात की माँग करने लगे कि यह कमी शीघ्र पूरी की जाय।

देश की रक्षा के लिये सोवियत सरकार को किसानों से सभी अतिरिक्त अन्न जब्त कर लेना पड़ा था। अतिरिक्त अन्न की जब्ती की व्यवस्था के बिना, युद्धकालीन साम्यवाद के बिना, गृह-युद्ध में विजय असम्भव होती है। युद्ध और हस्तक्षेप के कारण यह नीति आवश्यक हो गई थी। परन्तु युद्ध बन्द हो जाने पर जब जमींदारों के लौटने की शंका न रही तो अतिरिक्त अन्न की जब्ती की व्यवस्था से अतिरिक्त अन्न देने से, किसान असंतोष प्रकट करने लगे और इस बात की माँग करने लगे कि उन्हें पर्याप्त पक्का मान दिया जाय। अतः इस संकट युक्त आर्थिक परिस्थिति का सामना करने के लिये १०वीं पार्टी कांग्रेस के समक्ष लेनिन ने जो नीति रखी वह नवीन आर्थिक नीति (New Economic Policy) कहलाई। लेनिन ने इस नीति की आवश्यकता में तीन मुख्य बातों पर जोर दिया।

उद्देश्य

(१) किसी भी मूल्य पर उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करना—क्रान्ति के पश्चात् कृषि और उद्योग के उत्पादन में भयंकर अव्यवस्था और अवनति हो रही थी कि समस्त राजनीतिक और आर्थिक आधार के छिन्न-भिन्न होने का भय-सा होने लगा। बिना उपभोक्ता पदार्थ मिले किसान अन्य उत्पादन करना न चाहता था और दूसरी ओर अन्न और अन्य औद्योगिक कच्चे माल के अभाव ने उद्योगों की दशा सोचनीय बना दी। सेना, कारखाना, खेतों में नियोजित व्यक्ति राज्य का आधार थे और यह आधार उत्पादन पर निर्भर करता था। विदेशी मशीन और कारीगर तभी मिल सकते थे जब व्यापार द्वारा भुगतान का साधन इकट्ठा किया जाय।

(२) राजनीतिक संकट से बचाव—सोवियत सरकार प्रारम्भ में ही यह मानती रही थी कि श्रमिक जाग्रत और किसान सुषुप्त नागरिक हैं। युद्धकालीन साम्यवाद में सैनिक और श्रमिक आवश्यकताओं की पूर्ति में किसानों के अतिरिक्त अन्न की जब्ती आदि ऐसे साधन अपनाये गये जिनसे इस विचारधारा को बल मिल गया। क्रान्ति के मूल में जो लेनिन की विचारधारा कार्य कर रही थी वह इसके विपरीत थी। वह यह कि किसान और मजदूर का आपसी अटल सम्बन्ध (Sniy tchka) साम्यवादी रूस का आधार है। यह अटल सम्बन्ध टूटता-सा दृष्टिगोचर हो रहा था।

(३) राष्ट्रीय स्नायु-मण्डल के प्रमुख केन्द्रों को अपने नियन्त्रण में रखना—उनके द्वारा नई पैदा हुई पूँजीवादी शक्तियों का राज्य के अधिकतम कल्याण के लिये प्रयोग करना। इस प्रकार के स्नायु केन्द्र थे—मुख्य बड़े उद्योग, साख, मुद्रा यातायात और कर प्रणाली एवं आन्तरिक और विदेशी व्यापार।

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रांति की रक्षा के लिये किसानों का समर्थन आवश्यक था। किसान रूढ़िवादी, क्षुद्र पूंजीवादी या बुर्जुआ मनोवृत्ति का होता है उसे बदलना टेढ़ी खीर है यह लेनिन अच्छी तरह जानता था। इस रूप में इस नीति का निर्धारण किसानों को खुश करने और व्यक्तिगत व्यवसाइयों को कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में छूट देने में था। नवीन आर्थिक नीति की एक उल्लेखनीय परिस्थिति यह है कि "यह एक पूर्व निश्चित आर्थिक नीति नहीं थी, यह तो आवश्यकतानुसार तोड़ी मोड़ी जा सकती थी। और तो और यह भी सत्य है कि इस नीति के सिद्धान्त न तो कभी स्थिर हुए और न कभी स्थायी जड़ें पकड़ सके।" इन उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों की पूर्ति के लिये जो तरीके एवं साधन एक निश्चित आर्थिक नीति के रूप में ढाले जाने को थे वे नई आर्थिक नीति के आरम्भ में सुस्पष्ट नहीं थे। प्रयोगवाद पर आधारित इन तरीकों का अपनाया जाना एक प्रकार का ऐसा मूल्य था जो संक्रमण काल में राजकीय एवं निजी अर्थ-व्यवस्था के मध्य अपनाये गये समझौतावादी दृष्टिकोण के लिये अदा किया गया।"[1]

ज्यों ही बोल्शेविक पार्टी का १९२१ में राज्य-सत्ता पर प्रभाव व आधिपत्य ठीक ढंग से स्थापित हुआ विदेशी हस्तक्षेप का दबाव कम हुआ, बोल्शेविक विरोधियों का दमन हुआ, राज्य ने अपनी नीति में परिवर्तन किया। और तो और आलोचकों का कहना है कि साम्यवाद को भी कुछ समय के लिये तिलांजलि दे दी गई। चाहे सैद्धान्तिक रूप में साम्यवाद का अस्तित्व रहा हो परन्तु व्यवहार में वह त्याग दिया गया। इस रूप में यह साम्यवाद की पराजय का काल था, लेनिन ने अपने प्रसिद्ध सूत्र 'Three Steps forwards, two steps backwards, 'तीन कदम आगे, दो कदम पीछे' में इसी पराजय की ध्वनि का संकेत दिया है।

नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत उत्पादन को अस्थाई तौर से बढ़ाने के लिये पूंजीवादी तरीके भी अपनाने को कहा जाने लगा। भारी टैक्स देने के बाद अनाज बाजार में बेचने की स्वतन्त्रता किसानों को मिली, ट्रस्ट एवं व्यक्तियों को कारखाने वापिस कर दिये, व्यक्तिगत व्यापार को छूट मिली, राजकीय बैंक को पुनः चालू किया गया, सरकार ने पूंजीवादी देशों से सहयोग का हाथ बढ़ाया। १९२१ में इंगलैंड, १९२२ में जर्मनी व नार्वे तथा १९२४ में अधिकतर यूरोपीय राष्ट्रों ने रूस से व्यापारिक सन्धियाँ कीं। क्या यह साम्यवाद की विजय और स्थापना के प्रयत्नों की शुरूआत थी?

---

[1] 'But the ways and means in which these aims and tasks would be moulded into the definite form of a new economic system were not clear at the beginning of N E P Methods of trial and error were accepted as the inevitable price of a compromise between state and private economy in a period of transition."

—Baykov *In Development of Soviet Economic System.*

लेनिन द्वारा स्पष्टीकरण—साम्यवाद के महान विश्लेषक के रूप में लेनिन ने जो स्पष्टीकरण दिया है वह इस प्रकार है—"यदि सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने में अस्थाई रूप में परिस्थितियाँ विपरीत हों और उस कारण से उसमें अस्थायी सशोधन कर लिया जाय तो न यह पराजय है और न सिद्धान्त से गिरना ही है। देश की जीर्ण-शीर्ण और युद्ध जर्जरित अर्थ-व्यवस्था के पुनरुद्धार का तात्कालिक निदान था। वह तो विघटन की प्रवृत्ति को रोकने के लिये अस्थायी रूप से विश्वास सा था। एक बार पैर जम जाने पर इस सहारे की कोई आवश्यकता नहीं रही। ठीक इसी तरह मार्च १६१८ में लेनिन ने ब्रेस्ट-लीटोवस्क की सन्धि से शान्ति खरीद कर साम्यवाद की जड़ें जमाने का अवकाश पाया था। निष्कर्ष रूप में यह कहना अधिक युक्तिसगत है कि नीति की सफलता तथा भविष्य में समाजवादी सिद्धान्तों की स्थापना की प्रगति यह सिद्ध करती है कि नवीन आर्थिक नीति जटिल समस्याओं से परिपूर्ण विनाशकारी गम्भीर परिस्थितियों के निकलने का केवल एक साधन था जिसमें स्थायित्व लाने का प्रारम्भ से ही कोई प्रयत्न नहीं किया गया। पाश्चात्य विचारकों और आलोचकों ने सङ्कटकालीन स्थिति से बचने के इस उपाय को साम्यवाद की पराजय और नाश का आरम्भ बताया, परन्तु उनका यह निर्णय एक आलोचनात्मक विश्लेषण की भयकर भूल थी क्योंकि वास्तव में जो सोवियत रूस ने बाद में प्राप्त किया वह इसके विपरीत था। आइये हम नवीन आर्थिक नीति के विभिन्न पहलुओं पर विचार करें :—

१. देशी व्यापार (Internal Trade)

सोवियत रूस ने यह अनुभव किया कि वर्तमान के सकट का तथा उत्पादन समस्या को जटिल बनाने का कारण व्यापार प्रणाली का अस्त-व्यस्त हो जाना या सर्वथा टूट जाना है। गृह-युद्ध की उपस्थिति में व्यापार के राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न दुष्प्रभावों को दूर करने के लिये व्यक्तिगत व्यापारियों को देशी व्यापार क्षेत्र में लाभ कमाने की छूट दी गई। व्यापार खास तौर से खुदरा व्यापार में नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत पुनर्जीवित व्यापारी वर्ग ने, जिन्हें नेपमैन (Nepmen) कहा जाता था अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। ग्रामों में अनाज का क्रय, शहरों में उसका विक्रय, सब्जी, अण्डों आदि का क्रय और मण्डियों में उनकी बिक्री, गाँवों में दुकान खोलना आदि काम पैसे वाले वर्ग ने शुरू किये, शहरों में निजी दुकानें खुल गईं। व्यापारी वर्ग ट्रस्टों से थोक सामान खरीदने लगा और उनको कच्चा माल उपलब्ध कराने लगे। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि नई आर्थिक नीति के पहले कुछ वर्षों में ट्रस्टों के माल का आधा भाग व्यक्तिगत व्यापारियों द्वारा बेचा जाता था, उस समय खुदरा व्यापार का ¾ भाग नेपमैनों के हाथ में था। थोक व्यापार में नेपमैन का प्रभाव कम था इसका ⅕ भाग ही उनके हिस्से में आता।

राजकीय व्यापार सगठन के दो मुख्य रूप थे। तोर्गी (Torgi) उस व्यापारिक सगठन का नाम था जिसे क्षेत्रीय आर्थिक समितियाँ अपने व्यापार विभाग को

तरह चलाती थी। इनका कार्य-क्षेत्र उत्पादन तक सीमित था, किन्तु आर्थिक रूप से राष्ट्रीय उद्योगों के उत्पादन को भी यह वितरित करते थे। दूसरा रूप १९२२ में सामने आया जिसे सिण्डीकेट (Syndicate) कहते हैं। प्रमुख औद्योगिक संघों (Industrial Trust) ने आपसी प्रतिस्पर्धा से बचने के लिये इनका निर्माण किया था। शीघ्र ही यह राजकीय उद्योगों का थोक व्यापार केन्द्र बन गया। जहाँ एक ओर स्वतन्त्र व्यापारी वर्ग को छूट दी गई थी वहाँ सरकारी व हाट-व्यवस्था का विस्तार भी किया जाता रहा। राज्य ने राजकीय व्यापार को थोक की दृष्टि से स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन की स्थापना की। इस प्रकार से राजकीय व्यापार थोक व्यापार से सम्बन्धित था। फुटकर व्यापार का माध्यम थे—व्यक्तिगत व्यापारी, सहकारी समितियाँ और सोवियों संगठन। १९२२ में कुल व्यापार की गतिविधि इस प्रकार थी:— व्यक्तिगत व्यापार ७५·३%, राज्य १४·४% और सहकारी समितियाँ १०·३%।

किन्तु धीरे धीरे इस स्थिति में परिवर्तन होता चला गया। नेपमैन का महत्त्व उत्तरोत्तर कम होता चला गया और राष्ट्रीय व्यापार सम्थायें अथवा सहकारी व्यापार सस्थायें व्यापारिक क्षेत्रों में प्रमुखता प्राप्त करती गयीं। सन् १९२७ में आन्तरिक व्यापार में निजी क्षेत्र का भाग केवल २० प्रतिशत रह गया, जबकि राजकीय और सहकारी संस्थाओं का भाग ८० प्रतिशत हो गया।

२. विदेशी व्यापार (Foreign Trade)

विदेशी व्यापार पर गृह-युद्ध से ही राज्य का एकाधिकार था। यह ठीक था कि सोवियत सरकार ने नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत अन्य क्षेत्रों को सुविधाएँ प्रदान कीं, परन्तु इस क्षेत्र में राज्य का एकाधिकार ही सर्वोपरि रहा। विदेशी व्यापार को इस नियन्त्रण के लाभ भी थे :—

(१) विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से देश के औद्योगिक विकास की रक्षा हुई।

(२) इसके आधार पर रूस का आन्तरिक मूल्य-स्तर विश्व व्यापी मन्दी के प्रभाव से बच गया।

(३) आर्थिक स्थिरता करने में इस यन्त्र से सहायता मिली।

(४) योजना के अनुसार साधनों का केवल विकास के लिए खर्च करना सम्भव हो सका।

उपर्युक्त लाभकारी दृष्टिकोण इस रूप में प्रस्तुत किये गये कि राज्य के एकाधिकार से सोवियत संघ ने जहाँ अपनी आर्थिक स्थिति को दृढ़ करने में ध्यान केन्द्रित किया वहाँ दूसरी ओर हानि उठाकर भी माल बेचकर मशीन व यन्त्र, जो औद्योगिक प्रगति के आधार थे, खरीद सका। विदेशी व्यापार का प्रयोग सोवियत सरकार अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भी करती थी। माल खरीदने का लालच देकर राजनीतिक मान्यता प्राप्त करने का प्रयत्न रूस ने कई जगह किया।

१६२६-३३ के आर्थिक सकट व्यापारी मन्दी काल म पूँजीवादी देशो म अपना माल न बेच सकने पर बेकारी का सकट बढता था, अत हर प्रकार के खरीददार का स्वागत होता था। इसी प्रकार ईरान, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, मगोलिया और चीन मे पैर जमाने के लिये कटौती पर माल बेच अग्रेजो के प्रभुत्व को कम करने का प्रयत्न किया गया।

विदेशी व्यापार के राष्ट्रीयकरण के लिये धीरे धीरे भूमिका तैयार की गयी थी। दिसम्बर सन १६१७ म यह आदेश दिया गया था कि आयात-निर्यात केवल सर्वोच्च आर्थिक परिषद (Vesenkha) के नियात विभाग की अनुमति से ही आयात-निर्यात किया जा सकता था। दिसम्बर १६१७ म आयात निर्यात के लिये लाइसेंस प्रणाली लागू की गई। विदेशी व्यापार पर राज्य का एकाधिकार लागू करने की दिशा मे यह महत्वपूर्ण कदम थे। अन्तत अप्रैल सन् १६१८ को विदेशी व्यापार का पूर्ण राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था। इस व्यवस्था को नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत भी कायम रखा गया किन्तु विदेशी राष्ट्रो स आर्थिक सहयोग बढाने, निर्यात मे वृद्धि करके विदेशी व्यापार को सन्तुलित करने तथा राजकीय विदेशी व्यापार सगठन को सरल बनाने की दिशा म विशेष प्रयत्न किये गये। विदेशी व्यापार के राष्ट्रीयकरण से विदेशी सरकारें अप्रसन्न थी और वे रूस म व्यापार सन्धियाँ करने के लिये राजी नही थीं। नई आर्थिक नीति के काल मे रूस ने ब्रिटेन, इटली, आस्ट्रिया, नार्वे, स्वीडन, चीन, डेनमार्क, फ्रान्स, मेक्सिको, जमनी और अन्य कई देशो से राजनयिक एव व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये गये। युद्धकालीन साम्यवाद के काल मे रूस आर्थिक दृष्टि से विश्व के अन्य देशो म अकेला पड गया था। नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत रूस ने इस 'अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक अलगाव' को दूर करने का प्रयास किया जिसम विश्व व्यापी मन्दी ने भी अन्य देशो का रूस म माल निर्यात करने की सम्भावनाओ पर विचार करने के लिये विवश किया। परिणाम यह हुआ कि विदेशी व्यापार का आकार वृद्धि को प्राप्त होने लगा और सन् १६२१ की तुलना मे सन् १६२८ म विदेशी व्यापार सात गुने से भी कुछ अधिक हो गया। सन् १६२१ मे कुल विदेशी व्यापार १८ २ करोड रूबल का था सन् १६२४ म यह ४७ करोड, सन १६२५ मे ११२ ३ करोड और सन १६२८ म यह १३८ करोड रूबल तक हो गया।

विदेशी व्यापार के सगठन को भी सरल बनाया गया। विदेशी व्यापार विभाग (Commissariat of Foreign Trade) के अलग अलग माध्यम थे। सेन्ट्रोस्यूज (Centro-soyuz) उपभोक्ता सहकारी समितियों की प्रतिनिधि सेल्स्को स्यूज (Selsko-soyuz), कृषि उत्पादन मे सम्बन्धित विशेष स्वतन्त्र समितियाँ (Special Joint Stock Companies) इत्यादि माध्यम थे। *सन १६२३ के बाद विदेशी और देशी* व्यापार के सामजस्य के लिये एक ही व्यापार विभाग नारकमनार्ग (Commissariat of Trade or Norkomtorg) स्थापित किया गया। जिन देशो म राजदूत होते वहाँ

दूतावास का व्यापार प्रतिनिधि और बाकी देशों मे एक कम्पनी इस काम के लिये बनाई जाती थी।

३. मुद्रा और बैंकिंग (Money Banking)

लेनिन की अपनी यह धारणा थी कि अर्थ-व्यवस्था के मुख्य केन्द्रों के पूर्ण राजकीय नियन्त्रण में होने से अनुचित लाभ की प्रवृत्ति को रोका जा सकता है। मुद्रा, बैंकिंग, बजट ऐसे ही मुख्य केन्द्र थे। मुद्रा विहीन समाज के जो प्रयत्न १९१८-२१ के बीच किये गये, नवीन आर्थिक-नीति के अन्तर्गत और भी सुधार उसमे शामिल कर दिये गये। मुद्रा की क्रय शक्ति छीन ली गई। राशन कार्ड और सहकारी समिति की सदस्यता के प्रमाण-पत्र ही उनका रूप ले सके। मुद्रा लेखा की इकाई और मूल्य मापन का साधन रह गई। विनिमय के माध्यम की क्रिया को भी कम से कम कर दिया गया। इस कार्य मे इतनी अधिक सफलता मिली कि १९२८ तक यह स्थिति पैदा हो गई कि मुद्रा के रहते हुये भी उसका व्यय करना कठिन हो गया। औद्योगिक वित्त के क्षेत्र मे भी मुद्रा ने प्रधानता खो दी। पूंजी निर्माण मे मुद्रा का स्थान बैंक, साख, उसकी मात्रा और गति ने ले लिया मुद्रा के पदच्युत होने का क्रम १९२४ के चलन सुधार (Currency Reform) के साथ प्रारम्भ हुआ और १९३० के सुधारों से पूरी तरह स्थापित हो गया।

मुद्रा के समान ही बैंकिंग व्यवस्था को भी नियन्त्रित और सुव्यवस्थित करना नवीन आर्थिक नीति का कार्य था। युद्धकालीन साम्यवाद मे उद्योगों को स्थायी और चल पूंजी राजकीय बजट मे मिलती थी, इस प्रकार बैंकों का प्रभाव समाप्त-सा हो गया था। नवीन आर्थिक नीति मे बैंकों के पुनरुद्धार का कार्य आरम्भ हुआ। नीति की शुरूआत के साथ ही गोस बैंक अथवा केन्द्रीय बैंक की स्थापना की गई। यह वित्त मन्त्रालय के अन्तर्गत रखा गया। गोस बैंक की सचालक समिति का सभापति वित्त मन्त्रालय ही नियुक्त करता था। १९२९ मे बैंक को मन्त्रालय से पृथक कर दिया गया। परन्तु राज्य और बैंक की घनिष्ठता पर इसका कोई प्रभाव नही पड़ा। केन्द्रीय बैंक राज्य की अर्थ और साख-व्यवस्था का आधार था। अन्य बैंक उसके सहायक या प्रतिनिधि के रूप मे काम करते थे।

गोस बैंक ने अपनी स्थापना के पश्चात् जो कार्य किये उनसे ज्ञात होता है कि यह बैंक धीरे-धीरे इतना प्रभावशाली हो गया कि आर्थिक जीवन का कोई क्षेत्र इसके प्रभाव की व्यापकता और सार्वभौमिकता से अछूता न रहा। गोस बैंक का सर्वप्रथम और मुख्य कार्य एक स्थिर मुद्रा-प्रणाली का शुभारम्भ करना था। युद्धकाल मे क्षत-विक्षत अर्थ व्यवस्था ने पत्र-मुद्रा का असाधारण विघटन किया था। कारण स्पष्ट था कि सरकारी नोटों के पीछे किसी प्रकार के संचित कोष का सहारा न होता था। बैंक की पत्र-मुद्रा सेर-वास (Cher Vonetz) शत प्रतिशत कोष द्वारा सुरक्षित थी। पुराने नोट सोव्जनाक (Sovznak) से इसका सम्बन्ध १० १ का था। इस दर

को स्थायी बनाये रखने का पूरा प्रयत्न किया गया। उपलब्ध आँकडो के अनुसार जनवरी १९२३ मे कुल चलित मुद्रा का ३% सेर-वास और ९७% सोव्जनाक नोट थे। अक्टूबर १९२३ तक पुराने २५% और नये नोट ७५% हो गये। इस प्रकार नये नोटो से आर्थिक स्थिरता मे प्रगति हुई।

इसके अलावा सरकार के वित्तीय कार्य-क्रम की देख-रेख और सरकारी प्रतिभूतियो का क्रय-विक्रय बैंक का उत्तरदायित्व था। इसकी शाखाऐं अपने कार्यों के अलावा कृषि और औद्योगिक बैंको के प्रतिनिधि के रूप मे भी कार्य करती थीं। किसी स्थान पर एक से अधिक शाखा खोलने का अपव्यय बचाने के लिये गोस बैंक दूसरे बैंको को अपनी शाखाओ के माध्यम से काम करने की अनुमति देता था। बैंक का एक योजना विभाग भी है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रभावशाली सगठन है, इस विभाग का नाम योजना के आर्थिक अग पर विशेष सलाह देना है।

औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र मे भी बैंक का प्रभाव अतुलनीय है। बैंक के अन्तर्गत प्रत्येक मुख्य उद्योग का पृथक विभाग बना हुआ है। इस रूप म बैंक उद्योगो को साख देने, व्यय का निरीक्षण करने का कार्य करता है। पूँजी व साख की कमी की रुकावट गोस बैंक द्वारा समाप्त कर दी गई है। गोस बैंक ने विनिमय मे मुद्रा का प्रयोग घटाने के भी उपाय किये हैं। प्रत्येक उत्पादन की इकाई (कारखाना) बैंक के पास अपना खाता रखती थी जिसमे सभी साधनो से प्राप्ति और सभी को देना अकित किया जाता था। बैंक खातो के हस्तान्तरण से इन दूर-दूर फैले हुए उत्पादन केन्द्रो का आपसी भुगतान बिना मुद्रा-प्रयोग के कर देता।

बजट के क्षेत्र मे भी नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत जो उपाय अपनाये गये वे उल्लेखनीय हैं। राजकीय व्यय सन् १९१८ मे ३१,१२६ मिलियन से बढकर १९२१ मे २,०१,३२,००० मिलियन रूबल हो गया, इस प्रकार के घाटे को पूर्ति नोट छाप कर की गई। मुद्रा प्रसार के भीषण सकट को जीतने के लिये घाटे की अर्थ-व्यवस्था के अलावा विकल्प ही नही था। बचत योजना के अन्तर्गत सरकारी व्यय के प्रत्येक भाग मे बचत, अपव्यय की समाप्ति और अधिकतम धन के उपयोग के लिये कडे निरीक्षण की योजनाएँ बनाई गई। स्थानीय अर्थ-व्यवस्था को केन्द्रीय अर्थ-व्यवस्था से अलग कर दिया गया। स्थानीय सरकारो को अपने आन्तरिक साधनो के भरोसे छोडा गया। अन्य विशेष सुधार इस प्रकार थे—वस्तु मे लिये जाने वाले कर मुद्रा मे बदल दिये गये और १९१७ के पूर्व कई कर समाप्त कर दिय गये।

४ कृषि (Agriculture)

नवीन आर्थिक नीति ने कृषि को विशेष रूप से प्रभावित किया। १९२०-२१ के अकाल ने इस क्षेत्र म और भी क्रियात्मक कदम उठाने के लिये विवश किया। कृषि उत्पादन बढाना इस रूप मे आवश्यक था —

(१) अनाज और कच्चे माल का उत्पादन बढ़ाये बिना औद्योगीकरण सम्भव नहीं।

(२) औद्योगिक क्षेत्र और लाल सेना को भोजन के लिये कृषि उत्पादन की महत्ता की परिचायक स्थिति थी।

(३) अनाज के निर्यात के बदले में मशीन मँगाने की आवश्यकता गम्भीर रूप धारण कर रही थी।

(४) ग्रामीण क्षेत्र का सामाजिक-विभाजन ऐसा था जिसमें उत्पादन-वृद्धि, विशेषकर बाजार के लिये अतिरिक्त उत्पादन का एकमात्र उपाय सोवियत राज्य के सिद्धान्त के विरुद्ध पड़ता था।

(५) गरीब किसान स्वयं उपभोक्ता थे और मध्यम-वर्ग के पास बड़े पैमाने की विस्तृत खेती करने का साधन न था।

(६) बड़े पैमाने पर उत्पादन की आवश्यकताएँ और अनुभव केवल समृद्ध किसानों के पास मिलता था।

(७) युद्धकालीन साम्यवाद के समय विचारहीन भूमि का पुन वितरण होने से ग्रामीण क्षेत्र की उत्पादन शक्ति को ज्यादा धक्का पहुँचा था।

(८) लोगों ने लालच में अपने साधनों से अधिक भूमि पर कब्जा तो कर लिया लेकिन खेती न कर सके।

(९) भू-स्वामी के पूर्ण सचालन में काम करने के अभ्यस्त रूसी किसान, स्वतन्त्र रूप से कुशलतापूर्वक उत्पादन कार्य को चलाने में असमर्थ थे।

अनिवार्य वसूली का अन्त

कृषि के सम्बन्ध में आर्थिक नीति के रूप में अनिवार्य वसूली का अन्त प्रथम चरण था। राजनीतिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से किसानों का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक था। इसके लिय यह आवश्यक था कि अनाज की अनिवार्य वसूली को समाप्त किया जाय। इसके स्थान पर एक कर लगाया गया जिसकी वसूली आरम्भ में तो वस्तु के रूप में होती थी परन्तु मुद्रा स्थिरता आने पर रूबल में होने लगी। व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यापार दोनों की अनुमति मिली। टैक्स देने के बाद बची हुई उपज खुले बाजार में बेची जा सकती थी। उससे प्राप्त धन किसी रूप में व्यय किया जा सकता था। छोटे-छोटे टुकड़ों में मन चाहे तरीकों से बाँटना रोक दिया गया। ग्रामों में गरीब किसान द्वारा बड़े खेतों का आपस में बँटवारा, क्रान्ति के बाद रूसी कृषि का अभिशाप बन गया। उसके दूर होते ही जोत की भूमि की मात्रा में स्थिरता आ गई। किसान को नवीन आर्थिक नीति, भूमि पर इच्छानुसार कृषि करने की आज्ञा मिली। बजाय दबाव के तरह-तरह की सुविधाओं का लालच देकर समाजवादी खेती की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया गया।

इस प्रकार कृषि क्षेत्र में जो तीन महत्वपूर्ण सुधार किये गये वे थे :

(१) खाद्यान्नों की अनिवार्य वसूली की समाप्ति।

(२) कृषि उत्पादन पर वस्तु के रूप में कर की वसूली।

(३) कर देने के बाद शेष बचे भाग को खुले बाजार में बेचने की अनुमति।

इससे बड़े किसानों को राहत मिली और वे भूमि को जोतने और अधिक से अधिक उत्पादन करने में रुचि लेने लगे क्योंकि कृषि उपज के लिये खुले बाजार की आंशिक छूट से उनके लिये अधिक लाभ कमाने की सम्भावनायें बढ़ गयीं। अतः युद्ध-कालीन साम्यवादी नीति के अन्तर्गत अपनाई गई अनिवार्य वसूली से उत्पन्न स्थिति में सुधार होने लगा। भूमिहीन छोटे और गरीब कृषकों को सहकारी आधार पर कृषि करने के लिये प्रेरित किया गया और राज्य की ओर से उन्हें साख, वित्त एवं अन्य सुविधायें प्रदान की गयीं।

इन प्रयत्नों के प्रभावों का अंकन इस रूप में हो सकता है कि कृषि के क्षेत्र और उत्पादन में वृद्धि के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। उदाहरणार्थ कृषि का क्षेत्र १९२२-२३ में ६६.२ मिलियन हेक्टर था, वही १९२६-२७ में ९३.७ मिलियन हेक्टर हो गया। बीज रखने के बाद उत्पादन १९२१-२२ में ४२.३ मिलियन टन से बढ़कर १९२६-२७ में ७८.३ हो गया।[1] उत्पादन वृद्धि के साथ बाजार में आया अनाज कम होता गया। सन् १९१३ में कुल फसल का २०.३% बाजार में बिकने आता था। यह मात्रा घटकर १९२४-२५ में १४.३%, १९२५-२६ में १३.२%, १९२७-२८ में १२.१% और १९२८-२९ में ११.१% हो गई।[2] इसका मुख्य कारण यह था कि गरीब और मध्यम वर्ग के किसान कुल अनाज का ८५.३% पैदा करते थे लेकिन फसल का केवल १३% बाजार ले जाते थे। सामुदायिक और राजकीय कृषि का उत्पादन कुल १.७% था लेकिन वे अपने उपज का ४७.२% बाजार भेजते थे।[3]

इस प्रकार की परिस्थिति ने नवीन आर्थिक नीति के अन्त में फिर से संकट पैदा कर दिया। किसानों ने बाजार के एकमात्र खरीददार राजकीय संस्थाओं को निश्चित मूल्य पर अनाज बेचने से इंकार कर दिया। परिस्थिति अत्यन्त विकट थी। अनाज का मूल्य बढ़ाते ही औद्योगिक उत्पादन का मूल्य बढ़ जाता। कैंची-संकट के कारण उस समय अपने आप ही औद्योगिक मूल्य कृषि के अनुपात में इतना अधिक था कि उसमें वृद्धि करने से जनता में विरोध फैल जाता। ऐसी स्थिति में सरकार के पास एक ही उपाय शेष था बलपूर्वक छिपाये हुए अनाज को प्राप्त करना। इस प्रकार

---

[1] Hubbard L. E. *Economics of Soviet Agriculture*

[2] Soviet Planning Commission Data quoted in Bay Kov, *op cit*, p 136

[3] Loutvu *Economic History of Soviet Russia*, Vol I, p 102.

नवीन आर्थिक नीति के अन्त मे किसानो की लगभग वही दशा हो गई जो क्रांति के पहले थी। इस दिशा मे जो कदम सोवियत सरकार ने उठाये वे कृषि के संगठन को कमजोर करने वाले सिद्ध हुए, उसका पुनरुद्धार पचवर्षीय योजना मे हुआ।

५. उद्योग (Industry)

(क) विकेन्द्रीकरण (Decentralisation)—युद्धकालीन साम्यवाद के अन्तर्गत उद्योगो के नियन्त्रण का केन्द्रीयकरण था। अब इस नीति को भी त्यागकर विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाई जाने लगी। हम देखते हैं युद्धकालीन साम्यवाद के दूसरी श्रेणी के अधिकाश उद्योग व कई पहली श्रेणी के उद्योग भी सर्वोच्च आर्थिक परिषद् (Vesenkha) के नियन्त्रण से प्रान्तीय आर्थिक परिषदो के नियन्त्रण मे दे दिये गये। प्रान्तीय आर्थिक-परिषदें भी अब सर्वोच्च आर्थिक परिषद की मातहत नही रही और प्रान्तीय सोवियत सत्ता के मातहत हो गईं, और तो और वेसेंखा (Vesenkha) के ढाँचे मे परिवर्तन हुआ। उप-विभागो (Glavki) की सख्या ४३ से घटाकर १६ कर दी गई। आर्थिक गतिविधि का सामान्य नियन्त्रण केन्द्रीय सत्ता के अन्तर्गत रहा, लेकिन दिन-प्रति-दिन की कार्य-व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया।

(ख) ट्रस्टों का निर्माण (Creation of Trusts)—उद्योगो की कार्य-व्यवस्था को सगठित करने के लिये स्वशासित इकाइयाँ, जिनको 'ट्रस्ट' कहा जाता था, बनाई गई। सन् १९२१ के उत्तरार्द्ध व १९२२ मे इस प्रकार के ट्रस्टो का निर्माण बडी तेजी से हुआ। इस प्रकार के ट्रस्टो को अपनी आवश्यकता के लिये राज्य की निर्भरता से मुक्त कर दिया गया और साथ ही अपना उत्पादित माल राज्य को देने की जिम्मेदारी से छूट मिल गई। राज्य केवल उन उद्योगो को कच्चा माल व साज-सामान देता था जो अपने उत्पादन का अधिकाश भाग राज्य को देते। यह ठीक है कि इन ट्रस्टो को कानूनी व्यक्तित्व प्रदान किया गया, ये अपनी ओर से व्यापारिक करार कर सकते थे। इन औद्योगिक ट्रस्टो पर सर्वोच्च आर्थिक परिषद (Vesenkha) का नियन्त्रण होता था किन्तु कारखाना स्तर पर राज्य की मूल्य नीतियो के अन्तर्गत ये निर्णय लेने के लिये स्वतन्त्र थे। इनका प्रबन्ध बोर्ड करता था जिसकी नियुक्ति वेसनखा करती थी। ये बोर्ड ट्रस्ट की स्थायी सम्पत्ति को परिषद की अनुमति के बिना न तो बेच सकते थे और न हस्तान्तरित ही कर सकते थे। धन-सम्पत्ति के बारे मे अनुबन्ध करने की इन्हें पूरी स्वतन्त्रता थी। इन ट्रस्टो का प्रमुख कार्य कारखानो के उत्पादन कार्यक्रमो को निर्धारित करना और उनका सुचारु रूप से सचालन करना था। ये ट्रस्ट राज्य के चार्टर बनाते थे जिनको रद्द किया जा सकता था। सर्वोच्च आर्थिक परिषद् इन ट्रस्टो को विघटित कर सकती थी व लाभाश का बटवारा भी उसी की इच्छानुसार होता था।

(ग) अराष्ट्रीयकरण (Denationalisation)—सोवियत सरकार ने नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत अराष्ट्रीयकरण (Denationalisation) के मार्ग को

अपनाया। जल्दबाजी में किये गये अनावश्यक राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न अव्यवस्थित संगठन व गिरते हुए उत्पादन को दूर करने का उपाय नवीन आर्थिक नीति के रूप में अवतरित हुआ। १९२० के आम राष्ट्रीयकरण के अन्तर्गत जिन छोटे छोटे प्रतिष्ठानों का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया गया वे या तो सहकारी संस्थाओं व व्यक्तिगत व्यवसायियों को पट्टे पर दे दिये गये या वापस लौटा दिये गये। १९२२ तक कोई ४,००० प्रतिष्ठानों को अराष्ट्रीयकृत कर दिया गया। अब २८½% प्रतिष्ठान व्यक्तिगत व्यवसायियों के हाथ में, ६८½% राज्य के हाथ में और ३% सहकारी संस्थाओं के हाथ में थे। लेकिन जिन प्रतिष्ठानों का अराष्ट्रीयकरण किया गया वे अधिकांश छोटे-छोटे थे जिनमें २० से भी कम श्रमिक काम करते थे। अतएव अब भी देश के कुल श्रमिकों का १२½% ही व्यक्ति प्रतिष्ठानों में काम करता था और देश के कुल उत्पादन का ५% भाग ही इन में तैयार होता।

नवीन आर्थिक नीति के पालन से औद्योगिक उत्पादन १९२६-२७ में १९१३ की तुलना में कैसा था यह निम्न तालिका से स्पष्ट है -

उत्पादन की प्रगति[1]

(मूल्य पर आधारित दस लाख रूबल में)

वर्ष	भारी उत्पादन	उपभोग उत्पादन	कुल उत्पादन
१९१३	४२९०	५९६१	१०२५१
१९२१	८१४	११११	१९२५
१९२२	१०९०	१४२२	२५१२
१९२३	१७४५	२०४४	३८२९
१९२४	१९५६	२५१०	४४६६
१९२५	३१२१	४६१५	७७३६
१९२६	४३०४	५९७३	१०२७७
१९२७	५३७२	६६७९	१२०५१

इस सम्बन्ध में एक बात और विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मात्रा के साथ उत्पादन की किस्म में अवनति हो गई। अनुभवहीन प्रबन्धक, लागत लेखा प्रणाली का न होना, श्रमिकों का अत्यधिक वेतन और उद्योगपूर्ण एकाधिकार इस बात का उत्तरदायी था। गृह-युद्ध के बाद देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई थी। औद्योगिक उत्पादन युद्ध के पहले से १०% और कृषि उत्पादन का ५४% गिर गया। श्रमिकों की संख्या में ६०% और वास्तविक वेतन में ३५% कमी हुई। यातायात ठप्प हो गया था। सन् १९२१ के अकाल ने और बची कमी को पूरा किया ? आर्थिक

1. Bay Kov, *op cit.*, p. 121,

पुनर्निर्माण के अतिरिक्त कोई रचनात्मक उपाय न था। नवीन आर्थिक नीति की सफलता इस रूप में वर्णनीय है —

१९१३ के प्रतिशत में उत्पादन[1]

वर्ष	उद्योग	कृषि	कुल उत्पादन
१९१३	१००·०	१००·०	१०० ०
१९१६	१०९·५	९९ ०	१०३·४
१९१९	२३·१	७६ ३	५३·९
१९२०	२०·४	६८·९	४८·५
१९२०-२१	२४·७	६३·९	२७·४
१९२१-२२	३०·१	५५·४	४४·२
१९२२-२३	३९ ५	७३ ६	५९·२
१९२३-२४	४८·०	७९ ९	६६ ५
१९२५-२६	८९·९	१०१·३	९६·५
१९२६-२७	१०३·९	१०६·५	१०५·०
१९२७-२८	११९·६	१०५·६	११५ ४

इस प्रगति का यदि विस्तार देखा जाय तो वह और भी आश्चर्यजनक था—

उत्पादन वृद्धि[2]
(१९१३ के प्रतिशत मे १९२७-२८)

बिजली	२५९·६%
कोयला	११२·५
पेट्रोल	१२५·८
पीट	४४६·२
कमबरवन इन्जन	४०३·४
कृषि यंत्र	१८६·६
कच्चा लोहा	७८ ६
सूती कपड़ा	१२१·९
ऊनी कपड़ा	१०८·१
चीनी	१०३ ९
अनाज	८९·६
कपास	९६ ५
पलेक्स	५४·६
चुकन्दर	९२·७

[1] *Source* : Grinko G T., *The Five Year Plan of Soviet Union*, p. 34.
[2] *Source* : Grinko G T., *The Five Year Plan of Soviet Union*, pp. 34·35.

(घ) प्रबन्ध में सुधार (Better management)—औद्योगिक ट्रस्टो के निर्माण के कारण कारखानो के प्रबन्ध मे बहुत सुधार हुआ। सर्वोच्च आर्थिक परिषद (Vesenkha) एव उपविभागो (Glauki) से प्रत्येक उद्योग एव कारखाने के दिन प्रति दिन के प्रबन्ध की आशा नही की जा सकती थी। औद्योगिक ट्रस्ट के निर्माण ने इस समस्या को हल कर दिया। उपविभागो की सख्या कम कर दी गयी और उच्च-स्तर पर ये सगठन केवल नीति निर्धारित करने और विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रो मे समन्वय स्थापित करने पर ध्यान देने लगे। शेष कार्य औद्योगिक ट्रस्टो पर छोड दिया गया। ये ट्रस्ट बडे और छोट सब प्रकार के होते थे और राष्ट्रीय स्तर पर अनेक औद्योगिक इकाइयो के लिय अथवा स्थानीय रूप से केवल एक या कुछ औद्योगिक इकाइयो के लिये हो सकते थे। यद्यपि इन ट्रस्टो की सामान्य देख रेख परिषद करती थी, फिर भी इन ट्रस्टो को यह अधिकार था कि वे प्रत्येक कारखाने के लिये योग्य प्रबन्धक (Manager) की नियुक्ति कर सकें। कारखाने के प्रबन्धक को आन्तरिक प्रबन्ध का पूर्ण अधिकार होता था। किन्तु कच्चे माल के क्रय एव उत्पादन के विक्रय आदि के लिये उसे ऊपर से दिये गए निर्देशो का पालन करना होता था। अत छोटे उद्योगो के अराष्ट्रीयकरण (Denationalisation) तथा बडे एव मध्यम आकार के सरकारी उद्योगो क प्रशासन एव प्रबन्ध के विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) ने औद्योगिक क्षेत्रो मे फैली हुई अव्यवस्था और छिन्नभिन्नता को सुधारना प्रारम्भ कर दिया। सुधार का यह क्रम अक्टूबर सन् १९२१ से प्रारम्भ हुआ, औद्योगिक इकाइयो को जब एक आज्ञप्ति (decree) जारी करके दो श्रेणियो मे विभाजित कर दिया। प्रथम श्रेणी मे ऐसी इकाइयाँ थी जिन्हे राज्य के प्रत्यक्ष प्रबन्ध के अन्तर्गत रखा गया। इनमे इन्जिन निर्माण, सैनिक उद्योग, अन्य महत्वपूर्ण उद्योग सम्मिलित किये गये। दूसरी श्रेणी मे ऐसी इकाइयाँ सम्मिलित की गयी जिनका प्रबन्ध बहुत कुछ स्वायत्त शासित था और इनके प्रबन्ध के लिये न्यासो या ट्रस्टो (Trusts) का निर्माण किया गया। दो वर्ष के अन्दर ही इनकी सख्या पाँच सौ हो गयी। इन ट्रस्टों के अन्तर्गत लगभग साढ़े तीन हजार कारखाने थे जिनमे राष्ट्रीयकृत उद्योगो के तीन चौथाई श्रमिक कार्यशील थे।

आर्थिक सकट

युद्धकालीन साम्यवादी नीति के पश्चात् और नवीन आर्थिक नीति की प्रारम्भिक अवधि म रूस की जनता को अनेक आर्थिक सकटो का सामना करना पड़ा। इन सकटो मे आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओ का अभाव, यातायात व्यवस्था और विशेषकर रेल यातायात मे कठिनाइयाँ, ईंधन विशेषकर कोयले की भयकर कमी, औद्योगिक उत्पादन मे बिक्री-संकट और कृषि उत्पादन के प्रतिकूल कैंची सकट। इन आर्थिक सकटो मे अन्तिम दो सकट अत्यन्त समस्यापूर्ण थे। बिक्री सकट (Sales crisis) नवीन आर्थिक नीति के प्रारम्भिक काल म उत्पन्न हुआ तथा कैंची सकट (Scissors

Crisis) इस नीति के उत्तरार्ध मे घटित हुआ। नीचे दोना सकटो का विस्तृत वर्णन किया गया है :

१ बिक्री सकट (Sales Crisis)—यह सकट सन् १९२२ के प्रारम्भ मे प्रारम्भ हुआ। औद्योगिक ट्रस्टो (Industrial Trusts) के समक्ष औद्योगिक माल के विक्रय की विकट समस्या उत्पन्न हो गयी। उन्हे निर्मित माल को बेचने मे अत्यन्त कठिनाई का अनुभव हो रहा था। इसका कारण यह नही था कि उद्योगो मे अति-उत्पादन (Over-production) हो रहा था अथवा ग्रामीण क्षेत्रो मे इन वस्तुओ की माँग नही थी, बल्कि यह था कि सन् १९२१ के सूखे और अकाल के कारण कृषि पदार्थों का विशेषकर खाद्यान्नों का और कच्चे माल का बहुत अधिक अभाव उत्पन्न हो गया था। कारखानो के पास कार्यशील पूँजी का अभाव था तथा ग्रामीणो के पास क्रयशक्ति का अभाव था। कारखाने अपनी कार्यशील पूँजी की पूर्ति के लिये अपने निर्मित माल को बेचने के लिये तत्पर एव लालायित रहते थे और समुचित बाजार व्यवस्था एव साख व्यवस्था के अभाव मे वे गाँव-गाँव अथवा गली-गली अपने निर्मित माल को बेचने के लिये कठिन प्रतियोगिता कर रहे थे। दूसरी ओर खाद्य पदार्थों और कृषिजन्य औद्योगिक कच्चे माल के भाव बहुत ऊँचे थे। इसका फल यह था कि औद्योगिक उत्पादनो और कृषि उत्पादनो के विनिमय-मूल्यो मे परस्पर ऐसा विरोध उत्पन्न हो गया कि भाव औद्योगिक उत्पादनो के प्रतिकूल एव कृषि उत्पादनो के अनुकूल हो गये। उचित विक्रय व्यवस्था के अभाव मे औद्योगिक इकाइयो को अपना निर्मित माल किसी भी कीमत पर बेचने के लिये बाध्य होना पडा क्योकि उन्हें मजदूरो के लिये खाद्यपदार्थों एव उत्पादन के लिये कच्चे माल की आवश्यकता थी। मई सन् १९२२ तक स्थिति अपनी चरम सीमा तक पहुँच गयी और इस सकट को समाप्त करने के उपायो पर विचार किया जाने लगा। स्टेट बैंक से उद्योगो को अधिक साख दिये जाने की व्यवस्था की गयी ताकि उनके समक्ष उत्पन्न कार्यशील पूँजी के अभाव को दूर किया जा सके। राजकीय सस्थाओ द्वारा खरीदे गये माल के शीघ्र भुगतान की व्यवस्था भी की गयी। औद्योगिक ट्रस्टो के सुझाव पर ही व्यापारिक सघो (Commercial Syndicates) के निर्माण की ओर ध्यान दिया गया। व्यापारिक सघो द्वारा औद्योगिक एव कृषि पदार्थों के विनिमय एव वितरण की समुचित व्यवस्था प्रारम्भ की गयी। जून १९२२ के पश्चात् स्थिति मे सुधार होना प्रारम्भ हुआ। कृषि की नई फसल अच्छी हुई और खाद्यान्नो एव कच्चे माल की कमी कुछ सीमा तक दूर हो गयीं। उद्योगो के उत्पादन को सीमित रखन के प्रयत्न भी किये गये किन्तु यह उपाय वाछनीय नही समझा गया। विदेशो से खाद्यान्नों एव औद्योगिक कच्चे माल के आयात का भी प्रबन्ध किया गया ताकि कृषि पदार्थों के भावो को गिराया जा सके। अन्तत सन् १९२२ की समाप्ति तक इस सकट मे सुधार हो गया। राज-कीय व्यापारिक सिन्डीकेटो की स्थापना के उद्योगो को अपने माल का विक्रय करने

और आवश्यक खाद्यान्न एव कच्चा माल खरीदने के लिये समुचित विनिमय माध्यम प्राप्त हो गया। धीरे-धीरे औद्योगिक निर्मित माल की कीमतो मे वृद्धि होने लगी और कृषि पदार्थों के मूल्यो मे कमी होने लगी तथा दिसम्बर सन् १६२२ तक इन दोनो के मूल्यो के अनुपात मे सन्तुलन स्थापित हो गया। किन्तु मूल्यों के परिवर्तन की यह प्रक्रिया सन्तुलन बिन्दु पर जाकर रुकी नही, बल्कि विपरीत दिशा मे अग्रसर हो गयी, जिसके कारण सन् १६२३ मे इससे भिन्न एक दूसरे प्रकार का आर्थिक सकट उत्पन्न हो गया जिसे कैंची-सकट (Scissors Crisis) के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

३. "कैंची-सकट" (Scissors Crisis)—नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत स्वतन्त्र व्यापार या व्यक्तिगत व्यापार का अस्तित्व और दृढता प्रकट करता रहा परन्तु १६२२-२३ मे एक अप्रत्याशित आर्थिक सकट ने, जिसे कैंची सकट कहा जाता है, कृषि और औद्योगिक उत्पादन के मूल्यो मे भयकर असन्तुलन उत्पन्न किया। नई आर्थिक नीति ने प्रारम्भ म, जैसा कि हम देख चुके हैं, औद्योगिक ट्रस्टो को व्यापारिक दृष्टि से स्वतन्त्र कर दिया था। उनको अपनी चल पूँजी स्वय प्राप्त करनी होती थी। प्रारम्भिक काल मे चल पूँजी की कमी होने के कारण इन ट्रस्टो ने अपने पास के माल को चाहे जिस भाव पर बेचना शुरू कर दिया। सन् १६२३ म स्थिति ऐसी आई कि कृषि औद्योगिक कीमत समान हो गई लेकिन तुरन्त ही औद्योगिक कीमतो मे वृद्धि हुई और कृषि कीमतो म गिरावट होती गई। इन दोनो प्रकार की असमान कीमतो का क्रम कैंची के फलको के समान एक दूसरे की विपरीत दिशा मे हुआ, अत यह कैंची-सकट था। औद्योगिक पदार्थों के बढते हुये मूल्यो एव कृषि पदार्थों के घटते हुए मूल्यो को यदि ग्राफ पर अकित किया जाता तो जो वक्र रेखायें इन मूल्यातो से बनती थीं उनके बीच का अन्तर दिन प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त हो रहा था। औद्योगिक माल इतना मँहगा हो गया कि किसानो के लिये उसका उपभोग असम्भव हो गया। व्यापार का सन्तुलन ग्रामीण जनता के विपरीत होता गया। कृषको की आय कम होने व औद्योगिक वस्तुओ का मूल्य अधिक होने से औद्योगिक वस्तुओ की माँग मे भारी कमी आ गयी। ट्रस्टो के द्वारा कीमतो मे कमी न होने देने से सभी दुकानो म सामान इकट्ठा होने लगा। दूसरी ओर यह सम्भावना थी कि किसान अन्न व कच्चे माल की बिक्री घटन न दे। अक्टूबर १६२३ तक आर्थिक सकट चरम सीमा तक पहुँच चुका था। यदि १६१३ के भाव मूल्य निर्देशाक १,००० मान लें तो कृषि उत्पादन ८८८ और औद्योगिक उत्पादन ३,७५७ था। वास्तविकता तो यह थी कि परिस्थिति इससे भी अधिक खराब थी। इस प्रकार औद्योगिक उत्पादन और कृषि-उत्पादन के मूल्यो का अनुपात लगभग ३ १ हो गया। भावों मे यह अन्तर उद्योगों के अनुकूल एव कृषि के प्रतिकूल था।

इस कैंची सकट के कारणो के बारे मे अर्थशास्त्री और विचारक एकमत नहीं

हैं। इस पर विरोधी विचारधाराएँ पायी जाती हैं। औद्योगिक मूल्य वृद्धि म उनके निम्न कारण थे :—

(१) स्थापित उत्पादन शक्ति का पूरा प्रयोग नहीं हो रहा था जिससे उत्पादन की प्रति इकाई पर व्यय अधिक पड़ता था।

(२) प्रबन्धहीन और ज्यादा अव्यवस्था लागत मूल्य में वृद्धि करती थी।

(३) एकाधिकार प्राप्त बड़े-बड़े सरकारी उद्योगों ने ऊँचा मूल्य निर्धारण करने की नीति अपनाई। लाभ के लिये उत्पादन' का सिद्धान्त स्वीकृत हो चुका था।

(४) लाभ कमाकर वे (उद्योग) अपनी कार्यशील पूँजी की कमी दूर करना चाहते थे।

(५) युद्धकालीन हानि की पूर्ति का प्रयत्न भी किया गया।

(६) फुटकर व्यापारियों ने अपनी ओर म माल को रोक कर अधिक धन कमाने का पूरा प्रयत्न किया।

इसी प्रकार कृषि क्षेत्र से मूल्यों का गिरना निम्न कारणों से था :—

(१) सोवियत सगठन के साथ कृषि प्रणाली म कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

(२) गृह युद्ध के बुरे प्रभावों से पुनर्निर्माण करने म कृषि को उद्योग से अधिक सुविधा थी। कृषि उत्पादन जितना शीघ्र बढ चला वह उद्योग के लिये कठिन था।

(३) इस समय तक यूरोप के अन्न-भंडार का स्थान रूस ने पुन प्राप्त नहीं किया था।

(४) देशी बाजारों म अनाज की पूर्ति (Supply) की मात्रा अधिक थी।

(५) किसानों को सरकार को कर अनाज म देना पड़ता था इसके बेचने का जो मूल्य राज्य निर्धारित करता, उससे अधिक मूल्य किसान खुले बाजार में अपनी बची हुई फसल का नहीं माँग सकता था।

(६) व्यक्तिगत किसान की मोल भाव करने की शक्ति प्राय उस समय नष्ट हो जाती है जब विशाल सगठित राजकीय संस्थाएँ उनकी एकमात्र खरीददार हो।

(७) आवश्यकताओं का दबाव इतना अधिक था कि किसी भी मूल्य पर जल्दी से जल्दी फसल को बेचना पड़ता था।

इन उपर्युक्त कारणों से कैंची सकट उत्पन्न हुआ। यह आर्थिक सकट समाज व राष्ट्र को किस रूप म प्रभावित कर सका यह वर्णनीय है।

इस सकट के दुष्प्रभावों के रूप मे यह कहा जा सकता है कि मूल्य वृद्धि से हार कर किसान ने अपनी खपत घटा दी और गृह उद्योगों से आवश्यकताओं की पूर्ति

आरम्भ कर दी। उसका दोहरा प्रभाव पड़ा। औद्योगिक माँग में कमी आ गई। साथ ही साथ किसानों ने अनाज और कच्चा माल बेचना भी बंद कर दिया क्योंकि इतने गिरे हुए मूल्य पर उत्पादन बेचना बेकार था, जबकि परिस्थिति यह थी कि उपभोग की निर्मित वस्तुएँ उसकी क्षमता से बाहर थी। इस प्रकार की परिस्थिति में सोवियत ढाँचे का विनाश निश्चित था।

संकट को रोकने के उपाय (Remedies)—इस आर्थिक संकट को रोकना राजनीतिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से अनिवार्य हो गया। जहाँ एक ओर अधिक उत्पादन वृद्धि पर लोक-कल्याण आधारित था वहाँ दूसरी ओर श्रमिकों के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध व सहयोग पर समाजवाद व शासन की नींव आधारित थी। अतः निम्न उपायों का सहारा लेकर इस संकट को दूर करने का प्रयत्न किया गया —

(१) राज्य बैंक द्वारा विभिन्न उद्योगों को दी जाने वाली साख की मात्रा में कमी कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न व्यवसायों को मुद्रा की कमी का अनुभव हुआ और उन्हें अपना संग्रहीत माल बेचना पड़ा।

(२) विभिन्न वस्तुओं की अधिकतम कीमतें निर्धारित की गयी।

(३) देश में वस्तुओं की कमी को दूर करने के लिये विदेशों से सस्ती वस्तुओं का आयात किया गया।

(४) व्यक्तिगत व्यापार को सीमित करके राज्य एवं सरकारी व्यापार के माध्यम को अपनाया गया।

(५) औद्योगिक मूल्यों में कमी और कृषि मूल्यों में वृद्धि के प्रयत्न किये गये।

(६) कृषि उत्पादन के व्यापार के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकार ने व्यक्तिगत व्यापारियों की सुविधाओं में धीरे-धीरे कमी कर दी और उसके फलस्वरूप १९२२-२३ में कुल व्यापार का जो ७५ २ प्रतिशत इनके हाथ में था वह घटकर सन् १९२७-२८ में २२ ४ प्रतिशत रह गया। कृषि क्षेत्रों में भी केन्द्रीय राजकीय संगठनों के द्वारा बड़े पैमाने पर अन्न और औद्योगिक फसलों को खरीदने का प्रबन्ध हुआ। सरकारी क्रेताओं ने १०० प्रतिशत कपास, १०० प्रतिशत चुकन्दर, ९८ प्रतिशत फ्लैक्स, ९८ प्रतिशत तम्बाकू, ८० प्रतिशत चमड़ा, ९२ प्रतिशत रोयेंदार खाल, का व्यापार अपने हाथ में ले लिया। कठोर मूल्य निर्धारण और अधिक माँग वाले औद्योगिक उत्पादनों को बड़ी मात्रा में ग्रामीण क्षेत्रों में भेजकर १९२८ तक सरकार द्वारा संकट की समाप्ति की घोषणा कर दी गयी। यद्यपि वास्तविकता यह थी कि यह संकट कुछ और अवधि तक चला और स्टालिन को बाद में राशनिंग पद्धति का सहारा लेना पड़ा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह सकट जहाँ आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था, राजनीतिक रूप मे भी इसका महत्व कम न था। इसी सकट ने दल को दो भागों में विभाजित-सा कर दिया। दल का एक भाग उद्योगो को इतना महत्व देता था कि उसे किसानो की कुछ भी परवाह नहीं थी और दल का दूसरा भाग यह चाहता था कि चाहे किसान अभी थोड़ा विरोधी है परन्तु उसे समाजवादी सिद्धान्तो के अन्तर्गत लाने के लिये पर्याप्त सुविधायें दी जानी चाहिये और उसे धीरे-धीरे समाजवादी ढाँचे मे ढालने का प्रयत्न करना चाहिये।

नवीन आर्थिक नीति की समीक्षा

सम्भवत एक समस्या यह प्रस्तुत होती है कि इस नीति को किस श्रेणी मे सम्मिलित किया जाय। इस प्रकार की आर्थिक नीति समाजवादी तत्व का प्रमुख भाग था क्योकि सभी बड़े एव मध्यम पैमाने के उद्योगो पर राज्य का नियत्रण था, किन्तु कृषि एव स्वतत्र व्यापार के रूप मे पूँजीवादी तत्व भी स्पष्ट थे। इस प्रकार यह सक्रमणकालीन मिश्रित व्यवस्था (Transitional Mixed Economy) थी। एक प्रकार से यह उसी नीति का प्रतिरूप थी जो युद्धकालीन साम्यवादी नीति से पहले अपनायी गयी थी और जिसे नियन्त्रित पूँजीवादी नीति की सज्ञा दी गई थी। किन्तु कुल मिलाकर यह नीति उससे कुछ भिन्न थी क्योकि पूँजीवादी तत्वो को कुछ मान्यता देते हुए भी मूलभूत समाजवादी सिद्धान्तो की अवहेलना नही की गयी थी। केवल कुछ काल के लिये जब तक कि युद्ध-कालीन साम्यवाद के काल मे बिगड़ी हुई अर्थ-व्यवस्था मे सुधार न आ जाय, नवीन आर्थिक नीति मे कुछ उदारता का पुट दिया गया था और सन् १९२४ तक रूसी अर्थ-व्यवस्था मे इस नीति के फलस्वरूप सुधार के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे। किन्तु लेनिन के अनेक साथी इस उदारतावादी नीति और उसके परिणामों से सन्तुष्ट नही थे। वे कठोर नीति के द्वारा रूस के आर्थिक विकास की सीमा को बहुत ऊँचा ले जाना चाहते थे। यद्यपि सन् १९२५ तक कृषि एव उद्योगो मे सन् १९१३ के स्तर तक उत्पादन पहुँच चुका था किन्तु इससे क्रान्तिवादियों को कितना सन्तोष मिल सकता था। दबे रूप मे इस नीति के विरुद्ध पहले से ही प्रतिक्रिया चल रही थी, किन्तु सन् १९२४ मे लेनिन की मृत्यु के पश्चात् नवीन आर्थिक नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया खुले रूप मे होने लगी। स्टालिन ने सत्तारूढ होते ही भारी औद्योगीकरण और आर्थिक योजनाकरण की ओर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया जिसमे ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का सामूहीकरण भी सम्मिलित था। स्टालिन पूर्ण समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिये शीघ्र औद्योगीकरण को अति आवश्यक मानता था और उसने सन् १९२८ तक नवीन आर्थिक नीति का लगभग पूर्ण रूप से परित्याग कर दिया। उसके बाद नियोजित ढग से रूस का आर्थिक विकास आरम्भ हुआ जिसका विस्तृत विवेचन आगे के पृष्ठों मे किया

गया है। वर्तमान में रूस में जिस ढग की व्यवस्था है उससे प्रतीत होता है कि नवीन आर्थिक नीति तत्कालीन परिस्थितियों के लिये कदाचित अपरिहार्य थी। युद्धकालीन साम्यवाद के अधीन अनुभवहीनता और जल्दबाजी मे जो हानि हुई थी, उसे नवीन आर्थिक नीति ने बहुत सीमा तक पूरा कर दिया था। औद्योगिक एव कृषि उत्पादनो मे सुधार हो चुका था, और सन् १९२८ तक रूस में ऐसा वातावरण बन चुका था जिससे कि भविष्य मे पूर्ण समाजवादी सिद्धान्तो की स्थापना के लिये सफल प्रयास किये जा सकें।

८

आर्थिक नियोजन का प्रारम्भ

[BEGINNING OF ECONOMIC PLANNING]

प्रस्तावना

आज हम योजना युग मे जीवित हैं। आयोजन हमारा मूल मन्त्र, विचार का विषय और समय की आवश्यकता है। चाहे हम समाजवादी हों या पूँजीवादी, उदारदली या अनुदारदली, श्रमवादी हों या गांधीवादी, नियोजन की सफलताओं के कायल हैं और यही कारण है कि किसी न किसी रूप मे हम योजना के निर्माण मे भागीदार हैं। आज वह युग तो लद चुका जब कि योजना शब्द की सैद्धान्तिकता और व्यावहारिकता का मखौल उड़ाया जाता था। न आज यह आर्थिक पुन निर्माण का प्रचारात्मक शस्त्र ही रह गया है। विगत ३०-३५ वर्षों के योजना के इतिहास ने उन लोगों की भी आँखें खोल दी हैं जो योजना को कल्पना की वस्तु समझते थे, सोवियत रूस की योजनाओं ने वहाँ के आर्थिक जीवन मे जो क्रान्ति उपस्थित की है, वह उन आलोचकों की शकाओं, सन्देहों का ऐसा प्रत्युत्तर है जिसकी सत्यता से इनकार नहीं किया जा सकता। नाजी जर्मनी के बढ़ते हुए साम्राज्यवादी चरणों का क्रूर प्रहार सहन करने का साहस दो पचवर्षीय योजनाओं को सफलतापूर्वक आयोजित करने वाला सोवियत रूस ही कर सकता था। जिस सोवियत देश के सम्बन्ध मे सन् १९३९-४० तक पाश्चात्य देशों की भ्रान्त धारणा थी उसने हिटलर जैसे तानाशाह के दाँत खट्टे कर दिये यह आयोजन का प्रतिफल था नहीं तो कोई आश्चर्य नहीं कि विश्व का इतिहास कुछ और ही होता। आज तो तथ्य निर्विवाद सा है कि पूँजीवादी देशों ने भी योजना के सिद्धान्त को अपना कर अपनी अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ करने का सफल प्रयत्न किया है। संयुक्तराज्य अमेरिका, इंगलैंड इस बात के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं जिन्होंने आर्थिक सकटों से मुक्ति पाने के लिये इसी शस्त्र का सहारा लिया था। आज की गतिशील और विकसित अर्थ-व्यवस्था के युग मे योजना आर्थिक अनिवार्यता और कठिनाइयों की रामबाण औषधि है। यह बात विशेषत अविकसित और अर्द्ध विकसित एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रों के लिये और भी सही उतरती है जिन्होंने विगत

बीस वर्षों मे साम्राज्यवादी जुए को उतार फेंका है और जो अपने निवासियों के आर्थिक जीवन स्तर को उन्नत करने के लिये दृढ सकल्प है। ऐसे देशो के लिये सोवियत रूस की योजनाये महान प्रेरणा स्रोत हैं जो कोटि-कोटि श्रमिको, किसानों के जीवन का आदर्श रूप प्रदान कर सकी है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिये सोवियत योजनाओ की सफलता अत्यन्त प्रेरणादायक है। भारत मे आर्थिक नियोजन का प्रारम्भ रूसी प्रेरणा का ही प्रतिफल है।

नियोजन के प्रारम्भ में सोवियत आर्थिक स्थिति

रूस मे आर्थिक नियोजन सन् १६२८ से आरम्भ हुआ। इस प्रकार अब रूस आर्थिक नियोजन के क्षेत्र मे चालीस वर्ष का अनुभव प्राप्त कर चुका है। इस अवधि मे वहाँ की आर्थिक अवस्था मे बहुत अधिक उन्नति हुई है। राजनीतिक एव सामाजिक सुधारो के साथ-साथ अर्थ व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र मे प्रगति की गयी है। आज रूस आर्थिक दृष्टि से विश्व का द्वितीय शक्तिशाली राष्ट्र है तथा कतिपय क्षेत्रो मे उसकी प्रगति सयुक्त राज्य अमरीका से भी अधिक मानी जाती है। रूस की इस सफलता की पृष्ठभूमि मे अनेक कष्टो अभावो, परिवर्तनो का इतिहास जुडा हुआ है, किन्तु फिर भी सोवियत जनता ने समाजवादी आर्थिक नियोजन को सफल बनाकर असीम साहस, त्याग और अपूर्व कार्य क्षमता का परिचय दिया है। आज रूसी अर्थव्यवस्था का जो स्तर है यदि हम उसकी तुलना सन् १६२८ से पूर्व सोवियत अर्थव्यवस्था के स्तर से करें तो हमे रूसी प्रयत्नो को और भी अधिक महत्व प्रदान करना होगा। उस समय रूस की आर्थिक स्थिति बहुत अधिक गिरी हुई थी। उद्योग, कृषि, व्यापार, यातायात आदि सभी का स्तर बहुत निम्न था।

१. उद्योग

सन् १६२८ मे कारखानो मे काम करने वाले श्रमिको का प्रतिशत कुल जनसख्या के अनुपात म केवल १८ था। शेष ८२ प्रतिशत व्यक्ति कृषि एव अन्य कार्यों मे लगे हुये थे। नवीन आर्थिक नीति के फलस्वरूप सन् १६२५-२६ तक औद्योगिक उत्पादन का यह स्तर प्रथम महायुद्ध से पूर्व के स्तर तक पहुँच गया था, किन्तु सोवियत नेता अर्थव्यवस्था को बहुत ऊँचा उठान के प्रति दृढ सकल्प थे और वे चाहते थे कि देश म भारी औद्योगीकरण के लिये सुदृढ आधार तैयार किया जाय। अत सन् १६२५ से नवीन आर्थिक नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया होन लगी और सन् १६२७ तक लेनिन ने इस नीति को समाप्त कर दिया।

यद्यपि अनेक छोटे एव मध्यम आकार के कारखानो का विराष्ट्रीयकरण (Denationalisation) कर दिया था, किन्तु निजी पूँजीपतियो को सदैव यह भय था कि भविष्य म राज्य सभी उद्योगो को ले लेगा। अत वे उद्योगो म अतिरिक्त पूँजी विनियोग स बचते थे। पूँजी की कमी घिस पिटे पुरान यन्त्र, शक्ति का अभाव, यातायात की कठिनाइयाँ, कच्चे माल एव खनिज धातुओं की कमी आदि कठिनाइयाँ

अभी पूरी तरह से दूर नहीं हुई थी। उद्योगों के ढाँचे एवं प्रबन्ध के विषय में भी कोई निश्चित नीति नहीं निर्धारित की गयी थी। यही कारण था कि लेनिन ने औद्योगीकरण तथा विशेषरूप से विद्युतीकरण की महत्वाकांक्षी योजनाओं पर विचार करना और उन्हें लागू करके उनके द्वारा सोवियत उद्योगों के स्तर को अगले कुछ वर्षों में ही उन्नत करने का सकल्प कर लिया था।

कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग १७.६ प्रतिशत निजी कारखानों या उपक्रमों द्वारा तथा शेष ८२.४ प्रतिशत राजकीय कारखानों द्वारा उत्पादित किया जाता था। प्रथम योजना लागू होने के बाद निजी उपक्रमों द्वारा उत्पादित माल का प्रतिशत उत्तरोत्तर गिरता गया और सन् १९३८ तक गिरकर यह केवल ०.२ प्रतिशत रह गया।

इस अवधि में गोस्प्लान (Gosplan) उद्योगों के लिये उत्पादन के लक्ष्यों को निर्धारित करने में व्यस्त रहा। इसके लिये नियंत्रक अंकों (Control Figures) की प्रणाली अपनाई गयी। सन् १९२७-२८ से पूर्व के तीन वर्षों में उद्योगों द्वारा वार्षिक उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित किये गये। इस प्रकार भावी पंचवर्षीय योजनाओं के लिये उद्योगों द्वारा निर्धारित इन वार्षिक लक्ष्यों ने एक पृष्ठभूमि तैयार करने में सहयोग दिया। इसी काल में वेसेनखा (Vesenkha) का दो बार पुनर्गठन भी किया गया। राजकीय उद्योगों के केन्द्रीय प्रशासन को समाप्त कर दिया गया और उद्योग की प्रत्येक शाखा के लिये पृथक् प्रशासन अथवा समितियों की नियुक्ति की गयी। अत सन् १९२८ तक सोवियत उद्योग का स्तर क्रान्ति से पूर्व के स्तर से कहीं ऊँचा उठ चुका था।

२. कृषि

रूस में समस्त भूमि का समाजीकरण सन् १९१८ में ही किया गया और इस नीति के अधीन बड़े-बड़े भूस्वामियों की भूमि को छोटे कृषकों में वितरित किया गया। इससे छोटे कृषकों की सख्या में वृद्धि हुई किन्तु कृषि उत्पादन में विशेष वृद्धि न हो सकी। नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत कृषि उत्पादन को बढ़ाने के उद्देश्य से कृषकों को अनेक सुविधायें और रियायतें दी गयी। कृषकों को सुविधानुसार कृषि प्रणाली अपनाने, खेतों को दूसरे से पट्टे पर लेने तथा वेतनभोगी श्रमिकों को रखकर कृषि करवाने की छूट भी दी गयी, फिर भी कृषि उत्पादन में आशातीत वृद्धि न हो सकी।

सन् १९२८ में कृषि उपज की दशा अत्यन्त शोचनीय थी क्योंकि रूस के कुछ भागों में वर्षा का अभाव रहा। आर्थिक कारणों से भी कृषकों में अधिक उपज पैदा करने के लिये उत्साह का अभाव था क्योंकि औद्योगिक मूल्यों की तुलना में कृषि पदार्थों के मूल्य बहुत कम थे—अर्थात् कृषि मूल्यों एवं औद्योगिक मूल्यों का अनुपात कृषकों के लिये लाभदायक नहीं था। नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत यद्यपि

वसूली कर प्रणाली को समाप्त कर दिया गया था और उसके स्थान पर किसानों से वस्तु के रूप में अन्न-कर लिया जाता था फिर भी न तो कुल कृषि उत्पादन में ही वृद्धि हुई और न राज्य को ही शहरों में वितरित करने के लिये पर्याप्त खाद्यान्नों को प्राप्त करने में सफलता मिल सकी। कृषि क्षेत्र में पिछले दस वर्षों में किये गये अनेक प्रयोगों एवं परिवर्तनों ने तथा नवीन आर्थिक नीति के अधीन निजी कृषकों के हित में अपनाई गयी उदार नीतियों ने सोवियत कृषि के स्तर को ऊँचा उठाने में कोई सहयोग नहीं दिया। सन् १९१३ की तुलना में सन् १९२८ में कृषि उत्पादन केवल ८५ प्रतिशत ही था।

कृषि उत्पादन की हीनावस्था को देखते हुए ही लेनिन ने सन् १९२८ में कृषि नीति में आमूल चूल परिवर्तन कर दिया। अब छोटे एवं मध्यम निजी किसानों के बजाय बड़े बड़े राजकीय फार्मों अथवा सामूहिक-फार्मों की स्थापना को प्राथमिकता दी गयी ताकि उनमें मशीनीकरण के आधार पर अधिक अन्न एवं औद्योगिक कच्चा माल पैदा किया जा सके। खाद्यान्नों एवं औद्योगिक कच्चे माल की माँग को देखते हुए सोवियत सरकार के लिए कृषि नीति में ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन करना अति आवश्यक था।

सन् १९२८ में कुल कृषि उत्पादन में राजकीय फार्मों एवं सामूहिक फार्मों का प्रतिनिधित्व दो प्रतिशत से भी कम था, तथा शेष ९८ प्रतिशत कृषि उत्पादन छोटे और बड़े निजी किसानों द्वारा किया जाता था। किन्तु अगले दो वर्षों में निजी कृषकों की भूमि एवं भूसम्पत्ति को सामूहिक संगठनों के अन्तर्गत पुनर्गठित कर देने का प्रयास किया गया। लगभग ढाई करोड़ स्वतन्त्र किसानों की भूमि को अधिग्रहीत करके उसके सुधार पर लगभग एक लाख सामूहिक कृषि फार्मों की स्थापना की गयी। फलतः सन् १९३७ तक समस्त कृषक परिवारों का ९३ प्रतिशत भाग सामूहिक कृषि फार्मों के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा चुका था।

३. व्यापार

क्रान्ति के फलस्वरूप रूस का विदेशी व्यापार प्रायः छिन्न भिन्न हो चुका था। सन् १९२१ में रूस का आयात निर्यात से दस गुना अधिक था और इस प्रकार रूस को अत्यन्त प्रतिकूल भुगतान शेष का सामना करना पड़ रहा था। प्रतिकूल विदेशी व्यापार के कारण रूस को पन्द्रह करोड़ रूबल का घाटा सहन करना पड़ रहा था। सुरक्षित कोष सीमित था और विदेशी भुगतान संकट बढ़ रहा था जिसे निर्यात द्वारा पूरा करना सम्भव नहीं हो रहा था। विदेशी सरकार ऋण देने को तैयार नहीं थी।

नवीन आर्थिक नीति के बाद में रूस ने अनेक देशों की सरकारों से विदेशी व्यापार सम्बन्धों में सुधार करने के प्रयत्न किए। विदेश व्यापार का राष्ट्रीयकरण तो सन् १९१८ में ही किया जा चुका था। सन् १९२४ में ब्रिटेन, इटली, नार्वे, आस्ट्रिया,

चीन, डेनमार्क आदि देशों से व्यापार सधियो पर हस्ताक्षर किये गये। परिणामस्वरूप सोवियत विदेशी व्यापार मे बहुत अधिक वृद्धि हुई। सन् १९२१ मे विदेशी व्यापार केवल १८ करोड रूबल का था जो सन् १९२४ मे ८७ करोड रूबल और सन् १९२८ मे १३७ करोड रूबल तक पहुँच गया। भारी औद्योगीकरण की नीति के कारण इन वर्षों मे रूस द्वारा किये गय आयातो म मशीनो एव यन्त्रो का अनुपात बहुत अधिक रहा। ६

४ परिवहन

सन् १९२८ तक अन्य देशों की तुलना मे सोवियत यातायात के साधनो की दशा अत्यन्त गिरी हुई थी। जारशाही के समय मे योरोपीय रूस मे रेलो का विकास किया गया। मास्को के आस पास सडक यातायात की सुविधाएँ भी उपलब्ध थी। इसका कारण यह था यूक्रेन मास्को यूराल क्षेत्र ही उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे और विदेशी व्यापार मुख्यत बाल्टिक सागर के तटवर्ती बन्दरगाहों के द्वारा ही होता था। सोवियत क्रान्ति के समय यातायात व्यवस्था ईंधन के अभाव मे बुरी तरह छिन्न भिन्न हो गया। युद्धकालीन साम्यवादी नीति के समय मे भी इस ओर विशेष ध्यान नही दिया गया, क्योंकि सरकार अन्य आर्थिक एव राजनीतिक समस्याओ में उलझी रही।

नवीन आर्थिक नीति के काल मे सरकार ने इस ओर ध्यान देना आरम्भ किया, किन्तु इस दिशा मे की गयी प्रगति अत्यन्त सामान्य रही। उखडे हुये अथवा बन्द कर दिय गये पुराने रेल एव सडक मार्गों की मरम्मत की गयी और उन्हे फिर से चालू किया गया। यातायात की कुछ ऐसी परियोजनायें थी जिन पर सन् १९१७ से पूर्व काम चालू कर दिया गया था। इन परियोजनाओ को सन् १९२८ के पूर्व के वर्षों मे पूरा किया गया। यूराल क्षेत्र को साइबेरिया एव मध्य एशिया से जोड़ने वाले रेल पथो का भी पुनरुद्धार किया गया। योरोपीय रूस एव साइबेरिया के आन्तरिक जल मार्गों के विकास की ओर भी इस अवधि मे ध्यान दिया गया। सन् १९२८ तक की अवधि मे यात्री एव माल परिवहन के आकार मे पचास प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई। इसी अवधि मे रेल-पथ की लम्बाई मे लगभग बीस प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सन् १९२८ तक यद्यपि योरोपीय रूस के प्रमुख नगरो मे रेल सडक अथवा जल यातायात सुविधायें उपलब्ध थी, किन्तु ब्रिटेन अथवा जर्मनी के स्तर की तुलना मे इनकी स्थिति गिरी हुई थी। रेल इन्जिन, रेल के डिब्बो, जलयानो एव मोटरो के निर्माण मे अभी विशेष प्रगति नही हुई थी। वायु यातायात तो इस समय आरम्भ ही हुआ था।

५. राष्ट्रीय आय

राष्ट्रीय आय मे क्रान्ति के काल मे तथा युद्धकालीन साम्यवाद के समय मे तेजी से कमी हुई थी। अव्यवस्था एव प्रबन्ध कुशलता के गिरते हुये स्तर के कारण

राष्ट्रीय उत्पादन म भयकर कमी हो चुकी थी। सन् १९२१ मे रूस की राष्ट्रीय आय सन् १९१३ की तुलना म लगभग एक तिहाई ही रह गयी थी। किन्तु नई आर्थिक नीति के फलस्वरूप इसम उसके बाद कुछ वृद्धि होना आरम्भ हुआ और सन् १९२८ तक राष्ट्रीय आय क्रान्ति पूर्व के स्तर से २५ प्रतिशत अधिक हो गयी थी। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि सन् १९२८ से पहले के दस वर्षों मे केवल उस क्षति की पूर्ति की जा सकी था जो गडबड एव अव्यवस्था तथा अराजकता के कारण इस काल म हुई थी। अर्थात् सन् १९२८ तक रूसी अर्थव्यवस्था क्रान्ति पूर्व के स्तर से कुछ ऊपर आ चुकी थी।

६ मूल्य स्तर

इस अवधि मे मूल्य स्तर म भी अनेक बार उतार-चढाव हुये। सन् १९२२ मे **बिक्री सकट (Sales Crisis)** का सामना करना पडा जिसके कारण औद्योगिक उत्पादनो के मूल्य कृषि उत्पादन की तुलना मे गिर गये। उद्योगो द्वारा कच्चे माल एव खाद्यान्नों के लिये भारी कीमत दी जाने लगी जबकि क्रय शक्ति के अभाव मे ग्रामीण क्षेत्रो मे औद्योगिक पक्के माल की माँग नही थी। निर्यात भी निरन्तर गिरता जा रहा था। बिक्री सकट से जैसे ही मुक्ति मिली तो **कैंची सकट (Scissors Crisis)** का सामना करना पडा। इसम औद्योगिक मूल्यो एव कृषि मूल्यो मे फिर असतुलन उत्पन्न हो गया। इस बार यह अनुपात कृषि उत्पादन के विपरीत एव औद्योगिक उत्पादन के पक्ष मे था। औद्योगिक मूल्यो के अनुपात म कृषि मूल्यो का स्तर निरन्तर गिरने लगा। इसके अनेक कारण थ जिनम मुद्रा प्रसार, कृषि मूल्यो का निम्न स्तर पर नियत्रण, औद्योगिक उत्पादन म माँग के अनुपात म कमी प्रमुख थी। इस सकट को दूर करने के लिये अनेक उपाय किय गये जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है। सन् १९२४ तक यह सकट दूर हो चुका था।

७ श्रम

इस अवधि म श्रमिको की दशा को सुधारने के लिय विशेष प्रयत्न किय गये। सोवियत क्रान्ति को सफल बनाने म श्रमिको का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा था। अत श्रमिको की सामाजिक एव आर्थिक स्थिति म सुधार लाने के प्रयत्न सरकार द्वारा किये गये तथा उद्योगो क प्रबन्ध म भी श्रमिको को हिस्सा दिया जाने लगा। प्रारम्भ म जब तक युद्धकालीन साम्यवादी नीति अपनाई जाती रही, औद्योगिक श्रमिकों पर कडा अनुशासन रखा गया। उनकी स्थिति लगभग सैनिको जैसी रही। किन्तु नवीन आर्थिक नीति के समय म श्रमिक सघो को प्रोत्साहित किया गया। इस समय श्रम सघो के विषय म एक सैद्धान्तिक विवाद उत्पन्न हो गया। एक मत के अनुसार श्रमिक सघो को पूर्ण स्वतन्त्रता दिया जाना आवश्यक था तथा इस मत के अनुसार कारखाना का प्रबन्ध श्रमिक सघो के हाथो म दिया जाना चाहिये था। दूसरा मत यह चाहता था कि श्रमिक सगठनो को राज्य का ही एक अग बना दिया जाना

चाहिये। नवीन आर्थिक नीति के काल मे इन दोनो ही मतो को न मानते हुये एक मध्यम मार्ग का अनुसरण किया गया। लेनिन इस तथ्य से अवगत था कि श्रमिको को अत्यधिक स्वतत्रता देकर अनुभवहीन व्यक्तियो के हाथो मे कारखानो का प्रबन्ध सौंप देने से उत्पादन नही बढाया जा सकेगा और इससे समाजवाद की स्थापना मे बाधा पहुँचेगी। दूसरी ओर उसका यह विचार था कि श्रमिक सघो को राजकीय सस्थाओ का रूप देना भी उस समय उचित नही था। अत श्रमिक सघो की सदस्यता ऐच्छिक रखी गयी। श्रमिक सघ प्रबन्धको एव श्रमिको के बीच एक कडी का काम करने लगे ताकि सदस्यो के हितो की रक्षा कर सकें। औद्योगिक विकास के साथ-साथ श्रमिक सघो की सदस्यता बढने लगी उन्हे रोजगार प्रदान करने मे तथा सामाजिक सुरक्षा के लाभो मे कुछ वरीयता दी जाने लगी। सन् १६२५ के बाद श्रमिको का दो तिहाई भाग श्रम सघो की सदस्यता के अन्तर्गत आ गया। सन् १६२८ मे श्रम सघो की सदस्यता ११० लाख से कुछ अधिक थी।

इस समय तक यह स्वीकार कर लिया गया था कि श्रमिक सघो का मुख्य कार्य कार्य-कुशलता मे वृद्धि करना, समाजवादी व्यवस्था की स्थापना म सरकार को सहयोग देना और राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि करना था। उत्पादकता बढाने के लिये कुशल प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी जिसमे इन सघो का सक्रिय सहयोग रहता था। कारखानो के प्रबन्ध मे प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नही कर सकते थे। प्रत्येक श्रमिक की मजदूरी उसकी कुशलता एव कार्य दक्षता को देखकर प्रबन्धको द्वारा निश्चित की जाती थी, यद्यपि श्रमिक सघो की केन्द्रीय परिषद द्वारा प्रत्येक क्षेत्र के लिये वेतन के उच्चतम एव न्यूनतम मानक निर्धारित किये हुए थे। सन् १६२८ मे औद्योगिक श्रमिक की औसत आय सात सौ आठ सौ रूबल प्रति वर्ष थी। किन्तु कृषि क्षेत्र मे काम करने वाले श्रमिको की औसत आय इससे आधी ही थी।

इस प्रकार सन् १६२८ तक रूस औद्योगिक विकास के लिये आवश्यक राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक आधार तैयार कर चुका था। सन् १६१८ के बाद इन दस वर्षों मे रूस के सभी क्षेत्रो मे मूलभूत परिवर्तन हो चुके थे। अनेक प्रयोगो, परीक्षणो एव परिवर्तनो तथा सिद्धान्तो और विचार-धाराओ की उथल पुथल के उपरान्त जो एक लक्ष्य सोवियत नेताओ के समक्ष स्पष्ट रूप मे था वह था राष्ट्र का शीघ्र आर्थिक विकास करना। प्राय सभी इसके लिये उत्सुक थे। इस लक्ष्य को किस प्रकार प्राप्त किया जाय, इस विषय मे कोई सुनिश्चित नीति अथवा योजना अब तक नही बन पाई थी। विद्युतीकरण के लिये गोयलरों (Goelro) अथवा छुट-पुट आर्थिक योजनाओ के लिये गोसप्लान (Gosplan) का निर्माण हो चुका था। इन्ही प्रयत्नो ने धीरे-धीरे एक सुनिश्चित पचवर्षीय योजना का रूप ले लिया। रूस के पास ऐसी योजना के निर्माण एव क्रियान्वयन के लिये साधन थे और समाजवादी व्यवस्था के अधीन शीघ्रातिशीघ्र आर्थिक उन्नति करने के लिये लोगो के मन मे लगन एव उत्कट

अभिलाषा थी। देश में एक कठोर अनुशासित केन्द्रीय नेतृत्व स्थापित हो चुका था। पहली योजना लागू करते समय रूस के नेताओं के मन में शायद ही यह विचार रहा हो कि ये योजनायें आगे चल कर रूस के आर्थिक विकास का एक आधार बन जायगी और इनकी सफलता से प्रेरित होकर विश्व के अन्य देश भी अपने विकास के लिये आर्थिक विकास के मार्ग का अनुसरण करेंगे।

रूस की विभिन्न योजनाओं का क्रम

जैसा कि पहले कहा जा चुका है रूस के विद्युतीकरण की राजकीय योजना (Goelro) का निर्माण सन् १९२० में ही किया जा चुका था। गोसप्लान (Gosplan) की भी स्थापना सन् १९२१ में हो चुकी थी और इस संस्था ने सन् १९२५ के बाद नियन्त्रक अंकों (Control Figures) के आधार पर औद्योगिक उत्पादन के लिये वार्षिक लक्ष्यों के निर्धारण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु पंचवर्षीय योजनाकरण का श्रीगणेश सन् १९२८ में हुआ जबकि रूस में प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू की गयी। उसके बाद से वहाँ सात योजनायें लागू की जा चुकी हैं तथा आठवीं पंचवर्षीय योजना इस समय चल रही है जो सन् १९७० में सम्पूर्ण होगी। रूस की विभिन्न योजनाओं का क्रम इस प्रकार रहा है

१. प्रथम पंचवर्षीय योजना (१९२८-१९३२)
२ द्वितीय पंचवर्षीय योजना (१९३३ १९३७)
३ तृतीय पंचवर्षीय योजना (१९३८-१९४२)
४ चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (१९४६-१९५०)
५. पंचम पंचवर्षीय योजना (१९५१-१९५५)
६ छठी त्रिवर्षीय योजना (१९५६-१९५८)
७ सप्तम सातवर्षीय योजना (१९५९-१९६५)
८. अष्टम पंचवर्षीय योजना (१९६६-१९७०)

उल्लेखनीय है कि द्वितीय महायुद्ध के कारण सन् १९४२ के बाद के तीन वर्षों में रूस द्वारा योजनावकाश (Plan Holiday) रखा गया तथा चौथी योजना सन् १९४६ में लागू की गयी। इसी प्रकार छठवीं योजना जो प्रारम्भ में पाँच वर्ष की अवधि के लिये बनाई गयी थी, कुछ राजनीतिक कारणों से तीन वर्ष में ही समाप्त कर दी गयी। फलतः सातवीं योजना सन् १९५९ से आरम्भ हुई और इसकी अवधि सात वर्ष की रखी गई।

अगले अध्यायों में प्रत्येक योजना के विषय में विस्तार पूर्वक लिखा गया है।

९

प्रथम पचवर्षीय योजना

(१९२८ से १९३२ तक)

[FIRST FIVE YEAR PLAN]

"प्रथम पचवर्षीय योजना का मूल कर्तव्य यह था कि देश में ऐसे उद्योग-धन्धों का निर्माण हो जिनसे कि समाजवादी रीति से, सम्पूर्ण उद्योग धन्धों को ही नहीं वरन् यातायात और कृषि को भी पुन सुसज्जित तथा पुन सगठित किया जा सके। —स्टालिन

'The Soviet Union be converted from a country which imports machines to a country which produces machines The Soviet Union in the midst of capitalist encirclement should not become an economic appendage of the Capitalist World economy, but an independent economic unit which is building Socialism"

यह तो सर्वविदित सत्य है कि आर्थिक नियोजन आज की आर्थिक बुराइयो की रामबाण औषधि है इस पूँजीवादी आर्थिक सकटो के युग मे यदि कोई अप्रत्याशित समाधान का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है तो वह आर्थिक नियोजन ही कहा जा सकता है। सोवियत रुस ने १९१७ की अक्टूबर क्रांति के पश्चात् अपने कोटि-कोटि निवासियो की क्षुधा, निर्धनता, निरक्षरता को दूर करने के लिये कई छोटे मोटे आर्थिक कार्यक्रम स्वीकार किये। परन्तु चारो ओर पूँजीपति और साम्राज्यवादी देशो से घिरे हुए सोवियत सघ को अपने अस्तित्व को बचाने के लिये पुरजोर प्रयत्न करना था। रूसी क्रांति के महान विधायक लेनिन की मृत्यु के पश्चात् देश के शासन की बागडोर स्तालिन के हाथ मे आई। स्तालिन लेनिन के समान ही उच्च मेघा शक्ति सम्पन्न व्यक्ति था। उसने क्रान्ति के दिनों मे लेनिन के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य किया था। वैसे तो पिछले अध्याय मे हम वर्णन कर चुके हैं कि आर्थिक नियोजन की शुरूआत किसी न किसी रूप मे लेनिन के समय हो चुकी थी, परन्तु लेनिन

आर्थिक नियोजन के सैद्धान्तिक स्वरूप को व्यावहारिक रूप देने से पहले ही चल बसे। स्तालिन ने आर्थिक नियोजन का क्रमागत विकास और विस्तार किया जिससे उन सभ्य और आर्थिक दृष्टि से प्रगतिशील कहे जाने वाले राष्ट्रों की आँखें भी खुल गई और उन्हे भी आर्थिक नियोजन के प्रत्यक्ष परिणामो पर विश्वास करना पड़ा।

प्रथम पचवर्षीय-योजना

विश्व के आर्थिक इतिहास मे प्रथम बार देश के प्राकृतिक साधनो का उनके निवासियो के अनुरूप पचवर्षीय कार्य-क्रम प्रस्तुत किया गया। यह कार्य-क्रम रूस की प्रथम पचवर्षीय योजना के रूप मे सामने आता है।

१. काल—इस योजना का कार्यकाल सन् १९२८-३३ रखा गया, लेकिन जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सोवियत रूस का सर्वहारा देश चतुर्दिक पूँजीपति देशो से आक्रान्त था, योजना की पूर्ति समय से पूर्व करना उचित समझा गया। देश निवासियो के त्याग, धैर्य और कठिन परिश्रम के फलस्वरूप योजना का कार्यकाल पाँच वर्ष से घटाकर चार साल हो गया।

२. उद्देश्य—प्रथम पचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य भारी और मूल-भूत उद्योगो व प्रतिरक्षा उद्योगो की स्थापना व विकास करना था। साथ ही कृषि का सामूहीकरण एव यन्त्रीकरण भी अनिवार्य समझा गया। मानवीय साधनो का देश के औद्योगीकरण मे महत्वपूर्ण योग हो सके एतदर्थ जनता की तीव्रगति से प्राविधिक शिक्षा योजना का प्रबन्ध करना था।

३. लक्ष्य—इस योजना के अन्तर्गत कृषि व औद्योगिक उत्पादन वृद्धि द्वारा पाँच वर्ष मे राष्ट्रीय आय का द्विगुणित होने का अनुमान लगाया गया। इस क्रम मे निम्न लक्ष्य रखे —

औद्योगिक उत्पादन मे १८०% की वृद्धि
पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन मे २३०% की वृद्धि
कृषि व मशीनो के उत्पादन म ३००% ,, ,,
बिजली के सामान के उत्पादन मे २७५%,, ,,

कृषि के क्षेत्र मे समस्त किसान परिवारो का २३% सामूहिक खेत के रूप में सगठित करने का लक्ष्य था। इन खेतो के द्वारा १७.५% कृषि क्षेत्र होने और बिक्री के लिये प्रस्तुत अनाज का ४३% उत्पादन किये जाने का लक्ष्य रखा गया।

४ योजना की परिकल्पनाएँ—प्रथम पचवर्षीय योजना बनाते समय कुछ आवश्यक दशाओ के अनुकूल रहने का अनुमान कर लिया गया था :—

(१) निर्यात की आशातीत वृद्धि और आयात मे कटौती।
(२) उत्पादन की लागत मे आशातीत सुधार।
(३) सुरक्षा व्यय मे सन्तुलन और कटौती।
(४) कृषि उत्पादन को प्राकृतिक प्रकोपों के रूप मे नुकसान न पहुँचेगा।

प्रथम योजना में प्रस्तावित व्यय

विवरण	प्रस्तावित राशि (मिलियार्ड या अरब रूबल में)
१. उद्योग	१६.४
२. कृषि	२३.३
३. विद्युत	३.८
४. यातायात	६.६
५. आन्तरिक व्यापार	२.२
६. शिक्षा	२.०
७. नागरिक सेवाएँ	२.२
८. गृह निर्माण	४.६
कुल योग	६५.७

५. विनियोग

योजना के लक्ष्यों की पूर्ति के लिये विनियोग के स्तर में वृद्धि आवश्यक थी। योजना काल के अन्तर्गत विनियोग राष्ट्रीय आय के $\frac{1}{4}$ व $\frac{1}{3}$ के बीच किया जाने का विचार था। यदि हम इस विनियोग दर का सोवियत शान्ति और प्रथम महायुद्ध के पूर्व काल की विनियोग दर से तुलना करते हैं तो वर्तमान विनियोग दर उससे २$\frac{1}{2}$ गुनी थी। साथ में यह भी स्पष्ट था कि जो विनियोग होगा उसका अधिकांश भाग भारी और मूलभूत उद्योगों के विकास के लिये था जिसका अर्थ था निकट भविष्य में लाभ नहीं होना था। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में उपभोग की मात्रा ७७.४% से घटाकर ६६.४% करने का विचार रखा गया लेकिन उपभोग की निरपेक्ष मात्रा में ४०% वृद्धि का प्रस्ताव था।

६. योजना की सफलताओं और विफलताओं का आलोचनात्मक विवरण

प्रथम पंचवर्षीय योजना का कार्य-काल पाँच वर्ष का था परन्तु वह चार वर्षों में ही पूरी हो गई। इस काल में जो प्रगति हुई वह इससे स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय जो १६२८ में १,५६६ करोड़ थी १६३२ में ४,१६० करोड़ हो गई। योजना काल में भारी उद्योगों में विनियोग की दर योजना के अनुमानों से बढ़ा दी गई। इसके फलस्वरूप हल्के उद्योगों में विनियोग कम हुआ। इसी काल में 'रूस' में ट्रेक्टरों तथा हवाईजहाजों का निर्माण आरम्भ हुआ। अन्य मशीनें भी बनने लगीं। मशीनरी उत्पादन दुगना हो गया। बिजली का उत्पादन २$\frac{1}{2}$ गुना बढ़ा। औद्योगिक उत्पादन ११८% बढ़ा। उपभोक्ता पदार्थों का उत्पादन ८७% बढ़ा। कोयले तथा लोहे के उत्पादन में वृद्धि हुई पर लक्ष्य से पीछे रहे। पहले कारखानों में ४६० करोड़ रूबल लगा था, अब वह २,४०० करोड़ हो गया। सन् १६२८ में कारखानों में

७,२३,००० श्रमिक नियोजित थे, सन् १९३२ मे उनकी सख्या बढकर ३१,२५,००० हो गई। १,५०० कपास की फैक्ट्रियाँ तथा १५ वस्त्र उद्योग स्थापित हुए।

७ कृषि-उत्पादन व कृषि के सामूहीकरण की प्रथम योजना काल में प्रगति

कृषि के सामूहीकरण की समस्या और उसके महत्व के बारे मे श्री स्तालिन ने उस समय कहा था—"सभी देशो के पूँजीवाद सोवियत सघ मे पूँजीवाद को—'व्यक्तिगत सम्पत्ति के पवित्र सिद्धान्त को'—पुन प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देख रहे थे। उनकी अन्तिम आशा पर पानी फिर रहा है और वह नष्ट हो रही है। जिन किसानो को वे पूँजीवादी जमीन के लिये खाद समझते थे, वे सामूहिक रूप से, 'व्यक्तिगत सम्पत्ति' की प्रशस्ति पताका छोडकर पचायती खेती और समाजवाद के मार्ग को अपना रहे हैं। पूँजीवाद को प्रतिष्ठित करने की अन्तिम आशा क्षीण हो रही है।"

इस रूप मे कृषि के सामूहीकरण की दिशा मे जो प्रगति हुई वह इस प्रकार है[1] — (हजारो मे)

	२० जन० १९३०	१ फर० १९३०	१० फर० १९३०	२० फर० १९३०	७ मार्च १९३०
सामूहिक खेत	५९'४	८७ ५	१०३ ७	१०८ ८	११०'२
सम्मिलित परिवार	४,३९३ १	८०१५ १	१०९४५'१	१३६७५ १	१४२६४ ३
कुल परिवार का %	२१ ६	३२ ५	४२ ४	५२ ७	५५'०

इस प्रकार १½ माह म कम समय मे २१ ६% परिवारो स बढकर ५५% परिवार सामूहिक खेती मे सम्मिलित हो गये। इस सामूहीकरण की क्रान्ति ने तीन मूलभूत समस्याओं को सुलझा दिया —

(१) पूँजीवादी व्यवस्था को पुन प्रतिष्ठित करने के लिए कुलक वर्ग ही एक आधार रह गया था। इस क्राति ने शोषको के इस बहु-सख्यक वर्ग को निर्मूल कर दिया।

(२) गाँवों के बहु-सख्यक श्रमिक वर्ग अर्थात् किसान वर्ग को पूँजीवाद का बीजारोपण करने वाले निजी खेती के मार्ग से हटाकर सहकारिता, पचायती और समाजवादी खेती के मार्ग पर लगाया था।

(३) सोवियत शासन को उसने कृषि मे एक समाजवादी आधार दिया। देश के आर्थिक जीवन मे खेती सबसे व्यापक और जीवन के लिये आवश्यक थी परन्तु उसी का सबसे कम विकास हुआ।

लेकिन जब इस प्रकार एक ओर सोवियत कृषि मे क्रातिकारी परिवर्तन हो रहे थे वहाँ कुलक वर्ग (पूँजीपति किसान वर्ग) ने इसका विरोध किया। वह इस

1 Baykov, Alexander ' *The Development of the Soviet Economic System*

विरोध मे मध्यम वर्गीय किसानों का समर्थन प्राप्त करने में सफल हुआ। उसने पशु-वध का सहारा लिया। सन् १६३१ तक १६२६ के मुकाबले गाय-बैलों की संख्या में ⅓ कमी, भेड़ बकरियों की संख्या म ½ कमी और घोड़ों की संख्या में ⅓ कमी हो गई। इस पशु-वध का भयंकर परिणाम यह हुआ कि मांस, चमड़ा और दूध के उत्पादन मे कमी हुई और पशु-शक्ति मे अत्यधिक ह्रास हुआ।

साथ ही किसान वर्ग का बढ़ता हुआ असन्तोष सामूहीकरण के मार्ग में इस रूप म अटकाव सिद्ध हुआ[1]—

	१ मार्च १६३०	१ मई १६३०
सामूहिक खेत (हजारों म)	११० २	८२ ३
कृषि परिवार सामूहिक खेतों में (हजारों में)	१४२६४	५७७८
कृषि परिवारों का प्रतिशत	५५ ०	२४·१

विरोध को देखते हुए सोवियत सरकार ने अब तक की प्रगति को सुदृढ बनाने की ओर ध्यान दिया। इसके फलस्वरूप ऋण की उपलब्धि, पशु-कर मे छूट, अतिरिक्त अनाज के विक्रय की छूट दी गई। अत. १६३२ मे सामूहिक कृषि सदस्यों की संख्या १ करोड ४० लाख से अधिक हो गई। यह कुल किसानों का ६०% था। सन् १६३४ के अन्त तक पंचायती खेत एक अजेय और दुर्धर्ष शक्ति बन गये। सोवियत संघ के तीन चौथाई किसान परिवार और कृषि की ६०% भूमि को उन्होंने अपने भीतर समेट लिया। इन सामूहिक खेतों (कोलखोज) को मशीन, ट्रैक्टर स्टेशनों द्वारा सहायता दी जाती थी। सरकार ने सरकारी कृषि फार्म (सोवखोज) भी खोले जो एक विशेष मंत्रालय द्वारा चलाये जाते हैं। उनका प्रमुख कार्य कृषि सम्बन्धी प्रयोग एवं गवेषणा करना है। इन पर कार्य करने वालों को मजदूरी दी जाती है। लगभग २५,०००,००० छोटे खेतों को २००-३०० हजार बड़े फार्मों में मिला देना आवश्यक था जिससे आधुनिक मशीनों तथा योजनाबद्ध सहकारी साधनों का लाभ उठाया जा सके। इस प्रकार जो सुधार हुए उनमे १६३३ तक जो कृषि उत्पादन हुआ वह इतिहास मे सबसे अधिक था।

८. योजना का मूल्यांकन

(१) सोवियत संघ एक कृषि प्रधान देश से औद्योगिक देश बन गया था क्योंकि देश के सम्पूर्ण उत्पादन की तुलना मे औद्योगिक उत्पादन का अनुपात बढ़कर ७०% तक पहुँच गया था।

(२) समाजवादी आर्थिक व्यवस्था ने औद्योगिक क्षेत्र से पूँजीवादी लोगों को निकाल बाहर किया और उद्योग-धन्धों मे यही एक आर्थिक व्यवस्था रह गई।

(३) समाजवादी आर्थिक-व्यवस्था ने कृषि मे कुलकों का वर्ग रूप में नाश कर दिया था और कृषि मे अब यह व्यवस्था ही सर्वेसर्वा थी।

---

1 Baykov : *Development of the Soviet Economic System.*

(४) पचायती कृषि व्यवस्था ने गाँवो मे दरिद्रता और अभाव का अन्त कर दिया था और अब लाखो करोडो गरीब किसान रोटी कपडे के मोहताज न रह गये थे।

(५) उद्योग-धन्धो मे समाजवादी व्यवस्था ने बेकारी दूर कर दी। कुछ धन्धों मे मजदूरी के आठ घन्टे अब भी थे परन्तु उद्योग-धन्धो के बहु भाग मे मजदूरी का दिन सात घन्टे का होता था और अस्वास्थ्य-कर कामों मे ६ ही घन्टो का।

(६) देश की आर्थिक व्यवस्था के सभी अगो मे समाजवाद की विजय से मनुष्य द्वारा मनुष्य के उत्पीडन का अन्त हुआ।

इतना सब कुछ होते पर योजना की विफलताओ पर भी दृष्टिपात करना चाहिये। यह ठीक है कि कुल मिलाकर योजना सफल थी परन्तु प्रगति समान नहीं रही। उदाहरण के लिये बिजली का उत्पादन आशातीत रूप में वृद्धि पा सका और यह परिस्थिति उत्पन्न हुई कि उसका उपयोग कैसे किया जाय ? शायद इसमे लेनिन के इस वाक्य से भ्राति उत्पन्न हो गई, जिसने कहा था "सोवियत तथा विद्युतीकरण समाजवाद है।" इसी प्रकार अधिक उत्पादन व्यय और कुशल श्रमिकों की उपलब्धि भी योजना की विफलताओ मे गिनी जा सकती है। एक कृषि प्रधान देश जब औद्योगिक क्राति करने मे जुट पडता है तो उसे प्रविधिकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में अभाव का सामना करना पडता है। कृषि से उद्योगों की ओर उन्मुख श्रमिकों ने उत्पादन व्यय मे वृद्धि की हो तो कोई आश्चर्य नही, परन्तु धीरे-धीरे स्थिति सुधरती गई। भारी और मूल-भूत उद्योगो पर ज्यादा जोर देने से उपभोक्ता पदार्थों की कमी अनुभव हुई, वस्तुओ के मूल्यो मे आशातीत वृद्धि हुई। अत वस्तुएँ मिलना कठिन हो गया। यही हाल गृह-निर्माण योजना का था। नवीन औद्योगिक केन्द्रों के अलावा भी मकानो का अभाव था। राशनिंग की व्यवस्था से भी जनसाधारण को कठिनाइयो का सामना करना पडा।

प्रथम योजना का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य भारी औद्योगीकरण की नीव स्थापित करना और कृषि का सामूहीकरण करना था। जहाँ तक इन दोनो उद्देश्यो का प्रश्न है, योजना एक बहुत बडी सीमा तक सफल हुई। भारी उद्योगो की आधार-शिला वास्तव मे इसी योजना की अवधि म रखी गयी। मशीनो एव खनिज तेल का उत्पादन निर्धारित लक्ष्यो मे भी अधिक हुआ। लोहे एवं इस्पात, बिजली एव अन्य कुछ भारी उद्योगो म यद्यपि लक्ष्यो की पूर्ति नहीं की जा सकी फिर भी सन् १९२८ की तुलना मे उत्पादन कई गुना अधिक था। सबसे अधिक प्रगति कृषि के सामूहीकरण एव यन्त्रीकरण के क्षेत्र म हुई। ट्रेक्टरो, कम्बाइन्ड हार्वेस्टरों, कृषि उपकरणो, कृत्रिम रबर, प्लास्टिक एव हवाई जहाज निर्माण मे भी प्रगति की गयी। सोवियत नियोजक उत्पादन की सफलता से इतने अधिक उत्साहित हुए कि पूर्व निर्धारित लक्ष्य को दो बार सशोधित किया गया और पाँच वर्ष के बजाय चार वर्ष में

ही लक्ष्यो की पूर्ति का आह्वान किया गया। वस्तुतः योजना पूर्ति की घोषणा १९३३ के बजाय दिसम्बर १९३२ मे ही कर दी गयी।

कृषि के सामूहीकरण से यद्यपि बड़े कृषको (Kulaks) को कष्ट हुआ, किन्तु समाजवादी सिद्धान्तों के आधार पर कृषि का पुनर्गठन करने की दिशा मे बहुत ही सराहनीय प्रगति हो गयी। यदि उस समय लौह पुरुष स्टालिन ने इतनी कठोरता का व्यवहार न किया होता तो फिर समाजवादी सिद्धान्तो की स्थापना होना सम्भव न होता। किन्तु स्टालिन के इस कठोर व्यवहार को बहुत से विद्वानो ने निर्दयता की सज्ञा दी है क्योकि ऐसा करते समय मानवीय दृष्टिकोण एव सहानुभूति का कोई ध्यान नही रखा गया। उपभोक्ता उद्योगो की अवहेलना के कारण दैनिक उपभोग की अनेक आवश्यक वस्तुओ का अभाव उत्पन्न हो गया था। विशेष रूप से सूती वस्त्र उद्योग की ओर पूरा ध्यान नही दिया गया और वस्त्रो की बहुत कमी अनुभव की गयी।

सोवियत रूस की प्रथम पचवर्षीय योजना अभावो और कठिनाई के बावजूद भी विश्व के मानव इतिहास मे एक अद्भुत सफल प्रयोग था। देशवासियो ने अभावो और कठिनाइयो को हँसते-हँसते झेला क्योंकि वे जानते तथा अनुभव करते थे कि योजना उनके आर्थिक अभावो को रामबाण औषधि है। सुनिश्चित आँकडो और प्रशिक्षण के अभाव से देशवासियो को कुछ क्षेत्रो मे सफलता पाने के लिये भारी मूल्य चुकाना पडा, लेकिन इस प्रयोग ने पूर्व प्रचलित धारणाओ और कपोल-कल्पित विचारो पर घातक प्रहार किया। पूँजीवादी देश भी योजना की व्यावहारिकता और सफलता मे विश्वास करते देखे गये। यह कृषि प्रधान एशियाई और अफ्रीकी देशो के औद्योगीकरण को आमन्त्रण था और साम्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत जनता के आर्थिक जीवन-स्तर को उन्नत करने का सन्देश था।

१०

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

सन् १९३२ से १९३७ तक

[SECOND FIVE YEAR PLAN]

"द्वितीय पचवर्षीय योजना के मुख्य कार्य हैं पूंजीवादी तत्वों का पूर्ण विध्वस, आर्थिक जीवन और लोगों के चित्त में पूंजीवाद के ध्वसावशेष पर विजय प्राप्ति, आधुनिक कौशल के अनुसार देश की समस्त आर्थिक-व्यवस्था के पुनर्गठन की पूर्ति, कौशल के साज सामान और कारखानों का उपयोग करने की योग्यता प्राप्ति, कृषि को यन्त्र सज्जित करना और उसकी उत्पादन-शक्ति में वृद्धि ये कार्य, बार-बार हमारे सामने यह समस्या रखते हैं कि हम तुरन्त ही सभी क्षेत्रों में, और सबसे पहले सगठनात्मक नेतृत्व में अपना कार्य उन्नत करें।"

—सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रस्ताव से

योजना एक निरन्तर राष्ट्रीय प्रयत्न है, इस बात को ध्यान मे रखते हुए सोवियत सरकार ने प्रथम पचवर्षीय योजना के समाप्त होते ही द्वितीय पचवर्षीय योजना का समारम्भ किया। प्रथम पचवर्षीय योजना के अनुभवो का लाभ उठाया गया। सख्यात्मक दृष्टिकोण के अलावा गुणात्मक दृष्टिकोण पर अधिक ध्यान दिया गया। पचवर्षीय योजना के अन्त मे एक महत्वपूर्ण परिवतन यह किया गया कि प्रस्तावित प्रारूप पांच वर्षों के लिये तैयार किया गया और प्रत्येक वर्ष के लिए एक योजना बनाकर उसे व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न किया जाने लगा, अत कोई सकट उपस्थित होने की स्थिति मे लक्ष्यो म सुविधापूर्ण ढग से परिवर्तन, परिवर्द्धन और सशोधन किया जा सके। इस बात का ज्वलन्त उदाहरण इस बात से मिलता है कि सन् १९३३ की विश्व-व्यापी आर्थिक मदी के प्रभाव को अधिक व्यवस्थित ढग से झेला जा सका और प्रस्तुत साधनो का ध्यान मे रखते हुए उसमे आकस्मिक परिवर्तन सभव हुए। अत यह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी

कि द्वितीय पचवर्षीय योजना पूर्व अनुभवो से लाभ उठाकर अधिक व्यावहारिक पृष्ठ-भूमि पर निर्मित थी।

(क) योजना के उद्देश्य और लक्ष्य—द्वितीय योजना के प्रारम्भ मे एक नारा ध्वनित हुआ "उत्पादन-तकनीक पर विजय प्राप्त करो" (Master the technique)। साथ ही साथ यह नारा भी बुलन्द किया गया—"अब तक प्राप्त लाभों का आकलन करो" (Consolidate the gains already won)। ऐसी स्थिति मे स्पष्ट ही द्वितीय आयोजन के उद्देश्य स्पष्ट थे —

(१) योजना काल के अन्तर्गत प्राविधिकी और तकनीकी दक्षता पूर्णत. प्राप्त की जाय, तथा

(२) अब तक जो आर्थिक सफलतायें राष्ट्रीय जनजीवन द्वारा प्राप्त की जा चुकी हैं उन्हें इस प्रकार से राष्ट्रीय जीवन का अग बना लिया जाय कि उनके तत्व स्वसचालित तत्व से दृष्टिगत हो।

इन्ही उपर्युक्त उद्देश्यो को ध्यान में रखकर निम्नलिखित भौतिक लक्ष्य निर्धारित किये गये .—

(१) कच्चे लोहे और इस्पात के उत्पादन को बढाकर क्रमश· १६० और १७० लाख टन कर दिया जाय। यह वृद्धि सन् १९२२ की तुलना मे २½ गुनी वृद्धि प्रकट करती थी।

(२) वस्त्र उद्योग की सूत कातने की क्षमता मे ४०% और कर्घों की सख्या मे २५% वृद्धि की जाय।

(३) चमडा, बूट, जूता, बर्तन, फर्नीचर, रेडियो, कैमरा उद्योगो की मशीनो के उत्पादन मे चौगुनी और खाद्य पदार्थ निर्माण उद्योगो की मशीनो के उत्पादन मे २½ गुनी वृद्धि की जाय।

(४) उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन मे १३३% और पूँजीगत माल के उत्पादन मे ७२·५% की वृद्धि की जाय।

(५) श्रम की उत्पादकता मे ६३% की वृद्धि की जाय और उत्पादन-व्यय मे २६% कमी की जाय।

(६) प्रथम योजना के कुछ वर्षों मे राष्ट्रीय आय का ३०% तक बचाकर विनियोजन किया गया था। इस बचत मे भारी त्याग की आवश्यकता थी। प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष मे यह २४% थी। द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष मे इसे घटाकर १९.५% करने का लक्ष्य रखा गया।

(७) समाजीकरण का विस्तार। शोषक वर्ग द्वारा शोषण समाप्त करना।

इस प्रकार यह १,३०० पृष्ठो की द्वितीय पचवर्षीय योजना १७वी काँग्रेस के सामने प्रस्तुत की गई। सन् १९३७ मे दूसरी योजना की पूर्ति तक औद्योगिक उत्पा-

दन को युद्ध पूर्व स्तर से लगभग आठ गुना बढ जाना चाहिये था। इस अवधि मे सभी धन्धो मे १ खरब ३३ अरब रूबल पूँजी लगती थी, पहली योजना मे ६४ अरब रूबल से कुछ ही अधिक पूँजी लगी थी।

द्वितीय योजना में पूँजी विनियोग

विवरण	प्रस्तावित व्यय (मिलियार्ड रूबल)	वास्तविक व्यय (मिलियार्ड रूबल) (सशोधित)
१. उद्योग	६६ ६	५८ ६
२ कृषि	१५ २	१४·६
३. यातायात	२६ ५	२०·७
४. सवाहन	१ ६	१ २
५. व्यापार एव विवरण	१ ०	२ ०
६ सामाजिक एव प्रशासनिक सेवाएँ	१८ ८	२० ८
	१३३·४	११७ ६

इस प्रकार द्वितीय पचवर्षीय योजना म कृषि का यन्त्र सज्जित करना था। ट्रैक्टर शक्ति को कुल मिलाकर १९३३ के २२,५०,००० अश्वशक्ति से १९३७ मे ८०,००,००० अश्वशक्ति तक बढाना था। इस योजना मे कृषि की वैज्ञानिक पद्धति (फसलो की सही आवर्तन, चुन हुए वेमार का उपयोग, शरत म जुताई आदि) का विस्तार से उपयोग करने का कार्य-क्रम बनाया गया। यातायात के साधनो का नये कौशल के अनुसार निर्माण करने के लिये एक विशाल योजना बनाई गई। योजना मे श्रमिक और कृषको के भौतिक सास्कृतिक स्तर को और भी ऊंचा करने के लिये एक विस्तृत कार्य-क्रम बनाया गया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि योजना व्यय मे उद्योग को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गयी थी। कुल योजना व्यय का लगभग ५० प्रतिशत उद्योगो के लिय व्यय किया गया यदि उद्योग के साथ यातायात को भी सम्मिलित कर दिया गया, तो यह प्रतिशत लगभग ६८ प्रतिशत था।

(ख) शुद्धि आन्दोलन (Purge Movement)—योजना के मार्ग मे आने वाली कठिनाइयों और उनके निराकरण के सुदृढ प्रयत्न सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के हाथ मे शासन-सूत्र आने के बाद १९३०-३४ की अवधि म बोल्शेविक पार्टी न इस सबसे कठिन राजनीतिक समस्या को सुलझाया कि लाखो छोट किसानो को पचायती खेती के मार्ग पर कैसे लाया जाय। चारों ओर का पूंजीवादी ससार जो सोवियत सघ की शक्ति को छिन्न-भिन्न करना चाहता था, देश के भीतर हत्यारा, तोड फोड करने वालो और गुप्तचरों के दल को प्राण-प्रण से सगठित करने लगा। जर्मनी और जापान मे फासिज्म

के अभ्युदय से पूँजीवादी घेरे की यह विरोधी कार्यवाही और भी स्पष्ट हो गई। बुखारिन पथियों, त्रात्स्की पथियो और जिनोविचेफवादियो मे फासिज्म को सच्चे सेवक मिल गये जो भेद लेने, तोड फोड करने आतंकवाद और विध्वंसक कार्य करने के लिये तथा पुन पूँजीवाद को प्रतिष्ठित करने को सोवियत सघ की पराजय के लिये काम करने को तैयार थे। इस कार्य को विफल करने के जो प्रयत्न शासक दल द्वारा किये गये उन्हें रूस के राजनैतिक और आर्थिक इतिहास म 'शुद्धि आन्दोलन' (National Purge Movement) कहा जाता है। कई पाश्चात्य विचारकों ने जिनमें लुई फिशर का नाम लिया जा सकता है, इसे दमनपूर्ण कार्य बताया है। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि राष्ट्रीय एकता और आर्थिक नियोजन को आघात पहुँचाने वाली कार्यवाहियो का डटकर मुकाबला किया गया। १७वी पार्टी काँग्रेस मे बुखारिन, राइकोफ, त्रात्स्की, जिनोविचेफ ने पिछले कार्यों के लिये पश्चात्ताप प्रकट किया और पार्टी के कार्यों की प्रशंसा करते हुये आकाश पाताल एक कर दिया। परन्तु इधर ये लोग मधुर व्याख्यान दे रहे थे, तभी कॉमरेड किरोफ की हत्या करने के लिये नीच षडयंत्र भी रच रहे थे। १ दिसम्बर १९३४ को लेनिनग्राद मे स्मोलनी में, एस० एम० किरोफ पिस्तौल की गोली से मारे गये। हत्यारा तुरन्त ही पकड लिया गया और वह एक गुप्त क्रांति विरोधी गुट का सदस्य था जिसम लेनिनग्राद के जिनोविचेफ पथियो के एक सोवियत विरोधी गुट के लोग भरे हुये थे। किरोफ पार्टी और श्रमिक वर्ग का प्यारा नेता था, उसकी हत्या से जनता मे भारी हलचल मच गई और सारे देश मे क्रोध और क्षोभ की लहर दौड गई। इसी प्रकार धीरे-धीरे षडयन्त्र के रहस्य खुलने मे बुखारिन, त्रात्स्की, जिनोविचेफ कोमनफ, याकोयेफ, येवेदोकिमोक, पिकेल, स्मिनोफ, मोचकोव्स्की, तर-वागान्यान, राइन गोल्ड आदि नेता शामिल पाये गये। त्रात्स्की कहा जाता है कि इस षडयन्त्र का प्रमुख नेता था और किरोफ की हत्या तो अन्य प्रमुख राजनीतिक नेताओं की हत्या की शुरुआत मात्र थी। सन् १९३३ मे पार्टी की पंक्ति से बाहरी और गैर व्यक्तियो का जो बहिष्कार प्रारम्भ हुआ था वह इस समय अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ विशेषकर किरोफ की हत्या के बाद पार्टी सदस्यो के पुराने इतिहास की विस्तृत परीक्षा की गई और पुराने पार्टी कार्डों के बदले नये पार्टी कार्डों को दिया गया। लापरवाही के स्थान पर सतर्कता बरती गई। पाश्चात्य लेखकों के मतानुसार इस शुद्धि-कार्य मे ११७ व्यक्तियों को फाँसी, पुराने बोल्शेविक नेताओं मे ६७ व्यक्तियो को कैद, पुलिस तथा सेना के १२ सबसे ऊँचे अधिकारियो की हत्या और लगभग १ लाख राजनीतिक विरोधियों का देश-निष्कासन किया गया। त्रात्स्की की देश निष्कासन के बाद हत्या कर दी गई। इस प्रकार १९१७ मे साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति मे जो २४ सदस्य थे उनमे कुछ स्वाभाविक रूप से मर गये, कुछ को प्राण-दण्ड दिया गया और कुछ अकारण ही लापता हो गये। अत सिर्फ स्तालिन ही उन सदस्यो म स अवशिष्ट रहा। इस रूप न पाश्चात्य विचारकों का कहना है।

कि स्तालिन ने अपनी स्थिति को सुदृढ बनाने के लिये इस शुद्धि आन्दोलन का श्रीगणेश किया, कुछ भी हो यह तो मानना पडेगा कि दिन व दिन सोवियत शासन की प्रगति कुछ वर्गी नेताओ को फूटी आँखो बरदाश्त नही थी अत इस प्रकार का कदम आवश्यक समझा गया। उस समय पार्टी ने एक प्रस्ताव व पत्र प्रसारित किया उससे अवसरवादी कुचक्रो पर प्रकाश पडता है—"हमे अपनी अवसरवादी सतोष भावना का अन्त कर देना चाहिये जिसका जन्म इस भ्रान्त धारणा मे होता है कि जैसे-जैसे हम शक्तिशाली होगे, वैसे-वैसे शत्रु अधिक निर्दोष और सयत बनता जायगा। यह धारणा एक दम मिथ्या है। यह वही नरम दल वाली गुमराही फिर से उभरी है जो सभी को आश्वासन देती थी कि हमारे दुश्मन धीरे-धीरे समाजवाद की ओर बढ जायेंगे और सच्चे समाजवादी बन जायेंगे। बोल्शेविक अपनी विजय भावना से प्रसन्न होकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे, अपनी लडने की जगह पर सो रहे, यह अक्षम्य है। हमे सतोष भावना न चाहिये वरन् सतर्कता, सच्ची बोल्शेविक क्रातिकारी सतर्कता चाहिये।"

अन्त म पार्टी ने २६ सितम्बर १६३६ मे प्रस्ताव पारित करते हुये कहा—"हर पार्टी सगठन का कतव्य है कि वह भरसक अपनी बोल्शेविक सतर्कता को बढाये, लेनिनवादी पार्टी के झडे को ऊँचा रखे और बाहरी, गैर और विरोधी लोगो से पार्टी श्राति की रक्षा करें।" द्वितीय पचवर्षीय योजना-काल मे जो अद्वितीय सफलता देश को प्राप्त हुई वह स्तालिन की कुशाग्र बुद्धि, दूरदर्शिता, अदम्य धैर्य, अद्वितीय सगठन कुशलता का परिणाम था। उस समय जो योजना जाग्रति भावना तथा अनुशासन पाया गया वह इतिहास की अद्वितीय मिसाल थी। स्तालिन का एक मात्र लक्ष्य था सोवियत रूस शक्तिशाली राष्ट्र बने। यदि उस समय रूस के शासको द्वारा इस प्रकार कठिनाइयो का निराकरण, चाहे वे कठिनाइयाँ राजनीतिक रही हो या आर्थिक, न किया जाता तो यह निश्चित था कि नाजी जर्मनी का प्रचण्ड शक्ति और साम्राज्यवादी राष्ट्रो के घातक प्रहार रूस को सदा के लिय समाप्त कर देते परन्तु यह एक ऐतिहासिक विरोधाभासी सत्य है। यूरोप के विश्वविख्यात विजेताओ नेपोलियन और हिटलर को रूस की शक्ति ने ऐसा धराशायी किया कि वे शक्तिपुज सदा के लिये अस्त हो गये। रूस ने जो द्वितीय विश्व-युद्ध (१६३६-४६) मे अद्वितीय वीरता, धीरता और साहस का परिचय दिया वह समाजवाद की विजय का प्रधान सकेत था। अब हम क्रमश योजना के कायक्रमो का अध्ययन करते हैं।

(ग) औद्योगिक कार्य-क्रम—योजना-काल म औद्योगिक उत्पादन मे ११०% वृद्धि का लक्ष्य था। इसका तात्पर्य यह था कि प्रतिवर्ष १६½% की दर से वृद्धि होना था। पूँजीगत उद्योगो मे १४½% प्रति वप उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य था और उपभोक्ता उद्योगो मे १८½% प्रति वर्ष वृद्धि का। इस प्रकार उपभोक्ताओ मे उत्पादन वृद्धि अधिक तेजी से होनी थी। भारी और मूलभूत उद्योगो के विकास के लक्ष्य मे

लोहे और इस्पात के उत्पादन के लक्ष्यों पर अधिक जोर दिया गया। प्रथम योजना की तुलना में द्वितीय योजना में लौह-इस्पात उत्पादन २½ गुना बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया। मशीनी औजार व अलौह धातुओं को भी बहुत महत्व दिया गया था। योजना के लक्ष्यों में २८० नये आकार प्रकार के मशीन औजार बनाने का लक्ष्य था। इन औजारों का उत्पादन २½ गुना होना था। अलौह धातुओं में तांबा, जस्ता, टिन, निकल आदि के उत्पादन पर जोर था क्योंकि ये धातुएँ बिजली, रेडियो व प्रतिरक्षा उद्योगों के लिये आवश्यक थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में तो पूँजीगत उद्योगों के विकास पर अधिक जोर दिया गया था परन्तु द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन में उपभोक्ता पदार्थों वाले हल्के उद्योगों पर जोर दिया जा सकता था, कारण कि मशीन उद्योगों का इस रूप में लाभ उठाया जा सकता था। जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि उपभोक्ता पदार्थों में सूती ऊनी वस्त्रों, साइकिलें, घड़ियों, वाद्य-यन्त्रों के उत्पादन के लक्ष्य रखे गये थे। इन सबसे यह आशा व्यक्त की गई थी कि औद्योगिक केन्द्रों के श्रमिक वर्ग के आर्थिक जीवन-स्तर की उन्नति में सहायता मिलेगी।

(घ) सामाजिक सेवायें—साथ ही साथ इस योजना काल में प्रथम पंचवर्षीय योजना के मुकाबले राष्ट्रीय सामाजिक सेवाओं, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन पर जोर दिया गया था। उसका परिणाम स्पष्ट था कि अधिक विद्यालय, अस्पताल, मकान, आवास-निवास केन्द्र स्थापित किये जा सकेंगे। उपर्युक्त आँकड़ा से यह प्रकट है कि प्रथम योजना की तुलना में द्वितीय योजना में धन राशि लगभग दुगुनी अनुमान की गई थी। प्रथम योजना में इन सेवाओं के लिये ८२० करोड रूबल निर्धारित था तो द्वितीय में ६३० करोड रूबल धन राशि रखी गई थी।

यहाँ एक विशेष बात स्मरणीय है कि प्रतिरक्षा या सैनिक शक्ति के लिये औद्योगीकरण को आधार बनाया गया। इस रूप में आवश्यकता से अधिक जोर प्रतिरक्षा कार्यों से सम्बन्धित उद्योगों को पुनर्जीवित करने में लगाया था। सोवियत संघ की अपनी यह मान्यता थी कि वह चारों ओर ऐसे देशों से घिरा हुआ है जो उसके प्रयोग को दिल से पसन्द नहीं करते। निर्माण-कार्य पर व्यय होने वाली धन राशि का मुख्य भाग पुराने उद्योगों को पुनर्जीवित करने और प्रथम योजना के अधूरे काम को पूरा करना था। योजना के प्रथम दो वर्षों में इस कार्य को पूरा करने पर नवीन उद्योगों की स्थापना आरम्भ की गई। यह वह समय था जब एक ओर आर्थिक नियोजन का कार्य पूरे चढ़ाव पर था वहाँ दूसरी ओर प्रतिक्रियावादी तत्वों को चुन चुन कर राष्ट्रीय शुद्धि आन्दोलन की भेंट किया जा रहा था। योजना के अनुभवों से युक्त आयोजनकर्ताओं ने कुछ नवीन प्रयोग बिना हिचक के प्रारम्भ किये। उन्होंने पूँजी के महत्व को कम करने की कोशिश की। अब तक होता यह था कि आर्थिक

साधनों का उपयोग पर उत्पादन वृद्धि तथा अन्य सामाजिक सेवाएं निर्भर थीं किन्तु पूँजी का स्थान इच्छानुसार स्रोत न ले लिया। इस प्रकार इस सुदृढ़ आधार पूँजी पर यह साम्यवादी प्रथा आर्थिक नियोजन का प्रथम कराया चाहती थी जिस पर वह प्राथमिक अनिवार्य आवश्यकता माना जाता रहा।

एक और विशेष परिवर्तन उत्पादन रूस में भी किया गया था। अब तक वस्तुओं की विभिन्नता के उत्पादन को प्राथमिकता दी जाती थी और उसमें श्रम और धन अधिक व्यय हो जाता था। रूसी योजनाकारों ने यह अनुभव किया कि यह पूँजीवादी दिखावा मात्र है उससे कोई विशिष्ट उद्देश्य तो पूरा नहीं होता। उदाहरणार्थ यदि २० प्रकार के ट्रैक्टर बनाये जावें तो उससे क्या जैसा कि अमरिका में होता था। ऐसी आर्थिक औद्योगिक प्रक्रिया को प्रमापीकरण (Standardisation) नाम दिया गया। धन और श्रम शक्ति के बचाव और मितव्ययिता के लिये कुल चार प्रकार के ट्रैक्टर, २६०० प्रकार के वस्त्रोत्पादन के स्थान पर १८७ प्रकार के वस्त्रोत्पादन को उचित माना गया। योजना के अन्तिम वर्ष तक तो सिर्फ ४ प्रकार का सूत और ७ प्रकार का वस्त्र प्रत्येक कारखाने में निर्मित हुआ।

प्रथम योजना में प्रशासनिक और तकनीकी ज्ञान प्राप्त व्यक्तियों के अभाव का अनुभव किया गया था क्योंकि कृषि में शिक्षित जनसंख्या का स्थानान्तरण शहरों में मिलों और कारखानों की ओर हुआ जिससे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह कुशल हो। प्रथम योजना काल में प्रशिक्षण का क्रम चालू किया गया। प्रशिक्षित व्यक्तियों की अतिरिक्त शक्ति ने देश की औद्योगिक आवश्यकताओं को पूरा करना प्रारम्भ किया। प्रथम योजना में लगभग १३,००० व्यक्ति प्रशिक्षित किये गये, द्वितीय योजना में ३,२८,००० व्यक्ति प्रशिक्षित किये जा सके। कारखानों के विद्यालय ने १४ लाख कारीगरों को कुशल बनाया। इस प्रकार इन्जीनियरों की संख्या ७.७ गुना, वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं की संख्या ३.४ गुना और कृषि विशेषज्ञों की संख्या ५ गुना वृद्धि पा सका।

(ब) स्टाखानोव आन्दोलन—स्टालिन ने देश को इस समय एक प्रसिद्ध नारा दिया "सब प्रकार का निर्णय कर्मचारी करें" (personnel decide everything)। इस नारे ने जादू का सा असर किया और श्रमिकों की कार्य-कुशलता पर इसका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। इस प्रकार की भावना से कारखाने के प्रति श्रमिकों का ममत्व जाग्रत हुआ और वे कारखाने के कार्य को अपना निजी समझकर पुरस्कार जीतने के साथ पूरी लगन से काम करने लगे। इसी प्रकार श्रमिक कुशलता दिखाने के क्षेत्र में एक अनोखी घटना हुई। कोयले की खान में काम करने वाले एक युवक श्री 'स्टाखानोव' ने अपने ही द्वारा आविष्कृत नई विधि से उत्पादन के क्षेत्र में आशातीत सुधार प्रस्तुत किया। कहा जाता है कि जहाँ पहले प्रति शिफ्ट में प्रति व्यक्ति ७ टन औसत कोयला खोदा जाता था वहाँ उसने (स्टाखानोव) १०२ टन कोयला

खोदा। इस प्रकार कारखानों की कार्य-कुशलता में 'स्ताखानोव आन्दोलन' भी एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है जिसने श्रमिकों को अपनी कार्यविधि का विकसित और उत्तम बनाने की प्रेरणा दी। द्वितीय योजना का उद्देश्य जैसा कि हम वर्णन कर चुके हैं उत्पादन के संख्यात्मक रूप के स्थान पर गुणात्मक रूप पर अधिक जोर दिया गया था। स्ताखानोव अपने प्रयोग में आगे चलकर इतना सफल हुआ कि वह अपना उत्पादन एक शिफ्ट मे २२७ टन तक कर सका। योजना के आँकड़ों के अनुसार योजना के प्रथम वर्ष मे ही स्ताखानोव आन्दोलन (Stakhanov Movement) के फलस्वरूप उत्पादन में ३० २% की वृद्धि हुई। धीरे धीरे यह धारणा घर करती गई कि प्रशिक्षण, कुशलता, यन्त्र सज्जा और आर्थिक परितोष को उचित महत्व दिया गया। साथ ही साथ व्यक्तिगत प्रयास को भी औचित्य प्रदान किया गया। यह समाजवादी भावना और व्यक्तिवादी भावना का अद्भुत सम्मिश्रण उत्पादन की गुणात्मक और सख्यात्मक अभिवृद्धि का आधार बन सका।

(ख) कृषि—उद्योगों के पश्चात् कृषि का भी महत्वपूर्ण स्थान था। प्रथम योजना के दौरान म जो सामूहीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई थी वह इस योजना के प्रथम चरण म ही पूरी हो गई और अब कृषि उत्पादन को मुख्य आधार मान लिया गया। कृषि के यन्त्रीकरण और तत्सम्बन्धी मशीनों के उत्पादन को लक्ष्य माना गया। सामूहिक कृषि प्रणाली ने किसानों के मानसिक सन्तुलन को बिगाड दिया था अत उसमे सुधार किया जाना भी आवश्यक समझा जाने लगा। सन् १९३५ तक आते-आते राशनिंग व्यवस्था समाप्त कर दी गई। किसानों की सन्तुष्टि के लिये कृषि आदर्श नियम (Modal Rules of the Agricultural Artel) बनाये गये इनके अन्तर्गत कृषि पद्धति, भूमि, उत्पादन का बँटवारा, प्रबन्ध, सदस्यता, कोष, तथा श्रमिक अनुशासन इत्यादि के लिये नियम-उपनियम बनाये गये। इससे किसानों की काहिली और अनुत्तरदायित्व की भावना पर रोक लगी। कृषकों को औद्योगिक श्रमिकों के स्तर पर लाने के प्रयत्न भी कारगर सिद्ध हुए। सामुदायिक कार्य मे वेतन निर्धारण मे कुशलता का महत्व, काम के अनुसार भुगतान आदि उपाय अपनाये गये।

उत्पादन-प्रणाली के साथ-साथ अन्न वसूली के तरीकों मे भी सुधार किया गया। ऐसे नियम बनाये गय जिसमे किसान तथा राज्य को यह पहले से ही मालूम होता था कि कितना अनाज लेना या देना है। सामुदायिक खेती के प्रोत्साहन के लिए व्यक्तिगत किसान से ५ से १० प्रतिशत तक अधिक लगान लिया जाता था। सन् १९३५ मे कृषि क्षेत्र मे व्यक्तिगत सम्पत्ति को पुन: स्थापित किया गया। इस प्रकार की सुविधा काफी लाभदायक सिद्ध हुई। अन्तत. यान्त्रिक उपाय भी अपनाये गये जिससे कृषि उत्पादन मे वृद्धि हो सके, इस रूप मे मशीन और ट्रैक्टर स्टेशन की सहायता वर्णनीय है। योजना के अन्तिम वर्ष म जुताई और बुआई का ७०-८०% और फसलें काटने का ६०% कार्य यन्त्रों द्वारा होने लग गया।

(छ) यातायात तथा परिवहन के साधनो की उन्नति—यह तो स्पष्ट है कि यातायात तथा परिवहन राष्ट्रीय शरीर की रक्त शिराएँ हैं इस रूप मे यातायात के विकास की आवश्यकता दिनो-दिन अधिक बढती जा रही थी। देश का द्रुतगति से औद्योगीकरण इस आवश्यकता का सकेत था। कच्चा माल, मशीनें, अन्न का निर्यात दे आवश्यकताएँ थी जो यातायात के विकास का मुख्य आधार थी। परन्तु यातायात-व्यवस्था के विकास के लिये लौह-इस्पात की आवश्यकता थी जो कि प्रथम योजना मे तो कल-कारखानो की स्थापना म काम मे ले लिया गया। अतः जब अतिरिक्त रूप मे लौह-इस्पात की उपलब्धि हुई तो द्वितीय योजना मे यह विकास योजना हाथ मे लेना सम्भव हुई। इसमे भी जोर पुरानी रेल लाइनो को सुधारने, उन्हे दुहरा करने पर ज्यादा था और नवीन रेल लाइन बनाने पर कम। रेलो को बिजली या डीजल से चलाने पर कुल यातायात योजना का ६/७ भाग खर्च होना था।

नहरी यातायात के क्षेत्र म मास्को वोलगा नहर निर्माण तथा पुरानी नहरों की मरम्मत तथा नदी बन्दरगाहो का सुधार शामिल था। सडक यातायात के रूप में प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्रो को जोडने की व्यवस्था थी।

योजना की प्रगति का आलोचनात्मक विवरण

योजना का प्रथम वर्ष कठिनाइयो का वर्ष था। धीरे-धीरे कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करली गई और योजना के आगे आने वाले वर्ष अच्छे सिद्ध हुए। बडे पैमाने के उद्योगो मे आयोजित ११४% वृद्धि के स्थान पर १२६% की वृद्धि हुई। इस्पात का उत्पादन निर्धारित लक्ष्य से अधिक था। मशीन निर्माण उद्योग मे दुगुनी के स्थान पर तिगुनी वृद्धि, मोटर कारो के उत्पादन मे आठ गुनी वृद्धि हुई। उपभोक्ता उद्योगो का उत्पादन २½ गुना के स्थान पर दुगना ही हो सका, इस कटौती मे युद्ध की सम्भावनाएँ प्रमुख कारण थी। प्रतिरक्षा उद्योगो की स्थापना तथा शस्त्र-निर्माण का कार्य उपभोक्ता उद्योगों के कार्य को पीछे धकेल सका।

प्राविधिकी और तकनीकी उन्नति का इससे पता चल सकता है कि १९३७ तक आते-आते देश का ८०% औद्योगिक उत्पादन का कार्य इस रूप मे सम्पादित होना था। श्रमिक कार्य-कुशलता के क्षेत्र मे जो प्रयोग हुए उनसे उसमे अभिवृद्धि हुई। स्ताखानोव आन्दोलन इस रूप मे उल्लेखनीय है।

प्रथम योजना के प्रथम वर्ष की तुलना मे द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष मे अन्नोत्पादन ५०% अधिक हुआ। अकाल का दुर्भिक्ष जो रूसी आर्थिक इतिहास की सामान्य घटना थी, समाप्त हो गई। जनता के आर्थिक स्तर मे वृद्धि हो गई। सन् १९२६ व १९३९ के मध्य जनसख्या मे १५.९% वृद्धि हुई, ग्रामीण जनसंख्या मे ५% की कमी हुई और शहरी जनसख्या दुगुनी हो गई। गाँवो से शहरों की ओर निष्क्रमण जारी था। इस प्रकार औद्योगिक और कृषि सन्तुलन प्राप्त किये जाने के प्रयास चालू थे।

यदि हम द्वितीय पचवर्षीय योजना के आलोचनात्मक *अध्ययन का आधार लें* तो यह तो स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि सख्यात्मक और गुणात्मक रूपो मे प्रथम पचवर्षीय योजना की तुलना मे द्वितीय पचवर्षीय योजना अधिक सफल और अर्थ-*व्यवस्था पर अधिक गहरा प्रभाव डालने वाली सिद्ध हुई।* सन् १६२८ और ३८ के दशाब्द के बीच लोहा व इस्पात उद्योग की क्षमता चार गुनी हो गई, कोयला उद्योग की क्षमता साढ़े तीन गुनी, तेल उद्योग की लगभग तीन गुनी व बिजली उद्योग की सात गुनी। साथ ही नवीन उद्योगो के रूप मे वायुयान निर्माण, भारी रसायन, *अल्यूमिनियम, तांबा इत्यादि की स्थापना हुई।*

अर्थ-व्यवस्था के आधार मे भी आमूल परिवर्तन उपस्थित हुए। उत्पादन के साधनो का स्वामित्व राज्य के पास वृद्धि पाता गया और व्यक्तिगत व्यवसायी क्षेत्र के रूप मे सकोची वृत्ति का प्रारम्भ हो रहा था। अत द्वितीय पचवर्षीय योजना समाज-*वाद की दिशा मे एक महत्वपूर्ण कदम था जिसने प्रथम पचवर्षीय योजना की त्रुटियो* को सुधारा और उसके अनुभवो से लाभ उठाकर भविष्य की सुदृढ आधारशिला रखने मे *द्वितीय पचवर्षीय योजना का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि इतना भी कहे तो कोई* अतिशयोक्ति न होगी कि द्वितीय योजना ने पहली की कमियो को दूर कर राष्ट्रीय आय के *साधनो को व्यापक बनाया तथा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था* को सुदृढ आधार प्रदान किया जिसके फलस्वरूप सोवियत रूस या नव विकसित और जारशाही जुल्मो से मुक्त, पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि से कमजोर गिने जाने वाले देश, ने नाजीवाद के प्रवर्तक और विश्व-विजय की आकाक्षा रखने वाले राष्ट्र जर्मनी से सफल मुकाबला किया। *यह योजना की सफलता का ही चमत्कार था कि सोवियत रूस इतने कम समय मे* उन्नत हो जर्मनी का मुकाबला कर सका।

११

तृतीय पंचवर्षीय योजना

सन १९३८ से १९४२ तक

[THIRD FIVE YEAR PLAN]

'तृतीय योजना को रासायनिक योजना बनाइये।'

—एक प्रचलित नारा

'Make the Third Plan a Chemistry Plan'

—*A Popular Slogan*

'यह योजना समाजवाद को साम्यवाद में बदल देगी।'

—श्री मोलोतोव, तृतीय योजना (१९३९), पृ० ५

'This Plan will change Socialism into Communism'

—*Molotov Third Plan (1939)*, p 5.

प्रस्तावना

तृतीय योजना का प्रारम्भ उस समय होता है जब यूरोप में युद्ध के बादल मँडरा रहे थे। जर्मनी का नाजी नेता हिटलर 'कृण्वन्तो विश्व आर्यम्' के नारों से अपनी दुर्जेय शक्ति का आभास दे रहा था। ऐसा मालूम होता था कि युद्ध अति निकट है। उसकी साम्राज्यवादी आकांक्षाएँ स्पष्ट ही स्वतंत्र और नवीन आर्थिक पुनर्निर्माण के क्षेत्र में नियोजित राष्ट्रों को एक चुनौती थी। यह स्थिति भयावह थी जिसका प्रत्येक देश की अर्थ व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। रूस के सर्वेसर्वा श्री स्तालिन ने यह अनुभव किया था कि यदि देश की स्वतन्त्रता को जिन्दा रखना है, समाजवाद और साम्यवाद की प्रयोगस्थली रूस को विश्व-पटल पर कायम रखना है तो उसे पुन एक बार परीक्षण की भट्टी से गुजरना है। शायद अशेष विश्व ने यह धारणा बनाई थी कि सोवियत रूस जर्मनी की औद्योगिक क्षमता और राष्ट्रीयता के उन्माद के मुकाबले टिक न सकेगा। लोगों का तो यह अनुमान था कि सोवियत संघ की रक्षा-सज्जा तथा सामरिक शक्ति जार के शासन से भी कमजोर है। अतः

कोई आश्चर्य नही कि जिस सोवियत भूमि ने अपने विकास कार्यक्रम के पचसाला आयोजन की दो मजिले सफलतापूर्वक तय करली थी और तीसरी पर आरूढ हो रहा था और इस प्रकार विश्व के १/६ भाग म फैले भू-खण्ड के निवासी अपने आर्थिक जीवन-स्तर को सदियो के शोषण और पीडन से मुक्त कर उन्नत बनाने का प्रयास कर रहे थे, उन्हे अनिवार्य रूप से अपनी उपभोक्ता वस्तुओ पर सयम की सील लगानी पडी। देश के आर्थिक साधनो का नियोजन बजाय उपभोक्ता पदार्थों के अधिक उत्पादन और समृद्धि मे करने के परीक्षा कार्यों मे करना पडा। यह इतिहास की परीक्षात्मक घटिका था।

योजना के उद्देश्य तथा लक्ष्य

सन् १९३८ मे जो विकास व पुनर्निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ था उसका एक दशक पूरा हो चुका था। योजना की सुदृढ आधार शिला का निर्माण हो चुका था। अतः तीसरी पचवर्षीय योजना बडे आकार-प्रकार के साथ प्रस्तुत की गई थी। आयोजन का अनुभव और ज्ञान परिपक्वता प्राप्त करता जा रहा था। लोगो मे योजना के प्रति आस्था, लगन तथा जागरूकता का पर्याप्त मात्रा मे विकास हो चुका था। अत. तृतीय पचवर्षीय योजना देश के सामने प्रस्तुत करते हुए श्री मोलोतोव ने उसका उद्देश्य इस रूप मे प्रकट किया—"यह योजना समाजवाद को साम्यवाद मे परिणत कर देगी।" इस रूप मे योजना के उद्देश्य निम्न थे—

(१) समाजवाद से साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था की ओर प्रवृत्ति,
(२) राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था, सस्कृति एव समाज कल्याण का स्तर उठाना।
(३) यातायात का समुचित विकास किया जाय ताकि औद्योगीकरण के क्षेत्र मे अन्तिम रुकावट भी दूर हो।

तृतीय योजना में प्रस्तावित व्यय की राशि

	विवरण	प्रस्तावित व्यय की राशि (मिलियार्ड अथवा अरब रूबल)
१.	उद्योग	१०३·६
२.	कृषि	१८·०
३.	यातायात	३५·८
४.	सवाहन	१·८
५.	व्यापार एव वितरण	२·६
६	सामाजिक व सास्कृतिक व प्रशासनिक सेवायें	२६·६
	कुल योग	१८८·४

शुरू-शुरू मे ऐसा प्रतीत होने लगा कि देश मे समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की जड़ें मजबूती से अपने पाँव जमा चुकी हैं और देश की पूर्ण खुशहाली की मंजिल प्राप्त होने ही वाली है। परन्तु उपर्युक्त धारणा पर आघात इस रूप मे लगा कि यूरोप का वातावरण युद्ध की विषैली गन्धों से विषाक्त सा होने लगा और इस रूप मे रूस भी उसका अपवाद नही रह सकता था। योजना का एक मात्र उद्देश्य था 'तीसरी योजना को रासायनिक योजना बनाइये' (Make the Third Plan a Chemistry Plan)। प्रतिरक्षा तथा शस्त्रों के उद्योगों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। सन् १९४० मे रक्षा व्यय के लिए निश्चित की हुई राशि सन् १९३८ की दुगुनी थी और शेष सारी आर्थिक-प्रणाली के पूँजी विनियोग के बराबर थी। प्रतिरक्षा के सुदृढ आधार पर गठित करने के लिये तीसरी योजना मे यातायात सेवाओ मे सुधार तथा विशेष इस्पात, रासायनिक पदार्थ तथा अलौह धातुओ से सम्बन्धित उद्योगो के विकास को अधिक महत्व दिया गया।

यातायात की दृष्टि से ७ हजार मील लम्बे रेल मार्गों का निर्माण, ५ हजार मील लम्बे रेल मार्गों को दो-मार्गीय बनाना, १२०० मील रेल-मार्गों का विद्युतीकरण करना था। जल और सड़क यातायात के विकास को भी विशेष महत्व दिया गया। नये उद्योगो को पूर्वी क्षेत्र म स्थापित करने की प्रवृत्ति तीसरी योजना के दौरान भी जारी रही। एल्यूमिनियम उत्पादन का एक तीसरा केन्द्र यूराल क्षेत्र मे स्थापित किया गया और यूराल और वोल्गा के बीच एक दूसरा बाकू बनाया गया जिससे सन् १९४२ तक ७० लाख टन तेल के उत्पादन को बढाने की आवश्यकता केवल युद्ध के ही दृष्टि-कोण से नही वरन् औद्योगिक ईंधन और शक्ति की पूर्ति के लिये भी आवश्यक समझा गया। औद्योगिक उत्पादन मे आश्चर्यजनक वृद्धि का प्रयत्न हुआ[1] —

(उत्पादन म प्रतिशत वृद्धि)

	१९४२ (१९३७ के प्रतिशत में)
पूँजी के सामान	२०७
उपयोग के सामान	१७२
रसायन उद्योग	२३७
मशीन निर्माण	२२९
विद्युत-शक्ति	२०६
अल्यूमिनियम	३४६
टिन के योजन	२०६

देश की प्रतिरक्षा की अनिवार्यता और प्राथमिकता को ध्यान म रखते हुए उपभोक्ता पदार्थों के उद्योगो को कम महत्व देने पर विवश होना पड़ा। कुल पूँजी

[1] Baykov, *op. cit*, p 289.

विनियोग का केवल १५% ही उपभोग वस्तुओ के लिये रखा गया। भारी और मूलभूत उद्योगो की वृद्धि का १०३% रखी गई और हल्के उद्योगो की केवल ६६% रखी गई। प्रथम और द्वितीय योजनाओ की तुलना मे औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि का लक्ष्य बहुत नीचा रखा गया जो कि लगभग १४% था। योजना लगभग ३½ वर्षो तक ठीक रूप मे चलती रही। इस काल मे सोवियत उद्योगो ने अच्छी प्रगति की। औद्योगिक उत्पादन की प्रति वर्ष वृद्धि १३% रही। भारी और मूलभूत उद्योगो मे विशेष उन्नति हुई। योजनाकर्त्ताओं की दूरदर्शिता ने देश के पूर्वी भाग मे औद्योगीकरण का विशिष्ट कार्यक्रम अपनाया था। कृषि के क्षेत्र मे अन्नोत्पादन १६४० मे ११६ मिलियन टन पहुँचा था। पूँजी निर्माण कार्य म १३० मिलियार्ड रूबल का कार्य हुआ। इसका ⅓ व्यय देश के पूर्वीय भाग को विकसित करने मे किया गया। इस योजना के अन्तर्गत लगभग ३,००० राजकीय मिल-कारखाने, बिजलीघर तथा दूसरे उद्योगों ने उत्पादन आरम्भ किया। इन (पूर्वीय क्षेत्रो) क्षेत्रों के विकास को समय से पूर्व समझ लेने और उनका यथोचित विकास इस बात का साक्षी है कि सोवियत संघ ने विश्व के इतिहास को ही बदल दिया, हिटलर के आक्रमण के समय इसी भाग की औद्योगिकता ने नाजी नेता के दाँत खट्टे कर दिये और वह हिटलर जो यूरोप को अपने पैरो तले रौंद चुका था, रूस के पैरो तले रौंदा गया।

द्वितीय विश्व युद्ध और रूस पर उसका प्रभाव

वैसे तो १६३८ मे आंग्ल-फ्रांसीसी सेनाओं ने म्यूनीज मे हथियार डालकर हिटलर के हौसले को बढा दिया था, परन्तु वास्तविक युद्ध की शुरूआत १६३६ म हुई। रूस २२ जून १६४१ तक युद्ध की ज्वालाओ मे झुलसने से बचा रहा, इसम पूर्व हिटलर ने यूरोप को रौंद डाला था। लोगो और राजनीतिक पर्यवेक्षको का यह अनुमान था कि रूस, जो कि जर्मन से कम शक्तिशाली है, पिस जायगा। जर्मनी के युद्ध पूर्व आँकडो के अनुसार उसके कोयले का उत्पादन १६६० लाख टन, कच्चे लोहे का उत्पादन १८० लाख टन, इस्पात का उत्पादन २३० लाख टन था। उसकी तुलना मे रूस का कोयला उत्पादन १६६० लाख टन, कच्चे लोहे का उत्पादन १५० लाख टन, इस्पात का १६० लाख टन था। साथ ही ऐसा अनुमान लगाया गया है कि जिन भू-भागो को जर्मनी ने जीत लिया था उससे उसकी औद्योगिक उत्पादन-शक्ति दुगने से भी अधिक हो जाती थी। सम्भवतः रूस अपनी इस आर्थिक दुर्बलता को जानता था, यद्यपि कुछ क्षेत्रो—कच्ची धातु (Iron ore), तेल, मैगनीज, एल्युमीनियम, कलई, क्रोम, फास्फोरस, बाक्साइट, एसबेस्टस, टंगस्टन इत्यादि—मे वह जर्मनी से निश्चित ही आगे था, और इसीलिये उसने जर्मन से समझौते का हाथ बढाया।

परन्तु जर्मनी के अचानक अप्रत्याशित आक्रमण ने रूस की अर्थ-व्यवस्था को एक क्षण के लिये अस्त व्यस्त कर दिया। जिस द्रुतगति से हिटलर आगे बढ़ा, उस रूप मे वह उत्तर मे लेनिनग्राड व दक्षिण मे यूक्रेन, क्रीमिया, डौनेज, डान तथा उत्तरी

कॉकेशस तक बढ़ गया। कहने का तात्पर्य यह है कि उसने प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्रों को अपने आधिपत्य में ले लिया। आक्रमण के फलस्वरूप युद्ध से पूर्व की कोयले की आधी से लेकर दो तिहाई पूर्ति, लोहा-धातु के उत्पादन का ६०%, इस्पात की लगभग आधी क्षमता, एक तिहाई लगभग अन्न उत्पन्न करने वाली भूमि, लगभग ६०% चुकन्दर का उत्पादन, लगभग आधा पशु धन रूस के हाथ से निकल गया। एल्यूमिनियम उत्पादन के तीन केन्द्रों में से दो, इन्जीनियरिंग उद्योग का २०-२५% उत्पादन और ४०% खाद्य उद्योग शत्रु के हाथ में पहुँच गये। यह ठीक है कि रूस अपने तेल क्षेत्रों की रक्षा कर सका पर उत्पादन की कठिनाइयों ने उत्पादन आधा कर दिया।

२२ जून १९४१ का चिर-स्मरणीय दिन विश्व-इतिहास के नवीन परिवर्तन की दिशा में हमेशा याद किया जायेगा। यह दिन उस रूप में याद रखा जायगा कि राष्ट्रीयता और समाजवाद के आत्म-बल से परिपोषित रूसी जाति ने अपने महान नेता स्तालिन के नेतृत्व में यह दिखा दिया कि उसकी शक्ति अजेय है और उसे एक हिटलर क्या सौ हिटलर भी धराशाही नहीं कर सकते। जिस तेजी से युद्धारम्भ के साथ ही सोवियत सरकार ने सोवियत उद्योगों को उठाकर पूर्वी क्षेत्र में ले जाने का कार्य आरम्भ किया उसी तेजी से युद्धजनित अर्थ-व्यवस्था को अधिकाधिक सुदृढ करने का प्रयत्न किया गया। वह समय भी सोवियत अर्थ-व्यवस्था के संक्रमण का समय था। सम्पूर्ण राष्ट्र प्राण-पण से उद्योगों के स्थानान्तर के कार्य में जुटा हुआ था। दृश्य दर्शनीय था। मानव जाति के इतिहास में वह शायद पहला अवसर था जब कि एक ओर जर्मन सेना देश के भू-भागों पर आधिपत्य जमाती हुई बस्तियों को उजाडती हुई, कारखानों को नष्ट करती हुई आगे बढ रही थी, वहाँ सोवियत देश की अनुशासन और देश-प्रेम तथा समाजवाद के रंग में रंगी हुई जनता पूर्वी क्षेत्रों में उद्योगों को स्थानान्तरित और चालू कर रही थी। राजनीतिक पर्यवेक्षकों ने जो वर्णन प्रकाशित किये हैं उनसे पता चलता है कि पूरे के पूरे कारखाने या कारखानों का अधिकांश भाग यूराल के पार अथवा सुदूरपूर्व साइबेरिया में ले जाकर नये स्थानों पर स्थापित किये जा रहे थे और कम से कम समय में उत्पादन कार्य को आरम्भ करने के प्रयत्न किये जा रहे थे। कुछ दशाओं में ६ माह में ही यह दावा किया गया कि उत्पादन पहले से भी अधिक हो गया। रूसियों ने न कष्टदायक जलवायु की परवाह की, न प्रशिक्षित कर्मचारियों के अभाव की पीड़ा अनुभव की, न कर्मचारियों के आवास-निवास की व्यवस्था की परवाह की तथा निरन्तर दृढ़ता और धैर्य से हल्के उद्योगों को वोल्गा तथा टैंक, शस्त्र उद्योग, वायुयान उद्योग, यूराल क्षेत्र में चालू किये गये। उपभोक्ता पदार्थों का अभाव था, फिर भी उनके उत्पादन को प्राथमिकता नहीं दी गई। फलस्वरूप रहन-सहन के स्तर में कमी आ गई।

जब जर्मन सेनाएँ पराजित-सी फिर लौटने लगीं तो जो भी ग्रामीण क्षेत्र रास्ते में पड़े उन्हें नष्ट कर दिया। उद्योगों, कारखानों, फसलों, खानों को नष्ट कर

दिया। पशुओ, मकानो तथा निवासियो सभी का सफाया कर दिया गया। लगभग २,००० कस्बे, ७०,००० गांवों और ४० लाख श्रमिको को काम देने वाले कारखानो को सम्पूर्ण नष्ट कर दिया गया। युद्ध-जनित हानि का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि सोवियत सघ के लगभग ७० लाख व्यक्ति मारे गये, ५० लाख घायल हुए। इसके अलावा सोवियत सघ के आठ लाख, वर्गमील क्षेत्र मे युद्ध होने से कोयले की आधी खाने, आधी विद्युत उत्पादन-शक्ति, ४०,००० मील रेल की लाइनें, ३२,००० छोटे-बडे कारखाने, ९८,००० सामूहिक खेत, २,९०० मशीन ट्रैक्टर स्टेशन, १३७,००० ट्रैक्टर व ४९,००० कम्बाइन हार्वेस्टरों का नुकसान हुआ। युद्ध से पूर्व कृषि उत्पादन औसतन १० करोड टन प्रति वर्ष था वह घटकर ५ व ७ करोड टन के बीच रह गया। साथ ही २½ करोड व्यक्ति बेघर हो गये।

पुनर्निर्माण कार्य (Reconstruction Works)

इस प्रकार जर्मनी द्वारा सम्पूर्ण विनाश के पश्चात् भूभागो की पुन प्राप्ति और पुनर्निर्माण का कार्य अत्यन्त कठिन था। ज्यो ही शत्रु ने पीठ मोडी, लाल सेना (सोवियत सेना) आगे बढती जाती थी और प्राप्त किये क्षेत्रो म कृषि प्रारम्भ हो जाती, यातायात के रूप मे लाइनो की मरम्मत कर दी जाती और आवश्यक उद्योगो की स्थापना कर दी जाती। सरकार ने ऋण देने को भी एक उदार और विस्तृत योजना तैयार की। कहा जाता है कि अकेले यूक्रेन मे ही स्वतन्त्रता के दो वर्ष पश्चात् २९ हजार सामूहिक कृषि फार्म तथा एक हजार से अधिक मशीन ट्रैक्टर स्टेशन स्थापित किये गये। युद्ध की विभीषिका ने २५ से ४०% श्रमिको को लाल सेना मे भर्ती होने के लिये बाध्य किया और औरतो तथा बच्चों को खेतो पर काम करना पडा। सन् १९४२ तथा बाद के वर्षों मे क्रमश ५० लाख वार्षिक भूमि की वृद्धि की गई। युद्ध के पश्चात् एक ही वर्ष मे सामरिक कारखानो को उपभोक्ता पदार्थों के उद्योगो मे परिणत किया गया। सन् १९४५ मे विध्वस्त क्षेत्रो की आंशिक उत्पादन-शक्ति को ही प्राप्त किया जा सका। यूक्रेन की कर्षित भूमि के लगभग तीन चौथाई पर कृषि आरम्भ हो सकी।

परन्तु सोवियत रूस की कठिनाइयो का अन्त न था। युद्ध के पश्चात् १९४६ मे यूक्रेन और वोल्गा क्षेत्रो मे सूखा पडा अत राशनिंग व्यवस्था को बनाये रखना आवश्यक हो गया। कोयला उत्पादन कार्य ने उत्पादन शक्ति की आधी मजिल तय करली। इसी प्रकार १०० इन्जीनियरिंग कारखाने, २,००० छोटे कारखाने गतिशील हुए। रेल, जल और सडक यातायात की मरम्मत का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। ५ लाख व्यक्तियों के घर, ७०,००० विद्यालय, ६,००० अस्पताल बना दिये गये थे।

यदि पिछली दो योजनाओ में और तीसरी योजना मे भारी औद्योगीकरण के कार्यक्रमों पर इतना अधिक ध्यान न दिया गया होता, तो रूस इस योग्य कदापि नही हो सकता था कि वह जर्मन आक्रमणकारियो को खदेड कर युद्ध मे अन्तत विजय प्राप्त

कर सकता। भारी उद्योगो के विकास के कारण ही तीसरी योजना के अन्त तक और विशेषत युद्ध काल मे रूस तकनीकी दक्षता मे स्वावलम्बन की स्थिति प्राप्त कर सका। भारी उद्योग जो शातिकालीन मशीनो का और उपकरणो का उत्पादन कर रहे थे, युद्ध काल म सैनिक साज सामान की पूर्ति का माध्यम बन गये। अस्त्र शस्त्रो से लेकर ट्रक, टैंक, भारा गाडिया, इन्जिन आदि के उत्पादन मे इन उद्योगो की विकसित अवस्था ने बहुत अधिक सहयोग दिया।

जर्मन आक्रमण से पहले के तीन वर्षों म वस्तुत उत्पादन मे बहुत उत्तम प्रगति हुई। किन्तु आक्रमण के पश्चात् प्रगति का क्रम कुछ रुक गया क्योकि समस्त आर्थिक कार्यक्रमो को सुरक्षा और सैनिक दृष्टिकोण से परिवर्तित करना पडा। रासायनिक उद्योग, धातुशोधन उद्योग एव परिवहन उद्योगो का विशेष रूप से तीसरी योजना मे विकास हो सका, क्योकि ये उद्योग युद्ध सचालन के लिये सहायक सिद्ध हुए। रेलवे लाइन के निर्माण पर विशेष रूप स ध्यान दिया गया, सात हजार मील लम्बी नई रेल बिछाई गयी, पाँच हजार मील रेल-पथ को दुहरा किया गया एव लगभग एक हजार मील लम्बे पथ का विद्युतीकरण किया गया।

अत यह कहना युक्ति सगत ही होगा कि सोवियत सघ ने रक्षात्मक प्रयत्नो के समान ही पुनर्निर्माण के कार्य का महत्व द विशृंखलित अर्थ व्यवस्था, ध्वस साधनो और पीडित आदमियो को व्यवस्थित करन म पहल की। अत म श्री विन्सटन चर्चिल द्वारा सोवियत जनता और उसके महान नेता स्तालिन को अर्पित श्रद्धाजलि का एक अश देखिये जिसम कहा गया है—'रूसी जन युद्ध सेनापति स्तालिन के नेतृत्व म वे नुकसान झेल सके जिसे कोई देश या सरकार कभी न झेल सकी।'

१२

चतुर्थ पचवर्षीय योजना

(१९४६-१९५०)

[FOURTH FIVE YEAR PLAN]

"The main economic and political purpose of this Plan, is to rehabilitate the war ravaged regions of the country, restore *industry and agriculture to their pre war level, and then to* surpass that level considerably." —*Vegnesensky*

जर्मनी के आत्म-समर्पण के पश्चात् तीन महीनों मे सोवियत सघ ने १९ अगस्त १९४५ को घोषित किया कि चतुर्थ योजना का निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। ९ फरवरी १९४६ को योजना का प्रारूप प्रकाशित किया गया और १८ मार्च १९४६ को योजना की अन्तिम स्वीकृति प्रदान कर दी गई। योजना के तीन प्रमुख उद्देश्य थे जो इस प्रकार प्रस्तुत किये गये :—

(१) युद्धकालीन विध्वस का पुनर्निर्माण।
(२) युद्ध पूर्व स्तर (सन् १९३९-४०) उद्योग और कृषि क्षेत्र मे प्राप्त किया जाय।
(३) जहाँ तक सम्भव हो इसे आगे बढाना।

इन उपर्युक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिये निम्न आवश्यकताएँ अनुभव की गईं—

(१) राष्ट्रीय आय में ३८ प्रतिशत वृद्धि।
(२) भारी उद्योग व रेल यातायात के पुनः सस्थापन तथा विकास को प्राथमिकता देना क्योकि इसके बिना सारी अर्थ-व्यवस्था का स्थायी विकास असम्भव है।
(३) कृषि तथा उपभोक्ता पदार्थों के उत्पादन बढाकर जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना।

(४) प्राविधिक और तकनीकी ज्ञान का विकास व विस्तार कर श्रम की उत्पादनशीलता में वृद्धि की जाय।

(५) सामरिक उद्योगों की उत्पादन शक्ति को आर्थिक शक्ति बढ़ाने में लगाया जाय।

(६) नगरों और शहरों का पुनर्निर्माण आवास निवास की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए किया जाय।

(७) शिक्षण एवं स्वास्थ्य सेवाओं और संस्थाओं का सुधार एवं विकास किया जाय।

(८) सर्वांगीण विकास का आयोजन।

प्रस्तावित लक्ष्य एवं उनकी पूर्ति[1]

(प्रतिशत में) आधार वर्ष १९४०=१००

	विवरण	योजना में निर्धारित लक्ष्य	योजना में लक्ष्यों की उपलब्धि
१	राष्ट्रीय आय (१९२६ २७ के मूल्यों के अनुसार)	१३८	१६४
२	औद्योगिक उत्पादन	१४८	१७३
३	रेल यातायात	१२८	१४६
४.	विद्युत उत्पादन	१७०	१८६
५	श्रमिकों एवं कर्मचारियों की संख्या	—	१२६

१ औद्योगिक क्षेत्र—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में पूँजीगत उद्योगों (Capital goods industries) के विकास के लिए ऊँचे लक्ष्य निर्धारित किए गये। सन् १९४० की तुलना में १९५० में इस्पात उद्योग ने उत्पादन में ३५% कोयले के उत्पादन में ५१%, रासायनिक उद्योग के उत्पादन में ८१%, विद्युत के उत्पादन में ७०%, वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किये गये। इसी प्रकार उपभोक्ता पदार्थों के उत्पादन के लक्ष्य भी पर्याप्त ऊँचे रखे गये। औद्योगिक उपभोक्ता वस्तुओं की मात्रा ३६% बढ़ाने का अनुमान रखा गया सूती वस्त्र का उत्पादन ३४% अधिक, ऊनी वस्त्र का ३९% अधिक, कागज का ६५% अधिक होने के लक्ष्य निर्धारित किये गये। साथ ही मोटर-साइकिलों, रेडियो-टेलीविजन आदि के उत्पादन पर भी जोर दिया गया।

२ कृषि—अन्नोत्पादन १९४० की तुलना में १९५० में ७% अधिक, कपास का उत्पादन २५% व चुकन्दर के उत्पादन में २२% अधिक के लक्ष्य रखे गये।

[1] *Planning in Soviet Union*, p 52

३. यातायात तथा परिवहन—युद्ध द्वारा यातायात व्यवस्था बिल्कुल चौपट हो गई थी, इस रूप मे इन सेवाओ का पुनर्निर्माण आवश्यक था। रेलवे कार्यक्रम मे पुरानी लाइनो को फिर से बिछाने के अलावा ४,५०० मील नई लाइनें खोलने की योजना थी। ३,००० मील लम्बी रेल लाइनो का विद्युतीकरण और १,००० डीजल इन्जनो के प्रयोग का लक्ष्य रखा गया। इसी प्रकार ७-८ हजार मील सड़कें और लगभग इतने ही नौवहन के योग्य मार्गों के विकास का लक्ष्य रखा गया।

४. औद्योगिक केन्द्र—युद्ध से ध्वस्त पुराने औद्योगिक केन्द्रों की पुनर्संस्थापना भी एक लक्ष्य था। साथ ही साथ पूर्वी क्षेत्रो के आबाद करने की प्रवृत्ति गतिशील रहेगी। युद्ध काल मे उद्योगो के अत्यधिक केन्द्रीकरण के दुष्परिणामो को दृष्टिगत रखते हुए उद्योगों के स्थानीयकरण मे परिवर्तन करने पर चतुर्थ योजना मे जोर दिया गया। परम्परागत औद्योगिक क्षेत्रो के अतिरिक्त पूर्वी क्षेत्रों एव साइबेरिया मे लोहा, इस्पात, एव कोयला तथा अन्य धातुओ के उत्पादन के लिये उद्योग इस योजना काल मे खोले गय।

५. योजना व्यय का वितरण—चतुर्थ योजना का कुल व्यय २५० मिलियार्ड अथवा अरब रूबल रखा गया जो कि पिछली तीनो योजनाओ की तुलना मे बहुत अधिक था। यह योजना व्यय पिछली तीनो योजनाओ के योग का लगभग ६५ प्रतिशत था। पिछली तीनों योजनाओ की भाँति चतुर्थ योजना मे भी उद्योग को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी—विशेषत भारी उद्योगो के साथ-साथ उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों की ओर नियोजन काल मे प्रथम बार चतुर्थ योजना मे पर्याप्त ध्यान देने का प्रयास किया गया क्योंकि लम्बे युद्ध के बाद अब सर्वसाधारण के जीवन-यापन के स्तर को बढाने और उनकी सुविधाओ मे वृद्धि करने की आवश्यकता थी। चारो योजनाओ मे विभिन्न मदो के अन्तर्गत योजना व्यय के वितरण की तुलनात्मक स्थिति निम्न प्रकार थी

चारों योजनाओं में योजना व्यय का वितरण
(प्रतिशत)

विवरण	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	चतुर्थ योजना
१. उद्योग	४२·३	४१ ३	३७ १	४१ ०
२. कृषि	१६ १	१६ ५	१६ १	१६·१
३. यातायात एव सवाहन	१६·६	१६·४	१६·४	१८·४
४ व्यापार	२२ ०	१ १	२ ०	१ ८
५. सामाजिक एव प्रशासनिक सेवायें	—	२१ ७	२५ ४	१६ ७
योग	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०

६ योजना की प्रगति (Plan Progress)—ध्वंस से भी कठिन पुनर्निर्माण का कार्य होता है, यह रूस की चतुर्थ योजना से प्रकट होता है। योजना के प्रथम दो वर्ष पुनर्निर्माण की कठिनाइयों को बढ़ाने वाले थे। सन् १९४६ में इतना भयकर सूखा पड़ा, जितना रूस के इतिहास में अर्द्ध-शताब्दी में कभी नहीं पड़ा था। अकाल के कारण फसलों को नुक्सान पहुँचा और सामरिक उद्योगों को शांतिकालीन उद्योगों में बदलने में भी उत्पादन में कमी आवश्यक थी। सन् १९४६ में अनाज की फसल युद्ध से पूर्व की तुलना में आधी थी और चारे की कमी पशुपालन में बाधक रही लेकिन १९४७ में फसल अच्छी हुई और उद्योगों के आधार को भी बदल दिया गया। औद्योगिक उत्पादन इस वर्ष युद्ध पूर्व उत्पादन का ९०% हो गया। सन् १९४८ में पहली बार औद्योगिक उत्पादन युद्ध पूर्व उत्पादन से अधिक हुआ। अभी भी उपभोक्ता पदार्थों का उत्पादन बहुत पीछे था। उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन को यहाँ तक पहुँचने में अभी एक वर्ष और लग गया। खाद्य पदार्थों के उत्पादन में इतनी सन्तोषजनक वृद्धि हुई कि दिसम्बर १९४७ में अनाज का राशनिंग समाप्त कर दिया गया।

७. मुद्रा-सुधार (Currency Reform)—साथ ही साथ मुद्रा की मात्रा कम करने के लिये सुधार किया गया। इस काल में चलन के क्षेत्र में एक नया सुधार किया गया। पुराने अवमूल्यित रूबल के स्थान पर नई पत्र-मुद्रा निकाली गई। युद्ध-काल में भारी युद्ध व्यय को पूरा करने के लिये सरकार को अधिक मात्रा में पत्र-मुद्रा की निकासी की आवश्यकता पड़ी थी। मुद्रा-प्रसार और वस्तुओं की माँग में आशातीत वृद्धि से पत्र-मुद्रा को बदल दिया गया। इस प्रकार के सुधार का एक मन्तव्य यह भी था कि उस संचित धन पर कर लगाया जाय जो ग्राम-वासियों ने दुर्लभ-खाद्य-पदार्थों को ऊँचे मूल्यों पर बेचने से प्राप्त किया था। साथ ही इस मुद्रा सुधार की कुछ विशेषताएं इस प्रकार थी —

(१) पुराने चलन को नये चलन में बदलने की दरें अलग-अलग रखी गई—

(अ) नकद जमा के लिये १० पुराने नोटों के बदले में एक नोट दिया गया।

(आ) ३,००० रूबल से नीची सेविंग बैंक जमा के लिये एक पुराने नोट के बदले में एक नोट दिया गया था।

(इ) ३,००० रूबल से ऊपर की जमा निरन्तर बढ़ते हुए अनुपात में नये चलन में बदली जा सकती थी।

(२) नकदी में जोड़कर रखने वाला वर्ग सबसे अधिक प्रभावित हुआ।

(३) मजदूरी और वेतन अप्रभावित रहे।

(४) शहरों में जीवन-निर्वाह व्यय लगभग आधा रह गया।

कृषि क्षेत्र में सुधारों को ध्यान में रखते हुए युद्ध की हानि का अनुमान लगाया गया था जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि लगभग १० लाख सामूहिक फार्म,

१·५ लाख ट्रैक्टर तथा ५० हजार हारवेस्टर कम्बाइन मशीनें नष्ट हो गई थी। ८ लाख वर्गमील भूमि जर्मनी के कब्जे मे चले जाने से रूसी कृषि की रीढ टूट-सी गई। इतने बडे नुकसान की पूरा करके २७ प्रतिशत वृद्धि की योजना प्रस्तुत की गई थी। युद्धकाल मे खाद्याभाव दुश्मन का डर, जर्मन की लापरवाही से पशुओं की सख्या मे ह्रास—कुछ पशु भोजन के काम आये परन्तु अधिकतर किसानो ने दान् से बचाने के लिये स्वय नष्ट कर दिये। कृषि के विभिन्न अगो की पुनर्निर्माण योजना २० मिलियार्ड रूबल की थी। आधे से अधिक रकम मशीन और ट्रैक्टर केन्द्र पर खर्च की गई। इन योजनाओ की पूर्ति पर १९५० तक देश युद्ध के विनाशकारी प्रभावो से पूर्णतः छुटकारा पा चुका था।

औद्योगिक क्षेत्र मे १९५० मे यह आशा की गई थी कि १९४० से उत्पादन ४८% बढ जायगा। लोह-इस्पात उद्योग पर ही पुनर्निर्माण की सारी योजनाएँ आधारित थी। ४५ इस्पात भट्टियाँ, १६५ खुली भट्टियाँ, १५ कनवर्टर और ९० बिजली की भट्टियाँ बनाई गई। कुल योग १९ मिलियन टन से अधिक का था। कोयले का लक्ष्य ५१% वृद्धि का था। १८२ मिलियन टन कोयला पैदा करने वाली खानें उत्पादन मे लगी। पैट्रोल का उत्पादन युद्ध-स्तर पर बढाने का कार्यक्रम था। विद्युत उत्पादन १९४० की तुलना मे ७० प्रतिशत अधिक निश्चित किया गया। मशीन-निर्माण उद्योग मे प्रत्येक प्रकार के उत्पादन का दुगुना या उससे अधिक लक्ष्य रखा गया। रासायनिक उद्योग युद्धपूर्व से ५० प्रतिशत अधिक ऊँचा रखा गया।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना युद्धोत्तरकालीन पुनर्निर्माण की योजना के रूप मे प्रारम्भ की गई थी। इस कार्य मे योजना सफल हुई। उपभोक्ता वस्तुओं की वृद्धि अधिक न होने तथा अनाज की कमी के कारण राष्ट्रवासियो के त्याग और आत्म-बलिदान का अध्याय अभी पूरा नही हुआ। आर्थिक जीवन-स्तर की उन्नति मे आशिक सफलता ही मिली। फिर भी इसमे कोई सन्देह नहीं कि रूसियों ने पुनर्निर्माण कार्य को युद्ध-स्तर का महत्व दे, खडहरो और ध्वस्त शहरो, खेतो, खलिहानो, मकानो का सृजन कर पुन. उनमे नव-जीवन का सचार कर अद्भुत साहस, त्याग, क्षमता और धैर्य का ऐतिहासिक परिचय दिया।

१३

पचम पचवर्षीय योजना

(सन् १९५१-१९५५)

(FIFTH FIVE YEAR PLAN)

योजना एक निरन्तर बहता हुआ प्रवाह है जो राष्ट्रीय जीवन के सिंचन और अभिवृद्धि के लिये आवश्यक सा मान लिया गया है। जब से सोवियत रूस योजनारूढ हुआ तब से चाहे युद्ध हो या शांति उसका योजना-क्रम कभी बन्द नही हुआ। सोवियत अर्थशास्त्रियो मे अब यह विचारधारा काय कर रही थी कि देश के विकास की गति को इतना अधिक तीव्र किया जाय कि एक या दो दशाब्द मे ही वह आर्थिक उन्नति प्राप्त कर ली जाय जो युद्ध न होने की स्थिति मे देश प्राप्त करता। अक्टूबर १९५२ मे पचम पचवर्षीय योजना की घोषणा की गई।

योजना के उद्देश्य व विशेषताएँ

वैस सामान्यत योजना के उद्देश्या मे —

(१) भारी उद्योगो को प्राथमिकता दी जाय।

(२) सुरक्षा उद्योगो को दृढ और उन्नत बनाया जाय और अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक अग का इसी दृष्टिकोण से विकास किया जाय।

(३) यान्त्रिक प्रगति और श्रम उत्पादन मे वृद्धि उस समय तक अर्थहीन मानी जाय जब तक कि उत्पादन करने वाले साधनो का उत्पादन उपयोग की वस्तुओ से अधिक न हो।

उपर्युक्त उद्देश्या को ध्यान मे रखते हुए पचम पचवर्षीय योजना की दो विशेषताएँ स्पष्ट प्रकट होती है —

(१) अनुमानित विकास की दर पूर्व योजनाओ की तुलना मे कम थी। पाँच वर्षों मे ७२% औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य रखा गया जो अब तक की सारी योजनाओ के लक्ष्यो से कम था।

(२) उपभोक्ता उद्योगों और पूँजीगत उद्योगों के विकास की दर के अन्तर को कम कर दिया जाय। इस रूप में उपभोक्ता उद्योगों की वृद्धि दर ६५% रखी गई और पूँजीगत उद्योगों की वृद्धि की दर ८०%। सन् १९२८-४० के बीच पूँजीगत उद्योगों की वृद्धि की दर उपभोक्ता उद्योगों की वृद्धि की दर से दुगुनी थी। इस प्रकार प्रथम उपभोक्ता और पूँजीगत उद्योगों के विकास के अन्तर को पाटने या कम करने का प्रयत्न किया। भारी उद्योगों एवं उपभोक्ता उद्योगों में असन्तुलन सोवियत आर्थिक नियोजन के प्रारम्भिक काल में निरन्तर आलोचना का विषय रहा था। इन दोनों की परस्पर विकास की दरों में बहुत अधिक अन्तर रखा जाता रहा था जिसका परिणाम उपभोक्ता वस्तुओं के अभाव के रूप में बराबर बना रहा। युद्ध की अवधि में यह अभाव और बढ़ गया। सोवियत नियोजकों ने भारी उद्योगों के विकास को समस्त राष्ट्र के आर्थिक विकास का मूलाधार मानते हुये कुछ वर्षों तक उपलब्ध पूँजी साधनों के अधिक भाग का विनियोग भारी उद्योगों के विकास पर किया और इसके लिये जनता से थोड़ा त्याग कर एवं संयम करने की अपेक्षा की गयी। जनता के लम्बे त्याग एवं संयम का फल उत्तम हुआ और यह उसी का परिणाम था कि तृतीय योजना तक देश जर्मन आक्रमण का सामना करके युद्ध में विजयी हुआ। किन्तु युद्ध बाद चतुर्थ योजना में यह अनुभव किया गया कि अब जनता के जीवन स्तर एवं सुख सुविधाओं में वृद्धि करने का समय आगया है, और इसे और अधिक स्थगित करना अहितकर होगा। अतः चौथी योजना में ही भारी उद्योग एवं उपभोक्ता उद्योगों के विकास की दरों के अन्तर में कमी करने का क्रम शुरू हो गया था जिसे पाँचवीं योजना में भी जारी रखा गया।

योजना के लक्ष्य

औद्योगिक कार्यक्रम—जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय की वृद्धि में ६०% का लक्ष्य रखा गया। अलौह धातुओं के उत्पादन और विकास पर अधिक जोर दिया गया। लौह धातु ईंधन और शक्ति के साधनों के विकास की भी पर्याप्त व्यवस्था थी। इसी प्रकार कोयले के उत्पादन की दर तुलनात्मक रूप से कम रखी गई। उपभोक्ता वस्तुओं में मोटरों, मोटर-साइकिलों, घड़ियों, रेडियो, टेलीविजन सेटों, जूतों आदि के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किये गये।

पाँचवीं योजना में खाद्यान्न तथा कृषि उपज की वृद्धि के लक्ष्य अधिक महत्वाकांक्षी रखे गये थे अर्थात् ४० और ५० प्रतिशत। परन्तु इस लक्ष्य की पूर्ति कर्षित भूमि क्षेत्र की वृद्धि करके न था वरन् उत्पादकता या गुणात्मक विकास करके करने का था।

इसी रूप में गृह निर्माण के लिये अधिक साधनों की व्यवस्था की गई। अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में इस योजना काल में जो प्रगति की जानी थी वह निम्न उत्पादन लक्ष्यों से स्पष्ट है —

वस्तु (इकाई)	१६४०	योजना लक्ष्य १६५०	वास्तविक उत्पादन १६५०	१६५२	योजना लक्ष्य १६५५
कोयला (दस लाख टनो मे)	१६६	२५०	२६०	३००	३७२
तेल (")	३१	३५४	३७४	४७·४	७०
विद्युत (मिलियार्ड किलोवाट मे)	४८	८२	६०	११६	१६२
लोह का धातु (दस लाख टनो मे)	१५	१६ ८	१६·४	२५ २	३४
इस्पात (")	१८ ३	२५·४	२७ ३	३४ ५	४४
रोल्ड इस्पात (,,)	१३	१७·८	२० ८	२६ ८	३४
तांबा (हजार टनो मे)	१६१	१२५	२५५	३४४	४८५
सीमेंट (दस लाख टनो मे)	५ ८	१ ५	१·३	१४ १	२२ ७
ट्रैक्टर (हजार साधारण इकाइयो मे)	३१	३१	११२	११७	१३६
खनिज (उर्वरक) (दस लाख टनो म)	२ ६	५ १	५·१	५·६	६ ६
कृत्रिम (सैन्थिटिक) रग (हजार टनो मे)	३५	४३	५२	६४	—

योजना की प्रगति (Plan Progress)

पूंजी के साधनों (Capital Goods) का वार्षिक विकास १३% अथवा ५ वर्षो मे ८०% रखा गया परन्तु विशेष प्रयत्नो द्वारा यह ६१% हुआ। इसके विपरीत उपभोग सामग्री का उत्पादन अनुमानित ११% अथवा ५ वर्षो मे ६५% की जगह वास्तविकता मे ७६% रहा। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि युद्धोपरान्त काल मे उत्पादन तथा उपभोग की सामग्री मे विकास की मात्रा समानता की ओर बढ रही

थी। अब उपभोग के औद्योगिक सामान पहले से लगभग दुने की मात्रा मे बनाये जा रहे थे। २०वीं पार्टी काग्रेस के अधिवेशन में विवरण प्रस्तुत करते हुए श्री ख्रुश्चेव ने बतलाया था कि भारी उद्योग आशातीत रूप मे उन्नति कर चुके हैं जिससे आसानी के साथ जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव है।

यदि हम सोवियत विकास की प्रगति का अध्ययन करना चाहे तो तुलनात्मक अध्ययन अधिक लाभप्रद होगा[1] —

औद्योगिक उत्पादन (१९२९ का प्रतिशत)

क्रम सं०	देश	१९२९	१९३७	१९४६	१९५०	१९५५
१	सोवियत रूस	१००	४२९	४६६	१०८२	२०४९
२	सयुक्त राज्य अमेरिका	१००	१०३	१५३	१९०	२३४
३	ब्रिटेन	१००	१२४	११८	१५३	१८१
४	फ्रास	१००	८२	६३	९२	१२५
५	पूँजीवादी देश	१००	१०४	१०७	१४८	१९३

उल्लेखनीय है कि सन् १९२९ से १९५५ की अवधि मे रूस के औद्योगिक उत्पादन में २० ५ गुनी वृद्धि हुई जबकि सयुक्त राज्य अमेरिका मे इसी अवधि मे लगभग ढाई गुनी और अन्य देशो मे डेढ से दो गुनी वृद्धि ही हुई। केवल पाँचवी योजना की अवधि को ही देखा जाय तो भी रूस के औद्योगिक विकास की दर अन्य पूँजीवादी देशो की तुलना मे पचास प्रतिशत अधिक थी।

योजना काल के मध्य मे योजना के लक्ष्यो मे सशोधन किया गया। अब तक की योजनाओ मे योजना मध्य में जो सशोधन किये जाते रहे उनमे पूँजीगत उद्योगो के लिये अनुमानित व्यय से अधिक व्यय की व्यवस्था करना होता था। परन्तु इस बार का सशोधन इस रूप मे विलक्षण था कि उपभोक्ता उद्योगो को और अधिक महत्व देना था। साथ ही आयात कार्यक्रम मे भी उपभोक्ता पदार्थों के अधिक आयात की व्यवस्था की गई।

---

[1] *Report to the 20th Congress of Communist Party*, 1956, p 7.

सन् १९५३ मे उपभोग मे आने वाली वस्तुओ के लक्ष्य उत्पादन पुन १९५४-५५ के लिये निश्चित किये गये जो इस प्रकार हैं —

वस्तु	इकाई	१९५४	१९५५
सूती वस्त्र	(दस लाख मीटरो म)	५५४९	६२६७
ऊनी वस्त्र	(,,)	२४२	२७१
रेशमी वस्त्र	(,,)	५०४	५७३
लिनेन	(,,)	२९५	४०६
बने हुए अण्डरवियर	(दस लाख मे)	७९	८८
होजरी	(,, ,, जोडो म)	६७३	७७७
चमडे के जूते	(,, ,, ,,)	२६७	३१८
रबर के जूते	(,, ,, ,,)	२९०४६	३१४६९
तैयार पोशाकें	(दस रूबलो मे)	१०५	१०९
सीने की मशीनें	(हजारो म)	४४०१४	५१८०५
बाइसिकल	(,,)	१३३५	२९१५
मोटर साइकिल	(हजारो म)	२५१०	३४४५
घडियाँ	(,,)	१९०	२२५
रेडियो सेट	(,,)	१६८००	२२०००
टेलीविजन	(,,)	३२५	७६०
घरेलू रेफ्रीजेटर	(,,)	२०७	३००
धातु के पलग	(,,)	१३५००	१६५४०
फर्नीचर	(दस अरब रूबलो मे)	५३३६	६९५८

औद्योगिक उत्पादन कार्य-क्रम के अन्तर्गत लक्ष्यो से अधिक वृद्धि हुई। जैसा कि स्पष्ट है कि कुल उत्पादन मे ८५% की वृद्धि (लक्ष्य ७२%), उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे ७६% की वृद्धि (लक्ष्य ६५ प्रतिशत) और पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन मे ९१ प्रतिशत (लक्ष्य ८०%) की वृद्धि हुई। औद्योगिक प्रगति का सबसे अच्छा माप-दण्ड पूँजी विनियोग होता है। पचम योजना मे इसकी मात्रा ९८९.७ मिलियार्ड रूबल थी जो कि प्रथम योजना का १० गुने से अधिक था। श्रम की उत्पादकता मे ४४% की वृद्धि हुई।

कृषि क्षेत्र मे प्रगति सन्तोषजनक नहीं हुई। अन्नोत्पादन मे १९५० के मुकाबले ३०-४०% अधिक था कच्चे माल की उत्पादन स्थिति भी सन्तोष से परे थी। ७० करोड एकड नवीन भूमि का कृषि के अन्तर्गत लिया गया। पशुओं की सख्या मे १९५३ तक कमी रहने से मांस की उपलब्धि म वृद्धि नही हुई।

इतना सब कुछ होने पर भी योजना को पूर्ति को जोश मे ४ वर्ष ४ माह में ही पूरा कर लिया गया। इसको सफलता निम्न आँकडो स प्रकट है —

१९५५ में पूर्ति

		१९५०	योजना	वास्तविक पूर्ति
१	राष्ट्रीय आय	१००	१६०	१६८
२	रोजगार	१००	११५	१२०
३.	औद्योगिक उत्पादन	१००	११७	१८५
४.	भारी उद्योग	१००	१८०	१९१
५.	अन्य उद्योग	१००	१६५	१७६
६.	विद्युत शक्ति	१००	१८०	१८७
७	श्रम उत्पादकता—			
	उद्योग मे	१००	१५०	१४४
	निर्माण मे	१००	१५५	१४२
	कृषि मे	४००	१४०	१४७

इस रूप में सबसे अधिक विकास इन्जीनियरिंग उद्योग में हुआ। १२० प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त करना एक अद्वितीय उदाहरण था। तेल का उत्पादन ८० प्रतिशत, कच्चा लोहा ७४ प्रतिशत और कोयला ५० प्रतिशत बढा।

सन् १९५३ मे स्तालिन की मृत्यु के पश्चात् रूसी अर्थ व राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जो कृषि का विकास १९५३ तक नाममात्र ही प्रगति कर सका था और दशा अधिक सन्तोषजनक न थी वहाँ बाद म कृषि-क्षेत्र पर पूरा ध्यान केन्द्रित किया गया। रूस की कम्यूनिस्ट पार्टी ने सन् १९५४ मे ३½ लाख युवको को बजर और नातोड जमीन आबाद कार्य करने के कार्य मे नियोजित किया, २ लाख ट्रैक्टरो की सहायता से ३३ मिलियन हेक्टर भूमि २ वर्षों मे कृषि योग्य बनाई जा सकी। योजना के अन्तिम वर्ष मे अन्नोत्पादन १९५० की तुलना मे १२६ प्रतिशत बढा। औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन मे भी अच्छी वृद्धि हुई। गायो की सख्या मे २० प्रतिशत, भेड ३२ प्रतिशत, और सूअर ८३ प्रतिशत बढ़े।

योजना आयोग के ढाँचे और स्वरूप मे भी परिवर्तन किया गया। आर्थिक-आयोजन मे विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का प्रवेश हुआ। केन्द्रीय सत्ता और प्रभुत्व के स्थान पर प्रजातन्त्रों (Union Republics) को आर्थिक कार्यक्रम के लिये उत्तरदायी ठहराया गया। योजना आयोग को दो भागो म विभाजित किया गया :—

(१) गोसेकोनोम कोमिसा (Gosckonom Komissa)।

(२) गोस प्लान।

नौकरशाही का दबाव समाप्त कर उत्पादन की प्रेरणा को प्रोत्साहन दिया गया। आर्थिक-प्रेरणा योजना की सफलता के लिये आवश्यक मानी गई।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि पंचम पंचवर्षीय योजना जहाँ एक ओर पूँजीगत उद्योगो के स्थान पर उपभोक्ता उद्योगो के महत्व की परिचायक योजना कही जा सकती है वहाँ दूसरी ओर योजना-प्रणाली के आधार मे परिवर्तन की योजना भी कही जा सकती है। इसमे विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति एक ऐसा चिन्ह था जो अब तक आर्थिक नियोजन के क्षेत्र मे अनुभव नही किया गया। केन्द्रीय और क्षेत्रीय आर्थिक आयोजन का प्रारम्भ इस रूप मे विशेष उल्लेखनीय घटना कही जा सकती है।

छठवी पंचवर्षीय योजना

सन् १९५६ से १९६० तक

(SIXTH FIVE YEAR PLAN)

"अब जबकि हमारे पास एक शक्तिशाली भारी उद्योग है जो सभी दृष्टिकोण से सुविकसित है तो हम पूंजीगत माल और उपभोग की वस्तुएं दोनों का ही उत्पादन तेजी के साथ कर सकते हैं। साम्यवादी दल ऐसा ही कर रहा है और करता रहेगा तथा इस बात का भरसक प्रयत्न करेगा कि सोवियत नागरिकों की आवश्यकताओं को अधिक अंश तक भली-भांति सन्तुष्ट किया जा सके।"

—श्री निकिता ख्रुश्चेव

यह योजना पाँचवी योजना के अंतिम वर्षों में होने वाले परिवर्तनों की पृष्ठभूमि मे परिवर्तनवादी स्वरूप लेकर तैयार की गई थी। इस योजना की घोषणा पार्टी के ऐतिहासिक अधिवेशन फरवरी १९५६ मे की गई। यह अधिवेशन जहाँ स्टालिन की मृत्यु के पश्चात् पहली बार महत्वपूर्ण परिवर्तनों का निश्चय करने के लिये हुआ था, वहाँ दूसरी ओर राज्य की आधार छठवी योजना के प्रारूप पर विचार करने के लिये भी हुआ था। वैसे तो यह योजना कई रूपो मे पाँचवी पचवर्षीय योजना के समान ही थी।

जहाँ पाँचवी योजना मे कुल औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य ७२ प्रतिशत वृद्धि रखा गया था और वास्तविक वृद्धि की दर ८५ प्रतिशत थी। इस योजना मे यह दर केवल ६५ प्रतिशत रखी गई, इस प्रकार विकास की गति को और भी धीमा कर दिया गया। पूंजीगत माल के उत्पादन की विकास दर ७० प्रतिशत और उपभोक्ता वस्तुओं के विकास की दर ६० प्रतिशत रखी गई। इस रूप मे पहले कभी भी जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति पर इतना ध्यान नही दिया गया था।

योजना का उद्देश्य

पाँचवी योजना के अन्त तक रूस द्वितीय महायुद्ध के विनाश से हुई हानि की लगभग पूर्ति ही नही कर चुका था, बल्कि उससे भी आगे बढ गया था। पुनर्निर्माण

का कार्य लगभग चौथी योजना के अन्त तक ही सम्पन्न किया जा चुका था। द्वितीय विश्व युद्ध के कारण और उसके बाद किये गये शीघ्र पुनर्निर्माण एवं विकास ने सोवियत रूस को संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से विश्व का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बना दिया था। अब रूस के समक्ष सैनिक शक्ति को सुदृढ़ करने के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से अपने को और अधिक उन्नत करने की समस्या थी, ताकि रूस कम से कम अवधि में प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि में अन्य विकसित देशों से आगे निकल सके। छठवीं योजना की रचना वस्तुतः इसी दृष्टिकोण को दृष्टिगत रखते हुये की गयी। पार्टी कांग्रेस के बीसवें अधिवेशन में जो सन १९५६ में हुआ इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये निम्नलिखित कार्यक्रमों को अपनाने का प्रस्ताव पास किया गया

(१) आधारभूत अथवा भारी उद्योगों को प्राथमिकता जिससे कि इन्जीनियरिंग, खनिज-तेल, कोयला, रासायनिक उद्योग एवं लोह तथा अलौह धातु उद्योग का विकास हो सके।

(२) राष्ट्र के भौतिक साधनों का प्रभावपूर्ण उपयोग, तथा राष्ट्र के पूर्वी भागों में कोयला, लोहा, विद्युत शक्ति आदि के विकास के लिये औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना।

(३) लेनिन द्वारा प्रतिपादित राष्ट्र के विद्युतीकरण की योजना का विकास एवं उद्योग, यातायात एवं कृषि में विद्युत प्रयोग का अधिकाधिक विस्तार।

(४) उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन की विकास दर में वृद्धि विशेष कर कृत्रिम रबर, कृत्रिम रेशम, चमड़ा, प्लास्टिक आदि उद्योगों का विकास।

(५) कृषि उद्योग का व्यापक मशीनीकरण ताकि फार्मों से अधिक कृषि उपज प्राप्त हो सके।

(६) स्वयचालित मशीनीकरण की प्रक्रिया के द्वारा तकनीकी प्रगति एवं आधुनिकतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों का प्रचलन।

(७) आवास व्यवस्था एवं गृहनिर्माण का प्रसार तथा जनसाधारण के लिये आधुनिक सुख साधनों की व्यवस्था।

(८) कारखानों के उचित समन्वय एवं विशिष्टीकरण के द्वारा उत्पादन सगठन में सुधार।

(९) श्रम की उत्पादकता में वृद्धि के प्रयत्न।

(१०) श्रमिकों एवं कृषकों के जीवन यापन के स्तर में सुधार।

योजना के लक्ष्य

योजना के लक्ष्यो मे औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्य इस प्रकार है[1] .—

औद्योगिक वार्षिक वृद्धि के प्रतिशत

(छठी योजना के वार्षिक लक्ष्य)

कोयला	८ ६
पेट्रोल	१३ ६
गैस	३१ ०
विद्युत	१३ ८
कच्चा लोहा	१०.०
इस्पात	८ ५
सीमेन्ट	१६.५
चीनी	१८.०
ऊनी वस्त्र	७.७
चमडे के जूते	८.७

कृषि उद्योग म गेहूँ के उत्पादन को बढाकर १८ करोड टन कर दिया गया जिसमे ३ २ करोड टन ऐसी नई भूमि से प्राप्त किये जायेंगे जिन पर योजना काल मे कृषि प्रारम्भ की जायगी। रुई के उत्पादन मे ५६ प्रतिशत वृद्धि, ऊन के उत्पादन म ८२ प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। कृषि फार्मों को १५½ लाख ट्रैक्टर तथा साढ़े पाँच लाख से अधिक कम्बाइण्ड हारवेस्टर्स देने का लक्ष्य रखा गया।

कुल मिलाकर योजनाकाल मे ६००० नये औद्योगिक कारखाने खोलने का लक्ष्य रखा गया। छठवी योजना मे पूँजी व्यय चौथी योजना से तीन गुना अधिक था। उत्पादन के भौतिक लक्ष्यो को भी बहुत ऊँचा रखा गया था। विशेषत कृषि के उत्पादनो के लिये जो लक्ष्य निर्धारित किये गये थे वे बहुत ही अधिक महत्वाकाक्षी थे।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि षष्टम योजना म नेताओ ने नवीन जोश म योजना की व्यावहारिकता को कम ध्यान मे रखा। परिणाम उसका यह हुआ कि उसमे सशोधन की आवश्यकता अनुभव हुई और प्रथम सशोधन १९५७ तक, द्वितीय १९५८ म किया गया तथा बाद मे इसे स्थगित कर दिया गया। योजना कितनी अव्यावहारिक थी यह उसकी वास्तविक पूर्ति के लक्ष्यो से स्पष्ट है।

---

[1] Bulletin May 1955, p 24 (Institute for Study of U.S S.R, Munich)

औद्योगिक उत्पादनों के निर्धारित लक्ष्य एवं उनकी पूर्ति (सन् १६५८ में)[1]

उत्पादन	योजना में निर्धारित वास्तविक वृद्धि का (प्रतिशत)	सन् १६५८ में वास्तविक वृद्धि (प्रतिशत)
कोयला	८ ६	२ ८
पेट्रोल	१३ ७	६ ४
गैस	३१ ०	१६·६
विद्युत	१३ ५	६ ७
कच्चा लोहा	१० ०	५·३
इस्पात	८·५	५ ३
सीमेन्ट	१६ ५	८ ६
चीनी	१४ ०	५·१
ऊनी वस्त्र	७·७	५ २
चमड़े के जूते	८ ७	४ ६

यही हाल कृषि उत्पादनो का हुआ। अनाज, कपास, चुकन्दर, ऊन, आलू, मांस, एवं डेयरी उत्पादनो के लिये योजना मे निर्धारित वार्षिक वृद्धि के लक्ष्यो की उपलब्धि सन् १६५८ तक नही की जा सकी। उपलब्धियाँ निर्धारित लक्ष्यो की आधी से भी कम थी और कुछ वस्तुओ म वे शून्य थी।[2] ऐसी स्थिति में एक सैद्धान्तिक मतभेद उत्पन्न हो गया जिसके आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभाव बड़े दूरगामी हो सकते थे। सोवियत नेताओ के समक्ष यह समस्या खड़ी हो गयी कि योजना को स्थगित करना उत्तम होगा अथवा उस पूरी अवधि तक कार्यान्वित करना ठीक होगा। यदि योजना को सन् १६६० तक चालू रखा जाता तो यह निश्चित था कि सोवियत आर्थिक योजनाओ की सफलताओ के इतिहास म एक भारी आघात की अनुभूति उत्पन्न हो जाती क्योकि योजना के लक्ष्य इतने अधिक महत्वाकांक्षी रखे गये थे कि उनके पचास प्रतिशत भाग की पूर्ति होना भी कठिन हो जाता। योजना की अधूरी उपलब्धि योजना की असफलता की प्रतीक मानी जाती और इसकी आर्थिक एवं राजनैतिक प्रतिक्रिया अत्यन्त ही विपरीत होती। योजनाओ के प्रति लोगो के विश्वास मे कमी हो जाती तथा बाहरी पूँजीवादी राष्ट्रो को रूस के आर्थिक विकास की कमियो एवं असफलताओ का प्रतिकूल प्रचार करने का अवसर मिल जाता।

छठवीं योजना का मध्यावधि परित्याग

स्टालिन की मृत्यु के पश्चात् सोवियत सत्ता की बागडोर श्री निकिता ख़ुश्चेव के हाथो मे आ गयी और सन् १६५८ तक रूसी राजनीति पर उनका प्रभाव अत्यन्त सुदृढ हो चुका था। श्री ख़ुश्चेव स्वयं इस नाजुक परिस्थिति से अवगत थे और उनका

[1] Bulletin May 1959 (Institute for the study of U S S R , Munich)
[2] National Economy of U S S R Statistical Returns, p 92

यह दृढ मत था कि योजना की सफलता के विषय में किसी किस्म का कोई खतरा मोल नहीं लिया जाय। स्तालिन की मृत्यु के बाद यह रूस की प्रथम योजना थी और यदि वह असफल होने दी जाती, तो विश्व के समक्ष रूस का प्रतिबिम्ब कुछ धूमिल अवश्य हो गया होता। इस परिस्थिति का निराकरण योजना का मध्यावधि परित्याग करके किया गया। सन् १९५८ में छठवीं योजना को समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार छठवीं योजना केवल तीन वर्ष तक ही चल सकी और इन तीन वर्षों की अवधि में भी पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति नहीं की जा सकी। योजना के अन्तिम दो वर्षों (सन् १९५९ एवं १९६०) को इस योजना से निकाल कर सातवीं योजना में समाविष्ट किया गया। इस प्रकार सातवीं योजना पाँच वर्ष के सामान्य काल के स्थान पर सात वर्षों की अवधि की बनायी गयी जिसका विवरण अगले अध्याय में किया गया है।

छठवीं योजना को तीन वर्ष बाद ही समाप्त कर दिये जाने और अगली योजना सात वर्षों की अवधि की बनाने के लिये रूस के नेताओं द्वारा जो कारण दिये गये वे भी अत्यन्त अनोखे थे। यह कहा गया कि राष्ट्र के पूर्वी भागों में तथा विशेषकर पूर्वी साइबेरिया एवं मध्य एशिया में नये खनिज पदार्थों एवं ईंधन के साधनों की खोज के कारण समस्त योजना कार्यक्रम पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो गया है। कच्चे माल के इन महत्वपूर्ण साधनों को राष्ट्र की योजना में सम्मिलित करके आगामी सात वर्षों के लिये एक ऐसी योजना बनाई जानी चाहिये जिसके आधार पर रूस आर्थिक विकास के क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमेरिका से भी आगे निकल सके। महत्वपूर्ण खनिज पदार्थों में अनेक ऐसे थे जिनका सम्बन्ध विशेष प्रकार के इस्पात के निर्माण और अणु-शक्ति में काम आने वाले ईंधनों से था। इन बहुमूल्य पदार्थों के उपयोग के लिये पूर्वी क्षेत्रों में औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना आवश्यक थी जिसे छठवीं योजना में स्थान नहीं दिया गया था। योजना के ऐसे दो वर्षों की अवधि इतनी कम थी कि उसमें इन नये कार्यक्रमों का समावेश करके विकास की दर में वृद्धि करना असम्भव होता। अतः योजना के परित्याग का ही निर्णय किया गया और सात वर्ष की एक नवीन योजना देश के समक्ष रखी गयी।

सोवियत रूस के आर्थिक योजनाकरण के इतिहास में छठवीं योजना की असमय समाप्ति की तुलना भारत की चतुर्थ योजना के स्थगन से की जा सकती है। भारत में श्री अशोक मेहता द्वारा चौथी योजना का जो प्रारूप प्रस्तुत किया गया उसमें निर्धारित लक्ष्य परिवर्तित परिस्थितियों को देखते हुए पहुँच के बाहर थे। तीसरी योजना की असफलता एवं चीनी तथा पाकिस्तानी आक्रमणों के बाद सुरक्षा व्यवस्था पर बढ़ा हुआ व्यय और लगातार दो वर्षों के सूखे के कारण कृषि उत्पादन में भयंकर कमी के कारण चौथी योजना को तीन साल के लिये स्थगित करने के लिए भारत को विवश होना पड़ा। अब भारत की चौथी योजना सन् १९६६ से १९७१ तक की न होकर सन् १९६९ से सन् १९७३ तक की बन रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के नियोजकों ने इस दिशा में सोवियत रूस के अनुभवों से मार्ग दर्शन प्राप्त करने में कोई

संकोच नहीं किया है। वस्तुत यह ठीक भी है। उपलब्ध साधनों की तुलना मे उत्पादन के अत्यन्त महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित करके योजना की असफलता को आमन्त्रित करने के बजाय यह कहीं उत्तम है कि कुछ रुक कर साधनो की उपलब्धि पर पूर्ण विचार किया जाय और उनकी उपलब्धि की सीमाओ के अन्दर ही योजना मे उत्पादन के व्यावहारिक लक्ष्यों का निर्धारण किया जाय।

कुछ भी हो छठवी योजना का बीच मे ही परित्याग करके रूस ने एक अत्यन्त कूटनीतिपूर्ण एव बुद्धिमत्तापूर्ण कदम उठाया। अगली योजना को सफल बनाने के उद्देश्य से श्री ख्रुश्चेव द्वारा आर्थिक केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाई गयी। सन् १९५८ मे सामूहिक कृषि फार्मों का पुनर्संगठन किया गया। छोटी इकाइयो को बडी इकाइयो में मिला दिया गया। मशीन ट्रैक्टर स्टेशनो मे भी परिवर्तन किये गये। अनेक स्टेशनो को समाप्त करके उनकी मशीन और उपकरण बडे-बडे सामूहिक फार्मों को दे दिये गये। आर्थिक मामलो मे स्थानीय प्रशासनो एव औद्योगिक उपक्रमो को अधिक अधिकार प्रदान किय गये। औद्योगिक नियत्रण के लिये प्रादेशिक आर्थिक परिषदो की स्थापना की गयी, तथा विभिन्न केन्द्रीय मत्रालयो से उद्योगो के प्रबन्ध का कार्य लेकर इन परिषदो को सौंप दिया गया। इन समस्त पुनर्संगठनो एव आर्थिक परिवर्तनो का परिणाम रूस के लिये उत्तम हुआ और इनके द्वारा सात वर्षीय सप्तम योजना की पूर्ण सफलता के लिये माग प्रशस्त हो गया।

१४

सप्तम सप्तवर्षीय योजना

(सन् १९५९ से १९६५)

(SEVENTH SEVEN YEAR PLAN)

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २१वी ऐतिहासिक कांग्रेस मे सप्तम सप्तवर्षीय योजना श्री निकिता ख्रुश्चेव द्वारा प्रस्तुत की गई। यह पहला अवसर था कि योजना का समय या कार्यकाल ५ वर्ष मे ७ वर्ष का कर दिया गया। इस योजना काल की वृद्धि या यह लाभ अनुमान किया गया कि राष्ट्रीय योजना प्रणाली मे स्थिरता आ सकेगी और भविष्य म दूरदर्शिता का लाभ उठाया जा सकेगा।

१. योजना के उद्देश्य

सोवियत नेताओ की यह मान्यता है कि मार्क्सवाद और लेनिनवाद के अनुसार मानव-समाज का विकास भौतिक और उत्पादक शक्तियो के विकास पर निर्भर है। सच्चे साम्यवाद की स्थापना तभी हो सकती है जबकि उत्पादन का स्तर इतना उन्नत हो कि प्रत्येक को अपनी आवश्यकता के अनुसार वितरण हो। आर्थिक क्षेत्र मे इस योजना का उद्देश्य देश की उत्पादन शक्तियो का चहुँमुखी विकास करना था। भारी और मूल-भूत उद्योगो के विस्तार को प्राथमिकता के आधार पर देश की अर्थ-व्यवस्था को इस प्रकार गठित किया जाय कि साम्यवाद के भौतिक और तकनीकी आधार की स्थापना के लिये निश्चित कदम उठाया जा सके। श्री ख्रुश्चेव के भाषण मे इस प्रकार का संकेत था कि सन् १९७२ तक सोवियत संघ आर्थिक दृष्टि से विश्व का पहला राष्ट्र बन जाय। यह मान लेना चाहिये कि यह योजना शान्तिमय आर्थिक प्रतियोगिता का सूत्रपात था।

२ योजना के लक्ष्य

योजना के प्रमुख लक्ष्य निम्न प्रकार थे

(१) सन् १९५९-६५ के बीच अर्थ-व्यवस्था को प्रत्येक शाखाओ मे क्रमिक विकास जिसमे भारी उद्योगो को प्राथमिकता। इस प्राथमिकता का साम्यवाद के स्वप्न

को साकार करने में उपयोग। शहरी और ग्रामीण जनता की वास्तविक आय वृद्धि, निम्न तथा मध्यम वर्ग के श्रमिकों तथा कर्मचारियों के वेतन में उन्नति, उपभोग के उत्पादन तथा मकान-निर्माण पर अधिक जोर दिया गया। नई पीढ़ी को जन्म से ही आदर्श साम्यवादी बनाने के लिए उनकी सैद्धान्तिक शिक्षा के प्रसार को विशेष स्थान मिला।

(२) शान्तिपूर्ण आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया। इसके द्वारा ही सोवियत संघ का आर्थिक उद्देश्य पूर्ण होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि कम से कम समय में प्रति व्यक्ति उत्पादन में पूँजीवादी देशों की बराबरी करके आगे निकलना इसके लिए उत्पादन की मुख्य शाखाओं और सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को अधिकतम गतिशील बनाना निश्चय हुआ है और ऐसा सोवियत शासन के लिये इस रूप में सम्भव है कि राष्ट्रीय साधनों पर उसका अप्रत्याशित अधिकार है। हाँ अवश्य ही यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि उत्पादन-प्रणाली में बहुत-सी बातें विचारणीय हैं—उत्पादन के गुणात्मक रूप में सुधार, विकास की गति में अभिवृद्धि, हर प्रकार के धातु उद्योग—विशेषकर कृत्रिम धागे तथा वस्तुओं तथा आधुनिक रासायनिक उद्योग का निर्माण, निर्माण कार्यों का अधिकतम उपयोग व यन्त्रीकरण, बड़ी मात्रा में थर्मल बिजली उत्पादन, कोयले के स्थान पर तेल और गैस का उपयोग, रेलों का विद्युतीकरण और डीजल एन्जिनों का अधिकाधिक उपयोग, बढ़ती हुई माँग को ध्यान में रखते हुए कृषि के प्रत्येक क्षेत्र का विकास और आवास निवास की कमी को दूर करना।

(३) योजना काल में देश के असीमित और प्रचुर प्राकृतिक साधनों का गवेषणा कार्य तथा विकास। इस रूप में यह स्पष्ट था कि लाभपूर्ण उत्पादन-शक्ति का बँटवारा किया जायगा जिससे प्रत्येक क्षेत्र विकसित हो सके और उद्योग कच्चा माल, ईंधन बाजार के अधिकतम निकट पहुँचाए जाय। ऐसा अनुमान लगाया गया कि रूस का ३/४ कोयला, ७० प्रतिशत जंगल और ६० प्रतिशत जल विद्युत के भण्डार पूर्वी क्षेत्रों में हैं। अतः प्रत्येक प्रकार के उद्योग इधर स्थापित करने के प्रयत्न किये जाने का प्रावधान रखा गया। यूराल, साइबेरिया, सुदूरपूर्व एशिया, कजाकस्तान तथा मध्यम एशिया में सप्तम योजना के कुल पूँजी विनियोग का ४० प्रतिशत से अधिक व्यय किया जावेगा फलस्वरूप १९६५ तक कुल उत्पादन में पूर्वी क्षेत्रों का भाग बहुत बढ़ जायगा—कच्चा लोहा ४४ प्रतिशत, इस्पात ४७ प्रतिशत, कोयला ५० प्रतिशत, तेल ३० प्रतिशत और विद्युत शक्ति ४६ प्रतिशत। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों के प्राकृतिक साधनों का भी विकास किया जायगा। अन्नोत्पादन, औद्योगिक फसलों तथा पशुपालन तथा उत्पादन में हर प्रकार का सुधार एवं सहायता देकर उनका विकास।

(४) योजनाकाल में सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था में यान्त्रिक और तकनीकी कुशलता का अधिकतम विकास जिससे इन्जीनियरिंग उद्योग को सबसे ऊँचा स्थान दिया जा सके। इसकी सहायता से अणु-शक्ति का शान्तिमय उपयोग भी एक उद्देश्य था।

(५) योजना काल का अन्तिम उद्देश्य यह था कि उत्पादन के बढाने मे अर्थ-व्यवस्था का समाजवादी सगठन, नई प्रणाली तथा यन्त्रीकरण का प्रयोग और निरन्तर बढता हुआ अनुभव तथा कुशलता का सहारा श्रम-उत्पादकता को प्राप्त होगा। इस रूप मे निष्कर्ष स्वरूप उत्पादन वृद्धि के लिये सगठन सुधार एव आधुनिक प्रणाली अधिक महत्वपूर्ण मानी गयी। ऐसा करके योजना निर्माताओ ने अर्थ-व्यवस्था को असीम स्थिरता प्रदान करने का पुरजोर प्रयत्न किया।

३. योजना व्यय

उपर्युक्त लक्ष्यो की पूर्ति के लिये मोटे रूप मे व्यय का वितरण इस प्रकार किया गया :

व्यय की मदें	व्यय (हजार मिलियन रूबल मे)
१ औद्योगिक विकास	१४८८–१५१३
२ गृह-निर्माण एव जन सुविधाएँ	३७५– ३८०
३ शिक्षा, स्वास्थ्य एव सास्कृतिक सुविधाएँ	७७– ७७
कुल	१९४०—१९७०

उत्पादन की प्रमुख मदो पर व्यय और अतिरिक्त उत्पादन के लक्ष्य नीचे दिये गये हैं—

	व्यय (हजार विलियन रूबल)	अधिक उत्पादन लक्ष्य (१९५८ के स्तर से प्रतिशत)
१—लोहा इस्पात	१००	६०
२—रासायनिक	१००	२००
३—तेल व गैस	१७०	१०० से ४००
४—कोयला	७४	२० से ६०
५—बिजली	१२५	१००
६—लकडी उद्योग	६०	
७—उपयोग व खाद्य उद्योग	८०	५०-१००
८—कृषि	१५० (सरकार द्वारा)	७०
९—रेल	११०	४०
१०—गृह-निर्माण व निर्माण पदार्थ उद्योग	११०	१००

४. उद्योग

१९६५ मे कुल औद्योगिक उत्पादन १९५८ की अपेक्षा ८० प्रतिशत बढने का अनुमान, जिसमे उत्पादन के साधनो का उत्पादन ८५-८८ प्रतिशत और उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन ६२-६५ प्रतिशत बढ़ेगा। कुछ भारी उद्योगो के उत्पादन लक्ष्य इस प्रकार थे—१९६५ मे कच्चे लोहे का उत्पादन ६५-७० मिलियन टन या १९५६ की अपेक्षा ६५-७७ प्रतिशत अधिक, इस्पात ८६-९१ मिलियन टन या ५६ ६५ प्रतिशत अधिक, अल्यूमिनियम का उत्पादन २ ८ गुना, शुद्ध तांबे का १·९ गुना, रासायनिक पदार्थों का तीन गुना, खनिज तेल का उत्पादन १९५६ का दुगुना, होकर २३०-२४० मिलियन टन और गैस का उत्पादन पांच गुना बढकर ३० हजार घन मीटर से १५० घन मीटर, कोयले का उत्पादन १९६५ मे ५९६-६०९ मिलियन टन और विद्युत शक्ति का उत्पादन ५,००,०००,—५,२०,००० मिलियन किलोवाट घटे या १९५८ का दुगुना होने का अनुमान लगाया गया।

इन्ही कुछ भारी उद्योगो के उत्पादन लक्ष्यो को तालिका रूप म इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

उत्पादन लक्ष्य सन् १९६५ के लिये

मदें	इकाई	सख्या	मिलियन में
कोयला	टन	६००	६१२
इस्पात	,,	८६	९१
कच्चा लोहा	,,	६५	७०
तेल	,,	२३०	२४०
विद्युत (किलोवाट शक्ति घटे)		५००,०००	५२०,०००

(साधन—सोवियत हैण्डबुक १९५९-६५)

सोवियत सघ मे पचम पचवर्षीय योजना से ही उपभोक्ता पदार्थों के विकास पर अधिक जोर दिया जाने लगा जिससे कि लोगो का जीवन स्तर अधिक उन्नत किया जा सके। सप्तवर्षीय योजना तो प्रारम्भ से ही यह मानकर चली कि साम्यवाद की स्थापना तब तक सभव नही हो सकती जब तक कि उपभोक्ता उद्योगो को पूंजीगत उद्योगो के स्तर पर ले जाया नही जाता। एतदर्थ हल्के उद्योगो का कुल उत्पादन सात वर्षों मे १ ५ गुना वृद्धि पाने का अनुमान था। सूती वस्त्रो का उत्पादन १९५६ मे ५८०० मिलियन मीटर से बढकर ७७०० ८००० मिलियन मीटर अर्थात् १ ३३-१ ३८ प्रतिशत और जूतो का उत्पादन ३५५ मिलियन जोडो से ५१५ मिलियन जोडे अर्थात् १५५ प्रतिशत होने का अनुमान था। इसी प्रकार मांस के उत्पादन मे २१७ प्रतिशत, मक्खन १६० प्रतिशत, दानेदार चीनी १८०-१९५ प्रतिशत, वनस्पति तेल १६२ प्रतिशत, मछली १६२ प्रतिशत और एल्कोहल १२८ प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य थे। गृहणियो

के गृह-कार्य को हल्का करने के लिये गृह उपकरणों को दुगुना करने के उद्देश्य से इन पर ८८००० मिलियन रूबल व्यय का प्रावधान रखा गया।

औद्योगिक संगठन इस महान कार्य को सफलतापूर्वक सचालित कर सके इसके लिये विशिष्टीकरण तथा आपसी सम्पर्क एवं सन्तुलन के साथ यन्त्रीकरण की पूर्ण सहायता लेगा। उत्पादन प्रणाली को इस ढंग पर संगठित किया जायगा कि अपव्यय, लागत-व्यय और खराब किस्म के उत्पादन में कमी होगी। सम्पूर्ण देश के प्रत्येक क्षेत्र अपने साधनों, परिस्थिति, आवश्यकताओं, जलवायु को ध्यान में रखते हुए निर्माण-कार्य में संलग्न होंगे। इस प्रकार आर्थिक साधन व यातायात की बचत तथा लाभपूर्ण प्रयोग हो सकेगा। श्रमिक कम समय काम करने पर भी श्रम-उत्पादकता ४५ से ५० प्रतिशत वृद्धि पा सकेगी और उत्पादन लागत में ११·५ प्रतिशत होने का अनुमान था।

५. कृषि उत्पादन कार्य-क्रम

पष्ठम योजना के अन्तर्गत हमने देखा कि नवीन सुधारवादी जोश की भावना से प्रेरित होकर उसमें अव्यावहारिकता बढ़ा दी गई थी किन्तु उसे विवशतापूर्वक १९५८ में स्थगित कर दिया गया। इस प्रकार पष्ठम योजना के अन्तिम दो वर्ष सप्तम योजना के प्रथम दो वर्ष बन गये। जब सप्तम योजना स्वीकार की गई तो यह आशा प्रकट की गई कि सात वर्षों में कृषि उत्पादन इतना बढ़ जायगा कि जनता के भोजन की सभी आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँगी। इसके अतिरिक्त उद्योगों के लिये कच्चा माल और कृषि उत्पादन की राजकीय माँग योजना की अवधि तक पूरी करली जायगी। खेती की कुल उपज १९५८ की तुलना में १९६५ में ७० प्रतिशत बढ़ाने का लक्ष्य था। खेतों में मशीनों और रासायनिक खादों तथा कीटनाशक दवाइयों के प्रयोग के फलस्वरूप अनाज, आलू आदि की प्रति सौ हैक्टर एकड़ उपज बढ़ कर अमेरिका से भी अधिक हो जाने का अनुमान था।

इन सालों में खेती के लिये १० लाख ट्रैक्टर, ४ लाख हारवेस्ट कम्बाइन्स तथा अन्य यन्त्र उपलब्ध किये जायेंगे जिससे कृषि के यन्त्रीकरण और विद्युतीकरण की उन्नति होगी। अन्नोत्पादन में यह आशा की गयी कि १६०–१८० मिलियन टन उत्पादन होगा। प्रतिवर्ग एकड़ उत्पादन बढ़ाने पर विशेष ज़ोर दिया गया। सन् १९५४–५७ के बीच प्रति हैक्टर औसत उत्पादन ६०० किलोग्राम रहा, इस योजना में इसको लगभग १,००० किलो ग्राम तक पहुँचाने की चेष्टा होगी। सन् १९५४–५५ के बीच लगभग ३३ मिलियन हैक्टर नई भूमि पर खेती की जा चुकी थी। यह अद्भुत प्रगति बढ़ती ही गई। सन् १९५४–५८ के बीच राज्य ने नई भूमि के विकास पर ३०·७ मिलियार्ड रूबल खर्च किया और लगभग ४८·९ मिलियार्ड रूबल की आय नई भूमि से हुई। इस रूप में यह क्षेत्र सातवीं योजना से पूर्व ही विकसित

हो चुका था। वर्तमान योजना में उर्वरा-शक्ति बनाये रखने के लिये रासायनिक खाद का प्रयोग १९६५ तक ३१ मिलियन टन हो जायगा, जब कि १९५८ में इसकी मात्रा केवल १० ६ मिलियन टन थी।

साम्यवादी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये राजकीय फार्म (सोवखोज) का महत्व और अधिक अंकित किया गया इसमें विशिष्टीकरण की प्रक्रिया को अधिक प्रोत्साहन दिया गया। उत्पादन की लागत को घटाने के लक्ष्यों को अन्नोत्पादन में ३०%, मांस में १९%, दूध में २३%, ऊन में १०% और कपास में २०% की कमी के रूप में प्राप्त किये जाने का अनुमान लगाया गया।

पशुपालन तथा दूध, मांस, अण्डा और उनके उत्पादन पर जोर दिया गया। पशु विकास के रूप में पशु २०%, गाय ६०%, भेड़ ५०% लक्ष्य रखा गया। आलू और मक्का को आधार बनाकर चारे में वृद्धि और पौष्टिकत्व का समावेश किया गया।

सामूहिक कृषि फार्मों में एक नवीन योजना यह लागू की गई जिससे कि उनका अविभाजनीय कोष अपने-अपने क्षेत्र में विद्युतगृह स्थापित करने में सहायक होगा। विगत ३०–४० वर्षों से संचित यह कोष इस प्रकार राज्य की सम्पत्ति का रूप ग्रहण कर लेगा। कृषि में श्रम उत्पादन योजना को अधिक प्रभावशाली ढंग से अपनाने का निश्चय किया गया और किसान श्रमिक सहयोग के स्थान पर विलयन (Integration) की ओर अग्रसर होने का निश्चय किया गया। यह आशा की गयी कि श्रमिकों की उत्पादकता दूनी कर दी जायगी और राजकीय खेतों में ५०–६५% वृद्धि होगी।

सामुदायिक और राजकीय खेतों को भी एकरूपता की ओर लाने का प्रयत्न किया गया। इस योजना को कई रूपों में व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न किया गया। सामूहिक फार्म पद्धति की उन्नति, उनकी सम्पत्ति में वृद्धि, अविभाजनीय कोष का विकास, बिजली घर, नहरें, कृषि उत्पादन का संग्रह, स्कूल व अस्पताल का निर्माण इसके विभिन्न रूप थे। इस योजना में सामूहिक फार्मों और राजकीय फार्मों के विलयन की ओर बढ़ाया गया क्योंकि ज्यों-ज्यों सामूहिक फार्म अधिक विकसित वैज्ञानिक पद्धति का आधार होते गये उनकी अधिकांश आवश्यकताएँ सार्वजनिक आर्थिक साधनों से सम्पादित होती गयी और इस प्रकार वे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खोकर राष्ट्रीय सम्पत्ति में विलीन हो गये। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह योजना कृषि में महान क्रांतिकारी परिवर्तनों को जन्म देने के उद्देश्य से निर्मित और प्रेरित हुई।

६ यातायात

यातायात का विकास भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राष्ट्रीय जीवन मे इसकी प्रगति पर उद्योग-धन्धों की प्रगति निर्भर करती है। इस रूप मे माल ढोने की क्षमता मे रेल यातायात ३९ से ४३ प्रतिशत विकास सामुद्रिक यातायात द्वारा माल ढोने की क्षमता मे लगभग दुगुना, नदी यातायात विशेषत साइबेरिया मे लगभग १६ गुना और मोटरो से माल ढोने म १९ गुना होने का अनुमान था। वायु-यातायात योजना के अन्तर्गत ६० हवाई अड्डे बनाने और वायु यात्रा मे ६ गुनी वृद्धि होने का अनुमान था। तेल के वाहन के रूप मे पाइप-लाइन का जाल बिछाया जायगा जिसमे तेल वाहन मे किसी प्रकार के यातायात की आवश्यकता न पडे।

पूँजी-निर्माण तथा विनियोग

सप्तम योजना ने पूँजी विनियोग की एक विशाल योजना प्रस्तुत की। इस योजना काल म लगाई गई रूसी पूँजी १९४० से १९७० मिलियार्ड या अरब रूबल थी। निम्न तालिका मे हजार मिलियन रूबलो मे पूँजी विनियोग दिखलाया गया है—

	१९५२-५८	१९५९-६५	प्रतिशत वृद्धि
कुल विनियोग	१०७२	१९४०-१९७०	१८१-१८४
औद्योगिक निर्माण पर	८८१	१९८८-१५१३	१८१-१८४
मकान व सार्वजनिक सेवाएँ	२०८	३७५ ३८०	१८०-१८३
शैक्षणिक, सास्कृतिक व स्वास्थ्य-सुविधाएँ	४३	७७	१७९

इस प्रकार पूँजी विनियोग का जो आकार इस योजना मे प्रस्तुत किया गया वह एक प्रकार का रूसी चमत्कार ही माना जा सकता है।

इस प्रकार के पूँजी विनियोग के लिये कुछ सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये —

(१) जहाँ पर नये प्राकृतिक साधनो का पता लगे नये कारखाने वही पर स्थापित किये जायँ। इस श्रेणी मे तेल, गैस, विद्युत खनिज पदार्थ सम्मिलित हैं।

(२) निर्माण उद्योगो मे नये कारखानो पर पूँजी न लगाकर वर्तमान कारखानो का आधुनिकीकरण व पुनर्गठन किया जाय।

८. जन-कल्याण

इस योजना मे राष्ट्रीय आय मे ६२-६५% की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। इससे राष्ट्रीय उपभोग क्षमता म ६० से ६३% की उन्नति होने का अनुमान था। अत यह स्पष्ट है कि यह योजना राष्ट्रीय आर्थिक जीवन-स्तर को उन्नत करने का एक विशेष प्रयत्न है। अनुमान था कि इस अवधि मे कारखानो और दफ्तरो मे काम

करने वालो की सख्या २२ प्रतिशत बढकर ६६५ लाख हो जायगी और उनकी वास्तविक आय मे ४०% की वृद्धि होगी। यह यहाँ स्मरणीय है कि इस योजना मे कृषि-क्षेत्र मे भी जीवन स्तर उठाने के लिये व्यवस्था थी। उद्योगो को छोडकर सामूहिक फार्मों के किसानो की वास्तविक आय भी ४० प्रतिशत बढने का अनुमान था। वेतन प्रणाली मे जो सुधार प्रस्तावित किये गये वे दो चरणो मे विभाजित किये गये :

प्रथम—१९५९-६२ के काल मे न्यूनतम वेतन २७०-३५० से बढकर ४००-४५० रूबल प्रति माह होगा।

द्वितीय—१९६२-१९६५ मे इसी मे सुधार कर ५००-६०० रूबल प्रति माह तक पहुँचा दिया जायेगा।

इसके अलावा कारखानो मे मशीनो से रक्षा, श्रमिको को विशेष सुविधाएँ, नर्सरी, किण्डरगार्टेन स्कूल, नि शुल्क शिक्षा, इलाज, सामाजिक बीमा, बड़े परिवार की माताओ को अनुदान, वृद्धो के लिये पेन्शन, विश्राम-गृह, इत्यादि पर राजकीय व्यय २१५ मिलियार्ड रूबल (१९५८ ई०) के स्थान ३६० मिलियार्ड रूबल (१९६५) किये जाने का प्रस्ताव था।

साथ ही काम के घण्टो मे पाँच दिन प्रति सप्ताह मे ६ से ७ घन्टे का कार्य-काल माना गया है। सप्ताह मे दो दिन का लगातार विश्राम रूसी श्रमिको के आनन्द, सुख सुविधा मे वरदान सिद्ध होगा। १९१८ से कोयला व इस्पात उद्योग मे ७ घण्टे प्रति दिन कार्य-काल लागू कर दिया गया। १ अक्टूबर १९५९ से यह सुविधा अन्य कारखानो व आफिसो मे लागू कर दी गई। खदानो मे काम करने वालो का कार्य-काल ६ घण्टा प्रतिदिन कर दिया जायगा।

६ व्यापार

सोवियत सघ औद्योगिक उत्पादन के इस क्षेत्र मे निरन्तर प्रगतिशील पथ पर अग्रसर है। सन् १९३८ मे इस वर्ग के देशो की जन-सख्या तथा उत्पादन विश्व का लगभग $\frac{1}{3}$ था। योजना की समाप्ति तक यह आधे तक पहुँच गयी। रूस के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व सम्पर्क का विस्तार हुआ है। सन् १९४६ मे रूसी व्यापार ४६ देशो से था, सन् १९५९ म ७० देशो से था। सातवी योजना मे इसे और अधिक प्रोत्साहन दिया गया। समाजवादी देशो के साथ व्यापार मे ५०% वृद्धि एव अविकसित और अर्द्ध-विकसित देशो के साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध बढाने का प्रस्ताव था ?

इन सब लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए कारखानो के कच्चे माल, ईंधन के साधनो और उपयोग के क्षेत्रो को निकट लाया गया। कुर्स्क मैगनेटिक एनोमली तथा यूक्रेन भाग के लौह खनिज पदार्थ के भण्डारो का विकास किया गया। कोला प्रायद्वीप मे खनिजहीन धातुओ के उद्योगो का विकास हुआ। उत्तरी कॉकेशस तथा यूक्रेन मे तेल और गैस उद्योगो का भी विकास किया गया।

इस योजनाकाल में रूस के एशियाई भाग का अधिक विकास किया गया। कुल पूंजी विनियोग का लगभग ४०% भाग इस क्षेत्र में खर्च किया गया। पूर्वी भागों का योगदान, योजनाकाल में, कोयला के उत्पादन में ५०%, इस्पात उत्पादन में ४८%, सीमेंट में ८८%, अल्यूमीनियम उत्पादन में ७२% था। इस विकास के लिए निम्न कार्यक्रम बनाये गये

(१) साइबेरिया और कजाकस्तान में नई लोहे की खानों के पास धातु-निर्माण उद्योग स्थापित करना,

(२) कजाकस्तान, मध्य एशिया, यूराल पर्वत तथा ट्रांस बेकाल क्षेत्र में खनिज-हीन उद्योगों का विकास करना,

(३) साइबेरिया में प्राप्त हुई नए कोयले की खानों से विद्युत शक्ति प्राप्त करने का विकास करना,

(४) वोल्गा और यूराल के बीच के क्षेत्रों में तेल और गैस उद्योगों का तेजी से विकास करना, और उजबेकिस्तान में गैस-उद्योग की स्थापना करना,

(५) मध्य एशिया गणतन्त्र में रासायनिक उद्योग का विकास करना, तथा

(६) साइबेरिया और सुदूर पूर्व में इमारती लकड़ी का विकास करना।

संक्षेप में श्री खु्श्चेव के शब्दों में, "१९६५ में सोवियत संघ कतिपय सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं के समग्र उत्पादन में अमरीका के औद्योगिक उत्पादन के वर्तमान स्तर के पास पहुँच जायेगा। तब रूस का मुख्य कृषि वस्तुओं का उत्पादन, समग्र उत्पादन और प्रति व्यक्ति उत्पादन दोनों में, अमरीकी उत्पादन के वर्तमान स्तर से आगे निकल जायेगा।" सातवीं योजना में यद्यपि रूस ने आश्चर्यजनक उन्नति की, किन्तु निसन्देह ही श्री खु्श्चेव की उपर्युक्त भविष्यवाणी सिद्ध न हो सकी। रूस आज भी संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद विश्व का दूसरा शक्तिशाली राष्ट्र है और प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका से अब भी पीछे है।

१०. पंचवर्षीय योजनाओं के फलस्वरूप हुए महत्वपूर्ण परिवर्तन

क्रांति के बाद के काल में रूसी उत्पादक शक्तियों में बड़े विलक्षण परिवर्तन हुए हैं। क्रांति के पूर्व रूस मुख्यतः कृषि और औद्योगिक विकास की दृष्टि से दो स्पष्ट भागों में बँटा था। जिसमें औद्योगीकरण मुख्यतः यूरोपीय रूस में और कृषि का विकास साइबेरिया में हुआ था। अब रूस के इन सभी क्षेत्रों का पर्याप्त विकास किया गया, तथा अनेक नये क्षेत्र और केन्द्र भी अस्तित्व में आ गये। मुख्य परिवर्तन इस प्रकार हुए :

(१) किसी एक क्षेत्र विशेष पर ही अब आर्थिक रूप से निर्भर नहीं रहा जाता जैसे कि डोनेज कोयला क्षेत्र, बाकू के तेल-स्रोत तथा इवानोवो-वोजनेस्क के सूती

वस्त्र उद्योग पर किन्तु अब तेल, कोयला और शक्ति प्राप्त करने के नये साधनों और क्षेत्रों का पता लगाया गया।

(२) उद्योगों को कच्चे माल की निकटता वाले क्षेत्रों में स्थानान्तरण किया गया, विशेषत खनिज पदार्थ निर्माण-वस्तुओं, रासायनिक कच्चे पदार्थों के उत्पादक क्षेत्रों में। इस प्रकार खनिज और औद्योगिक केन्द्रों में समन्वय स्थापित किया गया।

(३) जो क्षेत्र पहले मुख्यत कृषि प्रधान थे उन्हें अब औद्योगिक कृषि प्रधान बनाया गया अर्थात् इन क्षेत्रों में कृषि के विकास के साथ-साथ अनेकों छोटे उद्योगों को भी पनपाया गया। कृषि-उद्योग केन्द्रों को 'Agrogorode' की संज्ञा दी गई।

(४) पहले बन्दरगाहों से देश के भीतरी भागों तक सामान पहुँचाने की बड़ी कठिनाई पड़ती थी अब बन्दरगाहों तथा भीतरी भागों के बीच कई नदियों को नहरों द्वारा जोड़कर यह असुविधा दूर कर दी गई, इनसे सामान शीघ्रता से सभी औद्योगिक केन्द्रों तक पहुँच जाता है।

पूर्वी भागों मे—साइबेरिया तथा यूरोपीय रूस के दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्रों—अर्थ-व्यवस्था का समुचित विकास किया गया। उदाहरण के लिए ककेशस, ट्रास कॉकेशस क्षेत्रों मे तथा एशियाई रूस मे मध्य एशिया, कजकस्तान, अल्टाई, पश्चिमी और पूर्वी साइबेरिया तथा सुदूर पूर्व मे। रूस के पूर्वी भागो मे तेल के ७५%, जल शक्ति के ८०% तथा वनो के ८०% भडार और मुख्य अलौह और दुरूह खनिजो, कच्चा लोहा, निर्माण-सामग्री और रासायनिक कच्चे माल के पर्याप्त भडार निहित हैं। अत पूर्वी भागों मे पश्चिमी साइबेरिया मे कुजनेटस्क, और करगडा कोयला क्षेत्रो और वोल्गा तथा यूराल के बीच मे बाकू द्वितीय का, पूर्वी साइबेरिया मे इरकुटस्क-चेरमखोवो के कोयले और औद्योगिक क्षेत्र का तथा सुदूरपूर्व के अनेको जिलो, अल्टाई तथा मध्य एशिया के नये क्षेत्रो का विकास किया गया।

यूरोपीय तथा साइबेरिया के उत्तरी भागों में अनेक नये आर्थिक क्षेत्रो का विकास किया गया। १९२० के पूर्व इन क्षेत्रो का औद्योगिक विकास नही के बराबर हुआ। ऐसे क्षेत्र यूरोपीय रूस मे कोयला प्रायद्वीप का खबीनी एपराइट-क्षेत्र, पिछोरा कोयला क्षेत्र, तथा साइबेरिया मे इगारका, नार्लिस्क और इयूडिन्का (जो सभी यनीसी नदी के निचले भागों मे हैं), याकूतिया के अनेक जिले तथा ओरवोटस्क सागरवर्ती मैगडान क्षेत्र थे।

इसी प्रकार रूस के पश्चिमी और द० पश्चिमी क्षेत्र, बाल्टिक प्रदेश, बाइलोरशिया और यूक्रेन आदि क्षेत्रो का औद्योगिक विकास हुआ है।

अब रूस की नई दीर्घकालीन योजनाओं के फलस्वरूप पूर्वी भागों के विकास के लिए जो कार्यक्रम स्वीकार किये गए हैं उनमे मुख्य ये हैं —

(१) १५०-२०० लाख टन शक्ति वाला ढले लोहे का तीसरा कारखाना साइबेरिया म आगामी १०-१५ वर्षों म बनकर तैयार हो सकेगा।

(२) साइबेरिया से ही १६६० म इतना कोयला और ढला लोहा बनाये जाने की सभावना थी जितना कि कुल रूस ने १६५० म बनाया।

(३) १६५६-६५ की अवधि म साइबेरिया का इतना विकास किया जायेगा कि यहाँ से रूस के कोयले, जलशक्ति, अल्यूमीनियम, मैगनेशियम, टाइटेनियम विद्युत-लोह, रासायनिक पदार्थों आदि के उत्पादन का अधिकाश प्राप्त होने लगेगा।

(४) इसी प्रकार साइबेरिया, कजकस्तान और यूराल से १६६० मे दुगुना अनाज प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया था, जितना कि यूक्रेन मे पैदा होता है।

सातवीं योजना का मूल्यांकन

सन् १६६५ से पूर्व के सात वर्षों मे रूस की अर्थ-व्यवस्था मे बहुत अधिक सुधार हुआ। सुधार एव प्रगति का यह क्रम कृषि की तुलना मे उद्योग मे अधिक रहा। विशेषत भारी उद्योगो के क्षेत्र मे रूस ने इस अवधि मे बहुत अधिक उन्नति करके वैज्ञानिक खोज एव तकनीकी विकास के नये मानक स्थापित किये। किन्तु इस योजना के जनक श्री निकीता ख्रुश्चेव का यह दावा कि योजना के अन्त मे सोवियत रूस विश्व का सर्व प्रथम राष्ट्र हो जायगा, सही साबित नही हो सका। अनेक क्षेत्रो मे सातवी योजना की निर्विवाद सफलता के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि रूस मे प्रति व्यक्ति आय सयुक्त राज्य अथवा इगलैण्ड की तुलना मे अधिक हो गयी है। विभिन्न क्षेत्रो मे आर्थिक प्रगति इस प्रकार रही

१. उद्योग—इस अवधि मे औद्योगिक उत्पादन ८४ प्रतिशत बढा—अर्थात् औद्योगिक उत्पादन मे १२ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई। उल्लेखनीय है कि योजना मे औद्योगिक उत्पादन मे केवल ८० प्रतिशत वृद्धि का ही लक्ष्य रखा गया था। योजना की अवधि मे लगभग साढ़े पाँच हजार औद्योगिक उपक्रमो की स्थापना की गयी। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि इन सात वर्षों मे प्रतिदिन औसतन दो औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित की गयी। योजना के सात वर्षों मे औद्योगिक उत्पादन मे जो वृद्धि हुई वह सन् १६५६ से पहले के बीस वर्षों मे की गयी औद्योगिक वृद्धि के बराबर थी। इससे यह आशा की जा सकती है कि अगली दो योजनाओं मे औद्योगिक उत्पादन मे रूस विश्व का प्रथम राष्ट्र हो सकता है।

सैनिक एव सुरक्षा उद्योगो मे तथा मशीन निर्माण एव इन्जीनियरिंग उद्योगो मे विशेष रूप से योजना काल मे प्रगति की गयी। सोवियत सेना का पूर्ण मशीनीकरण हो चुका है और वह इलेक्ट्रोनिक, एव परमाणु आयुधो से सुसज्जित हो चुकी है और उसमे निरन्तर प्रगति हो रही है। औद्योगिक शक्ति, यातायात, इस्पात, अलौह धातुओ एव भारी रासायनिक पदार्थों के उत्पादन मे भी पर्याप्त वृद्धि की गयी

है। सन् १६६५ मे रूस का इस्पात उत्पादन १० करोड़ टन हो गया जो संयुक्त राज्य अमेरिका के इस्पात उत्पादन से कुछ ही कम है। इसी प्रकार कोयले का उत्पादन ६० करोड़ टन और खनिज तेल का उत्पादन २६५ करोड़ टन तक हो गया। प्राकृतिक गैस एव खनिज तेल के परिवहन के लिये पाइप लाइनें बिछाई गयी। धातुओ, खनिज ईंधनों, रासायनिक पदार्थों एव मशीनो के निर्माण मे १०० से १५० प्रतिशत तक की वृद्धि हुई। इन सब उत्पादनो के कारण रूस की आर्थिक शक्ति बहुत अधिक बढ गयी।

२ कृषि—इस योजना मे कृषि उत्पादन के पूर्व निर्धारित लक्ष्यो को पूरा नही किया जा सका। सात वर्षों की लम्बी अवधि मे कृषि उत्पादन मे केवल १० प्रतिशत की वृद्धि ही हो सकी—अर्थात कृषि उत्पादन मे वृद्धि की औसत वार्षिक दर डेढ प्रतिशत भी नही थी जबकि योजना मे ७० प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था। सन् १६५८ तक कृषि की स्थिति कुछ ठीक थी किन्तु उसके पश्चात कृषि मे प्रगति का क्रम कुछ रुक सा गया। सन् १६६१ म कृषि उपज मे ४४ प्रतिशत वृद्धि हुई, किन्तु सन् १६६२ मे यह वृद्धि २८ प्रतिशत से भी कम थी। उसके बाद सूखे के कारण स्थिति और भी बिगड गयी। बाहर से अनाज का आयात करना आवश्यक हो गया। सामूहिक फार्मों का पुनर्संगठन किया गया। छोटे-छोटे फार्मों को बडी इकाइयो म मिला दिया गया। सन् १६५८ मे सामूहिक फार्मों की संख्या ६७७०० थी जो सन् १६६५ मे घटकर केवल ३६६०० रह गयी। उसके बाद से इसमे और भी कमी हुई है। कुछ सामूहिक फार्मों को राजकीय फार्मों मे भी बदला गया किन्तु शीघ्र ही यह अनुभव किया गया कि समस्या का यह सही उपचार नही था। आवश्यकता सामूहिक एव राजकीय दोनो प्रकार के फार्मों को अधिक उत्पादन के लिये गतिशील बनाने की थी। कृषि के मशीनीकरण की प्रक्रिया मे अवश्य इस अवधि मे सुधार किया गया। मांस, दूध, अण्डो और फल सब्जियों के उत्पादन मे भी वृद्धि की गयी।

रासायनिक खाद के उत्पादन एव उसके वितरण पर जोर दिया गया जिसमे सन् १६६५ मे स्थिति मे कुछ सुधार हुआ और उसके बाद से कृषि उपज मे वृद्धि हो रही है। सामूहिक फार्मों पर काम करने वाले किसानो की आय और उन्हे प्राप्त होने वाली सुविधाओ मे भी वृद्धि की गयी है जिससे कृषि उत्पादकता मे वृद्धि हुई है। सन् १६६५ मे किसान की दैनिक आय लगभग ढाई से तीन रूबल थी जो सन् १६५८ की तुलना मे ७० प्रतिशत अधिक थी। ऐसे किसानो के लिये पेन्शन की व्यवस्था भी की गयी है।

३. गृह निर्माण—इस योजना के काल म कदाचित सबसे अधिक प्रगति आवास-व्यवस्था के क्षेत्र मे की गयी। सात वर्षों मे लगभग १८५ लाख मकानो का निर्माण किया गया। ये आवास गृह आधुनिक सुविधाओ से युक्त थे। रूस की लगभग एक तिहाई जनता को सयुक्त निवास की सुविधायें उपलब्ध की जा चुकी हैं। नये गृहो

के निर्माण के साथ-साथ पुराने मकानो का भी सुधार किया गया। गृह निर्माण की योजनायें रूप मे राज्य द्वारा गृह-निर्माण सहकारी सस्थाओ के माध्यम से की जाती हैं और इसके लिये राज्य के बैंक द्वारा दीर्घकालीन ऋण प्रदान किये जाते हैं।

४ प्रति व्यक्ति आय एव जीवन यापन स्तर में सुधार—योजनाकाल में प्रति व्यक्ति आय म २० प्रतिशत की वृद्धि हुई। न्यूनतम वेतनो की राशि म वृद्धि कर दी गयी है। शिक्षा सुविधाओं का विकास किया गया है। स्वास्थ्य एव चिकित्सा के क्षेत्र मे भी पर्याप्त प्रगति की गयी। इस अवधि मे श्रमिको के कल्याण की अनेक योजनायें लागू की गयी। श्रमिक सघ, नये स्कूल, अस्पताल, शिशु गृह, जलपान गृह, होटल एव स्वास्थ्य लाभ केन्द्रो की सख्या मे वृद्धि हुई। काम की दशाओ मे सुधार एव काम के घटो मे भी कमी की गयी है। ऐसी व्यवस्था की गयी जिससे कि शहरो एव गाँवो दोनो क्षेत्रो मे लोगो को पौष्टिक भोजन, शिक्षा, मनोरजन एव चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें सरलता से प्राप्त हो सकें।

१६

आठवी योजना

(सन् १६६६ से सन् १६७० तक)

[THE EIGHTH PLAN]

मार्च सन् १६६६ में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की तेईसवी कांग्रेस ने केन्द्रीय समिति द्वारा प्रस्तुत रूस की आठवी योजना की रूपरेखा को अन्तिम रूप से स्वीकार किया। योजना का प्रारूप इससे पहले जनमत के लिये प्रकाशित कर दिया गया था, जिससे कारखाना, कृषि फार्मों एवं अन्य संस्थाओं में काम करने वाले श्रमिकों तथा कार्यकर्ताओं को योजना पर विचार करने और अपने सुझाव देने का उचित अवसर मिल सके। जनता के सक्रिय सहयोग को समुचित स्थान देने के उद्देश्य से समस्त राष्ट्र द्वारा किये गये विचार विमर्श के फलस्वरूप जो सुझाव सामने रखे गये उन पर योजना को अन्तिम रूप देते समय तेईसवी कांग्रेस द्वारा पूर्ण ध्यान दिया गया। इस योजना को स्वीकार करते समय बीसवी कांग्रेस द्वारा सन् १६५६ में निर्धारित नीतियों तथा पिछली दस वर्षों में राष्ट्र द्वारा की गयी प्रगति को भी ध्यान में रखा गया। व्यक्ति पूजा (Personality Cult) के स्थान पर सामूहिक नेतृत्व (Collective Leadership) की स्थापना के लिये सभी स्तरों पर सैद्धान्तिक, राजनीतिक एवं संगठनात्मक परिवर्तन किये जा चुके थे, ताकि लेनिनवादी सिद्धान्तों के अनुरूप *वास्तविक समाजवादी जनतंत्र की स्थापना की जा सके*। आठवी योजना आर्थिक दृष्टि से इन्हीं परिवर्तनों की एक महत्वपूर्ण कड़ी मानी जा सकती है जिसके द्वारा सन् १६७० तक राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था का पर्याप्त विकास करके सोवियत नागरिकों के जीवन स्तर में आगे और अधिक सुधार सम्भव हो सकेगा।

प्रमुख उद्देश्य

योजना का निर्माण जिन मूलभूत उद्देश्यों पर आधारित किया गया उनमें सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य राष्ट्र में उपलब्ध साधनों के पूर्ण एवं व्यापक उपयोग को सम्भव बनाना था। इसके लिये अत्यन्त व्यावहारिक एवं कुशल योजना की अपेक्षा थी।

आठवी योजना मुख्यत इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये बनाई गयी । इस योजना के उद्देश्यों को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है

१ वैज्ञानिक एव तकनीकी उपलब्धियो के अधिकतम उपयोग के द्वारा उद्योगो का और अधिक विकास जिससे कि योजना काल म औद्योगिक उत्पादन मे ५० प्रतिशत की वृद्धि की जा सके ।

२ कृषि विकास की दरो को उच्च स्तर पर स्थायित्व प्रदान करना ताकि अगले पाँच वर्षों म कृषि उत्पादन मे एक तिहाई वृद्धि हो सके ।

३ औद्योगिक उत्पादन मे और अधिक उत्कृष्टता एव कुशलता प्राप्त करना ।

४. श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि करना—यह वृद्धि उद्योगो मे ३३-३५ प्रतिशत और कृषि म ४०-४५ प्रतिशत निर्धारित की गयी ।

५ योजना काल मे राष्ट्रीय आय मे लगभग ४० प्रतिशत की वृद्धि करना ।

६. योजना के पाँच वर्षों म प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे ३० प्रतिशत की वृद्धि ।

७. नागरिको के जीवनस्तर म पर्याप्त वृद्धि करना तथा शहरी और ग्रामीण नागरिको के रहन सहन के स्तर मे असमानता को कम करना । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कृषि फार्मों के श्रमिको की आय मे ४० प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, जबकि कारखानो मे काम करने वाले श्रमिको की आय मे २० प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया है ।

८. सोवियत रूस के नागरिको की भौतिक एव सास्कृतिक आवश्यकताओ की अधिक पूर्ति तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे सामाजिक सेवाओ का प्रसार ।

निर्धारित लक्ष्य

१ वृद्धि—राज्य द्वारा कृषि मे किये जाने वाले पूंजी विनियोग की राशि सातवी योजना की तुलना म लगभग दो गुनी हो जायगी । इस प्रकार योजना काल मे कृषि पर ४१०० करोड रूबल की धनराशि व्यय की जायगी । इस राशि का उपयोग ऐसी कृषि मशीनो पर अधिक होगा जिनसे कृषि उत्पादन को बढाने मे सहायता मिल सके । इन मशीनो से जोती जाने वाली भूमि के क्षेत्र को बढाने मे भी सहायता मिलेगी । इस अवधि मे १७ १८ लाख ट्रैक्टरो, ११ लाख मोटर लारियो, ५ ५ लाख कम्बाइण्ड हारवेस्टरो की पूर्ति उद्योगो द्वारा कृषि के लिये की जायगी । सिंचित भूमि के क्षेत्र मे २८ लाख से ३० लाख हेक्टेयर की वृद्धि की जायगी जिसका अधिकाश भाग मध्य एशिया, कजाकिस्तान तथा यूरोपीय रूस के यूक्रेन और काकेशस क्षेत्रो मे होगा । दलदली भूमि को कृषि योग्य बनाकर लगभग ६५ लाख हेक्टेयर क्षेत्र मे और कृषि की जा सकेगी । कृषि मे प्रयोग की जाने वाली विद्युत की मात्रा सन् १६७० तक लगभग ६५००० करोड किलोवाट घटे हो जायगी जोकि वर्तमान मे प्रयुक्त मात्रा से लगभग तीन गुनी होगी ।

इसके अतिरिक्त सामूहिक कृषि फार्मों द्वारा लगभग ३०० करोड़ रूबल की राशि और व्यय की जायगी। कृषि में इतनी बड़ी धनराशि का विनियोग रूस द्वारा इस योजना में कृषि को प्रदान की गयी प्राथमिकता का प्रतीक है, ताकि सन् १९७० तक सोवियत कृषि का आधार सुदृढ़ बनाया जा सके। सातवीं योजना में कृषि पर किया जाने वाला पूँजी विनियोग कुल योजना व्यय का केवल ११ ३ प्रतिशत था, जबकि आठवीं योजना में यह प्रतिशत १७ ४ है।

पिछली योजना के औसत वार्षिक कृषि उत्पादन की तुलना में आठवीं योजना के काल में औसत वार्षिक कृषि उत्पादन २५ प्रतिशत बढ़ जायगा। कृषि उत्पादन में वृद्धि के परिणामस्वरूप सन् १९७० तक रूस में उपभोक्ता वस्तुओं की प्रति व्यक्ति खपत के स्तर में वृद्धि हो जायगी। मांस में २० से २८ प्रतिशत, दूध और दूध से बने हुये पदार्थों में १५ से १९ प्रतिशत, चीनी में २४ प्रतिशत, वनस्पति तेलों में ४० से ४६ प्रतिशत वृद्धि हो जायगी।

२ उद्योग—समस्त औद्योगिक उत्पादन में ४७ से ५० प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। आधारभूत उद्योगों एवं उपभोक्ता उद्योगों के लिये पृथक्-पृथक उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। आधारभूत उद्योगों के लिये ४९ से ५२ प्रतिशत एवं उपभोक्ता उद्योगों के लिये ४३ से ४६ प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य रखे गये हैं। आधारभूत उद्योगों को 'अ' वर्ग में एवं उपभोक्ता उद्योगों को 'ब' वर्ग में रखा गया है।

धातु उद्योगों के विकास पर योजना में विशेष ध्यान दिया गया है। सन् १९६५ में इस्पात का उत्पादन ९ १ करोड़ टन था जो सन् १९७० तक १२ ८ करोड़ टन से कुछ अधिक हो जायगा अर्थात् इसमें लगभग ४१ प्रतिशत की वृद्धि होगी। माँग को देखते हुए इस्पात के ढाँचे, चद्दरदार चपटा इस्पात एवं गोलाकार इस्पात और इस्पात के पाइप आदि सभी के उत्पादन में वृद्धि की जायगी।

हल्की धातुओं में एल्युमीनियम में १०० प्रतिशत, तांबे में ७० प्रतिशत वृद्धि होगी तथा जस्ता, निकल एवं अन्य अलौह धातुओं का अधिक उत्पादन इन्जीनियरिंग उद्योग को विकसित करेगा। तकनीकी विकास का आधार इन्जीनियरिंग उद्योग ही है। इन्जीनियरिंग उत्पादनों में ६० से ७० प्रतिशत तक वृद्धि की जायगी। विशेष रूप से रेडियो इलेक्ट्रोनिक, प्रेसीजन उपकरण, मशीन औजार में उत्पादन इससे भी अधिक बढ़ सकेगा। विज्ञान और प्राविधिक ज्ञान द्वारा प्राप्त आधुनिकतम जानकारी का उपयोग इन उद्योगों की उत्पादन प्रक्रियाओं में किया जायगा।

रासायनिक उद्योग द्वारा अगले पाँच वर्षों में दुगना उत्पादन करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया और इसकी पूर्ति के लिये इस क्षेत्र में किया जाने वाला व्यय पहले की अपेक्षा दो गुना होगा। खनिज उर्वरकों (Mineral Fertilisers) का उत्पादन सन् १९७० तक ६२० से ६५० लाख टन हो जाने का अनुमान है। इसी प्रकार प्लास्टिक के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि होगी। रासायनिक उद्योग का विकास

तकनीकी प्रगति और कृषि उत्पादन तथा उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे सहायक सिद्ध होगा।

३. हल्के उद्योग—हल्के एव खाद्य उद्योगो के उत्पादन मे लगभग ४० प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। कृषि से सम्बन्धित तथा खाद्य उद्योगो के उत्पादन लक्ष्यो के विषय मे कृषि के अन्तर्गत विवरण दे दिया गया है। वस्त्रो तथा होजरी उद्योग आदि के उत्पादन मे ४० प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य है। इस दृष्टि से इन उद्योगो पर लगी पूँजी म दोगुनी से भी अधिक वृद्धि होगी। इसी प्रकार टेलीविजन सेटो का उत्पादन ७५ लाख और रेफ्रीजरेटरो का उत्पादन ५५ लाख प्रतिवर्ष हो जायगा। मोटर वाहनो का उत्पादन छह लाख से बढकर चौदह पन्द्रह लाख होगा जिसमे अधिकतर मोटरकारें और यात्री बसें होगी। कागज और कार्ड बोर्ड के उत्पादन मे लगभग ढाई गुनी वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त कृत्रिम रेशे, कृत्रिम चमडे, स्वचालित मशीनें, उपकरण तथा पौष्टिक खाद्य उत्पादन सम्मिलित हैं।

हल्के उद्योगो के विकास से उपभोक्ता वस्तुओ के अभाव की पूर्ति होगी तथा भारी उद्योगो एव हल्के उद्योगो के बीच विद्यमान असन्तुलन मे कमी हो जायगी।

४. शक्ति के साधन—सोवियत रूस की योजनाओ मे शक्ति के साधनो पर सदैव ही बहुत अधिक बल दिया गया है। लेनिन ने बहुत पहले ही यह अनुभव कर लिया था कि भविष्य मे आर्थिक विकास के लिए भारी मात्रा मे विद्युत विकास की आवश्यकता होगी और इसीलिये सन् १६२० म ही वहाँ **गोयलरो-योजना** (Goelro Plan) लागू की गयी। उसके बाद से शक्ति के सभी साधनो के विकास पर वहाँ की विभिन्न योजनाओ म बल दिया जाता रहा है। आठवी योजना मे विद्युत खनिज तैल कोयला और प्राकृतिक गैस के उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। विद्युत शक्ति के उत्पादन मे ७० प्रतिशत, खनिज तेल के उत्पादन मे ४५ प्रतिशत, कोयले के उत्पादन मे १७ प्रतिशत और प्राकृतिक गैस के उत्पादन मे ८५ प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं।

विद्युत शक्ति मुख्यत बडे-बडे जल एव ताप बिजलीघरो से प्राप्त की जायगी। ऐसे बिजलीघरो मे से प्रत्येक की क्षमता लगभग २४ लाख किलोवाट होगी। साइबेरिया के विद्युत केन्द्रो से यूरोपीय औद्योगिक क्षेत्रो तक बिजली लाने के प्रयत्न किये जायेंगे तथा समस्त यूरोपीय रूस एकल विद्युत सचार व्यवस्था (Single Power Grid) के अन्तर्गत आ जायगा। खनिज एव प्राकृतिक गैस के लिये २५,००० किलोमीटर लम्बी पाइप लाइनें बिछाई जायगी।

५ परिवहन एव सचार व्यवस्था—इन पाँच वर्षों की अवधि म ७००० किलोमीटर लम्बाई मे रेल पथ बिछाया जायगा और लगभग १०,००० किलोमीटर लम्बे रेलपथ का विद्युतीकरण किया जायगा। मास्को मे भूमिगत रेलपथ एव अन्य बडे नगरो म ट्राम लाइनो की लम्बाई म वृद्धि की जायगी। वायु परिवहन मे यात्रियो

की सख्या मे लगभग ८० प्रतिशत की वृद्धि की जायगी तथा राष्ट्रीय महत्व के एवं स्थानीय स्तर के हवाई हड्डो की सख्या म वृद्धि की जायगी ।

सड़क यातायात पर विशेष रूप से ध्यान दिया जायगा । यात्री क्षमता मे ६० प्रतिशत तथा माल ढोने की क्षमता म लगभग ७० प्रतिशत की वृद्धि की जायगी । मोटर कारो एव यात्री बसो का वार्षिक उत्पादन दो ढाई गुना तक बढ जायगा । जल परिवहन की क्षमता मे ८० प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया है ।

६. शिक्षा एव सामाजिक सेवाएँ—योजना काल मे समस्त सोवियत रूस मे बालको के लिये राष्ट्र व्यापी माध्यमिक शिक्षा की सुविधा सुलभ की जायगी । इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक बालक को कम से कम दस वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जायगा । इसके लिए ऐसे रात्रिकालीन स्कूलो की स्थापना की जायगी जिसम काम के साथ साथ अध्ययन की भी सुविधा मिल सके । उच्चतर विद्यालयो एव तकनीकी सस्थाओ मे विद्यार्थियो की सख्या क्रमश ६ लाख तथा १६ लाख से कुछ अधिक हो जायगी ।

श्रमिको के निर्वाह-स्तर के सुधार की दिशा म भी अनेक प्रयास किये जायेंगे । स्वास्थ्य-केन्द्रो, विश्रामालयो, नि शुल्क चिकित्सा, सस्ते किराये पर आरामदायक आवास गृहो की सुविधा, कारखानो म केन्टीन सुविधायें, महिलाओ के लिये प्रसूतिगृहो एव बालको के लिये बालकेन्द्रो की स्थापना आदि अनेक कार्यक्रम रखे गये हैं । सामूहिक कृषि फार्मों मे कार्य करने वाले कृषको के वेतन मे ३५ से ४० प्रतिशत वृद्धि हो जायगी जबकि कारखानो के श्रमिकों के वेतन म केवल २० प्रतिशत वृद्धि का ही अनुमान है । इस प्रकार नगरो एव गांवो के निवासियो के जीवन-स्तर म अन्तर कुछ कम हो जायगा ।

योजना काल म लगभग १३३ लाख आधुनिक आवासगृहो का निर्माण होगा जिनम समस्त आधुनिकतम सुविधायें उपलब्ध होगी । इन मकानो का निर्माण सरकारी व्यय पर होगा तथा उसके बाद इन्हे परिवारो को नाममात्र के किराये पर दे दिया जायगा । यदि एक औसत परिवार म चार सदस्य हो, तो इस हिसाब से लगभग ५ करोड नागरिको को उत्तम मकानो म रहने की सुविधा मिल जायगी । यह पहले ही कहा जा चुका है कि मांस, चीनी, दूध, मछली, फलो एव सब्जियो की प्रति व्यक्ति खपत मे वृद्धि की जायगी । प्रथम जनवरी सन् १९६८ से रूस मे प्रत्येक व्यक्ति की न्यूनतम मजदूरी ६० रूबल अर्थात लगभग ५१० रुपये प्रति माह कर दी गयी है । कार्य एव तकनीकी ज्ञान के अनुसार वास्तव म रूसी श्रमिको को इससे कहीं अधिक वेतन दिया जाता है । सन् १९७० तक औसत रूसी श्रमिक का वेतन ११० रूबल अर्थात १९७० रुपये मासिक हो जायगा । इस दृष्टि से आठवी योजना रूस के आर्थिक विकास के इतिहास मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि जनसाधारण के

निर्वाह स्तर मे योजना के पाँच वर्षों मे पर्याप्त सुधार सम्भव हो सकेगा। श्रमिकों के कार्य घन्टो मे कमी तथा उनको प्राप्त होने वाली छुट्टियों की सख्या मे वृद्धि की जायगी ताकि बढ़े हुये अवकाश का उपयोग वे साहित्यिक, सामाजिक एव सास्कृतिक कार्यों मे कर सके। वेतन पर लगाये जाने वाले आय-कर की दरो मे कमी की जायगी, तथा लक्ष्य यह रहेगा कि भविष्य मे वेतन पर लगने वाले आय-कर को बिलकुल समाप्त कर दिया जाय। आवश्यक वस्तुओ की कीमतो को रोकने के कारगर उपाय किये जायँगे ताकि श्रमिको को बढी हुई आय का पूरा लाभ प्राप्त हो सके।

योजना की समीक्षा

सोवियत रूस की आठवी योजना पिछली समस्त योजनाओ मे कही अधिक साहसिक है। योजना-काल मे ३१००० करोड रूबल के पूँजी विनियोग का प्रावधान है जोकि सातवी योजना मे किये गये विनियोग से लगभग ४५ प्रतिशत अधिक है। इसमे से ७१०० करोड रूबल अर्थात कुल योजना का २२ प्रतिशत केवल कृषि के विकास पर व्यय किया जायगा। यह राशि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के १६ वर्षों मे कृषि पर व्यय की गयी धनराशि के बराबर है। इसमे से अधिकाश धन कृषि फार्मों मे भवन-निर्माण और कृषि यन्त्रो तथा मशीनो पर व्यय किया जायगा।

योजना व्यय का लगभग ५० प्रतिशत औद्योगिक शक्ति के साधनो के विकास तथा परिवहन व्यवस्था के विकास पर व्यय किया जायगा। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धो को और अधिक सुदृढ किया जायगा तथा रूस द्वारा मशीनो, यन्त्रो एव तकनीकी वस्तुओ का अधिकाधिक मात्रा मे निर्यात किया जायगा। इस योजना के क्रियान्वयन का महत्व इसलिये भी अधिक बताया गया है कि इस योजना की सफलता अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण होगी। योजना की सफलता सोवियत शक्ति एव क्षमता म वृद्धि करके सोवियत नागरिको के जीवन को सम्पन्न बनावेगी और समाजवाद के सिद्धान्तो के प्रति नवीन विश्वास उत्पन्न करेगी। विश्व शान्ति एव सुरक्षा के क्षेत्र मे रूस की आठवी योजना की उपलब्धि का विशेष योगदान समझा जा रहा है।

इस योजना मे श्रम की उत्पादकता की वृद्धि और प्राविधिक उत्कृष्टता मे सुधार करने पर अधिकाधिक बल दिया गया है। यह सकल्प किया गया है कि रूस मे उत्पादित माल विश्व के अन्य देशो मे उत्पादित माल से किसी भी प्रकार घटिया नही होना चाहिये। दूसरे शब्दो मे योजना के सख्यात्मक पहलू के साथ साथ उसके गुणात्मक पक्ष की ओर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। इसके लिये आर्थिक नीतियो एव व्यावसायिक प्रबन्ध और प्रशासन की रीतियो मे सशोधन किया जा रहा है। आधुनिक प्राविधिकी के क्षेत्र मे प्रगति के लिये लगभग ३०० नये प्रयोगो एव परीक्षाओ पर योजना काल मे कार्य आरम्भ किया गया है जिससे नवीन मशीनीकृत एव स्वय चालित उत्पादन प्रक्रियाओ का विकास किया जा सके। तत्काल निर्णय

करने की सुविधा देने के लिये और केन्द्रीकरण को कम करने के उद्देश्य से औद्योगिक कारखानों के प्रबन्धकों को पहले से अधिक अधिकार दिए जा रहे हैं। औद्योगिक संस्थानों में लागत लेखा (Cost Accounting) एवं लाभ के सिद्धान्तों का समावेश किया गया है। पूँजीवादी व्यवस्था के इन तत्वों को समाजवादी व्यवस्था में स्थान देने का प्रयास रूस द्वारा किया जा रहा है ताकि उत्पादकता एवं उत्पादित माल की किस्म में सुधार किया जा सके।

प्राय प्रत्येक उद्योग के लिये जनवरी सन् १९६८ से मूल्य सूचियाँ प्रकाशित की जा रही है। ये सूचियाँ प्रतिवर्ष संशोधित रूप से प्रकाशित की जाती हैं। मूल्यों के निर्धारण में कारखानों को उत्पादन लागत में कमी करने और आय-व्यय का सही लेखा जोखा रखने में सहायता मिलती है।

योजना की प्रगति

(सन् १९६६ से १९६८ तक के तीन वर्षों में)

रूस की आठवी योजना निर्धारित अवधि के आधे से अधिक भाग को पूरा कर चुकी है। इन तीन वर्षों में योजना की प्रगति पूर्व निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार संतोषजनक ढंग से हुई है। अब तक सोवियत योजनाओं में निर्धारित लक्ष्यों की उपलब्धियों में केवल संख्यात्मक पक्ष की ओर ही विशेष ध्यान दिया जाता था और गुणात्मक पक्ष (qualitative aspect) के प्रति विशेष ध्यान नहीं रहता था। किन्तु इस योजना में गुणात्मक पक्ष के प्रति विशेष जागरूकता दिखलाई गयी है, अत उत्पादित वस्तुओं की किस्म में भी सुधार किया जा रहा है।

जहाँ तक राष्ट्रीय आय का प्रश्न है, यह पिछले तीन वर्षों में लगभग ७.५ प्रतिशत की दर से प्रतिवर्ष औसतन बढ़ी है। सन् १९६६ में राष्ट्रीय आय में लगभग ८.५ प्रतिशत, सन् १९६७ में लगभग ७ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। सन् १९६८ में भी हाल के अनुमानों के अनुसार सोवियत राष्ट्रीय आय में लगभग ८ प्रतिशत की वृद्धि होगी।

औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से योजना का प्रथम वर्ष अत्यन्त सफल रहा। 'अ' वर्ग के उद्योगों में ९ प्रतिशत एवं 'ब' वर्ग के उद्योगों में ७ प्रतिशत की वृद्धि हुई जो कि निर्धारित लक्ष्यों से अधिक थी। सन् १९६७ में 'अ' वर्ग के उद्योगों में ८ प्रतिशत एवं 'ब' वर्ग के उद्योगों में ७ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस प्रकार योजना के दूसरे वर्ष में ही आधारभूत एवं उपभोक्ता उद्योगों के अन्तर में पर्याप्त कमी हुई और जनसाधारण को उपभोक्ता वस्तुओं की प्रचुर मात्रा उपलब्ध की जा सकी। उद्योगवार उत्पादन की दृष्टि से सबसे अधिक प्रगति मशीन निर्माण, रासायनिक उत्पादन एवं घरेलू उपकरणों के उत्पादनों ने की। योजना काल के प्रथम तीन वर्षों में इन उद्योगों की औसत वार्षिक वृद्धि १२ प्रतिशत से भी कुछ अधिक थी। विद्युत निर्माण, लौह एवं अलौह धातु निर्माण में इसी अवधि में वार्षिक वृद्धि का औसत लगभग

६ प्रतिशत रहा। जनसाधारण के जीवन को अधिक सुखप्रद बनाने की ओर इन वर्षों मे बहुत अधिक ध्यान दिया जा रहा है और इसके लिये अधिकाधिक मात्रा मे ऐसे विद्युत उपकरणों के उत्पादन की मात्रा म वृद्धि की जा रही है जो घरेलू जीवन को और अधिक आरामप्रद बना सके तथा लोगो को अधिक अवकाश देकर उनके सास्कृतिक जीवन को सम्पन्न बनाने म योग दे सके। सन् १९६७ मे ३७ लाख टेलीविजन सेटो, २८ लाख रेफ्रीजरेटरो एव ४३ लाख वस्त्र धोने की मशीनो का उत्पादन किया गया। दैनिक उपयोग के अनेक छोटे मोटे उत्पादनो की वृद्धि की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया है ताकि उपभोक्ता वस्तुओ की कमी न रहने पावे। साथ ही तकनीकी दृष्टि से इन वस्तुओ के उत्पादन को सर्वोत्कृष्ट बनाने का प्रयास किया गया है।

विज्ञान अकादमी तथा विज्ञान एव तकनीक के लिये राज्य समिति ने अनुसधान सगठनो की कार्यक्षमता मे सुधार लाने के लिये उपाय किये है और कम महत्वपूर्ण एव दुहरी व्यवस्थाओ को समाप्त कर दिया गया है। इस अवधि मे श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि एव उत्पादन लागतो मे कमी करने के लिये भी प्रयास किये गये है जिसके फलस्वरूप लागतो मे १ २ प्रतिशत की कमी हो गयी है।

जहाँ तक कृषि का प्रश्न है पिछले तीन वर्षों की प्रगति सतोषजनक रही है। सातवी योजना की अवधि मे खाद्यान्नों का औसत वार्षिक उत्पादन केवल १३ करोड टन था। आठवी योजना के प्रथम तीन वर्षों की अवधि मे खाद्यान्नो के औसत वार्षिक उत्पादन की मात्रा बढकर १७ करोड टन हो गयी है—अर्थात इसमे लगभग ३० प्रतिशत की वृद्धि हो गयी है। इसकी तुलना भारत के खाद्यान्न उत्पादन से कीजिये। भारत मे गत वर्ष साढे नौ करोड टन खाद्यान्न ही उत्पादित किये जा सके, जबकि भारत की जनसख्या रूस की जनसख्या से ढाई गुना अधिक है। इसी अवधि मे कपास के उत्पादन मे भी लगभग १० लाख टन वार्षिक की वृद्धि हो चुकी है। सन् १९६८ मे रूस ने ६० लाख टन कपास का उत्पादन किया जबकि सातवी योजना के अन्तिम वर्ष (१९६५) म केवल ५० लाख टन कपास ही उत्पादित की जा सकी थी। चुकन्दर से निर्मित चीनी का उत्पादन भी पर्याप्त मात्रा मे बढा है। सन् १९६८ मे ७२ लाख टन चीनी का उत्पादन किया गया जबकि सन् १९६५ मे यह ६० लाख टन ही था। पिछले तीन वर्षों मे दूध के उत्पादन मे प्रतिवर्ष ५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। मांस एव अण्डो का उत्पादन लगभग ८ प्रतिशत वार्षिक की दर से बढा है।

रूस मे कार्यशील ३७००० सामूहिक कृषि फार्मों (Colkhoz) एव १२००० राजकीय कृषि फार्मों (Sovkhoz) की वित्त व्यवस्था मे पर्याप्त सुधार किया गया है। इन तीन वर्षों मे उन्हे अधिक मात्रा मे ट्रैक्टर, हारवेस्टर्स, बिजली के मोटर, मोटर गाडियाँ एव ट्रक आदि उपलब्ध हुये है। इन फार्मों को अधिक विद्युत शक्ति प्रदान की गयी है और इन पर काम करने वाले श्रमिक परिवारो के ९० प्रतिशत मकानो मे बिजली के कनेक्शन लगाये जा चुके हैं। उपज बढाने के लिए ३२० लाख टन खनिज उर्वरकों का

प्रयोग प्रतिवर्ष रूस द्वारा सन् १९६८ में किया गया जबकि सन् १९६५ में इनकी मात्रा केवल १८० लाख टन ही थी। पिछले तीन वर्षों में खनिज उर्वरकों की मात्रा में ७७ प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रूस ने प्रति एकड़ उत्पादन को बढ़ाने में खनिज उर्वरकों के महत्व को अब पूरी तरह स्वीकार कर लिया है और वह हर प्रकार से सोवियत कृषि को किसी भी अन्य देश की कृषि के स्तर से ऊँचा उठाने की जी तोड़ कोशिश कर रहा है। भारत के सन्दर्भ में रूस का यह प्रयास बहुत अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे यहाँ खनिज उर्वरकों का कृषि में प्रयोग प्रतिवर्ष १० लाख टन ही है जिसे सन् १९७१ तक लगभग २४ लाख टन वार्षिक ही किया जा सकेगा।

परिवहन के क्षेत्र में पिछले तीन वर्षों में सबसे अधिक प्रगति वायु परिवहन में हुई है। वायुयानों द्वारा यात्रा करने वाले यात्रियों की संख्या में प्रतिवर्ष १५ प्रतिशत एवं वायु सेनाओं द्वारा ढोये गये माल की मात्रा में ९ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वायुयानों द्वारा कृषि फार्मों पर कीटनाशक द्रव्यों का छिड़काव भी अब नियमित रूप से किया जा रहा है। जल परिवहन की प्रगति भी सतोषजनक रही है। रेल एवं सड़क परिवहन में यात्रियों एवं माल के आकार में लगभग ४ प्रतिशत वार्षिक की वृद्धि हुई। साइबेरिया की नदियों में जल यातायात की सुविधाओं में इस अवधि में पर्याप्त वृद्धि की गयी है। भारी औद्योगिक माल की ढुलाई की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। तेल को उत्पादक स्थानों से उपभोग क्षेत्रों तक लाने के लिये अधिकाधिक पाइप लाइनों का निर्माण हुआ है। संचार व्यवस्था में आधुनिकतम सुधार किये गये हैं। सन् १९६७ में मास्को के समीप ५२५ मीटर ऊँची टेलीविजन टावर का निर्माण किया गया जो विश्व की सबसे ऊँची टेलीविजन टावर है। इससे टेलीविजन के कार्य क्षेत्र का विस्तार हो गया है। पिछले तीन वर्षों में टेलीफोन कनेक्शनों की संख्या में भी बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

इसी अवधि में सोवियत श्रमिकों की वास्तविक आय में ५.५ प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है। सोवियत रूस में कारखानों एवं कार्यालय में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या ८ करोड़ से भी अधिक है। इस संख्या में प्रतिवर्ष लगभग ३० लाख की वृद्धि हो जाती है जिनके लिये रोजगार की अतिरिक्त सुविधाओं को जुटाना होता है। सन् १९६६ से १९६८ के तीन वर्षों में जन-कोषों (Public Funds) से जन-कल्याण के कार्यों पर पहले से अधिक धन व्यय किया गया है। जन-कल्याण के कार्यों में वे सुविधायें सम्मिलित की जाती हैं जो जनता को नि शुल्क प्रदान की जाती हैं जैसे सामाजिक सुरक्षा, प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा, मेडीकल एवं तकनीकी शिक्षा, स्वास्थ्य केन्द्र, मनोरंजन केन्द्र, पेंशनें एवं भत्ते, शिशु केन्द्र एवं अन्य सामाजिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र आदि। इन पर लगभग ४५०० करोड़ रूबल प्रतिवर्ष व्यय किया गया। सन् १९६८ में इस व्यय की राशि लगभग ५००० करोड़ रूबल रही। सामूहिक फार्मों से राज्य द्वारा अधिक मात्रा में कृषि उत्पादन की वसूली करके

राजकीय मुद्रा वितरण केन्द्रो एव सहकारी केन्द्रो द्वारा जनता को वितरित किये जाने की व्यवस्था की गयी। इन केन्द्रो द्वारा पिछले वर्ष की तुलना मे सन् १६-८ मे विभिन्न वस्तुओ का दस से बीस प्रतिशत तक अधिक विक्रय किया गया।

सबसे अधिक प्रगति जन आवास की दिशा मे की गयी है। पिछले तीन वर्षो मे प्रतिवर्ष औसतन बीस लाख आधुनिक आवास गृहो का निर्माण किया गया है। ये आवास गृह राजकीय व्यय पर निर्मित करके नाम मात्र के किराये पर जनसाधारण को रहने के लिये प्रदान किये जाते हैं तथा समस्त आधुनिक सुविधाओ से युक्त होते हैं। शिक्षा की दृष्टि से भी पिछले तीन वर्षों म की गयी उपलब्धियाँ अत्यन्त सन्तोष-प्रद हैं। सभी स्तरो पर सन् १६६८ मे अध्ययनशील व्यक्तियो एव बालक बालिकाओ की सख्या साढे सात करोड से कुछ अधिक रही। इसमे प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक की समस्त शिक्षा सुविधायें सम्मिलित हैं। साथ ही काम पर लगे हुये व्यक्तियो के लिये प्रौढ शिक्षा की सुविधायें भी इसी मे सम्मिलित हैं। पढने वाले व्यक्तियो मे से अधिकाश व्यक्ति माध्यमिक स्तर तक ही किसी न किसी काम पर लग जाते हैं और उच्च शिक्षा की सुविधायें केवल कुछ ही ऐसे लोगो को उपलब्ध हो पाती हैं जो पढने मे विशेष योग्यता दिखलाते हैं।

उपर्युक्त तीन वर्षों की प्रगति को देखते हुए इसमे बहुत कम सन्देह रह जाता है कि सन् १६७० तक आठवीं योजना द्वारा विभिन्न क्षेत्रो के लिये निर्धारित लक्ष्य अवश्य उपलब्ध कर लिये जायेंगे। इसके बाद भी रूस आर्थिक दृष्टि से विश्व का सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र तो नही हो सकेगा किन्तु यह अवश्य होगा कि विश्व के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र सयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस का आर्थिक उत्पादन एव सम्पन्नता की दृष्टि से विद्यमान अन्तर कुछ कम हो जायगा। यह सर्वविदित ही है कि सयुक्त राज्य अमेरिका मे आर्थिक विकास की वार्षिक दर तीन प्रतिशत के आस-पास रहती है जबकि पिछले तीन वर्षों मे रूस मे आर्थिक विकास की दर साढे सात प्रतिशत रही है। यदि विकास दर का यही क्रम चलता रहा तो दसवीं योजना के अन्त तक सोवियत रूस सयुक्त राज्य अमेरिका के लगभग बराबर आ जायगा।

१७

सोवियत नियोजन प्रणाली

[SOVIET PLANNING SYSTEM]

किसी देश का आर्थिक विकास वहाँ की प्राकृतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। प्राकृतिक दशायें प्रकृति की देन हैं। और उनमें मनुष्य कोई मौलिक परिवर्तन नहीं कर सकता है। ऐसी दशा में प्रकृति द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्दर ही आर्थिक विकास का क्रम निर्धारित किया जा सकता है। राष्ट्रों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भूतकालीन घटनाओं का प्रतिबिम्ब मात्र होती है और उसे वर्तमान पीढ़ी उसी रूप में ग्रहण कर लेती है जैसी कि वह उसे उत्तराधिकार में प्राप्त होती है। जहाँ तक राजनीतिक और सामाजिक दशाओं का प्रश्न है, राष्ट्र की वर्तमान पीढ़ी कभी भी उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकती है। किसी राष्ट्र में होने वाले ये परिवर्तन निश्चित रूप से उस देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं। यही नहीं ऐसे परिवर्तनों से विश्व के अन्य राष्ट्र भी प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकते हैं।

उपरोक्त कथन का महत्व उस समय और भी अधिक बढ़ जाता है जब हम सोवियत रूस द्वारा आर्थिक नियोजन के द्वारा पिछले पचास वर्षों में की गयी प्रगति के सन्दर्भ में इन पर विचार करते हैं। सोवियत क्रान्ति सन् १९१७ में हुई। उस समय रूस एक अविकसित देश था। जारशाही से रूस को आर्थिक एवं सामाजिक विषमतायें, अशिक्षा एवं निर्धनता ही विरासत में मिली। क्रान्ति के बाद कुछ वर्षों तक रूस अनेक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक उलझनों को सुलझाने में व्यस्त रहा। उस समय उसके समक्ष कोई स्पष्ट एवं सुनिश्चित मार्ग नहीं था। अनेक वर्षों तक उसे आन्तरिक गृह युद्ध का और अन्य प्रमुख राष्ट्रों के विरोध का सामना करना पड़ा। किन्तु इन समस्याओं के क्रमशः समाधान के साथ साथ रूस के लिये प्रगति करने का मार्ग अधिकाधिक स्पष्ट होता गया। प्रारम्भिक काल में जब **युद्ध कालीन साम्यवाद** (War Communism) की नीति का अधिक जोर रहा, रूसी

नेताओं द्वारा नीतियों के निर्माण एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ भी की गयीं किन्तु इन्हीं त्रुटियों, परीक्षण एवं प्रयोगों के आधार पर रूस ने बहुत कुछ सीखा और अगला मार्ग निर्धारित करते समय पिछली त्रुटियों और भूलों से सबक लेते हुये सही रास्ते पर बढ़ने का प्रयास किया।

क्रान्ति के दिनों में पूँजीवादी वर्ग द्वारा जो तरीके अपनाये गये उनके कारण घोर निराशावादी संघर्ष उत्पन्न हो गया। अतः रूस के कर्णधारों ने पुरातन सम्बन्धों पर इतना प्रबल प्रहार किया कि जिसकी कभी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। क्रान्ति के तत्काल बाद सर्वत्र अराजकता एवं अव्यवस्था का राज हो गया तथा लेनिन को यह स्वीकार करना पड़ा कि समाजवाद की स्थापना के लिये लम्बे समय की आवश्यकता होती है। अतः राजकीय पूँजीवाद अथवा नियन्त्रित-पूँजीवाद की नीति अपनाई गयी। यह नीति संक्रमणकाल के लिये पूँजीवादी एवं समाजवादी सिद्धान्तों के बीच एक प्रकार का अस्थायी समझौता था। सन् १९१८ के मध्य में गृह युद्ध छिड़ जाने और विदेशी सरकारों के हस्तक्षेप में वृद्धि हो जाने के कारण यह आवश्यक समझा गया कि समझौतावादी नीति निरर्थक सिद्ध हुई है। अतः राजकीय-पूँजीवादी-नीति का परित्याग कर दिया गया और इसके स्थान पर युद्ध कालीन साम्यवाद की नीति अपनाई गयी। यह नीति भी अनुभवहीनता पर आधारित थी और एक संक्रमण कालीन तथा संकट कालीन नीति से अधिक और कुछ न थी। इस नीति के अन्तर्गत अनेक त्रुटियाँ की गयीं और अनेक गलत प्रयोग अथवा परीक्षण किये गये। इन्हें बाद में सुधारा गया और आवश्यकतानुसार परिवर्तन इनमें किया गया। यह नीति पौने तीन वर्ष से अधिक नहीं रह सकी। सन् १९२१ में इसका भी परित्याग कर दिया गया और इसके स्थान पर नवीन आर्थिक नीति (N.E.P.) अपनाई गयी। यह भी कोई पूर्व-निर्धारित आर्थिक नीति नहीं थी और न इसके सिद्धान्त ही स्थायी रूप से अपनाये गये। इन्हें आवश्यकतानुसार तोड़ा मरोड़ा जा सकता था। श्री बेकोव के अनुसार "प्रयोगवाद पर आधारित इन तरीकों का अपनाया जाना एक प्रकार की वह कीमत थी जो संक्रमणकाल में राजकीय और निजी अर्थव्यवस्था के मध्य अपनाये गये समझौतावादी दृष्टिकोण के लिये चुकाई गयी थी।" इसके अन्तर्गत व्यवहार में साम्यवाद के सिद्धान्तों को आंशिक रूप से कुछ समय के लिये तिलांजलि दे दी गयी। वास्तव में यह तीन कदम आगे बढ़कर दो कदम पीछे हटने की नीति थी। सन् १९२४ में लेनिन की मृत्यु के पश्चात नवीन आर्थिक नीति के विरुद्ध भी प्रतिक्रिया होने लगी। स्टालिन भारी औद्योगीकरण एवं आर्थिक योजनाकरण के पक्ष में था और सन् १९२८ तक नवीन आर्थिक नीति का भी परित्याग कर दिया गया तथा आर्थिक नियोजन की नीति (Policy of Economic Planning) अपनायी गयी।

सोवियत रूस में औपचारिक रूप से यद्यपि आर्थिक नियोजन सन् १९२८ से अपनाया गया, किन्तु इससे पहले के दस वर्षों में अनेक ऐसे प्रयत्न और उपाय किये गये

जिन्हे सिद्धान्तत आर्थिक नियोजन का ही अग माना जा सकता है। इनमे गोयलरो एव गोसप्लान की स्थापना तथा नियत्रण अकों का उपभोग प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है जिनका विवरण नीचे किया गया है।

१ गोयलरो (Goelro)

रूसी क्रान्ति के जनक एव साम्यवाद के व्यावहारिक प्रवक्ता श्री लेनिन को ही रूस मे आर्थिक नियोजन के श्रीगणेश का श्रेय दिया जाना चाहिये। यह ठीक है कि सन् १९१७ मे क्रान्ति के पश्चात के वर्ष इतने सकट के थे कि वे उमे निश्चित स्वरूप या आदर्श न प्रदान कर सके हो, परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि लेनिन की विद्वत्ता, तार्किकता, दूरदर्शिता और राजनीतिक क्षमता ने योजनाकरण का बीजारोपण कर दिया था। कुछ पाश्चात्य अर्थशास्त्रियो का मत है कि रूसी योजनायें सम्पूर्ण रूप मे लेनिन के मस्तिष्क की उपज नही हैं, परन्तु ऐसा कहना ऐतिहासिकता के साथ अन्याय होगा। क्रान्ति के पश्चात गृह-युद्ध की स्थिति और अस्थिरता ने लेनिन को इस बात के लिये विवश किया कि वह सरकारी स्वामित्व और राष्ट्रीयकरण के उपायो को आधार न बना सका तथा योजना के बारे मे अधिक व्यवस्थित ढग से कुछ सोच नही सका। साथ ही यह भी सत्य है कि लेनिन की राय मे देश मे समाजवाद स्थापित करने का एकमात्र उपाय देश की अर्थव्यवस्था को विद्युतीकरण के आधार पर पुनर्गठित करना था। देश का औद्योगीकरण और सैनिक साजसज्जा से व्यवस्थित होना मशीनो और यत्रो के निर्माण पर निर्भर करता था और मशीनो का निर्माण एव सचालन विद्युत शक्ति पर निर्भर था। अत लेनिन ने देश को जो नारा दिया वह था—"साम्यवाद सोवियत शक्ति तथा विद्युतीकरण का योग है" (Soviets Plus Electrification equals Communism)। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सोवियत योजना तन्त्र, जो कि अब राज्य का एक स्थायी एव महत्वपूर्ण अग है, गोयलरो (Goelro) या राजकीय विद्युतीकरण आयोग (State Commission for Electrification) की स्थापना से बीजारोपित हुआ।

गोयलरो की स्थापना मार्च सन् १९२० मे की गयी और आठवी पार्टी काग्रेस के सम्मुख विद्युतीकरण की योजना रखने का उत्तरदायित्व इसे सौंपा गया। इस आयोग के अध्यक्ष क्रीजोजिहानोवस्की (Krzhizhanovsky) एक कुशल इन्जीनियर थे जो श्री लेनिन के पुराने साथियो मे से एक थे। आयोग द्वारा प्रस्तुत योजना के अनुसार दस से पन्द्रह वर्षों के बीच समस्त देश मे विद्युत शक्ति उपलब्ध किये जाने की व्यवस्था थी। इसका उद्देश्य था कि ३० नवीन विद्युत-गृह स्थापित करके विद्युत उत्पादन क्षमता बढा दी जाय और पुराने बिजलीघरो की नवीन योजना के अनुसार मरम्मत की जाय अत अनुमान लगाया गया था कि योजना काल मे औद्योगिक उत्पादन सन् १९१३ की तुलना मे दो गुना हो जाय। साम्यवादी क्रान्ति से पूर्व रूस के उद्योगों म बिजली का उपयोग नही के बराबर था। इस गोयलरो योजना के बारे मे उसके

अध्यक्ष का यह कथन उल्लेखनीय है "हमारा देश अब भी गृह युद्ध के भय से अशान्त है और आर्थिक अव्यवस्था से ग्रसित है और ऐसे समय में यह आयोग पार्टी के निर्देशानुसार आर्थिक नियोजन की प्रथम रूपरेखा तैयार कर रहा है। हम उपलब्ध कुछ वैज्ञानिकों और तकनीशियनों तथा कतिपय विशेषज्ञों की सहायता से प्रगति का मार्ग खोजने के प्रयत्न में लगे हुये हैं ताकि विज्ञान और तकनीकी उपयोग श्रमिकों और किसानों के लिए किया जा सके क्योंकि ये युद्ध तथा विनाश के मध्य हमारे आदर्शों के आधार स्तम्भ रहे।"

कुछ लोगों ने *विद्युतीकरण की इस योजना* को महत्वाकांक्षी बताया और इसे कोई विद्युत-कल्पना की संज्ञा प्रदान की। वे इसे कविता कल्पना और अवास्तविकता के नामों से सम्बोधित करने लगे। दिसम्बर सन् १९२० में आठवीं पार्टी कांग्रेस में इस योजना को स्वीकृति प्रदान की गयी, किन्तु इसके दो मास के बाद ही गोसप्लान का निर्माण होने पर गोयलरो उसमें मिला दिया गया।

२. गोसप्लान (Gosplan)

बाईस फरवरी सन् १९२१ को लेनिन द्वारा जारी किये गये आदेश के अधीन गोसप्लान का निर्माण किया गया। गोसप्लान अथवा **राजकीय योजना आयोग** (State Planning Commission) को *विद्युतीकरण की योजना* की पृष्ठभूमि में देश की अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुये एक राष्ट्रीय आर्थिक योजना बनाने का दायित्व सौंपा गया। गोयलरो को इसमें मिला दिया गया और क्रीजी जिह्नानोवस्की जो गोयलरो के अध्यक्ष थे गोसप्लान के भी अध्यक्ष बना दिये गये। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि *गोसप्लान एक परामर्शदात्री संस्था थी जिसका अर्थ केवल* योजना का निर्माण करना और उसके विषय में सलाह देना था। प्रारम्भ में इसमें कर्मचारियों की संख्या चालीस थी जिनमें मुख्यत अर्थशास्त्री एवं इन्जीनियर थे। बाद में सन् १९२३ में जब इसका पुनर्गठन किया गया यह संख्या तीन सौ तक हो गई।

प्रारम्भ के वर्षों में इस आयोग का कार्य उतना सफल नहीं रहा जितनी कि आशा की गयी थी। इसके कार्य को ६ विभागों एवं १० उपविभागों में विभाजित किया गया। प्रत्येक विभाग एक मंत्रालय के अधीन था। विभिन्न मंत्रालयों से सम्बद्ध होने के कारण गोसप्लान के विभागों में उचित समन्वय का अभाव था जिसके कारण योजना निर्माण के लिये आवश्यक सहयोग एवं सामंजस्य उपलब्ध नहीं हो पाता था। अतः सन् १९२१ में ही यह अनुभव कर लिया गया कि विद्यमान नियोजन प्रणाली *के अन्तर्गत गोसप्लान से समस्त राष्ट्र के लिये एक सम्पूर्ण योजना के निर्माण* की आशा करना व्यर्थ था। अब आंशिक योजनाओं की ओर अधिक ध्यान दिया गया— उदाहरणार्थ ईंधन, परिवहन, धातु एवं खाद्य उत्पादन और विदेशी व्यापार के लिये पृथक योजनायें बनाई गयी। इन योजनाओं के निर्माण के लिये आयोग के पास

उत्पादन के विश्वस्त आँकड़ों का अभाव था और उसका योजना निर्माण कार्य कल्पना पर अधिक आधारित थे। सन् १९२५-२६ में नियन्त्रण-अंकों के प्रकाशन के पश्चात् योजना निर्माण का कार्य अधिक सरल एवं व्यवस्थित हो गया। सन् १९२५ में ही रूस के विभिन्न गणराज्यों में भी गोसप्लान के विभाग स्थापित किये गये जो सब केन्द्रीय संस्था से सम्बद्ध थे। दूसरे वर्ष में ही इन सबका पर्याप्त विकास किया गया। उदाहरण के लिये रूसी गणराज्य में गोसप्लान से सम्बद्ध १२ क्षेत्रीय आयोग और ४३ जिला स्तरीय समितियाँ थीं।

आर्थिक नियोजन विधि
(Methodology of Economic Planning)

३ नियन्त्रण-अंक (Control Figures)

प्रथम बार सन् १९२५ में १०० पृष्ठों की एक पुस्तिका के रूप में नियन्त्रण-अंक प्रकाशित किये गये। योजना निर्माण की प्रक्रिया के क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण घटना थी जिससे यह आशा की गयी थी कि यह योजना का एक सुव्यवस्थित आधार बन सकेगी। वस्तुतः ये नियन्त्रण अंक विगत वर्षों के उत्पादनों के आधार पर आगामी वर्ष की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए विभिन्न उद्योगों के उत्पादनों के विषय में एक प्रकार के पूर्वानुमान (estimates) थे जोकि प्रारम्भ में केवल प्रयोग अथवा परीक्षण के रूप में प्रकाशित किये गये जिससे कि आगामी वर्ष की योजना के निर्माण के लिये इनसे सहायता अथवा मार्गदर्शन प्राप्त हो सके। ये अंक वस्तुतः विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में घटित होने वाले पारस्परिक सम्बन्धों के परिवर्तनों के परिचायक थे। इनके आधार पर समस्त अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में आगामी वर्ष के उत्पादनों के विषय में एक समन्वित और व्यापक दृष्टिकोण अपनाया जा सकता था, जोकि सरकारी संस्थाओं अथवा विभागों द्वारा निर्मित योजनाओं या कार्यक्रमों की दशा में सम्भव नहीं था।

इन अंकों का उपयोग अनिवार्य नहीं था। प्रारम्भ में गलत आँकड़ों एवं दोषपूर्ण पूर्वानुमानों के आधार पर इन्हें अस्वीकृत भी किया गया। इनका प्रकाशन प्रतिवर्ष होता रहा और सन् १९२८ तक इनका आकार बहुत अधिक बढ़ चुका था तथा इनके निर्माण में केन्द्रीय एवं स्थानीय नियोजन संस्थाओं का पूर्ण सहयोग था, जिन्होंने इन अंकों को वास्तविक सम्भावनाओं के आधार पर गहरी जाँच पड़ताल के पश्चात् पूरा किया था। इस बात के प्रयास किये गये कि इन अंकों के विषय में सरकारी अनुमोदन प्राप्त हो जाय। अन्त में यह निर्णय किया गया कि यदि विभागों द्वारा प्रस्तुत योजनायें श्रम और सुरक्षा परिषद (S T O) द्वारा अनुमोदित नियन्त्रण-अंकों के अनुसार बनाई गयी हों, तो उनके लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि सरकार से पुनः स्वीकृति ली जाय। सन् १९२८-२९ से इन नियन्त्रण-अंकों के आधार पर वार्षिक योजनाओं का निर्माण किया जाने लगा, तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना का

कार्य आरम्भ होने पर इन्हें अल्पकालीन योजना के आधार के रूप में दीर्घकालीन योजना के ढाँचे में समाविष्ट किया जाने लगा। धीरे-धीरे नियन्त्रण-अंकों का उपयोग योजनाओं के निर्माण में सैद्धान्तिक रूप से तथा उनके क्रियान्वयन में क्रियात्मक रूप से किया जाने लगा।

प्रारम्भ में नियन्त्रण अंकों को तैयार करने के लिये तीन विधियों का सहारा लिया गया। ये तीन विधियाँ थीं—**स्थिर तथा गतिशील गुणाक विधि** (Static and Dynamic Coefficients Method), **प्रवीण पूर्वानुमानों की रीति** (Expert Estimates Method) तथा तीसरी रीति के अन्तर्गत उपर्युक्त दोनों रीतियों द्वारा निकाले गये अंकों की तुलना युद्ध पूर्व के अंकों से की जाती थी और इस प्रकार इस तीसरी रीति का उपयोग उपर्युक्त दोनों विधियों के निष्कर्षों की सत्यता की जाँच के लिये किया जाता था। स्थिर एवं गतिशील गुणाक विधि के अन्तर्गत आर्थिक व्यवस्था की व्याख्या **निर्धारक समीकरणों** (Governing Equations) अथवा **सन्तुलन नियमों** (Laws of Equilibrium) के रूप में की जाती थी। विगत कुछ वर्षों के अनुभवों के आधार पर इन समीकरणों अथवा नियमों का निर्माण किया जाता था। **संरचनात्मक सम्बन्धों** (Structural Relations) एवं **आदर्श अनुपात गुणाकों** (Coefficients of Proportionality) की अभिव्यक्ति के लिये स्थिर गुणाकों (Static Coefficients) का प्रयोग किया जाता था। उदाहरण के लिये एक इकाई इस्पात के उत्पादन के लिये कोयले, मैंगनीज, चूना एवं अन्य धातुओं की कितनी इकाइयों की आवश्यकता होगी इसका आदर्श अनुपात स्थिर गुणाकों के आधार पर मालूम किया जाता था। किन्तु उत्पादन की प्रक्रियाओं एवं वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ कालान्तर में इन आदर्श अनुमानों में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन होना अवश्यम्भावी है, अतः इन परिवर्तनों की अभिव्यक्ति के लिये गतिशील गुणाकों (Dynamic Coefficients) का प्रयोग किया जाता था।

द्वितीय विधि के अन्तर्गत **प्राविधिक प्रतिवेदनों** (Technical Reports) से सहायता की जाती थी। ये प्रतिवेदन विभिन्न उद्योगों की उत्पादन क्षमता के विषय में तकनीशियनों एवं विशेषज्ञों द्वारा तैयार किये जाते थे जिनके आधार पर अगले वर्ष के लिये नियन्त्रण अंकों की गणना की जाती थी। तीसरी रीति तुलनात्मक थी जिसके द्वारा उपर्युक्त दोनों विधियों के द्वारा निर्मित अंकों की पारस्परिक तुलना, युद्धपूर्व के अंकों के सन्दर्भ में, करके उनकी परख की जाती थी।

नियन्त्रण-अंकों का उद्देश्य स्पष्ट था। वस्तुतः इनका निर्माण अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों द्वारा उत्पादन के विषय में उचित मार्गदर्शन करना था। साथ ही यह भी छूट दी गयी थी कि आगामी वर्ष की योजना बनाते समय नियन्त्रण-अंकों का अक्षरशः पालन करना अनिवार्य नहीं होगा तथा इसमें समयानुसार एवं आवश्यकतानुसार फेर बदल किये जाने की व्यवस्था थी। किन्तु कुछ ही समय बाद यह

अनुभव किया गया कि नियन्त्रण अंकों द्वारा योजना निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन की जो अपेक्षायें की गयी थी, वे पूर्ण न हो सकेंगी। इस विषय में अनेक प्रश्नों एवं शंकाओं को उठाया गया जिन्होंने नियन्त्रण अंकों के विषय में अनेक प्रकार के सन्देह उत्पन्न कर दिए। नियन्त्रण अंकों की विश्वसनीयता के बारे में आक्षेप किये गये और यह कहा जाने लगा कि वे वास्तविक एवं व्यावहारिक कम एवं काल्पनिक अधिक थे। सोवियत नियोजन का यह प्रारम्भिक युग था और उस समय तक वहाँ के अर्थशास्त्रियों के समक्ष आर्थिक नियोजन के सिद्धान्तों के विषय में कोई सुनिश्चित एवं स्पष्ट चित्र नहीं था। यह एक प्रकार से आर्थिक नियोजन का एक प्रयोगात्मक अथवा परीक्षणात्मक काल था, जिसमें धीरे-धीरे आर्थिक नियोजन के सिद्धान्तों का विकास हो रहा था। आर्थिक नियोजन वस्तुतः एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा आर्थिक घटनाक्रम में सप्रयोजन ऐसे परिवर्तन लाये जाते है जो विगत आर्थिक प्रवृत्तियों से भिन्न होते हैं। अतः आर्थिक नियोजन विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के अन्तर सम्बन्धों की कोई ऐसी अवरुद्ध एवं स्थिर प्रणाली नहीं हो सकती है जिसमें विवेचन एवं विकल्प के लिये कोई स्थान ही न हो। यह तो एक ऐसी खुली तथा मुक्त प्रणाली होनी चाहिये जिसमें विकल्प के लिये पर्याप्त स्थान हो। इसके विपरीत दूसरी ओर यह भी स्पष्ट है कि इन विकल्पों का प्रयोग मनमाने आधार पर न होकर वास्तविक तथ्यों पर आधारित होना चाहिये। अतः योजना ऐसी हो जिसमें वास्तविक तथ्यों एवं निर्धारित नीतियों का उचित मिश्रण झलकता हो। यदि वह वास्तविक तथ्यों पर आधारित नहीं है तो ऐसी योजना काल्पनिक एवं अव्यावहारिक मानी जायगी। इसके विरुद्ध यदि उसमें विवेचन तथा विकल्प के लिये कोई स्थान नहीं है तो ऐसी योजना निरर्थक होगी।

वाञ्छनीय परिणामों को प्राप्त करने के लिये एक वर्ष की योजना का काल पर्याप्त नहीं होता और इसमें विकल्पों के प्रयोग के लिए क्षेत्र अत्यन्त संकुचित हो जाता है क्योंकि उपलब्ध साधन अत्यन्त सीमित होते हैं। योजना काल जितना ही लम्बा होगा, विकल्पों के प्रयोग के लिये उतनी ही अधिक छूट होगी। अतः मोरिस डाब का यह कथन इस सन्दर्भ में बिल्कुल सही प्रतीत होता है कि "अभी तक हम इसका निर्णय नहीं कर सके हैं कि विकास की गति को सीमित करने वाली दशा के रूप में किसी योजना की रूपरेखा में विगत प्रवृत्तियों के भविष्य में बाह्यवेशन (extrapolation) पर अधिक बल दिया जाय, अथवा इन प्रवृत्तियों में नवीन तत्वों का समावेश करके भावी विकास के ढाँचे को निर्धारित एवं परिवर्तित करने की दिशा में अधिक प्रयत्न किये जायें।"[1] अतः नियन्त्रण-अंकों के द्वारा संकुचित दशाओं की एक अपरिवर्तनशील प्रणाली का निर्माण करने से कोई लाभ नहीं समझा गया। उस समय आर्थिक नियोजन विषयक विचारधारा में वहाँ एक और कमी यह थी कि यह माना जाता था कि तत्कालीन कृषि पर सरकारी नियन्त्रण के अभाव में कृषि के विकास

---

1 Maurice Dobb *Soviet Economic Development Since 1917*

की दर व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था के सामान्य नियमो द्वारा परिसीमित रहेगी और कृषि के विकास की सीमित दर के आधार पर ही उद्योग एवं अर्थव्यवस्था के अन्य अगों के विकास की सीमा निर्भर रहेगी। इस प्रकार कृषि से उद्योग की ओर एक मार्गीय एवं अपरिवर्तनीय विकास क्रम निर्धारित करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था। इसका मुख्य कारण तत्कालीन कृषि का लघुस्तरीय सगठन था जिसमें व्यक्तिगत कृषकों का महत्व अधिक था, जबकि वह उद्योग राजकीय नियन्त्रण एवं स्वामित्व में आ चुके थे। कृषि द्वारा उत्पादित पदार्थों एव उद्योगों द्वारा उत्पादित पदार्थों के पारस्परिक विनिमय में सन्तुलन किसी भी विकासशील अवस्था के लिये आवश्यक है, किन्तु उस समय सोवियत उद्योगों के लिये कृषि द्वारा उपलब्ध माल की मात्रा अत्यन्त सीमित थी। उपलब्धि की यह सीमा औद्योगिक एवं सामान्य आर्थिक विकास की गति को भी सीमित करती थी। कृषि व्यवसाय का पुनर्गठन करके उसमे आवश्यक सरचनात्मक परिवर्तनों को लाने की सम्भावना पर उस समय तक शायद सोवियत नियोजकों ने विचार नहीं किया था। नई आर्थिक नीति के परित्याग के बाद स्टालिन द्वारा राजकीय कृषि फार्मों एव सामूहिक कृषि फार्मों के आधार पर कृषि का बडे पैमाने पर पुनर्गठन किया गया और उसके बाद कृषि पर सरकारी स्वामित्व अथवा नियन्त्रण बढ गया तथा सरकारी नीतियों के अनुरूप कृषि उत्पादन एवं विकास की गति में आवश्यक परिवर्तन करना सम्भव हो सका।

अत सन् १९३० के बाद नियन्त्रण अकों के प्रयोग की परम्परा समाप्त हो गयी। अब दीर्घकालीन आर्थिक योजना के एक अग के रूप में प्रत्येक वर्ष के लिये एक विस्तृत योजना का निर्माण किया जाने लगा।

४. सन्तुलनों की विधि (Method of Balances)

उपर्युक्त पक्तियों में हम उन कारणों का उल्लेख कर चुके हैं जो नियन्त्रण अकों के परित्याग के लिये उत्तरदायी थे। इनका सबसे बडा दोष यह था कि ये *वास्तविक तथ्यों के प्रतीक न होकर केवल उत्पादन लक्ष्यों का ही निर्धारण करते थे।* फलत एक ओर निर्धारित उत्पादन के लक्ष्यों, और दूसरी ओर उपलब्ध भौतिक, वित्तीय एवं श्रम साधनों में समन्वय तथा सन्तुलन स्थापित नहीं किया जा सकता था। इस कमी को दूर करने के लिये सन्तुलनों की विधि को अपनाया गया। अर्थव्यवस्था में व्याप्त असन्तुलनों एवं असामजस्यों को दूर करने की दिशा में सन्तुलनों की विधि अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई। प्रथम योजना में इसका इतना विकास नहीं हुआ था किन्तु द्वितीय एवं तृतीय योजना में क्रमश इस विधि के अनुसार उत्पादन के निर्धारित लक्ष्यों, तथा उनकी पूर्ति के लिये आवश्यक उपलब्ध साधनों के मध्य सन्तुलनों की स्थापना का प्रयास किया गया। सन् १९४० के पश्चात् तो रूस की प्रत्येक योजना में इस विधि का प्रयोग किया गया।

इस विधि के अन्तर्गत पहले भौतिक दृष्टिकोण से एक उत्पादन-योजना

(Production Plan) का निर्माण किया जाता है। प्रोफेसर मौरिस डाब के अनुसार "उत्पादन योजना सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली के प्रमुख उत्पादनों के निर्माण कार्यक्रमों की एक ऐसी जटिल योजना होती है जिसके अनुसार यह अनुमान लगाया जाता है कि उन कार्यक्रमों की पूर्ति के लिए कितनी मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकता होगी।" ऐसा करते समय लक्ष्यों के केवल भौतिक पक्ष पर ध्यान दिया जाता है, और वित्तीय पक्ष पर इस समय विचार नहीं किया जाता है। यदि निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक भौतिक वस्तुओं तथा उपलब्ध साधनों में सन्तुलन स्थापित नहीं हो पाता तो लक्ष्यों की पूर्ति असम्भव है। ऐसी दशा में या तो साधनों की उपलब्धि को बढ़ाकर अपेक्षित स्तर तक लाना होगा, अथवा निर्धारित लक्ष्यों को कम करके उपलब्ध साधनों के स्तर तक लाना होगा। दोनों ही दशाओं में सन्तुलन स्थापित हो जायगा और फिर लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव होगी।

इन सन्तुलनों में तीन प्रकार के सन्तुलन स्थापित किये जाते हैं भौतिक सन्तुलन (Material Balances), श्रम सन्तुलन (Labour Balances) एवं वित्तीय सन्तुलन (Financial Balances)। भौतिक सन्तुलनों का उद्देश्य विभिन्न वस्तुओं के भौतिक उत्पादन तथा उपयोग, उपभोक्ता वस्तुओं और उत्पादक वस्तुओं तथा आयातों और निर्यातों के मध्य अन्तर सम्बन्धों (inter-relationships) को स्थापित करना है। उदाहरण के लिये यान्त्रिक शक्ति को ही ले लीजिये। योजना में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिये अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में शक्ति की कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी, तथा योजना काल में समस्त साधनों से शक्ति की कितनी मात्रा उपलब्ध हो सकेगी—यदि इन दोनों की मात्रा समान है तो यह माना जायगा कि यान्त्रिक शक्ति की दृष्टि से सन्तुलन की स्थिति है और ऐसी दशा में यान्त्रिक शक्ति का जहाँ तक प्रश्न है, योजना पूर्णतः सफल होगी। इसी प्रकार परिवहन, कृषि उद्योग आदि विभिन्न अंगों से सम्बन्धित वस्तुओं एवं सेवाओं में सन्तुलनों की स्थापना की अपेक्षा होगी, अन्यथा उत्पादन-योजना असंगत मानी जायगी। श्रम-सन्तुलनों के अन्तर्गत योजना लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए आवश्यक तकनीकी एवं सामान्य श्रमिकों की संख्या एवं योजना-काल में श्रमिकों की उपलब्ध संख्या के अन्तर्सम्बन्ध पर विचार किया जाता है। इसी प्रकार वित्तीय सन्तुलनों के अन्तर्गत उपभोग एवं विनियोजन के लिये राष्ट्रीय आय के उचित वितरण के लिये अन्तर्सम्बन्धों पर विचार किया जाता है। सोवियत रूस की योजनाओं में वित्तीय पक्ष का यद्यपि इतना महत्व नहीं है, क्योंकि प्रायः समस्त उत्पादन एवं वितरण पर राजकीय नियन्त्रण है और निजी लाभ एवं स्वतन्त्र विनिमय का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। फिर भी श्रमिकों के वेतनों के भुगतान, आदि के लिये वित्तीय साधनों की आवश्यकता होती है। वहाँ समस्त बैंकिंग व्यवस्था राष्ट्रीयकृत है तथा अल्पकालीन ऋण राजकोष-बैंक (Gosh-bank) द्वारा विभिन्न उत्पादक इकाइयों को दिये जाते हैं। दीर्घकालीन ऋणों के लिये उद्योग एवं कृषि के लिए पृथक-पृथक सरकारी बैंक हैं। वित्तीय योजना के दो

अग होते हैं—नकद योजना एव ऋण योजना। नकद योजना (Cash Plan) के अनुसार राजकीय बैंक द्वारा निर्गमित मुद्रा की मात्रा को सन्तुलित किया जाता है तथा **ऋण या साख योजना** (Credit Plan) के अधीन राजकोय बैंको द्वारा विभिन्न उत्पादक इकाइयो को दिये जाने वाले अल्पकालीन एव दीर्घकालीन ऋणो की मात्रा को सन्तुलित किया जाता है।

उपर्युक्त विधि से भौतिक, श्रम एव वित्तीय सन्तुलनो का निर्माण एक कठिन कार्य है। इस कार्य को गोसप्लान का एक विशेष विभाग सम्पन्न करता है जिसे **समन्वय विभाग** (Coordinate Section) कहा जाता है।

५ दीर्घकालीन एव अल्पकालीन योजना

सोवियत रूस मे प्रत्येक योजना की अवधि सामान्यत पाँच वर्ष निर्धारित है। यह समझा जाता है कि विशिष्ट तकनीकी परियोजनाओ की पूर्ति के लिये प्राय पाँच वर्ष की न्यूनतम अवधि की आवश्यकता होती है और उसके बाद फिर अधिक महत्वाकाक्षी योजना लागू करना सम्भव हो जाता है। अत प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद उत्तरोत्तर अधिक विकास के लिये उचित वातावरण का निर्माण हो जाता है। किन्तु विकास के इस क्रम म निकट भविष्य एव सुदूर भविष्य के प्रति उदासीन नही रहा जा सकता है। अत रूस म एक वर्षीय वार्षिक योजनाओ पर भी पूर्ण ध्यान दिया जाता है। प्रत्येक वार्षिक योजना पचवर्षीय योजना का एक अग होती है। यही नही प्रत्येक वार्षिक योजना छमाही, तिमाही और मासिक योजनाओ मे विभाजित होती है। यह विभाजन निर्धारित क्रम से योजनाओ के लक्ष्यो की पूर्ति मे सहायक होता है तथा अल्पकाल मे ही यदि कुछ असगतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं तो उन्हे समय रहते सुधार कर आगे का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। इसके द्वारा सम्पूर्ण योजना के एक भाग के रूप म प्रत्येक माह अथवा प्रत्येक वर्ष की अनुमानित प्रगति का सही मूल्याकन किया जा सकता है।

दीर्घकालीन नियोजन की दृष्टि से सोवियत योजनाओ मे उचित व्यवस्थाओ को स्थान दिया जाता है। विद्युतीकरण की गोयलरो योजना वास्तव मे एक दीर्घकालीन योजना ही थी जिसके लक्ष्यों को दस पन्द्रह वर्षों मे पूरा किया जाना था। द्वितीय विश्व युद्ध के समय एव छठवी योजना के काल मे योजनाओं की अवधि मे सामान्य हेर फेर किये गये। सातवी योजना सन् १९५९ से १९६५ तक के सात वर्षों के लिये बनाई गयी। इस योजना के प्रारम्भ म ही यह अनुभव किया गया कि प्रत्येक पचवर्षीय योजना का निर्माण करते समय एक दीर्घकालीन योजना का ढाँचा भी नियोजको के समक्ष स्पष्ट होना चाहिये, ताकि उस दीर्घकालीन ढाँचे के अन्तर्गत एक के बाद एक अनेक पचवर्षीय योजनाओ को पूरा किया जा सके। यह माना गया कि ऐसा करने से दीर्घकाल मे होने वाली विसगतियाँ दूर की जा सकेंगी और उस दीर्घकाल मे सम्मिलित विभिन्न पचवर्षीय योजनायें एक दूसरे से पृथक न होकर एक

सुसम्बद्ध शृंखला का अंग बन जायगी। अतः सन् १९६१ में रूस द्वारा एक बीस वर्षीय कार्यक्रम की घोषणा की गयी। इसकी अवधि सन् १९६१ से सन् १९८० तक की निर्धारित की गयी।

६ बीसवर्षीय कार्यक्रम

सोवियत रूस के आर्थिक नियोजन का इतिहास वस्तुतः अर्धशताब्दी का इतिहास है। इस काल में एकवर्षीय एवं पंचवर्षीय योजनायें सफलतापूर्वक सम्पादित की गयी हैं। दीर्घकालीन नियोजन की दृष्टि से ही सन् १९६१ में बीस वर्षीय कार्यक्रम की घोषणा की गयी। सातवीं योजना के शेष पाँच वर्ष भी इस दीर्घकालीन योजना में सम्मिलित कर लिए गये और अब आठवीं योजना भी इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत निर्धारित उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति की एक शृंखला बन गयी है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य समाजवादी अर्थव्यवस्था के आदर्शों के अनुरूप सोवियत जनता के जीवन स्तर को अधिकाधिक ऊँचा उठाना है, ताकि सन् १९८० तक रूस में प्रति व्यक्ति उत्पादन विश्व के अन्य देशों की तुलना में अधिक हो जाय और इस प्रकार एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करके समाजवाद से साम्यवाद की ओर बढ़ा जा सके। अतः इस बीस वर्षीय कार्यक्रम का उद्देश्य केवल जनसाधारण का जीवन स्तर सुधारना ही नहीं है, बल्कि एक साम्यवादी समाज का निर्माण करना है।

साधारणतया समाजवाद और साम्यवाद में उत्पादन के साधनों का स्वामित्व सार्वजनिक होता है और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण बन्द हो जाता है तथा एक संतुलित योजना के द्वारा जीवन स्तर को सुधारने का प्रयत्न किया जाता है। समाजवादी व्यवस्था में मनुष्य की भौतिक समृद्धि उसके कार्य के गुणात्मक और संख्यात्मक स्वरूप पर निर्भर करती है। यदि वह अधिक उत्तम कार्य करता है, तो उसे अधिक आय प्राप्त होती है—यह कार्य के पुरस्कार का समाजवादी सिद्धान्त है। साम्यवादी व्यवस्था में मनुष्य के भौतिक स्तर के समस्त भेद समाप्त हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति समृद्धि और सुरक्षा का जीवन व्यतीत करता है। "प्रत्येक अपनी योग्यतानुसार कार्य करता है और अपनी आवश्यकतानुसार प्राप्त करता है"—यह साम्यवादी समाज का सिद्धान्त है। किन्तु अभी तक पचास वर्षों के आर्थिक नियोजन के बाद भी रूस ऐसा समाज स्थापित करने में सफल नहीं हुआ है। फिर भी वह इसकी स्थापना के लिए प्रयत्नशील अवश्य है। इस प्रकार के समाज के लिए उत्पादन इतनी प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता की वस्तुयें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जायें, क्योंकि वस्तुओं की प्रचुरता ही मानव समाज में समानता ला सकती है। अतः यह बीस वर्षीय कार्यक्रम साम्यवादी समाज के लिए भौतिक एवं तकनीकी आधार स्थापित करेगा। कृषि एवं उद्योग का इतना अधिक विकास हो जायगा कि सोवियत समाज साम्यवादी समाज के आदर्शों को मूर्त रूप दे सकेगा। श्रम की उत्पादन शक्ति और उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि होगी और इसी

अनुपात मे कामो के जीवन स्तर मे वृद्धि हो जायगी। इस कार्य मे हजारो कल-कारखानो, मकानो, अस्पतालो, स्कूलो कालेजो, तथा हजारो मील सड़को, पाइप लाइनो और इसी प्रकार के अन्य अनेको निर्माणो की आवश्यकता होगी। सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे दीर्घकालीन नियोजन के द्वारा ये समस्त परिवर्तन लाने का यह प्रयास रूस कर रहा है।

७. बीसवर्षीय कार्यक्रम के लक्ष्य

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत एक सुनियोजित व्यवस्था के आधार पर उत्पादन लक्ष्यो का निर्माण किया गया है और उन्हे पूरा करने का आवश्यक निर्देश दिया गया है। बीस वर्षो मे औद्योगिक उत्पादन ६ गुना और कृषि उत्पादन ३·५ गुना हो जायगा। श्रम की उत्पादकता ४·५ गुना औद्योगिक क्षेत्र मे और ५ से ६ गुना कृषि क्षेत्र मे पहुँच जायगी और प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे साढ़े तीन गुना वृद्धि हो जायगी। यह अनुमान लगाया गया है कि सन् १९८० तक रूस की जनसख्या २८ करोड हो जायगी, जिसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिये कृषि और उद्योगो द्वारा पर्याप्त उत्पादन किया जा सकेगा। कृषि के क्षेत्र म कुछ उपभोक्ता पदार्थों (जैसे अनाज, आलू) की पूर्ति आज भी वैज्ञानिक स्तर तक पहुँच चुकी है। साथ ही यह योजना है कि कुछ पदार्थों का उपभोग कम किया जाय ताकि उत्तम श्रेणी के खाद्यान्न उत्पन्न किये जा सके। कुछ अन्य खाद्यपदार्थों के अन्तर्गत यह योजना है कि कुछ वर्षों मे उनका उत्पादन बहुत अधिक बढ सकेगा जबकि कुछ दशाओ म इसमे पर्याप्त समय लगेगा। इन्ही उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये यह निश्चय किया गया है कि कार्यक्रम के प्रथम दस वर्षो मे कृषि उत्पादन म ९·६ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हो और तत्पश्चात कृषि उत्पादन मे वृद्धि ३ ८ प्रतिशत हो सकती है। इसका पूर्णरूपेण निश्चय जनसख्या की वृद्धि और सुधरे हुये स्वास्थ्य स्तर की वाछनीयता पर निर्भर करेगा।

उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे बहुत अधिक वृद्धि के लक्ष्य रखे गये हैं। इनमे वस्त्र, जूते, घरेलू सामान एव बिजली के उपकरण, मनोरजन एव सास्कृतिक सुविधायें, टेलीविजन, रेफ्रीजरेटर आदि सम्मिलित हैं। इन लक्ष्यो को ध्यान मे रखते हुये योजनाकर्ताओ ने इस्पात, अलौह धातु, ईंधन, विद्युत शक्ति आदि के विषय मे भावी आवश्यकताओ का अनुमान लगाया है। हजारो विशेषज्ञो की सहायता से वर्तमान उपलब्धियो और भविष्य की क्षमताओ को ध्यान मे रखते हुये नियोजको ने अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र म एव प्रत्येक शाखा मे लक्ष्यो का निर्धारण किया है। इस बीस वर्षों की अवधि मे सोवियत निवासियो का जीवन स्तर किसी भी पूंजीवादी राष्ट्र के निवासियो के जीवनस्तर की तुलना मे अधिक उन्नत हो जायगा। सन् १९८० तक सोवियत सघ आज की गैर समाजवादी दुनिया मे जितनी शक्ति उत्पन्न होती है उससे ५० प्रतिशत अधिक शक्ति उत्पन्न करेगा। सन् १९७० तक सभी वर्गों को आत्म-निर्भरता प्राप्त हो जायगी। शायद प्रथम बार इतिहास मे अभाव एव अपर्याप्तता को

पूर्ण रूप से हटाया जा सकेगा। प्रथम दस वर्षों में मकानों के अभाव की समस्या से मुक्ति मिल जायगी और उसके बाद अगले दशक में प्रत्येक परिवार के लिये पृथक आवास सुविधा प्रदान की जा सकेगी।

बीस वर्षीय कार्य-क्रम श्रमिकों के काम के घंटों में कमी करने की योजना भी प्रस्तुत करता है। प्रथम दस वर्षों में ६ घंटे प्रतिदिन कार्य का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा। उसके बाद इसमें और अधिक कमी का प्रयास किया जायगा। इस प्रकार साम्यवाद की ओर अग्रसर होता हुआ यह देश अपने नागरिकों को विचार, चिन्तन, अध्ययन, मनोरंजन एवं सांस्कृतिक कार्यों के लिये अधिक अवकाश प्रदान कर सकेगा। स्वचालित मशीनों एवं यन्त्रों के अधिकाधिक प्रयोग के द्वारा श्रम कार्य को अधिक सरल बनाया जा सकेगा। न्यून वेतन वाले श्रमिकों एवं कर्मचारियों का वर्ग समाप्त हो जायगा। वस्तुतः १ जनवरी सन् १९६८ से रूस ने अर्थतन्त्र की समस्त शाखाओं में न्यूनतम मासिक मजदूरी ६० रूबल कर दी है। श्रम-कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में भी अत्यन्त सन्तोषजनक लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। सन् १९८० तक बच्चों की शिक्षा-दीक्षा पर होने वाले व्यय के तीन चौथाई भाग को राज्य कोष से दिया जायगा। साथ ही ऐसे व्यक्तियों का निर्वाह व्यय, जो श्रम करने योग्य नहीं है, राज्य वहन करेगा। निःशुल्क आधुनिक आवास-निवास व्यवस्था और निःशुल्क आहार भी सामाजिक सेवायें साम्यवादी समाज के आदर्श की दिशा में दुर्लभ उपलब्धियाँ होंगी।

इस प्रकार सोवियत नियोजन के इतिहास में यह बीस वर्षीय कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण घटना है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सुव्यवस्थित संचालित करने के लिये यह आवश्यक है कि उसके विभिन्न अंगों में एक निश्चित अनुपात एवं पारस्परिक सम्बन्धों की स्थापना की जाय। इस प्रकार की अन्तःनिर्भरता औद्योगिक कार्यकलापों के विशिष्टीकरण की प्रक्रिया से और भी आवश्यक हो जाती है। साथ ही यह भी निश्चित है कि इन विभिन्न अंगों में विद्यमान अन्तर्सम्बन्ध और अन्तर-अनुपात स्थायी नहीं होते। गतिशील अर्थव्यवस्था में संख्यात्मक एवं गुणात्मक रूप में परिवर्तन होना अवश्यम्भावी होता है। जब उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही हो और उत्पादन क्रिया में निरन्तर सुधार हो रहा हो, तो ऐसी स्थिति में यदि अर्थव्यवस्था का कोई भी अंग सुचारु रूप से कार्य न कर सका तो उसका प्रभाव समस्त अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। वास्तव में पूँजीवादी देशों में यह हो रहा है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का तन्त्र इतना अधिक जटिल हो जाता है कि अल्पकाल में उसका उपचार असम्भव प्रतीत होता है। अतः दीर्घकालीन नियोजन की अनिवार्यता और अपरिहार्यता स्वाभाविक है।

बीस वर्षीय कार्यक्रम वस्तुतः साम्यवादी मानववाद का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जाता है। इसमें विभिन्न राष्ट्रों में शान्ति और भ्रातृत्व की भावना निहित है।

यदि इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सन् १९८० तक सोवियत संघ विश्व का सबसे शक्तिशाली औद्योगिक राष्ट्र बन जाता है तो विश्व शान्ति के लिये मार्ग प्रशस्त हो जाता है और आन्तरिक प्रगति की सम्भावनाओं में वृद्धि हो जाती है। रूस की सातवीं योजना की सन्तोषजनक उपलब्धि और आठवीं योजना की अब तक की प्रगति को देखने हुये इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि रूस बीस वर्षीय कार्यक्रमों के लक्ष्यों को पूरा करने में सफल हो जायगा।

८. योजना का निर्माण

केन्द्रीय स्तर पर रूस का योजना आयोग (Gosplan) विभिन्न मन्त्रालयों एवं आर्थिक परिषदों के परामर्श से योजना का एक प्रारूप तैयार करता है। इस आयोग का अध्यक्ष मन्त्रिपरिषद का सदस्य भी होता है। विषय एवं कार्यों के अनुसार इस आयोग के अनेक विभाग एवं उपविभाग होते हैं। शाखा विभागों का मुख्य कार्य अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के विषय में अध्ययन करना है और विभिन्न मन्त्रालयों के नियोजन विभागों के सहयोग से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिये लक्ष्यों का निर्धारण करना होता है। वस्तुतः योजना आयोग के शाखा विभागों एवं मन्त्रालयों के नियोजन विभागों के द्वारा पृथक रूप से लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। फिर इन लक्ष्यों को योजना आयोग के कार्यकारी विभाग (Functional Division) को अध्ययन एवं परीक्षा के लिये प्रेषित किया जाता है। यह विभाग इन लक्ष्यों की बारीकी से जाँच करता है। इनकी जाँच विभिन्न दृष्टिकोणों से की जाती है तथा इसमें वैज्ञानिकों एवं आर्थिक विशेषज्ञों का सहयोग लिया जाता है। गोसप्लान को आवश्यक सहयोग एवं परामर्श देने के लिये वैज्ञानिकों, तकनीशियनों एवं आर्थिक विशेषज्ञों की एक परिषद कार्यशील है। कार्यकारी विभागों द्वारा जाँच के बाद इन लक्ष्यों को योजना-आयोग के समन्वय-विभाग (Co-ordinate Division) के समक्ष रखा जाता है। यह विभाग इन लक्ष्यों के आधार पर आर्थिक प्रणाली के विभिन्न अंगों के लिये एक विस्तृत योजना का निर्माण करता है।

समन्वय विभाग द्वारा निर्मित योजना पर योजना आयोग के सदस्यों द्वारा पूर्ण विचार किया जाता है और फिर अन्ततः योजना का प्रारूप मन्त्रिपरिषद के विचारार्थ प्रेषित कर दिया जाता है जिसे प्रारूप में आवश्यक परिवर्तन अथवा संशोधन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। इसके पश्चात योजना के इस प्रारूप को सोवियत सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों को भेज दिया जाता है, वहाँ इस पर फिर विचार किया जाता है। सोवियत पंचवर्षीय योजना में निर्धारित लक्ष्यों का वर्णन होता है और इन्हीं के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष के लिये चालू अथवा वार्षिक योजना बनाई जाती है जिसमें उत्पादन के कार्यक्रमों एवं लक्ष्यों को विस्तार से दिया जाता है। विस्तृत वार्षिक योजना के निर्माण में विकेन्द्रीकरण के लिये पूरा स्थान होता है। इसके अन्तर्गत अर्थतन्त्र के छोटे से छोटे अंगों को अपनी-अपनी योजना बनाने का पूर्ण अवसर

दिया जाता है। प्रत्येक कारखाना अथवा प्रत्येक सामूहिक कृषि फार्म अथवा राजकीय कृषि फार्म अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के सन्दर्भ में अपनी योजना के लिये उत्पादन के लक्ष्यों का निर्धारण करता है। इस प्रकार इन असंख्यों इकाइयों की योजनाओं के आधार पर प्रत्येक सोवियत नगर या सोवियत ग्राम की योजनायें तैयार की जाती हैं। इन योजनाओं को एकीकृत करके प्रत्येक जिला (Raiyon) जिला स्तर पर अपनी योजना का निर्माण करता है। इन योजनाओं को फिर प्रादेशिक स्तर पर विभिन्न प्रादेशिक इकाइयों (Oblasts) द्वारा परखा जाता है और प्रादेशिक योजना तैयार की जाती है जिसे फिर सघीय गणराज्य (Union Republic) के योजना आयोग को भेज दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक गणराज्य की योजना बनाने में अत्यन्त सुविधा रहती है। फिर विभिन्न गणराज्य अपनी-अपनी योजनाओं को केन्द्रीय योजना आयोग (Gosplan) को प्रेषित कर देते हैं। इस प्रकार भौगोलिक विभाजन के आधार पर केन्द्रीय योजना के निर्माण में विकेन्द्रीकरण का पूर्ण समावेश किया जाता है।

केन्द्रीय योजना आयोग की शाखायें समस्त गणराज्यों, प्रादेशिक इकाइयों एवं जिलों में स्थापित हैं। दूसरी ओर विभिन्न मंत्रालयों की प्रशासनिक इकाइयाँ इन सभी स्तरों पर कार्यशील होती हैं। अत इन दोनों ही मार्गों से होकर निचले स्तर की योजनायें केन्द्रीय स्तर तक पहुँचती हैं और फिर केन्द्र द्वारा निर्मित योजना तथा निचले स्तरों से प्राप्त योजनाओं में सतुलन स्थापित किया जाता है। ऐसा करते समय योजना में आवश्यक परिवर्तन किये जाते हैं किन्तु यथा सम्भव निचले स्तर से प्राप्त योजनाओं में बहुत कम परिवर्तन किये जाते हैं। विश्वस्त आँकड़ों के सकलन के लिये योजना-आयोग को केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (Central Statistical Organisation) की सेवायें प्राप्त हैं। यह संगठन कृषि उद्योग परिवहन आदि सभी क्षेत्रों के लिए पिछले वर्षों के उत्पादन के आँकड़े सकलित करता है जिनके आधार पर योजनाओं का निर्माण किया जाता है।

इन समस्त औपचारिकताओं से गुजरने के बाद योजना आयोग योजना को अन्तिम रूप देता है। उसके बाद फिर इसे मंत्रिपरिषद के समक्ष प्रेषित किया जाता है। अन्ततोगत्वा सर्वोच्च सोवियत सत्ता (Supreme Soviet) के द्वारा योजना का अनुमोदन कर दिया जाता है, और मंत्रालयों एवं समस्त सम्बद्ध इकाइयों के लिये योजना का क्रियान्वयन आवश्यक हो जाता है।

सोवियत नियोजन संस्थाओं का पुनर्गठन

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि सोवियत योजनाओं के निर्माण का दायित्व मुख्यत केन्द्रीय योजना आयोग (Gosplan) के ऊपर है, किन्तु इस कार्य में इस संस्था को विभिन्न सोवियत गणराज्यों के योजना आयोग एवं प्रादेशिक तथा जिला स्तर की नियोजन संस्थाओं का पूर्ण सहयोग प्राप्त है। इसी प्रकार योजनाओं के निर्माण में प्रत्येक नगर, प्रत्येक गाँव एवं यहाँ तक प्रत्येक राजकीय

उपक्रम और प्रत्येक सामूहिक अथवा राजकीय कृषि फार्म का योगदान रहता है। किन्तु जहाँ तक योजना के क्रियान्वयन का प्रश्न है, यह कार्य प्रधानत विभिन्न मन्त्रालयों और उनसे सम्बद्ध प्रशासनिक विभागों और इकाइयों के द्वारा ही किया जाता है। इस दृष्टि से गोसप्लान केवल एक परामर्शदात्री संस्था ही है, यद्यपि योजना के क्रियान्वयन के निरीक्षण एव मूल्यांकन का काय योजना आयोग ही करता है। यदि सरकारी संस्थाओं द्वारा योजना के क्रियान्वयन म कुछ त्रुटियाँ की जाती हैं अथवा योजना मे कुछ कमियाँ प्रतीत होती है तो आयोग द्वारा उनके सुधार की दिशा म प्रयास किया जाता है। पिछले पचास वर्षों म सोवियत नियोजन प्रणाली में अनेक बार फेर बदल की गयी है। क्रान्ति के तत्काल बाद उद्योगों के नियत्रण एव निरीक्षण के उद्देश्यों से सर्वोच्च आर्थिक परिषद (VESENKHA) की स्थापना की गयी थी। सन् १६२० म विद्युतीकरण की योजना के सन्दर्भ म गोयलरो की स्थापना की गयी, किन्तु सन् १६२१ मे गोसप्लान की स्थापना करके गोयलरो को उसमे विलीन कर दिया गया। प्रथम पचवर्षीय योजना (१६२८ से १६३२) की अवधि मे ही यह अनुभव किया जाने लगा कि सर्वोच्च आर्थिक परिषद (VESENKHA) अपने भारी उत्तरदायित्व को पूरा करने म पूर्ण सफल नहीं हो पा रही थी। अत सन् १६३२ म इस परिषद को विघटित करके इसके स्थान पर तीन जन मन्त्रालयों की स्थापना की गयी। इन्हे प्रारम्भ मे जन कामसेरियट (Peoples Commissoriats) के नाम से सम्बोधित किया गया किन्तु बाद मे सन् १६४६ से इन्हे मन्त्रालय कहा जाने लगा। ये तीन मन्त्रालय क्रमशः भारी उद्योगों, हलके उद्योगों एव काष्ठ-उद्योगों (Timber industries) के लिये थे। लेकिन इन मन्त्रालयों की संख्या तीन तक ही सीमित न रही। काय निरन्तर बढ रहा था और इसलिये जन मन्त्रालयों की संख्या मे भी अनेक बार वृद्धि की गयी। सन् १६३६ मे इनकी संख्या ३४ हो गयी। यही नही प्रत्येक मन्त्रालय म विभिन्न विभाग स्थापित किये गये जिन्हे विशिष्ट उद्योग समूहों के सगठन एव नियत्रण का भार सौंपा गया। उदाहरण के लिये ईंधन मन्त्रालय तीन प्रमुख प्रशासनिक विभागों मे विभाजित था जो सुदूर पूर्व, मध्यवर्ती क्षेत्र एव दक्षिण योरोपीय रूसी क्षेत्रों मे बँटे हुये थे। इसी प्रकार खनिज तेल तथा पेट्रोल उद्योगों का नियत्रण हो मन्त्रालय के अधीन अनेक क्षेत्रीय प्रशासनिक विभागों मे बँटा हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध तक काम इतना बढ चुका था कि सोवियत गणराज्यों मे भी इन मन्त्रालयों की शाखायें खोली जा चुकी थी। युद्ध काल मे रूस की सुरक्षा के लिये निर्मित राजकीय समिति (State Committee for the Defence of U S S R) ने आर्थिक प्रशासन का पूर्ण नियत्रण अपने हाथों मे ले लिया। युद्ध समाप्त होने पर यह नियत्रण पुन मन्त्रालयों को सौंप दिया गया।

स्टालिन की मृत्यु के बाद नियोजन प्रणाली का पुनर्गठन

स्टालिन की मृत्यु ४ मार्च सन् १६५३ को हुई। उसके बाद ही मन्त्रालयों के

एकीकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई ताकि एक ही वर्ग के अनेक मन्त्रालयों को मिलाकर बड़े बड़े मन्त्रालयों की स्थापना की जा सके। उदाहरण के लिये जहाज निर्माण मन्त्रालय, परिवहन, मशीन निर्माण मन्त्रालय, भारी मशीन निर्माण मन्त्रालय तथा भवन एवं सड़क मशीन निर्माण मन्त्रालय—इन चार मन्त्रालयों को मिलाकर एक बड़ा मन्त्रालय बनाया गया जिसका नाम परिवहन एवं भारी मशीन निर्माण मन्त्रालय रखा गया। इसी प्रकार बिजली एवं अन्य उद्योगों में अनेक मन्त्रालयों को मिला कर बड़े मन्त्रालयों का रूप प्रदान किया गया। इससे मन्त्रालयों की संख्या में कमी हुई। किन्तु ये एकीकृत मन्त्रालय बढ़ते हुये औद्योगिक दायित्वों का भली प्रकार निर्वाह करने में सफल नहीं हो सके अतः कुछ महीनों बाद ही इस नीति को पुनः बदल कर मन्त्रालयों की संख्या में वृद्धि की जाने लगी। उस समय लगभग समस्त भारी उद्योग केन्द्रीय औद्योगिक मन्त्रालयों के अधीन थे तथा मध्य एवं हलके उद्योगों का भार सोवियत गणतन्त्रों के मन्त्रालयों के जिम्मे था। फिर भी विभिन्न स्तरों पर इन मन्त्रालयों, प्रशासनिक इकाइयों एवं सरकारी विभागों का औद्योगिक प्रबन्ध में इतना अधिक केन्द्रीकरण हो चुका था कि एक ही क्षेत्र के विभिन्न उपक्रमों के समन्वय तथा उनकी स्थानीय विशिष्ट समस्याओं के उचित निराकरण के मार्ग में अनेक कृत्रिम बाधायें खड़ी हो चुकी थीं। श्री निकिता ख्रुश्चेव इस स्थिति से परिचित थे और इसमें सुधार करने की दिशा में प्रयत्नशील थे। उद्योगों के प्रबन्ध में केन्द्रीकरण एवं दुहरी, तिहरी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समाप्त करके, प्रत्येक क्षेत्र में समन्वित आर्थिक प्रशासन की दृष्टि से प्रथक आर्थिक इकाइयों के निर्माण से यह समस्या हल हो सकती थी।

(क) आर्थिक परिषदों की स्थापना—सन् १६५७ के बाद आर्थिक विकेन्द्रीकरण के युग का सूत्रपात हुआ। समस्त रूस को १०४ आर्थिक प्रशासनिक इकाइयों में बाँटा गया और प्रत्येक इकाई के लिये एक आर्थिक-परिषद (Economic Council or 'SOVNARKHOZY') की स्थापना की गयी। सन् १६६० में कानून पास करके गणराज्यों में आर्थिक परिषदों की स्थापना की व्यवस्था की गयी। इसके अन्तर्गत ऐसे गणराज्यों में, जिनके अधीन अनेक आर्थिक क्षेत्र सम्मिलित थे आर्थिक परिषदें स्थापित की गयी ताकि वे विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में समन्वय स्थापित कर सकें। इस व्यवस्था के कारण अर्थव्यवस्था के केन्द्रीय प्रशासन के साथ-साथ गणराज्यों को अपनी स्थानीय समस्याओं के निराकरण का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो गया तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में यह एक उत्तम कदम माना गया।

(ख) आर्थिक परिषदों की समाप्ति एवं केन्द्रीय आर्थिक मन्त्रालयों की पुनः स्थापना—सन् १६६४ में श्री ख्रुश्चेव सत्ता से पृथक हो गये और उनके स्थान पर श्री कोसीगिन रूस के प्रधानमंत्री बने। एक वर्ष बाद ही श्री कोसीगिन ने आर्थिक प्रशासन के ढाँचे में पुनः परिवर्तन कर दिया। क्षेत्रीय आर्थिक परिषदों को समाप्त कर दिया गया। ऐसा अनुभव किया गया कि पृथक-पृथक क्षेत्रीय आर्थिक प्रशासन

के कारण समान राष्ट्रीय हितो के स्थान पर विभिन्न क्षेत्रो मे एक प्रकार का आर्थिक अलगाव उत्पन्न होता जा रहा था, जो कि सम्पूर्ण सोवियत अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से हितकर नहीं था। अत कुछ समय के लिये आर्थिक प्रशासन के अधिकार गोसप्लान को सौंप दिये गये और क्षेत्रीय आर्थिक परिषदों का विघटन कर दिया गया। धीरे धीरे केन्द्रीय आर्थिक मत्रालयों की स्थापना की गयी और आर्थिक प्रशासन पुन उनका उत्तरदायित्व बन गया। इस प्रकार सन् १९५७ मे आर्थिक प्रशासन की दृष्टि से क्षेत्रीय आर्थिक परिषदो को एव सन् १९६० मे गणराज्यो की आर्थिक परिषदो को जो अधिकार प्रदान किये गये थे वे पुन केन्द्रीय आर्थिक मत्रालयो (Central Economic Ministries) को सौंप दिये गये। दूसरे शब्दो मे आर्थिक प्रशासन मे विकेन्द्रीकरण की जो व्यवस्थायें की गयी थीं उन्हे समाप्त करके उद्योगो के प्रशासन मे केन्द्रीकरण का सिद्धान्त फिर से प्रस्थापित किया गया।

(ग) स्थानीय प्रबन्ध एवं उत्पादन में विकेन्द्रीकरण—उद्योगो के प्रबन्ध मे केन्द्रीयकरण की पुनर्स्थापना के बाद यह सोचना स्वाभाविक था कि पृथक औद्योगिक एव उत्पादक इकाइयो के प्रबन्धको की प्रबन्ध-सम्बन्धी स्वतन्त्रता केन्द्रीकृत नौकरशाही की शिकार हो जायगी। इससे उपक्रमो मे प्रबन्ध कुशलता और तत्काल निर्णय करने की क्षमता का अभाव उत्पन्न होगा तथा उत्तरदायित्व-हीनता का विकास होगा। अत श्री कोसीगिन ने आर्थिक प्रशासन का केन्द्रीयकरण करने के साथ ही विभिन्न उपक्रमो के स्थानीय प्रबन्ध मे विकेन्द्रीकरण का समावेश किया। इस नीति के अनुसार स्थानीय प्रबन्धको को अधिक स्वतन्त्रता दी गयी जिससे कि वे उनके अधीन इकाइयो के प्रबन्ध में कुशलता ला सके। यह कहा गया कि उपक्रमो की सफलता का निर्धारण उत्पादन के आकार के साथ-साथ उत्पादित माल की बढ़िया किस्म के आधार पर एवं लाभदायकता (Profitability) के आधार पर किया जायगा। उत्पादन की प्रक्रिया मे तकनीकी सुधार करने, कच्चे माल की प्राप्ति एव मजदूरो के वेतनमानो के निर्धारण तथा उपभोक्ताओ की माँग के अनुरूप माल के प्रकारो मे परिवर्तन करने आदि के विषय मे अब स्थानीय प्रबन्धको को पहले से अधिक स्वतत्रता दी जा चुकी है, यद्यपि विनियोगो के आकार के निर्धारण एव साधनो के आवन्टन तथा उत्पादन के आकार प्रकार के निर्धारण से सम्बन्धित महत्वपूर्ण कार्य आज भी केन्द्रीय मत्रालयो का ही दायित्व है।

आर्थिक नियोजन प्रणाली मे सन् १९६५ के बाद किये गये पुनर्गठन के परिणाम अत्यन्त सन्तोषजनक रहे है। अब प्रत्येक उपक्रम का लाभपूर्ण संचालन आवश्यक बना दिया गया है। घाटे मे चलने वाले उपक्रमो को दी जाने वाली सरकारी अनुदान को अब प्रोत्साहन नही दिया जाता है। इससे औद्योगिक उत्पादक इकाइयो के लाभो की मात्रा मे वृद्धि हुई है। प्रत्येक औद्योगिक इकाई अपने विकास के लिये आवश्यक पूँजी स्वय अपने साधनो से जुटाने और साथ ही लाभ का एक अश राष्ट्रीय विकास के लिये सरकार को प्रदान करने मे समर्थ है। इससे राष्ट्रीय आर्थिक

विकास के लिये और अपनी योजनाओ मे अधिकाधिक विनियोग के लिये आवश्यक साधनो की उपलब्धि सरल हो गयी है। सरकारी उपक्रमो द्वारा की गयी बचत सोवियत आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण साधन बन चुकी है। इससे पूर्व आर्थिक नियोजन और सरकारी व्ययों के लिये आवश्यक साधन अप्रत्यक्ष करो द्वारा जुटाये जाते थे किन्तु अब धीरे धीरे सरकारी उपक्रमो द्वारा अर्जित लाभ आर्थिक विकास की आवश्यकताओ की पूर्ति का सबसे महत्वपूर्ण साधन बन गया है। रूस म आठवी पचवर्षीय योजना अपना तीसरा वर्ष समाप्त कर रही है और नवी पचवर्षीय योजना के निर्माण पर विचार विमर्श हो रहा है। आशा है कि सोवियत आर्थिक नियोजन प्रणाली म किये गये इन परिवर्तनो के आधार पर अगली योजना मे निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति के लिये पर्याप्त साधनो की उपलब्धि की दिशा मे कोई कठिनाई नही होगी।

१८

श्रम संघ आन्दोलन

[TRADE UNION MOVEMENT]

"Workers of all the world Unite! You have nothing to lose but your chains of slavery" —*Karl Marx*.

प्रस्तावना

सन् १८६१ के दास-मुक्ति अधिनियम के पश्चात् रूस मे औद्योगिक पूँजीवाद का विकास द्रुतगति से होने लगा यद्यपि दास-प्रथा की अवशिष्ट रूढियो ने उसमे अनेक बाधाएँ डालीं। सन् १८६५ से ६० तक के २५ वर्षो मे बडी मिलो और कारखानो मे काम करने वाले श्रमिको की सख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। औद्योगीकरण के इस काल मे श्रमिको की दशा गुलामो से भी बदतर थी। जारशाही रूस मे श्रमिको का जीवन बडा ही कठिन था। सन् १८७० के आस-पास मिलों और कारखानो मे श्रमिको को १२½ घण्टे कम से कम काम करना पडता था और सूती वस्त्रोद्योग मे तो १४-१५ घण्टे तक काम करना पडता था। स्त्री और बच्चे मजदूरी मे खूब कसे रहते थे। बच्चे उतनी ही देर काम करते थे जितनी देर बडे-बूढ़े फिर भी स्त्रियो की तरह उन्हे कम मजदूरी मिलती थी। अधिकाश श्रमिको को प्रतिमास ७-८ रूबल मिलते थे। सबसे अधिक मजदूरी लोहे के कारखानो, ढलाई घरो आदि के श्रमिको को मिलती थी और वह भी ३५ रूबल प्रतिमास से अधिक न होती थी। श्रमिको को मशीनो और यन्त्रो से कोई क्षति न पहुँचे इसके लिए कोई नियम न थे, जिसका परिणाम यह होता था कि बहुत से श्रमिक कट जाते या घायल हो जाते थे। उनका बीमा न होता था और चिकित्सा तथा दवा के लिये भी उन्हे अपने पास से व्यय करना पडता था। उनके आवास-निवास स्थल वीभत्स दृश्य उपस्थित करते थे। मिल के बेरको मे दस-दस बारह-बारह श्रमिक तक एक-एक कोठरी मे ठूँस दिये जाते थे। मिल-मालिक मजदूरी का हिसाब करते समय भी श्रमिको को ठग लेते थे और मिल की दुकानो से ही बडे-बडे दामो पर आवश्यक वस्तुएं खरीदने पर उन्हे विवश किया जाता था। रही-सही कसर जुर्माना करके निकाल ली जाती थी।

इस प्रकार की भयंकर औद्योगिक श्रमिक स्थिति में रूस औद्योगीकरण की दिशा में आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। औद्योगीकरण के विकास के साथ-साथ श्रमिक वर्ग भी अपने को संगठित करने का प्रयत्न कर रहा था। यह कहा गया है कि पूँजीवाद ने जिस सर्वाधिक बुराई को जन्म दिया है, वह है वर्ग-संघर्ष। पूँजीपति की हमेशा यह इच्छा रहती है कि वह श्रमिक से अधिक से अधिक काम ले और उसे कम से कम मजदूरी दे ताकि उसके लाभ का वृत्त बड़े से बड़ा होता चला जाय। यही कारण है कि कुटीर उद्योगों की समाप्ति के बाद जैसे ही कारखानों में श्रमिकों का जमाव बढ़ा, वे अपनी आपकी समस्याओं के लिये संगठित होने का प्रयत्न करने लगे। इन दुःखद परिस्थितियों में सुधार करने के लिए मिल मालिकों के सामने एक साथ माँगें प्रस्तुत की जाने लगीं। काम बंद करके श्रमिक हड़तालें भी करने लगे। सन् १८७०-८० की हड़तालें, जुर्माना, मजदूरी में कटौती आदि मिल मालिकों की ठग विद्या के कारण हुई थीं। इस प्रकार की हड़तालों में श्रमिक कभी-कभी निराशा से उत्तेजित होकर मिल की दुकानों, दफ्तरों, खिड़कियों और मशीनों को तोड़ डालते थे। अधिक सजग श्रमिकों ने अनुभव किया कि पूँजीपतियों से इस लड़ाई में सफल होने के लिये सुदृढ़ संगठन आवश्यक है।

१ प्रारम्भिक संगठन

सन् १८७५ में ओडेसा में, दक्षिणी रूस के श्रमिकों की यूनियन स्थापित हुई। रूस के इतिहास में यह श्रमिकों का प्रथम संघ था जो ८-९ माह चलकर जारशाही सरकार के अत्याचारी अधिनियमों का शिकार होकर समाप्त हो गया। परन्तु श्रमिक संगठन की भावना को दबाया न जा सका। सन् १८७८ में सेंट-पीटर्सबर्ग में एक बढ़ई श्री खाल्तूरिन और फिटर श्री ओबनोस्की के नेतृत्व में "रूसी मजदूरों का उत्तरी संघ" स्थापित हुआ। संघ के कार्यक्रम में कहा गया कि उसके उद्देश्य वे ही हैं जो पश्चिम की सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टियों (Social Democratic Labour Parties) के हैं। अन्त में एक समाजवादी क्रांति करना वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था का, जो एक बहुत ही अन्यायी व्यवस्था है, अन्त करना भी इसके उद्देश्यों में सम्मिलित था। ओबनोस्की, जो संघ के संस्थापकों में से था, कुछ दिन बाहर रह चुका था, और वहाँ पर मार्क्स द्वारा संचालित पहली इण्टरनेशनल और मार्क्सवादी सामाजिक जनवादी पार्टियों से परिचित हो चुका था। इस बात की छाप रूसी मजदूरों के उत्तरी-संघ के कार्यक्रम पर भी पड़ी। संघ का उद्देश्य पहले जनता के लिये राजनीतिक स्वाधीनता और सभा-समिति, भाषण-प्रकाशन आदि के अधिकार प्राप्त करना था। उनकी तात्कालिक माँग में मजदूरों के घंटे कम करने की माँग भी थी। संघ के २०० सदस्य हो गये और लगभग उतने ही सहानुभूति रखने वाले थे। संघ हड़तालों में भाग लेकर श्रमिकों का नेतृत्व करने लगा। जारशाही सरकार ने इस संघ की भी समाप्ति कर दी।

२. दमन-चक्र

इतना होने पर भी श्रमिक-आन्दोलन एक जिले से दूसरे जिले में और दूसरे से तीसरे जिले में फैलने लगा। सन् १८८० के आस-पास बहुत सी हड़तालें हुईं। सन् १८८१ से ८६ तक के पाँच वर्ष की अवधि में ४८ हड़तालें हुईं जिनमें ८०,००० श्रमिकों ने भाग लिया। सन् १८८५ में ओरेखावो-जुयेवो में मोरोजोफ मिल में जो भारी हड़ताल हुई, क्रान्तिकारी आन्दोलन पर उसका विशेष प्रभाव पड़ा। इस मिल में लगभग ८,००० श्रमिक काम करते थे। सन् १८८२ से ८४ तक मजदूरी में पाँच बार कटौती हुई और कुछ मास बाद एक ही बार २५ प्रतिशत मजदूरी घटा दी गई। इसके साथ ही मिल-मालिक मजदूरों पर जुर्माना करता था। सन् १८८५ में श्रमिकों ने हड़ताल करदी। हड़ताल की खास माँग यह थी कि जबरदस्ती के जुर्माने बन्द किये जाँय। इस हड़ताल का सैनिक शक्ति से दमन किया गया। ६०० से ऊपर श्रमिक गिरफ्तार कर लिये गये। सन् १८८५ में इवानोवो-वोज्नेजेन्स्क की मिलों में भी ऐसी हड़तालें हुईं। अगले ही वर्ष श्रमिकों के इस बढ़ते हुए आन्दोलन से भय खाकर, जार-सरकार को यह कानून बना देना पड़ा कि जुर्माने की रकम मिल-मालिकों की जेबों में जाने के बदले मजदूरों के काम में ही व्यय की जाय। इन हड़तालों से श्रमिकों ने सीखा कि सगठित रूप से लड़ने पर काम बन सकता है।

३. मार्क्सवादी विचारधारा का श्रम संघों पर प्रभाव

सोवियत रूस में पहले मार्क्सवादी गुट का जन्म सन् १८८३ में हुआ। उसका उद्देश्य "मजदूरों का उद्धार" करना था और उसका सगठन प्लेखानोव ने जिनेवा में किया। 'मजदूरों का उद्धार' करने वाले इस गुट ने 'कम्यूनिस्ट मनिफेस्टो' "मजदूरी और पूँजी" 'समाजवाद काल्पनिक और वैज्ञानिक' आदि पुस्तकों का रूसी भाषा में अनुवाद किया और उन्हें श्रमिकों में वितरित किया। "मजदूरों का उद्धार" करने वाले इस गुट ने सन् १८८४ में ८७ में रूस की सामाजिक जनवादी पार्टी के कार्यक्रम के दो मसौदे बनाए। इस गुट का मजदूर आन्दोलन से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न था। सन् १८८४ से ६४ तक सामाजिक-जनवादी आन्दोलन छोटे-छोटे गुटों और दलों में बँटा हुआ था जिनका श्रमिक आन्दोलन से सम्बन्ध नहीं के बराबर था। एक अज्ञात शिशु की भाँति—जैसा कि लेनिन ने कहा था—सामाजिक-जनवादी आन्दोलन इतिहास के 'गर्भ में विकसित हो रहा था।" सन् १८६६ में संघ के नेतृत्व में सेंट-पीटर्स के ३०,००० मजदूर बुनकरों ने हड़ताल कर दी। उनकी मुख्य माँग थी मजदूरी के घण्टे कम किये जायें। इस हड़ताल से विवश हो २ जून १८६७ को जार सरकार ने कानून बना दिया कि मजदूरी के घण्टे ११ से अधिक न हों। इससे पहले किसी तरह का बन्धन नहीं था। दिसम्बर १८६५ में ही जार सरकार ने लेनिन को पकड़ लिया, परन्तु जेल में भी लेनिन ने अपना क्रान्तिकारी कार्य बन्द न किया। वहीं से अपने सुझावों और सलाह से यह संघ की सहायता करते रहे और कभी-कभी उनके लिए पर्चे और पुस्तिकाएँ भी लिखते रहे।

सेंट-पीटर्सबर्ग के संघ से रूस के दूसरे शहरों और प्रदेशों के श्रमिक गुटों को मजदूर-संघ बनाने की प्रेरणा मिलने लगी। सन् १८९५ के आस-पास कॉकेशस प्रदेश में मार्क्सवादी दलों का जन्म हुआ। सन् १८९४ में मास्को में एक मजदूर संघ स्थापित हुआ। कुछ वर्ष पश्चात् एक सामाजिक जनवादी यूनियन साइबेरिया में बनी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में इवानोवो-वोस्नेसेंस्क, यारोस्लाव और कोस्त्रोमा में मार्क्सवादी गुट बने और आगे चलकर उन्हीं से सामाजिक जनवादी पार्टी का उत्तरी संघ स्थापित हुआ। सन् १९०० तक रोस्तोफ, एकातेरीनोस्लाफ, किराफ, निकोलायेफ, तूला, समारा, कजान और स्रोवो-सुयेवों और दूसरे नगरों में सामाजिक-जनवादी गुट और यूनियनें बनाई गईं। इस प्रकार सेंट-पीटर्सबर्ग संघ का महत्व इस बात में था कि एक ऐसी क्रांतिकारी पार्टी बनाने के लिये, जिसके पीछे श्रमिक आन्दोलन की शक्ति भी हो, यही पहले-पहल नींव पडी। लेनिन और उनके साथियों के पकडे जाने पर संघ नेतृत्व में परिवर्तन हुआ। नये नेता मंच पर आये जो अपने को "नौजवान" और लेनिन और उनके साथियों को "पुराने पंथी" कहते थे। राजनीतिक क्षेत्र में इन लोगों ने एक गलत राह पकडी थी। इनका कहना था कि श्रमिक अपने मालिकों से केवल आर्थिक लडाई लडें, राजनीतिक लडाई और उसका नेतृत्व उदार-पंथी पूंजीवादियों पर छोड देना चाहिये। इन लोगों का नाम था "अर्थवादी"। रूस के मार्क्सवादी संघों में समझौतावादियों और अवसरवादियों का यह पहला गुट था।

४ जनवादी मजदूर पार्टी की पहली और दूसरी कांग्रेस

सन् १८९८ में मास्को, सेंट-पीटर्सबर्ग, किराफ, और एकातेरीनोस्लाफ के संघों ने जनवादी पार्टी बनाने का प्रयत्न किया। इसके लिये उन्होंने रूस की सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी की पहली कांग्रेस बुलाई जो मार्च १८९८ में मिंस्क में हुई। इस पहली कांग्रेस में केवल ९ व्यक्ति आये थे। लेनिन को साइबेरिया में काला पानी हो गया था इसलिये वह न आ सके थे। इस पहली कांग्रेस का महत्व इसी बात में था कि उसने विधिपूर्वक पार्टी के संगठन की घोषणा कर दी जिससे क्रांतिकारी प्रचार में बडी सहायता मिली। यद्यपि यह पहली कांग्रेस हो गई, फिर भी रूस में वास्तविक रूप में अभी तक कोई मार्क्सवादी सामाजिक-जनवादी पार्टी न बनी थी। लेनिन ने अपने पत्र 'इस्क्रा' (चिनगारी) द्वारा श्रमिक आन्दोलन की भ्रांतियों को दूर करने का प्रयत्न किया तब रूस की सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी के संगठन के लिये उचित पृष्ठभूमि तैयार की। सन् १९०० और १९०१ में 'इस्क्रा' के प्रकाशन से एक नये युग का आरम्भ होता है जिसमें बिखरे हुए गुटों और दलों से संगठित होकर वास्तव में रूसी मजदूरों की एक सामाजिक जनवादी पार्टी बन सकी।

१९ वीं सदी के अन्त में यूरोप को एक औद्योगिक संकट का सामना करना पड रहा था। इसकी छाया रूस पर भी पडी। सन् १९०० से १९०३ के इस संकट काल में छोटे बडे ३००० कारखाने बंद कर दिये गये और एक लाख से अधिक

श्रमिक बेकार हो गये। इस संकट और बेकारी से मजदूरों का आन्दोलन न तो रुका और न कमजोर पड़ा। इसके विपरीत अब उस पर क्रांति का रंग चढ़ता गया। अपनी आर्थिक माँगों के लिए लड़ाई न करके श्रमिक अब राजनीतिक हड़तालें करने लगे और जुलूस निकालने लगे। सन् १६०१ के मई दिवस पर सेंट पीटर्सबर्ग में लड़ाई का सामान बनाने वाले कारखाने में श्रमिकों ने हड़ताल कर दी। सेना से उनकी भेंट हुई। लगभग ८०० श्रमिक पकड़े गये। मार्च १६०२ में बातुम के श्रमिकों ने भारी हड़तालें कीं। उसी वर्ष रोस्तोफ में एक भारी हड़ताल हुई। लेनिन के सिद्धान्तों की विजय और 'इस्क्रा' द्वारा उनकी पार्टी संगठन की योजना के सफल प्रचार से विशेष परिस्थितियाँ तैयार हो गईं जिनसे कि एक पार्टी—वास्तविक—का निर्माण हो सका था। अब दूसरी पार्टी कांग्रेस बुलाई जा सकती थी। पार्टी की दूसरी कांग्रेस १७ जुलाई १६०३ को आरम्भ हुई। कांग्रेस विदेश में गुप्त रूप से बुलाई गई। पहले ब्रुसेल्स में बैठक हुई बाद में कांग्रेस लन्दन में हुई। कांग्रेस का मुख्य कर्तव्य "उन सिद्धान्तों और संगठन नीति के आधार पर जिनका इस्क्रा ने निर्देश और प्रचार किया था, एक वास्तविक पार्टी का निर्माण करना था।" कांग्रेस के कार्यक्रम के दो अंग थे—एक का सम्बन्ध अन्तिम ध्येयों से था, दूसरे का तात्कालिक उद्देश्यों से। श्रमिक वर्ग की पार्टी का चरम लक्ष्य सामाजिक क्रांति द्वारा पूँजीवादी शासन का अन्त करके सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य स्थापित करना था। दूसरी कांग्रेस ने जो प्रोग्राम स्वीकृत किया, वह मजदूर वर्ग की पार्टी का क्रांतिकारी प्रोग्राम था। सर्वहारा-क्रांति की विजय के बाद पार्टी की आठवीं कांग्रेस तक यही प्रोग्राम रहा। उसके बाद पार्टी ने नया कार्यक्रम स्वीकार किया। नियमावली पर पार्टी में फूट पड़ गई। तब से लेनिन के अनुयायी जिन्हें कांग्रेस के निर्वाचन में अपना बहुमत प्राप्त हुआ बोल्शेविक (बोल-शिन्स्त्वो=बहुसंख्यक) और लेनिन के विरोधी जिन्हें अल्पमत प्राप्त था मेन्शेविक (मेन-शिन्स्वो=अल्प संख्यक) कहलाते हैं।

दूसरी कांग्रेस की कार्यवाही से संक्षेप में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते थे :—

(१) कांग्रेस ने "अर्थवाद" और खुले अवसरवाद पर मार्क्सवाद की विजय निश्चित करदी।

(२) कांग्रेस ने पार्टी का कार्यक्रम और उसकी नियमावली की स्वीकृति दी। सामाजिक जनवादी पार्टी का निर्माण किया और इस प्रकार एक शृंखलाबद्ध पार्टी का ढाँचा तैयार किया।

(३) कांग्रेस ने संगठन के प्रश्न पर पारस्परिक मतभेद को स्पष्ट कर दिया। बोल्शेविक दल क्रांतिकारी सामाजिक जनवाद के संगठन सम्बन्धी सिद्धान्तों का समर्थक था और मेन्शेविक दल संगठन सम्बन्धी शिथिलता और अवसरवाद के दल-दल में फँस गया था।

(४) कांग्रेस ने यह स्पष्ट कर दिया कि पार्टी में हार खाए हुए "अर्थवादी"

नाम के पुराने अवसरवादियों की जगह अब "मेन्शेविक" नाम के अवसरवादी ले रहे हैं।

(५) संगठन सम्बन्धी प्रश्नों पर कांग्रेस अपना उत्तरदायित्व निभा नहीं सकी।

यही मुख्य कारण था जिससे कांग्रेस के बाद बोल्शेविक और मेन्शेविक दलों का द्वन्द्व शान्त होने के बदले और जोर पकड़ता गया।

५. बोल्शेविक दल का प्रभाव और प्रावदा का प्रकाशन

सन् १९०८ से १२ तक का समय क्रांतिकारी कार्य के लिये अत्यन्त कठिन समय था। सन् १९०५ की क्रांति की पराजय के बाद जब क्रांतिकारी आन्दोलन ह्रासोन्मुख था, जनता थकी हुई थी बोल्शेविकों ने अपनी कार्य नीति बदल डाली और जारशाही से खुली लड़ाई न लड़कर दूसरी राहों से लड़ने लगे। इस काल की मुख्य घटना प्राग में होने वाली सामाजिक जनवादियों की कान्फ्रेंस (जनवरी १९१२) थी। उस कान्फ्रेंस में मेन्शेविक पार्टी से निकाल दिये गये और एक पार्टी के भीतर बोल्शेविकों और मेन्शेविकों की ऊपरी नियमावली वाली एकता का सदा के लिये अन्त हो गया। एक राजनीतिक गुट से बोल्शेविक नियमपूर्वक एक स्वतन्त्र पार्टी बने। यह पार्टी रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी (बोल्शेविक) थी। प्रॉग कान्फ्रेंस ने एक नई तरह की पार्टी, लेनिनवादी पार्टी बोल्शेविक पार्टी का विधान किया। सन् १९१२-१४ में क्रांति के नये उठान के समय बोल्शेविक पार्टी मजदूर आन्दोलन के सिरे पर रही। क्रांतिकारी प्रचार के लिये एक सुन्दर पत्र प्रावदा का प्रकाशन किया गया। समाजवादी युद्ध में श्रमिक अन्तर्राष्ट्रीयता और सर्वहारा क्रांति के झंडे के नीचे अडिग रहे।

सन् १९१४ में साम्राज्यवादी युद्ध आरम्भ हुआ। यह युद्ध पूंजीवाद के साधारण संकट का द्योतक था, साथ ही उससे यह संकट और बढ़ गया और संसार का पूंजीवाद निबल पड़ गया। संसार में सबसे पहले रूस के मजदूरों ने और बोल्शेविक पार्टी ने पूंजीवाद की इस निर्बलता का लाभ उठाया। साम्राज्यवादी मोर्चे में उन्होंने दरार डाल दी, और श्रमिक तथा सैनिक प्रतिनिधियों के सोवियत स्थापित किये। निम्न पूंजीवादियों, और सैनिकों और मजदूरों में अधिकांश ने अस्थायी सरकार का भरोसा करके उसका समर्थन किया। बोल्शेविक पार्टी ने इस भ्रम को दूर किया और नवम्बर सन् १९१७ की क्रांति द्वारा सदा सर्वदा के लिये जारशाही के अन्तिम अवशेषों तथा क्रांति विरोधियों को समाप्त कर विश्व में प्रथम श्रमिक वर्ग की सफल क्रान्ति का सचालन कर प्रथम बार विश्व में सर्वहारा वर्ग की सफल सरकार का निर्माण किया।

मार्च १९१९ में पार्टी की आठवीं कांग्रेस हुई। इसमें पार्टी ने नवीन श्रमिक नीति कार्यक्रम पर विचार किया। इसके पश्चात् एक विवाद आरम्भ हुआ कि (ट्रेड यूनियनों) श्रमिक संघों का क्या कार्य है? इस विवाद का आरम्भ त्रात्स्की ने किया। नवम्बर १९२० के आरम्भ में पांचवीं अखिल रूसी ट्रेड यूनियन कान्फ्रेंस हुई इसमें

नाम्की का विरोधी रुख स्पष्ट हुआ। लेनिन के दृष्टिकोण के अनुसार ट्रेड यूनियनों को कार्य सचालन की पाठशाला, प्रबन्ध कार्य की पाठशाला, कम्युनिज्म की पाठशाला कहकर उनकी व्यवस्था की गई। ट्रेड यूनियनो के लिये यह आवश्यक था कि वे समझाने-बुझाने के उपायो को ही अपनी समस्त कार्यवाही का आधार बनायें। इस प्रणाली से ही आर्थिक विशृंखलता से लड़ने के लिए ट्रेड-यूनियन आम मजदूरों को उभार सकती थी और समाजवादी निर्माण के काम मे लगा सकती थी।

६. सोवियत क्रान्ति के बाद श्रम सघों का स्वरूप

क्रान्ति के बाद श्रम सघो की सख्या म ही वृद्धि नही हुई बल्कि उनका प्रभाव भी बढा। सन् १९१८ तक रूस मे लगभग दो हजार से अधिक श्रम सघों का निर्माण हो चुका था तथा इनकी सदस्यता लगभग २५ लाख थी। क्रान्ति के काल मे इन सघो ने बाल्शेविक दल को राजसत्ता पर अधिकार करने मे सक्रिय सहयोग दिया। क्रान्ति के बाद इन सघो का स्वरूप एव कार्य क्षेत्र रचनात्मक बन गया। श्रमिको को आवश्यक प्रशिक्षण देने तथा श्रमिक वर्ग और कृषक वर्ग म पारस्परिक सम्बन्धो को सुदृढ बनाने की दिशा मे श्रम सघो ने बोल्शेविक दल की सहायता करना आरम्भ कर दिया। सन् १९२२ मे लेनिन न मत व्यक्त किया कि "आर्थिक प्रबन्ध और नवीन अर्थतंत्र के निर्माण मे श्रमिको के योगदान को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। जब तक ऐसा नहीं होगा, श्रमसघो को ऐस केन्द्रो के रूप मे परिवर्तित नही किया जा सकेगा, जिनमे राज्य प्रबन्ध मे प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने के लिये आज की अपेक्षा दस गुना अधिक लोगो को प्रशिक्षण दिया जा सके, और तब तक हम साम्यवादी निर्माण के कामो को पूरा नही कर पायेंगे।" इस प्रकार साम्यवादी सिद्धान्तो के प्रचार एव प्रसार तथा नवीन आर्थिक एव राजनीतिक सगठन के लिये जनसाधारण को अभ्यस्त एव अनुशासित बनाने के लिये श्रमसघो की उपयोगिता स्वीकार की जाने लगी।

इसी काल मे श्रमसघो के सगठन के विषय मे दो परस्पर विरोधी विचार-धाराओ का उदय हुआ। एक विचारधारा के अनुसार श्रमसघो का पृथक अस्तित्व समाप्त करके उनका राजकीयकरण (Stale-ısation) कर दिये जाने पर जोर दिया गया। इसके विपरीत दूसरी विचारधारा राज्य विहीन श्रम सघवादी (Anarcho-Syndicalist) सगठन की समर्थक थी, जिसके अनुसार श्रमसघों का पृथक अस्तित्व बनाये रखने का सुझाव दिया गया। ट्राटस्की प्रथम विचारधारा के समर्थक थे, किन्तु लेनिन द्वितीय विचारधारा के पक्षपाती थे। लेनिन का विचार था कि श्रमसघ, अनुभव रहित सर्वहारा वर्ग और राजकीय दल अथवा साम्यवादी दल के मध्य एक प्रकार की संचार शृंखला (Transmission Belt) की तरह थे। अत द्वितीय विचारधारा को ही अधिक बल मिला तथा नवीन आर्थिक नीति के काम मे जबकि निजी क्षेत्र मे श्रमिक सघों का अस्तित्व पृथक था, राजकीय उद्योगो मे भी उनका पृथक अस्तित्व कायम रखा गया। यह माना गया कि समाजवाद मे श्रमसघों का वर्ग सघर्ष और आर्थिक सघर्ष के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता नही होती है, किन्तु फिर भी

इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि उन्हें श्रमिकों के हितों की सुरक्षा के प्रति उदासीन रहना होगा। प्रबन्धक एवं कर्मचारियों में मतभेद होने तथा नौकरशाही और लालफीताशाही बढ़ने पर श्रमसंघों को श्रमिकों के हितों की सुरक्षा के लिये प्रयत्नशील रहना होगा।

७ आर्थिक नियोजन का प्रारम्भ और श्रमसंघों का सैद्धान्तिक आधार

सन् १९२९ के बाद एक बार फिर श्रमसंघों के सैद्धान्तिक पक्ष के बारे में परिवर्तन का युग आरम्भ हुआ। योजनाओं की सफलता के लिये श्रमिकों के पूर्ण सहयोग की आवश्यकता थी। अतः श्रमसंघों को उत्पादन में वृद्धि एवं योजना में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति का साधन बनाया जाने लगा। सन् १९३० में हुई सोलहवीं पार्टी काँग्रेस द्वारा यह निर्धारित किया गया कि आर्थिक योजनाओं के निर्माण में श्रम संघों का सक्रिय सहयोग लिया जाना चाहिये। उत्पादन में वृद्धि के उद्देश्य से **समाजवादी-प्रतिस्पर्धा** (Socialist Emulation) की भावना को प्रोत्साहन दिये जाने का निश्चय किया गया ताकि श्रमसंघों के माध्यम से श्रमिकों में उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य निष्ठा जाग्रत करने के अभिप्राय से आन्दोलन किया जा सके। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया कि यदि उत्पादन बढ़ाने के अभिप्राय से जनता द्वारा की गयी पहल अथवा व्यक्त किये गये विचारों के मार्ग में नौकरशाही की ओर से बाधायें उपस्थित की जाती हैं अथवा त्रुटियाँ की जाती हैं, तो ऐसी प्रवृत्तियों को रोकना श्रमसंघों का सबसे महत्वपूर्ण कर्त्तव्य माना जायगा। इन दोषों के निवारण के लिये श्रमसंघों को संघर्ष करना होगा। अतः धीरे-धीरे इस काल में श्रमसंघों को उद्योगों में श्रम सम्बन्धों की देख रेख का काम किया जाने लगा। सन् १९३३ में कारखानों के निरीक्षण एवं स्वास्थ्य बीमा और वृद्धावस्था पेन्शन योजना को छोड़कर सामाजिक बीमा की अन्य योजनाओं का प्रशासन का कार्य श्रमसंघों का दायित्व बन गया। इससे पूर्व यह कार्य **श्रम का जन-मंत्रालय** (Peoples Commissariat of Labour) करता था जिसे विघटित कर दिया गया। यही नहीं वेतन सम्बन्धी नीति को निर्धारित करने में भी अप्रत्यक्ष रूप से श्रमसंघों का सहयोग लिया जाने लगा। अब वेतन नीति का निर्धारण प्रतिवर्ष उच्च स्तरीय सरकारी विभागों एवं श्रमसंघों की केन्द्रीय परिषद के बीच पारस्परिक बातचीत के आधार पर किया जाने लगा। इस प्रकार निर्धारित नीति के आधार पर विभिन्न उपक्रमों और संस्थाओं द्वारा श्रमसंघों से समझौते करके वेतन सीमाओं का निर्धारण किया जाने लगा। विभिन्न उद्योगों में संलग्न श्रमिक ऐसे समझौतों द्वारा निर्धारित वेतन सीमाओं से बाध्य थे।

उपर्युक्त परिवर्तनों के कारण श्रमसंघों के कार्यक्षेत्र में विस्तार अवश्य हुआ, किन्तु इस प्रकार धीरे धीरे वे सरकारी नीतियों के समर्थक बनने लगे। केन्द्र द्वारा निर्देशित आर्थिक नियोजन प्रणाली में इस प्रकार के समझौतों के द्वारा अनिवार्य वेतन सीमाओं को निर्धारित करना स्वाभाविक ही था। यदि श्रमिकों को प्रत्येक उद्योगों में श्रमसंघों की सामूहिक सौदेबाजी की छूट दी जाती, तो फिर योजनाओं में निर्धारित

उत्पादन कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए विभिन्न उद्योगों में पर्याप्त संख्या में उपयुक्त श्रमिकों की व्यवस्था करना कठिन होता। ऐसी दशा में नियोजित लक्ष्यों की उपलब्धि नहीं की जा सकती थी। इसीलिए कदाचित् श्री मौरिस डाब द्वारा यह आक्षेप लगाया गया कि सोवियत श्रमसंघों ने नवीन दायित्वों के जोश में अपने सामान्य कर्त्तव्यों के प्रति उदासीनता का दृष्टिकोण अपना लिया। इसमें आवास समस्या, कार्य दशाओं एवं प्रबन्धकों के व्यवहार में सुधार और कार्य घंटों में कमी के प्रति जोश समाप्त होता चला गया। कुछ लेखकों ने यह आलोचना भी की है कि इस अवधि में सोवियत श्रमसंघ सरकार के मुखापेक्षी हो गये। उनका प्रजातान्त्रिक संगठन कमजोर हो गया। सिद्धान्ततः उन्हें विचार प्रगट करने, हड़ताल करने और अपने पदाधिकारियों का निर्वाचन करने का अधिकार अवश्य प्राप्त था, किन्तु व्यवहार में वे राजकीय नीतियों के विरोध में कुछ भी नहीं कह सकते थे। अतः ये अधिकार केवल भ्रामक और प्रभावहीन थे।

मान्यता प्राप्ति के लिए प्रत्येक संघ के लिए श्रम-संघों की केन्द्रीय परिषद (All-Union Central Council of Trade Unions) से सम्बद्ध होना अनिवार्य हो गया। चूँकि इस परिषद पर साम्यवादी दल का पूर्ण नियन्त्रण है, अतः व्यवहार में श्रमसंघ संगठन साम्यवादी-दल द्वारा ही निर्देशित और नियन्त्रित किया जाता है। सदस्यता यद्यपि अनिवार्य नहीं है, फिर भी श्रमसंघों के सदस्यों को सामाजिक बीमे के लाभों की दृष्टि से कुछ विशेष रियायतें प्राप्त हैं। यही कारण है कि पिछले पच्चीस वर्षों में श्रमसंघों की सदस्यता में तीन गुना वृद्धि हुई है। इस समय इन संघों की सदस्यता आठ करोड़ से कुछ अधिक है।

सोवियत श्रमसंघों का वर्तमान संगठन

सोवियत श्रम-संघ जनवादी केन्द्रीयता के अनुसार कार्य करते हैं। श्रम-संगठन से सम्बद्ध सभी उच्च स्तरीय एवं प्राथमिक संगठनों के पदाधिकारी श्रम संघों के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं, तथा ये संगठन नियमित रूप से अपने कार्य की रिपोर्ट सामान्य सदस्यों को देते हैं। निर्णय यद्यपि बहुमत से किये जाते हैं किन्तु उच्चस्तरीय संगठनों के समस्त निर्णयों का निचले स्तर के संगठनों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। सोवियत श्रमसंघ संगठन का त्रिस्तरीय विभाजन इस प्रकार हैं (i) केन्द्रीय संगठन, (ii) शाखा संगठन, और (iii) प्राथमिक संगठन।

(i) **केन्द्रीय संगठन**—सर्वोच्च स्तर पर चार वर्ष में एक बार आयोजित सोवियत संघों के श्रम-संघों की कांग्रेस (Soviet Congrees of Trade Unions) है। चूँकि इसका अधिवेशन प्रतिवर्ष नहीं होता, नियमित कार्य के लिये इस कांग्रेस के अधिवेशन में श्रमसंघों के प्रतिनिधि श्रमसंघों की अखिल संघीय केन्द्रीय परिषद (All Union Central Council of Trade Unions) श्रमसंघों की कांग्रेस के अधिवेशन में केवल नीति सम्बन्धी सामान्य प्रश्नों एवं समस्याओं पर विचार विमर्श

होता है, जबकि इस अधिवेशन में निर्वाचित अखिल संघीय केन्द्रीय परिषद श्रमसंघों के समस्त केन्द्रीय एवं अन्य संगठनों में समन्वय स्थापित करने का कार्य करती है।

(ii) शाखा संगठन—विभिन्न उत्पादनों के अनुसार इस समय रूस में २४ शाखा संघ (Branch Unions) कार्यशील हैं। उदाहरण के लिए मशीन निर्माण श्रमिकों के श्रम शाखा संघ में विभिन्न मशीन निर्माण प्रतिष्ठानों के श्रमिक एवं कर्मचारी, मशीन निर्माण उद्योग से सम्बन्धित नियोजन डिजाइन, वैज्ञानिक अनुसंधान संगठनों के विशेषज्ञ कर्मचारी और प्रमुख पदाधिकारी संगठित हैं। शाखा श्रम संगठनों के कार्यकलापों में समन्वय स्थापित करने और श्रमसंघों के कार्य सम्बन्धी समस्त स्थानीय समस्याओं का निपटारा करने के लिए श्रम-संघ परिषदों (Trade Union Council) की स्थापना की गयी है। प्रत्येक संघ जनतन्त्र, प्रदेश एवं क्षेत्र में इस प्रकार की परिषदें कार्यशील हैं। इसके अतिरिक्त शाखा श्रमसंघों की जनतन्त्रीय, प्रदेशीय और क्षेत्रीय समितियाँ भी हैं।

(iii) प्राथमिक स्तर—अलग-अलग कारखानों, कार्यालयों, निर्माण स्थलों, कृषिफार्मों आदि के श्रमिक एवं कर्मचारी मिलकर स्थानीय अथवा प्राथमिक श्रमसंघों का गठन करते हैं। सोवियत रूस में इस समय लगभग ५ लाख स्थानीय संगठन हैं। ये संगठन श्रमसंघों की बुनियादी इकाई के रूप में कार्य करते हैं। प्रत्येक इकाई में एक से अधिक बुनियादी संगठन नहीं होता है और उसमें उस इकाई में कार्य करने वाले सभी स्तरों के प्रशिक्षित एवं सामान्य श्रमिक और कर्मचारी आदि सदस्य हो सकते हैं।

इस प्रकार का संगठनात्मक ढाँचा एक ओर स्थानीय संगठनों को केन्द्रीय नेतृत्व का लाभ प्रदान करता है, तो दूसरी ओर स्थानीय समस्याओं के निराकरण की दिशा में उन्हें पहल करने का अवसर प्रदान करता है। इससे इन दोनों प्रकार के कार्यों में समन्वय स्थापित रख सकना सम्भव हो जाता है। इस प्रकार का संगठनात्मक ढाँचा ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करता है जिनसे श्रम संघों के लिये राष्ट्रीय अर्थतन्त्र की विविध शाखाओं में कार्यशील श्रमिकों के कार्य एवं जीवन की विशिष्ट दशाओं को ध्यान में रखना सम्भव हो जाता है।

(क) श्रम संघों के वित्तीय साधन—सदस्यता का मासिक शुल्क तथा समय पर सम्पन्न किये जाने वाले खेल कूद अथवा आमोद प्रमोद के कार्यक्रमों से प्राप्त आय ही श्रम संघों के वित्तीय साधन होते हैं। प्रत्येक श्रमिक से उसके मासिक वेतन के एक प्रतिशत के तिहाई भाग से लेकर एक प्रतिशत तक सदस्यता शुल्क प्रतिमास लिया जाता है। इन आय के तीन चौथाई से भी अधिक भाग, सदस्यों की रहन सहन की दशाओं का सुधारने, उनके लिए विश्राम और मनोरंजन का प्रबन्ध करने, उनके लिए व्यायाम और खेल कूद का आयोजन करने, सांस्कृतिक कार्यों तथा उनके सामान्य शैक्षणिक ज्ञान में अथवा व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि करने आदि में व्यय किया जाता है। श्रमसंघों द्वारा आयोजित समस्त कार्यक्रमों पर किसी भी प्रकार का

कर (Tax) नहीं लगता है। श्रम संघ कोष का तीन चौथाई भाग स्थानीय संगठन व्यय करते हैं तथा शेष भाग शाखा एवं केन्द्रीय संगठनों को प्रदान किया जाता है। आय व्यय का वितरण सदस्यों की साधारण सभा में प्रतिवर्ष रखा जाता है। आवश्यकता पड़ने पर इन कोषों से सदस्यों को आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाती है। संघों का वित्तीय प्रबन्ध एवं नियंत्रण सदस्यों अथवा उनके द्वारा निर्वाचित समितियों के हाथों में ही होता है।

(ख) श्रम संघों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्य—समाजवादी व्यवस्था में राजकीय, आर्थिक और सामाजिक निर्माण के सभी क्षेत्रों में श्रम संघों की भूमिका उत्तरोत्तर बढ़ रही है, तथा राज्य और श्रम संघों की एकता सुदृढ हो रही है। इसका कारण यह है कि राज्य एवं श्रम संघ, दोनों का सामाजिक आधार एक ही है। श्रम संघों के समक्ष नये और जटिल कार्य उपस्थित हो रहे हैं। सोवियत श्रम संघों द्वारा अनेक प्रकार के कार्य सम्पन्न किए जाते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं :

(i) सुरक्षात्मक कार्य—श्रम संघ श्रम सुरक्षा सम्बन्धी नियमों के निर्माण में सक्रिय भाग लेते हैं। वे इन नियमों की स्वीकृति प्रदान करते हैं जिनका पालन करना सभी प्रतिष्ठानों के लिये अनिवार्य होता है। प्रतिष्ठानों द्वारा श्रम सम्बन्धी कानूनों के पालन के निरीक्षण के लिये संघों को विशेषज्ञों एवं तकनीशियनों की सेवायें प्राप्त होती हैं। सुरक्षा नियमों के उल्लंघन की दशा में श्रम संघ द्वारा उचित कार्यवाही की माँग की जाती है। विवाद एवं झगड़े श्रम विवाद सम्बन्धी पंचायती आयोगों के समक्ष पेश किये जाते हैं जिनमें विभागों एवं श्रम संघों के प्रतिनिधि बराबर की संख्या में प्रतिनिधित्व करते हैं।

(ii) उत्पादन कार्यों में सहयोग—श्रम संघों की समितियाँ उत्पादन योजनाओं, पूँजीगत निर्माण योजनाओं तथा गृह निर्माण और मरम्मत की योजनाओं को तैयार करने में भाग लेती हैं। राष्ट्रीय अर्थ तन्त्र की सभी शाखाओं के विकास, श्रम उत्पादकता बढ़ाने और तकनीकी प्रगति के लिये अपने सभी सदस्यों में रुचि उत्पन्न करने में श्रम संघों का पर्याप्त योग रहा है। श्रम संघों का एक महत्वपूर्ण कार्य समाजवादी प्रतिस्पर्धा (Socialistic Emulation) को उत्तरोत्तर बढ़ावा देना रहा है। इसके लिये ८५ प्रतिशत श्रमिक एवं कर्मचारी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से समाजवादी श्रम प्रतियोगिता आन्दोलन में भाग ले रहे हैं। विभिन्न प्रतिष्ठानों, विभागों, श्रम टोलियों आदि में उत्पादन वृद्धि के लिए स्पर्धा होती है और विजेताओं को प्रशस्ति पत्र एवं उपाधियों से अलंकृत किया जाता है। इसके अतिरिक्त श्रमिकों के व्यावसायिक कौशल को बढ़ाने तथा उत्पादन में विज्ञान और इन्जीनियरिंग की आधुनिकतम उपलब्धियों के उपयोग को जारी रखने में योग देना श्रम संघों का प्रमुख कर्तव्य है।

(iii) जीवन स्तर में सुधार—काम करने की दशाओं में सुधार के अतिरिक्त

श्रमिकों के रहन सहन की परिस्थितियों म सुधार पर भी श्रम सघो द्वारा जोर दिया जाता है। श्रमिकों के रहने के मकानों के निर्माण मे गुणात्मक सुधार के लिये प्रतियोगिताओं का आयोजन श्रम सघो द्वारा किया जाता है। सरकारी गृह निर्माण योजनाओ म सहयोग तथा ऐसे श्रमिकों को जो अपना मकान स्वय बनाने के इच्छुक हो, भूखड एव निर्माण सामग्री के रूप मे सहायता श्रम सघ प्रदान करते हैं। श्रम सघो की समितियाँ एव परिषदें व्यापार के विकास, सार्वजनिक सेवाओ और दैनिक आवश्यकताओ की वस्तुओ की नियमित उपलब्धि आदि पर नियत्रण रखती हैं। नगरो मे समस्त सुविधायें जुटाने, नये पार्क आदि बनाने मे भी सक्रिय भाग लेती है।

(iv) सास्कृतिक कार्य—क्लबो, सास्कृतिक भवनो, पुस्तकालयो, खेल कूद आयोजनों मे श्रम सघों की सक्रिय भूमिका रहती है। लगभग सत्तर लाख श्रमिकों की गतिविधियो मे तथा ढाई करोड श्रमिक खेल कूद आयोजनो मे नियमित रूप से भाग लेते हैं। इस समय सघो के अधीन बीस हजार क्लब, बत्तीस हजार फिल्म प्रदर्शन प्रतिष्ठान, इकत्तीस हजार पुस्तकालय तथा पर्याप्त सख्या मे पार्क, विश्राम शिविर, पर्यटक-स्थल, स्टेडियम और खेल के मैदान हैं। क्लबो के तत्वावधान मे सायकालीन एव रविवारीय कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं जो अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुये हैं।

(v) प्रकाशन—श्रम सघों के अपने छापेखाने एव प्रकाशन गृह हैं। इनके द्वारा ६ पत्रिकायें, १० केन्द्रीय और शाखाई समाचार पत्र प्रकाशित किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न विभागों और अ य सगठनो के साथ मिल कर भी श्रम सघ ६० पत्रिकायें और ५०० पुस्तकें प्रतिवर्ष प्रकाशित करते हैं।

(vi) स्वास्थ्य एव सामाजिक बीमे की देखभाल—सोवियत श्रम सघ डाक्टरी सेवाओ मे सुधार के लिये पर्याप्त प्रयत्न करते हैं। डाक्टरी सस्थानो पर निगरानी इनके द्वारा रखी जाती है तथा चिकित्सा, एव रोगनिरोध की सुविधायें पोलीक्लिनिको, विश्राम गृहो, पर्यटन स्थलो रोगनिरोधक केन्द्रो के द्वारा जुटाने मे मदद करते हैं। स्वास्थ्य बीमा और वृद्धावस्था पेंशन योजना को छोडकर सामाजिक सुरक्षा की अन्य योजनाओ की देखभाल भी सघो द्वारा ही की जाती है। सघ अपने सदस्यो को सेनीटोरियमो तथा स्वास्थ्य केन्द्रो तथा आने जाने आदि के लिये आर्थिक सहायता भी देते हैं।

(vii) आर्थिक प्रोत्साहनो में सहयोग—सन् १९६५ मे सोवियत सरकार द्वारा प्रतिष्ठानो के कार्य मे गुणात्मक सुधार लाने और उत्पादन वृद्धि करने के उद्देश्य से एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया। इसके अनुसार अच्छे उत्पादन परिणामो के प्रदर्शन पर आर्थिक प्रोत्साहन दिये जाते हैं। इसके लिये तीन कोषो की स्थापना प्रत्येक प्रतिष्ठान मे की गयी है। ये तीन कोष हैं—(क) भौतिक प्रोत्साहन कोष, (ख) सामाजिक, सांस्कृतिक एव गृह निर्माण कोष तथा (ग) उत्पादन विकास कोष। प्रथम कोष से सयत्र के कार्य के वार्षिक परिणाम के अनुसार श्रमिकों को नकद बोनस दिया जाता

है। दूसरे कोष मे से गृह निर्माण एव सामाजिक और सास्कृतिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए तैयार की गयी योजनाओ के लिये धन दिया जाता है। तीसरे कोष से उन श्रमिको को आर्थिक प्रोत्साहन दिया जाता है जिनकी रुचि न केवल अपना काम पूरा करने म, बल्कि सयन्त्र की पूरी योजना को पूरा करने म बनी रहती है। प्रतिष्ठान मे जितना अच्छा काम होता है तैयार माल की बिक्री उतनी ही अधिक होती है तथा लाभ भी उतना ही अधिक होता है, और इस प्रकार प्रतिष्ठान उतना ही अधिक धन प्रोत्साहन कोषो मे दे सकता है। इन कोषो का प्रबन्ध एव वितरण श्रम सघ एवं प्रबन्ध कर्ता सम्मिलित रूप मे करते हैं।

(viii) अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों का विकास—सोवियत श्रम सघ अन्य देशो के श्रम सघो के साथ अपने सम्बन्ध बढाने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। ये सघ ससार के समस्त श्रम सघ आन्दोलन की एकता का समर्थन करते हैं। सोवियत श्रम सघो द्वारा १०० से भी अधिक देशो के श्रम सघो से सम्बन्ध एव सहयोग स्थापित किया गया है। अन्य देशो के श्रम सघो के लगभग ४०० प्रतिनिधिमण्डल प्रतिवर्ष सोवियत सघ की मैत्रीपूर्ण यात्रा करते हैं। इसी प्रकार सोवियत श्रम सघ अपने सैकडो प्रतिनिधिमण्डल अन्य देशो को मत्रीपूर्ण यात्राओ पर भेजते हैं।

स्टाखनोव आन्दोलन
(Stakhanov Movement)

सन् १६२६ से ही रूस म समाजवादी प्रतिस्पर्धा (Socialist Emulation) के विचार का सूत्रपात हो चुका था जबकि लेनिनग्राड के एक कारखाने के कतिपय श्रमिको की टोलिया ने स्वत ही उत्पादन बढाने के उद्देश्य से परस्पर प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ की इससे उत्पादन बढा और इस सिद्धान्त को अन्य कारखानो मे भी लागू किया। इसी सिद्धान्त पर आधारित साम्यवादी कार्य आन्दोलन (Communist Work Movement) का विकास किया गया जिसने श्रमिको को स्वत ही यह प्रेरणा दी कि वे साम्यवादी समाज के निर्माण के लिये अधिकाधिक कार्य करें और उत्पादन बढाने के अभिप्राय से अपनी कार्यकुशलता मे वृद्धि करें। सन् १६३५ मे एक अन्य आन्दोलन का आरम्भ हुआ जिसे स्टाखनोव आन्दोलन कहा जाता है। इसके द्वारा अधिकतम कुशल उपायो के द्वारा उत्पादन वृद्धि के प्रयत्न किये जाते हैं। इस आन्दोलन ने श्रम की उत्पादकता को दुगुना, तिगुना और दस गुना तक बढाया है। इस आन्दोलन का श्रेय श्री स्टाखनोव[1] को है जिनके नाम पर ही इसका नामकरण हुआ है। श्री स्टाखनोव डोनबास की एक कोयला खान मे श्रमिक थे। प्रारम्भ म इनके काम करने की गति अत्यन्त धीमी थी और एक दिन म कठिनाई से ५ टन कोयला से अधिक नही खोद सकते थे। किन्तु इनके मन मे स्वत ही अपने दैनिक

[1] Mr Alexei Stakhanov was a coal miner in a coal mine in Donbas Coal Region

उत्पादन में वृद्धि करने की प्रेरणा उत्पन्न हुई। धीरे धीरे इनका उत्पादन बढ़ा। इन्हें विशेष प्रशिक्षण के लिये भेजा गया, और अन्तत: इनका उत्पादन १०२ टन प्रति दिन हो गया। इतना अधिक उत्पादन इससे पहले कभी किसी श्रमिक ने एक दिन में नहीं दिखलाया था। अन्य कामों में भी उत्पादन का रिकार्ड स्थापित करने की होड़ सी लग गयी और इस प्रकार यह आन्दोलन एक कारखाने से दूसरे कारखाने में और एक नगर से दूसरे नगर में फैलने लगा।

यह आन्दोलन दावाग्नि के समान अन्य आर्थिक क्षेत्रों में फैला। इसने यातायात, निर्माण, उद्योग, कृषि आदि आर्थिक जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया। स्टाखनोवाइट लोगों की संख्या लगातार बढ़ती गयी। यह आन्दोलन धीरे-धीरे विकसित नहीं हुआ बल्कि इसने यकायक समस्त सोवियत संघ को अपने प्रभाव में ले लिया। इसका कारण सोवियत जीवन प्रणाली में निहित है। यह आन्दोलन इच्छा शक्ति और सार्वजनिक सेवा की भावना की उपज है जिससे प्रेरित होकर रूस का श्रमिक वर्ग अधिकतम उत्साह से आर्थिक साधनों और शक्ति का उपयोग जन जीवन को समुन्नत बनाने में करता है। पूँजीवादी व्यवस्था में ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि इसमें श्रमिक यह सोचता है कि वह अपने लिये नहीं, बल्कि पूँजीपति के लिये कार्य कर रहा है। सोवियत समाज में श्रमिक अपने कार्य को जीविका के लिये करने के बजाय काम करने का आनन्द प्राप्त करने के लिये करते हैं, ताकि उनका वर्ग रहित समाज और देश अधिकाधिक सम्पन्न हो सके।

१९

सामाजिक सुरक्षा एव जन-कल्याण

[SOCIAL SECURITY AND PUBLIC WELFARE]

> "The constitution of the Union of Soviet Socialist Republics states that citizens of the U. S. S. R. have the right to maintenance in old age and also in case of sickness or disability."

प्रस्तावना

आज के औद्योगिक युग मे श्रमिक वर्ग का बढता हुआ प्रभाव किसी से छिपा नहीं है, ऐसी स्थिति मे उसके महत्व से इन्कार नही किया जा सकता। पूँजीवादी और जनतन्त्रात्मक देशो मे भी श्रमिक वर्ग धीरे धीरे उद्योगो का महत्वपूर्ण अग होता जारहा है और उसे उद्योगो के सचालन और प्रबन्ध मे अधिकाधिक स्थान प्राप्त होता जारहा है। इगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति ने सभी देशो मे श्रमिक-आन्दोलनों को जन्म दिया और उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षो और बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे इन आन्दोलनों का प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर भी दृष्टिगोचर होने लगा। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् राष्ट्रसघ के तत्वावधान मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सगठन (I. L. O.) की स्थापना इसका ज्वलन्त प्रमाण है। जब जब पूँजीवादी और जनतन्त्रात्मक देशो मे भी श्रमिको की आर्थिक कठिनाइयो को हल करने के लिए श्रम-आन्दोलनो की महत्ता बढती गई और कुछ देशो मे श्रमिक दल ने सरकारो का निर्माण भी किया तो यह स्वाभाविक ही था कि समाजवादी सोवियत सघ मे तो श्रम की दशा सुधारने और उसे समाज मे उचित स्थान देने का प्रयत्न किया गया। अवश्य ही इस दिशा मे सोवियत रूस अन्य सभी पूँजीवादी, जनतन्त्रवादी देशो से आगे है जहाँ का प्रत्येक श्रमिक अपने देश और समाज के निर्माण मे जुट सकता है क्योकि सोवियत सघ उसके लिये सब कुछ है।

क्रान्ति से पूर्व रूस के मजदूरो और किसानो की आय एव रहन-सहन की दशा अत्यन्त ही निम्न थी। गाँवो मे चिकित्सा सुविधा जैसी कोई चीज नहीं थी। भुखमरी,

गरीबी और अज्ञान मे जनसाधारण जकडा हुआ था और उनके कष्टो के निवारण की दिशा मे राज्य द्वारा कोई प्रयत्न नही किया जाता था। किन्तु समाजवादी व्यवस्था ने जनता को धीरे धीरे प्रत्येक प्रकार की सुविधायें प्रदान करने की व्यवस्था की। इसमे अनेक वर्षों का समय लग गया और यह नही समझना चाहिये कि आज सामाजिक सुरक्षा एवं जन-कल्याण का जो स्तर हम रूस मे देखते हैं वह क्रान्ति के तत्काल बाद ही वहाँ प्राप्त कर लिया गया था। किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसके लिये सगठनात्मक परिवर्तनो की एक लम्बी शृखला वहाँ घटित हो गयी थी जिसके लिये प्रारम्भ मे तो जनता से त्याग एव सयम की अपेक्षा की गयी थी। द्वितीय युद्ध के पूर्व तक सोवियत सघ की औसत जनता का जीवनस्तर पश्चिमी देशो की तुलना मे कम था और उन्हें सामाजिक सुरक्षा की कम सुविधायें प्राप्त थी। किन्तु उसके बाद से और विशेषत सातवी योजना के काल में वहाँ जनकल्याण की ओर विशेष ध्यान दिया गया और उसका परिणाम यह है कि आज वहाँ समाजवादी प्रयत्नो ने जनसाधारण को आने वाले कल के प्रति विश्वास की भावना से भर दिया है तथा बेरोजगारी, गरीबी और आकस्मिक सकटो के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की है। काम, अवकाश, नि शुल्क शिक्षा एव डाक्टरी चिकित्सा तथा पेंशन एव निर्वाह भत्ता पाने के अधिकार अब सोवियत समाज के जन जीवन मे मौलिक तथ्य बन चुके हैं। सोवियत जनता की वास्तविक आय मे नकदी वेतन और मजदूरी के अतिरिक्त नि शुल्क शिक्षा एव चिकित्सा स्वास्थ्य सेवा, पेंशन, भत्ते अनुदान एव राज्य के अनुदान पर मिलने वाले अन्य लाभो तथा रियायतो के कारण पहले की अपेक्षा कई गुना वृद्धि हो चुकी है। समाजवादी समाज के मनुष्य का और उसके सुख कल्याण का ध्यान रखना पार्टी और राज्य का प्रमुख तथ्य होता है वस्तुत इस लक्ष्य की पूर्ति मे ही स्वय समाजवाद की सार्थकता निहित है। मनुष्य का मगल कल्याण और सामाजिक एव व्यक्तिगत रूप मे उसका प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण विकास ऐसे समाज का उद्देश्य माना जाता है। जनता के सुख कल्याण के लिये समस्त राष्ट्र के जीवन एव कार्य परिस्थितियो मे निरन्तर सुधार किया जाता है। इस प्रकार बढी हुई राष्ट्रीय सम्पन्नता मे प्रत्येक नागरिक को यथा सम्भव समान लाभ प्राप्त करने का अधिकार एव अवसर प्रदान किया जाता है। समाजवादी समाज मे ऐसा करना सरल एव सम्भव होता है क्योकि उसमे कोई शोषक वर्ग नही होता है—कोई ऐसा वर्ग नही होता है जो मजदूरों के श्रम के प्रतिफल का अधिक भाग हडप लेने का इच्छुक हो। उसमे सभी भौतिक एव सास्कृतिक मूल्यो पर जन साधारण का अधिकार होता है। अत समाजवाद के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के रहन सहन का स्तर प्रत्यक्ष रूप मे समस्त समाज की सम्पदा पर, और सामाजिक उत्पादन के विकास पर निर्भर करता है।

सोवियत सामाजिक सुरक्षा एव जन कल्याण की व्यवस्था का अध्ययन सुविधा की दृष्टि से निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

(i) बेरोजगारी की समाप्ति, (ii) जन स्वास्थ्य एव चिकित्सा, (iii) सामाजिक बीमा, (iv) वृद्धावस्था एव अन्य पेंशन, तथा (v) जन-कल्याण।

बेरोजगारी की समाप्ति (End of Unemployment)

क्रान्ति से पूर्व भी यद्यपि सोवियत सघ म बेरोजगारी सदैव विद्यमान रही, किन्तु क्रान्ति के पश्चात् गृह युद्ध एव राजनैतिक अव्यवस्था के कारण यह और अधिक व्यापक हो गयी। सन् १९१७ १८ की आर्थिक गडबडी के कारण औद्योगिक सगठनों के बन्द हो जाने से नियमित श्रमिक भी बेरोजगारो की श्रेणी मे आ गये। गृह युद्ध और हस्तक्षेप के समय नागरिक जीवन म कठिनाइयाँ बढ गयी। दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रो मे क्रान्तिकारी रूपान्तर हो रहा था। अत शहरो के बेरोजगार गाँवों की ओर बढ रहे थे। नवीन आर्थिक नीति के काल मे औद्योगिक सिंडीकेटो के स्थापित होने, लागत लेखा पद्धतियाँ अपनाये जाने, अलाभकर उद्योगो के बन्द किये जाने, उनमे से कुछ को निजी लोगो को सौंप दिये जाने से बेरोजगारो की सख्या और अधिक बढ गयी। सन् १९२५ म बेरोजगारो की सख्या २५ लाख से भी कुछ अधिक थी। इनमे अधिकतर बेरोजगार अकुशल थे। सन् १९२२ से रोजगार दफ्तरो की प्रणाली प्रारम्भ की गयी। रोजगार केवल रोजगार दफ्तरो के माध्यम से ही मिल सकता था और इन दफ्तरों के द्वारा प्राथमिकता के क्रम का कठोरता से पालन किया जाता था। सन् १९२५-२६ के बाद औद्योगिक पुनर्निर्माण का कार्य जोरो पर शुरू किया गया। धीरे धीरे पुनर्निर्मित हो रही अर्थ व्यवस्था मे अधिकाधिक श्रमिको को काम मिलता रहा। २ फरवरी सन् १९२५ को श्रम मन्त्रालय के आदेश के द्वारा बेरोजगार लोगो को अनिवार्य पजीकरण और प्राथमिकता के आधार पर रोजगार देने की प्रणाली को समाप्त कर दिया गया। इस समय लगभग चार लाख बेरोजगार व्यक्ति सरकारी सहायता प्राप्त कर रहे थे जिन्हें सार्वजनिक निर्माण के श्रम पर लगाया जाता था और सवा या डेढ रूबल प्रतिदिन दिया जाता था। सन् १९२६ से १९३० तक के चार वर्षों में लगभग २५ लाख बेरोजगारो को राज्य की ओर से सहायता दी गयी। १९२७ मे श्रमसघ कांग्रेस द्वारा यह निर्णय किया गया कि 'कुशल श्रमिकों एव बौद्धिक श्रमिकों' को अपने क्षेत्र मे मिलने वाले औसत पारिश्रमिक का ३३ प्रतिशत, अर्ध-कुशल श्रमिकों को २५ प्रतिशत और अकुशल श्रमिको को २० प्रतिशत बेरोजगारी सहायता प्रदान की जानी चाहिये। यह सहायता कुशल मजदूरो को ९ माह तथा अकुशल श्रमिको को ७ माह तक दी जाती थी। विशेष आवश्यकता होने पर मासिक राशन अथवा सार्वजनिक भोजनालयो मे बेरोजगारो को खाना भी दिया जाता था। बेरोजगार लोगों को अस्थायी कार्य समूहो मे सगठित करने तथा व्यवसाय चुनने और प्रशिक्षण देकर काम पर लगाने का प्रयत्न किया गया।

औद्योगीकरण और विशाल निर्माण कार्यों के प्रारम्भ होने पर बेरोजगारो का नियोजित वितरण करने के अनेक अवसर मिले। बेरोजगारो के वितरण को राज्य के

नियन्त्रण में लाने के लिये और अधिक रोजगार दफ्तर खोले गये । जन श्रम मन्त्रालय के श्रम बाजार विभाग का विस्तार किया गया । रोजगार की खोज में गांवों से शहरों की ओर आने वाले व्यक्तियों के पजीकरण के लिये शाखा केन्द्रों का जाल सा बिछा दिया गया । रोजगार दफ्तरों और व्यापार उद्योग सगठनों के बीच समझौतों की प्रणाली प्रारम्भ होने से रोजगार दफ्तरों के कार्यों में एक नया कार्य जुड गया तथा श्रम की मांग एव पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने की दिशा में उनकी भूमिका बढ गयी ।

प्रथम पचवर्षीय योजना के काल में कम्युनिस्ट पार्टी ने बेरोजगारी को समाप्त करने के लिये सारी शक्ति लगा दी । सन् १९२८ तक जनशक्ति वितरण को *विश्वसनीय बनाना सम्भव हो चुका था,* क्योंकि उस समय तक औद्योगिक उत्पादन का ८२·४ प्रतिशत और खुदरा व्यापार का ७६·४ प्रतिशत समाजवादी क्षेत्र में आ चुका था । सन् १९२९ में बेरोजगारों की सख्या १५ लाख थी जो घटकर सन् १९३० में ११ लाख और सन् १९३१ में केवल २ लाख रह गयी । इसी वर्ष १२४८ नये औद्योगिक सस्थानों को स्थापित किया गया । काम के घटों में कुछ कमी की गयी । इससे अनेक लोगों को काम मिला । प्रथम योजना की अवधि में लगभग ८२ लाख किसानों को उद्योगों की विभिन्न शाखाओं में काम मिला । इस समय तक कृषि के पुनर्गठन के कारण उत्पन्न कठिनाइयों के कारण बडी सख्या में ग्रामीण परिवार शहरों में आने लगे थे । कृषि के सामूहीकरण के कारण ग्रामीण जनशक्ति का कुछ भाग अतिरिक्त घोषित कर दिया गया । इन परिवारों को उनकी सहमति से जनश्रम मन्त्रालय द्वारा अन्य ऐसे क्षेत्रों में बसाया गया जहाँ उनके लिये काम था । सामूहिक फार्मों से मौसमी *बहिर्गमन के सगठन और उनके तथा औद्योगिक सस्थानों के मध्य अनुबन्ध करके* गाँवों से शहरों की ओर जनशक्ति के मौसमी बहिर्गमन को नियोजित बनाया गया । धीरे-धीरे ग्रामीण क्षेत्रों से उद्योगों की ओर जनशक्ति के समस्त प्रयाण को नियोजित और *सगठित आधार दिया गया ।* सन् १९३१ के बाद बेरोजगार मजदूरों को प्रशिक्षित और पुनर्प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया भी देश में बेरोजगारी को खत्म करने में सहायक सिद्ध हुई । पुराने व्यवसाय अनुपयोगी सिद्ध हो रहे थे और उनके स्थान पर नये व्यवसाय पनप रहे थे जिनमें नवीन कुशल एव प्रशिक्षित श्रम की जरूरत थी । बेरोजगार युवकों एव महिलाओं के प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया । इसके लिये सामूहिक व्यावसायिक स्कूलों में विशेष पाठ्यक्रम खोले गये । ऐसे पाठ्यक्रमों का जाल सारे देश में फैला दिया गया जिनमें ५-६ साल की स्कूली शिक्षा के बाद औद्योगिक प्रशिक्षण दिया जाने लगा । सन् १९३१ तक शिक्षित बेरोजगारों को पूर्णत काम पर लगा दिया गया । सामूहीकरण के बाद कृषि फार्मों *पर डाक्टरों एव अध्यापकों की भारी सख्या* में मांग हुई । अत इनकी बेरोजगारी भी समाप्त हो गयी । इसके साथ ही महिलाओं को काम देने की दिशा में प्रयास किया गया । श्रमसघों को कहा गया कि वे महिलाओं के प्रशिक्षण और पुनर्प्रशिक्षण के लिये *केन्द्रों की स्थापना करें ।* पहली योजना की

अवधि मे ३५ लाख महिलाओ को रोजगार प्रदान किया गया। इनम से १४ लाख शहरो तथा २१ लाख गांवो की निवासी थी। पहली पचवर्षीय योजना के अन्त तक सोवियत उत्पादन म नियोजित जनशक्ति का १८ ६ प्रतिशत महिला श्रम के रूप मे था। अर्थ-व्यवस्था के लगभग सभी क्षेत्रो म रोजगार की दृष्टि से महिलाओ को समान महत्त्व दिया जाने लगा।

इस प्रकार सोवियत रूस न प्रथम योजना के पाँच वर्षों म ही जनशक्ति का इतना उत्तम नियोजन किया कि उसने बेरोजगारी पर पूर्ण विजय प्राप्त करली। उसके बाद से वहाँ बेरोजगारी का सकट समाज म नही रहा है क्योकि जनशक्ति का पूर्ण नियन्त्रण और नियोजन राज्य के कठोर शासन का अभिन्न अग बन गया है। यही कारण है कि सोवियत रूस की सामाजिक बीमा योजनाओ मे बेरोजगारी-लाभ का अब वहाँ उल्लेख तक नहीं मिलता है, क्योकि अब वहाँ इसकी आवश्यकता ही नही रह गयी है। अन्य सभी पश्चिमी क्षेत्रो मे सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत बेरोजगारी का बीमा प्रमुख रूप से ऐसी योजनाओ का मुख्य अग माना जाता है। भारत मे यद्यपि कर्मचारी राज्य बीमा योजना आशिक रूप स लागू है किन्तु उसके अन्तर्गत अभी तक बेरोजगारी के विरुद्ध सुरक्षा की कोई व्यवस्था नही की जा सकी है। इसका कारण यह नही है कि हमारे देश म सोवियत रूस की भाँति इसकी आवश्यकता नही है, बल्कि यह है कि हमारे देश म बेरोजगारी इतनी अधिक है कि उसके लिये आवश्यक वित्तीय साधनो की हमारे यहाँ कमी है। रूस अपने यहाँ बेरोजगारी को समाप्त करने के लिये इतने अल्पकाल म ही किस प्रकार पर्याप्त साधना की व्यवस्था करन मे तथा अनुकूल दशायें उत्पन्न करन म सफल हो सका और भारत आर्थिक नियोजन के इतने लम्बे काल मे भी इस अभिशाप से मुक्त नहीं हो सका है—इसका विवेचन हमारे लिये अत्यन्त रुचिकर विषय हो सकता है।

(ii) जन स्वास्थ्य एव चिकित्सा (Public Health and Medical Care)

केन्द्रीय स्वास्थ्य मत्रालय के अधीन समस्त रूस म स्वास्थ्य एव चिकित्सा सम्बन्धी सेवायें समस्त रूसी नागरिको के लिए उपलब्ध हैं। राज्य स्तर, जिला स्तर एव प्रदेश और स्थानीय स्तरो पर ऐसे विभागो का जाल सा बिछा हुआ है। चिकित्सा सेवाओ का लाभ श्रमिक, उसके परिवार तथा उसके आश्रितो को भी मिलता है और इसमे दवा की व्यवस्था, परामर्श, स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी प्रकार की सहायता नि शुल्क दी जाती है। ये सुविधाय शहर, जिला तथा सभी क्षेत्रो मे प्राप्त हैं। विशिष्ट रोगो एव व्याधियो के लिये विशिष्ट अस्पतालो मे विशेष चिकित्सा का प्रबन्ध है जहाँ उस रोग के सर्वोच्च विशेषज्ञो की सेवाओ की व्यवस्था रखी जाती है। बडे औद्योगिक प्रतिष्ठानो एव सरकारी और सामूहिक फार्मों के अपने अलग चिकित्सालय हैं। हैजा, प्लेग, चेचक, मियादी बुखार जैसी भयकर सक्रामक बीमारियो को अब रूस मे पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया है। मलेरिया का अब वहाँ कोई निशान नही रह गया है

और क्षयरोग, पोलियो एवं डिप्थीरिया आदि रोग भी अब रूस में अपवाद स्वरूप ही पाये जाते हैं।

यह सब देश में स्वास्थ्य दशाओं में किये गये सुधार का परिणाम है। रूस में इस समय प्रति दस हजार व्यक्तियों पर ५ डाक्टर और १०० चिकित्सा शैय्यायें उपलब्ध हैं। सोवियत स्वास्थ्य सेवाओं में इस समय ४० लाख से भी अधिक व्यक्ति लगे हुये हैं। डाक्टरों की संख्या की दृष्टि से रूस का स्थान विश्व में सर्वप्रथम है। साथ ही वहाँ मृत्युदर भी विश्व में सबसे कम है। पिछले पचास वर्षों में रूस ने औसत जीवन आयु (Life expectancy) में दुगुनी वृद्धि करली है। अब एक औसत रूसी नागरिक ७० वर्ष की आयु तक जीने की आशा रखता है। देश में इस समय छह लाख से भी अधिक डाक्टर हैं तथा स्वास्थ्य सेवाओं में सलग्न व्यक्तियों की कुल संख्या चालीस लाख है।

रूस में श्रमिक संघों के द्वारा भी स्वास्थ्य केन्द्र (Health Resorts) सचालित किये जाते हैं। लगभग १२०० बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों के द्वारा अपने निरोध सेनीटोरियम चलाये जा रहे हैं। इन केन्द्रों में श्रमिकों को रियायती दरों पर रहने और स्वास्थ्य लाभ करने की सुविधा प्राप्त है। श्रमसंघों का रूस में एक कर्तव्य यह भी है कि वे डाक्टरी सेवा में सुधार के लिये प्रयत्न करें और चिकित्सा संस्थानों के काम पर नियंत्रण रखें। चिकित्सा एवं रोग निरोध की सुविधायें इनके द्वारा जुटाई जाती हैं। पोली क्लिनिकों और रोग निरोध केन्द्रों के प्रबन्ध में प्रत्यक्ष भाग भी इन संघों द्वारा किया जाता है।

(iii) सामाजिक बीमा (Social Insurance)

आज सोवियत रूस में सामाजिक बीमे की अत्यन्त सफल और व्यापक व्यवस्था विद्यमान है। इसका विकास क्रान्ति के बाद अनेक वर्षों में हुआ। क्रान्ति के पहले सन् १९१२ के बीमा अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिकों के थोड़े से वर्ग को बीमार हो जाने अथवा अपंगु हो जाने की दशा में कुछ लाभ दिया जाता था। क्रान्ति के बाद, युद्धकालीन समाजवाद की समाप्ति के पश्चात सन् १९२२ में सामाजिक बीमे की एक व्यापक योजना बनाई गयी। इस समय स्वीकार की गयी श्रम नियमावली (Labour Code) के अन्तर्गत सेवा में सलग्न समस्त व्यक्तियों के लिये सामाजिक बीमा सुरक्षा प्रदान की गयी जिसके अन्तर्गत वृद्धावस्था अपंगुता, शारीरिक आघात, बीमारी, असामयिक मृत्यु, महिलाओं की प्रसूतावस्था आदि के लिये आवश्यक लाभों एवं सुविधाओं की व्यवस्था की गयी। धीरे-धीरे श्रम संघों का सक्रिय सहयोग सामाजिक बीमा की योजनाओं के सचालन एवं प्रबन्ध में लिया जाने लगा। सन् १९३३ में यह दायित्व बहुत कुछ श्रमसंघों को ही सौंप दिया गया। सोवियत सामाजिक बीमाव्यवस्था के वर्तमान स्वरूप का अनुमान निम्नलिखित वर्णन से लगाया जा सकता है।

(क) बीमा योजना का क्षेत्र (Extent of the Insurance Scheme)

प्रारम्भिक वर्षों में केवल औद्योगिक श्रमिकों के लिये ही इसकी व्यवस्था थी और

इनको भी प्राप्त होने वाले लाभों की मात्रा बहुत कम थी। बाद मे ग्रामीण क्षेत्रो के विकास और कृषि के सामूहीकरण के उपरान्त राजकीय कृषि फार्मों तथा सामूहिक कृषि फार्मों मे कार्य करने वाले समस्त कर्मचारियों को भी सामाजिक बीमा योजनाओं मे सम्मिलित कर लिया गया। अब सोवियत रूस के सब नागरिकों को इसका लाभ प्राप्त है। अत वहाँ इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है। इसके अन्तर्गत सम्मिलित व्यक्तियों का चार वर्गों म विभाजित किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं

(I) राज्य की सेवाओं म नियोजित समस्त व्यक्ति जैसे राजकीय प्रतिष्ठानों, राजकीय सेवाओं एव सहकारी सस्थाओं के कर्मचारी,

(II) व्यक्तिगत सस्थाओं म काम करने वाले समस्त व्यक्ति,

(III) ऐसे सभी व्यक्ति जो पहले सेवायुक्त कर्मचारी की भाँति काम कर चुके हो और वर्तमान म प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों म प्रशिक्षार्थी के रूप मे कार्यरत हों, तथा

(IV) व्यक्तिगत कृषक, सामूहिक कृषि फार्मों मे काम करने वाले व्यक्ति तथा मौसमी व्यवसायों मे कार्य करने वाले लोग।

(ख) प्राप्त होने वाले लाभ (Benefits)—बीमा योजना के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले लाभो को दो भागों म विभाजित किया जा सकता है—प्रथम, नि शुल्क सेवाओं के उपयोग के रूप मे प्राप्त होने वाले लाभ, तथा द्वितीय नकद सहायता के रूप मे दिया जाने वाला लाभ। प्रथम लाभ के अन्तर्गत श्रमिकों एव उनके परिवारो के सदस्यो को प्राप्त होने वाली ऐसी सेवाओं के उपयोग का अधिकार है जिनके लिये कोई शुल्क नहीं लिया जाता है, अथवा यदि लिया भी जाता है तो अत्यन्त नाम मात्र का रियायती शुल्क लिया जाता है। ऐसे लाभों मे स्वास्थ्य-केन्द्रों, विश्राम केन्द्रों, मनोरजन केन्द्रों आदि म रहने और उनमे उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग करने की सुविधा सम्मिलित है। शिशु शिक्षण केन्द्रों तथा उच्च शिक्षा के केन्द्रों मे श्रमिकों के बच्चों तथा परिवार के सदस्यों को दी जाने वाली रियायतें और सुविधायें भी ऐसे ही लाभों का अग हैं।

(I) नकद-सहायता लाभ (Cash benefit)—बीमारी, काम करते समय अथवा अन्य किसी प्रकार से हुई अस्थायी अयोग्यता (Temporary Disability) की दशा मे नकद लाभ दिया जाता है। इस लाभ की मात्रा सेवा की अवधि के अनुसार न्यूनाधिक हो सकती है। नौकरी की अवधि के अनुसार श्रमिकों को उनकी मजदूरी के आधे भाग से लेकर उसके ६० प्रतिशत तक नकद लाभ के रूप मे प्राप्त हो जाता है। व्यवसाय के कारण पीडित रोगियों को अथवा काम करते समय क्षति या आघात पहुँचने पर या युद्ध मे घायल हुये व्यक्तियों को अधिक नकद-लाभ दिया जाता है जोकि वेतन के ६० प्रतिशत से शत प्रतिशत तक हो सकता है।

(II) महिलाओं को प्रसूति के आठ सप्ताह पहले और आठ सप्ताह प्रसूति के उपरान्त प्रसूति लाभ दिया जाता है। इस अवधि मे उन्हें कार्य से अवकाश प्राप्त

होता है तथा वेतन का शत प्रतिशत लाभ मिलता रहता है। दूसरे शब्दों मे प्रसूति लाभ के रूप में कुल सोलह सप्ताह तक महिलाओ को पूरे वेतन पर अवकाश दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जन्म के समय कुछ अतिरिक्त नक्द अनुदान भी दिया जाता है।

(iii) कार्य करते समय लगी चोट अथवा व्यावसायिक बीमारी के कारण उत्पन्न स्थायी अयोग्यता (Permanent Disability) की दशा मे पेन्शन देने की व्यवस्था है। यह पेन्शन अयोग्यता अथवा अशक्तता की सीमा के अनुसार कम अथवा अधिक होती है।

(iv) नक्द-अनुदान (Cash grant)—जीवन मे घटित होने वाले ऐसे सयोगो के लिये, जब व्यक्ति अधिक खर्च करने के लिये बाध्य होता है, राज्य की ओर से नक्द अनुदान दिया जाता है। यह अनुदान विवाह के समय शादी के विशेष व्ययो को पूरा करने, प्रसूति के समय बच्चे के जन्म के समय होने वाले खर्चों के लिये, तथा मृत्यु के समय अन्तिम सस्कार के खर्चों को पूरा करने के लिये प्रत्येक नागरिक को दिया जाता है।

जनवरी १९६८ में लाभों के विषय में किया गया सशोधन

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति तथा सोवियत सघ की मन्त्रि परिषद ने सन् १९६८ से लाभो मे अनेक सशोधन किये। कारखानो और दफ्तरो मे काम करने वालो के लिये, जिनका सेवा काल आठ साल का हो चुका हो, अस्थाई अशक्तता भत्ता पूर्ण वेतन के बराबर कर दिया जायगा। पाँच से आठ साल के सेवा काल वालों को वेतन का अस्सी प्रतिशत भत्ता मिलेगा।

(ग) **सामाजिक बीमा योजना का प्रशासन**—सोवियत सामाजिक बीमा व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसके प्रशासन का दायित्व श्रमसघो के ऊपर है। प्रत्येक क्षेत्र एव प्रतिष्ठान मे सामाजिक बीमा आयोग अथवा समिति का गठन किया जाता है और उसमे श्रमसघो, और जनमन्त्रालय के प्रतिनिधि होते हैं जो ऐसे मामलो पर विद्यमान नियमो के अनुसार विचार करके निर्णय देते हैं। अन्य देशो की भाँति सामाजिक बीमा के व्यय को पूरा करने के लिये श्रमिको एव अन्य सभी कर्मचारियो से सोवियतसघ मे कोई शुल्क नहीं लिया जाता है। ये सब सुविधायें नि शुल्क प्रदान की जाती है और यदि इनको जोड कर उनके वेतनो का हिसाब लगाया जाय तो प्रत्येक कर्मचारी का वास्तविक वेतन उसके नक्द वेतन की तुलना मे ३३ प्रतिशत और बढ जाता है। योजना की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कारखानो, औद्योगिक एव व्यापारिक प्रतिष्ठानो, राजकीय कृषि फार्मों एव सामूहिक कृषि फार्मों तथा अन्य सभी सस्थानो को अपने काम मे से शुल्क या चन्दा जमा करना होता है। प्रत्येक सस्थान अपने कर्मचारियो की सख्या के अनुपात मे बीमा योजना निधि मे चन्दा जमा करता है।

(iv) वृद्धावस्था एव अन्य पेंशनें

सोवियत नागरिकों को आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार की पेंशनो की सुविधा प्रदान की जाती है तथा पेन्शन योजनाओं का क्षेत्र सीमित न होकर प्रायः सभी जरूरतमन्द नागरिकों को सम्मिलित करता है। योजना का स्वरूप इस प्रकार का है कि जब भी सोवियत नागरिक किसी भी कारण से यदि स्वय अपना निर्वाह करने में असमर्थ होता है, तो विभिन्न योजनाओं म से किसी न किसी योजना के अनुसार पेंशन लेकर राज्य से सहायता प्राप्त कर सकता है।

(क) अपगता पेंशन—सोवियत सामाजिक बीमा व्यवस्था मे अपगता पेंशन इस योजना का अत्यन्त मानवीय पहलू है जिसमें अन्तर्गत अपग व्यक्तियो को कम से कम आर्थिक दृष्टि से हीनता की भावना से मुक्त रखने का प्रयास सोवियत शासको द्वारा किया जाता है। अस्थायी अपगता की दशा म सेवा काल के अनुसार वेतन के प्रतिशत के रूप मे भत्ता दिया जाता है किन्तु पेंशन की आवश्यकता उस समय होती है जब कोई व्यक्ति स्थायी रूप से अपग होकर काम करने की योग्यता खो देता है। कारखाने मे काम करते समय दुर्घटनावश आघात लगने अथवा किसी व्यावसायिक रोग का शिकार होने पर स्थायी रूप से अपग व्यक्ति को अधिक दर से पेंशन दी जाती है। स्थायी अपगता को तीन वर्गों मे बाँटा जाता है—**प्रथम श्रेणी की अपगता, द्वितीय श्रेणी की** अपगता तथा तृतीय श्रेणी की अपगता। अपगता किस श्रेणी की है, इसका निर्धारण ऐसे विशेष आयोगों द्वारा किया जाता है जिनमे श्रम सघ, राज्य के श्रम मन्त्रालय तथा चिकित्सा विशेषज्ञो का प्रतिनिधित्व होता है।

प्रथम मई सन् १९६८ से सोवियत सघ की रक्षा करते हुये अथवा कोई अन्य फौजी कार्य करते हुये चोट, सदमे या घाव के कारण अथवा मार्चे पर किसी रोग के शिकार हो जाने के कारण अपग बन जाने वाले सैनिक जनरलो, एडमिरलो एव अन्य सैनिक अफसरों को अपगता की न्यूनतम मासिक पेंशन ४० रूबल कर दी गयी है। प्रथम एव द्वितीय श्रेणी की अपगता की दशा म यह राशि अधिक होगी। गैर कमीशन याफ्ता सैनिक को अपगता की न्यूनतम मासिक पेन्शन ३० रूबल निर्धारित की गयी है तथा अपगता की सीमा अधिक होने पर इस राशि मे वृद्धि की जाती है। ऐसे अपग लोगो को अन्यत्र काम करने की छूट है तथा काम देने के प्रश्न पर उन्हें प्राथमिकता दी जाती है जिससे कि पेन्शन के अतिरिक्त और अधिक वेतन कमा सकते है। मकान, गैस, बिजली, पानी आदि की सुविधाये भी इन्हे रियायती दरो पर दी जाती हैं।

कारखानो के मजदूर एव सामूहिक कृषि फार्मों के कर्मचारी औद्योगिक दुर्घटना के अथवा व्यावसायिक रोग के शिकार होने पर अपगता पेन्शन के अधिकारी हो जाते हैं। इस पेन्शन की राशि अपगता की सीमा के अनुसार १६ रूबल से लगाकर ३० रूबल तक है।

अपग बालकों को सोलह वर्ष की आयु होने पर अपगता पेन्शन मिलना आरम्भ हो जाता है। इनकी शिक्षा नि शुल्क होती है तथा बाद मे यदि वे कोई काम कर सकते हैं तो उन्हे उस काम पर लगा दिया जाता है।

(ख) वृद्धावस्था की पेन्शन—यह पेन्शन लम्बे सेवा काल को पूरा करने के उपरान्त प्रत्येक सोवियत कर्मचारी को वृद्धावस्था मे निर्वाह के लिये दी जाती है। यह सेवा काल २० वर्ष से लेकर २५ वर्ष तक का है। कुछ विशेष उद्योगो मे इससे भी कम सेवा काल के बाद पेन्शन की व्यवस्था है। अवकाश प्राप्ति की आयु पुरुषो के लिये ६० साल और महिलाओ के लिये ५५ साल निर्धारित की गयी है। सामूहिक कृषि फार्मों मे यह आयु क्रमश ६५ साल और ६० साल थी, किन्तु मई १९६८ से अब उद्योगो एव कृषि फार्मों मे अवकाश प्राप्ति की आयु समान कर दी गयी है। कतिपय कठोर श्रम साध्य व्यवसायो मे इससे भी कम उम्र मे पेन्शन दी जाती है। उदाहरण के लिये वस्त्र उद्योगो के कुछ व्यवसायो मे, जिनमे कठोर श्रम की आवश्यकता पडती है, काम करने वाली महिलाओ को ५५ के बजाय ५० वर्ष पर ही बुढापे की पेन्शन दे दी जाती है। इसी प्रकार ऐसी महिलाओ को जिन्हे अधिक बच्चो का पालन पोषण करना होता है, शीघ्र पेन्शन दी जाने की व्यवस्था है।

वृद्धावस्था पेन्शन की राशि मासिक वेतन की लगभग आधी होती है किन्तु कम वेतन पाने वालो को इससे अधिक दर से पेन्शन दी जाती है। यदि अवकाश प्राप्त व्यक्ति को एक अथवा अधिक लोगो का भरण पोषण करना पडता है तो ऐसी दशा मे उसे पेन्शन की मात्रा का दस से पन्द्रह प्रतिशत तक अतिरिक्त पारिवारिक भत्ता भी प्राप्त हो सकता है।

(v) जन कल्याण (Public Welfare)—जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि मनुष्य का मगल-कल्याण और हर दृष्टि से उसका सामाजिक एव आर्थिक सुधार समाजवाद का प्रमुख लक्ष्य है। अत उनके सुख-कल्याण से सम्बन्धित सभी पहलुओ पर सोवियत सरकार का ध्यान रहता है। उन व्यवस्थाओ के अतिरिक्त, जिनका वर्णन ऊपर किया गया है, सोवियत समाज मे पिछले दशक मे ऐसे अनेक कदम उठाये गये हैं जिनसे जनसाधारण का जीवन स्तर पहले से अधिक सुख पूर्ण हुआ है। सोवियत समाज म अब यह समस्या नही है कि लोग बेरोजगार हैं, अथवा धन के अभाव मे उनके बच्चो की शिक्षा दीक्षा की कोई व्यवस्था नही है, अथवा वे बीमारी, बुढापा दुर्घटना या जीवन के अन्य सकटो की आशकाओ से पीड़ित हैं बल्कि अब वहाँ समस्या यह है कि प्रत्येक परिवार के सदस्यो को समाज और अधिक सुखी एव सम्पन्न किस प्रकार बना सकता है। दैनिक जीवन की अनेक ऐसी बातें हैं जिन पर अब सामाजिक स्तर पर ध्यान दिया जा रहा है—जैसे वृद्धो, शारीरिक रूप से अशक्त व्यक्तियो और बच्चो की देखभाल, पारस्परिक नैतिक सहायता, रीतियों एव परम्पराओ की उन्नति तथा आधुनिक युग की आवश्यकताओ को देखते हुये बच्चो का लालन पालन आदि।

शैक्षणिक एव स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सम्बन्धी आधुनिक सुविधाओ के उपयोग के अतिरिक्त लोगो के अवकाश के सर्वोत्तम उपयोग के लिए उचित दशाओ एव अवसरो का निर्माण भी आवश्यक हो जाता है। अध्ययन, आत्मशिक्षा, समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन के माध्यम से ज्ञान म वृद्धि करना, सिनेमा थियेटर प्रदर्शनियो एव अन्य सास्कृतिक कार्यक्रमो म भाग लेना, खेलकूद एव पर्यटन आदि के कार्यक्रमो मे सम्मिलित होना आदि सामाजिक एव पारिवारिक जीवन के महत्वपूर्ण अग हैं। ये सब आर्थिक गतिविधियो मे यद्यपि नही आते किन्तु इनकी व्यवस्था के लिये अर्थ की आवश्यकता होती है जिसे राजकीय एव सामाजिक स्तर पर विभिन्न सूत्रो से जुटाया जाता है। सोवियत रूस में इस प्रकार की सुविधायें राज्य की ओर से निरन्तर बढाई जा रही हैं।

राज्य द्वारा प्रदत्त जनकल्याण सुविधाओ का सार्वजनिक कोषो के आधार पर निरन्तर प्रसार ने सोवियत नागरिको की वास्तविक आय मे पर्याप्त वृद्धि करदी है। सामाजिक बीमा अदायगियो, पेन्शनो, विविध भत्ता विद्यार्थियो को दिये जाने वाले वजीफों, नि शुल्क शिक्षा एव नि शुल्क चिकित्सा, बाल शिक्षण केन्द्रो, स्वास्थ्य केन्द्रो, विश्रामगृहो पर सार्वजनिक कोषो से प्राप्त होने वाली सुविधाओ तथा अदायगियो को शामिल करके कार्यालयो मे काम करने वाले कर्मचारियो की औसत आय सन् १९६६ मे १३४ रूबल तथा औद्योगिक श्रमिकों की औसत आय १४४ रूबल प्रतिमाह थी। चूंकि परिवार के अनेक व्यक्ति काम पर लगे हो सकते हैं, अत यदि परिवार की औसत आय पर विचार किया जाय, तो वह २५० रूबल प्रतिमास होती है। इसके अतिरिक्त सोवियत सरकार का अन्य जनकल्याण के कामो पर लगभग १५० रूबल प्रति परिवार प्रतिवर्ष बैठता है।

सोवियत सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था की अन्य देशों की सामाजिक सुरक्षा प्रणाली से तुलना

सोवियत सामाजिक सुरक्षा प्रणाली की अपनी कुछ ऐसी विशिष्टतायें हैं जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि वह अन्य देशो की सामाजिक व्यवस्था से कही आगे है। इसके अन्तर्गत प्राप्त होने वाले सभी लाभो पर यदि विचार किया जाय, तो यह इगलैंड की बीवरेज योजना से भी अधिक प्रगतिशील है। इसकी कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं

(i) बेरोजगारी लाभ (Unemployment Benefit) की इसमे कोई व्यवस्था नही है क्योकि बेरोजगारी की समाप्ति के कारण वहाँ इसकी कोई जरूरत नही रह गयी है। अन्य देशो की योजनाओ मे बेरोजगारी से सुरक्षा ऐसी योजनाओ का प्रमुख भाग होता है।

(ii) सोवियत योजना नि शुल्क है—अर्थात इसकी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये श्रमिको के वेतन मे से कोई चन्दा या शुल्क प्रतिमाह नही काटा जाता

है, जैसा कि अन्य देशों में होता है। हाँ, प्रत्येक प्रतिष्ठान और संस्थान काम पर लगे कर्मचारियों की संख्या के अनुसार इसके लिये धन अवश्य देता है। अन्य देशों में इस धन की व्यवस्था श्रमिक, मालिक एवं राज्य तीनों पक्षों का दायित्व होती है।

(iii) सोवियत रूस में यह योजना काम पर लगे हुए सभी व्यक्तियों पर लागू होती है, चाहे वे उद्योगों में लगे हों अथवा कृषि में। सामाजिक सुरक्षा के लाभ भी अब उद्योगों एवं कृषि में लगभग समान हैं। अन्य देशों में (जैसे भारत में) केवल औद्योगिक श्रमिकों पर ही इसे लागू किया गया है और वह भी कुछ बड़े बड़े नगरों और उद्योगों में। ग्रामीण एवं कृषि क्षेत्र ऐसे देशों में इसकी परिधि से बाहर हैं।

(iv) सामाजिक सुरक्षा योजना के संचालन में श्रम संघों का सक्रिय योग रूस में प्राप्त है। वस्तुतः अल्पकालीन लाभों एवं भत्तों आदि का वितरण श्रमसंघों के द्वारा ही किया जाता है। पेन्शन योजनाओं के प्रबन्ध में भी जन मंत्रालय के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त श्रम संघों के प्रतिनिधि होते हैं।

अन्य देशों में श्रम संघों को यह दायित्व नहीं सौंपा गया है। इसके लिये वहाँ राजकीय विभाग अथवा स्वायत्त निगमों की स्थापना की गयी है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष रूप से श्रमिक स्वयं इन योजनाओं की देखरेख करते हैं, जबकि अन्य देशों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

(v) सोवियत सामाजिक सुरक्षा योजना अत्यधिक व्यापक है अर्थात इसमें जीवन के ऐसे सभी आकस्मिक संकटों को सम्मिलित किया गया है जिनके कारण श्रमिक अपने को निरीह अथवा असहाय पाता है। इस दृष्टि से अन्य देशों की योजनायें (कुछ अपवादों को छोड़कर) अत्यन्त सीमित हैं।

(vi) योजना के अन्तर्गत प्रदान किये जाने वाले लाभों की राशि पुरुष एवं महिला कर्मचारियों के लिये समान है क्योंकि वहाँ वेतन की दृष्टि से पुरुष एवं महिलाओं में कोई भेद नहीं किया जाता है जैसा कि ब्रिटेन में किया जाता है।

(vii) सोवियत संघ में ऐसे कर्मचारियों को जो श्रमसंघों के सदस्य हैं कुछ ऊँची दर से लाभ दिया जाता है। ऐसा श्रम संघों की सदस्यता को प्रोत्साहित करने के लिये किया जाता है। अन्य देशों में श्रम संघों के सदस्यों और गैर-सदस्यों में इस दृष्टि से कोई भेद नहीं किया जाता है।

(viii) सोवियत योजनाओं में नकद लाभों के अतिरिक्त सेवाओं एवं सुविधाओं के रूप में प्राप्त होने वाले लाभों का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है जैसा कि अन्य देशों की योजनाओं में नहीं है।

अन्त में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से सोवियत रूस विश्व का सबसे अग्रगण्य राष्ट्र है। सन् १९६७ में सोवियत सरकार का कुल बजट राजस्व ११०२४ करोड़ रूबल था जिसमें से १२३६ करोड़ रूबल केवल सामाजिक सुरक्षा पर व्यय किया गया। दूसरे शब्दों में सोवियत रूस अपने बजट का

लगभग ११ ३ प्रतिशत सामाजिक सुरक्षा पर व्यय करता है। यदि सामाजिक सुरक्षा के साथ साथ शिक्षा, चिकित्सा एव अन्य सामाजिक और सास्कृतिक सुविधाओ पर भी विचार किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि वहाँ वार्षिक बजट का लगभग ४२·६ प्रतिशत सामाजिक सेवाओ एव सुरक्षा पर व्यय किया जाता है। अत सोवियत बीमा एव सुरक्षा की योजना सोवियत सघ के आदर्शों और उद्देश्यो के अनुकूल है। इससे सोवियत श्रमिको मे आत्मविश्वास और दृढता की भावना उत्पन्न हुई है। यहाँ श्री एव श्रीमती वेब (Mr. and Mrs. Webb) का यह कथन उद्धरित करना उचित होगा कि "यह प्रणाली सभी श्रमिकों को सर्वव्यापी तथा असीमित सुरक्षा प्रदान करती है। हमारा विचार है कि इस सुरक्षा ने रूस के प्रत्येक श्रमिक के मस्तिष्क में यह बात जमा देने में महत्वपूर्ण कार्य किया है कि वह न केवल अपनी सोवियत नागरिकता के महत्व को समझने लगा है; बल्कि यह भी समझता है कि वह अन्य नागरिकों के साथ देश में उत्पत्ति के सभी साधनों का सम्मिलित स्वामी है।"

२०

सोवियत आर्थिक विकास द्वारा प्रेरणा एवं मार्गदर्शन

द्वितीय विश्व युद्ध से पहले एशिया, अफ्रीका एव लेटिन अमेरिका के अनेक देश औपनिवेशवाद के शिकार रहे। एक लम्बे समय तक इन देशों पर यूरोप के कुछ विकसित देशो का आधिपत्य रहा। साम्राज्यवादी शासको ने इन राष्ट्रों को अपने देश के आर्थिक विकास का एक साधन बनाया। स्वतन्त्र आर्थिक नीतियों के निर्माण मे परतत्र होने के कारण इन देशो का आर्थिक शोषण होता रहा। इन पिछड़े हुए कृषि प्रधान राष्ट्रो का कच्चामाल विकसित देशो को निर्यात होता रहा और विकसित देशो के निर्मित माल की खपत के लिये इन देशो के बाजारो का उपयोग किया गया। राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय की न्यूनता के कारण बचत और विनियोग की मात्रा अत्यन्त सीमित रही। पूँजी और तकनीकी ज्ञान के अभाव मे इन राष्ट्रों मे आधारभूत उद्योगो का विकास न हो सका और मशीनो, कलपुर्जों तथा तकनीकी ज्ञान के लिये ऐसे राष्ट्र विकसित देशो के मुँहताज बन गये। ऐसी स्थिति मे अवरुद्ध अर्थ व्यवस्था की स्थिति से निकल कर स्वय स्फूर्त विकास के चरण तक पहुँचना ऐसे देशो के लिये प्राय असम्भव सा प्रतीत होने लगा। आयातो पर निर्यातो के पर्याप्त आधिक्य के अभाव मे विदेशो से पूँजी और तकनीक का आयात किस प्रकार किया जाय—यह इनके लिये एक कठिन समस्या रही। इनके निर्यातो के परम्परागत ढाँचों, विकसित देशो की तटकर नीतियों, आन्तरिक उपयोग के आकार तथा अन्तरराष्ट्रीय बाजार मे कृषि जन्य माल की बिक्री के लिये पिछड़े देशो द्वारा कठोर प्रतियोगिता के कारण विकासशील राष्ट्र निर्यातों की मात्रा को बढाने और उनका अधिक मूल्य प्राप्त कर सकने की स्थिति मे नहीं थे।

कुछ विकासशील देशो ने स्वतत्रता प्राप्ति के बाद विदेशी सहायता के आधार पर आर्थिक विकास की योजनायें बनायी और इस प्रकार परिवहन, शक्ति तथा कतिपय भारी उद्योगो का विकास करने का प्रयास किया। किन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि विकसित देशो द्वारा प्रदान की जाने वाली विदेशी आर्थिक सहायता की प्रकृति

एव उसकी शर्तें कुछ इस प्रकार की हैं कि उसके बल पर विकासशील राष्ट्र उस सहायता का पूरा लाभ प्राप्त कर सकने की स्थिति म नही हो सके। इन राष्ट्रो की अर्थव्यवस्था की आन्तरिक दुर्बलताओ ने भी निश्चय ही इसम बाधायें उपस्थित कीं। विशाल जनसख्या और जनसख्या वृद्धि की ऊँची दर के कारण इन देशो म पूँजी विनियोग का स्तर ऊँचा न उठ सका तथा निर्यात व्यापार के स्वरूप मे विशेष परिवर्तन न हो सका। कृषि के निम्न स्तर और अकाल की स्थिति ने अनेक देशो म अन्न के आयात को अवश्यम्भावी बना दिया जिसके कारण इन राष्ट्रो की विकास-क्षमता मे उसी अनुपात म कमी हुई। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि पिछले विदेशी ऋणो और ब्याज की किस्तो को आगे प्राप्त की जाने वाली विदेशी सहायता की राशि मे से चुकाया जाने लगा। इस प्रकार प्रतिवर्ष प्राप्त की जाने वाली विदेशी सहायता की विशुद्ध राशि (Net Foreign Aid) उत्तरोत्तर कम होने लगी और विकसित राष्ट्र सहायता की राशि को बढाने से हाथ खीचने लगे, क्योंकि यदि इस स्थिति को आगे भी जारी रहने दिया गया तो एक सीमा ऐसी आ जायगी जब विदेशी आर्थिक सहायता की मात्रा और पिछले ऋणों पर देय किस्तों की मात्रा बराबर होगी—अर्थात ऐसी स्थिति मे वास्तविक रूप मे उस देश के लिये विदेशी सहायता की मात्रा शून्य होगी। अत यह अत्यन्त आवश्यक है कि विदेशी आर्थिक सहयोग की प्रकृति एव उसका स्वरूप ऐसा हो कि जिससे विकासशील राष्ट्र कुछ समय बाद विदेशी सहायता पर निर्भरता की स्थिति से मुक्त हो सकने मे सफल हो सकें। साथ ही सोवियत रूस की भाँति विकासशील राष्ट्रों को अपने सामाजिक एव आर्थिक कलेवर मे भारी सरचनात्मक परिवर्तन करने होगे तथा पूर्व नियोजित ढग से आर्थिक विकास की प्रणाली को अपनाना होगा तभी विकासशील राष्ट्र अवरुद्ध अर्थ-व्यवस्था की अवस्था से निकलकर स्वय स्फूर्त अवस्था तक पहुँच सकने म सफल होगे।

विकासशील देशो के शीघ्र आर्थिक विकास की समस्या के सन्दर्भ मे जब हम सोवियत आर्थिक विकास के पिछले पचास वर्षों के इतिहास पर विचार करते हैं, तो हमे ज्ञात होता है इससे विकासशील देशों को समाजवादी तरीके से अपने विकास के लिये पर्याप्त मार्गदर्शन तथा दिशा निर्देशन प्राप्त हुआ है। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं होना चाहिये कि विकासशील देश अपने आर्थिक विकास के लिये ठीक उन्हीं तरीकों और साधनों का उसी रूप मे प्रयोग करें जिस रूप मे सोवियत रूस मे किया गया। एक देश दूसरे देश से यह तो सीख सकता है कि उसे क्या ग्रहण करना है और क्या नहीं। अब तो सोवियत अर्थशास्त्री भी यह नही मानते कि समाजवादी ढग से विकास करने के लिये हिंसात्मक क्रान्ति आवश्यक है। वैधानिक तरीको से भी समाज के आर्थिक ढाँचे मे अनुकूल सरचनात्मक तथा सगठनात्मक परिवर्तन लाये जा सकते हैं। वस्तुत आज सभी विकासशील देश शान्तिपूर्ण तरीको से विकास के अगले चरण मे शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने के इच्छुक हैं। इस दिशा मे सोवियत सघ द्वारा अपनाया गया

आर्थिक नियोजन का तरीका, सभी विकासशील देशों द्वारा अब अपनाया जा रहा है।

सोवियत संघ ने इतने थोड़े समय में विकास का ऊंचा स्तर प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि विकासशील देश अपने आर्थिक विकास की दिशा में सोवियत रूस से प्रेरणा प्राप्त करें। प्रोफेसर रोस्टोव के अनुसार ब्रिटेन को पूर्ण आर्थिक विकास की अवस्था तक पहुँचने में लगभग दो शताब्दियों से भी अधिक समय लगा। इसका कारण यह था कि ब्रिटेन इस दृष्टि से विश्व का प्रणेता रहा। बाद में विश्व के कई अन्य देशों ने अपने आर्थिक विकास के लिये इसमें कम समय लिया क्योंकि उन्हें ब्रिटेन के अनुभवों से मार्ग दर्शन प्राप्त करने का अवसर मिला। फिर भी संयुक्तराज्य अमेरिका को अवरुद्ध अवस्था में स्वयं स्फूर्त अवस्था तक पहुँचने में लगभग १२० वर्ष लग गये। इसके विपरीत सोवियत रूस ने केवल चालीस वर्षों में ही यह मंजिल तय कर ली। क्रान्ति के पहले रूस एक पिछड़ा हुआ देश था। कृषि प्रधानता भारी औद्योगीकरण का अभाव, विदेशी व्यापार का निम्न स्तर, अल्प राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, सामाजिक विषमता, गरीबी एवं भुखमरी, अशिक्षा आदि के रूप में अल्पविकास के समस्त लक्षण वहाँ विद्यमान थे। क्रान्ति के बाद भी नियंत्रित पूँजीवाद, युद्ध कालीन साम्यवाद और नवीन आर्थिक नीति के रूप में आठ दस वर्षों तक वहाँ अनेक आर्थिक प्रयोग आजमाये जाते रहे। इन वर्षों में वहां विशेष प्रगति न हो सकी। रूस का वास्तविक विकास सन् १९२८ से आरम्भ हुआ जब प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू की गयी और उसके अन्तर्गत विद्युतीकरण भारी औद्योगीकरण तथा कृषि के सामूहीकरण की योजनायें क्रियान्वित की गयी। उसके बाद से सात योजनायें पूरी की जा चुकी हैं तथा आठवीं पंचवर्षीय योजना अभी चल रही है जो सन् १९७० में पूर्ण हो जायगी।

यदि द्वितीय विश्व-युद्ध के विनाशकारी प्रभाव से रूस पृथक रहा होता, तो निश्चय ही वह और अधिक विकास अब तक कर चुका होता। फिर भी द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उसने जितनी शीघ्रता से अपनी अर्थ व्यवस्था का पुनर्निर्माण कर लिया, उससे विश्व को उतना ही आश्चर्य हुआ जितना उस समय हुआ था जब सन् १९२९ के बाद विश्वव्यापी मन्दी रूस की आर्थिक प्रगति को प्रभावित न कर सकी थी। कुछ भी हो, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से रूस विश्व का दूसरा सबसे बड़ा राष्ट्र माना गया। सन् १९५८ के बाद से रूस की आर्थिक योजनाओं में एक नया मोड़ आया। आर्थिक विकास एवं औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से इस बात के प्रयत्न रूस में हो रहे है कि जिससे शीघ्र ही रूस संयुक्तराज्य अमेरिका की बराबरी में आ जाय अथवा उससे आगे निकल सके। आर्थिक विकास का बीस वर्षीय कार्यक्रम इसी लक्ष्य का ध्यान में रख कर बनाया गया। पिछले वर्षों में संयुक्त-राज्य अमेरिका में आर्थिक विकास की वार्षिक-दर तीन प्रतिशत के आस पास रही है जबकि सोवियत अर्थ व्यवस्था का विकास लगभग सात प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से

होता रहा है। सन् १९१३ म सोवियत रूस की राष्ट्रीय आय सयुक्तराज्य अमेरिका की राष्ट्रीय आय की तुलना मे केवल १० प्रतिशत थी, जो सन् १९६० मे ३१ प्रतिशत, तथा सन् १९६८ मे ६५ प्रतिशत से कुछ अधिक हो गयी। यह वृद्धि प्रोफेसर रोक्टोव द्वारा लगाये गये अनुमानो से भी अधिक हुई है। यदि यह मान भी लिया जाय कि सन् १९९० तक भी रूस आर्थिक विकास की दौड मे सयुक्तराज्य अमेरिका के समकक्ष न आ सकेगा, तो भी यह निश्चित ही है कि दोनो देशो की राष्ट्रीय आय का वर्तमान अन्तर बहुत कम हो जायगा।

विकासशील देशों को सोवियत आर्थिक सहयोग

इस प्रगति को देखते हुये ऐसा लगता है कि क्रान्ति से पूर्व की गयी लेनिन की कल्पना सरकार हो रही है। लेनिन ने कहा था कि "अब देश के सामने दो ही विकल्प रह गये हैं—या तो विनष्ट हो जाये अथवा विकसित देशों को बराबरी में पहुँच कर आर्थिक दृष्टि से उनसे भी आगे निकल जाये।" वस्तुत विकासशील देशो के लिये भी आर्थिक विकास अब एक जीवन मरण का प्रश्न बनकर सामने खडा है जिसका उत्तर उन्हे सोवियत आर्थिक विकास से मिल सकता है। ऐसे देशो मे तकनीकी क्रान्ति उत्पन्न करने मे सोवियत रूस का सहयोग सराहनीय रहा है। रूस द्वारा प्रदान की गयी आर्थिक सहायता समानता और पारस्परिक सम्मान के सिद्धान्तो पर आधारित है। उपनिवेशो और परतत्र देशों के स्वतत्रता आन्दोलनो तथा राष्ट्रीय उन्नति मे सहयोग देना प्रारम्भ से ही सोवियत विदेश-नीति का प्रमुख अग रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व रूस इस दिशा मे विशेष कार्य न कर सका। केवल तुर्की और अफगानिस्तान को कुछ आर्थिक सहयोग प्रदान किया गया।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद सोवियत रूस और विकासशील राष्ट्रो के मध्य *तकनीकी एव आर्थिक सहयोग को बढाने की दिशा मे अनुकूल दशायें उत्पन्न हुई।* सन् १९५५ मे सोवियत सघ ने भारत एव अफगानिस्तान के साथ आर्थिक सहयोग के लिये समझौते किये। इसके बाद धीरे धीरे ऐसे देशो की सख्या बढने लगी और अब लगभग ४० विकासशील देशो के साथ सोवियत सघ आर्थिक एव तकनीकी समझौते सम्पन्न कर चुका है। इनमे उल्लेखनीय हैं एशिया मे—भारत, अफगानिस्तान, बर्मा, इण्डोनेशिया, ईरान, ईराक, कम्बोडिया, यमन, नेपाल, पाकिस्तान, सीरिया, तुर्की लाओस, कुवैत, तथा लका, अफ्रीका में—सयुक्त अरब गणराज्य, घाना, कागो, अल्जीरिया, गिनी, केमरून, कीनिया, माली, सूडान, तजानिया, सोमाली, सेनेगल, उगान्डा, ट्यूनीशिया, मोरक्को, इथोपिया; तथा लेटिन अमेरिका मे—ब्राजील और चिली। इन समझौतो के अन्तर्गत सोवियत सघ द्वारा विकासशील देशो को उनके *राष्ट्रीय उद्योग, कृषि विज्ञान और डिजाइन सस्थाओं की* स्थापना, परिवहन तथा सचार के आधुनिक साधनों के विकास, आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बन्धो मे वृद्धि, भूगर्भीय सर्वेक्षण, विशेषज्ञो एव श्रमिको के प्रशिक्षण एव तकनीकी विकास आदि के लिए आवश्यक सहयोग प्रदान किया जाता है। औद्योगिक परियोजनाओ के लिये

अन्वेषण एवं डिजाइन आदि के लिये सोवियत विशेषज्ञ सक्रिय सहयोग देते हैं तथा आवश्यक कल पुर्जों और मशीनों की व्यवस्था सोवियत रूस द्वारा की जाती है। कारखानों के निर्माण उत्पादन प्रारम्भ होने तक सोवियत विशेषज्ञ निर्माण स्थलों पर तकनीकी सहायता देते हैं तथा आवश्यक प्रशिक्षण का प्रबन्ध करते हैं। इसके लिये रूस लम्बी अवधि के ऋण आसान शर्तों पर देता है। ऐसी व्यवस्था की जाती है कि ऋण की अदायगी सम्बन्धित राष्ट्र रूस को अपने माल के निर्यात के द्वारा कर सके जिससे विकासशील राष्ट्र के समक्ष विदेशी विनिमय के संकट की कोई समस्या न उत्पन्न हो, उनके निर्यात में वृद्धि हो सके, उनके उत्पादनों के लिये स्थायी बाजार प्राप्त हो जाय, और ऋणों के भुगतान में उन्हें कोई कठिनाई न हो।

१ पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद (COMECON)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद रूस स्वयं अपने और पूर्वी यूरोप के अनेक देशों के आर्थिक पुनर्निर्माण में लगा रहा। यह वह समय था जब मार्शल योजना के अन्तर्गत पश्चिमी यूरोप के देशों को आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये पर्याप्त सहायता दी जा रही थी। अतः पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों में आर्थिक सहयोग बढ़ाने के लिये 'कोमेकोन (COMECON) अथवा 'पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद' (The Council for Mutual Economic Assistance) का गठन किया गया जोकि पश्चिमी यूरोप की "OEEC" (Organisation for European Economic Cooperation) अथवा "यूरोपीय आर्थिक सहायता संगठन" के समकक्ष थी। "कोमेकोन" ने थोड़े ही समय में पश्चिमी यूरोप के देशों से पूर्वी यूरोप में किये जाने वाले आयातों में कमी करने में सफलता प्राप्त की और पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों के पारस्परिक व्यापार सम्बन्धों को सुदृढ़ किया। आज यह आर्थिक संगठन समस्त समाजवादी देशों को आर्थिक सहयोग प्रदान कर रहा है। यह संगठन अब १६ स्थायी आयोगों में विभक्त है और प्रत्येक आयोग किसी विशिष्ट वस्तु अथवा सेवा से सम्बन्ध रखता है। उदाहरण के लिये शक्ति, कोयला, खनिज तेल, इन्जीनियरिंग आदि के लिये इस संगठन में पृथक आयोग कार्यशील है। इन आयोगों के मुख्यालय ऐसे देशों में स्थापित हैं जहाँ सम्बन्धित वस्तु अथवा सेवा के लिये सबसे अधिक अनुकूल दशायें विद्यमान हों। उदाहरण के लिये तेल आयोग रूमानिया में, कोयला आयोग पोलैण्ड में, रासायनिक आयोग पूर्वी बर्लिन में, इन्जीनियरिंग आयोग चेकोस्लोवाकिया में, अलौह धातु आयोग हंगरी में तथा अन्य आयोग रूस के विभिन्न स्थानों पर कार्यशील हैं। इस संगठन के माध्यम से पूर्वी यूरोप के देशों में औद्योगिक एवं आर्थिक प्रगति की गयी है। सन् १९६० के बाद इस संस्था के द्वार विश्व के अन्य समाजवादी देशों के लिये भी खुल गये। नये सदस्य देशों को विद्यमान समस्त सदस्य राष्ट्रों की सहमति से ही सदस्य बनाया जा सकता है। किन्तु आज भी इसकी सदस्यता बाहरी मंगोलिया को छोड़कर पूर्वी यूरोप के देशों तक ही सीमित है।

२ नव स्वतन्त्र राष्ट्रों को प्राप्त सोवियत सहयोग का स्वरूप

एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के देशों को पिछले दस बारह वर्षों से सोवियत रूस अधिकाधिक आर्थिक सहयोग देता रहा है। इस आर्थिक सहयोग का स्वरूप उस सहयोग से कुछ भिन्न है जो इन देशों को पश्चिम के अन्य पूँजीवादी देशों अथवा विश्व बैंक और उससे सम्बद्ध संस्थाओं से प्राप्त होता है। आर्थिक सहयोग एवं सम्बन्धों का यह मौलिक अन्तर सोवियत आर्थिक सहायता को एक विशेष स्थान प्रदान करता है तथा उसे विकासशील राष्ट्रों के हितों के सन्दर्भ में अधिक उपयोगी बनाता है। सोवियत रूस इन राष्ट्रों में सन् १९५६ के बाद १२०० आर्थिक परियोजनाओं के निर्माण में सहायक हुआ है। इनमें से ८०० परियोजनायें प्राय पूर्ण हो चुकी हैं तथा शेष ४०० परियोजनाओं पर निर्माण कार्य चल रहा है। इसी अवधि में विकासशील राष्ट्रों के साथ सोवियत व्यापार में दस गुनी वृद्धि हो गयी है। इन राष्ट्रों को सोवियत आर्थिक सहायता निम्न रूपों में प्राप्त हो रही है।

(i) सोवियत वैज्ञानिक एवं विशेषज्ञ ऐसे राष्ट्रों के प्राकृतिक साधनों, खनिज पदार्थों, शक्ति के साधनों आदि के सर्वेक्षण तथा उनके उपयोग आदि के विषय में परामर्श एवं सक्रिय सहयोग देते हैं।

(ii) इन राष्ट्रों में विशिष्ट उद्योगों के निर्माण की सम्भावनाओं पर विचार करते हैं, तथा किसी उद्योग के लिये डिजाइन निर्माण का कार्य एवं परियोजना की रिपोर्ट तैयार करने का कार्य करते हैं तथा इसमें उस देश की इन्जीनियरों, विशेषज्ञों आदि को भी सम्मिलित करते हैं ताकि भविष्य में वे ऐसी परियोजनाओं को स्वतन्त्र रूप से प्रारम्भ कर सकें।

(iii) कारखानों के लिये आवश्यक मशीनों, कल-पुर्जों आदि का निर्माण रूस के बड़े-बड़े कारखानों में करके उन्हें सम्बद्ध देश को भेजते हैं।

(iv) विशाल मशीनों तथा पुर्जों आदि को जोड़ने और उन्हें उत्पादन के लिये सक्रिय बनाने में सोवियत इन्जीनियर सहायता करते हैं। उन मशीनों के लिये फालतू औजारों एवं पुर्जों की व्यवस्था सोवियत रूस सम्बद्ध देश में उनका निर्माण होने तक करता रहता है।

(v) इन मशीनों आदि को सोवियत रूस दीर्घकालीन ऋण के आधार पर प्रदान करता है जिसकी अवधि साधारणतः बारह वर्ष होती है। ब्याज की दर बहुत कम होती है—अर्थात् यह ढाई प्रतिशत वार्षिक के आस-पास होती है।

(vi) ऐसे कारखानों में काम करने के लिये भारी संख्या में इन्जीनियरों, मिस्त्रियों एवं अन्य श्रमिकों की आवश्यकता होती है। रूसी विशेषज्ञों द्वारा सम्बद्ध देश में अथवा आवश्यकता होने पर सोवियत रूस की संस्थाओं में भी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है।

(vii) वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं तकनीकी ज्ञान की वृद्धि के लिये भी सोवियत सरकार ऐसे राष्ट्रों को आर्थिक सहयोग प्रदान करती है।

(viii) आर्थिक योजनाओं के निर्माण तथा आर्थिक विकास आदि की समस्याओं पर सोवियत विशेषज्ञों द्वारा आवश्यक परामर्श दी जाती है। विकास के साथ साथ विस्तार एवं उत्पादन क्षमताओं में वृद्धि के लिये भी निरन्तर सहयोग प्रदान किया जाता है।

३. सोवियत आर्थिक सहायता की विशेषतायें

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सोवियत सहायता पारस्परिक समानता एवं सम्मान के आधार पर दी जाती है। ऐसा करते समय उस देश की स्वतन्त्रता, प्रभुसत्ता का पूर्ण आदर किया जाता है और इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि आर्थिक सहायता के कारण आन्तरिक मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न होने पाये तथा सहायता के साथ कोई राजनैतिक शर्तें न जुडी हो। सोवियत आर्थिक सहायता की विशेषताओं का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है

(i) आर्थिक सहायता द्विपक्षीय समझौतों (Bilateral Agreements) के आधार पर दी जाती है—अर्थात् सोवियत संघ की सरकार एवं सम्बन्धित विकासशील राष्ट्र की सरकार के मध्य एक समझौते पर हस्ताक्षर हो जाते हैं।

(ii) सोवियत आर्थिक सहायता प्राय सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) को ही प्रदान की जाती है, किन्तु यह अनिवार्य नहीं है। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब निजी क्षेत्र के उद्योगों को सोवियत सहायता प्राप्त हुई है।

(iii) सोवियत रूस विकासशील देशों को उपभोक्ता उद्योगों के बजाय आधारभूत उद्योगों (Basic Industries) के लिये सहायता देता है जैसे इस्पात, अन्य धातु उद्योग, खनिज विकास, तेल, विद्युत विकास आदि। इसका प्रमुख उद्देश्य सहायता लेने वाले राष्ट्र को औद्योगिक दृष्टि से आत्म-निर्भर एवं शक्तिशाली बनाना होता है।

(iv) सोवियत सहायता के बल पर निर्मित कारखानों के स्वामित्व में रूस का कोई हिस्सा नहीं होता। समस्त स्वामित्व विकासशील देश में निहित होता है। सोवियत रूस मशीनों एवं तकनीकी सेवाओं के रूप में केवल दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है।

(v) सोवियत दीर्घकालीन ऋणों की शर्तें अत्यन्त उदार होती हैं तथा ब्याज की दर बहुत कम निर्धारित की जाती है जिससे कि सम्बन्धित देश पर विशेष भार न पड़े।

(vi) सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ऋणों का भुगतान सोवियत संघ उस देश के माल के रूप में स्वीकार करता है। इससे विकासशील देश को अपना निर्यात बढ़ाने का अवसर मिलता है तथा ऋण भी सरलता से चुक जाता है।

(vii) विकासशील देश में तकनीकी ज्ञान का विकास एवं प्रसार तथा ऐसे देशों में आर्थिक आत्म निर्भरता का निर्माण सोवियत सहायता का मूलभूत उद्देश्य माना जाता है।

भारत सोवियत आर्थिक सहयोग

भारत सोवियत आर्थिक सहयोग का श्रीगणेश सन् १९५५ मे सोवियत सघ और भारत के बीच भिलाई इस्पात कारखाने के निर्माण सम्बन्धी समझौते से हुआ। धीरे-धीरे दोनो सरकारो के बीच औद्योगिक निर्माण के लिये द्विपक्षीय समझौतो की सख्या बढने लगी। इस समय तक रूस की सहायता से *लगभग ६६ औद्योगिक प्रतिष्ठानो* का निर्माण भारत मे हो चुका है अथवा हो रहा है। सोवियत सहायता अनेक प्रकार के उद्योगो के लिये उपलब्ध की गयी है। इनमे प्राय सभी ऐसे आधारभूत उद्योग हैं जिनका विकास भारत के औद्योगीकरण के लिये अनिवार्य है। इन उद्योगो मे लौह और इस्पात, मशीन निर्माण, भारी इन्जीनियरिंग उद्योग, विद्युत निर्माण, कोयला एव खनिज तेल उद्योगो का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। इन औद्योगिक परियोजनाओ मे मे २२ परियोजनाओ पर काम पूरा हो चुका है तथा उत्पादन प्रारम्भ कर दिया गया है, १९ परियोजनाओ पर काम चल रहा है और शेष *१५ परियोजनाओ के विषय मे चौथी योजना के सन्दर्भ मे समझौते पूर्ण किये जा चुके* हैं और उनका निर्माण का कार्य हाथ मे लिया जा रहा है। नीचे सोवियत भारत आर्थिक सहयोग के विभिन्न क्षेत्रो का विस्तार से वर्णन किया गया है।

१. इस्पात उद्योग—हिन्दुस्तान स्टील कम्पनी के अन्तर्गत भिलाई का कारखाना रूस की सहायता से निर्मित किया गया। प्रारम्भ मे इसकी क्षमता १० लाख टन इस्पात की थी जिसे अब बढाकर २५ लाख टन कर लिया गया है। चौथी योजना के लिये हाल मे हुये समझौते के अनुसार अब भिलाई कारखाने की इस्पात उत्पादन क्षमता को २५ लाख टन से बढाकर ३२ लाख टन किया जा रहा है। सन् १९६८ मे भारत *सरकार और सोवियत सरकार के बीच* **बोकारो** *मे एक अन्य विशाल इस्पात कारखाने* के निर्माण के लिये समझौता हुआ। प्रारम्भ मे इसकी उत्पादन क्षमता १७ लाख टन होगी, तथा धीरे-धीरे इस क्षमता को बढाकर ४० लाख टन कर दिया जायगा। इस कारखाने के निर्माण मे जो मशीन औजार लगाये जायेंगे उनमे ६० प्रतिशत मशीन औजारो का निर्माण राची के भारी मशीन निर्माण कारखाने और दुर्गापुर के कोयला खान मशीन निर्माण कारखाने मे होगा। ये दोनो कारखाने भी सोवियत सहयोग से ही स्थापित किये गये हैं। आशा है सन् १९७१ तक बोकारो इस्पात कारखाना पूर्ण होकर उत्पादन चालू कर देगा।

२. भारी इन्जीनियरिंग उद्योग—अर्थ व्यवस्था के स्वतत्र विकास के लिये तथा औद्योगीकरण की गति को तेज करने के लिये इन्जीनियरिंग एव भारी मशीन निर्माण उद्योगो का विकास अत्यन्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य को लेकर सोवियत सहयोग से **राँची** मे भारी मशीनो के निर्माण तथा दुर्गापुर मे कोयला खान मशीनो के निर्माण के कारखाने स्थापित किये गये जो भारत मे अपने क्षेत्र मे पहले कारखाने हैं। इससे पूर्व भारत मे भारी मशीनो के निर्माण का कोई आधार नही था। राँची के कारखाने मे प्रतिवर्ष ८० हजार टन मशीन एव उपकरण उत्पादित किये जा सकते

है। इस कारखाने मे अनेक अन्य उद्योगो की मशीनें ढाली जा सकती हैं जैसे इस्पात एव अन्य धातु कारखानो मे काम आने वाली विभिन्न प्रकार की मशीनें और औजार, खनिज तेल उद्योग के उपकरण, भारी वजन उठाने की क्रेन मशीनें, खुदाई की मशीनें आदि। दुर्गापुर के कारखाने की वार्षिक क्षमता ४५ हजार टन मशीन निर्माण की है। इसमे कोयले की खानो मे प्रयोग की जाने वाली मशीनो का निर्माण किया जाता है। इन मशीनो के प्रयोग से देश का कोयला उद्योग अस्सी लाख टन अतिरिक्त कोयले का उत्पादन कर सकेगा।

३. खनिज तेल उद्योग—भारत खनिज तेल उद्योग के विकास के लिये सोवियत रूस का सदैव ऋणी रहेगा। सन् १९५५ से पूर्व हमारा खनिज तेल व्यापार पश्चिम की तीन बडी तेल कम्पनियो के हाथो मे था, और इनका कहना यह था कि भारत मे तेल के पर्याप्त भण्डारो की कमी है। भारत सरकार द्वारा सोवियत सरकार से इस विषय मे समझौता सम्पन्न होने के बाद देश के विभिन्न भागो मे तेल की खोज के लिये सर्वेक्षण किये गये जिनके परिणाम अत्यन्त सन्तोषप्रद निकले। भूगर्भीय सर्वेक्षणो ने यह प्रमाणित कर दिया कि देश मे तेल के पर्याप्त भण्डार हैं। सोवियत विशेषज्ञो की सहायता से भारत के तेल और प्राकृतिक गैस आयोग ने देश के विभिन्न भागो मे तेल तथा प्राकृतिक गैस के १४ भण्डारो की खोज की है जिनमे आसाम के नहर कटिया और गुजरात का खम्बात के क्षेत्र प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। बिहार मे बरौनी तथा गुजरात मे कोयली म तीस तीस लाख टन क्षमता वाले दो तेल शोधक कारखाने रूस के आर्थिक एव तकनीकी सहयोग से स्थापित किये गये हैं। तेल उद्योग के विकास से भारत ने करोडो रुपयो की विदेशी मुद्रा की बचत की है तथा भविष्य के लिये इस दृष्टि से सम्भावनाये बढ गयी हैं। अब यह सम्भव है कि कुछ वर्षों बाद भारत खनिज तेल के निर्यात से विदेशी मुद्रा अर्जित कर सके।

४. बिजली उद्योग—सोवियत सघ की सहायता से भारत म १५ बिजलीघरो का निर्माण किया गया है। सतलज नदी के दायें तट पर भाखडा का जलविद्युत गृह, नेवेल्ली का ताप बिजलीघर का इनमे विशेष स्थान है। इसके अतिरिक्त विद्युत विकास मे आत्म निर्भरता की दृष्टि से हरिद्वार मे भारी बिजली उपकरण कारखाना भी सोवियत आर्थिक एव तकनीकी सहयोग से स्थापित किया गया है। इस कारखाने मे विद्युत उत्पादन मे प्रयुक्त टर्बाइनो और जेनरेटरो का निर्माण किया जाता है।

५ अन्य उद्योग—सोवियत सहयोग से प्रेसीजन उपकरणो के भी अनेक कारखाने भारत के विभिन्न नगरो मे स्थापित किये जा रहे हैं। औषधि एव भेषज विज्ञान के क्षेत्र मे भी सोवियत रूस भारत को सहायता दे रहा है। ऋषिकेश मे एन्टीबायोटिक औषधियो के निर्माण का कारखाना, मद्रास मे शल्य चिकित्सा मे काम आने वाले औजारो का कारखाना, तथा हैदराबाद मे सिन्थेटिक औषधि निर्माण कारखाना इस दिशा मे उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त मध्यप्रदेश के कोरबा मे एल्यूमीनियम का कारखाना भी सोवियत सहयोग से स्थापित किया गया है।